Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ तत्सत्

श्रीज्ञानदेवजी विरचित

# ज्ञानेश्वरी

[ हिन्दी भाषामें ]

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम्-प्रेस, बम्बई ४.

संवत् २०१३ ) —— ( शके १८७८

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

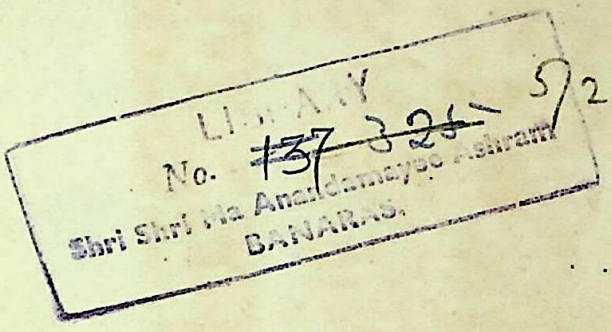


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

ॐ तत्सत्

श्रीज्ञानदेवजी विरचित

# ज्ञानेश्वरी ।

अर्थात

[ हिन्दीभाषामें ]

श्रीमद्भगवद्गीताकी " भावार्थदीपिका "

व्याख्याका सरल अनुवाद ।

अनुवादकः-

पं. हरितनूज ठाकुरोपाह्व

लक्ष्मणशास्त्री ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

संवत् १९९६, शके १८६१.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्- प्रेस, बम्बई.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार 'श्रीवेङ्कटेश्वर' मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्षाधीन है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ

ज्ञानेश्वरं ज्ञानविचारपूर्णं, ज्ञानप्रदाने भुवि कामधेनुम् ।
लोकोपकृत्यै धृतधर्ममूर्तिं, नमामि नित्यं परमात्मनिष्ठम् ॥

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

# भूमिका ।

संसारको विदित है कि श्रीमद्भगवद्गीता प्राणिमात्रके उद्धारके लिये भगवान् श्रीकृष्णने जरा-मरणको हटाकर मुक्ति देनेवाली गायी है। इसपर अनेक संस्कृत टीकायें तथा भाषाटीकायें हैं. श्रीमद्भगवद्गीतापर ज्ञानदेव महाराज 'जिनका दूसरा नाम ज्ञानेश्वर है' जीने मराठी 'ओवीबद्ध' टीका की। जिसका पहिला नाम 'भावार्थदीपिका' है, साधारण रीतिसे वर्तमान कालमें 'ज्ञानेश्वरी' है. इसके बडप्पनके विषयमें मुक्तकण्ठसे जितना वर्णन किया जाय उतना स्वल्प ही है. महाराष्ट्र प्रान्तमें इसकी अत्यन्त महती है. निर्मित होकर साढे छः सौ वर्षके कालमें दक्षिण देशमें इसका इतना प्रचार हुआ है कि इस ग्रंथके परिशीलनसे प्रायः सभी जातियाँ परमानन्दको प्राप्त हुई हैं. इसमें ज्ञानदेव महाराजने सर्वमान्य श्रीशंकराचार्यजीके ही अद्वैतमतका अवलम्बन कर सांगोपांग अवयवशः अत्यन्त स्पष्टरूपसे वर्णन किया है. जिससे अतिमन्द पुरुष भी साधनोंके द्वारा अनायास ही समझ सकते हैं।

इस ग्रन्थको इतना बडा भारी बडप्पन तथा एक भावसे उपादेय होनेका कारण, ज्ञानदेव महाराज हैं. अतः संक्षेपसे आपके सच्चरित्रका वर्णन किया जाता है. ज्ञानदेवजीके पिता विट्ठलपंत गोदावरी तीरपर 'पैठण' के पास आपेगांवके पटवारी गोविंदपंतजीके पुत्र थोड़ी ही अवस्थामें वेदाभ्यास और शास्त्राध्ययन कर बडे ज्ञानसम्पन्न ईश्वर भक्त हुए. प्रपंचमें उनका चित्त नहीं लगता था. तीर्थ क्षेत्रोंकी यात्रा करनी, संत सज्जनोंका सहवास करना और ईश्वरकी सेवामें आयुष्य बिताना, इसीमें इनकी प्रीति थी इससे बाल्यावस्थामें ही वे घरमेंसे बाहर निकले, पृथक् पृथक् पुण्यक्षेत्रोंका दर्शन करते करते 'पूना' के समीप आये। वहां 'आळंदी' में सिधोपंत कुलकर्णी नामके धनी श्रद्धालु सज्जन थे. उन्होंने सिद्धेश्वरके मंदिरमें उतरे हुए पांथ तरुण ब्राह्मणका वह ज्ञानयुक्त चेहरा, निर्मल भावयुक्त वर्तन, सदाचारपरायणता, गुण देखकर अपनी योग्य कन्या देनेके लिये मनमें विचार किया, विट्ठलपंतको कन्याके साथ विवाह करनेके लिये स्वप्नमें दृष्टान्त हुआ और वही ईश्वरकी आज्ञा मानकर विट्ठलपन्तने सिधोपंतकी कन्याके साथ व्याह कर घर प्रपंचको अच्छी तरह चलाया.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


विवाहसमारंभ होनेके बाद आषाढी एकादशी पास आयी विट्ठलपंतने पंढरीनाथ जानेके लिये कहा, यह सुनकर सिधोपंत कुटुम्ब परिवारको साथ लेकर जामाताके संग निकले, मार्गमें विट्ठलपन्तका हरिनामकीर्तन भजनादि देखकर सिधोपंतको समाधान हुआ और पंढरीको पहुंचकर कन्या जामाताको उन्होंने श्रीविट्ठलके चरणोंपर डाला. बाद चार दिन वहांके आनंदका अनुभव कर आळंदीको लौट आये. फिर विट्ठलपंत सिधोपंतकी आज्ञा लेकर दक्षिण यात्रा गये. श्रीशैल, वेंकटाद्रि, रामेश्वरआदि अनेक पुण्यक्षेत्रोंमें जाकर फिर आळंदीको आये, सिधोपंतने स्वागत किया. चार दिन वहां रहकर पत्नीको साथ लेकर 'आपेगांव' में माता पिताके तरफ गये. पतीहू और पुत्रको देखकर उनको बहुत ही आनंद हुआ. इन दोनोंका संसार देखते आयुष्य बिताना उनके भाग्यमें न था, अतः थोडे दिन बाद वे कैलासवासी होगये. फिर विट्ठलपंत निश्चिन्ततासे प्रपंच करने लगे. पर संसारमें पतिका विरक्तिभाव देखकर पत्नीने अपने पिताको यह बात कहवा दी. सिधोपंत आपेगांव जाकर दोनोंको साथ ले आळंदीमें आये. बहुत दिन बीतने पर अपत्य होना कठिनसा दीखने लगा. तथा वैराग्य ही अधिक पुष्ट हुआ पश्चात् एकदिन स्नानके बहाने विट्ठलपंत बाहर निकले और सीधे काशी पहुँचे, वहां पर रामानंद स्वामीजीसे मिले. अपना सांसारिक सच्चा वृत्तान्त उनको न कहकर उनका उपदेश लेकर संन्यासदीक्षा ली. आपकी पत्नी रुक्मिणीबाई, कानमें यह बात पहुँचते ही अत्यन्त उद्विग्न होकर चिन्ताग्रस्त हुई. अपना जन्म सार्थक करनेके लिये सोच विचार कर उषःकाल उठकर इंद्रायणीका स्नान, मध्याह्नकाल तक अश्वत्थवृक्ष (पीपल) की प्रदक्षिणा, मुखसे भगवन्नामस्मरण, एक वेणी, एकभुक्त रहना, भगवत्प्रीत्यर्थ शरीर क्षीण करने लगी इसप्रकार बारह वर्ष रुक्मिणीबाईने 'उग्र अनुष्ठान' किया. महासतीका अनुष्ठान कामना रहित बुद्धिसे चालू रहा उसकी सेवा भगवान्ने स्वीकार की। एक समय रामानन्दस्वामीजी सौ पचास शिष्य अपने साथ लेकर रामेश्वर यात्राके लिये निकले थे, उस प्रसंगमें आपका निवास आळंदीमें हुआ. प्रतिदिवसकी तरह रुक्मिणीबाई हनुमान्जीके मंदिरमें सायंकाल दर्शनको आयी. देवदर्शन होजानेके बाद मंदिरमें महात्मा रामानन्दजी स्वामी उतरे हैं—सुनकर उसने उनको वन्दन किया. स्वामीजीने भगवत्प्रेरणानुसार 'पुत्रवती भव' ऐसा आशीर्वाद दिया. ऐसा आशीर्वाद सुनते ही रुक्मिणी बाईने हँस दिया. हँसनेका कारण स्वामीजीने पूछा. 'पतिने काशीमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जाकर संन्यास लिया है तब आपके आशीर्वादमें कैसे सत्यता आवेगी ?' ऐसा विचार मनमें हँसी आयी, ऐसा उस सतीने कहा. बाद स्वामीजीने उनका सविस्तर वृत्तान्त पूछकर जान लिया कि वही चैतन्याश्रम है जो इस समय शिष्योंमें नहीं है. स्वामीजीने काशी आकर चैतन्याश्रमसे पूछकर पूरी परीक्षा ली और कहा कि आपका सब सच्चा वृत्तान्त ज्ञात हुआ है. यह सुन चैतन्याश्रमने अपना अपराध स्वीकृत किया. संतानहीन भार्याको उसकी अनुमतिके विना त्यागकर संन्यास ग्रहण करनेवाला गृहस्थ महादोषी होता है. और उसको दीक्षा देनेवाला भी दोषी ठहरता है, अतः दोनोंके दोष क्षालनार्थ चैतन्याश्रमको आळंदी जाकर पुनः गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेकी आज्ञा दी. खिन्न हुए चैतन्याश्रमने गुरुकी आज्ञा मान ली. इस तरह विट्ठलपन्त फिर संन्यासाश्रमीसे गृहस्थाश्रमी हुए. विट्ठलपन्तके गृहस्थाश्रमका पुनः प्रवेश दुर्जन लोगोंकी निन्दाका कारण हुआ, संन्यासी होकर गृहस्थाश्रमी कैसे हुआ ऐसे प्रश्न निकलने लगे. कोई विट्ठलपंतकी, कोई रामानंदस्वामीकी निंदा करने लगे, कोई रुक्मिणी बाईको नाम धरने लगे, विट्ठलपंतके वैराग्य, धैर्य, ज्ञान कसौटीमें पहुँचे थे, 'अनपेक्षः शुचिर्दक्षः' 'तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी' इत्यादि गुणोंसे युक्त पुरुष भगवानको प्रिय होता है उसको ही भक्त वर्गमें खींच लेता है, सच्चे भक्त किसी प्रसंगसे डरते नहीं कितने भी असह्य कष्ट आवें, उनको सहकर आत्मानुसंधानमें चित्त लगाये रहते हैं, विट्ठलपंत ये सभी कठिन प्रसंग भाग्यके मत्थे रखकर थोडा भी विषाद नहीं मानते थे, संन्यास लेनेपर फिर गृहस्थाश्रम स्वीकार करना शास्त्रसम्मत न होनेसे लोगोंने विट्ठलपंतका छल किया, इस विषयमें लोगोंको दोष नहीं दे सकते, विट्ठलपंतको भी दोष देना कठिन है, रामानंदस्वामीजीको भी दोष नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि विट्ठलपंतने 'मेरे स्त्रीपुत्रादि कोई नहीं' ऐसा मिथ्या ही कहा, अतः उन्होंने संन्यास दीक्षा दी, संतति हो जानेपर पत्नीकी आज्ञा लेकर संन्यास ग्रहण करना चाहिये ऐसी शास्त्रकी आज्ञाको तिरस्कृत कर संन्यास लेनेमें जल्दी की, इसलिये उनको गुरुकी आज्ञाके अनुसार फिर गृहस्थ होकर चिरकाल गृहस्थाश्रम पालना पडा. और एक बात यह है कि उत्पत्ति कालसे ज्ञानवान् निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपान, मुक्ताबाई ऐसे ज्ञानियोंके जन्म लेनेके लिये ऐसी अपूर्व घटना अपेक्षित थी. शास्त्राज्ञा सबको माननी ही चाहिये न मानेंगे तो पतनको प्राप्त होंगे, वेद, शास्त्र, पुराण जिनके गुणोंका वर्णन करते हैं, उस विश्वात्मा अथवा उनकी आज्ञा लेकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आनेवाले महात्माओंको साधारणके तरह शास्त्रनिर्बंध बाधक होंगे ऐसा मानना सर्वथा अयोग्य होगा, अतः विचार करने पर कि ज्ञानेश्वर महाराजने संन्यासीके यहां जन्म क्यों लिया, इस विषयमें सकल मनोरथ त्यागरूप संन्यासवान्के उदरमें ज्ञानसे जन्म लेना योग्य है, प्रमाण सहमत है 'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते' योगभ्रष्ट महात्मा ईश्वरी संपत्तिसे श्रीमान् अथवा मोक्षसंपत्तिसे युक्त ऐसे पवित्र घरानेमें निष्कलंक अतिपवित्र निर्मल माता पिताओंके उदरमें ही जन्म लेते हैं, निवृत्ति-आदि ये चारो बाल न होकर चतुर्विध मोक्ष अथवा चतुर्विध पुरुषार्थ ही साकाररूपसे अवतीर्ण हुए हैं ऐसा मालूम होता है।

निवृत्तिनाथका जन्म शके ११९५ में हुआ, ज्ञानदेवका शके ११९७ में हुआ, सोपानदेवका शके ११९९ में हुआ, मुक्ताबाईका १२०१ में हुआ, ये चारो आपसमें बाल्यावस्थासे ही परमार्थकी बातें करते रहे, विठ्ठलपंतको ब्राह्मणोंका बहिष्कार होनेके कारण अन्यजातीय लोग भी इनका सम्बन्ध छोडने लगे, ऐसे कष्टमें उन्होंने कई वर्ष बिताये, माता पिताओंको सर्वसंतलक्षण, ज्ञान विशिष्ट संवाद आदि पुत्रोंमें देखकर बहुत आनंद हुआ, बाद निवृत्तिनाथ सात वर्षके हुए इनका उपनयन कैसे होगा यह चिन्ता उत्पन्न हुई, संन्यासीसे गृहस्थ होनेवालेके पुत्रोंका उपनयन किस प्रमाणसे हो अतःकोई ब्राह्मण इनसे यथोचित संभाषण भी न करता था मत देना तो पृथक् रहा बाद विठ्ठलपंत स्त्री और पुत्रों सहित त्र्यंबकेश्वर क्षेत्रको गये, वहां प्रतिदिन मध्यरात्रिमें कुशावर्ता नदीमें स्नान कर पुत्रोंसहित ब्रह्मगिरिकी सव्य प्रदक्षिणा करते थे ऐसे ६ मास बीत गये, एक रात्रिमें प्रदक्षिणा करते समय उनके सामने ही एक भयानक विकराल व्याघ्र जाता हुआ दीखपडा, वे घबडाकर बालकोंके संरक्षणमें लग गये निवृत्तिनाथ रास्ता भूल गये और अन्यमार्गकी ओर भागने लगे, भागते भागते अंजनपर्वतकी दरीमें घुसे, भीतर दो शिष्योंके सहित श्रीगैनीनाथ तप करते उस सिद्धाश्रममें बैठे थे, उनको देखकर निवृत्तिनाथने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया, गैनीनाथको भी उस बालकको देखकर बहुत संतोष हुआ और उन्होंने शीघ्र ही इसको अधिकारी शिष्य है ऐसा जानकर ब्रह्मबोध दिया, वे सात दिन गुरुके पास रहे, श्रीगुरुने उसको महावाक्यका बोध दिया, और योगमार्गकी दीक्षा दी, बाद अपने संप्रदायमें मिलाकर श्रीकृष्णकी उपासना बतलायी, और नाम स्मरणका प्रसार करनेकी आज्ञा दी. कुछ दिनके बाद निवृत्तिनाथ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रीगुरुकी आज्ञा लेकर माता पिता तथा बंधुओंसे मिले, और ज्ञानेश्वर महाराजको उपदेश दिया, वे ज्ञानेश्वर आठवें वर्षमें ही श्रीनिवृत्तिनाथ सद्गुरुसे उपदेश लेकर पूर्णताको प्राप्त हुए, तीनों भाइयोंको उपदेश देकर उनको कृतार्थ किया,वे निवृत्तिनाथ तीनोंके गुरु हुए. आदिनाथ शंकरसे मत्स्येंद्रनाथको ब्रह्मबोध प्राप्त हुआ, उनसे गोरक्षनाथको प्राप्त हुआ, उन्होंने गैनीनाथको ब्रह्मबोध दिया, गैनीनाथने निवृत्तिनाथको दिया, निवृत्तिनाथने गीतार्थ प्रकट करनेके मिससे शांतिरसकी जो वृष्टि की, उस समय चातककी तरह पास बैठे हुए शिष्य ज्ञानदेव पर कृपा की, उनको ही उस ग्रंथके यशका भागी बनाया।

इसके बाद बालक बड़े होने लगे, अतः विट्ठलपन्तको उनके व्रतबन्धकी चिन्ता उत्पन्न हुई। उन्होंने ब्राह्मण वृन्दको बारबार साष्टांग प्रणाम किया, और कहा कि मेरे सब अपराध क्षमाकर इस पतितका उद्धार करिये। मैंने गृहस्थाश्रम गुरूकी आज्ञासे स्वीकार किया, आप सब जो दण्ड देंगे उसे भोगनेको मैं तैयार हूँ, इतना कहनेपर भी ब्रह्मवृन्दने कहा कि आपका पाप इतना बलवान् है कि उसको देहान्तप्रायश्चित्तके विना दूसरी शिक्षा नहीं।

यह निर्णय सुनकर विट्ठलपन्तने कहा कि आपलोगोंकी आज्ञा शिरसा मान्य करता हूँ, ऐसा कहकर अपना मन निगृहीत कर स्त्री पुत्रादिकोंका मोह छोड ब्राह्मणोंको प्रणाम कर प्रयागक्षेत्रमें गये। वहां शान्तमनसे श्रीगङ्गायमुनाके प्रवाहमें उन्होंने स्वदेह विसर्जन किया, उनके साथ ही रुक्मिणीबाई भी प्रयागमें गई, जहां पतिराज गंगोदकमें कूदे थे, वहीं पतिका स्मरण करती हुई वह महासती भी अपत्योंका तथा स्वशरीरका मोह न रखकर कूद पड़ी, इस तरह दोनों अविनाश पदको प्राप्त हुए।

इस तरह पैठणका चमत्कार हो जाने पर निवृत्तिनाथ तीनोंको साथ लेकर आळंदीको आये,निवृत्तिनाथ कहने लगे कि जो निजस्वरूपमें लीन है उसके लिये व्रतबन्धादिकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे सत्यही निवृत्तिरूप थे। ज्ञानेश्वर महाराज वर्णाश्रमधर्मकी रक्षाके लिये अवतीर्ण हुए थे, अतः उन्होंने कहा कि ब्राह्मणोंसे अवश्य ही निर्णय लेवें क्या उत्तर देते हैं शास्त्रविरुद्ध आचरणसे पाप है, सिद्ध पुरुषको भी वेदबाह्य नहीं चलना चाहिये, दूसरोंको मार्ग दिखानेके लिये नियमसे चलना चाहिये। 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः' यह वचन है। सोपानजीका भी यही कहना था कि भक्तिमार्गमें जातिकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अपेक्षा नहीं, तथापि ज्ञानेश्वरके कहनेसे फिर पैठणमें निर्णयको निकले, क्योंकि आलंदीवालोंने कहा कि पैठणके ब्राह्मण शुद्धिपत्र दे देंगे तो संस्कारकार्य हो जायगा। वहां जाकर उनसे प्रश्न किया पैठणके ब्राह्मणोंने इन सबको आजन्म ब्रह्मचर्य पालनकर हरिनाम स्मरण करनेको कहा, यह बात सुनकर चारोंको बहुत ही आनन्द हुआ । उनका चेहरा देखकर सभास्थ कई लोगोंके हृदयमें आदर भाव उत्पन्न हुआ, और उनसे नामोंका अर्थ पूछा तो ऐसा अर्थ बतलाया कि सभी लोग बालकोंके भाषणमें अद्भुत शक्ति देखकर चकित हुए, इतनेमें किसीने कहा 'नाममें क्या रखा है' जिसको जो चाहे सो नाम देते हैं, देखो पखाल ढोनेवाले भैंसेका भी नाम 'नामदेव' है, ऐसा सुनते ही ज्ञानेश्वरने कहा कि सत्य ही उस भैंसेमें और मुझमें भेद नहीं, कारण वह भैंसा भी मेरा आत्मा है, उन सबोंको योग-सामर्थ्य तथा ज्ञानबलसे दोनोंका तादात्म्य दिखा दिया, उसकी परीक्षाके लिये भैंसेके पीठपर तीन दंडे लगाते ही सर्वात्मभावकी प्रतीतिसे ज्ञानेश्वरके पीठ पर तीन चिह्न दीख पड़े, और उनमेंसे रुधिर बहने लगा। इतनेसे ही लोग चुप हो गये, ज्ञानदेवजीने और भी चमत्कार दिखलाया, उन ब्राह्मणोंने कहा कि 'यदि तुमको अपना सब कुल पवित्र करना है तो इस भैंसेके मुखसे वेद कहलावो' ज्ञानेश्वरने ज्योंही भैंसेके शिरपर हाथ रखा तुरन्त वह चारो वेद कहने लगा, यह अपूर्व चमत्कार शके १२०९ के माघ शुक्ल ५ को पैठण गोदावरी तीरपर हुआ, ऐसे कई चमत्कार देखकर शीघ्र ही शुद्धिपत्र पैठणके ब्राह्मणोंने लिख दिया. और अपनी भूल क्षमा करायी, बाद ज्ञानेश्वरादि आळंदीको आ पहुँचे, वे चारो ब्रह्मचर्चा करते आनन्दमें समय बिताते रहे, ये लोग नेवासे, आपेगांव, आळन्दी इन तीनोंमें आते जाते रहे। इस तरह शके १२१२ के आभ्यन्तर ज्ञानेश्वरजी की १५ वर्षकी अवस्था हुई. नेवासमें रहते हुये सद्गुरु निवृत्तिनाथजीके सम्मुख इसी अवस्थामें ज्ञानेश्वर महाराजने गीता भाष्य कहना प्रारम्भ किया, उनकी अवस्था देखने जांय तो क्या, और ज्ञानेश्वरमें प्रकट हुआ ज्ञान कितने महत्त्वका ? साधारण मनुष्य ज्ञानेश्वरी ऐसा ग्रंथ सहस्रवर्षमें भी नहीं लिख सकता, इसके विषयमें बहुत वर्णन करना थोडा ही है, यह सर्व विषयोंका भण्डार, और सर्व ज्ञान देनेवाला अनुपम ग्रंथ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अतः इसमें कथित विषयोंका तात्पर्य साधारणतासे समझमें न आनेके कारण ग्रंथकर्ताने ही अठारह अध्यायके १४३५ से १४५५ तककी ओवियोंमें अष्टादशाध्यायोंका विवरण विषयानुक्रमसे किया है। पहिले अध्यायमें केवल शास्त्र विचारकी प्रस्तावना है, दूसरे अध्यायमें सांख्यशास्त्रका सिद्धान्त प्रदर्शित किया है, मोक्षप्राप्तिके लिये ज्ञानकी ही अपेक्षा यह सांख्यशास्त्र करता है इतना दूसरेमें सूचित किया है। तीसरेमें अज्ञानसे जकडे हुए लोगोंको मोक्षप्राप्तिके उपाय कौनसे हैं, इस विषयका आरंभ किया है, देहाभिमानके बंधको करनेवाले जो काम्य और निषिद्ध कर्म उनको छोडकर शास्त्रविहित नित्य नैमित्तिक कर्म नियमित रूपसे करना चाहिये. यह कर्मकाण्ड है, ऐसा भगवानने कहा है. यही नित्य नैमित्तिकादिक कर्मोंका आचरण अज्ञानरूपी बंधको तोडनेवाला कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर इस तरह दिया कि बद्धपुरुष मुमुक्षुकी सीढीपर पहुँचकर वह सब कर्म ब्रह्मार्पण बुद्धिसे करे, भगवानका ऐसा कहना है कि देह, वाणी, मनसे होनेवाले कर्मोंको ईश्वरार्पण बुद्धिसे करे. कर्मयोगके द्वारा होनेवाली ईश्वरभक्तिका वर्णन चौथे अध्यायके समाप्तिभागसे आरम्भ हुआ है, और विश्वरूपदर्शन एकादश अध्याय जहाँ समाप्त होता है वहांतक ' कर्मके द्वारा ईश्वरका भजन करना चाहिये ' यही तत्त्व बराबर कहा है, आठवें अध्यायमें स्पष्ट देवताकाण्डका प्रतिपादन है। चौथे अध्यायसे ग्यारहवें अध्याय तक जो आठ अध्याय हैं वे ही देवताकाण्ड हैं, यही उपासनाकाण्ड है. और इस ईश्वरभक्तिके कारण ईश्वरके प्रसादसे श्रीगुरुसंप्रदायानुरूप जो सरल सत्यज्ञान प्राप्त होता है वह ' अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् ' 'अमानित्वम्' इत्यादि श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक कहा है, अतः इस बारहवें अध्यायकी गणना ज्ञानकाण्डमें है. उस बारहवें अध्यायसे पन्द्रहवें अध्यायकी समाप्ति तक "ज्ञानका परिपक्वफल" यही निरूपणका विषय है, अतः "ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थम्" यहां तकके चार अध्यायोंमें ज्ञानकाण्डका ही अधिक विचार किया है. इसलिये यहां तीनोंकाण्डोंको कहनेवाली श्रुति 'ब्रह्मविद्या' गीतापद्यरूपी रत्नोंका आभूषण चढाकर अलंकृत हुई है, अस्तु, जो तीनकाण्डात्मक श्रुति जिस एक मुक्ति फलको देनेके लिये गर्जना करती है, और वह अवश्य ही प्राप्त कर लेना चाहिये, ऐसा कहती है। उस फलप्राप्तिके साधन ज्ञानसे दिनरात वैर करनेवाले जो अज्ञानसमुदाय उनका निरूपण सोलहवें अध्यायमें है, शास्त्रका सहायता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



लेकर इस शत्रु समुदायको जीतना चाहिये, यह सन्देशा सत्रहवें अध्यायमें है । इस रीतिसे पहिले अध्यायसे सत्रह अध्यायकी समाप्ति तक भगवान्ने वेद प्रतिपादित विषयोंका ही विवेचन किया है, और इन सब सत्रह अध्यायोंमें कहे हुए अर्थोंका तात्पर्य जिसमें लिया है, वह अठारहवाँ कलशाध्याय है। इस तरह सब अध्यायोंका विषय विवरण देखने पर यह सिद्ध होता है कि भगवद्गीता मूर्तिमान् वेद है. ज्ञानेश्वर महाराजने योगशास्त्रीय विषय, उपनिषत्प्रतिपादित विषय, वेदान्तशास्त्रनिरूपित सिद्धान्त बिषय, धर्म-शास्त्र कथित वर्णाश्रमादि विषय, अद्वैतसिद्धान्तज्ञान जाननेके अनधिकारी वर्गोंके लिये भक्ति मार्गसे भगवान्को प्राप्त करनेके उपाय-प्रदर्शन इत्यादि सभी विषयोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कर परोपकारबुद्धिसे संसार समुद्रसे तर जानेके लिये कृपाकर प्राणिमात्रके उद्धारार्थ भावार्थदीपिका बनायी। ज्ञानेश्वरीमें जो ज्ञानामृत रस भरा है उसे आस्वादन कर स्वजन्म सफल करनेके लिये सर्व साधारणको कटिबद्ध होकर इसका पठन, पाठन, मनन, करना उचित है।

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेसाध्यक्ष-श्रीमान् रावसाहब सेठ श्रीरङ्ग-नाथजी तथा आपके लघु भ्राता श्रीमान् सेठ श्रीनिवासजी आपकी आज्ञासे पं० हस्तिनूज ठाकुरोपाह्व लक्ष्मणशास्त्रीजीने ज्ञानदेवकृत भावार्थ-दीपिका-टीकाका हिन्दी भाषानुवाद सप्तदशाध्यायकी समाप्तितक किया। बाद आपके रुग्ण हो जानेके कारण कार्य करनेमें असमर्थ देखकर पूर्वोक्त प्रेसाध्यक्ष श्रीमानोंकी आज्ञासे अवशिष्ट अष्टादशाध्यायका हिन्दी भाषानुवाद पं० पौराणिकोपाख्य कृष्णशास्त्रीने पूर्ण किया। अनुवादकोंने "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-श्रीमान् रावसाहब सेठ श्रीरंगनाथजी तथा आपके छोटे भ्राता श्रीमान् सेठ श्रीनिवासजी आप दोनोंके लिये इस ग्रन्थका पुनर्मुद्रणादि सर्व-स्वत्वाधिकार सादर समर्पण किया है।

अतीन्द्रिय ब्रह्मसुखका अनुभव देनेवाला, अमर्याद ज्ञानका पूर्ण भण्डार, सगुण निर्गुण सभी विषयोंका मर्म समझानेवाला, अपूर्व-अद्भुत-अलौकिक शक्तियोंसे भरा हुआ यह जो ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ इसका उत्तरोत्तर सर्वत्र अधिक प्रचार होनेके लिये सर्व साधारण लोगोंपर स्नेह बुद्धिसे परमोदार, दया-धर्मशील, सनातनधर्म-संरक्षक "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेसाध्यक्ष तथा कल्याण नगरीस्थ 'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष श्रीमान् रावसाहब

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सेठ श्रीरंगनाथजी तथा श्रीमान् सेठ श्रीनिवासजी आप दोनों श्रीमानोंने निज व्ययसे मुमुक्षुजनोंके हितार्थ इसका मुद्रण किया, अतः संमान्य श्रीमानोंको हम सहस्रशः हार्दिक धन्यवाद देते हुए स्वाराध्य देवतासे प्रार्थना करते हैं कि श्रीमानोंको धन-धान्य सन्तान आदि सर्व वैभवोंसे परिपूर्ण कर दीर्घायु करे तथा परमात्मा श्रीवेंकटेश भगवान् निरंतर सुखी कर सब कार्योंमें विपुल यशस्विताका लाभ दे।

विशेष सूचना यह है कि–"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः" इस वचनसे देहधारी मनुष्यका यदि दोष हो तो उसपर विमर्शकर गुणैकपक्षपाती होकर स्नेहार्द्र दृष्टिसे इस ग्रंथको देखकर अनुवादककृत परिश्रमोंको सफल कर विद्वज्जन पाठकवृन्द अनुगृहीत करेंगे, ऐसी आशा करते हैं।

नम्र प्रार्थी–

कृष्णशास्त्री पौराणिक।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# ज्ञानेश्वरीकी अध्यायानुक्रमणिका ।


| अध्याय. | विषयोंके नाम. | श्लोकसंख्या. | ओवीसंख्या. | पृष्ठ. |
|---|---|---|---|---|
| १ | अर्जुन विषाद | ४७ | २७४ | १–२४ |
| २ | सांख्ययोग | ७२ | ३७५ | २५–५८ |
| ३ | कर्मयोग | ४३ | २७६ | ५९–८२ |
| ४ | ज्ञानकर्मसंन्यासयोग | ४२ | २२४ | ८३–१०१ |
| ५ | कर्मसंन्यासयोग | २९ | १८० | १०२–११८ |
| ६ | आत्मसंयमयोग | ४७ | ४९७ | ११९–१६३ |
| ७ | ज्ञानविज्ञानयोग | ३० | २१० | १६४–१८२ |
| ८ | अक्षरब्रह्मयोग | २८ | २७१ | १८३–२०८ |
| ९ | राजविद्याराजगुह्ययोग | ३४ | ५३५ | २०९–२५४ |
| १० | विभूतियोग | ४२ | ३३५ | २५५–२८२ |
| ११ | विश्वरूपदर्शनयोग | ५५ | ७०८ | २८३–३४६ |
| १२ | भक्तियोग | २० | २४७ | ३४७–३६५ |
| १३ | क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग | ३४ | ११७० | ३६६–४४४ |
| १४ | गुणत्रयविभागयोग | २७ | ४१५ | ४४५–४७७ |
| १५ | पुराणपुरुषोत्तमयोग | २० | ५९९ | ४७८–५२२ |
| १६ | दैवासुरसंपद्विभागयोग | २४ | ४७३ | ५२३–५६१ |
| १७ | श्रद्धात्रयविभागयोग | २८ | ४३३ | ५६२–५९७ |
| १८ | मोक्षसंन्यासयोग | ७८ | १८१० | ५९८–७०६ |


॥ इति ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

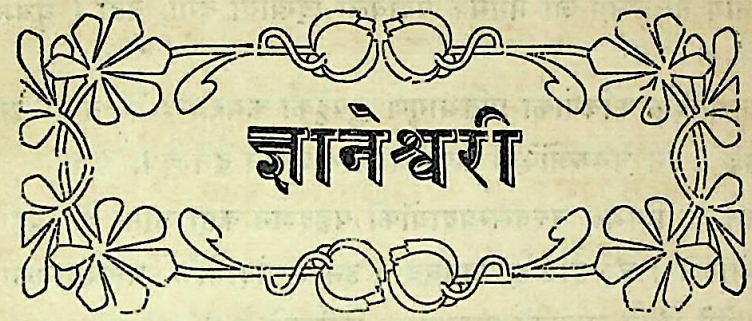


## मंगलाचरण ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥

हे ॐकार ! वेदोंसे ही प्रतिपादित हो सके, ऐसे हे आदिरूप ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ । स्वानुभवसे ही ज्ञान हो सके, ऐसे हे आत्मस्वरूप ! मैं तेरा जयजयकार करता हू ॥ १ ॥

हे देव ! जो गणेश, सकल अर्थ ग्रहण-शक्तिका प्रकाश है; वह तू है इसका-श्रीनिवृत्तिनाथका नम्र-शिष्य ( ज्ञानेश्वर ) प्रतिपादन कर रहा है। ( अतएव ) सावधान हो सुनिये ॥ २ ॥

यह सम्पूर्ण शब्द-ब्रह्म ( शब्दात्मक विश्व अर्थात् वेद ) तेरी मनोहर मूर्ति है; तथा ( उसमें ) अक्षररूप शरीर निर्दोषतः शोभायमान है ॥ ३ ॥

स्मृति, यही ( तेरी मूर्तिके ) अवयव हैं । काव्यपंक्ति, यही उन अवयवोंके हाव-भाव हैं, तथा अर्थ-सौन्दर्य उसके लावण्यकी विशेषता है ॥ ४ ॥

अठारह पुराण, यही ( उसके ) रत्नजड़ित अलङ्कार हैं । तत्त्वसिद्धान्त ( उसके ) रत्न हैं, तथा शब्दोंकी रचना ( पद-पद्धति ) कोन्दन ( उन रत्नोंका ) है ॥ ५ ॥

सभ्य एवम् सुन्दर काव्य-प्रबन्ध यही ( उसके ) रंगीन वस्त्र हैं, तथा उसका ( वस्त्रका ) साहित्य उज्ज्वल एवम् घना बुना हुआ है ॥ ६ ॥

सुनिये, काव्य-नाटकोंको कौतुकसे ( रसिक होकर ) देखने पर वह घुंघरू हैं, तथा वह ( घुंघरू ) अर्थरूपी ध्वनिकी रुमझुम करते हैं ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


और तत्त्वसिद्धान्तोंकी ( काव्य-नाटकोंकी ) बड़ी कुशलतासे छानबीन की जाय तो उसमें जो मार्मिक पदावली दिखायी देगी, वही ( घुंघरूपरके ) रत्न हैं ॥ ८ ॥

व्यासादिक कवियोंका प्रतिभागुण दुपट्टेका कमरबन्द है, तथा इस दुपट्टेके पल्ले ( इन घुंघरुओंके ) ऊपरकी ओर शोभा देते हैं ॥ ९ ॥

जिन छः विभिन्न तत्त्वसम्प्रदायोंको षड्दर्शन कहा जाता है, वही ( इस गणेशमूर्तिके ) छः हाथ हैं; अतएव ( इन सम्प्रदायोंके मतभेदानुसार ) इन छः हाथोंमें स्थित शस्त्रोंकी पारस्परिक विसंगति है ॥ १० ॥

तर्कशास्त्र परशु ( फरसा ) है, न्यायशास्त्र अंकुश है तथा वेदान्तशास्त्र मधुर रसपरिपूरित मोदक है ॥ ११ ॥

न्यायसूत्रके वृत्तिकारों द्वारा निर्दिष्ट किये हुए किन्तु स्वभावतः खण्डित हुए बौद्धमतका संकेत, वही एक हाथमें टूटा हुआ दांत है ॥ १२ ॥

इसी क्रमसे वर्णन किया जाय तो यह सहज ही प्रतीत होता है कि सत्कर्वाद (गणेशका) वरदहस्त है तथा धर्मप्रतिष्ठा (उसका) अभयहस्त है ॥ १३ ॥

महासुखके परमानन्दसे संगति बैठानेके लिये निर्मल सुविचार ही ( गणेशकी ) लम्बी सूण्ड ( सरल शुण्डादण्ड ) है ॥ १४ ॥

उसी प्रकार मतभेदोंका परिहार करनेवाला जो संवाद है, वही(गणेशका) अखण्डित एवम् शुभ्रवर्ण ( सफेद रंगका ) दांत है । उन्मेष ( अर्थात् ज्ञानतेजकी स्फूर्ति ) ही विघ्नराज गणेशके चंचल पलकधारी सूक्ष्मनेत्र हैं ॥ १५ ॥

उसी प्रकार, मुझे प्रतीत होता है कि पूर्वमीमांसा एवम् उत्तरमीमांसा ( गणेशके ) कर्णद्वय ( दो कान ) हैं, तथा इस कर्णद्वयपर मुनिरूपी भ्रमर ( गण्डस्थलसे प्रवाहित ) बोधरूपी मदरसका सेवन किया करते हैं ॥ १६ ॥

तत्त्वार्थरूप छत्तोंमें ( प्रवालोंमें ) झलकानेवाले द्वैत एवम् अद्वैत, यही दोनों गण्डस्थल ( निकुम्भ ) हैं । यह दोनों ( गण्डस्थल ) गणेशके गजमस्तकपर प्रायः सन्निकट होनेसे मिलकर एक-से हो गये हैं ॥ १७ ॥

इसके अतिरिक्त ज्ञानरूप मकरन्दसे ओतप्रोत दशों उपनिषद्, यही ( उसके ) मुकुटपर मधुर सुगंधित पुष्पोंके रूपमें अत्यधिक शोभायमान प्रतीत होते हैं ॥ १८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( ऐसे गणेशका ) अकार चरणद्वय ( दोनों चरण ), उकार विशाल उदर ( पेट ) तथा मकार मस्तकका महामण्डल है ॥ १९ ॥

इस अकार, उकार तथा मकारके मिलानेसे ही ॐ कार होता है । इसीमें ( ॐ कारमें ) सर्व विश्व–साहित्य ( शब्द–ब्रह्म ) समाविष्ट हो जाता है । ( अतएव ) मैं सद्गुरुकी कृपासे उस अखिल विश्वके मूलबीजको नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥

पश्चात्, अभिनव वाग्विलासिनी चातुर्य कलाकामिनी–विश्वमोहिनी–शारदाको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥

जिस सद्गुरुने मुझे इस संसार–सागरसे उबारा है वह ( सद्गुरु ) मेरे अन्तःकरणमें विद्यमान है । अतएव, मैं विवेकका अत्यधिक आदर करता हूँ ॥ २२ ॥

जिस प्रकार नेत्रोंमें दिव्याञ्जन लगानेसे दृष्टि दिव्य होकर उसे सर्वत्र भूमिगत प्रचण्ड महानिधि दिखायी देती है ॥ २३ ॥

अथवा जिस प्रकार चिन्तामणिकी प्राप्तिपर सर्व मनोरथ सदैव सिद्ध हो जाते हैं; उसी प्रकार ज्ञान–देवका कथन है कि उसने श्रीनिवृत्तिनाथके योगसे पूर्णत्व प्राप्त कर लिया है ॥ २४ ॥

अतएव, जिस प्रकार वृक्षके मूलपर पानी देनेसे ( वृक्षकी ) पत्तियोंका सिञ्चन हो जाता है; उसी प्रकार बुद्धिमानोंको गुरुकी भक्ति कर कृतकार्य होना चाहिये ॥ २५ ॥

अथवा जिस प्रकार समुद्रमें स्नान करनेसे त्रिभुवनके सभी तीर्थोंका स्नान हो जाता है या अमृतरसके सेवनमें सभी रसोंका अन्तर्भाव हो जाता है ॥ २६ ॥

उसी प्रकार जो मेरे मनोरथोंको सिद्ध कराते हैं उन श्रीगुरुको मैं बार-बार अभिवादन करता हूँ ॥ २७ ॥

अब एक उस गहन कथाका श्रवण कीजिये जो सर्व कला–विलासोंकी जन्मभूमि तथा विवेक-वृक्षका अपूर्व उपवन ( उद्यान ) है ॥ २८ ॥

अथवा यह वही कथा है जो सर्व सुखोंका मूलस्थान अर्थात् महासिद्धान्तों-का उद्गमस्थान या नवरस अमृतसे परिपूरित सागर है ॥ २९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथवा इसी एक कथामें प्रत्यक्ष परमगतिका ठिकाना, सर्व विद्याओंका आदिपीठ अथवा समस्त शास्त्रसमूहोंका निवासस्थान है ॥ ३० ॥

अथवा ( यह कथा ) सकल धर्मोंका अपना घर है, सज्जनोंके हृदयकी बात है तथा सरस्वती देवीकी ( शारदाकी ) सौन्दर्य-सम्पत्तिका भण्डार है ॥ ३१ ॥

अथवा ( यों कहिये ) व्यासकी विशाल बुद्धिका आविष्कार कर, इस कथाके रूपमें, प्रत्यक्ष वाणी देवी त्रिभुवनमें अवतीर्ण हुई है ॥ ३२ ॥

अतएव, यह कथा सर्व महाकाव्योंकी राज्ञी तथा ग्रन्थ-गौरवका (गुरुवर्ती-गौरव ) मूल है, तथा इसीसे ( कथासे ) शृङ्गारादि नवरसोंमें रसिकता ( मधुरता ) प्राप्त हुई है ॥ ३३ ॥

उसी प्रकार इस कथाके एक दूसरे लक्षणको भी श्रवण कीजिये । इस कथासे शब्द-वैभव शास्त्र-शुद्ध हो गया है, तथा आत्मबोधकी कोमलता द्विगुणित हो गयी है ॥ ३४ ॥

इस कथासे ही चातुर्यने बुद्धिमत्ताका लाभ प्राप्त किया, भक्तिरस स्वादिष्ट बन गया तथा सुखका सौभाग्य पुष्ट हो गया ॥ ३५ ॥

इसीसे माधुर्यको मधुरता, शृङ्गारको सुन्दरता तथा योग्यताको लोकप्रियताकी संगति प्राप्त हो सुशोभित है ॥ ३६ ॥

इस कथासे कलाओंको कलाज्ञानकी तथा पुण्यको अपूर्व वैभवकी प्राप्ति हुई । तदर्थ ही जनमेजय राजाके पापकृत्यपूर्ण दोषोंका सहजमें ही क्षालन हो गया ॥ ३७ ॥

क्षणभर और विचार कीजिये तो पता चलेगा कि इस कथासे ही रंगोंमें रंगनेका सामर्थ्य तथा गुणोंमें सद्गुणोंका तेज यथेष्टरूपमें भर दिया है ॥३८॥

सारांश, जिस प्रकार सूर्यके तेजसे त्रिभुवन उज्ज्वल होता है, उसी प्रकार व्यासकी बुद्धिसे व्याप्त होनेपर जगत् प्रकाशमान हुआ है ॥ ३९ ॥

अथवा जिस प्रकार उपजाऊ भूमिमें बीजारोपण करनेसे वह स्वभावतः फलता-फूलता है; उसी प्रकार ( इस ) भारतग्रन्थमें सम्पूर्ण विषय ( सर्व अर्थ ) सहजमेंही ( सुखाड़ले=सुखी होना ) सन्निहित है ॥ ४० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथवा जिस प्रकार नगरमें निवास करनेसे मनुष्य सहजतः बहुश्रुत तथा सभ्य हो जाता है; उसी प्रकार व्यासकी वाणीसे सकल वस्तुजात उज्ज्वल तथा स्पष्ट बन गयी है ॥ ४१ ॥

अथवा जिस प्रकार तारुण्यके आरम्भमें स्त्रियोंके अंग-अंगमें लावण्यकी अपूर्व शोभा प्रकट होती है ॥ ४२ ॥

अथवा जिस प्रकार वसन्तऋतुमें उद्यानके वृक्ष,लता, तथा कुंज हरियालीसे खिल उठते हैं ॥ ४३ ॥

अथवा जिस प्रकार गलाये हुए सोनेके टुकड़ोंमें कोई आकार वैशिष्ट्य नहीं रहा करता; किन्तु उसका अलंकार बनाये जानेपर उसकी शोभा प्रकट होती है ॥ ४४ ॥

उसी प्रकार व्यासकी वाणीका अलंकार परिधान करनेसे यथास्थित सौन्दर्य प्राप्त हो जाता है। मानो इस विचारको अनुलक्ष कर ही इतिहासने इस कथाका आश्रय लिया हो ॥ ४५ ॥

सकल पुराणोंने यथायोग्य सम्मानकी प्राप्तिके विचारसे संसारमें नम्र बनकर भारत ग्रन्थान्तर्गत आख्यानोंका स्थान प्राप्त किया है ॥ ४६ ॥

अतएव ( अवस्था यह है ) जो बात महाभारतमें नहीं है, वह त्रिभुवनमें भी कहीं नहीं है। ( फलतः ) यह कहावत प्रचलित हो गयी कि त्रिलोकमें ( सब ) व्यासका झूठन है। (' व्यासोच्छिष्टं जगत्त्रयम् ') ॥ ४७ ॥

इस प्रकार संसारमें परमार्थका मूलस्थानकी ( अर्थात् महाभारतकी ) यह सुरस कथा वैशंपायन मुनिने जनमेजय राजासे निवेदित की ॥ ४८ ॥

( अतएव ) ऐसी जो अद्वितीय, श्रेष्ठ, परमपुण्यशील, अप्रतिम एवम् परम-कल्याणदायी कथा है, उसे सावधान हो सुनिये ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्णने गीता प्रकरणमें अर्जुनसे जो ( बातें ) कही हैं, वह ( और कुछ न होकर ) भारत ग्रन्थरूपी कमलकी केसर है ॥ ५० ॥

अथवा व्यासकी बुद्धिने सर्व साहित्यका ( शब्द-ब्रह्मका ) मन्थन कर गीता-रूपी अवर्णनीय नवनीत ( मक्खन ) निकाला है ॥ ५१ ॥

पश्चात्, यह नवनीत ज्ञानकी अग्निपर तपाया गया, ( और ) परिपक्व होकर ( उससे ) सुगन्धित घृतकी प्राप्ति हुई ॥ ५२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जिसकी विरक्तोंको इच्छा हुआ करती है, जिसका सन्त प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करते हैं तथा जिसमें पूर्ण ब्रह्मज्ञानी 'अहमेव ब्रह्मास्मि' भावसे रममाण करते हैं ॥ ५३ ॥

जिसका भक्त श्रवण करते हैं, जिसे त्रिभुवनमें प्रथम वन्दन किया जाता है, जो भीष्मपर्वमें कथाक्रममें कही गयी है ॥ ५४ ॥

जिसका भगवद्गीता नाम है, जिसकी ब्रह्मा एवं शङ्कर स्तुति करते हैं तथा जिसकी सनकादिक सादर सेवा करते हैं ॥ ५५ ॥

जिस प्रकार शरदकालकी चन्द्रिकाके कोमल सुधाकणोंको, चकोरके बच्चे अन्तःकरणसे चुग लेते हैं ॥ ५६ ॥

उसी प्रकार श्रोताओंको उत्सुकतापूर्वक इस कथाका अनुभव प्राप्त करना चाहिये ॥ ५७ ॥

( कारण ) यह कथा सचमुच बिनाशब्दोंके कही जाती है, उसका इन्द्रियोंको पता लगे बिना अनुभव होता है तथा उसके शब्द कानमें सुनायी दिये बिना ( उसके ) तत्त्वसिद्धान्तका आकलन हो जाता है ॥ ५८ ॥

जिस प्रकार कमलदलको पता नहीं रहता तथा ( कमलदलके ) केसरको भ्रमर ले जाते हैं; वही इस ग्रंथके श्रावकोंकी अवस्था है ॥ ५९ ॥

( जिस प्रकार ) केवल कुमुदिनी स्थानान्तर किये बिना चन्द्रोदयको आलिङ्गन दे ( उसके ) प्रेमका अनुभव करना जानती है ॥ ६० ॥

( उसी प्रकार कुमिदिनीकी भांति ) जिसका अन्तःकरण गम्भीरतासे निश्चल है; वही इस गीता-प्रकरणको ( मर्मको ) समझता है ॥ ६१ ॥

अतएव, गीताके श्रवणके लिये अर्जुनकी पंक्तिमें बैठनेकी योग्यताके सन्त, कृपया इस कथाकी ओर ध्यान दें ॥ ६२ ॥

सच बात यह नहीं है कि मैंने अपने कथनमें सीमाका उल्लंघन किया है। हे श्रावको ! आपका अन्तःकरण गम्भीर एवम् उदार है। अतएव, मैं आपके चरणोंके सम्मुख विनीत भावसे निवेदन करता हूँ ॥ ६३ ॥

( जिस प्रकार ) यह माता-पिताका स्वभाव हुआ करता है कि वह अपने बच्चोंकी तोतली बोलीसे भी संतुष्ट हो जाते हैं ॥ ६४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



(उसी प्रकार) जब आपने मेरा स्वीकार किया है-मुझे अपना कहा है; तब ऐसी प्रार्थनाकी क्या आवश्यकता है कि आप मेरी त्रुटिपर ध्यान न दें ॥ ६५ ॥

पर हाँ, मुझसे एक दूसरा ही अपराध हो गया है! वह यह कि म गीता-का अर्थ स्पष्ट करनेका साहस कर रहा हूँ। अतएव, प्रार्थना है कि इस स्पष्टी-करणको सावधान हो श्रवण कीजिये ॥ ६६ ॥

इस कार्यकी कठिनाईके परिमाणका विचार न कर मेरे मनने ढिठायी की है; नहीं तो सूर्यके तेजके सम्मुख खद्योतकी क्या बिसात ॥ ६७ ॥

अथवा जिस प्रकार टिटहरी अपनी चोचमें पानी भरकर समुद्रकी थाह लगाती है; मैं भी उसी प्रकार अज्ञानसे इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ ॥ ६८ ॥

सुनिये, आकाशको आच्छादित करनेके लिये आकाशसे बड़ा होना चाहिये। अतएव, विचार कीजिये तो पता चलेगा कि मेरा अंगीकृत कार्य सम्भवके परेका है ॥ ६९ ॥

शङ्करको स्वयम् गीतार्थकी गहराईका पता लगाते देख पार्वती चमत्कृत हो शङ्करसे पूछने लगी थीं ॥ ७० ॥

तब शङ्करने कहा-"हे भवानी! तेरे स्वरूपकी भांतिही यह गीतातत्त्व अज्ञेय एवम् नित्य नूतन है" ॥ ७१ ॥

जिसकी निद्रावस्थाके खर्राटोंसे वेदार्थका विस्तार हुआ, उस सर्वेश्वर आदिनारायणने स्वतः गीतारहस्य बताया है ॥ ७२ ॥

ऐसी अवस्थामें जिस अमर्यादित काममें वेदोंकी बुद्धि भी कुण्ठित हो जाती है, वहां मेरे जैसे अल्प-मतिमन्दका कहाँ ठिकाना है? ॥ ७३ ॥

किस प्रकार इस अमर्यादित गीतातत्त्वको मर्यादित बनाया जाय? किस प्रकार इस प्रचण्ड अलौकिक तेजको उज्ज्वल किया जाय? तथा किस प्रकार इस मुट्ठीमें आकाशको समाविष्ट किया जाय? ॥ ७४ ॥

किन्तु इस अवस्थामें भी, ज्ञान-देवका कथन है कि जिसके आधार पर मैं अपनेको बलवान समझता हूँ वह श्रीगुरु निवृत्तिनाथ मेरे अनुकूल हैं ॥ ७५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


यद्यपि सामान्यतः मैं मूर्ख एवम् विवेकहीन हूँ तथापि ( मुझ पर ) सन्त-कृपाकी ज्योति तेजस्वी एवम् स्पष्ट है ॥ ७६ ॥

लोहेको सोना बनानेकी शक्ति केवल पारसमें ही है अथवा अमृतसे ही मृतात्माको जीवित बनानेका कार्य सिद्ध होता है ॥ ७७ ॥

सरस्वतीके प्रसन्न होनेसे मूक वाचाल ( गूंगा बोलने लगता है ) हो जाता है । प्रत्येक वस्तुमें उसकी अपनी सामर्थ्य है । इसी सामर्थ्यके अनुसार परिणामकी प्राप्तिपर आश्चर्य प्रकट करना अकारण है " ॥ ७८ ॥

जिसकी माता कामधेनु है, उसे अभाव क्यों हो ? अतएव, मैं इस ग्रन्थकी रचनाके लिये प्रस्तुत हुआ हूं ॥ ७९ ॥

अतएव, मेरी आपसे प्रार्थना है—"इसमें ( ग्रन्थमें ) कुछ अभाव हो तो उसकी पूर्ति कर लें तथा अधिक हो तो उसे प्रसंगोचित बना लें" ॥ ८० ॥

फिर भी आप ( इस ग्रन्थकी ओर ) ध्यान दें । कारण, जिस प्रकार नचानेवालेके हाथकी डोरीपर पुतलीका नाच निर्भर करता है; उसी प्रकार मेरी बात भी ( ग्रन्थ भी ) आपपर अवलम्बित है ॥ ८१ ॥

उसी प्रकार मैं साधु-सन्तोंका अनुगृहीत हूं—उनकी कृपाका आश्रित हूं । मैं सर्वतः उन्हींके हाथमें हूं । वे मुझे आपके योग्य बना लें ॥ ८२ ॥

तदनन्तर श्रीगुरुने कहा—"शान्त ! अब अधिक कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है । तू शीघ्रतासे अपने चित्तको ग्रन्थकी ओर आकर्षित कर" ॥ ८३ ॥

इस गुरुवचनसे निवृत्तिदास ज्ञानदेव प्रसन्न हो बोले—"चित्तको स्थिर कर शान्त भावसे सुनिये" ॥ ८४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

# ज्ञानेश्वरी

## प्रथम अध्याय १.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

पुत्रप्रेमसे मोहित धृतराष्ट्रने पूछा—हे सञ्जय ! मुझे कुरुक्षेत्रकी कथा सुनाओ ॥ ८५ ॥ जिसे ( जिस क्षेत्रको ) धर्मक्षेत्र अर्थात् धर्मका स्थान कहा जाता है वहां पाण्डव एवम् मेरे पुत्र युद्धके निमित्त पहुँचे हैं ॥ ८६ ॥ ( ऐसी अवस्थामें ) वह अभी तक परस्परमें कहां तक ( युद्धके विषयमें ) क्या कर चुके हैं ? यह ( समाचार ) मुझे शीघ्र सुनाओ ॥ ८७ ॥

संजय उवाच ।

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

तब संजयने कहा—" पाण्डवोंकी सेना क्षुब्ध हो उठी है । मानो महाप्रलयके समय कृतान्तने ( कालने ) मुँह पसारा हो ॥ ८८ ॥ जिस प्रकार क्षुब्ध कालकूट चहुँ ओर उबल पडे; उसी प्रकार पाण्डवोंकी प्रचण्ड सेना एक साथ ही उबल पडी है । कौन उसका प्रतिबन्ध कर सकेगा ? ॥ ८९ ॥ अथवा, जिस प्रकार धधकता वड़वानल प्रलयकी वायुसे अधिकाधिक धधक उठे, तथा समुद्रको सोखकर आकाशतक लपक पड़े ॥ ९० ॥ उसी प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( वह ) अनेक भांतिके व्यूहोंसे सुगठित अलोट ( दुर्धर ) सेना उस समय बड़ी ही भयानक दिखायी दी ॥ ९१ ॥ यह देख दुर्योधनने (उसे इस प्रकार) तुच्छ समझा जैसे सिंहको हाथियोंके समूहकी कोई चिन्ता ही न हो ॥९२॥ पश्चात्, द्रोणाचार्यके पास आकर कहने लगा–"देखिये, वह पाण्डवोंकी सेना कैसी उमड़ी आ रही है ? ॥ ९३ ॥ उनकी सेनाओंके विभिन्न व्यूह क्या हैं, मानो पर्वतोंके गढ चल–फिर रहे हों । इन व्यूहोंको बनानेवाला बुद्धिमान द्रुपदपुत्र ( धृष्टद्युम्न ) है ॥ ९४ ॥ जिसे आपने सिखाकर युद्धविद्यासे मंडित किया, उसी धृष्टद्युम्नने, देखिये–देखिये, किस प्रकार पाण्डवोंका सेनासागर विस्तीर्ण कर दिया है ॥ ९५ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

( इन सेनाओंमें ) ऐसे भी अलौकिक वीर हैं जो शस्त्रास्त्र–विद्यामें पारंगत तथा क्षात्रधर्मसे भी पूर्ण हैं ॥ ९६ ॥ जो बल, अभिमान एवम् पराक्रममें भीम–अर्जुनकी समताके हैं; उनके नाम ( इस ) अवसर पर सकौतुक सुनाऊंगा ॥ ९७ ॥ यहाँ महायोद्धा युयुधान, विराट तथा महारथी वीरश्रेष्ठ द्रुपद भी विद्यमान ( आया ) हैं ॥ ९८ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

यह देखिये; चेकितान, धृष्टकेतु, पराक्रमी काशीराज, नृपश्रेष्ठ उत्तमौजा तथा शैव्य ॥ ९९ ॥ कुन्तिभोज, युधामन्यु तथा इस ओर पुरुजित् इत्यादि राजाओंको भी देख लीजिये ॥ १०० ॥ दुर्योधनने कहा–हे द्रोण ! सुभद्राके अन्तःकरणको आनन्द देनेवाला तथा जो मानो दूसरा अर्जुन-सा है, उस अभिमन्युको देखिये ॥ १ ॥ ( इसके अतिरिक्त ) यह द्रौपदीके पुत्र तथा दूसरे सकल महारथी, जिनकी संख्याका कोई ठिकाना नहीं, यहां सम्मिलित हैं ॥ २ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

अब प्रसंगानुसार अपनी सेनाके अनुभवी दृढ़चेता-शूर वीरोंका वर्णन करता हूं, उसे भी सुनिये ॥३॥ जो आपकी भांति प्रथम श्रेणीके मुख्य वीर हैं ऐसे एक-दोका केवल दिग्दर्शनके लिये उल्लेख करता हूं ॥ ४ ॥ यह गंगा-पुत्र भीष्मपितामह जिनके प्रतापका तेज सूर्यतेजके सदृश है। यह वीर कर्ण तो शत्रुरूपी हाथीका संहारक सिंह ही है ॥ ५ ॥ ( यदि ) इनमेंसे एक भी मनमें ठान ले तो वह विश्वका संहार कर सकेगा । ( अजी ) क्या केवल कृपाचार्यही उसके लिये ( संहारके लिये ) यथेष्ट नहीं है? ॥६॥ यहाँ वीर विकर्ण है। उस ओर अश्वत्थामाको भी देख लीजिये। उससे ( तो ) प्रत्यक्ष सर्व विध्वंसक काल भी कांपता है ॥ ७ ॥ समितिंजय तथा सौमदत्ति इत्यादि ऐसे बहुतेरे वीर हैं जिनकी सामर्थ्यका पता लगाना ब्रह्मदेवके लिये भी कठिन है ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

जो शस्त्रविद्यामें प्रवीण हैं, मन्त्रविद्याके प्रत्यक्ष अवतार हैं तथा जिनसे विश्वमें सकल अस्त्र रूढ ( प्रसिद्ध ) हुए हैं ॥ ९ ॥ ( ऐसे ) ये प्रतिद्वन्द्वी-पूर्ण-प्रतापी मल्ल, ( फिर भी ) सब प्राणोंको हथेली पर लिये मेरा अनुकरण कर रहे हैं ॥ ११० ॥ जिस प्रकार पतिव्रताके हृदयको पतिके सिवा कोई दूसरा स्पर्श नहीं कर सकता; उसी प्रकार मैं इन महायोद्धाओंका भक्तिसर्वस्व बन गया हूँ ॥ ११ ॥ इन्हे हमारे कामके सम्मुख अपने प्राणोंका भी कोई मूल्य नहीं रहा है। ऐसे ये निःसीम तथा निर्दोष स्वामीनिष्ठ हैं ॥ १२ ॥ इन्हें युद्ध-कौशल्यकी जानकारी है, इन्होंने युद्धकलाकी कीर्ति जीवित रक्खी है; किंबहुना इन्हींसे क्षत्रियबानेका उगम हुआ है ॥ १३ ॥ ऐसे सर्वतोपरि वीर हमारे दलमें हैं। उनकी कहाँतक गिनती करूँ ? वे अनगिनत हैं ॥ १४ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

इसके सिवा, सर्वक्षत्रियश्रेष्ठ तथा जगत्का महाबीर पितामह भीष्मको सेनापतिसे सम्मानित किया गया है ॥ १५ ॥ तथा अब भीष्मके बलसे आच्छादित इस सेनाकी रचना दुर्गसदृश है, तथा इसके ( दुर्गरूपी सेनाके )

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सम्मुख त्रिभुवन भी कम ही प्रतीत हो रहा है ॥ १६ ॥ सभी ( लोग ) समुद्रको मूलतः अलंघ्य देखते ( मानते ) हैं, तथा उसमें ( इस अलंघ्य अवस्थामें ) जिस प्रकार वड़वानल सहायक हो ॥ १७ ॥ अथवा प्रलयकी अग्नि एवम् प्रचण्ड तूफानका संयोग हो, वही भीष्मके सेनाधिपति होनेकी अवस्था है ॥ १८ ॥ फिर भला हमारी सेनासे कौन भिड़ सकता है ? दूसरी ओर यह पाण्डव-सेना तो अत्यल्प प्रतीत हो रही है । और उसमें वह उद्दण्ड भीमसेन सेनानायक है ॥ १९ ॥ यह कह ( यहीं ) दुर्योधनने अपना भाषण समाप्त किया ॥ १२० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

पश्चात् उसने सर्व सैनिकोंसे कहा-"अब आप सब अपनी-अपनी सेनाओंको सुसज्जित कर प्रस्तुत हो जाँय ॥ २१ ॥ जिनके अधीन रणक्षेत्रपर जो अक्षौहिणी ( सेनाएँ ) हों, उन्हें उनकी रक्षाके लिये जिस प्रकार महारथियोंमें विभक्त किया गया हो ॥ २२ ॥ उसी प्रकार वे अपनी सेनाओंकी व्यवस्था करें, एवम् भीष्मकी आज्ञाका पालन करें ।" अनन्तर दुर्योधनने द्रोणाचार्यकी ओर मुड़कर कहा-"आप सब भी ॥ २३ ॥ मेरी भांति इनकी ( भीष्मकी ) भी रक्षा करें । कारण ( इन्हींपर ) सारी सेना निर्भर करती है ॥ २४ ॥

तस्य सञ्जनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

राजाकी ( दुर्योधनकी ) यह वाणी सुनकर सेनापति भीष्मको सन्तोष हुआ, तथा उसने सिंहकी भांति गर्जना ( रणघोष ) की ॥ २५ ॥ वह विलक्षण गर्जना दोनों सेनाओंमें गूंज उठी, तथा उसकी प्रतिध्वनि कहीं भी न समा सकी ॥ २६ ॥ उस प्रतिध्वनिसह वीरवृत्तिकी उबालसे श्रीमान् भीष्मने अपने अलौकिक शंखमें फूंक लगा दी ॥ २७ ॥ इस रणघोष तथा शंखघोषका मेल होनेपर त्रिभुवन बधिर हो गया । मानो आकाश टूट पड़ा हो ॥ ॥ २८ ॥ आकाश गडगडा उठा, समुद्र भीषणतासे हिलोरें लेने लगा तथा क्षुब्ध हुआ चराचर ( विश्व ) कांपने लगा ॥ २९ ॥ इस महाघोषकी गर्जनासे गिरि-गुफाएँ गूंज उठीं तथा साथही सेनाओंमें रणवाद्योंकी धूम मच गयी ॥ १३० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

भीषण तथा कर्कश असंख्य वाद्योंके बजते ही जहां बड़े बड़े दृढ़चेताओंको भी प्रलयकाल प्रतीत होने लगे ॥ ३१ ॥ वहां भीरुओंकी ( अवस्थाकी ) तो बातही न पूछिये ! ढ़ीले-अधूरे धीरोंकी तो लाही उड़ गयी ! किंबहुना काल भी इस प्रकार स्तब्ध हो गया कि वह अग्रसर ही न हो ॥ ३२ ॥ नौबतें, नगारे, मृदङ्गनाल, झांझ तथा रणभेरीके धूमधड़ाकेमें ( ही ) वीरोंके भीषण रणघोषका संयोग हो गया ॥ ३३ ॥ वह ( वीर ) आवेशसे भुजाओंपर ताल देने लगे तथा दांत किटकिटाकर चिल्लाने लगे । जहां मदोन्मत्त हाथी संभाले न जाँय ॥ ३४ ॥ वहाँ कतिपय (वीरोंका) खड़े-खड़े ही प्राणोत्क्रमण हो गया। बड़े शूर वीर कहानेवालोंके तो दांत बैठ गये । हैंकड़ीसे लड़नेकी प्रतीज्ञा कर अग्रसर होनेवाले ( वीर ) भी ठण्ढे पड़ गये ॥ ३५ ॥ ऐसे विलक्षण भीषण रणवाद्योंके धूमधड़ाकेको सुन ब्रह्मा ( भी ) भयभीत हो गया, तथा देवता कहने लगे कि 'कहीं आज प्रलयकाल तो नहीं आ गया' ॥ ३६ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

यह भीषण रणकल्लोल सुन स्वर्गकी यह( ऊपरलिखित ) अवस्था हो गयी। अब ( सुनिये ) पाण्डवसेनामें क्या हो रहा था ? ॥ ३७ ॥ जो रथ, मानो रणविजयका सार-सर्वस्व रहा अथवा महातेजका भण्डार रहा उसमें ( वेगमें ) गरूड़की जोड़ीके जैसे चार घोड़े जुते थे ॥ ३८ ॥ अथवा जो रथ उड़ते हुए मेरू पर्वतकी भांति शोभा दे रहा था, जिसके तेजसे दश दिशाएँ दीप्त हो गयी थीं ॥ ३९ ॥ तथा जिसपर वैकुण्ठका राणा नारायण स्वयम् अश्ववाहक ( सारथी ) रहा; ऐसे रथकी कहांतक प्रशंसा की जाय ॥ १४० ॥ उसकी ( रथकी ) पताकापर जो वानर था वह तो साक्षात् शंकर था, तथा अर्जुनके पास शार्ङ्गधर श्रीकृष्ण सार-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


थीके काम ( पद ) पर रहे ॥ ४१ ॥ अजी ! देखिये तो यह कैसा आश्चर्य ( है ) ! उस प्रभुका भक्तके प्रति, इतना अद्भुत प्रेम है कि ( उस प्रेमसे बद्ध हो ) वह अपने भक्त अर्जुनका प्रत्यक्ष सारथ्य कर रहे हैं ॥ ४२ ॥ अपने दासको-अर्जुनको पीठपर ले, कृष्ण स्वयं अग्रसर हैं, तथा उसने सहज लीलासे अपने पांच-जन्य शंखको बजा दिया ॥ ४३ ॥ ( इस सहज शंखध्वनिसे ) अत्यधिक गम्भीर महाघोष हुआ, तथा जिस प्रकार सूर्योदयके साथ ही नक्षत्र लुप्त हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार कौरवसेनामें जो रणवाद्योंका धूमधड़ाका गरज रहा था, वह सब लुप्त हो कहां जाता रहा उसका कोई पता ही न रहा ॥ ४५ ॥ उसी प्रकार धनुर्धर अर्जुनने अत्यन्त गम्भीर ध्वनिके देवदत्त शंखको बजा दिया ॥ ४६ ॥ यह दो भयंकर शंखनाद जब मिलकर एकजीव हो गये तो प्रतीत होने लगा कि कहीं ब्रह्माण्डके टुकड़े-टुकड़े तो नहीं हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ इतनेमें ही भीमसेन आवेशयुत हो महाप्रलयकी भांति उबल पड़ा, तथा उसने अपना पौंड्रनामका महाशंख बजा दिया ॥ ४८ ॥ वह शंखनाद प्रलयकालीन मेघकी भांति गम्भीरतः गड़गड़ाया, त्योंही राजा युद्धिष्ठिरने अपने अनन्तविजय नामके शंखसे घोष किया ॥ ४९॥ उसी प्रकार नकुलने सुघोष तथा सहदेवने मणिपुष्पक (नामके) शंख बजाये, तथा इनके नादसे प्रत्यक्ष यम तक गड़बड़ा गया ॥ १५० ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥
स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

चहां अनेक भूपति रहे । द्रुपद, द्रौपदीके पुत्र इत्यादि तथा महाबाहु काशीपतिको देखिये ॥ ५१ ॥ वह अर्जुनका पुत्र ( अभिमन्यु ), अपराजित सात्यकी, राजा धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डी ॥ ५२ ॥ ( उसी प्रकार ) विराट इत्यादि नृपति जो प्रधान शूर सेनाधिकारी थे, सभीने एक साथही शङ्खध्वनि की ॥ ५३ ॥ उस महाघोषके आतंकसे पृथ्वीका तौल सँभालनेवाले शेष तथा महाकूर्म भी इस प्रकार घबड़ा उठे कि पृथ्वीका भार वहन करनेसे मुकरने लगे ॥ ५४ ॥ उस समय तीनों लोक डिगमगाने लगे, मेरु मन्दरादि पर्वत

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



डोल खाने लगे तथा समुद्र तो कैलासतक हिलोरे लेने लगा ॥ ५५ ॥ प्रतीत होने लगा कि पृथ्वीतल उलट पड़ेगा तथा आकाशको ऐसा धक्का लगा कि नक्षत्रोंकी वर्षा होने लगी ॥ ५६ ॥ उस समय 'सृष्टि डूबी डूबी ! देवताओंका आश्रय जाता रहा ।' इस प्रकार सत्यलोकमें एक ही बावेला मच गया ॥ ॥ ५७ ॥ दिन रहते ही सूर्य अदृश्य हो गया, तथा प्रलयकालकी भांति त्रिभुवनमें हाहाकार मच गया ॥ ५८ ॥ तब ( कहीं ) आदिपुरुष श्रीकृष्णने विश्वके अन्त होनेकी आशंकासे, ( अन्त निवारणार्थ ) विस्मयसे क्षोभको शान्त किया ॥ ५९ ॥ अतएव, विश्वकी रक्षा हो गयी, अन्यथा कृष्ण आदिके शंखनादसे युगान्त हो जाता ॥ १६० ॥ यद्यपि उस घोषकी शान्ति कर दी गयी, तथापि उसकी प्रतिध्वनि अवशेष रही, उसीने कौरवोंकी सेनाका धुब्बा उडा दिया ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार हाथियोंके समूहमें सिंह प्रवेश कर सहजमें ही जिसको पाता उसीको चीरता-फाड़ता है, उसी प्रकार कौरवोंके हृदयोंको (अवशेष प्रतिध्वनिसे) विदीर्ण किया जा रहा था ॥ ६२ ॥ उस प्रतिध्वनिकी गर्जनासे, कतिपय तो खड़े खड़े—काठ हो गये तथा वह सब चीत्कारकर आपसमें ही कहने लगे—'सावधान ! सावधान !!' ॥ ६३ ॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥

फिर भी उनमें जो बल एवम् पराक्रमसे दृढ थे, ऐसे कुछ महारथी वीरोंने किसी प्रकार उन सेनाओंको पुनरपि संगठित किया ॥ ६४ ॥ पश्चात् वह सब एक हो द्विगुणित आवेशसे धावा बोल उठे । इन सब सेनाओंने त्रिभुवनको क्षुब्ध कर दिया ॥ ६५ ॥ प्रलयकालके अनावर मेघोंकी भांति धनुर्धरोंने सतत बाणवृष्टि आरम्भ कर दी ॥ ६६ ॥ यह देख अर्जुन सन्तुष्ट हुआ, तथा फिर उसने बडी उत्सुकतासे उस सेनापर दृष्टिपात किया ॥६७॥ तब उसकी दृष्टिको, युद्धके लिये प्रस्तुत, सर्व कौरव दिखायी दिये, तथा उस पाण्डुकुमारने ( अर्जुनने ) धीरेसे अपने धनुषको उठा लिया ॥ ६८ ॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

उस समय अर्जुनने कहा–"हे देव ! अब शीघ्र ही दोनों सेनाओंके मध्यमें रथको ले चलिये ॥ ६९ ॥ जिससे यहां झूंझनेके लिये उपस्थित इन सब शूर योद्धाओंको मैं पूर्णतः देख लूं ॥ १७० ॥ यहां तो सभी आये हैं, किन्तु मुझे यह तो देख लेना चाहिये कि मुझे किससे झूंझना है ॥ ७१ ॥ यह कौरव प्रायः आतुर एवम् दुष्टस्वभावके हैं । पराक्रमी न होते हुए भी युद्धका आविर्भाव दिखा रहे हैं ॥ ७२ ॥ इन्हें युद्धकी हवस है, किन्तु उनमें युद्धके लिये आवश्यक धैर्य्य नहीं है ।" यह ( वृत्तान्त ) राजाको ( धृतराष्ट्रको ) सुनाकर, ( पुनः ) संजय कहने लगा ॥ ७३ ॥

संजय उवाच ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥
तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६ ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥ २७ ॥

( राजन् ) सुनिये ! अर्जुनकी बात सुनते ही श्रीकृष्णने रथको अग्रसर किया, तथा उसे बीचमें ले जाकर खड़ा कर दिया ॥ ७४ ॥ जहाँ समीप ही भीष्म ( तथा ) द्रोण इत्यादि तथा अन्यान्य नृपति रहे ॥ ७५ ॥ वहीं रथको ठहराकर, अर्जुन बड़ी उत्सुकतासे समूची सेनाओंको देखने लगा ॥ ७६ ॥ पश्चात् उसने कहा–"देखिये–देखिये ! हे देव ! यह सब तो अपने ही गोत्रज एवम् गुरु हैं ! " यह सुन, क्षणमात्रके लिये श्रीकृष्ण सकपकाये ॥ ७७ ॥ भगवान् मन–ही–मन कहने लगे–"कौन कहे, इसके मन यह क्या समायी है ! फिर भी आश्चर्यकी ( कोई बात ) है अवश्य " ॥ ७८ ॥ इस प्रकार भावीको मनमें ही सोचते–विचारते, उस सर्वान्तरयामी भगवानने सब समझ लिया, तथापि वह उस समय मौन ही धरे रहे ॥ ७८ ॥ इधर अर्जुनकी दृष्टि अपने पितृ, पितामह, गुरु, भ्राता तथा मामा ( इत्यादि ) पर पड़ी ॥ १८० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्जुनने अपने इष्ट-मित्र तथा छोटे छोटे कुमार भी वहां देखे, इस मंडलीमें उसके शालक भी सम्मिलित थे ॥ ८१ ॥ सुहृज्जन, श्वशुर, अन्यान्य सगे-सम्बंधी, लडके तथा नातीतक उस भीडमें उस ( अर्जुन ) को दिखायी दिये ॥ ८२ ॥ हमने जिनपर उपकार किया था, या जिन्हें अनेक संकटोंसे बचाया था वे तो जाने दो, किन्तु अत्यन्त वृद्ध और छोटे बालक भी इस युद्धभूमिमें उपस्थित दिखायी देते हैं ! ॥ ८३ ॥ इस तरह दोनों सेनाओंमें अपनेही गोत्रके लोग युद्ध करनेके लिये खडे हैं ऐसा अर्जुनने देखते ही-॥ ८४ ॥

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

उस समय अर्जुनका मन बहुतही चञ्चल होगया, अर्थात् वह घबडा गया और उसके अन्तःकरणमें दया उत्पन्न होगई, दयाका प्रादुर्भाव होते ही वीरवृत्तिने अपना अपमान ( वीरके लिये दयाका होना ) समझकर ( यहां नहीं रहूंगी ) उसने अर्जुनको छोड दिया ॥ ८५ ॥ जैसा कि उत्तम कुलवाली, गुण-लावण्यवती स्वाभिमानी स्त्रियोंको अपने घरमें दूसरी स्त्रीका अधिकार कभी भी सहन नहीं होता है ( इसीलिये वीरवृत्ति अर्जुनको छोडगयी ) ॥ ८६ ॥ किंवा जिस प्रकार नयी स्त्रीके प्रेमवशमें कामी पुरुष अपनी सहचारिणी धर्मपत्नीको भूल भ्रमिष्ट हो भ्रष्टाचारी होता है ॥ ८७ ॥ अथवा तपस्वीको तपःसामर्थ्यसे वैभवकी प्राप्ति होनेपर उसकी बुद्धि भ्रमित होजानेसे जैसा वह पूर्व वैराग्यादि साधनोंको भूल जाता है ॥ ८८ ॥ अर्जुनको भी वैसाही हुआ, कारण उसने क्षात्रवृत्ति ( वीरत्व ) छोडकर करुणावृत्तिका अंगीकार किया ॥ ८९ ॥ क्या ही आश्चर्य है ! जैसा कोई मांत्रिक अपने मंत्रोच्चारमें भूलवश प्रमाद ( उलटा ) करे और वह मंत्र ही पिशाचरूप हो उसके पीछे लगजाय धनुर्धर अर्जुनकी भी वैसी अवस्था होगयी अर्थात् महामोहने उसे घेर लिया ॥ १९० ॥ इस कारण अर्जुनका स्वाभाविक धैर्य न रहा और उसका अन्तःकरण द्रवीभूत होगया, मानो सोमकान्त मणिको चन्द्रकिरणका स्पर्श होगया हो अर्थात् चंद्रकिरणोंसे सोमकांत जैसा द्रवीभूत होकर पिघल जाता है और उससे बिंदु टपकते हैं अर्जुनकी भी दयासे वही अवस्था हुई और वह खेदयुक्तवाणीसे भगवान्के प्रति कहने लगा-॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

अर्जुन बोला "हे देव ! हे श्रीकृष्ण ! मैंने यह सम्पूर्ण जनसमूह देखलिया, परन्तु इसमें सब हमारा ही गोत्रवर्ग भरा हुआ है ॥ ९३ ॥ ये सब युद्धके लिये सज्ज होरहे हैं यह तो ठीक है, किन्तु हमलोगोंको वैसा करना कैसा उचित होगा ? ॥ ९४ ॥ इस युद्धका नाम लेते ही मैं घबडा जाता हूं, मेरा धैर्य छूट जाता है और मन तथा बुद्धि भी अस्थिर हो रही है ॥९५॥ स्वयं आप देख सकते हैं कि मरा शरीर कांप रहा है, मुँह सूख गया और सब गात्र शिथिल हो रहे हैं ॥९६॥ सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच खडे हो रहे हैं, अन्तःकरणमें बहुत व्यथा उत्पन्न हो रही है और गाण्डीव धनुष्यको धारण करनेवाला मेरा हाथ भी ढीला पडजाता है ॥ ९७ ॥ देखिये, यह मेरा गाण्डीव धनुष मेरे हाथसे कैसा छूटा और कैसा गिरगया यह बात भी मूझे मालूम नहीं हुई ! इस मोहने मेरे हृदयकी ऐसी विलक्षण स्थिति कररखी है" ॥ ९८ ॥ आश्चर्यकी बात है कि जो गाण्डीव धनुष्य वज्रसे भी कठोर, असह्य और भीषण था, परंतु उससे भी बढकर इस स्नेहरूपी मोहने अपना सामर्थ्य बढाकर उस ( गाण्डीव ) को भी पराजित किया ॥ ९९ ॥ बडे खेदकी बात है कि, जिस ( अर्जुन ) ने युद्धमें शंकरको जीता, निवात कवच दैत्योंको निर्मूल किया उस अर्जुनको भी इस मोहने क्षणभरमें मोहित कर डाला ॥ २०० ॥ जिस प्रकार भ्रमर कोई भी सूखा कठोर काष्ठ ( लकडी) सहजहीमें छेद देता है, किन्तु कोमल कमल-कलीमें मोहवश बद्ध होजाता है ॥ १ ॥ फिर भी उसे मालूम होनेपर कि मैं इसमें मरजाऊंगा—तब भी वह उस कमलकलिकाका भेद नहीं करसकता, इसी प्रकार इस स्नेहवृत्तिको कोमलतासे ही कठोरता आजाती है ॥ २ ॥ यह वृत्ति—आदिनारायणकी माया है, इसे तो ब्रह्मदेव भी वश नहीं कर सकता, इसलिये हे राजन्, धृतराष्ट्र ! उस मोहने अर्जुनको भी भुलाकर वश किया अर्थात् उस मोहको अर्जुन जीत न सका । इस प्रकार संजयने धृतराष्ट्रसे कहा ॥ ३ ॥ फिर संजय कहने लगा—" हे राजन् आगे श्रवण कीजिये, तदनंतर वह अर्जुन अपने सब गोत्रजोंको देख युद्धविषयके अभिमानको छोडता भया ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यह तो कहा नहीं जा सकता, कि उसके मनमें दयाका संचार कैसे हुआ ? थोडी देर बाद उसने श्रीकृष्णसे कहा–'हे देव ! यहां हमारा रहना ठीक नहीं है'॥ ५ ॥ मेरा अन्तःकरण बहुत व्याकुल हो रहा है ' हम इन सबकी हत्या करें' इस बातकी कल्पनासे मेरे मुखसे ठीक ठीक शब्दोच्चार भी नहीं हो सकता ! ॥ ६ ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

जब हम कौरवोंको मारनेके लिये तत्पर हो रहे हैं तो धर्मादि पांडवोंको क्यों न मारें ? क्या यह दोनोंही हमारे गोत्रज नहीं हैं ? ॥ ७ ॥ इसलिये आग लग जाय ऐसे युद्धको ! मेरे समझमें नहीं आता कि, इस महाभयंकर पापके किये विना हमारा कुछ रुक रहा हो ? ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! अनेक तरहसे विचार करनेपर भी मुझे यही प्रतीत होता है कि, यहां युद्ध करना ही अनुचित होगा, अथवा युद्ध जिस तरहसे टाला जाय उस उपायको सोचनेसे ही कुछ हित साधनेकी संभावना होगी ॥ ९ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥

यदि हमारी विजय होगी तो भी मुझे उस विजयलक्ष्मीसे कुछ भी सरोकार नहीं है, क्योंकि इस ( हत्याकांड ) का चित्र देखनेपर, उस राज्यमें रहा ही क्या है ? ॥ २१० ॥ इन सबकी हत्या करनेके बाद जो सुखोपभोग भोगना, उनको भले ही आग क्यों न लगजाय " इस प्रकार अर्जुन बोला ॥११॥ अर्जुन फिर कहने लगा–" उन सुखोपभोगोंके न मिलनेसे कुछ भी क्यों न हो, वह सब सहा जासकेगा अथवा यह साध्य करनेके लिये प्राण बेंचने पडें तो भी स्वीकार्य है ॥ १२ ॥ किन्तु इनका वध करके राज्यसुखोपभोग करना मुझे स्वप्नमें भी संमत नहीं होगा ॥१३॥ यदि हम अपने बडे गुरुजनोंके अहितको ही चिन्तन करें तो फिर हमारे जन्म लेनेसे ही क्या ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और हम जीवित भी रहें तो किसके लिये रहें ॥ १४ ॥ हरेक परिवारको पुत्रप्राप्तिकी इच्छा रहती है ( अतएव ) तो क्या उस ( इच्छा ) का परिणाम यह होवे, कि हम अपने गोत्रजोंका समूल नाश कर देवें ? ॥ १५ ॥ यह बात मनमें लाना भी बडा कठिन है, कि हम इन्हें ( गोत्रजोंको ) मारनेको वज्रसरीखे कठोर होजांय ? नहीं नहीं ! बन सके उतना उनका हित करना ही हमारा काम है ॥ १६ ॥ हम लोगोंसे जो कुछ भी प्राप्त हो वह सब इनके भोगनेमें ही हमें लाभ है, इतना ही नहीं किन्तु इनके कार्यके लिये हमारा जीवित भी खर्च हो तो भी वह हमें हमारा कर्तव्य ही मानना चाहिये ॥१७॥ देखा जाय तो दश दिशाओंके राजाओंको जीतकर भी हमें अपने गोत्रजोंको सन्तुष्ट रखना चाहिये ॥ १८ ॥ और यहां तो वे ही सब हमारे गोत्रज उपस्थित होरहे हैं, किन्तु दैवगति कैसी उलटी है, कि ये सब अपने लडके,स्त्री, धन सब कुछ छोडकर अपना जीवित शस्त्रोंकी नोकपर लटकाकर आपसमें ही युद्ध करनेके लिये तैयार (सुसज्जित) हो रहे हैं ॥ १९ ॥ २२० ॥ फिर भला! मैं किस प्रकार इनकी हत्या करूं ? मैं किसपर शस्त्र चलाऊं ? अपने ही हृदयपर शस्त्र रखकर मैं कैसा आघात मारूं ? ॥२१॥ क्या आप नहीं जानते कि, ये कौन हैं ? ये वेही हैं जिन्होंने हमपर अनेक असाधारण उपकार किये हैं, ऐसे ये हमारे बडे भीष्म और द्रोण हैं ॥ २२ ॥ यहां तो शालक,श्वशुर, मातुल तथा ये सब भाई लडके और नाती सब हमारे ही आप्तजन हैं ॥ २३ ॥ हे जगन्निवास ! जरा शोचिये तो कि ये सब हमारे बहुत ही निकटवर्ती सगे–संबंधी हैं, इसलिये इनके बारेमें अनिष्ट शब्दका उच्चारना मानो जिह्वाको दूषित करना है ॥ २४ ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते ॥२५॥

इसलिये, भले ही ये लोग चाहे सौ अनिष्ट करें, अगर हमलोगोंको बिलकुल मार डालें, किन्तु हमें उनके घातकी कल्पना मनमें भी नहीं करनी चाहिये ॥ २५ ॥ यद्यपि त्रिभुवनका निष्कंटक राज्य भी मुझे प्राप्त होजाय तो भी इस प्रकारका अनुचित कार्य करनेके लिये मैं कभी उद्यत न होऊंगा ॥२६॥ यदि आज हम यहां ऐसा ( अनुचित ) कार्य करें तो कल किसके मनमें हमारे विषे आदर रहेगा ? हे सर्वविद्भगवन् ! आपही कहिये ! फिर हम आपकी ओर ऊंची गर्दन कर साहसके साथ आपको देख भी सकेंगे ? ॥ २७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

यदि मेरे हाथसे मेरे कुलका संहार हो जाय अर्थात् उस ( संहार ) का कर्ता मैं ही होऊं तो मैं पापका एक भवन ही बन जाऊंगा; फिर आप जो मुझे प्राप्त हैं फिर किसतरह प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२८॥ वंशके संहार करनेसे समस्त पाप मेरे शरीरमें लिपट जायंगे, मेरा शरीर पापमय होगा–फिर ऐसी अवस्थामें आप कहां और कैसे दीख सकते हैं ? ॥ २९ ॥ जिस प्रकार उपवनमें आगके धधकनेसे कोयल वहां एक क्षण भी ठहर नहीं सकता॥२३०॥ अथवा गन्दे सरोवरको देख चकोरपक्षी उसका स्वीकार नहीं करता; किन्तु उसका तिरस्कार कर त्याग देता है ॥ ३१॥ हे देवादिदेव ! उसी प्रकार यदि मेरा पुण्य नष्ट होकर मैं पापमय होजाऊं, तो आपकी कृपा या ममताकी छायासे मैं वंचित हो जाऊंगा अर्थात् आप कृपा नहीं करेंगे ॥ ३२ ॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

इस लिये, ऐसा निकृष्ट काम मैं नहीं करूंगा, इतना ही नहीं, किन्तु इस युद्धमें हाथमें शस्त्र भी नहीं पकडूंगा; कारण यह ( युद्ध ) अनेक भांतिसे सदोष प्रतीत हो रहा है ॥३३॥ हे भगवन् ! देखो, आपका ही जिसमें हमें वियोग होगा फिर इसमें रहा ही क्या ? हे देव ! आपके वियोगसे हमारे हृदय दुःखसे विदीर्ण हो जायँगे ॥ ३४ ॥ अत एव कौरव मारे जाँय और हम सुखोपभोग करें यह असम्भव बात है । ऐसा अर्जुनने कहा ॥ ३५ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

ये ( कौरव ) अभिमानसे मदांध हो, युद्धके लिये प्रवृत्त होरहे हैं; फिर भी हमें अपना हित तो समझना ही चाहिये ॥३६॥ हम अपने ही गोत्रजोंकी हत्या करें, यह काम हमसे कैसे हो ? क्या जानबूझकर कालकूट विष पान किया जाय ? ॥ ३७ ॥ देखो, रास्तेमें चलते-चलते यदि कोई सिंह एकाएक आ पडा, तो उसे टाल देनेमें ही लाभ है ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! बताइये कि प्रकाशको छोडकर अंधकारमय कूपमें गिरना कैसे हितकारी हो सकेगा ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


॥ ३९ ॥ अथवा संमुख आग दिखायी देनेपर भी यदि उसे टालकर न निकल जाँय तो क्षणभरमें ही वह आग लपटकर जला देगी ॥२४०॥ इसी प्रकारके ये सब दोष हमारे ऊपर आना चाहते हैं और समझ बूझकर भी हम ऐसे कार्योंको क्यों शिरपर लें ? " ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर फिर अर्जुनने कहा— "हे देव ! इधर जरा ध्यान दीजिये, यह पाप कैसा और कितना भयानक है सुनिये ॥ ४२ ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

जिस प्रकार लकडीपर लकडी घिसनेसे थोडीसी अग्नि निकलती है, किन्तु उसके धधकर भड़कनेसे सब लकडियोंको वह अग्नि जला देती है ॥ ४३ ॥ उसी प्रकार एक गोत्रजद्वारा परस्परमें आघात करनेपर उस वक्त उस महा-भयंकर पापसे सब कुलका संहार होजाता है ॥ ४४ ॥ इसलिये, इस पाप-कृत्यसे कुलधर्म नष्ट होगा और कुलमें अधर्म बढजायगा ॥ ४५ ॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

ऐसी स्थिति होनेपर भले बुरेकी कौन कहे, जिसे जो चाहे वही करे, कारण ( उस समय ) विधि-निषेधका ठिकाना ही नहीं रहता ॥४६॥ हाथका दीपक आपही गुमा देना और फिर अंधेरेमें विचरना, तो उसका परिणाम यही हुआ करता है कि, सीधे रास्तेपर भी वह लडखडाता गिरता है ॥४७॥ उसी प्रकार किसी भी कुलमें जब कुलक्षय होता है, उस समय मुख्य सनातन धर्माचार लुप्त होते हैं, फिर वहां पापाचारके विना और क्या दिखायी देगा? ॥४८॥ जब आचारबंधन और इंद्रियनिग्रह ( यम-नियमादि ) न रहें तब इन्द्रियें इतस्ततो दौडने लगती हैं और ऐसी अवस्थामें कुलीन स्त्रियें भी भ्रष्टाचारी होती हैं ॥ ४९ ॥ तथा श्रेष्ठ उत्तम ( धार्मिक ) जन अधर्मियोंमें संमिलित होते हैं और उच्चनीचवर्णोंका कुछ भी भेद न रहकर जाति-धर्म समूल नष्ट हो जाता है ॥ २५० ॥ जिस प्रकार चौरस्तेपरके बलिपर कौओंकी टोलियें टूट पडती हैं, उसी प्रकार ( कुलक्षय होनेपर ) कुलमें महापातकोंका संचार अनिर्बंध रीतिसे होता है ॥ ५१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


फिर उस शेष कुलको तथा कुलघाती ( दोनों ) को नरकवास प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इस प्रकार पापसे भ्रष्ट हुआ सब वंश-विस्तार देख ( उसके ) स्वर्गवासी पितृजन भी ( स्वर्गसे ) नीचे गिरजाते हैं ॥ ५३ ॥ कारण, जहां नित्य तथा नैमित्तिक दोनों धर्मकृत्योंका नाश होजाता है, वहां श्राद्धकर्म करके कौन किसे तिलाञ्जलि देना चाहता है ? ॥ ५४ ॥ भला ! फिर पितर क्या करसकते हैं, वे स्वर्गमें कैसे रह सकते हैं ? अर्थात् वे भी धीरे धीरे नरकमें अपने कुलमें आजाते हैं ॥ ५५ ॥ जैसा नाखूनके अग्रभागमें यदि सर्प दंश हो जाय तो भी उसका विष मस्तक ( ब्रह्माण्ड ) तक व्याप जाता है, उसी प्रकार यह कुलक्षय-पापदोष आद्य कुलपुरुषतक सब पूर्वजोंको व्यापता है ॥ ५६ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

हे भगवन् ! बडा खेद होता है ! देखिये इसमें और भी एक महापातक है, उसे भी आप सुनिये । इस ( पतित-कुलके ) दुष्टसंग-दोषसे दूसरे लोग भी आचारभ्रष्ट होजाते हैं ॥ ५७ ॥ जिस प्रकार अपने घरमें अकस्मात् लगी हुई अग्नि दूसरोंके घरोंको भी भस्मसात् कर देती है ॥ ५८ ॥ उसी प्रकार ऐसे कुलोंकी संगतिमें जो लोग विचरण करते हैं, वे सब लोग उस ( कुल ) के कारण पतित होजाते हैं ॥ ५९ ॥ इस प्रकार अनेक दोषोंसे ग्रसित वह कुल केवल नरकवासके ही योग्य रहता है" ॥ २६० ॥ अर्जुन फिर कहने लगा "इस प्रकार उस कुलके नरकवासी होनेपर फिर वहांसे कल्पान्तमें भी उसका छुटकारा होना संभव नहीं, ऐसी निरंतरकी अधोगति कुलघातसे ही होजाती है ॥ ६१ ॥ हे दयाघन भगवन् ! अनेक भांतिकी मेरी भली बुरी बातें सुनकर भी आपकी वृत्तिमें मुझे कुछ भी भेद प्रतीत हुआ मालूम नहीं होता, क्या आपने अपना हृदय वज्रका बनाया है ? हे दयानिधे ! मेरी बातपर जरा ध्यान तो दीजिये ॥६२॥ हे भगवन् ! जिस ( शरीर ) के लिये इस राज्यसुखोपभोगकी इच्छा की जाती है, वह ( शरीरादि ) भी क्षणभंगुर है, तब ऐसा दोष जानकर भी हम उसका तिरस्कार क्यों न करें ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


॥६३॥ देखिये तो सही कि सब गुरुजनोंको मारनेके निमित्तसे उनकी तरफ देखनेमें भी क्या हम लोगोंने थोडा पाप किया है ? अब भी कहिये ॥६४॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

अब इसके आगे जीवित रहनेकी अपेक्षा यह शस्त्र त्यागकर उन शत्रुओं के बाण सहन करना यही उचित है ॥ ६५ ॥ और इस तरह चलनेपर यदि मृत्यु आजाय तो भी ठीक है, किन्तु इस ( पूर्वोक्त ) महापातकोंका हमें नामतक नहीं चाहिये ॥ ६६ ॥

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादेऽर्जुनविषादयोगे नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

संजयने धृतराष्ट्रसे कहा—राजन् धृतराष्ट्र ! इस प्रकार युद्ध-भूमिपर अर्जुन बोला और उसके आगे जो कुछ हुआ वह सुनिये ॥ ६७ ॥ फिर वह ( अर्जुन ) अत्यन्त उद्वेगचित्त होगया, वह अपनेको संभालनेमें भी असमर्थ हो रहा । आखिर दुःखके वेगमें ही वह रथसे कूद पडा ॥ ६८ ॥ जिस प्रकार पदच्युत राजकुमार सर्व प्रकारसे निस्तेज हो जाता है, अथवा राहुग्रसित सूर्य जैसा प्रभाहीन होता है ॥ ६९ ॥ किंवा महासिद्धिका लोभान्वित तपस्वी सिद्धिके पंजेमें पडकर जैसा भ्रमित हो विषयवासना-पाशमें फँसके दुर्बल होता है ॥ २७० ॥ वही अवस्था ( क्षात्रवृत्तिहीन ) उस समय रथसे कूदते हुए अर्जुनकी हो रही थी ॥ ७१ ॥ फिर उसने धनुष-बाणका त्याग किया, उसकी आँखोंमेंसे अश्रुप्रवाह बहने लगा, हे राजन् ! उस समय ऐसी स्थिति अर्जुनकी होगयी," ऐसा संजयने कहा ॥ ७२ ॥ अब आगे वैकुंठाधिपति ( श्रीकृष्ण ) ने अर्जुनको दुःखान्वित देख किस प्रकार परमार्थ बोध किया ॥ ७३ ॥ उस कौतुकास्पद प्रसंगको श्रीनिवृत्ति-नाथके दास ज्ञानदेवजी आगेके अध्यायमें कहेंगे ॥ २७४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः ज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः भाषानुवादे
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## द्वितीयोऽध्यायः २.

सञ्जय उवाच ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदंतामिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

फिर संजयने धृतराष्ट्रसे कहा– राजन्, धृतराष्ट्र ! सुनिये, वहां ( युद्ध-भूमिमें ) शोकसे विह्वल हुआ अर्जुन रोने लगा ॥ १ ॥ और अपना सब वंश देख, उस अर्जुनका अन्तःकरण दयासे ऐसा पसीज गया ? ॥ २ ॥ कि जैसा नमक पानीके संसर्गसे पसीज कर उसका पानी होता है अथवा हवासे बादल बिखर जाता है, इसी प्रकार धैर्यशाली उस अर्जुनका हृदय पानी-पानी होगया ॥ ३ ॥ इसलिये, दयावृत्तिसे व्याप्त अर्जुन कीचडमें फँसे हुए राजहंसकी भाँति म्लानवदन दीखता था ॥ ४ ॥ इस प्रकार पाण्डुपुत्र– अर्जुनको विलक्षण भ्रमसे ग्रसा हुआ देख, श्री शार्ङ्गधर श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा–॥ ५ ॥

श्री भगवानुवाच ।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले–" हे अर्जुन ! सर्वप्रथम तुम इस बातका विचार करो कि, इस युद्धभूमिपर तुम्हारा ऐसा यह करना या बोलना उचित है क्या ? जरा विचार तो करो कि, तुम कौन हो और यहां क्या कर रहे हो ? ॥६॥ कहो, तुम्हें क्या हो रहा है ? किस बातकी तुम्हें कमी दिखायी दे रही है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


क्या कोई बात बिगडी दीखती है ? कहो, इस प्रकार शोकविवश क्यों हो रहे हो ? ॥७॥ तुम्हारे चित्तमें तो अनुचित बातके लिये कभी आश्रयही नहीं मिलता था, तुम कभी भी धीरज नहीं छोडते थे, तुम्हारा नाम सुनते ही अयश दिशाओंमें भागते थे ॥ ८ ॥ तुम तो शूरताके भाण्डार हो, क्षत्रियोंमें अगुआ हो, तुम्हारा पराक्रम त्रिभुवनमें उज्ज्वलित है ॥ ९ ॥ तुमने ही युद्धमें कैलासनाथ शंकरको जीता, निवात-कवच दैत्योंको नामशेष किया और तुम्हींने अपने विजयके धवल यशके गान गंधर्वोंसे गवाये ! ॥१०॥ देखो, अर्जुन ! तुम्हारे शुद्ध पराक्रमकी तुलनामें यह त्रैलोक्य भी छोटा दिखायी देता है ॥ ११ ॥ वही महापराक्रमी तुम आज यहां वीरवृत्तिको छोडकर सिर नीचा करके दुर्बलकी तरह रो रहे हो ! ॥ १२ ॥ मेरे प्यारे अर्जुन ! तुमही अपने मनसे पूछो, कि इस समय अर्जुन-जैसे वीरको क्या दयावृत्ति व्याप सकती है ? क्या कभी अंधकारने सूर्यको भी ग्रसा है ? ॥ १३ ॥ अथवा क्या कभी हवा भी बादलोंसे घबडा जाती है ? या अमृतको मृत्यु कभी बाधा करती है ? किंवा लकडी भी कभी अग्निको निगल जाती है ॥ १४ ॥ अथवा नमकसे पानी भी कभी घुल जाता है ? दूसरे विषके स्पर्शसे क्या कालकूट विष अपना प्रभाव भूल जाता है ? किंवा मेंडक कभी महासर्पको निगल जाता है ? ॥ १५ ॥ कहो अर्जुन ये चमत्कार भी तुमने कभी देखे हैं ? कभी शृगाल भी सिंहसे लड सकता है ? नहीं ! नहीं ! किन्तु तुम तो वेही सब चमत्कार यहां दिखा रहे हो ! ॥ १६ ॥ हे मेरे वीर अर्जुन ! देखो, अभी भी समय है, तू अपने मनको इस दीनताके वशीभूत न होने दो, और धीरज धारण करके शीघ्र सावधान हो जाओ ॥ १७ ॥ और इस मूर्खताको मिटा दो तथा धनुष-बाण हाथमें लेकर खडे हो जाओ, यह दीनता इस युद्धसमयमें किस कामकी ? ॥ १८ ॥ देखो अर्जुन ! तुम ज्ञाता हो, फिर विचार क्यों नहीं करते ? देखो तुमही कहो युद्धके लिये खडे होनेपर यह दीनता किस कामकी ? ॥ १९ ॥ देखो अर्जुन ! यह दयावृत्ति ( दीनता ) तुम्हारे पहले सब पराक्रमोंको धूलमें मिला देगी और परमार्थको भी चौपट करदेगी " श्रीकृष्णने अर्जुनको ऐसा कहा और—॥ २० ॥

क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

फिर भगवान् कहने लगे—" हे पृथापुत्र अर्जुन ! अतएव तुम शोक मत करो, पूर्ण धीरज धारण करके इस दुःखको हटादो ॥ २१ ॥ तुम्हारे लिये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


यह उचित नहीं है, आजतक प्राप्त की हुई कीर्ति इससे नष्ट हो जायगी, हे अर्जुन ! अभी भी इसका विचार करो ॥ २२ ॥ इस युद्धके अवसरमें कृपा करनेसे काम नहीं बनेगा, क्या ये सब इसी समय तुम्हारे सगे-सम्बन्धी हुए हैं ? ॥२३॥ क्या तुम इन्हें पहलेसे जानते नहीं थे ? या तुम इन्हें आजसेही पहचानने लगे हो ? फिर नाहक ऐसा अकांडतांडव क्यों कर रहे हो ? ॥ २४ ॥ अथवा कहो, यह आजका युद्ध तुम्हारे जीवनमें कोई नयी बात समझ रहे हो? हे अर्जुन ! यह बात तो तुम्हारे परस्परमें हमेशहः चल रही है! ॥ २५ ॥ फिर कहो, आजही ऐसी बातें क्यों ? और आजही तुम्हारे अंतः-करणमें क्यों दया आई ? मुझे तो यह आश्चर्यसा प्रतीत होता है, तो भी मैं फिर कहता हूं कि तुम भूल रहे हो, तुम्हारी ये बातें सचमुच समझके बाहरी हैं ॥ २६ ॥ इस मोहका परिणाम यही होगा, कि संपादित प्रतिष्ठा नष्ट होगी तथा इहलोकके साथ ही परलोकके लिये तुम्हें हाथ धो बैठना पडेगा ॥२७॥ सच्चे वीरके लिये युद्धमें हृदयकी दुर्बलताका सम्बंध ही न रखना चाहिये, इससे तो युद्धके अवसरपर क्षत्रियोंका पतन हो सकता है" ॥ २८ ॥ इस प्रकार दयालु भगवान्ने अर्जुनको बहुत कुछ समझाया । उसे सुन, पाण्डु-पुत्र अर्जुनने जो कुछ कहा उसे भी सुनिये—॥ २९ ॥

अर्जुन उवाच ।

कथं भीष्ममहं सँख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! "सर्व प्रथम आप इस युद्धका विचार कीजिये, फिर आपको इन बातोंका प्रयोजन ही नहीं रहेगा ॥३०॥ मैं कहताहूं कि यह युद्ध ही नहीं है किन्तु यह प्रमाद या पाप है, इसमें पडजानेसे हमें बडा ही दोष लगेगा, इससे देवताभंगका महापाप स्पष्ट ही हमारे सिरपर पडेगा ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! विचार कीजिये माता-पिता तो पूजनीय हैं, उन्हें सबप्रकार संतो-षित रखना चाहिये, इस नीतिको जानकर भी किस प्रकार अपने ही हाथोंसे उनकी हत्या की जाय ? ॥३२॥ हे मधुसूदन ! साधु-सन्तोंको हाथ जोडना नीति है, हो सके तो उनका पूजन-अर्चन भी किया जाना ठीक है, ऐसी स्थितिमें वह न करके केवल दुष्टवचनोंसे उनकी निन्दा करना उचित है क्या ? ॥ ३३ ॥ ऐसे ये हमारे गोत्रगुरु हमारे लिये सदैव पूजनीय रहे हैं, मुझे भीष्म तथा द्रोणाचार्यसे बहुत ही लाभ हुआ है ॥३४॥ हे भगवन् ! हम उनकी प्रत्यक्ष हत्या कैसी करें ? जिनसे कि स्वप्नमें भी हम वैर नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


कर सकते ! ॥ ३५ ॥ मुझे मालूम पडता है, इसकी अपेक्षा जीवित रहना ही ठीक नहीं, और हमलोग आज क्या कर रहे हैं, हमें हुआ ही क्या है, देखो, जिनसे हमें शिक्षा प्राप्त हुई, उन्हींकी हत्या करनेमें हमलोग बडप्पन समझने लगे हैं ॥३६॥ अहाहा ! द्रोणाचार्यजीने ही मुझ ( पार्थ ) को सिखाया, महत्त्व दिया, इन्हींसे मुझे धनुर्वेदकी प्राप्ति हुई है, क्या इन उपकारोंका बदला इनकी हत्या करनेमें ही है ? ॥३७॥ मुझे जिनके कृपाप्रसादके आशीर्वादकी प्राप्ति करनी चाहिये, क्या उन्हींके अनिष्टका मैं चिन्तन करूं ? क्या मैं भस्मासुर हूँ ? " इसप्रकार अर्जुन बोला—॥ ३८ ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्,
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव,
भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

अर्जुनने फिर कहा—हे" भगवन् ! सुनिये, समुद्र बडा गंभीर होता है, किन्तु वह ( गंभीरता भी ) दिखावटी रहती है, उसमें क्षोभ भी रहता है परन्तु द्रोणाचार्यके मनमें क्षोभ तो कभी होता ही नहीं, किन्तु उनकी गंभीरता अत्यन्त विलक्षण शान्त और श्रेष्ठ है ॥ ३९ ॥ देखो इस विस्तृत आकाशको भी नापा जा सकता है, किन्तु इन ( द्रोणाचार्य ) के विशाल हृदयका किसे थाह लगेगा ? ॥ ४० ॥ कदाचित् अमृत भी फीका मालूम पडेगा या कालवश वज्र टूट गिरेगा, परन्तु द्रोणाचार्यकी मनःशान्तिको प्रक्षुब्ध करना, केवल निष्फल प्रयत्न करना ही है ॥ ४१ ॥ यह ठीक ही कहा जाता है कि, स्नेह ( प्रेम ) माताका गुण रहता है, किन्तु द्रोणाचार्यजी तो स्नेहकी प्रत्यक्ष मूर्ति ही है ॥ ४२ ॥ ये ही करुणाके जन्मदाता हैं, ये ही सकल सद्गुणोंकी खानि हैं और येही अपार विद्यासागर हैं ॥ ४३ ॥ ऐसे ये हमारे महान् आचार्य गुरु हैं, हमपर जो उनकी कृपा है, उसका वर्णन तो हम करही नहीं सकते, फिर आपही कहिये ऐसे गुरुवर्य आचार्यके वधकी बात भी कभी सोची जा सकती है ? ॥ ४४ ॥ ऐसे श्रेष्ठ जनोंकी युद्धमें हत्या करके राज्यसुखोपभोगकी कल्पना करना, इससे प्राण चले जाँय तो भी परवाह नहीं ॥ ४५ ॥ सुखोपभोगकी बात तो दूर जाने दो, यह ( हत्याका ) विचार भी भयानक है, कि इन पूज्य आचार्योंकी अपेक्षा सुखोपभोगको अधिक महत्त्व दियाजाय इससे निस्स-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



न्देह भला तो यही है कि, भीख माँगकर निर्वाह करना ॥ ४६ ॥ यदि देशका त्याग करना पडे तो भी ठीक हो, या गिरिकन्दराओंमें भटकना पडे तो भी पर्वाह नहीं, परन्तु किसी अवस्थामें भी इनपर शस्त्र चलानेका कर्म हमसे कभी न होना चाहिये ॥ ४७ ॥ हे भगवन्! क्या ये नया पानी चढाये हुए तीक्ष्ण बाण इन आचार्योंपर छोडकर उनके लोहूसे भरे हुए सुखोपभोग हम लोगोंसे भोगे जांय? ॥ ४८ ॥ ऐसे भोगोंको आग लग जाये! क्या इन्ही भोगोंको सुख कहा जाय? नहीं, इससे कभी आनन्द नहीं होगा। और इसी लिये मुझे यह आपकी ( युद्धकी ) बात संमत नहीं है" ॥ ४९ ॥ उस समय इस प्रकार कहनेके बाद अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा ( कृपया ) ध्यान दीजिये, और विचार कीजिये। तब श्रीकृष्णने यद्यपि सब सुन लिया था, तथापि उन्हें ( श्रीकृष्णको ) वह नहीं जँचता था ॥ ५० ॥ यह देख, वह अर्जुन बहुत घबडा गया और फिर कहने लगा— 'क्यों भगवन्! मेरी बातोंपर आप ध्यान नहीं देते, इसका क्या कारण है? ॥ ५१ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेवहत्वा न जिजीविषामस्ते-
ऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

हे भगवन्! आप ध्यान दीजिये, मेरे मनमें जो था उसको हमने निःसंकोच विचारपूर्वक कह दिया है, इसपर यदि दूसरी बात कोई ( सत्यतत्त्व ) हो तो उसे आप जानें ॥ ५२ ॥ जिनसे हमारा वैर है, यह सुनते ही हमें यही उचित है कि प्राण छोडें, किन्तु वेही यहां युद्धके कारण हमारे सामने खडे हैं ॥ ५३ ॥ तब या तो हम इनकी हत्या करें या इन्हें यही छोड चले जायँ? मेरी समझमें तो यह बात नहीं आती कि इन दोनोंमें कौनसी ठीक बात है ॥ ५४ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इन बातोंका विचार करनेपर भी यह समझमें नहीं आता कि, हमें क्या करना चाहिये ? कारण मेरा मन मोहसे ग्रसित हो रहा है ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार अंधकारसे ग्रसित दृष्टिका तेज नष्ट होजाता है और फिर पासकी वस्तु भी उसे दिखायी नहीं देती ॥ ५६ ॥ हे देव ! उसी प्रकार मेरी अवस्था हो रही है, कारण मेरा यह मन भ्रांतिकी भँवरमें पड रहा है, और अपना हित किसमें है, यह भी मुझे अब ज्ञात नहीं होता है ॥ ५७ ॥ इस लिये हे भगवन् ! आपही विचार कर जो ठीक प्रतीत हो वही अच्छी बात कहिये, कारण हमारे सखा, हमारे सर्वस्व आप ही हैं ॥ ५८ ॥ हे भगवन् ! आप ही हमारे गुरु, बंधु, पिता, इष्ट देवता तथा संकटनिवारक हैं ॥५९॥ हे देव ! गुरु शिष्यकी कभी उपेक्षा नहीं करते, क्या कभी सागरने नदियों का तिरस्कार भी किया है ? ॥६०॥ अथवा माता यदि लापरवाहीसे पुत्रको छोड दे, तो वह कैसे जीवित रह सकता है ? अत एव आप सावधान होकर सुनिये ॥ ६१ ॥ ऊपर कहे हुए दृष्टान्तानुसार हमारे एक आपही हितू हैं, इसलिये मेरी बातें यदि आपको न जँचती हों ॥ ६२ ॥ तो हे पुरुषोत्तम, हे भगवन् ! जो उचित बात हो, जो धर्मकी मर्यादा उल्लंघन न कर हमारा हित करे, ऐसा तत्त्व हमें शीघ्र समझा दो ॥ ६३ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! ये समस्त बंशज यहां देखकर मेरे मनमें जो शोक उमड पडा है, वह आपके समझभरी वाणीके उपदेश विना किसी प्रकार दूर नहीं होगा ॥ ६४ ॥ समस्त पृथ्वीका राज्य प्राप्त होगा या प्रत्यक्ष स्वर्गका इन्द्रपद मिल जायगा तो भी इस मेरे मनका दुःख नहीं मिटेगा ॥ ६५ ॥ जिस प्रकार भुने हुए बीजको उत्तम भूमिमें बोकर यथेष्ट पानीसे सिंचन भी किया जाय, तो भी जैसे उसमेंसे अंकुर नहीं निकलता ॥ ६६ ॥ अथवा आयुके समाप्त होनेपर औषधोपचार जैसा व्यर्थ होता है, कोई भी औषधी काम नहीं देती केवल अमृतवल्ली ही काम देती है ॥ ६७ ॥ तैसेही राज्यभोग-समृद्धिसे मेरी बुद्धिका संजीवन नहीं होगा, उसके पुनरुज्जीवनके लिये हे दयासागर भगवन् ! आपकी कृपाकी ही आवश्यकता है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार क्षण.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मात्र भ्रांतिसे मुक्त हुआ अर्जुन बोल रहा था कि, फिर उसे मोहने ग्रस लिया और वह पहली लहरपर ही आपहुँचा ॥६९॥ मैं समझता हूं वह भ्रांति-की लहर नहीं थी किन्तु वह कोई दूसरी ही बात उपस्थित हुई थी, वह अर्जुन महामोहरूपी काल-सर्पसे ग्रसा हुआ था ॥ ७० ॥ और उसके करुणा-रसपूर्ण अत्यंत कोमल हृदयमें यह सर्पदंश होनेसे वे विषवेगकी लहरें कहीं ठहरती ही नहीं थीं ॥ ७१ ॥ यह सब देख, केवल दृष्टिपातसे विष उतारने-वाले महान् श्रीकृष्णरूपी मांत्रिक उस अर्जुनकी रक्षार्थ दौडते आ पडे ॥७२॥ इसी प्रकार व्याकुल पाण्डु-कुमारके समीप ही श्रीकृष्ण शोभायमान हो रहे थे और वे अपनी कृपासे उसका रक्षण करेंगे ॥ ७३ ॥ इसीलिये यह सब प्रसंग ध्यानमें लेकर ही "अर्जुनको महामोहरूपी कालने ग्रसा था" ऐसा मैंने वर्णन किया है ॥ ७४ ॥ उस समय मेघोंके आजानेसे जैसा सूर्य ढँका जाता है, उस प्रकार वह अर्जुन भ्रमसे ग्रसित हुआ था ॥ ७५ ॥ अथवा ग्रीष्मकाल ( गरमीके दिनों ) में पर्वतको आग लगनेसे जैसा वह भुनजाय उसी प्रकार दुःखसे अर्जुन जर्जर हो रहा था ॥ ७६ ॥ अत एव उसे शांत करनेके लिये कृपामृतसे भरा हुआ श्रीकृष्णरूपी घनश्याम महामेघ अर्जुनकी तरफ दौडता आया ॥ ७७ ॥ इस मेघको शोभा देनेवाली श्रीकृष्णकी दंतपंक्ति ही उस ( मेघ ) की चमकती बिजली थी और गंभीर वाणी उसकी गर्जनाकी चालें प्रतीत होती थीं ॥ ७८ ॥ अब यह करुणारूपी मेघ ( श्रीकृष्ण ) किस प्रकार उदारतासे करुणाकी वर्षा करेगा तथा इस वर्षासे अर्जुनरूपी भुना हुआ पर्वत किसप्रकार शांत होगा और उसमेंसे ज्ञानके नवांकुर किस प्रकार अंकुरित होंगे ॥ ७९ ॥ यह सब कथा-वर्णन स्वस्थान्तःकरणसे श्रवण कीजिये, यही श्रीनिवृत्तिनाथके दास ज्ञानदेव कह रहे हैं ॥ ८० ॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

संजयने धृतराष्ट्रसे कहा—कि, " वह अर्जुन फिर शोकसे व्याकुल हो कहने लगा ॥ ८१ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! मेरी बात और एकबार सुनिये मुझे फिर समझानेमें आप श्रम न करें; कारण, मैं यह दृढतासे कहताहूं कि कुछ भी हो, अब मैं युद्ध न करूंगा " ॥ ८२ ॥ इस प्रकार घमंडसे कहकर वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


( अर्जुन ) निस्तब्ध हो रहा, उसकी इस प्रकार अवस्था देख श्रीकृष्णजी भी आश्चर्यचकित हो गये ॥ ८३ ॥ और–

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

तब भगवान् मनहीमन कहने लगे, " समझमें नहीं आता कि इस समय इसने क्या सोचा है; इसे क्या कियाजाय, कुछ भी समझमें नहीं आता ॥ ८४ ॥ इसे कैसे समझा जाय ? यह किस तरह पहला छुटा हुआ धीरज धारण करेगा " इस प्रकार जैसे कोई पंचाक्षरी मांत्रिक पिशाच लगी हुई भूतबाधासे पीडितके बारेमें विशेष उपाय सोचता है, ॥ ८५ ॥ अथवा रोगको असाध्य देख हताश होनेपर जैसा वैद्य अमृततुल्य गुणकारी औषधीकी योजना करता है ॥ ८६ ॥ तद्वत् भगवान् श्रीकृष्ण उन दोनों सेनाओंके बीच खडे होकर मनहीमन विचार करने लगे; कि, अर्जुन इस मोहको कैसे उडा देगा ॥ ८७ ॥ इस प्रकार विचार कर और योजनाका निश्चय कर भगवान् गुस्सेसे ही बातें करने लगे । जैसे कि माताके हृदयमें गुस्सेके साथ प्रेम भी ढँका रहता है ॥ ८८ ॥ अथवा औषधीकी कटुतामें जैसे गुणकारी अमृत भरा रहता हो, जो कि प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देता, किन्तु परिणामसे प्रभाव प्रकट होता है, ॥ ८९ ॥ उसी प्रकार प्रत्यक्षमें तो क्रोध-भरी, परन्तु अन्तरमें अमृतसे ओतप्रोत परिपूर्ण वाणीसे हृषीकेश ( श्रीकृष्ण ) कहने लगे ॥ ९० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥

भगवान्ने अर्जुनसे कहा–हे पार्थ ! तुम यह बीचहीमें जो कुछ कर रहे हो, उसे देख मुझे बडा आश्चर्य हो रहा है ॥९१॥ यद्यपि तुम अपनेको ज्ञानी समझते हो, तथापि अज्ञानको तो नहीं छोडते और सिखाया जाय तो तुम बडी बडी नीतिकी बातें कहने लगते हो ॥९२॥ जैसे कि पहले तो जन्मान्ध, फिर वह पागल होजाय तब जैसा वह इधर उधर बेछूट भागता फिरता है, उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धिमत्ता प्रतीत हो रही है ॥ ९३ ॥ तुम्हें अपने स्वरूपका तो पताही नहीं और कौरवोंके लिये शोक कर रहे हो ! यही कारण है कि मैं ऐसी तेरी बातें देख बारबार आश्चर्यान्वित होजाता हूं ॥९४॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे अर्जुन ! तुमही कहो कि यह स्थिर स्थावर त्रिभुवन तुम्हारे ही भरोसे धरा रहाहै ? और जो कहते हैं कि"यह विश्वकी रचना अनादि है"वह सब झूठा ही है ? ॥ ९५ ॥ "इस संसारमें ऐसी कोई एक शक्ति है, कि जिससे सब भूतमात्र उत्पन्न होते हैं" इस प्रकार जो संसारमें कहा जाता है, तुम्हारे मतसे वह मिथ्या ही है ? ॥ ९६ ॥ क्या इस विश्वकी उत्पत्ति तथा नाश तुम्हारे ही हाथमें है ? ( कि तुम उत्पन्न करो तो उत्पन्न होगा और तुम नाश करो तो वह जग नाश पावेगा ) भाई, अर्जुन ! इसका विचार तो करो ॥ ९७ ॥ तुम्हें भ्रमसे अहंकार उत्पन्न हुआ है और उस भ्रमसे ही इनकी हत्या करना तुम्हें अच्छा नहीं लगता, फिर तुम कह सकते हो, कि तुम्हारे न मारनेपर ये चिरंजीव रह सकेंगे ? कहो इसका जबाब दो ॥ ९८ ॥ अथवा तुम अकेलेही मारनेवाले और यह सब संसार मरनेवाला, क्या इस प्रकार की भ्रामक कल्पना तेरे मनमें आयी है ? ॥ ९९ ॥ देखो पार्थ ! यह विश्व अनादि सिद्ध है, नियमपूर्वक इसकी उत्पत्ति तथा नाश होजाता है, फिर इसके लिये तुम शोक क्यों करते हो ? ॥ १०० ॥ मूर्खतासे तुम अजान बन जाते हो, नाहक चिन्ता कर रहे हो, इतना ही नहीं, किन्तु हमें ही ज्ञान नीतिके पाठ पढा रहे हो ! ॥ १ ॥ हे अर्जुन ! सुनो, जो लोग विचारशील हैं, वे इन दोनों ( उत्पत्ति–नाश ) को केवल भ्रम समझकर, इनके विषे शोक नहीं करते हैं ॥ २ ॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

देखो अर्जुन ! मैं कहता हूं उसे तुम लक्षपूर्वक सुनो, यहां मैं, तुम तथा ये सब उपस्थित राजालोग इत्यादि सब जैसे हैं 'यों ही बने रहेंगे या नाशकू पावेंगे' इन दोनों भ्रांतिनिष्ठ कल्पनाओंको छोड देनेसे दोनों( उत्पत्ति नाश ) मिथ्या ही हैं यह सिद्ध होगा ॥ ३ ॥ ४ ॥ उत्पत्ति तथा नाशकी भावना केवल मायाका चमत्कार है, वस्तुतः मूलभूत वस्तु ( परब्रह्म ) अविनाशी ही है ॥ ५ ॥ यह देखो, कि हवासे पानी हिलता है और उससे पानीके तरंग बन जाते हैं; फिर तुमही कहो कि वहां किसने किसकी उत्पत्ति की ? ॥६॥ उसी प्रकार हवा बन्द होते ही जल शान्त होजाता है अर्थात् तरंग नष्ट हो जाते हैं, वहां किसका नाश हुआ ? विचारो तो सही ॥ ७ ॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! और सुनो, शरीर एक ही होता है, किन्तु अवस्थानुसार उसके भेद प्रकट होते हैं, वह प्रत्यक्ष दृष्टान्तसे तुम्हारे समझमें आवेगा ॥ ८ ॥ इस ( शरीर ) में बाल्यावस्था दिखायी देती है, फिर तारुण्यकी प्राप्ति होनेपर बालपना जाता है, परंतु किसी भी अवस्थाके साथ शरीरका नाश नहीं होता है ॥ ९ ॥ उसी प्रकार चैतन्य वस्तुके विषयमें शरीरका रूपान्तर होता है, अर्थात् एक शरीरका नाश हो, दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है; यह बात जो समझता है उसे न मोह उत्पन्न होता है और वह दुःखी भी नहीं होता है ॥ ११० ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

हे पार्थ ! यह बात ( तत्त्व ) समझमें क्यों नहीं आती ? इसका कारण यह है कि, मनुष्य इन्द्रियोंके अधीन हो जाता है, और इंद्रियोंका उसपर आधिपत्य होतेही वह भ्रमित हो जाता है ॥ ११ ॥ इंद्रियें विषयोंका सेवन करती हैं और उसीसे हर्ष-शोकादि विकारोंकी उत्पत्ति होती है, और उन विकारोंका प्रभाव अन्तःकरणपर पडजाता है ॥१२॥ इसलिये इन विषयोंमें निश्चितता नहीं रहती अतः वे कभी सुखमय तथा कभी दुःखमय प्रतीत होते हैं ॥ १३ ॥ देखो अर्जुन! निंदा और स्तुति दोनों ही 'शब्द-स्वरूप' हैं, लेकिन् इनके श्रवणसे द्वेष तथा आनंद ये भिन्न विकार उत्पन्न होते हैं ॥१४॥ मृदु ( नरम ) तथा कठोर ये दोनों 'स्पर्श-रूप' हैं, किन्तु त्वक् ( त्वचा ) इंद्रियके साथ संयोग होनेपर सुख और दुःखके अनुभव दिखाती है ॥१५॥ भीषण ( भयंकर ) और सुन्दर ये दोनों 'रूप' वर्गमें आते हैं, किन्तु नेत्रोंके द्वारा देखनेपर सुख या दुःखकी कल्पना उत्पन्न हो जाती है ॥ १६ ॥ सुगंध अथवा दुर्गंध दोनों 'गंधरूप' ही हैं, किन्तु नासिकासे संसर्ग होनेपर ( सूंघनेपर ) ही सुख-दुःख (सुगंध या दुर्गंध) का अनुभव आता है ॥१७॥ इसी प्रकार 'रस' के भी दो स्वरूप हैं, इससे रसका रसनेंद्रियके साथ संयोग होनेपर प्रीति और त्रासकी प्रतीति होती है एवंच विषयोंका सेवन ही भ्रष्टताका कारण है, यह सिद्ध भया ॥१८॥ हे अर्जुन ! ध्यान दो, इंद्रियाधीन हो जानेसे शीत-उष्ण ( सरदी-गरमी ) की बाधा होती है अर्थात् मनुष्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्वयंही सुखदुःखके जालमें आजाता है ॥ १९ ॥ देखो,इन इन्द्रियोंका स्वाभाविकधर्म ही यह है कि, विषयोंको छोड उन्हें दूसरा कुछ अच्छा ही नहीं लगता ॥ १२० ॥ और ये विषय भी कैसे हैं कि मृगजल या स्वप्नके हाथीसदृश अनित्य हैं ॥ २१ ॥ इसलिये हे धनुर्धर, पार्थ ! इन ( विषयों ) की तुम अवहेलना करो, इनका कभी भी संसर्ग न होने दो ॥ २२ ॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

देखो, अर्जुन ! जो मनुष्य इन विषयोंसे अलिप्त रहता है अर्थात् इनका स्पर्श भी नहीं करता, उसपर इनका कभी वश नहीं चलता अर्थात् उसे सुखदुःख स्पर्श भी नहीं करते तथा उसे गर्भवासका कष्ट भी नहीं होता है ॥ २३ ॥ हे पार्थ ! जो मनुष्य इन्द्रियसुखसे परे ( पार ) रहता है, उस ( पुरुष ) को सब प्रकार नित्यस्वरूप समझना चाहिये ॥ २४ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! सुनो, अब और एक बात तुमसे कहता हूं,वह(बात)विचारवान् लोग सभी जानते हैं ॥ २५ ॥ इस मायामय विश्वमें चैतन्य अर्थात् एक सर्वान्तर्यामी गूढ तत्त्व है; उसे तत्त्वज्ञ संतलोग भी जानते हैं, कारण वे चैतन्यको ही सद्वस्तु मानते हैं ॥ २६ ॥ जैसे–पानीमें दूध मिलानेसे वह सब एकरस होजाता है, लेकिन् राजहंस जैसे दूधको छाँटकर लेता हुआ पानीको अलग निकाल देता है ॥ २७ ॥ अथवा चतुरलोग जैसे हीनकस ( अशुद्ध ) सुवर्णको अग्निमें तपाकर उसके दोषोंको निकाल सच्चा (शुद्ध) सोना निकालते हैं ॥२८॥ किंवा ज्ञानसामर्थ्यसे दहीको मथकर उससे माखन निकालते हैं ॥ २९ ॥ अथवा भूसेसहित धानको पखारनेसे हलका भूसा उडाकर उसमेंसे जैसा केवल अनाज लिया जाता है ॥ १३० ॥ उसी प्रकार विचार करनेपर प्रकट होता है, कि इस मिश्रात्मक ( नित्यानित्य ) संसारको मथन करनेसे असत्य ( अनित्य ) का आपही नाश होकर ज्ञानियोंके लिये केवल तत्त्वके सिवा बाकी कुछ नहीं रहता ॥ ३१ ॥ अतएव अनित्यके प्रति ज्ञानियोंकी आस्तिकबुद्धि नहीं रहा करती, कारण, उन्हें 'नित्य–अनित्य' ' सत्–असत् ' इन द्वंद्वोंके निष्कर्षका पूरा पता रहता है ॥ ३२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

देखो, साधारण रीतिसे विचार करनेपर यह स्पष्ट मालूम होता है कि, जो 'अस्थिर' है वह 'असार' और जो 'सार' है वह स्वभावतः ही 'स्थिर' अथवा 'नित्य' है ॥ ३३ ॥ जिससे इस त्रैलोक्यका दृश्य विस्तार विस्तृत हुआ, उसे तो नाम-रंग-रूप कुछ एक भी लक्षण नहीं है ॥ ३४ ॥ वह सदैव सर्वव्यापी तथा जन्म-मरण-रहित रहा करता है, उसका घात (नाश) करनेकी इच्छा करनेपर भी उसका कभी भी घात नहीं होसकता॥३५॥

अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्धचस्व भारत ॥ १८ ॥

अर्जुन ! देखो ये सब शरीर स्वभावतः ( इनकी प्रकृति ही ) नाशमान हैं, इसलिये हे भारत-अर्जुन ! तुम निःशंक होकर युद्ध करो ॥ ३६ ॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

तुम तो केवल इस शरीरका अभिमान कर और ऐसे ही शरीरोंको देखकर, कह रहे हो कि 'मैं मारूंगा और ये मरजायँगे' ॥ ३७ ॥ परन्तु, हे अर्जुन ! अभीतक तुम यह बात नहीं समझ सके हो कि, यदि सत्यासत्यका विचार किया जाय तो न तुम मारनेवाले हो और न ये तुम्हारे मारनेसे मरनेवाले हैं ॥ ३८ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२॥
वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१ ॥

जैसे स्वप्नकी बात स्वप्नमेंही सत्य है, और जागृत होनेपर उसका कुछ भी पता नहीं चलता ॥ ३९ ॥ तद्वत् ही इस मायाको समझो । ऐसी अवस्थामें तुम्हारा भ्रम करना बिलकुल निरर्थक है, जैसे कि परछाहीपर शस्त्राघात करनेसे मूलशरीरकी कुछभी हानि नहीं होती, ॥ १४० ॥ अथवा जिस प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


पानीसे भरा हुआ घडा उलट जाय और उस पानीमें दीखनेवाला घडाका प्रतिबिंब नष्ट हो, तो भी उस प्रतिबिंबके साथवाले मूलके सूर्यका नाश नहीं होता॥४१॥किंवा झोपडीमें बैठनेपर आकाश झोपडीके आकारका प्रतीत होता है,किन्तु वही आकाश,झोपडीके टूट जानेपर भी अपने विस्तृतरूपमें दिखायी देता है अर्थात् मूल आकाशकी हानि नहीं होती ॥ ४२ ॥ उसी प्रकार शरीरके नाश होनेपर भी स्वरूपका नाश नहीं होता, इसलिये हे अर्जुन ! नाशकी असत्य कल्पनाका आरोप मूलस्वरूपपर करके भ्रमित न होवो ॥४३॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

जिस प्रकार पुराने वस्त्र फेंककर दूसरे नये वस्त्र पहरेजाते हैं,उसी प्रकार यह चैतन्याधिपति जीवात्मा शरीरोंका परिवर्तन करता रहता है ॥ ४४ ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

यह आत्मा अनादि, निरन्तर,स्वतःसिद्ध, उपाधिहीन तथा अत्यन्त निर्दोष है, इसीसे शस्त्रादिकोंसे इसको छेदा नहीं जाता अर्थात् शस्त्र नहीं काटसकते ॥ ४५ ॥ तैसे ही कल्पान्तसमयके जलकी बाढसे यह ( आत्मा ) भीगता नहीं तथा अग्नि इसे जला नहीं सकती और बडे भारी झंझावातसे भी इसका शोषण नहीं होसकता ॥ ४६ ॥ हे अर्जुन ! यह आत्मा अविनाशी, विकार ( बालत्व, तरुणत्व, वृद्धत्वादि ) हीन, शाश्वत, सर्वव्यापी तथा स्वयमेव परिपूर्ण ( भराहुआ ) है ॥ ४७ ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

हे पार्थ ! यह आत्मा तार्किकोंकी दृष्टिसे कभी तर्कित नहीं हो सकता, इसीके दर्शनकी ( योगियोंको ) ध्यान धारणामें उत्कंठा लगी रहती है॥४८॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यह ( आत्मा ) मन तथा सर्वसाधनोंकी सीमाके बाहर है, हे अर्जुन ! यह आत्मा केवल अमर्याद पुराणपुरुष ही है ॥ ४९ ॥ यह आत्मा तीनों ( सत्त्व–रज–तम ) गुणोंसे रहित, आकार और रूपके परे, तथा अनादि विकारहीन एवम् सर्वव्यापक है ॥ १५० ॥ हे अर्जुन ! इस प्रकार इस आत्माको जानकर और वह सर्वांतर्गत है ऐसी भावनाका अन्तःकरणमें पूरा अनुभव होनेपर तुम्हें किंचित् भी शोकका सम्भव नहीं रहेगा ॥ ५१ ॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

अथवा यदि तुम इस आत्माको इस प्रकार ( नित्य ) न मानकर, नाशवान ( अनित्य ) मानोगे तो भी हे महाबाहु अर्जुन ! तुम्हें शोक करनेका कुछ कारण नहीं ॥ ५२ ॥ क्योंकि, जलके प्रवाहकी भांति उत्पत्ति–स्थिति–नाशका यह प्रवाह अस्खलित, अखण्ड तथा शाश्वत गंगाकी धारा-सरीखा सदासे चला रहता है ॥ ५३ ॥ वह जलप्रवाह आरंभमें ( जहांसे निकलता है ) खण्डरहित रहता है और अन्तमें सागरमें मिल जानेपर सम ( एक ) रस होता है तथा बहते समय मध्यमें भी वह जल ज्योंका त्यों ही रहता है ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार तीनों ( उत्पत्ति–स्थिति–लय ) अवस्थाएँ निरन्तर अखण्डरूपसे बनी रहेंगी । ऐसा एक क्षण भी न होगा, कि जिस समय इन तीन अवस्थाओंका भूतमात्रसे संबंध न रहा हो ॥५५॥ अत एव इन सब बातोंके लिये शोक करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं, क्योंकि, यह स्थिति स्वाभाविक तथा अनादि है ॥ ५६ ॥ इसपर भी–हे अर्जुन ! ये सब लोग उत्पत्ति–लयके अधीन हैं । यदि यह बात तुम्हें अनिष्ट जान पडती हो, ॥ ५७ ॥ तो भी तुम्हें शोक करनेका कुछ कारण नहीं, क्योंकि जन्म-मृत्यु तो अपरिहार्य ही हैं ॥ ५८ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

देखो, जो उत्पन्न हुआ वह नष्ट होता है और जो नाश पाता है, वह फिर उत्पन्न होता है, ऐसा घटीयन्त्रकी नाईं यह चक्र सदैव घूमता ही रहता है ॥ ५९ ॥ अथवा जैसे सूर्यके उदय–अस्त आपही आप होते रहते हैं, उसमें कभी खण्ड नहीं पडता, उसी प्रकार जन्म–मृत्युभी अनिवार्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हैं ॥ १६० ॥ और प्रलयकालमें तो त्रिभुवन नष्ट होता है अर्थात् आदि और ये अन्त किसी समय भी टाले नहीं जाते ॥ ६१ ॥ यदि तुम्हें यह बात ( आदि अन्तसे छुटकारा नहीं ) मान्य हो, तो भला ! यह शोक क्यों करते हो ? हे धनुर्धर पार्थ ! समझबूझके भी अज्ञानी कैसे बनते हो ? ॥६२॥ सिवा इसके और तरहसे भी यदि विचार करोगे तो भी तुम्हें स्वयं ज्ञात होगा, कि यहां इस प्रकारका दुःख करनेका कोई विषय या अवसर ही नहीं ! ॥ ६३ ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

ये सब भूत ( प्राणी ) जो जन्म ( उत्पत्ति ) के पहले, अमूर्त(निराकार ) थे, और जन्मतेही मूर्त ( साकार ) हुए ॥ ६४ ॥ उन्हींका जब लय होगा, तब क्या उस वक्त वे दूसरे हो सकते हैं ? यह शंका करना भी व्यर्थ है, किन्तु वे पूर्व-स्थितिको ही प्राप्त होंगे अर्थात् जन्मके पूर्वकी निराकारावस्थाको ही प्राप्त होंगे ॥ ६५ ॥ किन्तु मध्यमें-जन्म-लयके मध्य जो दिखायी देता है, वह तो निद्राके स्वप्नकी भाँति मायाके प्रभावसे सत्स्वरूप आत्मतत्त्वविषे भासमान होनेवाला आकार है ॥ ६६ ॥ अथवा हवासे पानीके हिलनेपर जैसे वह तरंगाकार जान पडता है, किंवा दूसरेकी इच्छासे सुवर्ण ( सोना ) जैसे अलंकारके आकारको प्राप्त होता है, ॥ ६७ ॥ उसी प्रकार ये शरीरधारी सब प्राणीमात्र मायाके प्रभावसे ही आकारवान् ( मूर्तरूप ) हो रहे हैं; ठीक उसी भांति आकाशको आच्छादित करनेवाला जैसा अभ्रपटल होताहै, वस्तुतः पहले कुछ भी नहीं रहता ॥ ६८ ॥ उसी प्रकार यह जन्म-लयका एक स्वांग ही नहीं तो क्या ? उसके लिये तुम्हारा शोक करना निरी भूल है। देखो, यह एकरूप चैतन्य सदैव अविकृत ही रहता है, उसे कोई बाधा नहीं होती ॥ ६९ ॥ इस चैतन्यतत्त्वकी एकबार अभिरुचि उत्पन्न होते ही संतोंको विषयवासना नहीं रहती अथवा वे ( विषय ) स्वयं ही उनसे भाग जाते हैं। इस चैतन्यतत्त्वके लिये विरक्त जन वनवासका अंगीकार करते हैं ॥ १७० ॥ और इसी चैतन्यतत्त्वपर दृष्टि रखकर बडे बडे मुनिजन ब्रह्मचर्यादिव्रत तथा तपश्चर्यामें रत होते हैं ॥ ७१ ॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥२९॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


कितनेक ऐसे ( लोग ) हैं जो केवल इस तत्त्वको स्तब्धान्तःकरणसे देखते देखते ( अनुभव करते करते ) सांसारिक विस्तृत पसारा भूल गये ॥ ७२ ॥ दूसरे कई ( ऐसे लोग ) हैं, जो इस ( तत्त्वके ) गुण गाते गाते ही विरक्त हो पूर्ण एवम् शाश्वत तल्लीनताको प्राप्त हो गये ॥ ७३ ॥ और दूसरे ऐसे भी लोग हैं, जो इस ( चैतन्य ) के बारेमें श्रवणमात्रसे ही समाधान मानकर देहबुद्धि भूलगय, और कितनेक तो ऐसे हैं जो इस तत्त्वका प्रत्यक्षमें अनुभव कर उसीमें ( समरस हो ) मिलगये ॥७४॥ और जिस प्रकार सागरमें सब नदियोंके प्रवाह जा मिलते हैं, और ( यद्यपि ) वे उस ( समुद्र ) में समा न जाँय, तो भी वे कदापि पीछे नहीं लौटते ॥ ७५ ॥ तद्वत् श्रेष्ठ योगी जनोंकी बुद्धि एकबार चैतन्यको जा मिलनेपर उससे समरस हो जाती है, और कदाचित्, यदि उन ( योगियों ) को चैतन्यसाक्षात्कार होनेपर भी वे समरस ( मिलजाना ) न हो सकें, तथापि वे इस चैतन्यतत्त्वसे कभी पराङ्मुख नहीं होते ॥ ७६ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हे पार्थ ! तुम्हें यह समझना चाहिये कि यह एकरूप चैतन्य सब विश्वका आत्मा है, वह सर्वव्यापी और सर्व देहोंमें समाविष्ट है, उसके घात करनेकी इच्छा करनेपर भी वह घात नहीं किया जा सकता ॥ ७७ ॥ उसी ( चैतन्य ) के स्वाभाविक धर्मसे ही ये भूतमात्र-प्राणीमात्र-उत्पन्न होते हैं तथा लय होजाते हैं, फिर ऐसी अवस्थामें हे अर्जुन ! तुम क्यों शोक करते हो ? ॥ ७८ ॥ देखो अर्जुन ! यह बात तो तुम्हें स्वयं ही ज्ञात होनी चाहिये थी, न जाने तुम्हारे समझमें क्यों न आती ! जो कुछ भी हो, परंतु तुम्हारा यह शोक करना अनेक भांति दोषमय है ॥ ७९ ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

हे अर्जुन ! इतना होनेपर अभी भी तुम भले प्रकार विचार नहीं करते, तुम्हें किस बातकी चिन्ता लग रही है ? हे अर्जुन ! तुम अपने तारनहार स्वधर्मको भी भूलगये ? ॥ १८० ॥ यदि इन कौरवोंका तथा तुम्हारा जो न

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होनेलायक हो, वह होजाय, अगर यहां कल्पान्त होजाय, ॥ ८१ ॥ तो भी स्वधर्मका त्याग किसीप्रकार भी उचित नहीं है, देखो अर्जुन ! स्वधर्मका त्याग करनेपर यह तेरी करुणा भी तुम्हें उबार सकती है ? ॥ ८२ ॥ हे अर्जुन ! तुम्हारा अन्तःकरण दयासे यदि पसीजा हो तो भी इस युद्धके समय यह तेरी बात निश्चय अयोग्य ही गिनी जायगी ॥ ८३ ॥ देखो, गौका दूध तो अच्छा ही है,किन्तु ज्वरान्वितको वह पथ्य नहीं कहा गया है,यदि नव-ज्वरवाले रोगीको वह ( गोदुग्ध ) दिया जाय तो उस रोगीके लिये विषही हो जाता है॥८४॥ उसी प्रकार समयका विचार न कर कुछका कुछ ( असामयिक ) करनेपर भावी कल्याण नष्ट हो जाता है,इसलिये हे धनुर्धर पार्थ ! तुम सावधान हो जाओ ॥ ८५ ॥ व्यर्थ कष्ट क्यों सह रहे हो ? जिस ( स्वधर्म ) के अनुसार आचरण करनेपर त्रिकालमें दोषका संभव नहीं, उस स्वधर्मको तुम अवलोकन करो ॥ ८६ ॥ जिस प्रकार सीधे रास्तेसे ( दूसरे लोग जहांसे गये ) चलनेपर अपाय नहीं होता, अथवा दीपकके प्रकाशके आधारानुसार चलनेमें ठोकर नहीं लगती ॥ ८७ ॥ उसी प्रकार हे अर्जुन ! स्वधर्मानुरूप आचरण करनेसे सकल कामनायें सहजहीमें सिद्ध होजाती हैं ॥ ८८ ॥ अतएव तुम भी यह बात समझो कि, तुमसे क्षत्रियोंके लिये सिवा युद्धके दूसरा कुछ भी काम उचित न समझा जायगा ॥ ८९ ॥ अतएव निःशंक हो धडाकेके साथ युद्ध करो। अब बारम्बार कहांतक कहा जाय ? क्योंकि तुम्हारे लिये तो वे ( युद्धकी ) बातें स्पष्ट ही हैं ॥ १९० ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! देखो, यह युद्ध-युद्ध नहीं, किन्तु तुम्हारे लिये सौभाग्य ही है, अथवा ( तुम्हारे ) सब धर्माचारोंका भाण्डार ही खुलगया है ॥ ९१ ॥ इसे 'संग्राम' क्या नाम दिया जाय, इसे तो संग्रामरूपसे तुम्हारे लिये स्वर्ग ही कहा जाय तो भी ठीक है, किंवा तुम्हारे लिये मूर्तिमंत प्रतापका उदय ही हो रहा है ॥ ९२ ॥ अथवा तुम्हारे गुणोंकी प्रीतिका आदर करनेके लिये कीर्तिरूपी कन्याने स्वयंवर ही रचा हो ॥ ९३ ॥ क्षत्रियोंको प्रबलपुण्यप्रतापसे ही संग्रामका अवसर प्राप्त होजाता है, जैसे कि रास्तेमें चलते समय ठोकर लगे और वहीं चिंतामणि प्राप्त हो जाय ॥ ९४ ॥ अथवा जमुहाईके कारण मुँह खोलनेपर उसमें अकस्मात् ही अमृत टपक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जावे, ठीक उसी प्रकार यहां यह युद्धका अवसर तुम्हारे लिये प्राप्त हो रहा है ॥ ९५ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

देखो, अर्जुन ! इस ( युद्धके अवसर ) की अवहेलना कर अप्रयोजक बातके लिये शोक करते रहना, मानो अपने हाथसे ही अपने पैरपर कुल्हाडी चलाना है ॥ ९६ ॥ आज इस युद्धभूमिमें यदि तुम शस्त्रका त्याग करोगे तो उसका परिणाम यही होगा, कि तुम्हारे पूर्वजोंसे संपादित कीर्तिका अंश जो तुम्हें प्राप्त भया है, उसे भी तुमने नष्ट कर दिया ऐसा होगा ! ॥ ९७ ॥ और तुम्हारी आजतककी संपादित कीर्ति लुप्त होगी, सब संसार गाली-शाप प्रदान करेगा और महापाप तुम्हें हमेशः ग्रसते रहेंगे ॥ ९८ ॥ स्वधर्मका आचरण ( युद्ध ) न करनेपर तुम्हारी यही अवस्था होगी, कि जैसी पतिके विना पतिव्रता स्त्रीकी अपमान होनेपर होती है ॥ ९९ ॥ अथवा अरण्यमें मृत-मनुष्यके अनाथप्रेतको जैसे गिद्ध चारोंतरफसे फाड डालते हैं, स्वधर्माचरणसे रहित तुम्हारा जीवन भी उसी प्रकार महापातकोंसे चारों तरफ विदारित होगा ॥ २०० ॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

इस कारण, हे अर्जुन ! यदि तुम स्वधर्मका त्याग करोगे, तो पापमें फँस जाओगे और अपकीर्ति होगी, फिर तुम्हारी वह अपकीर्ति कालत्रयमें या कल्पान्तमें भी टाली न जायगी ॥ १ ॥ देखो, कि जबतक अकीर्तिका दाग न लगा हो, ज्ञाताओं ( संभावितों ) के लिये तभीतक जीवित रहना श्रेयस्कर होता है, अर्जुन ! तुमही तो कहो कि, तुम यहांसे किस प्रकार लौट-जाओगे ? ॥ २ ॥ हे किरीटी ! कदाचित् तुम समझते होंगे कि मैं इन ( कौरवोंपर ) दया करके इनका वैर छोड दयार्द्र-अन्तःकरणसे जा रहा हूं, क्या तुम्हारे लिये यह बात ठीक है ? किन्तु तुम्हारी इस अन्तस्थस्थितिकूं ये ( उपस्थित शत्रु ) थोडे जान सकते हैं ? ॥ ३ ॥ वे तो तुम्हें कायरकी तरह भागते समझकर चारों तरफसे घेर लेंगे, तथा बाण वृष्टि करने लगेंगे, क्या उस समय यह तुम्हारा दयाभाव तुम्हारा छुटकारा कर सकेगा ? ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



फिर यदि प्राणसंकटसे कदाचित् तुम भाग निकल भी गये, तो भी तुम्हारा वह जीवन, मृत्युसे भी बुरा रहेगा ॥ ५ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

हे अर्जुन ! तुमने और एक दूसरी बातका भी विचार नहीं किया, कि तुम तो यहां बडे ठाठके साथ और बडी बडी बातें मारते हुए युद्धके लिये आये हो, और दुबले ( दयार्द्र ) अन्तःकरण हो यदि यहांसे चले जाओगे, ॥ ६ ॥ तो तुम्हारे इस ( दयाभाव ) का क्या इन दुष्ट वैरियोंपर कुछ भी परिणाम होगा ? कहो तो सही ? ॥ ७ ॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

और ये ( तेरे वैरी ) कहने लगेंगे कि 'वह भागा, अर्जुन हमारे भयसे भाग गया' फिर कहो भला, इस प्रकारकी बातें उडनी अच्छी हैं ? ॥ ८ ॥ यदि इसे भी तुम अच्छा ही समझते होंगे, तो हे धनुर्धर पार्थ ! लोग प्राण-पनसे प्रयत्न कर कीर्ति प्राप्त करनेकी इच्छा क्यों करते हैं ? ॥ ९ ॥ और तुम्हें तो यह कीर्ति अनायास ( बिनाश्रम ) सहजहीमें जैसा कि यह विस्तीर्ण आकाश है तद्वत् प्राप्त हो रही है ॥ २१० ॥ उस आकाश सरीखी तुम्हारी कीर्ति भी निःसीम है, तीनों लोकोंमें तुम्हारे गुण श्रेष्ठ हैं ॥ ११ ॥ देखो अर्जुन ! दूर दूरके भूपति भी भाटकी नाईं तुम्हारी कीर्तिका वर्णन करते हैं, जिसे सुन यमराज भी अन्तःकरणमें त्रस्त ( भयभीत ) हो जाता है ॥ १२ ॥ ऐसा गंगाप्रवाहके समान निर्मल और तेजस्वी तेरा महिमा ही इस संसारके बडे बडे वीरोंको क्षात्रधर्मका पाठ सिखाकर बडप्पन दे रहा है ॥ १३ ॥ और शत्रुपक्षके योधा तुम्हारा अद्भुत पराक्रम सुनकर, अपने जीवनको निराश समझ रहे हैं ॥ १४ ॥ जिस प्रकार सिंहकी गर्जना सुन मदोन्मत्त हाथी अपना प्रलयकालही समझता है, उसी प्रकार इन समस्त कौरवोंको तुम्हारा पराक्रम प्राणसंकटसा प्रतीत हो रहा है ॥ १५ ॥ तथा जिस प्रकार पर्वत वज्रको, और सर्प गरुडको ( काल ) समझते हैं, उसी प्रकार हे अर्जुन ! ये सब ( कौरव ) तुम्हें मनमें अपना कालही मानते हैं ॥ १६ ॥ इसलिये यदि तुम इस युद्धको छोडकर पीछे लौटोगे तो इन ( शत्रुओं ) पर तुम्हारा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जो दबाव है, उसकी अपेक्षा तुम्हें ही वे डरपोक मानेंगे ॥ १७ ॥ इतना ही नहीं किन्तु, यदि तुम भागना चाहो, तो भागते समय तुम्हें घेरकर वे (शत्रु) तुम्हारी अवहेलना करते हुए प्रत्यक्ष मुँहपर जो अपशब्दोच्चार करेंगे वह सुनना तुम्हें असह्य होगा ॥ १८ ॥ फिर ऐसी अवस्थामें तेरा हृदय टूक टूक होगा, इसलिये समयपर अपने पराक्रमसे शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीका राज्य करना तुम्हें उचित क्यों नहीं सूझता ? ॥ १९ ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! देखो, युद्ध करते करते यदि मृत्यु भी हो जाय, तो अनायास ही तुम्हें स्वर्गसुखकी प्राप्ति होगी ॥ २२० ॥ अतएव हे पार्थ ! अब विचारमें समय न खोकर इसी समय धनुष-बाण हाथमें लेकर युद्धके लिये खडे हो जाओ ॥२१॥ स्वधर्माचरणसे अपने दोष ( ज्ञात-अज्ञात) दूर हो जाते हैं, और यह तो युद्ध है, इस ( युद्धकृत्य ) में पाप होनेकी भ्रमपूर्ण कल्पना तेरे मनमें कहांसे आ रही है ? ॥ २२ ॥ हे अर्जुन ! तुमही कह सकते हो कि, नौकाका आश्रय प्राप्त होनेपर मनुष्य क्यों डूबेगा ? अथवा सरल मार्ग ( राजमार्ग ) से जानेवाला मनुष्य क्या लडखडा जाता है ? हां, यदि कोई अच्छीतरह चलना ही न जानता हो, तो संभव है कि वह सरलमार्गमें भी गिरजा सकेगा ॥ २३ ॥ जैसे-विषको अमृतमें मिलाकर यदि प्राशन किया जाय, तो ( पानकर्ताकी ) अमृतसे भी मृत्यु हो सकती है । उसी प्रकार यदि सकामबुद्धिसे ही स्वधर्माचरण किया जाय, तो वह ( स्वधर्म ) भी दोषके लिये कारण हो सकता है ॥ २४ ॥ परन्तु, हे अर्जुन ! यदि तुम संपूर्ण वासनाओंको छोडकर अपने क्षत्रियधर्मानुसार आचरण कर युद्ध करोगे, तो इसमें पापका कुछ संशय भी नहीं है ॥ २५ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

स्वधर्माचरणमें सुख प्राप्त होते ही संतोषकी, दुःखके समय विषादकी तथा लाभहानिकी कल्पना भी मनमें न करनी चाहिये ॥ २६ ॥ देखो, अर्जुन ! आज यहां विजय प्राप्त होगी या सर्वथा मृत्यु होगी, इस भविष्य बातको मनमें रखके चिन्ता क्यों की जाय ? ॥ २७ ॥ अपना स्वधर्माचरण उचित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



रीतिसे करते रहनेपर जो भलाबुरा कुछ हो उसे दृढतापूर्वक सहन करना ही चाहिये ॥ २८ ॥ इस प्रकार मनको दृढ बनानेपर, स्वभावतः ही पापाचरण नहीं होसकता । तात्पर्य, तुम इन बातोंका विचार कर, संपूर्ण संशयोंसे निवृत्त हो, युद्ध करनेके लिये सिद्ध हो जाओ ॥ २९ ॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

हे अर्जुन ! यह सांख्योंका 'ज्ञानयोग' संक्षेपसे तुम्हारे प्रति मैंने कहा, अब कर्मयोगियोंका 'बुद्धियोग' विस्तारपूर्वक कहता हूं, तुम सावधान हो श्रवण करो ॥ २३० ॥ हे पार्थ ! यह बुद्धियोग साध्य होनेपर उस ( बुद्धियुक्त ) को कर्म कदापि बन्धनकारक नहीं हो सकते ॥ ३१ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

जिस प्रकार वज्र-कवच धारण करलेनेपर कैसी भी शस्त्रवर्षा क्यों न हो जाय, सही जाती है; और विजय भी अबाधित रहती है ॥ ३२ ॥ उसी प्रकार इस बुद्धियोगका साधन हो जानेपर, ऐहिकका तो नाश संभव ही नहीं, किन्तु मोक्षकीभी भागीदारी सुरक्षित रहजाती है। इस बुद्धियोगमें पूर्वोक्त सांख्ययोगका भी अन्तर्भाव किया गया है, ॥ ३३ ॥ कारण इस बुद्धियोगका यही तत्त्व है कि, कर्म करते रहो, किन्तु कर्मफलकी इच्छा न करो (आसक्ति रहित कर्म करो ) । जिस प्रकार मांत्रिकको भूतबाधा नहीं होती ॥ ३४ ॥ उसी प्रकार बुद्धियोगके पूर्ण साध्य होनेपर ( मनुष्यको ) कोई भी उपाधि ( बाधा ) बाधक नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ जिस बुद्धियोगमें पाप-पुण्यको भी प्रवेश नहीं मिलता, जो अत्यंत सूक्ष्म, एवं निश्चित रहनेपर, सत्त्व-रज-तम इन त्रिगुणोंसे दूषित ( विकारवान् ) नहीं होता ॥ ३६ ॥ ऐसे पूर्वपुण्यबलसे प्राप्त इस बुद्धियोगका स्वल्प प्रकाश यदि भी मनुष्यके अन्तःकरणमें प्राप्त हो जाय, तो हे पार्थ ! उसके संसारभयका जड-मूलसे नाश हो जाता है ॥ ३७ ॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन ।
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जिस प्रकार दीपककी छोटीसी ज्योति भी प्रचण्ड ( बहुतसा ) प्रकाश प्रकट करती है, उसी प्रकार सद्बुद्धिको समझो, यदि यह ( सद्बुद्धि ) छोटी हो, तो भी उसे छोटी नहीं समझना चाहिये, कारण उसका प्रभाव बडा भारी है ॥ ३८ ॥ हे पार्थ ! श्रेष्ठ-विचारवान् लोग इस ( बुद्धियोग साधन ) की इच्छा करते रहते हैं, कारण यह सद्बुद्धि ( सद्वासना ) इस चराचर विश्वमें दुर्लभ रहती है ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार दूसरे साधारण पत्थरोंकी तरह स्पर्श ( पारसमणि ) की विपुलता नहीं है, अथवा अमृतकणिका कदाचित् दैवयोगसे ही प्राप्त होती है ॥२४०॥ उसी प्रकार जिस (सद्वासना) का पर्यवसान परमात्मप्राप्तिमें ही होता है, वह सद्बुद्धि अत्यंत दुर्लभ है । जिस प्रकार नदीकी गति तथा उसका प्रवाह सदैव समुद्रकी ओर ही बहा करता है ॥४१॥ उसी प्रकार ईश्वरके विना, जिसे दूसरा कोई साध्य विषय ही नहीं, ऐसी इस चराचर विश्वमें एक सद्बुद्धि ही है ॥४२॥ इसलिये इस सद्बुद्धिको छोडकर और प्रकारकी सब बुद्धियोंको दुर्बुद्धिहीमें गिनना होगा, कारण वे विकारवाली हैं और अविवेकी जन उन्हींमें सतत रममाण रहते हैं ॥ ४३ ॥ और इसीलिये हे पार्थ ! उन अविवेकी जनोंको स्वर्गवास, संसारवास तथा नरकवास प्राप्त होते हैं । किन्तु, आत्मसुखका दर्शन तक उन्हें प्राप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥

वे लोग वेदोंका आधार ले करके ही, कर्मफलकी आसक्तिसहित, कर्मकाण्डको ही प्रतिपादन करते हैं ॥ ४५ ॥ उनका कहना है कि, सत्कर्म करनेके लिये 'संसारमें जन्म लेकर यज्ञ यागादि क्रिया करना और उनसे स्वर्गसुख भोग प्राप्त करना' ॥ ४६ ॥ बस, वे तो सिवा इस स्वर्ग-सुखके अतिरिक्त संसारमें दूसरा कोई सुख ही नहीं समझते ! ऐसी बातें करनेवाले हे अर्जुन ! दुर्बुद्धिजन ही समझना होगा ॥ ४७ ॥ हे अर्जुन ! वे लोग कर्मफलकी इच्छासे केवल भोगमें ही दृष्टि रखकर कर्मका आचरण करते हैं ॥ ४८ ॥ अनेक प्रकारके अनुष्ठानादि कर्म करते समय किसी प्रकारका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


विधिभंग ( नियमभंग ) नहीं होने देते, इस प्रकार बडी योग्यतापूर्वक ( निपुणतासे ) धर्मानुष्ठान करते हैं ॥ ४९ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

हे अर्जुन ! वे ( कर्मनिष्ठ ) लोग एक बहुतही बुरी बात करते हैं । वह यह है कि, वे स्वर्ग-सुखभोगका स्वाथ मनमें रखकर यज्ञभोक्ता जो पुराण पुरुष उसे ही भूल जाते हैं ॥ ५० ॥ देखो, जिस प्रकार कपूरकी राशि ( ढेर ) बनाकर ( फिर ) उसमें अग्नि लगा दीजाय, अथवा मिष्टान्नमें कालकूट विष घोल दिया जाय ॥ ५१ ॥ अथवा दैवयोगसे अमृतघट मिलगया हो उसे ठोकरसे ठुकराकर उलट दिया जाय उसी प्रकार वे अविवेकी ( कर्मकाण्डी जन ) सकाम ( हेतुपूर्वक ) कर्माचरण कर, प्राप्त हुए धर्मका नाश कर देते हैं ॥ ५२ ॥ अत्यंत परिश्रम तथा कष्ट करके पुण्य संपादन करनेपर फिर संसार ( जन्म-मरण ) की याचना क्यों की जाय ? परंतु उन अविवेकियोंको, इस बातका पता ही नहीं रहता, कि हमें कौनसी वस्तु अनुपलब्ध है, और उसके लिये क्या करना चाहिये ॥ ५३ ॥ जैसे कि उत्तम पाक करके मधुर रसोई तयार कर दी जाय और फिर उसकी कीमत लेकर उसे बेंच दी जाय ( न कि उसका सदुपयोग करे ) उसी प्रकार ये ( कर्मकाण्डी ) अविवेकी जन सुखोपभोगके मूल्यमें धर्मका विक्रय करते हैं ॥५४॥ अत एव हे अर्जुन ! वेदके अर्थ-वादमें ही जो गुथगये हैं, उनका अन्तःकरण सदैव दुर्बुद्धिसे ही भरा रहता है, अर्थात् दुर्बुद्धि वहां मकान बना रहती है ॥५५॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥

ये वेद निश्चय ही तीन गुणों ( सत्त्व-रज-तम ) से वेष्टित हैं, अत एव उपनिषदादिकोंकोही सात्त्विक समझना चाहिये ॥ ५६ ॥ उत ( उपनिषदों ) के अतिरिक्त, हे धनुर्धर पार्थ ! जो-स्वर्ग सुखादिकोंकी लालच देनेवाले यज्ञादि कर्म हैं, वे रज और तमसे व्याप्त रहते हैं ॥ ५७ ॥ इसलिये हे पार्थ ! तुम यह निश्चित समझो कि, ये कर्म ही सुखदुःखके कारण हैं, इस हेतु तुम्हें अपने अन्तःकरणमें कर्मोंको कभी भी आश्रय नहीं देना चाहिये ॥५८॥ हे अर्जुन ! तुम इन त्रिगुणोंको अन्तःकरणमेंसे एकदम निकाल दो,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

 Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS 

और 'मैं, मेरा' इत्यादि शब्दोच्चारसे पराङ्मुख हो जाओ। और जितने जल्दी बने, केवल इस अकेले आत्म-सुखपर ही भरोसेके साथ निर्भर रहो ॥ ५९ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

हे अर्जुन ! यद्यपि वेदने अनेकप्रकारसे कहा हो, विविध भेद भी वर्णन किये हों, तथापि जिसमें अपना हित हो, उतना ही उसमेंसे लेनेका हमारा काम है ॥ २६० ॥ देखो, सूर्योदय होते ही सभी मार्ग प्रकाशमान हो जाते हैं, तो क्या सब मार्गोंसे हम जा सकते हैं ? ॥ ६१ ॥ अथवा संपूर्ण महीतल जलमय होनेपर भी जैसे उसमेंसे अपनी आवश्यकतानुसार ही जल लिया जा सकता है ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार ज्ञानी लोग वेदार्थका चिंतन कर उसमेंसे जो अपेक्षित शाश्वत सारांश हो, उतना ही ग्रहण करते हैं ॥ ६३ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

अतएव हे पार्थ ! इस प्रकार विचार करनेपर, तुम्हें स्वधर्माचरण ही उचित है ॥६४॥ मैंने जब अपने मनमें पूर्ण विचार कर देखा, य तब मुझे भी यही उचित मालूम पडा, कि तुम्हें अपना शास्त्रसिद्ध कर्म छोडना नहीं बन सकता ॥ ६५ ॥ किन्तु वह अपना कर्म करते समय तुम्हें इतना ध्यान रखना पडेगा कि, कर्मफलमें आसक्ति न रहे, तथा दुष्कर्मका संपर्क ( स्पर्श ) भी न होवे, केवल निष्काममन हो तुम स्वधर्माचरण करते रहो ॥ ६६ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

हे अर्जुन ! तुम योगयुक्त होकर फलसंग छोड दो और मनःपूर्वक स्वकर्माचरण करो ॥ ६७ ॥ अंगीकृत कार्य यदि सुदैवसे सफल हो चुका हो तथापि हर्षसे फूलकर अभिमानी न होओ ॥ ६८ ॥ तथा दुर्दैवसे उस कार्यकी यदि हानि हो जाय अथवा बीचमें ही धरा रहे तथापि उसके लिये दुःखित नहीं होना चाहिये। यह समझना ठीक है, कि कर्म करते समय यदि उसकी पूर्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हुई ॥६९॥ तो, काम ही बनगया, किन्तु कदाचित् उसमें असफलता हुई तो भी उस ठीक ही समझो ॥ २७० ॥ देखो अर्जुन ! जो जो कर्म किये जांय, आदिपुरुष परमात्माकोही वे सब समर्पण करना। ऐसा करते रहनेपर सहजहीमें वे पूर्णताको प्राप्त होजायंगे ॥७१॥ हे विजय ! संतोषदायक हो या कष्टदायक कैसा भी स्वकर्म होनेपर, उसके आरम्भमें मनःस्थितिमें बिगाड न होना चाहिये अर्थात् वह समतोल रहे, ज्ञाता लोग इसीको ' योगस्थिति' मानते हैं ॥ ७२ ॥ हे विजय ! चित्तकी स्थिरता ( समतोल–समत्व–दृढता ) को ही योगका सार माना जाता है । इस योगस्थिति ( स्थिरता ) में बुद्धि और मनका पूर्ण ऐक्य होजाता है ॥ ७३ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥

हे धनंजय ! उस बुद्धियोगका विचार करनेपर ज्ञात होगा, कि यह कर्म-भाग या कर्मयोग तो कुछ भी नहीं, यह बिलकुल सहज है । यह बुद्धियोग-तक पहुँच भी नहीं सकता ॥ ७४ ॥ परन्तु यही कर्मकांड बुद्धियोगका साधन है; कारण इस प्रकार निष्कामरीतिसे कर्मकी सिद्धि हो जाना, यही योगस्थितिकी प्राप्ति समझी जाती है ॥ ७५ ॥ इस कारण बुद्धियोग बडा दृढतर आधार है, इसलिये तुम बुद्धि स्थिर करके मनसे फलवासनाका त्याग करते रहो ॥ ७६ ॥ जो लोग इस बुद्धियोगमें डटगये वे ही इस संसार-सागरसे पार हो जाते हैं तथा पाप–पुण्यका उन्हें स्पर्श भी नहीं होता॥७७॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥

हे अर्जुन ! तुम निश्चयसे समझ जाओ कि यदि वे कर्मका आचरण करते हैं, तथापि कर्मफलसे उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता और इसीलिये उन्हें जन्म-मरणरूपी आवागमन स्पर्श भी नहीं करता ॥ ७८ ॥ इतना हो जानेपर हे पार्थ ! वे ( बुद्धियोगसे सिद्ध हो ) निश्चित एवं शान्तिका शाश्व-तपद ( अच्युतपद ) प्राप्त करलेते हैं ॥ ७९ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे धनुर्धर अर्जुन ! जब तुम इस मोहको छोडोगे और जब तुम्हारी वासनाओंका क्षय हो जायगा ( मनमें वैराग्यप्राप्ति होगी ) तब तुम भी ऐसे ही ( शाश्वतपदवान् ) होओगे ॥ २८० ॥ फिर, इसके बाद तुम्हें अत्यंत शुद्ध ( निष्कलंक ) और गहन आत्मज्ञानकी प्राप्ति होगी, जिससे तुम्हारा मन आपही आप वासनारहित ( निष्काम-निस्पृह ) हो जायगा ॥ ८१ ॥ ऐसी स्थिति प्राप्त हो जानेपर फिर और कुछ जाननेकी इच्छा, अथवा पिछली बातकी विस्मृतिकी आवश्यकताही न रहेगी ॥ ८२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

इंद्रियोंके सहवाससे जब बुद्धिमें चंचलता प्राप्त होती है तब वह इधर इधर दौडती है किन्तु, आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेपर फिर वह ( बुद्धि ) स्थिर हो, शांत हो जायगी ॥ ८३ ॥ इस प्रकार आत्मसमाधिके आनंदस जब बुद्धि शांत एवं स्थिर हो जायगी, तभी तुम्हें यथार्थ और सकल ( साग्र ) योगावस्था प्राप्त हो जायगी ॥ ८४ ॥

अर्जुन उवाच ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

( यह श्रीकृष्णका भाषण सुन ) अर्जुनने कहा—"हे भगवन् ! इसी विषय-पर मैं कुछ पूछना चाहता हूं, आप कृपा करके मुझे ठीक ठीक उत्तर दीजिये" ॥ ८५ ॥ तब ( अर्जुनकी जिज्ञासा देख ) भगवान्ने कहा—' हे मेरे प्यारे अर्जुन ! तुम्हारी इच्छासे और मनके शौकसे जो तुम्हें पूछना हो, बडे आनंदके साथ पूँछ लो,॥८६॥ यह श्रीकृष्णका कृपाभरा वचन श्रवण कर अर्जुनने कहा—' स्थितप्रज्ञ ' किसे कहा जाय, और उसे कैसा पहँचाना जाय ? और जिसे 'स्थिरबुद्धि' संज्ञा है, उसके लक्षण क्या हैं ? ॥ ८७ ॥ तथा जो अखंड समाधिका भोग भोगता है,॥८८॥ हे लक्ष्मीपति भगवन् ! वह किस स्थितिमें रहता है ? इसका रूप किस प्रकारका होता है ? ( यह समग्र मुझे कहिये ) ॥ ८९ ॥ तब ( अर्जुनका प्रश्न सुन ) परब्रह्मावतार, षड्गुणैश्वर्य-संपन्न भगवान्ने श्रीमुखसे जो कहा(हे राजन् धृतराष्ट्र) सो सुनिये ॥२९०॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रीभगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ९५ ॥

हे अर्जुन ! सुनो, मनमें निरंतर वास करनेवाली जो प्रबल विषयवासना है, वही आत्मसुखमें बाधक ( विघ्नकारी ) होती है ॥ ९१ ॥ जो सदैव ( नित्य ) संतुष्ट रहता है, जिसका अन्तःकरण समाधानसे, ओतप्रोत भरापूरा रहता है, और जिस सुखाभिलाषके संसर्गसे यह पुरुष विषय-पंकमें गिरता है, इस प्रकारका जो सुखाभिलाष ( सांसर्गिक ) वह भी सर्वतोपरि जिसका नष्ट होगया है ॥ ९२ ॥ तथा जिसका मन नित्यशः आत्मसुखमेंही रत रहाकरता है, हे अर्जुन ! वही ' स्थितप्रज्ञ ' कहाता है ॥९३॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ९६ ॥

हे अर्जुन ! और सुनो, नानाभाँतिके दुःखोंसे व्याप्त होनेपर भी जिसका मन उद्वेगित ( दुःखी ) नहीं होता तथा कैसे भी सुखकी लालचमें जिसका मन रुक नहीं सकता, ॥९४॥ ऐसे पुरुषके पास काम–क्रोधको रहनेके लिये स्थान ही नहीं, वे सहजहीमें वहांसे भाग जाते हैं, जिससे उस ( पुरुष ) का अन्तःकरण आत्मानंदसे परिपूर्ण रहनेके कारण उसे किसी प्रकारके भयका गन्धतक नहीं स्पर्श करता ॥ ९५ ॥ इस प्रकार निःसीम एवं संसार (प्रपंच) का परिहार कर, भेदरहित हो जानेवाले विचारशील ( पुरुष ) को 'स्थिर-बुद्धि' समझना चाहिये ॥ ९६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ॥
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ९७ ॥

वह सदा सर्वकाल सबके साथ समान व्यवहार करता है। जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा प्रकाश देते समय यह भला है इसे प्रकाश देना, यह बुरा है इसे नहीं देना, इस प्रकारका भेदाभेद नहीं करता, ॥ ९७ ॥ उसी प्रकार उस ( पुरुष ) की समवृत्ति, भेदरहित रहती है। सम्पूर्ण प्राणीमात्रके लिये उसका हृदय सदा दयावान् रहा करता है, किसी समय भी उसकी चित्त-वृत्तिमें भेदभाव नहीं होता ॥ ९८ ॥ जो पुरुष अच्छे ( अलभ्य ) की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्राप्ति होनेपर आनंदसे फूलता नहीं, तथा अत्यन्त दुःखदायी कोई उत्पात आ पडनेपर दुःखी भी नहीं होता ॥ ९९ ॥ इस प्रकार हर्ष-शोकसे रहित, एवम् आत्मज्ञानानंदसे जो परिपूर्ण हो, हे अर्जुन ! उसे 'स्थितप्रज्ञ' समझना चाहिये ॥ ३०० ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

हे अर्जुन ! कछुएको ही देखो, उसकी स्वाभाविक रीति है कि, जब वह आनंदमें भरा रहता है, उस समय अपने सब अवयवोंको बाहर फैला देता है, और जब चाहे उसी समय झट खींच अपनेमें आकुञ्चन (सिकुडना) कर देता है ॥ १ ॥ उसी प्रकार जिसकी इन्द्रियें वशमें हो चुकी हैं और उसकी आज्ञाका पालन करती हैं, उस पुरुषकी 'प्रज्ञा' स्थिरताको प्राप्त भयी समझना चाहिये ॥ २ ॥

विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

हे अर्जुन ! तुम्हें और एक बडे कौतुककी बात सुनाता हूं । वह यह हैं, कि इस योगका साधन करनेवाले ( पुरुष ) यद्यपि दृढनिश्चयसे विषयोंका त्याग किया करते हैं, ॥ ३ ॥ और श्रवण-चक्षु ( कान, आंख ) इत्यादि इन्द्रियोंको वश रखकर भी यदि रसनेन्द्रिय ( जिह्वा ) को नियमसे वश न रख सकें तो ऐसे साधकोंको हजार ढंगोंसे विषय, अपनी पकड ( जाल ) में पकडकर फँसाते हैं ॥ ४ ॥ देखो, अर्जुन ! किसी वृक्षके ऊपरके पत्ते निकाल दिये जायँ और उस वृक्षके मूलमें पानी दिया जाय तो क्या उस वृक्षका नाश होसकता है ? ॥ ५ ॥ किन्तु उस पानीके बलसे जैसे वह ( वृक्ष ) अधिकाधिक टेढी बेढी जोरदार शाखायें उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार केवल रसनेन्द्रिय ( जिह्वा ) के साधनासे ही ये विषय मनुष्यके मनमें (विषयोंकी ) पुष्टि कर देते हैं ॥ ६ ॥ दूसरे इन्द्रियोंके विषयोंसे कदाचित् बचा भी जा सकता है, किंतु इस रसनेन्द्रियका जबर्दस्तीसे नियमन नहीं किया जा सकता, कारण इसके बिना जीवित रहना ही असंभव होगा ॥ ७ ॥ तथापि हे अर्जुन ! ऐसी अवस्थामें स्वानुभवसे परब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है, उस समय यह 'रसनेन्द्रिय-विजय' भी साध्य हो जाता है ॥ ८ ॥ जब 'प्रत्य-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



क्षमें 'मैं ही ब्रह्म हूं' यह अनुभव होता है, उस समय देहधर्मका लोप (विस्मरण) हो जाता है, और इंद्रियोंको विषयोंकी विस्मृति भी हो जाती है ॥ ९ ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

इसके बिना दूसरे किसी उपायसे भी ये इन्द्रियें मनुष्यके वशमें नहा आसकतीं, हे अर्जुन ! जो लोग इन्हें वश करनेके लिये बडी सावधानीसे यत्न किया करते हैं ॥ ३१० ॥ जो सदैव योगाभ्यासमें दृष्टि रखे रहते हैं, यम-नियमोंका घेरा कर जो इन्हें रोक रखते हैं, मनको जो करतलामलकवत् मुट्ठीमें रख सकते हैं, ॥ ११ ॥ ऐसे लोगोंको भी ये इन्द्रियें व्याकुल कर देती हैं ! इन इन्द्रियोंका तेजस्वी पराक्रम बडा गहन है । जिस प्रकार मांत्रिकको भी भूत (पिशाच) भुला देते हैं ! ॥ १२ ॥ उसी प्रकार ये विषय ऋद्धिसिद्धिके रूपमें प्रकट हो, इंद्रियोंको स्पर्श कर, पुरुषको भुला देते हैं ॥ १३ ॥ ऐसे अवसरमें मनका अधिकार काबूसे बाहर जाता है और साधना (अभ्यास) जहांके तहां रहजाती है । तात्पर्य इंद्रियोंका बडा विचित्र सामर्थ्य है ॥१४॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

अत एव, हे अर्जुन ! मेरा कथन है कि, विषयोंकी लालच (अभिलाषा) छोडकर, जो मनुष्य इन्द्रियोंके बलको समूल तोड देता है, ॥ १५ ॥ वही योगनिष्ठा एवम् बुद्धिस्थैर्यके लिये समर्थ हो जाता है । विषयसुख जिस पुरुषके अन्तःकरणको भुला नहीं सकते, ॥ १६ ॥ वही (पुरुष) सतत आत्मबोधसे प्रवृत्त रहता है । उसके अन्तःकरणमें कदापि मेरी विस्मृति नहीं होती ॥ १७ ॥ अन्यथा विषयोंका संसर्ग बाह्य न दिखायी देनेपर भी यदि मनमें विषयका किंचित् (थोडा) अंश भी रहजाय, तो फिर वह आरंभसे आखिरतक सब संसारका खेल ही समझना चाहिये ॥ १८ ॥ जिस प्रकार विषका केवल एक बूंद लेने (खाने) पर भी वह जैसा संपूर्ण शरीरमें विस्तृत हो जाता है और आखिर निःसंदेहसे, प्राणघात (मृत्यु) करता है ॥ १९ ॥ उसी प्रकार इन विषयोंका अत्यल्प अंश यदि मनमें रहजाय तो भी वह संपूर्ण विवेकमात्रका सत्यानाश कर देता है ॥ ३२० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

हे अर्जुन ! यदि कहीं अन्तःकरणमें अल्प भी विषयकी स्मृति बनी रही, तो वह संगरहितको भी विषयसे संसर्गवाला बना देती है, और इस संसर्गसे मूर्तिमंत ( प्रत्यक्ष ) विषय–वासना प्रकट हो जाती है ॥२१॥ जहां विषयके लिये कामकी उत्पत्ति होती है, वहां क्रोधका आगमन पहलेसे ही रहता है। जहां क्रोध है, वहां संमोह ( अविचार ) तैयार रखा ही है ! ॥ २२ ॥ जिस प्रकार प्रचण्डवायुके चलनेपर दीपककी ज्योति बुझ जाती है, उसी प्रकार अविचारसे शीघ्रही स्मृति नष्ट हो जाती है, ॥ २३ ॥ अथवा जिस प्रकार सूर्यास्तसमयमें सूर्यके तेजको रात्रि निगल जाती है, उसी प्रकार स्मृतिके नष्ट होनेपर मनुष्यकी अवस्था भ्रान्तसी हो जाती है ॥२४॥ फिर इस अज्ञानके अंधकारसे सभी व्याप्त हो जानेपर, बुद्धि तो अन्दरके अन्दर ही घबडा जाती है ॥ २५ ॥ तब हे अर्जुन ! जैसा जन्मान्ध इधर उधर भागता ही चला जाय, और उसकी शोचनीय सी अवस्था हो जाय उसी प्रकार बुद्धि भ्रमित हो चक्करमें आजाती है ॥ २६ ॥ इस प्रकार स्मृति-भ्रंशके बाद बुद्धिकी कठिन अवस्था होनेपर, विवेक-शक्तिका आधार ही चला जाता है ॥ २७ ॥ जिस प्रकार चैतन्यके नाश होनेपर देहकी स्थिति होजाती है, ठीक उसी प्रकारकी अवस्था बुद्धिनाशके बाद पुरुषकी होजाती है ॥ २८ ॥ अतएव, हे अर्जुन ! यह ध्यानमें रखो कि जैसे सूखी लकडीके ढेरमें एक चिनगारीके पडजानेपरही आग पैदा हो, विस्तारको प्राप्त कर वह त्रिभुवनको जलानेमें समर्थ होजाती है, ॥२९॥ उसी प्रकार यदि कभी ( कालान्तरमें ) विषयोंका मनमें चिन्तन होजाय तो भी उसका परिणाम अधःपात करनेके लिये समर्थ हो सकता है ॥ ३३० ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

इसलिये, हे अर्जुन ! इन सब विषयोंको मनोभावसेही छोड देना चाहिये, जिससे राग–द्वेष अपने आप ही नष्ट हो जायेंगे ॥ ३१ ॥ इसके अतिरिक्त,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे अर्जुन ! और एक महत्त्वकी यह बात है कि, राग-द्वेषके नष्ट होजानेपर यदि ये इन्द्रियें विषयका सेवन किया करें तो भी उस (विषयसेवन) से कोई उपद्रव नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार आकाशका सूर्य अपने किरणोंसे सारे संसारको स्पर्श करता है, किन्तु संसारके संग-दोषका उसे स्पर्श नहीं होता, ॥ ३३ ॥ उसी प्रकार जो (पुरुष) इंद्रियोंके विषयोंको ललचाया नहीं रहता, और काम-क्रोधको छोड सदैव आत्मानंदसे परिपूर्ण (तृप्त) हो रहता है ॥ ३४ ॥ ऐसा होनेपर भी उसे उपभोग्य विषयोंमें आत्मभावके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी प्रतीत नहीं होता, अब कहो कौन विषय किसको बाधा कर सकता है ? ॥ ३५ ॥ यदि जलको जलमें डुबाया जा सके, अथवा अग्निको अग्निसे ही जलाया जा सके, तभी ऐसे पूर्णताको प्राप्त हुए (पुरुष) को विषय बाधा दे सकते हैं ! (अर्थात् असंभव है) ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जो केवल आत्मस्वरूपमें ही निर्भिन्न (मिला हुआ) रहता है, उसीको हे अर्जुन ! निःसंदेही 'स्थितप्रज्ञ' समझना चाहिये ॥ ३७ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

हे अर्जुन ! जिस अन्तःकरणमें अखंड आनंदका वास है, उस (अन्तःकरण) में संसार-दुःखोंका प्रवेश ही नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥ देखो पार्थ ! जिसके पेटमें प्रत्यक्ष अमृतका स्रोत (निर्झर) उत्पन्न भया हो, उसे जैसी किसी प्रकार भूँख प्यासकी कभी भीति नहीं रहती, ॥३९॥ उसी प्रकार जिसका अन्तःकरण अखंडानन्दसे परिपूर्ण भरचुका हो, उसे दुःख क्या कर सकता है ? कारण उसकी बुद्धि दृढतासे परमात्मस्वरूपमें अपने आप स्थिर (निश्चित) रहती है ॥ ३४० ॥ जिस प्रकार निर्वात (हवा न हो) स्थानका दीपक बिना हलचलके एकसरीखा स्थिर रहता है, उसी प्रकार उस योगयुक्त पुरुषकी बुद्धि स्वस्वरूपमें ही अचल (स्थिर) रहती है ॥४१॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

हे अर्जुन ! जिसके अन्तःकरणमें इस स्थिर-बुद्धिका बल नहीं रहता, उसीपर त्रिगुणोंकी सहायतासे विषयोंका पाश पड सकता है ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन ! ऐसे मनुष्यकी बुद्धि स्थिर नहीं रहा करती और उसके स्थिर रखनेके लिये कोई कल्पनाका उसके अन्तःकरणमें उदय ही नहीं होता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


॥ ४३ ॥ और हे पार्थ ! स्थिरत्वकी यदि कल्पना ही न हो, तो शान्तिका लाभ कैसे होगा ? ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार पापीके पास मोक्ष कदापि नहीं रह सकता, उसी प्रकार जहां शान्तिके लिये ठिकाना ( वास ) नहीं, वहांपर सुख कभी भूलकर देख भी नहीं सकता ॥ ४५ ॥ देखो, अग्निमें भुने हुए बीजको अंकुर फूटना जैसा असंभव है, अशान्तको सुखलाभ भी उतना ही असंभव समझो । सारांश, ये दोनों भी सरीखे अशक्य हैं ॥४६॥ इसलिये मनकी जो अस्थिरता है, वही दुःखका मूल कारण है, अतएव इन्द्रियोंको वशमें रखना ही सर्वोत्कृष्ट इष्ट ( लाभ ) है ॥ ४७ ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

कारण, जो पुरुष प्रत्येक इन्द्रियके वशमें रहता है ( इन्द्रियकी इच्छानुसार चलता है ) वह यद्यपि इस संसारमें तरतासा दिखायी दे, तो भी, वस्तुतः वह विषयसिंधुसे कभी नहीं तरसकता ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार किनारेके पास पहुँची हुई नौका तूफानी हवासे उलट जाय, तो बीच-सागरमेंसे टले हुए प्राणघातक प्रसंगको ही वह ( नौका ) फिर प्राप्त होजाती है, ॥ ४९ ॥ उसी प्रकार स्वस्वरूप-स्थितिमें पहुँचा हुआ पुरुष इन्द्रियोंके मनमाने खिलौने मौजके साथ यदि चलाने लग जाय, तो निश्चित समझना चाहिये कि, वह संसारदुःखोंसे व्याप्त हो चुका है ॥ ३५० ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

इस कारण, हे महाबाहु पार्थ ! यदि ये इन्द्रियें अपने-आप पुरुषके वशमें आजाँय तो समझना चाहिये कि, उसमें कुछ विशेष ही धन्यता है ॥ ५१ ॥ देखो जिस प्रकार कच्छप शान्तिके साथ अपने अवयव फैलाता है, और इच्छानुसार उन्हें खींच अपनेमें सिकुड लेता है ॥ ५२ ॥ उसी प्रकार जिसकी इन्द्रियें स्वाधीन रहकर उसकी आज्ञानुसार आचरण करती हैं, उसीको 'स्थितप्रज्ञ' समझना चाहिये ॥ ५३ ॥ अब, पूर्णताको पहुँचे हुए पुरुषका और एक गूढ लक्षण तुम्हें कहता हूँ, उसे सुनो ॥ ५४ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे अर्जुन ! सुनो, जिस ब्रह्मवस्तुके संबंधमें सर्व प्राणीमात्र निःसंदेह निद्रितसे प्रतीत होते हैं, उस ब्रह्मवस्तुके बारेमें जो सदैव जागृत रहता है और जिन विषयोंके लिये ये जीवमात्र जाग्रत्-अवस्थामें निरंतर छटपटाया करते हैं, उन विषयोंके प्रति जो आँखें मूँद लेता है, ॥ ५५ ॥ वही सच्चा उपाधिरहित, वही सच्चा स्थितप्रज्ञ और वही सर्वथैव श्रेष्ठ मुनि है ॥ ५६ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

हे अर्जुन ! ऐसे पुरुषके पहचाननेका और भी एक लक्षण है, देखो सागरकी गंभीरता अबाधित रहती है ॥ ५७ ॥ यद्यपि सब नदियें वर्षाके जलके प्रवाहसहित दोनों तरफसे समुद्रमें जा मिलती हैं, तो भी वह समुद्र यत्किंचित् भी न बढकर अपनी मर्यादाको छोड सीमासे बाहर नहीं जाता ॥ ५८ ॥ अथवा गरमीके दिनों ( ग्रीष्मऋतु ) में संपूर्ण नदियोंका जल सूख जानेपर वह समुद्र रत्तीभर भी कम प्रतीत नहीं होता, ॥ ५९ ॥ उसी प्रकार ' स्थितप्रज्ञ ' पुरुषको यदि सब ऋद्धिसिद्धियें प्राप्त हों, तो भी उसकी बुद्धिमें चंचलता नहीं आती, अथवा यदि वे ऋद्धिसिद्धि न प्राप्त हों ( अगर हों तो चली जायँ ) तो भी उसका धीरज नहीं छूटता ॥६०॥ देखो अर्जुन! आश्चर्यकी बात है, क्या सूर्यके घरमें दीपककी ज्योति उजेला कर सकती है ? मानो, वह ज्योति न लगायी जाय तो क्या सूर्यको अंधकारमें ही पडा रहना पडेगा ? ॥ ६१ ॥ ( इस प्रकारके प्रकाशकी जैसे सूर्य उपेक्षा करता है ) उसी प्रकार ऋद्धि-सिद्धिके आवागमनसे ' स्थितप्रज्ञ ' पुरुषकी कुछ भी लाभ-हानि नहीं,किन्तु उन ( ऋद्धिसिद्धि ) का उसे स्मरण भी नहीं रहता । वह अपने आत्मानंदके परम सुखमें ही निमग्न हो, पडा रहता है ॥६२॥ जो अपने घरकी शोभा देख,इन्द्रके प्रासादको भी तुच्छ मानता है,वह भीलोंकी वृक्ष-लता-पल्लवोंसे बनी हुई झोंपडियोंसे कैसे भुलाया जा सकेगा? ॥६३॥ और जो अमृतको भी कुछ नहीं समझता ( त्याज्य मानता ) है, क्या वह कांजीकी कभी इच्छा करसता है ? नहीं । उसी प्रकार जो आत्मसुखानुभव कर चुका है, उसे इस लौकिक वैभवसुखके उपभोगकी यत्किंचित् भी आवश्यकता नहीं जँचती ॥ ६४ ॥ हे अर्जुन ! जहां प्रत्यक्ष स्वर्गसुखकी तनिक भी पर्वा नहीं, वहां इन क्षुद्र लौकिक ऋद्धि-सिद्धियोंको कौन पूछता है ? ॥ ६५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

इसलिये, जिसे इस प्रकारके आत्मज्ञानका लाभ प्राप्त भया है, जो आत्म-स्वरूपके अखंड आनंदसे पुष्ट हो रहा है, वही सच्चा 'स्थितप्रज्ञ' तुम समझो ॥६६॥ वह अहंकारके मदको दूर करदेता है, सब कामनाओंका त्याग करता है और स्वयं ही विश्वरूप हो, इस विश्वके परमानंदमें आनन्दित हो मग्न रहता है ॥ ६७ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! यही अप्रतिम एवम् अमर्याद 'ब्राह्मीस्थिति' समझना चाहिये । इसका अनुभव करनेवाले निष्काम पुरुष, किसी प्रकारके कष्टविना ही पर-ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६८ ॥ चैतन्यरूपसे एकजीव होते हुए, मृत्यु-समयकी अन्तःकरण-चलबिचल, जिससे स्थितप्रज्ञको बाधक नहीं हो सकती, ॥ ६९ ॥ संजयने कहा, वही ब्राह्मीस्थिति भगवान् श्रीकृष्णजीने स्वयं अपने श्रीमुखसे अर्जुनको कही ॥ ३७० ॥ इस प्रकारका श्रीकृष्णका भाषण श्रवण कर अर्जुन अपने मनमें कहने लगा—" यह श्रीकृष्णकी विचार-परंपरा तो मुझे अनुकूल ही है ! ॥ ७१ ॥ कारण जो श्रीकृष्णने संपूर्ण कर्मोंका निषेध किया है, तो 'मेरे युद्धके' कर्मको तो अपने आपही ताला लगगया ! " ॥ ७२ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके भाषणसे अर्जुन मनहीमन अपनी बडाई करने लगा । अब विचार करके वह अपनी कुछ शंकाओंको उपस्थित कर श्रीकृष्णजीसे प्रश्न पूछेगा ॥ ७३ ॥ वह प्रसंग बडाही रोचक है, जो कि सम्पूर्ण धर्मोंका आगार या विवेकामृतका अथाह एवं बडा विस्तृत सागरही ज्ञात होगा, ॥ ७४ ॥ तथा जिसका निरूपण स्वयं सर्वज्ञश्रेष्ठ श्रीकृष्ण करेंगे, उस संवादको, निवृत्तिनाथका दास ज्ञानदेव वर्णन करेगा ॥ ३७५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः ज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः भाषानुवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ श्रीयोगविदे नमः ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## तृतीयोऽध्यायः ३.

अर्जुन उवाच ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

श्रीभगवान्के उक्त वचनोंको श्रवण करनेके पश्चात् अर्जुन कहने लगा–हे लक्ष्मीपति भगवन्! आपने अभीतक जो कहा, वह सब मैंने सावधानीके साथ ध्यानपूर्वक सुना, ॥ १ ॥ यदि आपका ही निश्चित यह मत है कि, विचार करनेपर कर्म एवम् कर्ता आत्म-स्वरूपमें रहते ही नहीं, ॥ २ ॥ फिर "अर्जुन! तुम युद्ध करो" इस प्रकार आप मुझे कैसे कहते हो? इस महाभयंकर पाप-कर्ममें ढकेलते समय आप साशंक कैसे नहीं होते? ॥ ३ ॥ देखिये, भगवन्! आपही संपूर्ण कर्मोंका निःशेष निषेध कररहे हो, फिर मेरे हाथसे यह घोर (स्वजनोंकी हत्याका) पाप-कर्म किसलिये करना चाहते हो? ॥ ४ ॥ हे भगवन्! हे हृषीकेश! आपही अपनी बातका तनिक विचार कर देखिये कि, आप तो कर्मका अत्यल्प अंशतक शेष रहना भला नहीं समझते, और मेरे हाथसे इतनी बडी भारी हिंसा (पापकर्म) कराना चाहते हैं, तो क्या यह परस्पर-विरोधी या असंबद्ध बात नहीं है? ॥ ५ ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे भगवन् ! आपही यदि इस प्रकारके अनिश्चित वचन कहें, तो हमारे सरीखे अज्ञानी लोग कैसे वर्तेंगे ? क्या विवेकका सर्वतोपरि अंतही हुआ समझा जायगा ? ॥ ६ ॥ यदि इस प्रकारकी ( संशयात्मक ) बातोंको यदि उपदेश माना जाय, तो अपभ्रंश या भ्रष्टता किसे कहना ? ठीक आज हमारी आत्मबोधकी इच्छा-मनोभावना सफल हो चुकी ! ॥ ७ ॥ अजी देखिये, यदि वैद्य पथ्य बतावे और रोगीको औषध देतेसमय स्वयं ही औषधमें विष घोल दे, तो क्या वह रोगी जी सकता है ? ॥ ८ ॥ अथवा किसी जन्मान्धको कोई जानबूझकर टेढे रास्तेमें ले चले, किंवा मर्कटको कोई नशावाला मद्य पिलाने देवे, उसी प्रकारका यह आपका बडा सुंदर उपदेश हमें आज प्राप्त हो रहा है ! ॥ ९ ॥ देखिये भगवन् ! मैं तो पहलेसे ही अज्ञानी हूं, फिर उसपर भी यह मोहबाधा घेर रही, अतएव हे कृष्णजी हे भगवन् ! आपसे सुविचार पूछने लगा ॥ १० ॥ तो, आप तो कुछका कुछ ही कहने लगे हैं ! आपसे कुछ अच्छे उपदेशकी इच्छा करता था, किन्तु वह ( आपका उपदेश ) तो और ही चक्करमें डालनेवाला दिखायी दे रहा है ! फिर ऐसे उपदेशानुसार चलनेपर हे भगवन् ! हमारी कैसी स्थिति होगी ? ॥ ११ ॥ हे दयाघन ! देखिये, हम लोग तन-मन-प्राणसे आपके वचनोंपर विश्वास रख निश्चिंत रहें, और आप तो हमारे मनके अन्यथा ( विरुद्ध ) करना चाहते हैं, तो फिर सब कामकी समाप्ति ही समझनी होगी ! ॥ १२ ॥ फिर अर्जुनने कहा—" हे भगवन् ! अब आप यदि इसी तरहका बोध करना चाहें, तो हमारी भलाई या बडी शोभा ही समझना होगा ! फिर ऐसी अवस्थामें हे भगवन् ! ज्ञानप्राप्तिकी आशा करना तो व्यर्थ क्लेश ही हैं ! ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहकर फिर अर्जुन बोला—" हे भगवन् ! आपसे ज्ञानप्राप्तिकी आशा तो व्यर्थ ही गयी, किन्तु और एक दूसरी बुरी बात यहां यह उपस्थित हो रही है कि मेरा जो शान्त मन था, वह अब बहुत ही उद्विग्न ( प्रक्षुब्ध ) हो गया ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! आपका चरित्र तो अगम्य है इसलिये यदि इस प्रकार मुझे चिढाकर अगर कोई मिस करके मेरी परीक्षा करना चाहते हो, ॥ १५ ॥ तो हे भगवन् ! मैं सच सच कहता हूं कि, विचार करनेपर भी यह ज्ञात नहीं होता कि आप इधर उधरके दृष्टान्त दे मुझे भुला रहे हैं, या गूढतत्त्वसे कुछ परमार्थका प्रतिपादन कर रहे हैं ! ॥१६॥ हे दयानिधे ! अब मैं आपसे प्रार्थना करताहूं कि, ऐसी गूढभाषा न रखकर, आप स्पष्ट तथा सरल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शब्दोंमें अपना विचार प्रकट करें ॥ १७ ॥ कारण मैं तो अत्यंत मंदबुद्धि हूं, इसलिये सुलभ और ऐसा निश्चित ( मत ) कहिये कि, मेरे सरीखे मंदबुद्धिको भी जिसविषे कुछ शंका न आजावे ॥ १८ ॥ देखिये, रागीके रोगको हटानेके लिये औषधिकी तो आवश्यकता है ही, किन्तु साथ साथ वह ( ओषधि ) यदि रुचिजनक एवम् मधुर हो तो कैसा अच्छा आनंद आवेगा ? ॥ १९ ॥ उसी प्रकार गूढ और सकलार्थ–परिपूर्ण, तत्त्वभरा हुआ भाषण आप भले ही करें, किन्तु मेरी समझमें वह सहज ही आजाय ऐसा सरल और मधुर होना चाहिये ॥ २० ॥ हे देव ! आपसरीखे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा आत्मबोधोपदेशक हमारे गुरु रहते, मैं अपने मनकी इच्छातृप्ति क्यों न करूं ? कारण आप ही हमारी माता हैं, फिर माताके सामने लज्जा किस बातकी करूं ॥ २१ ॥ हे देवाधिदेव ! दैवयोगसे यदि प्रसूता कामधेनु प्राप्त हो, तो मनोरथोंकी कौन कमी कर सकेगा ? ॥ २२ ॥ अथवा चिन्तामणिके हाथ आजानेपर, केवल इच्छा ही करना, क्या संकट हो सकेगा ? जो चाहे सो मनमाना माँगलेना ( वह सब पूरा करनेमें समर्थ है ) ॥ २३ ॥ और देखिये, यदि कोई अमृतसागरके पास आकर दुर्दैवसे अमृत लाभ न कर प्यासाका प्यासा ही तडफडाता रहे, तो वहांतक आनेके उसने श्रम ही क्यों किये ? ॥ २४ ॥ उसी प्रकार हे लक्ष्मीपति भगवन् ! अनेक जन्मोंसे आपकी उपासना करते करते सुदैवसे आज आप हमारे हाथ आये हो, ॥२५॥ तो हे परमेश्वर ! हमलोग अपनी इच्छानुसार आपके पास याचना करनेमें क्यों संकोच करें ? क्योंकि हे देव ! हमारे मनके लिये आजका सुदिन उदय हुआ है ॥ २६ ॥ देखिये, हमारी इच्छायें आज नवचैतन्यभरी हुई, आज हमारा सुकृत सफल हुआ, तथा मेरे सब मनोरथोंको विजय-प्राप्ति हुई ॥ २७ ॥ कारण, हे परम कल्याण ! आपही स्वयं आज सर्वतः हमें अनुकूल हो रहे हैं; इसलिये हे देव ! आज मैं मुक्त-कंठसे आपका जयजयकार करता हूं ॥ २८ ॥ जिस प्रकार बालक माताके स्तनपानमें अवसरको नहीं देखता अर्थात् वह चाहे उस वक्त स्तनपान करे तो भी माता प्रसन्न रहती है ॥ २९ ॥ उसी प्रकार हे कृपासागर देव ! मैंने अपनी इच्छानुसार बडी मौजके साथ प्रश्न किया है ॥ ३० ॥ अत एव हे दयानिधि भगवन् ! आप ऐसी एक निश्चयात्मक बात बताइये कि, जो पारलौकिकहितकारी होकर इहलोकमें भी आचरणके योग्य और सरल हो" इस प्रकार मनकी बात कहकर अर्जुन स्वस्थ रहा ॥ ३१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रीभगवानुवाच ।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

इस प्रकारका अर्जुनका भाषण सुनकर विस्मित हो, भगवान् श्रीकृष्ण कहने लगे–"हे अर्जुन ! मेरी बातका गूढार्थ ऐसा है कि, ॥ ३२ ॥ बुद्धि-योगका स्पष्टीकरण करते समय प्रसंगानुसार सहजहीमें सांख्योंका ज्ञानयोग मैंने कथन किया था ॥ ३३ ॥ किन्तु उसका हेतु तुम्हारे ध्यानमें ही नहीं आया ! अतएव तुम्हें यह कष्ट हुआ, अच्छा, अब ध्यानपूर्वक सुनो, और इस एकही बातपर निर्भर रहो, कि ये दोनों योग–संप्रदाय-मेरेही कहे हुए हैं ॥ ३४ ॥ हे वीरश्रेष्ठ धनंजय ! ये दोनों योग अनादिकालसे इस संसारमें मुझसे ही प्रकट हुए हैं ॥ ३५ ॥ इनमें एक, सांख्यवादी जिसका अनुसरण करते हैं, 'ज्ञानयोग' कहा जाता है, जिसकी पहचान ( ज्ञान ) से जीवात्मा परमात्मामें मिलजाता है अर्थात् ब्रह्मरूप होजाता है ॥ ३६ ॥ दूसरा 'कर्मयोग' कहा जाता है, जिसका उचित आचरण करके साधक पुरुष योग्य अवसरमें मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ३७ ॥ हे अर्जुन ! यद्यपि ये दो मार्ग सकृद्दर्शनमें भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु विचार करनेपर, जैसे अग्निसे पकाये हुए भोजन तथा बिना पके अन्नका क्षुधाशान्ति,यह एक ही फल रहता है, तद्वत् आखिरमें ये दोनों मार्ग एकत्र ( मोक्ष या ब्रह्ममें ) समाविष्ट हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ अथवा जैसे पूर्वमें बहती हुई एवम् पश्चिममें बहती हुई ये दो नदियें प्रवाहमें यद्यपि भिन्न भिन्न दिखायी दें, तो भी सागरमें संमिलित होनेपर वह एकरूपही होजाती हैं, ॥ ३९ ॥ उसी प्रकार ज्ञानयोग तथा कर्मयोग एक परमार्थके ही साधक हैं, किन्तु अधिकारानुसार उपासनाके भिन्न प्रकार साधकोंकी योग्यतापर निर्भर रहते हैं ॥ ४० ॥ देखो, उड्डान मारकर पक्षी वृक्षके फलको चिपक जा सकता है, क्या उसी वेगसे मनुष्य वहांतक पहुँच सकेगा ? ॥ ४१ ॥ हां, वह धीरे धीरे इस डालीसे उसपर उससे दूसरीपर इस तरह आश्रय करके कुछ कालसे दृढ निश्चयके साथ अपनी सामर्थ्यानुसार आखिर उसे प्राप्त करेगा, ॥ ४२ ॥ उसी प्रकार ज्ञानी लोग ज्ञानका आश्रय कर विहङ्गममार्गसे तत्काल ( उसीवक्त ) मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ ४३ ॥ किन्तु अन्य कर्मयोगी स्वधर्मोचित कर्माचरणको करते हुए, यथावकाश योग्यकाल ( ज्ञानोत्तर काल ) में पूर्णता ( मोक्ष ) को प्राप्त होजाते हैं ॥ ४४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

पहले उचित कर्मको न करके यदि 'सिद्धके मुआफिक कर्मको छोड देंगे' ऐसा कहेगा, तो उस कर्महीनको नैष्कर्म्य ( निष्कामता ) कभी नहीं प्राप्त हो सकता ॥ ४५ ॥ कारण, हे अर्जुन ! जो अपना कर्तव्य प्राप्त भया है, केवल उसके त्यागसेही नैष्कर्म्य सिद्ध होगा, यह कहना निरी मूर्खता है ॥ ४६ ॥ देखो, नदीमें बाढ है और अपनेको पार जाना है, क्या इस संकटमें कोई नावकी उपेक्षा कर सकते हैं ? ॥४७॥ अथवा क्षुधाशान्तिके लिये रसोई क्यों न बनाई जाय ? अथवा बनी बनाई मिलनेपर क्योंकर न खाई जाय ? ॥ ४८ ॥ उसी प्रकार जबतक वासना ( फलेच्छा ) नष्ट न हुई तबतक, ससेमिराकी नाईं कर्म पीछा नहीं छोड सकता । और अखंड आनंद प्राप्त होनेपर वह अपने आप सहजहीमें बंद होजाता है ॥ ४९ ॥ अतएव हे अर्जुन ! सुनो, जो नैष्कर्म्य बनना चाहता हो, वह स्वधर्मविहित कर्मको छोड ही नहीं सकता ॥ ५० ॥ इसके सिवाय जो ऐसा कहते हैं कि, 'इच्छानुसार किया हुआ कर्म सिद्ध हो जाता है तथा छोडा हुआ नष्ट होजाता है' ॥ ५१ ॥ उनका यह कहना निरी मूर्खता है, हे पार्थ ! अनुभव करनेपर तुम्हें भी यह ज्ञात होगा, किन्तु यह पूरा समझ रखो कि, केवल छोडनेसेही कर्म नहीं छूटता ॥ ५२ ॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

त्रिगुणोंकी जननी जो माया, उसका जबतक आश्रय है, तबतक यह समझना कि अज्ञानके वश जो जो आचरण किया जाता है, वह सब गुणोंपरही अवलंबित है, 'मैं करता हूं' यह कहना अज्ञान है ॥ ५३ ॥ देखो, अपना जो विहित कर्म है, मनःक्षोभसे यद्यपि उसे कोई छोडना चाहे, तो भी इन्द्रियोंके जो स्वाभाविक धर्म हैं वे थोडे मर जाँयगे ? ॥ ५४ ॥ क्या कर्णेन्द्रिय नहीं सुनेंगे, अथवा नेत्र क्या प्रकाशको न देख सकेंगे ? किंवा नासिका सुवासके लेनेमें क्या अपने छिद्र बंद कर सकती है ? ॥ ५५ ॥ उसी प्रकार प्राण तथा अपान वायुकी गति क्या खंडित होती है ? या चित्त निर्विकल्प ( संकल्प-विकल्परहित ) थोडा बनजाता है ? अथवा क्षुधा-तृषादि इच्छा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ओंका समूल नाश होजाता है ? ॥ ५६ ॥ अथवा जागृति और स्वप्नावस्था क्या नष्ट होती हैं ? क्या पाँव चलना छोड देंगे ? हे अर्जुन ! कहांतक कहा जाय ? ये जन्म-मृत्यु भी कभी बंद हो सकते हैं ? ॥५७॥ इनमेंसे एक भी बात यदि नहीं हो सकती, तो त्याग किस कर्मका किया ? इसलिये जबतक मायाका आश्रय है, तबतक मनुष्यसे कर्मका त्याग नहीं बन सकता ॥५८॥ कर्म पराधीन ( मायाधीन ) होनेपर प्रकृतिके गुणोंसे अपने आप उपजता है, इसलिये जबतक मायाका आश्रय नहीं छूटा, तबतक कैसे भी निग्रह करके यदि अन्तःकरणको जकड दिया जाय, तो भी वह कृत्य निरर्थक ही समझना ॥ ५९ ॥ देखो, रथमें चढकर निश्चल शांतिसे बैठा जाय, किन्तु पराधीनतासे ( रथके चलनेपर ) अपना चलनवलन या घूमना तो होहींगा ॥६०॥ अथवा बदली हवासे उडा हुआ सूखा पत्ता चलायमान हो आकाशमें बिना हिलचलसे भ्रमण करता रहता है ॥६१॥ उसी प्रकार मायाके आश्रयसे तथा कर्मेन्द्रियोंके पराधीन विकारोंसे निग्रहवान् पुरुष भी सदैव व्यापार करताही रहता है ॥ ६२ ॥ अतएव जबतक मायाका सहवास स्थित है, तबतक कर्म नहीं छूटसकता, जो कोई कहते हैं कि " हम कर्मका त्याग कर सकते हैं" सिवाय प्रदर्शनके, उन दुराग्रहियोंसे कुछ नहीं बन सकता ॥६३॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! जो विहित कर्मको छोड देते हैं और कर्मेन्द्रियोंकी प्रवृत्तिको रोककर निष्कर्मी कहा चाहते हैं, ॥६४॥ वे कर्मका त्याग नहीं कर सकते, कारण उनके मनमें कर्मकी अभिलाषा रहा करती है;किन्तु लोगोंमें दिखानेके लिये, जैसे कोई कंगाल बाहरसे खूब सजधजके नट बन जाता है, उसी प्रकार नैष्कर्म्यकी दिखावटसे वे कर्मकी विडंबना करते हैं ॥६५॥ हे अर्जुन ! तुम निश्चित समझो कि वे पुरुष विषयोंमें ही आसक्त रहते हैं ॥ ६६ ॥ हे धनुर्धर पार्थ ! अब हम प्रसंगानुसार तुम्हें निरिच्छके लक्षण बतलाते हैं, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनो ॥ ६७ ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेंद्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! जिसका अन्तःकरण निश्चल ( स्थिर ) रहता है, परमात्मस्वरूपमें जो समरस होचुका है, तथापि जो साधारण मनुष्यकी तरह बाहरी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



व्यवहार करता रहता है;॥३८॥ तथा जो अपने इन्द्रियोंको विषयसेवनसे भी नहीं रोकता; किन्तु विषयोंसे डरता नहीं, एवम् जो जो विहितकर्म जिस समय करना उचित हो, उसका त्याग नहीं करता ॥६९॥ कर्मेन्द्रियें अपने व्यापारमें रत रहते समय उनका नियमन ( रोकना ) तो कर सकता है, किन्तु कर्मसे उत्पन्न विकारोंसे व्याप्त नहीं होता ॥ ७० ॥ वह किसी भी कामनाके वश नहीं होता, तथा मोहमलसे मलीन नहीं होता। जिस प्रकार कमलका पत्र निरन्तर जलमें रहनेपर भी जलसे भीगता नहीं ॥ ७१ ॥ उसी प्रकार वह संसर्गविना लौकिकव्यवहार करता हुआ दूसरे लोगोंसा ही दिखायी देता है, जैसा कि जलके संयोगसे सूर्यबिंबका आकार उसी वस्तुका रूप दिखायी देता है ॥ ७२ ॥ वैसे ही ऊपरकी दृष्टिसे देखनेवालोंको तो सामान्य जनोंकी भांति ही वह प्रतीत होता है, किन्तु उसकी आन्तरिक स्थितिका पूरा पता मिलना बडा कठिन है ॥ ७३ ॥ इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त पुरुषको ही आशापाशरहित अथवा मुक्त समझो ॥ ७४ ॥ हे अर्जुन ! संसारमें जो ऐसा मान्य होता है, उसी विशिष्ट पुरुषको ही 'योगी' संज्ञा दी जाती है, इसलिये तुम भी इस प्रकारका 'योगी' बनजाओ ॥ ७५ ॥ हे अर्जुन ! तुम अपने मनका नियमन करो तथा अन्तःकरण शांत और निश्चल बनाओ, फिर कर्मेन्द्रियां चाहे जैसे विषयमें व्यापार करें [ उनसे तुम्हें किसी प्रकार बाधा नहीं होसकती ] ॥ ७६ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धेदकर्मणः ॥ ८ ॥

अतएव नैष्कर्म्यकी प्राप्ति तो दुर्लभ याने अशक्यसी ही है, किन्तु निषिद्धकर्मका आचरण करना या नहीं, इस बातका तुम विचार करो ॥ ७७ ॥ और वह यही कि जो जो योग्य तथा अवसरसे प्राप्त होगया हो, उस कर्मको निष्कामबुद्धिसे तुम आचरण करते रहो ॥ ७८ ॥ हे अर्जुन ! इसमें और भी एक आश्चर्यान्वित बात है, जो तेरे ध्यानमें नहीं आगयी; वह यह कि फलेच्छा छोडकर किया हुआ कर्म ही अपने आप कर्मकी मुक्ति-कर्मरहितताको प्राप्त कर देता है ॥ ७९ ॥ देखो, शास्त्राज्ञानुसार जो स्वधर्माचरण कर विहित कर्म करता है, उसके लिये वे कर्महीं निश्चयसे मोक्षप्राप्तिके साधन होजाते हैं ॥ ८० ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ९ ॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे अर्जुन ! स्वधर्मको ही 'नित्ययज्ञ' कहा जाता है, अतएव उसके आचरण करनेमें पापका संभव ही नहीं रहता, ॥ ८१ ॥ किन्तु, यह स्वधर्म छूटकर किसी परधर्मविषे जब अभिरुचि उत्पन्न होती है, तब संसार ( जन्ममरण ) का बन्धन इस पुरुषको होता है ॥८२॥ इसलिये जो पुरुष स्वधर्माचरणरूप नित्य कर्म करता रहता है,उसके आचरणमें ही,नित्य यज्ञकर्म होता है, और इस प्रकारका जो कर्म है वह संसारके बन्धनका कारण नहीं होता ॥ ८३ ॥ कर्मसे बँधा हुआ यह संसार ( लोक) मायामोहसे प्रकृतिको भूल जानेके कारण उससे स्वधर्माचरण रूप नित्ययज्ञ न होनेसे कर्मबन्धनमें आ जाता है ॥८४॥ हे कौंतेय ! इस विषयमें तुम्हें एक इतिहास कहना चाहता हूं सुनो जब ब्रह्मदेवने यह सृष्टि उत्पन्न कर उसके साथ और कार्य किये, ॥८५॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

तब संपूर्ण मानव नित्ययज्ञके साथ, याने विहिताचार धर्मके साथ ही निर्मित किये, परन्तु यह नित्य यज्ञ बडा गहन होनेके कारण, उसे वे (अज्ञ प्राणी ) समझ नहीं सके ॥ ८६ ॥ तब उन लोगोंने ब्रह्मदेवकी शरण ले प्रार्थना की, कि हे देव ! " हमलोगोंकी स्थिति तथा जीवकी सफलताके लिये हमें क्या आश्रय है ?" उस समय ब्रह्मा कहने लगा ॥ ८७ ॥ ' हे लोगों तुम्हारी वर्णव्यवस्थानुसार स्वधर्मकी रचना कर रखी है, उसकी तुम उपासना करो जिससे तुम्हारी सब कामनायें सहजहीमें पूरी होंगी ॥ ८८ ॥ तुम व्रतनियमादिको आवश्यक मत समझो, तपश्चर्यासे शरीरको कष्ट मत दो, अथवा दूरदूरकी तीर्थयात्राके लिये बाहर कहीं न जाओ ॥ ८९ ॥ योगादि मोक्षोपाय, किसी कामनाके लिये कोई आराधन, मंत्रयंत्रोंके प्रयोग इनमें कभी मत फँस जाओ॥९०॥तथा दूसरे देवताओंका भजन भी न करो किन्तु, स्वधर्मानुरूप आचरणका अनायास प्राप्त जो ' यज्ञ ' उसका यजन करो, उसे तुम कभी भी मत भूलो ॥९१॥ मनमें कोई भी स्वार्थ न रखकर इस स्वधर्मका ही अनुष्ठान करो, जैसे कि पतिव्रता स्त्री निष्कामबुद्धिसे एकनिष्ठ होकर अपने पतिकी आराधना करती है, उस तरह इस यज्ञकी तुम नित्य आराधना करते रहो ' इतना कहकर ब्रह्मा फिर कहने लगा ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ "हे प्रजालोगो ! इस प्रकार यदि तुम स्वधर्मको भक्तिके साथ आचरण करते रहोगे, तो वह कामधेनु बनकर तुम्हारी संपूर्ण कामनायें पूरी करके तुम्हें कभी निराधार नहीं रखेगा ॥ ९४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

जब इस स्वधर्माचरणरूप यज्ञसे तुम देवताओंको सन्तोषित करोगे, तब वे लोग तुम्हारे संपूर्ण मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥ ९५ ॥ इस स्वधर्माचरणरूप पूजाद्वारा संतुष्ट हुए देवतागण निश्चय ही तुम्हारा योग-क्षेम चला सकेंगे, तुम्हें किसी प्रकारकी कमी न रहेगी ॥ ९६ ॥ इस प्रकार तुम्हारी स्वधर्मसेवासे सन्तोषित देवता, फिर तुम लोगोंपर प्रेम करने लगेंगे, जिससे परस्परमें प्रेमभाव बढता जायगा ॥ ९७ ॥ इतना होनेपर तुम जिस बातकी इच्छा करो, वह आपही आप सिद्ध होकर तुम्हारी मनकामनायें पूर्ण होंगी ॥ ९८ ॥ तुम्हारी वाणीमें सिद्धि रहेगी ( जो बोलो, सो सत्य हो ), आज्ञा करनेका सामर्थ्य प्राप्त होगा और सब प्रकारकी समृद्धि तुम्हारी आज्ञाकी याचना करती रहेगी ॥ ९९ ॥ जिस प्रकार वनश्री फलफूलोंसे तथा लावण्यसे सजधजकर वसंतऋतुकी बाट जोहती रहती है ॥१००॥

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

उसी प्रकार प्रत्यक्ष दैव सर्व सुखसमृद्धिके साथ तुम्हें खोजता हुआ तुम्हारी सेवामें उपस्थित होगा ॥ १ ॥ हे प्रजागणो ! तुम लोग स्वधर्मपर निष्ठा रखते हुए यदि इस तरह बर्तोंगे, तो सब प्रकारसे सुखसंपन्न होकर क्लेशरहित होजाओगे ॥ २ ॥ अन्यथा सब संपत्ति हाथ आनेपर जो विषय-सुखोपभोगका लालची बन, उन्मत्त इन्द्रियोंके पञ्जेमें पडजाय, ॥ ३ ॥ और स्वधर्मयज्ञोंसे प्रसन्न हो देवताओंकी दी हुई सम्पदाओंसे योग्यमार्गपर न चलकर, विश्वप्रभु (धर्म) का जो भजन-पूजन नहीं करता, ॥ ४ ॥ जो अग्निमें हवन ( वैश्वदेवादि ) नहीं करता, देवताओंकी पूजा नहीं करता, सामर्थ्यानुसार यथाकालमें ब्राह्मणोंको भोजन नहीं देता, ॥ ५ ॥ गुरुभक्ति नहीं करता, अतिथि-अभ्यागतोंका आदर-सत्कार नहीं करता अथवा अपनी जाति बिरादरीको उस संपत्तिसे संतोषित नहीं रखता ॥ ६ ॥ ऐसा जो स्वधर्माचारपराङ्मुख हो; देवताओंकी दी हुई संपत्तिसे अभिमानी बन केवल सुखोपभोगोंमें ही निमग्न हो जाता है, ॥७॥ उस पुरुषको ऐसा संकट प्राप्त होगा, कि हाथ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आयी हुइ सब संपत्ति नष्ट होकर, जिन विषयोंके लिये वह इतना अभिमानी बना, वे उससे भोगे नहीं जायंगे ॥ ८ ॥ जैसे कि आयुष्यकी समाप्ति होनेपर जीवात्मा ( चैतन्य ) शरीरमें नहीं रहता, अथवा दैवहीनके पास लक्ष्मी रह नहीं सकती, ॥ ९ ॥ उसी प्रकार स्वधर्मका लोप होते ही संपूर्ण सुखोंका आश्रयस्थान ( मूल) ही नष्ट हो जाता है अर्थात् कोई सुख बाकी नहीं रहता। जैसे कि दीपकके नष्ट होते ही सर्वत्र अंधकार ही अंधकार प्रतीत होता है, ॥११०॥ उसी प्रकार स्वधर्मका लोप होनेपर स्वातंत्र्यको भी स्थान नहीं रह जाता "। इतना कहकर फिर प्रजापति ब्रह्माजी बोले, ॥ ११ ॥ "इस लिये हे प्रजाओ ! जो स्वधर्मको छोडेगा, काल उसे अवश्य दंड देगा, इतना ही नहीं वरन् उसे चोर समझ कर उसका सर्वस्व हरण करेगा ॥ १२ ॥ फिर ऐसी अवस्थामें, जिस प्रकार रात्रिके समय चारों तरफसे आकर भूत-प्रेत श्मशान-भूमिको घेर लेते हैं, उसी प्रकार उसके सब दोष चारों तरफसे उसे घेर लेंगे ॥१३॥ वैसे ही त्रिलोकीके दुःख तथा नाना प्रकारके पाप और हर तरहकी दीनता उस पुरुषके अंतःकरणमें वास करती रहेगी ॥ १४ ॥ हे प्रजागणो ! इस प्रकारकी दशा उस उन्मत्त पुरुषकी होती है, फिर यदि वह जन्मभर रोता पीटता रहेगा, तो कल्पान्तमें भी उसका छुटकारा नहीं हो सकता ॥ १५ ॥ अतएव हे प्रजाजनो ! मैं तुम्हें कह रहा हूं कि स्वधर्माचार मत छोड़ो, तथा इन्द्रियें वशमें रखो" इस प्रकार उपदेशकी बातें कहकर ब्रह्माजी फिर बोले, ॥ १६ ॥ " जलमें वास करनेवाले प्राणी जलको छोड़ते ही जैसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, स्वधर्मको छोड़ने पर, उसी प्रकार उसका सर्वस्व नाश होगा ! ॥ १७ ॥ इसलिये तुम सब लोगोंसे मेरा यही कहना है कि, तुम अपने अपने धर्मानुसार उचित कर्माचरण करते रहो॥१८॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

जो निष्काम बुद्धिसे स्वधर्मानुसार प्राप्त की हुई संपत्तिका विनियोग करता है, ॥ १९ ॥ गुरु, गोत्र, तथा अग्निकी पूजा करता है, यथासमय ब्राह्मणोंकी सेवा करता है तथा पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्धादि कर्म करता है, ॥ १२० ॥ इस प्रकार उचित स्वधर्माचरणका यज्ञ संपादन कर, पंचमहायज्ञादिसे अग्निमें आहुति दे, जो हवनकी अवशेष सामग्री रहती है ॥ २१ ॥ वही संपूर्ण पापकी नाशक होनेसे अपने कुटुम्बियोंके साथ जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सुखसे उसका भक्षण करता है, ॥ २२ ॥ वह पुरुष यज्ञका हुतशेष भाग भोगनेके कारण अमृत लाभ प्राप्त करता है अर्थात् उसे कोई भी रोग या पाप स्पर्श नहीं कर सकते ॥ २३ ॥ अथवा जिसे निश्चित तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति भयी, ऐसा जो ब्रह्मनिष्ठ है, वह जैसा किसी प्रकारके भ्रममें नहीं आता, उसी प्रकार यज्ञशेषभोगी पुरुष, पापोंके शोधने पर भी उन्हें नहीं प्राप्त होता ॥ २४ ॥ इस कारण जो स्वधर्मसे संपादन किया जाय उसका विनियोग भी स्वधर्मानुसार ही करना चाहिये और जो शेष रहजाय उसका संतोषसे स्वयं उपभोग करना " इस कारण हे अर्जुन ! इस स्वधर्म-यज्ञका अवश्य करना ही चाहिये ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी पुराणी कथा भगवान् श्रीकृष्णजीने पार्थसे कही ॥ २६ ॥ जो लोग इस देहको ही आत्मा समझते हैं और विषयोंको स्वार्थबुद्धिसे उपभोग्य कहते हैं और जिन्हें केवल इन बातोंके बिना कुछ ज्ञान ही नहीं, ॥ २७ ॥ उन अज्ञानियोंको यह भी ज्ञान नहीं है, कि यह सब जगत् यज्ञकी ही सामग्री है, वे भूलसे अथवा अहंकार-बुद्धिसे इसका उपभोग करना ही कर्तव्य समझते हैं, ॥ २८ ॥ जो अपनी इंद्रियोंकी रुचिके अनुसार अनेक प्रकारके उत्तम भोजन तयार करके भोगते हैं वे पापी पुरुष पापका ही सेवन करते हैं समझना चाहिये ॥ २९ ॥ यह संपत्तिसंग्रह स्वधर्मयज्ञकी आहुति-सामग्रीही समझना चाहिये और यह सब द्रव्य इस यज्ञद्वारा परम पुरुष परमेश्वरको ही समर्पण करनेके लिये है ॥ १३० ॥ इस तत्त्वको बिलकुल न जानकर वे मूर्खलोग अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम भोजन बनाते हैं ॥ ३१ ॥ जिस अन्नसे यह यज्ञ सिद्ध होकर आदिपुरुष भगवान् संतोषित होता है, वह अन्न ऐसा वैसा साधारण नहीं समझा जाता ॥ ३२ ॥ किन्तु इस अन्नको साधारण न समझकर उसे केवल प्रत्यक्ष ब्रह्मरूपही समझना चाहिये, कारण यही अन्न इस विश्वका जीवन-साधन है ॥ ३३ ॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

अन्नकी सहायतासेही प्राणीमात्रकी वृद्धि होती है, एवम् पर्जन्यसे अन्नकी उत्पत्ति होती है ॥ ३४ ॥ पर्जन्यके लिये यज्ञही कारण है और कर्मसे ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यज्ञ सिद्ध होजाता है, जो कर्म वेदरूपब्रह्मसे समुद्भूत होता है ॥ ३५ ॥ और वेद–ब्रह्मका संभव तो अक्षर-परात्पर ब्रह्मतत्त्वसे है, इस लिये यह स्थावर जंगम विश्व मूलतः अक्षर परब्रह्मसे ही परिपूर्ण है ॥ ३६ ॥ तथापि हे सुभद्रापति पार्थ ! कर्मरूप जो यज्ञ है, उसीमें वेदरूप ब्रह्म निरंतर वास करता रहता है यह बात तुम्हें समझना आवश्यक है ॥ ३७ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! इस स्वधर्मयज्ञकी यह आदिपरंपरा संक्षेपसे तुम्हें निवेदित की है ॥ ३८ ॥ इसलिये यह स्वधर्मरूप यज्ञ तो पहलेसे ही आचरण योग्य है, किन्तु जो उन्मत्त पुरुष इसका अनुष्ठान नहीं करेगा, ॥३९॥ वह पुरुष केवल इंद्रियोंकी इच्छा–तृप्ति करनेके लिये जन्मा हुआ अनेक कुकर्मका राशि और भूभारभूत समझा जायगा ॥ १४० ॥ असमय आकाशमें आये हुए मेघमंडलके समान उसका जीना व्यर्थ है ॥ ४१ ॥ अथवा जैसे बकरीके गलेमें निरर्थक स्तन रहते हैं उसीके समान स्वधर्मसाधनरहित पुरुषको तुम समझो ॥ ४२ ॥ इसलिये हे धनुर्धर ! स्वधर्म किसीको छोडना नहीं चाहिये, किन्तु इस एक स्वधर्मका ही अनुष्ठान करनेसे सब कार्य होगा ॥ ४३ ॥ देखो, अर्जुन ! जब हमलोग शरीरधारी हैं तो कर्तव्यकर्म क्या शरीरको छोडकर कहींसे आया है ? नहीं, तब अपना विहितकर्म छोडनेसे कैसे बनसकेगा ? वह तो साथ ही है ॥ ४४ ॥ हे अर्जुन ! मनुष्यदेहको प्राप्त कर विहित-कर्ममें, जो आलस्य ( अथवा तिरस्कार ) करते हैं, वे निर्बुद्ध या मूर्ख ही समझे जायंगे ॥ ४५ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष निरंतर आत्म–स्वरूपमें मन लगाकर आनंदमें मग्न रहता है, उस पुरुषको देह–धर्मकी स्थिति रहते भी कर्म लिप्त नहीं होते ॥ ४६ ॥ कारण, वह आत्मज्ञानसे संतुष्ट होनेसे उसका जीवितकर्तव्य ही समाप्त होता है अर्थात् कर्मका संसर्ग अपने आप छूट जाता है ॥ ४७ ॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


देखो, प्रत्यक्ष अनुभव ही है, कि एकबार तृप्ति होनेसे उसके साधन भी आपही नष्ट होते हैं, उसी प्रकार आत्मानंदका लाभ होनेपर कर्मका नाश होता है ॥ ४८ ॥ हे पार्थ ! जबतक इस मनको आत्मानंदके उदयका लाभ नहीं होता, तबतक इन स्वधर्माचरणके साधनोंकी आवश्यकता है ॥ ४९ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

इसलिये, हे अर्जुन ! तुम इन्द्रियोंको वश करके सर्वदा सब कामनाओंसे रहित हो, स्वधर्माचरणको करो ॥ ५० ॥ हे पार्थ ! जो लोग निष्कामबुद्धिसे स्वधर्माचरण कर चुके, वे इस लोककी कीर्तिके साथ ब्रह्मस्थितिमें ही पहुँच गये हैं ॥ ५१ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

देखो, कोई एक भी विहित-कर्माचरणको न छोडकर ही जनकादि राज-ऋषि मोक्ष पदको प्राप्त भये ॥५२॥ अतएव हे पार्थ ! अपने विहित-कर्मको करनाही पडेगा, उसमें श्रद्धा भी अवश्य रखनी पडती है, इसका दूसरी बातमें भी बहुत उपयोग होता है, ॥५३॥ देखो, यदि हम स्वकर्मानुष्ठानका आचरण करते रहें तो दूसरे लोग उसे देखकर अवश्य पाठ ले सकते हैं, अर्थात् होते होते सारा संसार स्वधर्माचरणानुसार चलते ही अपाय ( दुःख ) का नाममात्र भी न रहेगा ॥ ५४ ॥ और देखो, ब्रह्मस्वरूपमें पहुँचकर कृतार्थ भये, तथा निष्कामता प्राप्त होनेसे जिन्हें कुछ भी कर्तव्य रहा नहीं; तथापि लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये, ज्ञानोत्तरकालमें भी उनकी कर्म करनेकी आवश्यकता बाकी रहती है ॥ ५५ ॥ जैसे, अन्धेको मार्ग दिखानेवाला नेत्रवान् मनुष्य उसीके अनुसार ( अन्धेजैसा ) ही चलता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् को भी अज्ञानी लोगोंको साथ लेकर ही धीरे धीरे ज्ञानोपदेश करना चाहिये ॥५६॥ देखो अर्जुन ! यदि ज्ञाताओंग इस प्रकार न चलेंगे तो अज्ञानी जीवोंको कैसे ज्ञान प्राप्त होगा ? और कर्तव्य मार्गसे च्युत रहने पर, उन अज्ञानियोंका उद्धार कैसे होगा ? ॥ ५७ ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यह अनुभव ही है कि ज्ञानी ( बड़े ) लोग जो जो आचरण करते हैं संसारमें उसीको 'धर्म' कहा जाता है, और उसीके अनुसार दूसरे साधारण लोग भी उनका अनुकरण करते हैं ॥ ५८ ॥ यह बात तो स्वाभाविक अनुभव की जाती है, इसलिये स्वधर्माचरणको छोड़ना ही नहीं चाहिये । इसपर भी जिन्हें सन्त–महात्मा कहा जाता है, वे तो इससे कभी छुटकारा नहीं पाते ॥ ५९ ॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

हे पार्थ ! अब मैं दूसरोंकी बातें किस लिये कहूं ? देखो, स्वयं मैं भी इसी कर्मानुष्ठानके मार्गसे चलता हूं ॥ १६० ॥ क्या मुझपर कोई संकट आया है ? अथवा कोई स्वार्थ साधनेके लिये मैं स्वधर्माचारको कर रहा हूं, ऐसी यदि कोई शंका करे, ॥ ६१ ॥ तो मैं स्पष्ट कहता हूं कि हे धनंजय ! पूर्णताके विषयमें मेरी बराबरी करे, ऐसा कोई भी इस संसारमें न मिलेगा, ऐसा मैं समर्थ हूं । और यह बात तुम जानते हो ॥ ६२ ॥ मेरे सांदीपिनि गुरुके मरे हुए पुत्रको मैंने यमलोकसे लाया, जिस मेरे सामर्थ्यको तुम भी जानते हो, ऐसा सामर्थ्य रहते भी अर्थात् कुछ इच्छा या कर्तव्य न रहते भी मैं विहित–कर्मका आचरण करता ही रहता हूं ॥ ६३ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

देखो, अर्जुन ! मैं जिस आचरणसे चलता हूं, मुझे देखकर कोई शंका कर सकता है कि, अब ये सकाम ही हैं ! किन्तु इसमें मेरा यही हेतु है, ॥ ६४ ॥ कि ये जो सब प्राणीमात्र मेरे भरोसे चलते हैं, उनसे किसी प्रकार की भूल न हो जाय ॥ ६५ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

हम पूर्णकाम होनेसे यदि ब्रह्मस्थितिमें ही रहेंगे और कर्माचरणको न करेंगे तो इस प्रजाजनोंकी कैसी स्थिति होगी ? ॥ ६६ ॥ क्योंकि, आज तक इस संसारकी जो चाल चल रही है, कि ये लोग हमारे आचरणको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



देखकर उसके अनुसार चलना ही श्रेष्ठ और लोकाचार समझते हैं, वह सब व्यर्थ ही हो जायगा ! ॥६७॥ इसलिये जो संसारभरमें मान्य गण्य समझे जाते हैं तथा जो ज्ञानसम्पन्न हैं, उन्हें तो कर्मका कभी त्याग नहीं करना होगा ॥ ६८ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वाँस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

देखो अर्जुन ! जिस प्रकार सकाम पुरुष फलकी इच्छासे कर्मको करता रहता है, निष्काम पुरुषको भी कर्माचरणमें वैसाही प्रेम रखना चाहिये ॥६९॥ कारण, हे पार्थ ! मैं बारबार तुम्हें कह रहा हूं, इसका मुख्य हेतु यही है कि, इस लोकस्थितिकी व्यवस्थाको सर्वतोपरि सुरक्षित रखना अवश्य कर्तव्य है ॥ १७० ॥ अतएव स्वयं शास्त्रविहित मार्गसे चलकर औरोंको भी उसीका अनुसरण करनेका उपदेश देना, किन्तु उसपर भी लोगोंकी ऐसी समझ न हो जाय कि ये अलौकिक अथवा अपनेसे भिन्न हैं ॥ ७१ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

देखो, जिस बालकको स्तनपान करनेमें भी कष्ट होते हैं, क्या उसे पकान्नका भोजन दिया जाय ? इस लिये हे पार्थ ! जैसे पकान्न उसको न देना चाहिये, ॥ ७२ ॥ वैसे ही जिसकी योग्यता कर्म करने ही की है, उसको नैष्कर्म्यकी बातोंका उपदेश करना हाँसी ठट्ठामें भी उचित नहीं ॥ ७३ ॥ किन्तु निष्काम ज्ञानवान्को उचित यही है कि, उसे सत्कर्माचरणको ही श्रेष्ठ बताकर उसकाही मार्ग दिखा देवे; और स्वयं भी उसका आचरण करते रहकर उसे एक दृष्टान्तकी तौरपर विश्वासित करना चाहिये ॥ ७४ ॥ इस प्रकार वर्णाश्रमधर्मकी स्थितिके लिये अथवा लोकसंग्रहके कारण, यदि कर्म किया जाय, तो वह कर्म बन्धनकारक नहीं होता ॥ ७५ ॥ जैसे कि बहुरूपियालोग राजा-रानीके स्वांग बनाते हैं, किन्तु उनके मनमें यद्यपि स्त्री-पुरुष भाव नहीं रहते तो भी स्वांगके समय उसमें तनिक भी संशय न दिखाकर वे लोगोंकी संतोषभावना संपादन करते हैं। उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुष भी ज्ञानोत्तर-कालमें केवल लोकसंग्रहके लिये निष्काम तथा निर्विकार-वृत्तिसे ही सत्कर्माचरणको करते रहते हैं ॥ ७६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ॥ २७ ॥

देखो अर्जुन ! यदि दूसरेका बोझा कोई अपने सिरपर ले, तो क्या वह वजनमें भारी नहीं हो सकता ? ॥ ७७ ॥ इसी न्यायसे मायागुणसे उत्पन्न हुए भले-बुरे कर्मोंको मूर्खलोग बुद्धिभ्रमसे अपनेको ही कर्ता समझकर अपने माथे उनका भार लेते हैं ॥ ७८ ॥ ऐसे जो अहंकारभरे, स्वार्थी, संकुचितदृष्टि देहको आत्मा माननेवाले मूर्ख मनुष्य हैं, उन्हें इस परमार्थके गूढतत्त्वका उपदेश कभी नहीं करना ॥ ७९ ॥ हे अर्जुन ! अब इस बातको यहां ही समाप्त कर, जिसमें तुम्हारा हित है, ऐसी बातको बताता हूं, तुम ध्यान देकर सुनो ॥ १८० ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

हे महाबाहु धनंजय ! जिस मायासे अखिल कर्मोंकी उत्पत्ति होती है, आत्मतत्त्वबोधके कारण, उन तत्त्वज्ञानियोंमें उस मायाका अभावही रहता है ॥ ८१ ॥ वे तत्त्वज्ञानी देहका अभिमान छोड, गुण और कर्मोंके पार हो, केवल तटस्थ-साक्षी वृत्तिसे शरीरमें वास कर, आचरणको करते रहते हैं ॥ ८२ ॥ अतएव, जैसे कि महीतलवासी प्राणियोंकी क्रियाओंके स्पर्श करनेपर भी सूर्य उनसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार वे तत्त्वनिष्ठ यद्यपि शरीरमें वास करते रहते हैं, तथापि कर्म उन्हें स्पर्श नहीं करसकते ॥ ८३ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥

देखो, संसारमें कर्मसे वही लिप्त हुआ रहता है, जो गुणोंके भ्रममें आ, मायाकी वशतासे चलकर कर्मको करता है ॥ ८४ ॥ वे इन्द्रियगण गुणोंके आश्रयसे अपने स्वभाव-धर्मानुसार जो व्यवहार करते हैं, उन पराये व्यवहारको ही यह पुरुष बलात् अपनेमें अङ्गीकार करलेता है ॥ ८५ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे अर्जुन ! तुम सब विहित-कर्मोंको करके मुझे समर्पण करो, परंतु चित्तवृत्तिको निरंतर आत्मस्वरूपमें ही लगा रखो ॥ ८६ ॥ और यह ध्यान रखो कि 'यह कर्म, मैं कर्ता, और अमुक फलकी इच्छासे मैं इसे करूंगा' इस प्रकारके अभिमानको अन्तःकरणमें तनिक भी प्रवेश न होने दो ॥८७॥ तुम इस शरीरके वश मत हो जाओ, सब कामनाओंको छोड दो और जिस समय जो भोग प्राप्त हों, किसी प्रकारकी शंका विना उनका उपभोग करो ॥ ८८ ॥ हे अर्जुन ! अब धनुष-बाण हाथमें लेकर रथपर चढो और शांत-वृत्तिसे प्रसन्नताके साथ इस क्षात्र ( वीर ) वृत्तिका अंगीकार करो ॥ ८९ ॥ संसारमें कीर्तिका फैलाव करो, स्वधर्मको आद्य समझ उसको शिखरपर चढाओ और भूमिका भार उतारकर उसे मुक्त करो ॥ १९० ॥ हे विजय ! अब कोई भी शंका न रखकर, अपने क्षात्रधर्मरूप इस युद्धकी तरफ ध्यान दो, हे अर्जुन ! युद्धके सिवाय अब कोई भी वार्ता मत करो ॥ ९१ ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥

हे धनुर्धर ! मेरे इस निश्चित तथा निर्बाध मतका जो लोग आदरके साथ स्वीकार कर श्रद्धासहित उसके अनुसार आचरण करेंगे, ॥ ९२ ॥ तो यद्यपि वे सब कर्म आचरते रहेंगे तो भी, उन्हें वे कर्म बन्धनकारक नहीं होंगे, अतएव यह मेरा मत तुम्हें निश्चयसे आचरण करने योग्य है ॥ ९३ ॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

कदाचित् कोई, मायाजालमें फँसे हुए केवल इंद्रियोंके लालची बन, यदि मेरे इस मतका अनादर करके धिक्कार करें, ॥ ९४ ॥ या जो मेरे इस मतको साधारणही समझेंगे, अथवा उसकी उपेक्षा करेंगे किंवा यह समझेंगे कि 'यह श्रीकृष्ण व्यर्थका बकवाद कररहा है,' यह केवल फलश्रुति ( स्तुतिवाक्य ) है, ऐसा समझनेवाले वे लोग मोह-मदिरासे मतवाले, विषय-विषसे व्याप्त तथा अज्ञानपंकसे चिथडे हुए ही समझे जायंगे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ देखो, प्रेत(मृत) के हाथमें दिया हुआ रत्न क्या उसे कुछ कामका है ? अथवा जन्मान्धको प्रभातका कुछ अनुभव होता है ? ॥ ९७ ॥ किंवा चंद्रोदयसे कौएको जैसा कुछ लाभ नहीं, उसी प्रकार कर्मयोगका यह विवेकभरा मेरा उपदेश

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विवेकशून्य मूर्खोंको लाभदायी नहीं ज्ञात होगा ॥ ९८ ॥ अतएव वे लोग इसका आदर नहीं करते, बरन् निंदाही करने लगते हैं, उचित ही है, क्या पतंग दीपकके प्रकाशको सह सकता है ? ॥ ९९ ॥ देखो, पतंग दीपकको आलिंगन करने जाता है, किन्तु उसीमें जैसी उसकी अवस्था (मृत्यु) होती है, विषयोंका सेवन भी उन विवेकशून्योंके लिये वैसाही प्राण-घातक होता है ॥ २०० ॥ अतएव हे पार्थ ! जो लोग इस परमार्थसे विमुख हैं, उन विवेकरहितोंसे सम्भाषण भी नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! ये इन्द्रियां एक ऐसी चीज हैं,जिनको कोई ज्ञानवान् पुरुष भी स्वच्छन्दतासे, मजेसे या उनके रञ्जनसे इनको महत्त्व देकर बहुत प्यार न करे ॥ २ ॥ देखो सर्पके साथ कोई खेल सकता है ? अथवा क्या शेरके साथ मैत्री की जासकती है ? किंवा हालाहल विषको कोई पचा सकता है ? ॥ ३ ॥ जैसे कि मौजके लिये अग्निकोबला दिया जाय, फिर जब वह हवासे भडक-कर अपनी सामर्थ्यसे बाहर होजाती है और सँभाली नहीं जाती, उसीप्रकार इन इन्द्रियोंकी इच्छा—तृप्तिके लिये उन्हें प्यार करना मानो एक जान बूझकर संकट प्राप्त कराना ही है ॥ ४ ॥ देखो अर्जुन ! यदि यह देह ही पराधीन हैं, तो इसके लिये हमें अनेक तरहके भोगकी सामग्री इकट्ठा करनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ ५ ॥ और उन विषयोंकी तृप्तिके लिये अनेक प्रकारके कष्ट सहन कर, रात-दिन उन विषयोंसे इस शरीरको क्यों पूर्ण करते रहना ? ॥ ६ ॥ तथा हे अर्जुन ! नाना तरहसे श्रम करके अनेकप्रकारकी संपत्ति प्राप्त कर, और इस प्रकारके कष्ट करते समय स्वधर्मको भी भूलकर, इस शरीरको सर्वतोपरि क्यों पुष्ट किया जाय ? ॥ ७ ॥ वास्तविक देखो तो यह शरीर पांचभौतिक है, जो आखिरमें उन पंचभूतोंमें ही समाविष्ट होगा फिर इस प्रकार पञ्चत्वको प्राप्त होनेपर, इसके लिये जो विविध श्रम और विविध संपत्ति प्राप्त की, उसका फल कहां मिलेगा ? ॥ ८ ॥ इसलिये हे अर्जुन ! शरीरपोषण करते रहना भी स्पष्ट आत्मघात ही है, इसलिये केवल पिंडपोषणमें ही अन्तःकरणको लगा रखना योग्य नहीं है ॥ ९ ॥

इन्द्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


साधारण रीतिसे देखाजाय तो यही ज्ञात होगा कि, इन्द्रियोंकी अभिरुचिके अनुसार उन्हें विषय प्राप्त करा देनेसे अन्तःकरणमें सचमुच सन्तोष होता है, ।। २१० ।। किन्तु वह बात ऐसी समझो कि जैसे किसी संभावित चोरके साथ चलनेमें जबतक ही उसकी संगति ठीक है, कि जबतक शहरका मार्ग नहीं खतम हुआ ! ।। ११ ।। अथवा प्रसंगवश विषकी मधुरता आरम्भमें कदाचित् मनको भूलसे प्रीतिवश करलेती है, किन्तु परिणाम देखा जाय तो वह प्राण–घातही करेगी, ।। १२ ।। उसी प्रकार इन्द्रियोंमें जो इच्छा ( विषयवासना ) रहती है वही उन्हें, अन्यथामार्गपर खैंचलेती है, जैसे आमिषकी अभिलाषासे वनसी ( बाडिश ) मत्स्यको भुला देती है ।। १३ ।। किन्तु उस आमिषमें प्राणहारक वनसी होगी, यह बात वह मीन कैसे जाने ? क्योंकि वह ( कांटा ) आमिषसे अदृष्ट किया रखा रहता है ।। १४ ।। यही दशा विषयवासनासे मनुष्यकी होती है, विषयोंकी आशासे प्राणी क्रोधाग्निके अधीन हो जाता है ।। १५ ।। जैसे शिकारी ( बहेलिया ) अपनी शिकार ( मृग ) को चारों तरफसे भुलाभुलाकर उसको घातके स्थानमें जान बूझकर लाता है, ।। १६ ।। उसी प्रकार बुद्धिको चारों तरफसे पकडकर उसे नष्ट करनेमें विषयवासना सदा बाट देखती रहती है, इसलिये हे पार्थ ! ये काम और क्रोध महाघातक शत्रु हैं, इनका संग मत करो ।। १७ ।। बहुत क्या ? इन दोनोंका साथ कभी भूलसे भी नहीं करना चाहिये। इनका मनमें स्मरण तक तुम मत करो और अपने आत्मसुखके अनुभवकी आर्द्रता नष्ट न हो, ऐसा ध्यान रखो ।। १८ ।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

हे अर्जुन ! अपना धर्म यद्यपि कठिन हो तथापि उसीके आचरणमें कल्याण है ।। १९ ।। और दूसरोंका आचार देखनेमें कैसा भी अच्छा प्रतीत हो, तथापि धर्माभिमानीको उचित है, कि उसे अपने धर्मपरही निश्चित रहना चाहिये ।। २२० ।। हे अर्जुन ! तुमही कहो, क्या शूद्रके घर बड़े उत्तमोत्तम पकान्न बने हैं, तो क्या दरिद्री क्षुधातुर ब्राह्मणको भी उन्हें खाना योग्य है ? ।। २१ ।। ऐसी अनुचित बातको क्यों करना ? जो वस्तु ग्रहण करनेके योग्य न हो, उसकी इच्छा कैसे की जाय ? समझो, यद्यपि, उसकी इच्छा भी हो तो क्या वह स्वीकार की जा सकती है ? हे अर्जुन ! इसका तुम भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विचार कर सकते हो ! ॥ २२ ॥ देखो, पार्थ ! ऐसा कभी हो सकता है, कि दूसरोंके सुंदर और मनोहर महल देख, अपनी फूस ( तृण ) की बनी हुई झोपडी तोड दी जाय ? ॥ २३ ॥ यह तो जाने दो; देखो, यदि अपनी स्त्री कुरूपा हो तो भी उसीके साथ रमण होनेमें जैसा कल्याण है, ॥२४॥ उसी प्रकार, स्वधर्म कैसा भी कठिन या संकटभरा हो, आचरणमें दुर्घट ज्ञात हो तथापि वही परलोकमें सुखावह है ॥ २५ ॥ देखो, खांड तथा दूध तो मधुरतामें प्रसिद्ध ही है, किन्तु कृमिरोगवालेके लिये तो अपथ्य बताया है, इसलिये यद्यपि मधुर है, तो वह पी सकेगा ? ॥२६॥ और इसपर वह दुराग्रह-से पी भी सके, तो उसे सुख होना दुर्लभ ही है, किन्तु उसका दुष्परिणाम उसे भोगना ही पडेगा ॥ २७ ॥ अतएव हे धनुर्धर पार्थ ! यदि अपना कल्याण विचारना हो, तो दूसरोंके लिये विहित ( हित ) किन्तु अपनेको अनुचित हो, उसका कभी आचरण न करना ॥ २८ ॥ स्वधर्माचरणमें यदि मृत्यु भी हो जाय, तो उसे भी इष्ट समझना चाहिये, कारण दोनों लोकोंमें वह श्रेष्ठ ही माना जायगा ॥ २९ ॥ इस प्रकार देवश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी बोले, तब अर्जुनने कहा मेरी एक प्रार्थना है ॥ २३० ॥ "हे भगवन् ! आपने अभी तक जो जो कहा वह सब मैंने अच्छी तरह श्रवण किया, अब मेरे मनमें जो कुछ आ रहा है, उसे पूछनेकी इच्छा करता हूं" ॥ ३१ ॥

**अर्जुन उवाच।**

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

हे भगवन् ! "ऐसा होनेका क्या कारण है, कि ज्ञाता लोग भी आत्म-वृत्तिकी स्थितिसे भ्रष्ट हो, सन्मार्ग छोड, अन्यमार्गसे भटकते फिरते दिखायी देते हैं ? ॥ ३२ ॥ जो सर्वज्ञ हैं तथा ग्राह्याग्राह्यमें जो पूर्ण विचारवान् हैं, वे किसकारण परधर्मका स्वीकार कर, स्वधर्मको उल्लंघन करते हैं ? ॥ ३३ ॥ अंधेको, जैसा धान्य और भूसा अलग करनेमें ज्ञान नहीं रहता, क्या ज्ञाता-ओंको भी कभी ग्राह्याग्राह्यकी विवेचनामें भ्रम होजाता है ? ॥ ३४ ॥ जो अपना फैलाया हुआ स्वाभाविक कर्मका संग भी छोड देवे हैं, क्या फिर संसार-व्यवहारके करनेमें तृप्त नहीं होते, वनवासके योग्य रहनेपर फिर भी मनुष्यवस्तीकी ही इच्छा करते हैं ? ॥ ३५ ॥ वे छिप करके स्वयं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


पापोंको पूर्णतासे टाल देते हैं, तो भी केवल बलात् स्वयंही पापाचारमें रत होते रहते हैं ॥ ३६ ॥ जिस वस्तुको मनसे घृणित समझा जाता है, उसीको जीव बडी प्यारसे चाहता है, और यदि उसे टाल देनेका यत्न किया जाय, तो वह स्वयं ही आकर अपनेको चिपकती है ॥ ३७ ॥ इस प्रकारका बलात्कारका परिणाम ज्ञानियोंपर भी हुआ दिखायी देता है, तो यह सामर्थ्य किसका है ? हे भगवन् ! यह मेरी शंकाका समाधान कीजिये" ऐसा अर्जुनने कहा—॥ ३८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

तब, योगिजनोंके निष्काम चित्तको भी सकाम करनेवाले, आत्माराम, हृदयकमलको सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण कहने लगे, हे अर्जुन ! मैं जो कहता हूं उसे सावधान होकर सुनो ॥ ३९ ॥ ये जबर्दस्तीसे आचरण करानेवाले काम—क्रोध ही हैं, जिनमें दयाका लेश भी नहीं रहता है, इन्हें मूर्तिमंत काल ही समझो ! ॥ २४० ॥ ज्ञानकी पूँजीपर ये कालसर्पसरीखे लपेटे रहते हैं, अगर इन्हें विषयोंकी कंदराके व्याघ्र ही समझो, अथवा ईश्वरभक्तिके राहपरके ये लुटेरे प्राणघातक मांग हैं ॥ ४१ ॥ इन्हें इस शरीररूपी पहाडके पत्थर, या इन्द्रिय—नगरके कोट ही समझना, क्योंकि संसारमें इनके जबर्दस्त अज्ञानका प्रभाव है ॥ ४२ ॥ ये रजोगुणमंत्रसे शिक्षित राक्षस हैं और अज्ञान-अन्नके भोक्ता हैं ॥ ४३ ॥ यद्यपि ये काम—क्रोध, रजोगुणसे उत्पन्न होते हैं तथापि तमोगुणके ये बडे प्यारे रहते हैं, इस लिये तमोगुणके जो स्वभावगुण, प्रमाद-मोह इत्यादि हैं, वे उसने इन्हें समर्पण करदिये हैं ॥ ४४ ॥ ये काम-क्रोध जीवितको भी घात करनेवाले होनेसे, इनका मृत्युकी राजधानीमें बडा गौरव रहता है ॥ ४५ ॥ इन दोनोंको जब भूख सताती है, तब इन्हें यह सारा संसार एक ग्रासके लिये भी कम समझो, इनका हाथ जिस काममें पडता है फिर वह बढता ही रहता है, इनकी आशाका अंत ही नहीं ॥ ४६ ॥ आशाकी छोटी बहन 'भ्रांति' इनकी बडी प्यारी है, यह भ्रान्ति भी ऐसी विलक्षण है, कि जब चाहे संपूर्ण चतुर्दश भुवनोंको एक मुट्ठीमें गडप कर सकती है ! ॥ ४७ ॥ इसका सामर्थ्य क्या कहा जाय, जैसे छोटी लडकियां अपना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



खेल खेलती हैं ( वास्तवमें जहां सत्यता नहीं रहती ) ऐसे खेलमें त्रैलोक्यको भी यह खतम करती है, और इसीकी निकृष्ट दासीकी तौरपर तृष्णा अपना जीवन चलाती है ॥ ४८ ॥ और मोह भी इन लोगोंका बडा मान रखता है, तथा अहंकारका लेन-देनका व्यवहार इनके साथ चलता रहता है, अतएव इनके आश्रयसे वह भी संसारको चाहे जैसा नचाता रहता है ॥ ४९ ॥ सत्यका गूदा निकालकर उसमें असत्यका भूसा भरनेवाला दंभ तो, इन्हें इतना प्यारा है कि, ये(काम-क्रोध) उसे माथे चढा रखते हैं॥२५०॥ इन्होंने ही पतिव्रता शान्तिको लूटकर मायारूपी भिखमंगी ( माँगन ) को शृंगारित किया है, जिसके स्पर्शसे ही साधुजन भ्रष्ट होते हैं ॥ ५१ ॥ इन काम-क्रोधोंने विवेकके मूलको ही उखाड दिया है, वैराग्यके अंगकी चमडी निकाली है और उपशमके जीतेजी गला मरोड दिया है ॥ ५२ ॥ इन्होंने ही संतोष-वनको उजाड कर दिया, धीरजके किले तोड डाले और आनंदका अत्यल्प कोमल बिरवा उखाडकर फेंक दिया ॥ ५३ ॥ उपदेशकी परंपराको इन्होंने बिगाड दिया, सुखके अक्षरोंको मिटा दिया और संसारके अंतःकरणमें त्रिविध-तापोंकी अग्नि उत्पन्न करदी ॥ ५४ ॥ जबसे इन्होंने शरीर धारण किया है, तबसे ये हृदयमें ही भिडगये हैं, और खोजनेपर ब्रह्माको भी इनका पता नहीं मिलता ॥ ५५ ॥ और देखो, ये चैतन्यतत्त्वके पास ज्ञानकी पंक्तिमें ही बैठा रहते हैं, इसलिये जब उत्पातका मौका आता है, तो किसीके रोके नहीं रुकते, मानो ये प्रलयकालके भागीदार ही हैं॥५६॥ इनकी करतूतका आश्चर्य तो देखो, बिना जलसे प्राणियोंको डुबा देते हैं, बिना अग्निसे जला सकते हैं और किसी वार्ताके बिना ही प्राणियोंको लपेटे रहते हैं ! ॥ ५७ ॥ इन्हें किसीको मारनेके लिये शस्त्रकी आवश्यकता नहीं पडती, रस्सीके बिना बाँध देते हैं और ज्ञानवान्‌के मारनेमें तो शूरवीर ही हैं ! ॥ ५८ ॥ कीचडके बिना ही गाड देते हैं, बिना जालके फाँसमें पकडते हैं और बलाढ्यता और निर्लज्जतामें किसीसे हार नहीं खाते ॥ ५९ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथा दर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

चन्दनकी जडमें जैसा सर्प लिपटा रहता है, अथवा गर्भाशयकी खोल जैसी गर्भवेष्टनसे गर्भको ढँका रखती है ॥ २६० ॥ अथवा प्रभा बिना सूर्य, धूमके बिना अग्नि किंवा मलरहित दर्पण कभी देखा नहीं जाता, ॥ ६१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


उसी प्रकार इन काम-क्रोधका जिसमें गंध न हो ऐसा निर्मल 'ज्ञान' हमारे देखनेमें नहीं आया, जैसे कि अनाजका बीज फफोलेसे ढका हुआ ही रहता है ॥ ६२ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

उसी तरह, यद्यपि यह ज्ञान स्वयं शुद्ध है, तो भी इन काम-क्रोधके आच्छादनसे ढका हुआ रहता है ॥ ६३ ॥ कदाचित् पहले इन काम-क्रोध को जीतकर पीछे ज्ञानसंपादन किया चाहे, तो इन दुराधर्ष दैत्योंको जीतना ही असंभव है ॥ ६४ ॥ कोई कहे कि इन्हें मारनेके लिये सामर्थ्यवान् बन जाय ! तो अग्निकी शान्तिके लिये भभकती लकडी जैस अग्निको सहायक ही होती है, ॥ ६५ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

-उसी प्रकार इनके हटानेमें जो जो उपाय किये जायँ वे सब इन्हें सहायक ही होते हैं, इसलिये औरोंकी तो बात छोड दो, ये काम-क्रोध हठ-योगियोंको भी सताते रहते हैं ॥ ६६ ॥ हे अर्जुन ! ऐसा है तो भी इनके जीतनेका एक उपाय है, यदि तुम्हें पसन्द हो, तो बता देता हूं ॥ ६७ ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

इन काम-क्रोधका मुख्य उगम-स्थान हैं इंद्रियां, और इन इन्द्रियोंसे ही कर्म-प्रवृत्ति होती है, अतएव सबसे पहले इन इन्द्रियोंको ऐस मारो, कि फिर वे माथा उठाही न सकें ॥ ६८ ॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

ऐसा करनेपर, मनका इधर उधर दौडना आपही बंद होगा, तथा बुद्धिका छुटकारा होगा, फिर इन दुष्ट काम-क्रोधोंका बिलकुल आश्रय ही नष्ट हो जायगा ॥ ६९ ॥


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एवं बुद्धेः परं बुद्धा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे महाबाहु अर्जुन ! इस प्रकार इन दोनों काम–क्रोधोंको अंतःकरण-मेंसे निकाल देनेपर ये सर्वतः नष्ट हुएही समझो, जैसे सूर्यकिरण न रहनेसे मृगजल नहीं रहता, ॥ २७० ॥ उसी तरह काम–क्रोधोंके नष्ट होते ही, ब्रह्मज्ञानका साम्राज्य हाथ आ जाता है, फिर यह जीव आत्मानंदके सुखका खूब अनुभव पाता है ॥ ७१ ॥ और गुरु–शिष्यका गुप्त रहस्य अथवा जीव-शिवकी भेंट जो कहा जाता है, उसी आनंदस्थितिमें जीव निश्चलतासे बैठ जाता है, जहांसे कभी कहीं जानेकी इच्छा नहीं होती ॥ ७२ ॥ संजयने धृतराष्ट्रसे कहा–'हे राजन्, धृतराष्ट्र ! संपूर्ण सिद्धान्तोंके राजा, लक्ष्मीके पति, देवदेवेश्वर श्रीकृष्ण भगवान्ने ऐसा उपदेशात्मक भाषण किया' ॥७३॥ अब वे भगवान् एक महत्त्वकी पुरातन कथाको कहेंगे । और अर्जुन उसपर प्रश्न पूछेगा, ॥७४॥ उन दोनोंके संवादकी योग्यता तथा उसके सुंदर माधुर्यसे रसिक श्रोतागणोंको श्रवणका सुखसागर प्राप्त हो जायगा ॥ ७५ ॥ अत एव मैं, श्रीनिवृत्तिनाथका शिष्य ज्ञान देव, आप श्रोताजनोंसे कहता हूं कि, आप सब लोग इस ज्ञानप्राप्तिके लालची बनकर, श्रीकृष्णार्जुन-संवादकी मधुरताका यथेच्छ सेवन कीजिये ॥ २७६ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः भाषानुवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

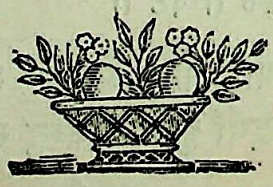

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमोभगवते वासुदेवाय।

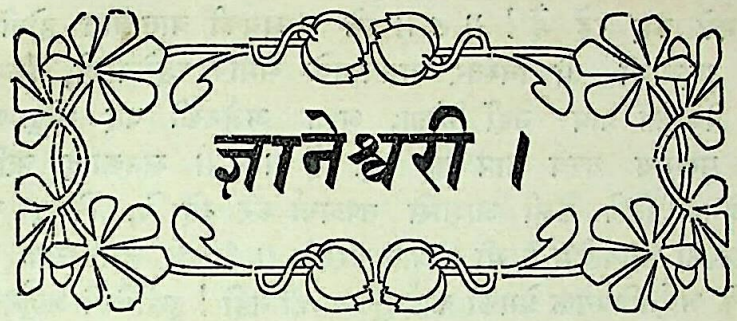


# चतुर्थोऽध्यायः ४.

आज श्रवणेन्द्रियके अहोभाग्यका सुप्रभातकाल उदय हो रहा है, गीतारूपी द्रव्यका भाण्डार उसके लिये खुला हो रहा है, जो बात स्वप्नसृष्टिवत् काल्पनिक प्रतीत हो रहती थी, आज वह सत्य-सृष्टिमें दिखायी दे रही है ॥१॥ देखिये पहले तो यह विषय अध्यात्म-विचारका, उसपर सर्वविच्छ्रेष्ठ जगदीश्वर श्रीकृष्ण परमात्मा उसके प्रतिपादक और श्रोता भक्तशिरोमणि पृथापुत्र अर्जुन ! ॥ २ ॥ उस प्रसंगका वर्णन किस उपमासे किया जाय ? कोकिलका पञ्चम स्वर, मधुर सुगंध और अमृतभरी मीठी अभिरुचिका एकत्र संयोग होनेसे जैसे आनंद ही आनंद प्रतीत हो, उसी प्रकार यह गीता कथाप्रसंग बडा मजेका रहा ! ॥ ३ ॥ आज हमलोगोंका भी बडा अहोभाग्य है, कारण आज हमें अर्जुनके निमित्तसे अमृतभरी गंगाजी प्राप्त हो रही हैं, सचमुच आज श्रोताओंके सब जप-तप सफल हो गये ! ॥ ४ ॥ अब सब इन्द्रियोंको सावधानीके साथ सूचित किया जाता है, कि वे शीघ्रताके साथ श्रवणेन्द्रियमें जा बैठें और भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके संवादका रसास्वाद लेते रहें ॥ ५ ॥ अब मैं इस लम्बे चौडे प्रस्तावको यहां ही समाप्त कर कथाप्रसंगको कहता हूं। जिस समय भगवान् तथा अर्जुन वार्तालाप कर रहे थे, ॥ ६ ॥ उस कालमें संजयने धृतराष्ट्रसे कहा-हे राजन्, धृतराष्ट्र ! देखो निर्मल गुणोंकी दैवी संपत्तिसे मंडित अर्जुन बडा भाग्यशाली है। कारण, श्रीकृष्ण परमात्मा बडी प्रेमभरी बातें उसके साथ करते हैं ! ॥ ७ ॥ राजन् ! अर्जुनके भाग्यको कैसा वर्णा जाय, जो बात भगवान्ने पिता वसुदेवजीसे न कही, माता देवकीको न सुनायी, बडे भ्राता बलरा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मजीसे भी छिपा रखी, वह गुप्त और तत्त्वभरी बात प्रेमके साथ अर्जुनसे कह रहे हैं ! ॥ ८ ॥ बडे आश्चर्यकी बात ज्ञात होती है, कि देवी लक्ष्मीजी तो निरंतर भगवान्‌के समीप रहनेवाली, किन्तु उसे जो प्रेमसुख प्राप्त नहीं होता, आज अर्जुनको वह श्रीकृष्ण-प्रेमका सच्चा सुखमय तत्त्व प्राप्त हो रहा है ॥ ९ ॥ सनकादि ऋषि सच्चे ईश्वरप्रेमके लिये कैसी आशासे तपश्चर्या कर रहे थे, किन्तु अर्जुनकी योग्यताका भगवत्प्रेम वे भी न प्राप्त करसके ॥ १० ॥ जगन्नायक गोपाल-कृष्णके अर्जुनविषयक प्रेमकी कोई तुलना ही नहीं ! इसीलिये अर्जुनका बडा भाग्य है ! वह बडा सुकृती है ! ॥ ११ ॥ देखो, निर्विकार ईश्वर इसके लिये साकारत्वको प्राप्त हो अवतीर्ण हो, रहा है ! राजन् धृतराष्ट्र ! मुझे तो ये दोनों एकरूप ही ज्ञात होते हैं ॥ १२ ॥ जो योगीजनोंकी खोजमें नहीं आता, वेद भी जिसकी स्तुतिसे थककर नेतिनेति कहकर मौनको धारण करते रहते हैं और ध्यान धारणकी दृष्टिसे जो परे है, ॥ १३ ॥ ऐसे वे श्रीकृष्ण आत्म-स्वरूप, अनादि और निर्विकार होनेपर भी इस अर्जुनके लिये कैसे प्रेमी और सदय हो रहे हैं ! ॥ १४ ॥ जो त्रैलोक्यरूपी वस्त्रका तह है, अथवा आकारादि विकारोंसे परे हो जानेवाला, ऐसा सामर्थ्यवान् रहते भी अर्जुनके प्रेमने उसे कैसा अपने अधीन कर रखा है ! ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

फिर भगवान् अर्जुनके प्रति कहने लगे—भगवान् बोले—हे पाण्डुपुत्र अर्जुन! यही योग हमने बहुत काल पीछे विवस्वान् ( सूर्य ) को कहा था ॥ १६ ॥ उस सूर्यने इस योगकी स्थिति अच्छी तरह वैवस्वत मनुसे निवेदित की ॥ १७ ॥ मनु भगवान्‌ने इसको अनुष्ठित कर, इक्ष्वाकु राजाको उसका उपदेश किया । इस प्रकार इस योगकी पुरातन परंपरा है ॥ १८ ॥

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! तदनंतर अनेक राजर्षियोंसे इस योगका ज्ञान भया । सांप्रत-कालमें इस योगको जाननेवाला कोई दिखायी नहीं देता ॥ १९ ॥ कारण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


इसका यह है कि, प्राणी विषय-वासनामें तृप्ति चाहते हैं और देहबुद्धिके अनुसार चल रहे हैं, इसलिये वे आत्मज्ञानको भूलही गये ॥ २० ॥ आत्म-निष्ठामें निश्चित भावना न होनेसे केवल विषयसुखको ही प्राधान्य देकर तदनुसार अनेक प्रकारके संकटमय व्यापार करनेमें ही लोग सदैव लगे रहते हैं और जैसा जीव है वैसी इन्हें उपाधि भी प्रिय होती रहती है ॥ २१ ॥ नहीं तो, जहां वस्त्रकी कभी आवश्यकता ही नहीं, ऐसे दिगंबर क्षपणक जैन साधुओंके गांवमें बहुमोल वस्त्रोंका काम ही क्या है ? अथवा जन्मान्धको सूर्यके प्रकाशसे क्या लाभ ? ॥२२॥ तुमही कहो, बहिरोंकी मंडलीमें गायनको कौन चाहता हो ? अथवा क्या कभी सियार भी चंदनसे प्रेम करसकता है ? ॥ २३ ॥ किंवा चंद्रोदयके पहले ही जिनकी आँखें बंद हो जाती हैं उन कौओंको क्या चंद्रोदयका प्रकाश जान पडेगा ? ॥ २४ ॥ उसी प्रकार, जिन लोगोंने वैराग्यके गामकी सीमातक नहीं देखी, 'विवेक' किस वस्तुको कहा जाता है, यह बात जिन्हें अज्ञात है, क्या वे अज्ञानी-मूर्ख पुरुष मेरे परमात्मस्वरूपको पहँचान कर मुझे प्राप्त कर सकते हैं ? ॥ २५ ॥ न जाने इस प्रकारका यह मोह कैसा प्रवृत्त होकर बढगया ! जो कुछ भी हो, इस मोहके कारण बहुतसा समय व्यर्थ व्यतीत हुआ और इस लोकमें यह कर्मयोग लुप्त होगया ! ॥ २६ ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

वही बहुत पुराना कर्मयोग आज मैंने, हे अर्जुन ! तुमसे कहा है, तुम इसे भूलना नहीं, और अब सब संशयोंसे मुक्त हो जाओ ॥ २७ ॥ यह कर्मयोगतत्त्व मेरे हृदयका एक गुप्त रहस्य है, किन्तु वह भी तुम्हें कहनेमें बाकी नहीं रखा, कारण तुमसे मुझे कोई भी प्यारा नहीं है ॥ २८ ॥ हे धनुर्धर पार्थ ! तुम केवल प्रेमके अवतार, भक्तोंके प्राण और स्नेहके जीवन-सर्वस्व हो ॥ २९ ॥ हे पार्थ ! तुम श्रद्धाके आश्रयस्थान हो, फिर तुमसे प्रतारणा कैसे की जा सकती है ? यद्यपि हमलोग युद्धभूमिमें युद्धके लिये उद्यत हो रहे हैं, ॥ ३० ॥ तथापि क्षणमात्र इस बातको दूर रखकर तथा इस गडबडीको शांत कर, तुम्हारा शंकानिरसनपूर्वक समाधान हो और तुम्हें इस असमय मोहसे छुटकारा प्राप्त हो, यही मेरा सबसे पहला कर्तव्य है ॥ ३१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

तब अर्जुन बोला–" हे भगवन्! माता यदि अपने बालकपर प्रेम करे, तो उसमें आश्चर्यकी क्या बात है ? हे दयानिधे ! आपही देखिये, ॥ ३२ ॥ कि आप तो सब संसारीलोगोंके श्रम दूर करनेके लिये शीतल छाया हैं तथा निराश्रितोंके सर्वाश्रय हैं, हमलोग तो आपकी कृपासे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! जैसा कि, किसी स्त्रीको कोई पंगु पुत्र उत्पन्न हो, तो माताको आजन्म उसके जंजाल (कष्ट) सहन करना पडता है, उसी तरह हमलोगोंसे आप निरंतर कष्ट सह रहे हैं,आपके सामने हम आपकी बडाईका क्या वर्णन करें ? ॥ ३४ ॥ हे कृपासागर ! अब जो मैं पूछता हूं इसपर ध्यान दीजिये और मेरी अज्ञतापर क्रोध न कीजिये ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! आपने जो पुरातन बात कही ( कि मैंने ही विवस्वान्को कर्मयोग कहा ) वह मेरे मनको यत्किंचित् भी नहीं जँचती ॥ ३६ ॥ कारण वह विवस्वान् कौन था यह हमारे बूढे लोग भी नहीं जानते, फिर आपने उसे उपदेश किया यह कैसे संभव हो सकेगा ? ॥ ३७ ॥ क्योंकि वह विवस्वान् ( सूर्य ) तो बहुत पुरातन कालसे है, ऐसा सुना जाता है, और आप ( श्रीकृष्ण ) तो आजकलके ! फिर आपकी कही हुई यह बात असंबद्धसी जान पडती है ॥ ३८ ॥ किन्तु, हे भगवन् ! आपका चरित्र बडा अगम्य है, हम उसे कुछ भी नहीं जानते, अतएव आपकी बातको मिथ्या कहनेका भी कैसे धाष्टर्य कर सकते हैं ? ॥ ३९ ॥ इसलिये जिस तरह मेरी समझमें ठीकठीक आजाय इस प्रकार आप बताइये, जिसको मैं भी अच्छीतरह समझूं कि आपने ही विवस्वान्-सूर्यको उपदेश किया था " ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

तब श्रीकृष्ण बोले-हे शत्रुसूदन पार्थ ! जब वह विवस्वान् था, उस समय हम थे नहीं, यही तुम्हारा निश्चित मत है न, ॥ ४१ ॥ ठीक, इससे तुम इस बातमें अजान हो । देखो पार्थ ! तुम्हारे और हमारे तो अनेक जन्म हो चुके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हैं, उनका तुम्हें स्मरण नहीं है, ॥ ४२ ॥ किन्तु मैं जिस जिस कालमें जो जो अवतार धारण करता हूं, उन सबका मुझे पूर्ण स्मरण रहता है ॥ ४३ ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

अतएव पुरातन कालकी सब बातें मुझे स्मरण हैं । यद्यपि मैं अजन्मा हूं, तथापि प्रकृति–मायाका अंगीकार करनेसे जन्म लेता हूं ॥ ४४ ॥ परन्तु, जन्म लेनेपर भी मेरी निराकारताका भंग नहीं होता, मेरा जन्म और मृत्यु ( निजधामगमन ) जो देखने सुननेमें आते हैं, वे मेरी मायाके कारण मुझमें ही आरोपित होते रहते हैं, वह केवल भासमात्र है ॥ ४५ ॥ उससे मेरी स्वतन्त्रतामें कुछ भी हेरफेर नहीं होता, तथा अवतारकालीन मेरी कर्माधीनता जो दिखायी देती है, वह भी भ्रान्ति ही समझो अर्थात् भ्रान्तिके नष्ट होनेपर, मैं निराकार निर्गुण स्वस्वरूपमें ही रहता हुआ प्रतीत होऊँगा ॥४६॥ एक वस्तुकी दो दिखायी देना केवल दर्पण कारण है, किन्तु दर्पणमें यदि प्रतिबिंब दिखायी दे तो विचार करनेपर क्या वह दूसरी वस्तु भी सच हो सकती है ? ॥ ४७ ॥ वैसेही हे विजय ! मैं अमूर्त निराकार ही हूं, किन्तु जब मायाका आश्रय लेता हूं, तब कार्यके निमित्त साकार हो, नट-सरीखा वेष धारण करता हूं ॥ ४८ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

कारण आरम्भसे ही यह परिपाटी चलरही है, कि हरेक युगमें धर्मरक्षणके कार्य मैं ही करता चला आया हूं ॥ ४९ ॥ इस कारण जब जब अधर्म बढकर धर्मको पराजित करता है, उस उस कालमें मैं अपने जन्मराहित्यके प्रभुत्वको छोडकर अपनी निराकारताको भी भूल जाता हूं ॥ ५० ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

और अपने भक्तोंका तथा कर्मनिष्ठोंका पक्ष लेकर मैं साकाररूपसे अवतीर्ण होता हूं, और अज्ञान–अंधकारको नष्ट कर देता हूं ॥ ५१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अधर्मकी सत्ता ( सीमा ) भी नहीं रखता, दोषोंका नामतक नहीं रख छोडता, और साधु-सन्तोंसे धर्मकी ध्वजाको फहराता हूं ॥ ५२ ॥ उसी प्रकार असुरकुलोंका संहार करके साधुओंके मानका संमान करता हूं और धर्म तथा नीतिको एकत्र संमिलित करके उनपर मंगल अक्षताओंकी वर्षा करता हूं ॥५३॥ इसी प्रकार मैं अविवेकरूपी कज्जलको उडाकर ज्ञानरूपी दीपकको प्रकाशित करता हूं । इस प्रकारकी स्थिति उत्पन्न होते ही साधु-सन्तोंके लिये वह काल नित्य दीपोत्सवसा प्रतीत होता है, ॥ ५४ ॥ सब विश्व आत्मसुखसे भरजाता है, धर्मके बिना संसारमें दूसरा कुछ दिखायी नहीं देता तथा भक्तजन सात्त्विक भक्तिसे मोटेताजे तोंदबढे आकण्ठ भरेपूरे रहते हैं ! ॥५५॥ हे पार्थ ! जब मैं अमूर्तत्वसे साकार हो अवतारको धारण करता हूं, तब पापके पहाड नष्ट होजाते हैं अर्थात् सुकृतोदयका प्रभात उदय होता है ॥ ५६ ॥ इस प्रकारके कार्य करनेके लिये प्रत्येक युगमें मैं अवतीर्ण होजाता हूं, अतएव इसप्रकारके मेरे गूढ रहस्यको जो पहचानता है, इस संसारमें वही सच्चा ज्ञाता और विचारवान् समझा जाता है ॥ ५७ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

हे पार्थ ! किसी विकारको न प्राप्त होकर जो पुरुष मुझे, अजन्मा होकर जन्मलेनेवाला तथा अकर्मा होकर कर्माचरण करनेवाला समझ, इस प्रकारके मेरे सत्यरहस्यको जानता है, निःसंशय वही पुरुष मुक्त है ॥ ५८ ॥ वह मनुष्य संसारमें कर्मसंगसे वर्तता रहे तो भी उसे कर्मकी बाधा नहीं होती, एवंच देहधारी रहनेपर भी वह उसे बन्धन नहीं होता, इसी कारण यथाकाल पञ्चत्वको प्राप्त होनेपर, वह मेरे आत्मस्वरूपमें ही समाविष्ट होजाता है ॥ ५९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

सामान्यतः जो लोग गतागत ( नष्ट-प्राप्त ) का शोक नहीं करते जो निष्काम-( कामनाशून्य ) होते हैं और क्रोधके मार्गसे कभी नहीं चलते, ॥६०॥ जो सदा सर्वदा मेरे स्वरूपमें ही रत रहते हैं, तथा मेरी सेवा कोही जीवनका साफल्य मानते हैं और किसी विकारवश न होकर, आत्मतत्त्वके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आनंदको भोगते रहते हैं, ॥ ६१ ॥ तथा जो तपश्चर्यामें रत रहकर मेरा चिंतन करते हैं और संपूर्ण आत्मज्ञानको जो अपनेमें ही इकट्ठा कर रहे हैं, और जिनके कारण तीर्थ भी पवित्र होजाते हैं, ॥ ६२ ॥ ऐसे मनुष्य सहजही मत्स्वरूप हो जाते हैं। वे मद्रूप ही हैं अर्थात् मेरेमें और उनमें किसी बातका भेद नहीं ॥ ६३ ॥ देखो, यदि पीतलका समूचा कलंक जलकर नष्ट होजाय, तो फिर सोना प्राप्त करनेके लिये वृथा परिश्रमकी आवश्यकता ही कैसे रहेगी ? ॥६४॥ उसी प्रकार जो यमनियमोंके पालनपूर्वक तपरूपी ज्ञानसे तेजस्वी होगये वे निःसंशय मेरे स्वरूपमेंही पहुंचेंगे, इसमें कोई शंका नहीं ॥ ६५ ॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

साधारणतः ( विचार करनेपर ) मुझपर जो जैसा प्रेम करते हैं, मैं भी उनपर वैसाही प्रेम रखता हूँ ॥ ६६ ॥ तुम ध्यानके साथ देखो तो ज्ञात होगा, कि संपूर्ण मनुष्य स्वभावतः मेरे ही भजनमें प्रीति रखते हैं ॥ ६७ ॥ परंतु ज्ञानके नष्ट होनेसे उनकी बुद्धि विपरीत होगयी और जो मैं 'केवल एक ही हूं' उसमें उन्हें अनेकत्वका भास हो रहा है ॥ ६८ ॥ अत एव मैं जो भेदरहित हूं उसमें वे भेद देखते हैं अर्थात् अभिन्न वस्तुमें भी भिन्नत्व देखते हैं, नामहीन आत्मतत्त्वको नाम रखते हैं और अनिर्वाच्य मुझे 'देव-देवी' कहकर भजते हैं ॥ ६९ ॥ जो आत्मस्वरूप सर्वत्र सर्वकाल समान रहता है, उसमें उच्च-नीच-भेदकी कल्पना केवल बुद्धिकी भ्रान्तिसे उत्पन्न होती है ॥ ७० ॥

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

फिर नाना प्रकारके हेतु मनमें रखकर मनमाने अनेक-विधानोंसे अपने इष्ट देवताओंकी उपासना करते हैं ॥७१॥ तब उन्हें जो कुछ इच्छित फल इष्ट हो, उसे माँगनेसे प्राप्त हो जाता है, परन्तु वह उनके कर्मका फल ही समझो ॥ ७२ ॥ वस्तुतः कर्मके बिना यहां देने-लेनेवाला दूसरा कोई नहीं। यह निश्चित समझो, कि इस मनुष्यलोकमें कर्म ही फलदायक है ॥ ७३ ॥ जैसे खेतमें जो बीज बोया जाता है, उसमें उसके सिवाय दूसरी वस्तु नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उत्पन्न होती । अथवा दर्पणमें जो देखा जाय वही दीखता है, ॥ ७४ ॥ अथवा पहाडकी कंदराके पास खडे होकर बोलनेसे अपना ही प्रतिध्वनि उत्पन्न होता है, ॥ ७५ ॥ उसी प्रकार हे पार्थ ! यद्यपि देव-देवतादिकोंके भजन-पूजनका कारण मैं ही मूलाधार हूं तथापि उपासककी इच्छा ही फल-रूपिणी हो, उसका फल देती है ॥ ७६ ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

अब, ये चार वर्ण जो मनुष्योंमें देखे जाते हैं, गुण और कर्मके भेदसे मैंने ही उत्पन्न किये हैं ॥ ७७ ॥ कारण मायाके आश्रयसे गुणोंका मिश्रण होता है, और गुणोंके अनुसार ही कर्माचरणका विचार किया गया है ॥ ॥ ७८ ॥ हे वीर पार्थ ! यह सर्व जगत् एक ही है अर्थात् मनुष्यका मूलवर्ण एक ही, किन्तु गुण और कर्मका प्रबन्ध ऐसा किया गया कि उसका चार वर्णोंमें भेद ( विभाग ) हो गया ॥७९॥ अत एव इस चातुर्वर्ण्य–( वर्णभेद ) की संस्था का कर्ता मैं कभी नहीं हूं ॥ ८० ॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बद्ध्यते ॥ १४ ॥

हे पार्थ ! इस प्रकार जो जानता है कि यह ( वर्णभेद ) मेरेसे उत्पन्न हुए हैं, किन्तु मैं इसका कर्ता ( बनानेवाला ) नहीं हूं, वही संसारमें कर्मसे छूटकर मुक्त कहा जा सकता है ॥ ८१ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

हे पार्थ ! पूर्वकालमें जो जो मुमुक्षुजन हो चुके हैं, उन लोगोंने मेरे इस मूल स्वरूपको पहँचान कर ही कर्माचरणको किया है ॥ ८२ ॥ किन्तु जैसे भुना हुआ बीज बोनेपर नहीं उगता, वैसे ही उनके वे निष्काम कर्म उन्हें मोक्षप्राप्तिमें कारण हुए ॥ ८३ ॥ हे अर्जुन ! इस विषयमें और एक बात ध्यानमें रखनेकी है, वह यह कि, ज्ञानवान् या समझदार मनुष्यको केवल अपनी इच्छानुसार कर्म तथा अकर्म की बातका विचार करना योग्य नहीं है ॥ ८४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १६ ॥

अतएव हे अर्जुन ! कर्म किसे कहते हैं और अकर्मका लक्षण क्या है, इस विषयके निर्णय करनेमें बडे बडे विचारवान् भी भ्रममें आरहे हैं ॥ ८५ ॥ जैसे नकली सिक्का सच्चेके समान दीखनेसे नेत्रको सच्चेका संशय उत्पन्न करता है, ॥ ८६ ॥ वैसे ही, जो अपने संकल्पमात्रसे प्रतिसृष्टि करनेमें समर्थ हैं, उन महासामर्थ्यवान् के भी 'कर्म' निष्कामताकी झूठी कल्पनाओंके चक्करमें आनेसे 'सकाम' ही कहाये गये हैं ॥ ८७ ॥ इस विषयमें बडे समझदार और दूरदृष्टि लोग भी फँसगये हैं, फिर अज्ञानी जनोंकी कथा ही क्या है ? ॥ ८८ ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

जिसके साथ यह विश्व स्वभावतः ही उत्पन्न होता है वह 'कर्म' कहलाता है । उस सहज कर्मको अच्छी तरह समझकर ही उसका आचरण करना चाहिये ॥ ८९ ॥ इसके बाद अपने वर्णाश्रमानुसार जो विशेष शास्त्रोक्त कर्म याने 'विहितकर्म' हो उसे अच्छी तरह समझा लेकर, ॥ ९० ॥ साथ साथ निषिद्ध कर्मका भी पूर्ण विचारकर उन्हें समझ लेना चाहिये, अन्यथा कर्म-अकर्ममें भ्रम उत्पन्न हो सकेगा ॥ ९१ ॥ हे पार्थ ! वास्तविक विचार करनेपर यह सब संसार कर्मसेही व्याप्त है और वह व्याप्ति बहुत ही गहन है, किन्तु उसको छोड मैं यहां प्रसंगानुसार प्राप्त पुरुषोंके लक्षण ही कहता हूं ॥९२॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

जो सब कर्म करता रहता हुआ भी अपनेको निष्कर्मवान् समझता है तथा कर्म-संग होनेपर भी फलेच्छा नहीं रखता, ॥९३॥ तथा कर्मके करनेमें कर्तव्यबुद्धि विना जिसे दूसरा कुछ कारण ही नहीं रहता, वही निष्कर्मका पूरा जानकार हुआ समझना चाहिये ॥९४॥ तथा संपूर्ण कर्मोंको यथास्थित रीतिसे करता हुआ भी दिखायी दे और उपर्युक्त लक्षणान्वित हो, उसे ज्ञानी ही समझना चाहिये ॥ ९५ ॥ जैसे कि, जलके तालावके पास खडा हुआ मनुष्य अपना प्रतिबिंब जलमें देखकर अपनेको पहचानता है, किन्तु मैं उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रतिबिंबसे पृथक् हूं ऐसा समझता है; ॥ ९६ ॥ अथवा जो नौकामें बैठकर नदीमें विहार करता है, उसे नौकाके चलनेपर किनारेके वृक्ष एकके पीछे एक दौडते दीखते हैं, किन्तु विचार करनेपर वृक्ष अचल हैं दौड नहीं सकते, ऐसा समझता है ॥ ९७ ॥ उसी प्रकार आत्मदृष्टिसे देखनेपर सब कर्माचरणका व्यवहार निःसंशय असत्य है, ऐसा जानकर अपने मूलस्वरूपको जो पहचानता रहता है, वही निष्कर्मा समझा जाता है ॥ ९८ ॥ और उदय तथा अस्त होनेके दोनों कारणोंको सँभालता हुआ अचल सूर्यसरीखा भ्रमण करतासा दिखाई देता है, उसी प्रकार यह मनुष्य भी निष्कर्मताके तत्त्वको जानता हुआ कर्मको करता रहता है ॥९९॥ वह मनुष्य देखनेमें तो औरोंसरीखा ही दिखायी देता है, किन्तु जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलमें पडनेपर भीगता नहीं, वैसेही यह निष्कर्मा मनुष्योंमें रहनेपर भी उनसे अलिप्त रहता है ॥ १०० ॥ वह सब कुछ करते हुए भी न करनेके समान ही रहता है। जैसे आँखसे न देखते विश्वको देख चुका है, कुछ भी न करते सब कुछ कर चुका है, कुछ भी न भोगते सब भोग भोगचुका है, अर्थात् सब कर्मोंसे अलिप्त है ॥ १ ॥ वह यद्यपि एक जगहमें बैठा रहता है, तो भी सब विश्वमें संचार करता है, और तो क्या ? वह स्वयंही सब विश्वरूप हो रहा है ॥ २ ॥

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥

जिस पुरुषको कमके बारेमें कभी आलस्य नहीं, किन्तु कर्म-फलकी जिसे कभी आसक्ति भी नहीं होती, ॥ ३ ॥ तथा जिसका मन भी ऐसे संकल्पसे बँधा नहीं रहता कि, 'मैं यह कर्म करूंगा अथवा प्रारब्धकर्मको अवश्य पूर्ण करूंगा' ॥ ४ ॥ और जिसने संपूर्ण कर्मोंको ज्ञानरूपी अग्निमें आहुति देकर भस्म कर डाला है, वह यद्यपि मनुष्यरूपसे दीखता हो, तथापि उसे प्रत्यक्ष परब्रह्म ही समझो ॥ ५ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ २० ॥

जो देहके विषयमें उदासीन तथा कर्मफलमें निरिच्छ रहकर सदा आनंदमें रहता है, ॥ ६ ॥ जो संतोषके मध्यगृहमें बैठकर आत्मबोधरूपी अपरंपार भोजनमें कभी तृप्त नहीं होता, ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥
यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२ ॥

वह अहंकारका त्यागकर आशारूपी निछावरको अपने स्थानसे हटा देताहै और आत्मानंदकी अभिरुचिको अधिकाधिक बढाता रहता है ॥ ८ ॥ अत एव जिस समय जो कुछ भी प्राप्त हो, उससे जो संतुष्ट होता है और 'अपना पराया' इस प्रकारकी भावना जिसके पास ही नहीं आती ॥ ९ ॥ वह मनुष्य जो कुछ देखना, सुनना, चलना, बोलना इत्यादि क्रियाओंको करता है, वह उसकी सब क्रियायें वह स्वयं ही बनता है ॥ ११० ॥ ११ ॥ और तो क्या ? इस विश्वमें सिवाय आत्माके उसे कुछ भी दीखता नहीं, फिर उसके लिये कर्म कौनसी चीज है ? और किसको बाधक हो सकती है ? ॥ १२ ॥ जिस द्वैतभावसे मत्सर उत्पन्न होता है, यदि वह द्वैतभाव ही जहां नहीं, फिर मत्सरके लिये स्थान कहां ? अब उसे निर्मत्सर होनेमें क्या संदेह, वह तो स्वयंसिद्ध ही है ॥ १३ ॥ इस लिये ऐसा पुरुष सर्वदा मुक्त ही रहता है, फिर वह कर्मको करे तो भी उसे पूर्ण निष्कर्मत्व ही प्राप्त भया समझो । और वह गुणयुक्त होनेपर भी उसे गुणातीत ही समझो ॥ १४ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

वह यद्यपि देहधारी दिखायी देता है, तो भी वह चैतन्यरूपसे ही रहता है, वह परब्रह्मरूपही होजाता है, इस लिये परब्रह्मकी कसौटीपर वह अत्यंत शुद्ध दिखायी पडता है ॥ १५ ॥ इस तरहका पुरुष यदि सहज लीलामात्रसे यज्ञयागादि कर्मानुष्ठानको करे, तो वे सब कर्म उसीके आत्मस्वरूपमें लीन होजाते हैं ॥ १६ ॥ जैसे अनवसरमें आये हुए मेघ वर्षा न करके आकाशमें दिखाई देकर आपही लुप्त होजाते हैं, ॥ १७ ॥ उसी प्रकार इस पुरुषके किये हुए उचित यज्ञ यागादि कर्म, उस पुरुषके एकत्वभाव प्राप्तिके कारण, उसमेंही एकत्वको प्राप्त होते हैं अर्थात् उसमें लीन होते हैं ॥ १८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

कारण, उसकी बुद्धिमें यह भेदभावना ही नहीं रहती कि, यह यज्ञ है, यह हवन है, मैं यज्ञकर्ता हूं और यह यज्ञभोक्ता है ॥ १९ ॥ किन्तु अविनाशी आत्मस्वरूपको ही वह यष्टा, यज्ञ, यजन, आहुति, मंत्रादि जानता रहता है ॥ १२० ॥ इस कारण, 'कर्म' और 'ब्रह्म' के विषे उसकी बुद्धिमें कुछ भी भेद प्रतीत नहीं होता, फिर देखो, अर्जुन ! कर्मका करनाही निष्कर्मत्वको प्राप्त होना होजाता है ॥ २१ ॥ अब अविवेकरूपी बाल्यावस्था जिनकी निकलगयी और विरक्तिके साथ जिन्होंने विवाहसंबंध जोड दिया और योगाग्निको प्रारंभ किया ॥ २२ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

और जिन्होंने दिनरात इस योगयज्ञको कर गुरूपदेश-मंत्राग्निमें मनके साथ ही अज्ञानकी आहुतिको हवन कर दिया ॥ २३ ॥ वे ही इस यज्ञको करनेके योग्य हो सकते हैं । हे अर्जुन ! अब और सुनो, आत्मसुखके लाभार्थ इन्द्रादि देवताओंकी प्रीतिके लिये जो यज्ञ किया जाता है वह 'दैवयज्ञ' कहा जाता है ॥२४॥ अब और कुछ यज्ञके प्रकारोंको कहता हूं, तुम सुनो । जो लोग ब्रह्माग्निसे अग्निहोत्रको करते हैं, वे उस यज्ञद्वाराही परमात्माकी उपासना करते हैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

कोई आत्मसंयम यानी मनोनिग्रहका अग्निहोत्र आचरते हैं, वे कायिक, वाचिक, मानसिक नियमनरूपी मंत्रको, इन्द्रियरूपी द्रव्यकी पवित्र आहुतिका हवन करते हैं ॥ २६ ॥ कोई वैराग्यको प्राप्त होकर मनके नियमनकोही अपना निवासस्थान बना देते हैं और वहां इन्द्रियरूपी अग्निको प्रज्वलित करते हैं ॥२७॥ जब वैराग्यकी ज्वाला प्रज्वलित होती है, तब विकाररूपी इंधन बलने लगते हैं और उसमेंसे जो आशारूपी धुँआ निकलता है वह अंतःकरणपंचकके पांचों कुंडोंको सफाकर देता है जिससे वे बडे तेजस्वी होजाते हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर 'अहं ब्रह्मास्मि'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


इस महामन्त्रको घोषित कर इन्द्रियरूपी अग्निकुंडमें विषयरूपी विशाल आहुतियोंका हवन करते हैं ॥ २९ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

हे धनुर्धर पार्थ ! इस प्रकार कोई पुरुष संयमाग्नि-होत्रसे पापकी शुद्धि कर गये । कोई पुरुष हृदयरूपी अरणीको काष्ठखंड बनाकर घिसनेके लिये उसपर विवेकरूपी मथानी रखते हैं ॥ १३० ॥ और इस मथानीको मनके समाधानकी डोरीसे बांधते हैं, धैर्यके जोरसे खूब दबाते और गुरुवाक्यके सामर्थ्यसे मंथन करते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार एकताके साथ मंथन करते रहनेपर वह सफल होता है अर्थात् ज्ञानाग्नि प्रकट होती है ॥ ३२ ॥ किन्तु इस ज्ञानाग्निके प्रकट होनेके पूर्व जो जरासा धुआँ निकलता है, वही ऋद्धि-सिद्धियोंका मोह है, जब वह मोह निकल जाता है, तब ज्ञानाग्निकी बिलकुल छोटीसी चिनगारी उस अग्निसे प्रकट होती है ॥ ३३ ॥ यद्यपि यह चिनगारी बहुत सूक्ष्म रहती है, तो भी पहलसे ही यमदमादिसे शुष्क भये हुए मनका इंधनरूपी सहाय उसे प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ फिर जोर जोरके साथ उसमेंसे ज्वाला निकलने लगती हैं, तब अनेक तरहकी वासनारूपी समिधाओंको ममतारूपी घृतके साथ उसमें हवन किये जानेपर वे ( वासना ) भस्म होजाती हैं ॥ ३५ ॥ फिर यज्ञकर्ता दीक्षित 'सोऽहमस्मि' इस मंत्रसे उस प्रज्वलित ज्ञानाग्निमें इन्द्रियकर्मोंकी आहुतियोंको डालता है ॥ ३६ ॥ इसके बाद प्राणकर्मरूपी स्रुवानामक दर्भपात्रसहित पूर्णाहुति दी जाती है, जिससे ब्रह्मतादात्म्यकी एकतामें यज्ञसमाप्तिका अवभृथ स्नान हो जाता है ॥ ॥ ३७ ॥ तदनंतर इस संयमयज्ञकी बची हुई सामग्रीका अवशिष्टभाग जो आत्मज्ञानानंद वही पुरोडाशके रूपमें भक्षण किया जाता है ॥ ३८ ॥ कोई कोई इस प्रकारके यज्ञको करके संसारमें मुक्त हो चुके हैं । हे अर्जुन ! अभीतक कहे हुए यज्ञविधान यद्यपि भिन्न भिन्न ज्ञात होते हैं, किन्तु ब्रह्मसमरसत्व प्राप्ति यही उन सबका एक निश्चित साध्य है ॥ ३९ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः शंसितव्रताः ॥ २८ ॥

इन कहे हुए यज्ञसरीखे यज्ञोंमें एक द्रव्य-यज्ञ कहलाता है । एक तपोरूपी सामग्रीसे तपोयज्ञ किया जाता है, एकको योग-यज्ञ कहते हैं ॥१४०॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कोई कोई शब्दमें ही शब्दको होम करते हैं, उसे 'वाग्यज्ञ' नाम दिया जाता है, ज्ञानसे जिसमें ज्ञेयरूप ब्रह्मकी प्राप्ति की जाती है, उसे ज्ञानयज्ञ कहा जाता है ॥ ४१ ॥ हे अर्जुन ! ये सब यज्ञ बडे कष्टसाध्य और कठिन हैं, किन्तु जिन लोगोंने अपने इंद्रियोंको वश कर रखा हो ( जो जितेन्द्रिय हैं ) वे ही अपने सामर्थ्यसे ये साध्य कर सकते हैं ॥ ४२ ॥ वे लोग इन यज्ञोंमें कुशल और योगसामर्थ्यसे बलवान् रहनेके कारण जीवात्माको परमात्मामें सहज हवन करसकते हैं ॥ ४३ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

दूसरे कोई ऐसे हैं जो दृढ निश्चयके साथ और योग—अभ्याससे अपान-वायुरूपी अग्निमें प्राणवायुरूपी द्रव्यको होम करते हैं ॥ ४४ ॥ कोई प्राण-वायुमें ही अपानको होम देते हैं और कोई तो ऐसे हैं जो प्राण-अपान दोनोंका ही निरोध करते हैं, ऐसे योगियोंको 'प्राणायामी' कहा जाता है ॥ ४५ ॥

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

हे पार्थ ! और कोई ऐसे हैं जो 'वज्रयोग' योगपद्धतिसे सर्व आहारको धैर्यसे खैंचकर प्राणोंको प्राणरूपी अग्निमें हवन करते हैं ॥ ४६ ॥ इस प्रकार ये सभी मोक्षप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले, भिन्न भिन्न यज्ञकर्ता ही हैं । वे इन यज्ञसाधनमार्गद्वारा ही मनकी शुद्धि करते हैं ॥ ४७ ॥ जिससे मायामोह जलकर उनके अज्ञानका नाश होता है, फिर केवल शुद्ध आत्मस्वरूप ही अवशेष्ट रहजानेपर अग्नि तथा यष्टा है ही कहां ? कारण उनकी यह भावना ही नष्ट होजाती है ॥ ४८ ॥ ऐसी स्थितिमें यष्टाकी यज्ञके करनेकी इच्छा पूर्ण हो जाती है, यज्ञविधानकी समाप्ति होती है और कोई भी क्रियावशेष बाकी नहीं रहता ॥ ४९ ॥ इतनाही नहीं किन्तु, जहां विचार और कामनाके लिये स्थान ही नहीं रहता, तथा द्वैतभावनाका भी दोष स्पर्श नहीं कर सकता ॥ १५० ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


इस प्रकार यज्ञविधानके समाप्तिपर जो शुद्ध, अनादि और निर्दोष ज्ञान प्राप्त होजाता है, ब्रह्मनिष्ठलोग 'अहंब्रह्मास्मि' इस मंत्रद्वारा उसका सेवन करते हैं ॥ ५१ ॥ इस रीतिसे वे लोग इस यज्ञशेषामृतसे तृप्त होकर अमृतत्व ( अमरत्व ) को प्राप्त होते हैं, और अनायासही ब्रह्मस्वरूप होजाते हैं ॥५२॥ दूसरे, जिन्हें वैराग्यका कभी लाभ ही नहीं होता, उनसे आत्मसंयमरूपी अग्निकी सेवा भी नहीं हो सकती, संपूर्ण जन्म-भरमें उनसे योगयागसंपादनकार्य नहीं बनता, ॥ ५३ ॥ जिन्हें इहलौकिक क्रियाकी पूर्णता करना ही दुष्कर हो जाता है, क्या वे पारलौकिक सुखकी बातमें पार पा सकते हैं ? कभी नहीं ॥ ५४ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

हे पार्थ ! इस प्रकार जो मैंने अनेक यज्ञप्रकार तुम्हें कहे, उनका सविस्तर वर्णन वेदोंमें स्पष्ट किया गया है ॥५५॥ देखो अर्जुन ! अपनेको उस विस्तारसे कुछ प्रयोजन नहीं, हमें तो इतना ही ग्राह्य है कि, पूर्वोक्तरीतिसे किया हुआ कर्म निर्दोष और यशस्वी ( सिद्ध ) होजाता है और ऐसे किये हुए कर्म स्वभावतः ही कभी बन्धनकारक नहीं होते ॥ ५६ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

हे पार्थ ! वेदोंमें बाह्यक्रियाप्रधान जो स्थूल यज्ञ कहे हैं, उनका बहुत बडा भारी फल केवल स्वर्गसुख ही है ॥ ५७ ॥ वे यज्ञ वास्तवमें द्रव्ययज्ञ ही हैं, इस लिये उनका हवन भी जडद्रव्योंसे ही होता है । फिर सूर्यके सामने तारागणोंका प्रकाश जैसा फीका होता है, ज्ञानयज्ञकी तुलनामें वे जडयज्ञ भी वैसेही निस्तेज होते हैं ॥ ५८ ॥ देखो अर्जुन ! परमात्मसुखरूपी निधिको प्राप्त करनेमें जो ज्ञान, दिव्यांजन समझा जाता है और योगी लोग जिसे क्षणभर भी भूल नहीं सकते, ॥ ५९ ॥ जो ज्ञान क्रियमाण कर्मका आखिरी फल है, निष्कर्मताकी खानि है और त्रिविधतापोंसे तपे हुए जीवोंके लिये पूर्ण शान्तिदायक है, ॥ १६० ॥ जिस ज्ञानकी प्राप्तिसे कर्मकी प्रीतिमें धीरे धीरे दुर्बलता ( अप्रीति ) उत्पन्न होती है, तर्ककी गति कुंठित होती है, इन्द्रियें विषयोंको भूल जाती हैं, ॥ ६१ ॥ मन अपने अधिकारसे



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भ्रष्ट होता है, वाणीकी गति थँभ जाती है और जो अपनी ध्येय वस्तु है वह सहज ही में प्राप्त होती है, ॥ ६२ ॥ जिस ज्ञानके प्राप्त होनेपर वैराग्य प्रफुल्लित होजाता है, विवेकको पूर्ण समाधानकी प्राप्ति होजाती है और जो ज्ञान आत्मतत्त्वसुखको सहजहीमें प्राप्त कर देता है ॥ ६३ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

हे जिष्णो ! यदि तुम्हें इस परमोत्तम ज्ञानप्राप्तिकी इच्छा हो, तो हरप्रयत्नसे अन्तःकरणपूर्वक श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवेत्ता संतोंकी सेवा करो, ॥६४॥ कारण, संत ( सद्गुरु ) ही ज्ञानके मंदिर हैं और उनकी सेवाही उस मंदिरकी देहली है, इस कारण हे पार्थ ! तुम संतसेवामें ही अपना कर्तव्य समझो और ज्ञानी बन जाओ ॥ ६५ ॥ इस सेवाके वास्ते तुम अपने तन-मन-प्राण संतचरणोंमें अर्पण करो और निरहंकारवृत्तिसे सब प्रकार उनकी सेवा करते रहो ॥ ६६ ॥ संतोंकी प्रसन्नता होनेपर, जिस ' ज्ञानकी ' इच्छासे उन्हें प्रश्न किया जाय, उस ज्ञानका वे उपदेश करेंगे, जिससे अन्तःकरण उपदेशित हो, सब संकल्प-विकल्पोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ६७ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

हे अर्जुन ! उन संतोंके वाक्यरूपी प्रकाशसे चित्त निर्भय होकर निःसंशय बन, परब्रह्मकी योग्यताको प्राप्त हो जाता है ॥६८॥ इतना हो चुकनेपर, हे पार्थ ! तुम इस प्राणीमात्रको अपनी आत्मामें तथा ज्ञानरूपी आत्माको अखंडरूपसे मेरे ही में देखोगे ॥ ६९ ॥ हे अर्जुन ! जिस समय सद्गुरुकी कृपा होती है, उस समय ज्ञानप्रकाशका उदय होकर अज्ञानरूपी अंधकारका समूल नाश होजाता है ॥ १७० ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

हे पार्थ ! यद्यपि तुम पापके आगर, अज्ञानके सागर और विकारोंके पहाड हो, ॥ ७१ ॥ तथापि इस परमज्ञान-सामर्थ्यके सामने वह सब अत्यन्त अल्प ही है, क्योंकि इस ज्ञानका सामर्थ्य बडा विलक्षण है ॥ ७२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



देखो, पार्थ ! इस निराकार परमतत्त्वकी विश्वाभासरूपी परछाँई भी जिसके प्रकाशके सामने नहीं रह सकती, ॥ ७३ ॥ क्या तुम्हारे अंतःकरणके मल (पाप) को निकाल देनेमें उसे कुछ विलंब लगेगा ? ऐसी शंकाही निरर्थक है । संसारमें इस ज्ञानकी बराबरी करे, ऐसी व्यापक कोई चीज ही नहीं है ॥ ७४ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

देखो, त्रिभुवनको आग लगनेपर जो आकाशमें धुवाँ उड जाता है, क्या उस प्रलयकालीन तूफानके सामने ये अभ्र (मेघ) ठहर सकते हैं ? ॥७५॥ अथवा वायुकी सहायतासे भभकता हुआ प्रलयाग्नि जो कि जलको भी जला डालती है, क्या वह तृण और काष्ठोंसे बुझायी जा सकती है ? ॥ ७६ ॥

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥ ३८ ॥

सारांश—जैसे ये पूर्वोक्त बातें हो नहीं सकतीं । और "परमज्ञानसे मनोमल नष्ट न होगा" इस बातका तो विचारना भी असंगत होगा । कारण ज्ञानके समान पवित्र कोई भी वस्तु नहीं है ॥ ७७ ॥ इस विश्वमें जैसे चैतन्यके लिये कोई उपमा नहीं, वैसे ही ज्ञानके लिये भी कोई उपमा नहीं दी जाती, वह सबसे श्रेष्ठ और अनुपमेय है, यही कहा जायगा ॥ ७८ ॥ यदि महातेजस्वी सूर्यबिंबकी कसौटीसे उसका प्रतिबिंब उज्ज्वलित किया जा सके अथवा इस समूचे आकाशको यदि किसीसे बांधा जा सके, ॥७९॥ किंवा पृथ्वीके तौलका कोई माप मिलजाय, तब समझा जा सकता है कि, ज्ञानकी भी किसीसे बराबरी की जायेगी ! ॥ १८० ॥ इस कारण, पूर्ण विचार करनेपर यही सिद्ध हो सकेगा, कि ज्ञानकी पवित्रता ज्ञानहीमें है, अन्यत्र वह नहीं मिलसकती ॥ ८१ ॥ जैसे अमृत कैसा स्वादिष्ठ है ? ऐसा कोई प्रश्नकरे, तो उसके लिये यही कहा जासकेगा कि, अमृतसरीखा ही है । उसी प्रकार ज्ञानके लिये दूसरी कोई उपमा नहीं, किन्तु ज्ञानको ज्ञानकी ही उपमा दी जा सकती है ॥ ८२ ॥ हे अर्जुन ! अबतक जितना कहागया, बहुत ही है, और कहना वृथा कालक्षेप है । इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेपर अर्जुन कहने लगा—"हे दयानिधे ! आपका कथन सत्य है" ॥ ८३ ॥ इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रकार कहकर, अर्जुन कुछ पूछनेके विचारमें है कि 'यह ज्ञान कैसा पहचाना जा सकेगा' ! इतनेहीमें भगवान् उसका मानसिक हेतु समझकर ॥ ८४ ॥ कहने लगे–देव बोले–हे पाण्डुकुमार अर्जुन ! ज्ञानप्राप्तिका उपाय तुम्हें कहते हैं, उसे सावधानीके साथ श्रवण करो ॥ ८५ ॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

हे अर्जुन ! देखो, जिसने आत्मसुखकी रुचिका स्वाद प्राप्त किया है, सर्व विषयोंसे जो घृणा करता है, इन्द्रियोंकी जो पर्वा नहीं रखता ॥ ८६ ॥ जो मनके अधीन नहीं रहता और मायाजनित कर्मको अपना कर्म नहीं समझता तथा जो श्रद्धाबुद्धिके संगसे सुखी रहता है, ॥८७॥ हे अर्जुन ! यह अखण्ड, निर्दोष और शान्त ज्ञान उसी पुरुषको खोजते खोजते निश्चयसे स्वयं प्राप्त करता है ॥ ८८ ॥ और जब वह उस पुरुषके अन्तःकरणमें प्रवेश कर स्थिर होजाता है, तब शान्तिका उद्भव होता है और तबसे विपुल आत्मबोधका विस्तार होने लगता है ॥ ८९ ॥ बस, फिर क्या ? जिस तरफ उसकी दृष्टि जाती है, सिवाय शान्तिके उसे कुछ दीखता ही नहीं, और उसकी आप पर(अपना-पराया) इसप्रकारकी भावना समूल नष्ट होती है ॥ १९० ॥ हे अर्जुन ! तुम थोडेहीमें समझ सकते हो, इसलिये इस ज्ञानबीजके–विस्तारको–जिसका पार नहीं है–यहां ही समाप्त करते हैं ॥ ९१ ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

हे पार्थ! जिसे इस ज्ञानके विषयमें प्रीति नहीं होती,हम समझते हैं उसके जीनेकी अपेक्षा उसका मरना ही अच्छा है ॥ ९२ ॥ जैसे शून्य ( उआड ) गृह अथवा प्राणहीन शरीर हो, उसी प्रकार ज्ञानहीनका जीवन भ्रष्ट है ॥ ९३ ॥ किंवा ज्ञानकी प्राप्ति तो नहीं है, किन्तु कमसे कम उस ज्ञानके विषयमें यदि अभिरुचि उत्पन्न होवे, तो ऐसी स्थितिवाले मनुष्यमें उसकी इच्छासे कभी ज्ञानांकुर प्राप्तिका संभव है ॥९४॥ जिसको ज्ञान नहीं, उसकी कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं, यह तो निश्चित ही समझो । तथापि ज्ञान न होकर, उस ज्ञानके विषे यदि कुछ आदर भी न हो, तो उस प्राणीका संशयरूपी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


अग्निमें भस्मीभूत ही समझना ॥ ९५ ॥ जैसे किसीकी मृत्यु समीप आनेपर उसे अमृत भी अप्रिय मालूम होता है, वैसे ही ज्ञानकी अनिच्छामें समझना चाहिये ॥ ९६ ॥ उसीप्रकार जो विषयसुखमें तो खूब रँगीला रहता है और ज्ञानके संबंधमें कभी इच्छा भी नहीं करता, बरन् तिरस्कार करता है, उसे संशयरूपी पिशाच लगा हो, ऐसा निश्चित समझना ॥ ९७ ॥ फिर जो एकबार संशयापन्न हो चुका, उसका सब सत्यानाश ही समझो, उसे ऐहिक तथा पारलौकिक सुखोंसे हाथ धो बैठना ही पडेगा ॥ ९८ ॥ जो ज्वरसे भयंकर तप्त है, उसे शीत और उष्णमें जैसा भेद प्रतीत नहीं होता, वह अग्निकी उष्णता या चंद्रमाकी शीतता दोनोंको सरीखाही समझता है,॥९९॥ वैसे ही यह संशयात्मा पुरुष सत्य–असत्य, असंबद्ध–योग्य, हित–अहितमें कुछ भेद ही नहीं समझता ॥ २०० ॥ जन्मान्धको जैसा रात–दिनमें भेद प्रतीत नहीं होता, वैसे ही संशयमग्नपुरुषको भी कुछ ज्ञान नहीं रहता ॥ १ ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंच्छिन्नसंशयम् ।
आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥ ४१ ॥

इस कारण, इस संशयके समान इस विश्वमें दूसरा घोर पातक ही नहीं, अतएव इसे तुम संशय न समझकर केवल मनुष्यको पकडनेका एक जाल ही समझो ॥ २ ॥ इस लिये हम तुम्हें कहते हैं कि, ज्ञानाभावमें उत्पन्न होनेवाले इसे तुम छोड दो अथवा पहले प्रथम इस संशयको जीतनेका ही काम करो ॥ ३ ॥ देखो, जब अज्ञानका अंधेरा हो जाता है तब तो इसे बडा ही जोर चढता है, जिससे श्रद्धाका मार्ग भी सूझता नहीं ॥ ४ ॥ फिर वह बुद्धिगत होते होते अंतःकरणमें समाता नहीं, इतना बढता है ! फिर वह बुद्धिको ग्रसित करता है और तब उस पुरुषकी ऐसी दशा होती है, कि संपूर्ण त्रिभुवन संशयात्मक ही उसे दिखायी देता है ॥ ५ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे अर्जुन ! यद्यपि यह संशय दुराराध्य और मदोन्मत्त है, तथापि इसे वश करनेके लिये एक उपाय है । और वह यह कि, यदि अपने हाथमें ज्ञानरूपी तेजधारवाली तलवार रहे तो उसकी तीक्ष्ण धारासे इसे समूल नष्ट किया जासकता है, ॥ ६ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु अन्तःकरणमें इसका लेशमात्र भी शेष नहीं रह सकता ॥ ७ ॥ अतएव हे धनुर्धर पार्थ ! तुम शीघ्र उठो और हृदयमें वास करनेवाले इस संशयको प्रथम नष्ट कर डालो । ॥ ८ ॥ संजय बोले—हे राजन्, धृतराष्ट्र ! संशयग्रस्त अर्जुनको, सर्वज्ञश्रेष्ठ और ज्ञानदीपक भगवान् श्रीकृष्णने दयालुतासे इस प्रकार कहा ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके पहले तथा अभीतकके इन सब पूर्वापर भाषणोंका विचार करके अर्जुन अब कैसा प्रश्न करेगा, ॥ २१० ॥ वह केवल भक्तिका भाण्डार और रसपूरित कथाप्रसंग आगे निरूपण किया जायेगा ॥ ११ ॥ जिस शांत-रसकी रुचिपर आठों रसोंको कुरबान किया जाय, जिस शांतरसमें विश्व-भरके सन्तजनोंकी बुद्धिको विश्राम प्राप्त होता है, ॥ १२ ॥ वह शान्तरस इस कथाप्रसंगमें पूर्णावस्थाको प्राप्त होगा । तथा सागरसे भी अथाह और मधुरार्थभरी यह कथा आप प्राकृत भाषामें ही सुनिये ॥ १३ ॥ जैसे, सूर्यका बिंब देखनेमें तो मानो हाथमें समा सके इतना छोटा दिखाई देता है, किन्तु प्रकाशमें उसका तेज देखो तो त्रिभुवनमें भी नहीं समासकता, उसी प्रकार इस प्राकृतवाणीकी व्यापकताका भी अनुभव प्रतीत होगा ॥ १४ ॥ अथवा जैसे कल्पवृक्ष याचककी याचनानुसार उसे फल देता है, इस प्राकृतभाषाकी व्यापकता भी उसी प्रकार श्रोताओंकी इच्छानुसार उनके मनोरथ पूर्ण करनेमें गंभीरार्थवती होगी, अतएव आप सावधानताके साथ श्रवण कीजिये ॥१५॥ अब मैं यह बहुत प्रपंच न बढाकर, आप सन्तोंसे यही प्रार्थना करता हूं कि आप तो सब ज्ञानवान् ही हैं, तो भी श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये ॥१६॥ जैसे किसी कुलवती पतिव्रतास्त्रीकी लावण्यगुणोंसे शोभा दुगुनी बढ जाती है, उसी प्रकार इस प्राकृत 'ओंवी' में वाङ्मयके ललित गुण और सर्वश्रेष्ठ शान्तरसकी पूर्णता देखी जायगी ॥ १७ ॥ जैसे किसीको खांडमें ही अभिरुचि हो, और यदि दवाके लिये वही अनुपान कहा जाय तो पूछना ही क्या है ? वह बारबार कैसी न खायी जाय ? ॥ १८ ॥ मलयाचलका पवन स्वभावतः ही मंदगामी, उसपर अमृतलाभकी प्राप्ति और दैवयोगसे सुस्वर गानके आवाजकी जोड, ॥ ॥ १९ ॥ फिर ऐसी बातें क्यों न हों, कि अंगस्पर्शसे दाहशान्ति, मधुरतासे जिह्वाको आनंद और मधुर गानसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


श्रवणेन्द्रियोंकी तृप्ति ! और इतने लाभ होनेपर कौन धन्यवाद नहीं दे सकता ? ॥ २२० ॥ इसी प्रकार इस कथाके श्रवण करनेसे श्रवणेंद्रियोंकी तृप्ति होती है, किन्तु किसी प्रकारका अपाय न होकर सांसारिक दुःख स्पर्श भी नहीं कर सकते ॥२१॥ देखो, यदि मंत्रसे शत्रुका नाश होता है, तो हाथमें तलवार पकडनेका क्या प्रयोजन ? यदि दूध और शक्करसे रोग नष्ट होसके तो निंबके रसका सेवन किसलिये कियाजाय ? ॥ २२ ॥ इसी प्रकार मनको न मारकर तथा इन्द्रियोंको क्लेशित न कर केवल एकाग्रचित्तसे श्रवण करनेमात्रके थोडे परिश्रमके करनेपर कथा श्रवणसे सहज हीमें मोक्ष-प्राप्ति होजायगी, ॥ २३ ॥ अतएव इसके श्रवणमें बहुत ही सावधानता तथा चित्तैकाग्रता रखिये । इस प्रकार श्रीनिवृत्तिनाथके शिष्य ज्ञानदेव कहते भये हैं ॥ २२४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः भाषानुवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

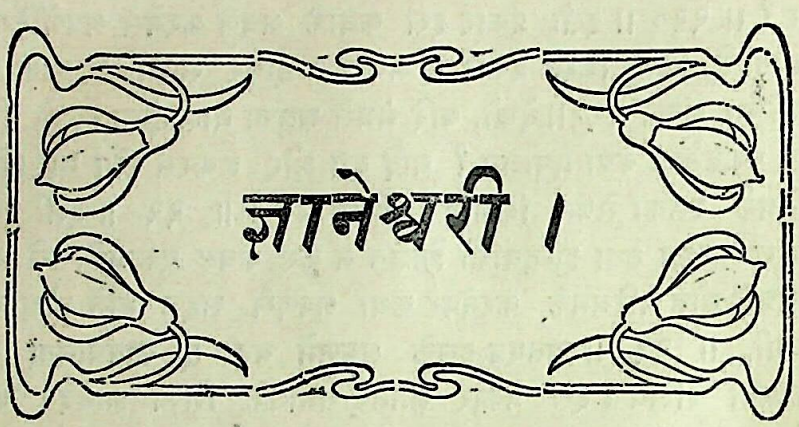


## पञ्चमोऽध्यायः ५.

अर्जुन उवाच ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
तच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

भगवान्‌की बात श्रवण करनेपर अर्जुन बोला–" हे दयानिधे, भगवन् ! आप भी ऐसी कैसी बातें करते हो ? यदि एकही बात आप निश्चयसे कहें तो हमलोग कुछ विचार भी कर सकते हैं ॥ १ ॥ देखो थोडी देर पीछे आपने ' सर्वकर्मोंका संन्यास करना ' इस प्रकार कहकर, उसपर खूब निरूपण किया और अब आपही उस कर्मयोगका आदर करके कर्मयोगकी ही प्रतिष्ठा करते हैं, इसमें क्या और कैसे समझा जाय ? ॥ २ ॥ हे भगवन् ! आप ऐसी द्व्यर्थी और भ्रमोत्पादक भाषा क्यों बोलते हैं ? हे भगवन् ! इससे हम अज्ञानियोंकी बुद्धिमें जैसा चाहिये वैसा बोध नहीं होसकता ॥ ३ ॥ देखिये, यदि आप एक तत्त्वसिद्धान्तका बोध करना चाहते हो, तो उसी सिद्धान्तको निश्चित रखिये; उसमें इधर उधरकी बातें न समझाओ तथा ऐसी दया रखो कि, उस सिद्धान्तमें दूसरा कोई सिद्धान्त भी न घुसेडा जाय, हे भगवन् ! अज्ञानी मैं आपको क्या कहसकता हूं ? ॥ ४ ॥ किन्तु आपसे सद्गुरुपर पूर्ण विश्वस्त रहकर मैंने पहले ही ऐसी प्रार्थना की थी कि, परमार्थका उपदेश गूढभाषामें न करिये, ऐसा करनेसे मेरी समझमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं आता, अत एव स्पष्ट शब्दोंमें निरूपण किया करें ॥ ५ ॥ हे देव ! उस गयी बातको जाने दीजिये, किन्तु अब जो आप कहेंगे, वह स्पष्ट और मेरी समझमें आजाय ऐसे ही शब्दोंमें कहिये । हे भगवन् ! 'कर्मसंन्यास' और 'कर्मयोग' इन दोनोंमें अधिक श्रेष्ठ और आखिरतक ठीकरीतिसे चलकर, निश्चित फलदायक तथा आचरणमें भी सुलभ और स्पष्ट ऐसा मार्ग कौनसा है, यही कृपा करके आप मुझे कहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! और वह मार्ग ऐसा भी सुखकर हो, कि जैसे कोई पालकीमें बैठा प्रवास कर रहा है, तो उसको जैसे निद्राभंगका दुःख भी नहीं होता तथा मार्ग भी बहुतसा कटजाता है । इस प्रकार आप भी युक्तिके साथ कहिये" ॥ ८ ॥ अर्जुनकी इस प्रकारकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णजीने स्मित हास्य किया और बडे प्रेमके साथ कहने लगे–'हे पार्थ ! तुम्हारी इच्छानुसार अत्यंत सुलभ और सुखकर ऐसा ही यह साधन होगा' ॥ ९ ॥ श्रोताओ ! देखिये, अर्जुनके मनोरथ पूर्ण होनेमें किस बातकी कमी थी ? जैसे किसी भाग्यशाली पुत्रकी माता प्रत्यक्ष कामधेनु हो, तो उसे खिलौनेके लिये यदि चन्द्रमाकी इच्छा हो तो वह क्यों न मिलेगा, ? ॥ १० ॥ देखिये उपमन्युकी बात प्रसिद्ध ही है, कि श्रीशंकर की प्रसन्नतापर उसने बालबुद्धिसे अपने लिये 'दूधभात' को ही मांगा था, किन्तु भोलानाथ महादेवजीने प्रसन्न हो उसे प्रत्यक्ष 'क्षीरसागरको' ही दे डाला ॥ ११ ॥ उसी प्रकार औदार्यगुणोंके मूर्तिमंत गृह जो श्रीकृष्ण परमात्मा, उनकी कृपा होनेपर प्रसन्नताके पात्र, वीरश्रेष्ठ अर्जुनका कौनसे सुख आश्रय न करेंगे ? ॥ १२ ॥ इसमें आश्चर्यकी भी क्या बात है ? यदि लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न भये हैं, तो मनमाने मनोरथ पूर्ण करालेनेमें संकोच किसलिये किया जाय ? ॥ १३ ॥ इसलिये अर्जुनने भी अपनेको निश्चित ज्ञानप्राप्तिकी आवश्यकताके लिये याचना की, और भगवान्ने भी बडे संतोषके साथ उसे अर्जुनको वह दे दिया । अब भगवान् श्रीकृष्णजीने जो कहा उसे सुनिये ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

भगवान् बोले–हे अर्जुन ! 'कर्मसंन्यास' और 'कर्मयोग' इन दोनोंको विचारनेपर तत्त्वतः यही सिद्ध होगा, कि ये दोनोंही मोक्षप्राप्तिके मार्ग हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


॥ १५ ॥ तथापि जैसे जलसे पार होनेके लिये नौकाही सब बाल-वृद्ध-स्त्री-जनोंको उपयोगी साधन होती है, ठीक विचार करनेपर ज्ञानी, अज्ञानी, सर्वसाधारणोंके लिये स्पष्ट और सुलभतामें यह कर्मयोगही श्रेष्ठ समझा जायगा, और इस कर्मयोगके आचरण करनेमें, कर्मसंन्यासका फल भी सहजही में प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ तुम्हारे ध्यानमें जैसा ठीक आवे, उसी प्रकार हम पहले संन्यासके लक्षण कहते हैं, जिससे कर्म-संन्यास और कर्मयोगमें जो अभेदत्व है, वह तुम्हें ज्ञात होगा ॥ १८ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

हे पार्थ ! जो गयी वस्तुका स्मरण कर दुःखी नहीं होता, जो न मिल-नेवाली वस्तुके लिये निरंतर ध्यास लगाया हुआ नहीं रहता, जिसका अन्तः-करण मेरुपर्वतके समान निश्चल रहता है ॥ १९ ॥ तथा 'मैं मेरा' इस प्रकारकी अभिमानवाली भावना जिसके अन्तःकरणमें लवमात्र भी वास नहीं करती, हे अर्जुन ! उस पुरुषको तुम 'नित्यसंन्यासी' समझो ॥ २० ॥ इस अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषको कर्मसंगकी बाधा नहीं होती, और उसे निरंतर अखंडसुखकी प्राप्ति अनायासही होती रहती है ॥ २१ ॥ क्या इस-प्रकारकी स्थिति प्राप्त होनेपर गृह-दारा-पुत्रादि प्रपंचके त्याग करनेकी कोई आवश्यकता है ? कुछ भी नहीं, कारण वह पुरुष इन सबसे संगहीन रहता है और इस प्रपंचविस्तारसे अपना कोई भी संबंध नहीं है, इस प्रकारका निःसंशयात्मक उसका निश्चित मत होता है ॥ २२ ॥ देखो, आगके बुझ जानेके उपरांत जो केवल राख (भस्म) बची रहती है, यदि उसपर कपासका आच्छादन रखा जाय या उसे वर्तिका बनानेमें हाथमें पकडा जाय तो जैसी वह बाधा नहीं कर सकती, उसी प्रकार संसारके संकल्प-विकल्पोंसे जिसका अन्तःकरण शांत होगया है, उसको भी कर्मबन्धन बाधा नहीं कर सकते ॥२३॥२४॥ अतएव तुम निश्चित समझो कि जब संकल्प-विकल्पोंकी कल्पना नहीं रहती, तभी संन्यास हो सकता है, और इसी कारण 'कर्मसंन्यास' और 'कर्मयोग' ये दोनों एकसे होनेसे साथी ही हो जाते हैं ॥ २५ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे पार्थ ! जिन अज्ञानी या मूर्खलोगोंको इस तत्त्वका बोध नहीं है, उन्हें ज्ञानयोग और कर्मयोगकी व्यवस्था कैसी ज्ञात होगी ? ॥२६॥ वे तो अपने स्वभावानुसार अज्ञानसे इन दोनोंको भिन्न मानते हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न दीपकोंके होनेपर क्या प्रकाशमें भी भिन्नता देखी जाती है ? नहीं ॥ २७ ॥ इसलिये जिन लोगोंने आत्मानुभवसे संपूर्ण तत्त्व जाना है, वे लोग संन्यास और योगमें किंचित् भी भेद नहीं मानते ॥ २८ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

कारण सांख्य-ज्ञानसे जो प्राप्त होता है, योग (कर्म) से भी वही प्राप्त होता है । इसलिये ये दोनों एकही हैं ॥ २९ ॥ देखो, आकाश और अवकाशमें जैसी विभिन्नता नहीं पहचानी जाती, उसी प्रकार कर्मयोग और संन्यासकी एकता समझनी चाहिये ॥ ३० ॥ हे अर्जुन ! सांख्ययोग और कर्मयोगको जो अभेददृष्टिसे देखसके उसीको सत्यप्रकाशकी प्राप्ति भयी है और उसीको आत्मस्वरूपके दर्शनका लाभ होता है ॥ ३१ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

हे महाबाहु पार्थ ! जो कर्मयोगके पादचारी मार्गसे मोक्षपर्वतपर चढना चाहता है, वह आत्मसुखके शिखरपर शीघ्र पहुँचता है ॥ ३२ ॥ किन्तु, जिन्हें योगसाधनकी प्राप्ति नहीं हुइ और जो वृथा खटाटोप करते रहते हैं, उन्हें संन्यासकी प्राप्ति कभी नहीं होती ॥ ३३ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! जिसने अपने अन्तःकरणको मायामोहसे हटा लिया है और गुरुवाक्योपदेशसे जिसने अन्तःकरणके मलको धो डाला तथा उसे केवल आत्मसुखमें ही दृढ किया, ॥ ३४ ॥ देखो, जैसे नमक जबतक सागरमें गिरा नहीं, तबतक उसका छोटासा आकार तथा समुद्रसे उसकी भिन्नता प्रतीत होती है, किन्तु एकबार सागरमें गिरते ही वह एकताको प्राप्त हो, उसी सागरके बराबरका प्रचंडाकार हो जाता है, उसी प्रकार जिसका मन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इन सांसारिक संकल्प-विकल्पोंसे छूटकर चैतन्यमें समरस ( अभिन्न ) हो जाता है, तब वह पुरुष देशकालमर्यादादिकोंसे यद्यपि और जनोंके तुल्य ही परिच्छिन्न दिखायी दे, तथापि वह आत्मस्वरूपमें मिला हुआ होनेसे संपूर्ण त्रिभुवनोंको व्यापता रहता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ फिर ऐसे पुरुषके विषे 'कर्ता' 'कर्म' इस प्रकारकी भाषा रहती ही नहीं और यद्यपि वह सब कर्मको करता रहे, तथापि वह अकर्ता ही होता है ॥ ३७ ॥ कारण जब उसे देहभावका भी स्मरण नहीं, तो कर्तापनेका उसपर आरोप कैसे किया जायगा ? ॥३८॥

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥

इस प्रकार देहके त्याग बिना ही कर्मयोगी पुरुषमें निर्गुण निराकार परब्रह्मके लक्षण दिखायी देते हैं ॥ ३९ ॥ यों तो जैसे अन्य सामान्य मनुष्य शरीरधारी रहते हैं, वह भी वैसा ही देहधारी होकर सब कर्माचरण करता ही देखा जायगा ॥४०॥ वह दूसरोंसरीखा नेत्रोंसे देखता है, कानोंसे सुनता है, परन्तु आश्चर्यकी बात है कि वह उस कर्ममें या इन्द्रियोंमें आसक्त नहीं रहता ॥ ४१ ॥ उसे स्पर्शज्ञान रहता है, सुगंध भी आजाता है तथा प्रसंगोपात भाषण भी वह कर सकता है ॥ ४२ ॥ आहारको स्वीकारता है तथा निषिद्धको छोड देता है और निद्राका समय होते ही सुखसे सो जाता है ॥४३॥ और अपनी इच्छानुसार वह चलनवलनादि क्रियायें भी करता रहता है। इस प्रकार सब प्रकारके काम निश्चयसे करता रहता है ॥ ४४ ॥ हे पार्थ ! अधिक कहांतक कहा जाय ? श्वासोच्छ्वास, नेत्रोंको खोलना मूँदना इत्यादि सब क्रियाओंको वह करता रहता है, परन्तु कर्मयोगीके स्वानुभवबलके कारण, वह कर्ता होकर भी सचमुच अकर्ता ही रहता है ॥४५॥४६॥ कारण जबतक वह भ्रांतिरूपी मायाकी शय्यापर सो रहा था, तबतक स्वप्नके झूठे सुखसे घिरा रहा था, किन्तु अब ज्ञानसूर्यके उदय होते ही जागृत होकर पहली दशाको भूल जाता है अर्थात् उसे माया-मोहका स्पर्श भी नहीं होता ॥ ४७ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


इस प्रकारकी स्थिति प्राप्त होनेपर, देहके साथ इंद्रियें अपने अपने विषयोंमें व्यवहार करती रहती हैं ॥४८॥ उस पुरुषके व्यवहार इस प्रकार होते रहते हैं, कि जिस प्रकार गृहमें दीपक रहनेसे घरके सब व्यवहार होते हैं ॥४९॥ उसी तरह वह सब कर्मोंके आचरणको करता रहता है, किन्तु जलमें रहकर भी जैसा कमलपत्र भीगता नहीं, उसीप्रकार कर्मके करते रहनेपर भी उनसे वह लिप्त नहीं होता अर्थात् उसे वे बन्धन नहीं कर सकते ॥ ५० ॥

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! जिस कर्ममें बुद्धिका कोई संबंध नहीं आता, तथा मनके अंकुर ( चंचल विचार ) भी नहीं उत्पन्न होते वह ' शारीर ' कर्म कहलाता है ॥ ५१ ॥ यही बात बिलकुल सुलभ शब्दोंमें इस प्रकार कही जायगी, कि जैसा छोटा बालक निर्हेतुक चलनवलनादि क्रियायें करता है, उसी प्रकार योगीजन वासनारहित हो, केवल शरीरसे कर्माचरणको करते हैं ॥ ५२ ॥ और पंचामहाभूतोंसे उत्पन्न यह जड शरीर जब योगनिद्रावश होता है, तब केवल अकेला मनही स्वप्नवत् व्यापार करता रहता है ॥ ५३ ॥ हे धनुर्धर पार्थ ! आश्चर्यकी बात है कि, इस वासनाकी विस्तार करनेकी ऐसी चतुराई है जो कि, देहको कुछ भी पता न देकर सुख-दुःखके भोगोंको भोगती है ॥ ५४ ॥ जिस कर्मका इन्द्रियोंको गंध भी नहीं, उस कर्मको ' मानस ' कहा जाता है ! ॥ ५५ ॥ योगीजन ये मानस-कर्म आचरते हैं, किन्तु अहंभावको छोडे हुए रहनेसे उन्ह वे कर्म बन्धन नहीं करसकते ॥ ५६ ॥ भ्रमिष्टवत् जब कोई होजाता है तब उसके इन्द्रियोंकी क्रियायें भी पिशाचवत् दिखायी देती हैं ॥ ५७ ॥ उसे इधर उधरके लोग दिखाई देते हैं, नाना प्रकारके वस्तुओंके आकार भी दिखायी देते हैं, कोई पुकारनेपर वह सुनता तथा वह स्वयं बोल भी सकता है, किन्तु उन विषयोंका उसे ज्ञान है या नहीं, यह ज्ञात नहीं होता ॥ ५८ ॥ बहुत विस्तार न करके हम कहते हैं कि, कोई भी कारण न होते जो कर्म किया जाता है, उसे ' इन्द्रियकर्म ' कहा जाता है ॥ ५९ ॥ तथा जानकर जो कर्म किया जाता है वह सचमुच ' बुद्धिका कर्म ' है । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके प्रति कहते भये ॥ ६० ॥ फिर श्रीकृष्णने कहा- वे योगीजन बुद्धिपुरःसर मन लगाकर भी कर्म करते हैं, किन्तु निष्कर्मवृत्तिके कारण वे मुक्त ही रहते हैं ॥ ६१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कारण बुद्धिके स्थानसे देहतकके संबंधमें उन्हें अहंभावका स्मरण ही नहीं रहता, इसलिये वे कर्मके करते रहते भी शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६२ ॥ हे पार्थ ! कर्ताकी भावनाका अहंकार छूटना इसीका नाम निष्कर्मता है, और इस रहस्यको वे सद्गुरुकी कृपासे प्राप्त करते रहते हैं ॥ ६३ ॥ इस प्रकारकी स्थिति प्राप्त होनेपर शान्तिरूपी नदीकी बाढ दोनों किनारोंसे बाहर होजाती है, हे पार्थ ! उसका गौरव किस बातसे किया जाय ? जो बात वाणीसे परे है अथवा जो तत्त्व, वाणीसे स्पष्ट कहा नहीं जाता सो मैंने तुझसे कहा है । ॥ ६४ ॥ देखो, जिनके इन्द्रियोंकी इच्छा पूर्ण होकर वे शान्त होचुके हैं ऐसे लोग ही इस ज्ञानके सच्चे अधिकारी हैं ॥ ६५ ॥ श्रोता लोग इस बढे हुए विस्तारसे थकित हो कहते हैं–" अब यह विषयान्तर सरीखा हो रहा है, इससे मूलश्लोककी संगति छूट जायगी ॥ ६६ ॥ जिस तत्त्वको समझनेमें मनकी भी गति कुंठित होती है और बुद्धिको भी जिसका पता नहीं चलनेसे, वह यशस्विनी नहीं होती, उस तत्त्वको सुदैवसे शब्दोंद्वारा कहा गया है ॥ ६७ ॥ जो तत्त्वज्ञान वाणीके परे है, वह आज तुम्हारे सुदैवसे वाणीद्वारा कहा गया, फिर कहनेका बाकी रहा ही क्या ? अब यह यहां ही छोडकर मूलकथाका आरंभ कियाजाना चाहिये" ॥६८॥ श्रोताजनोंकी ऐसी श्रवणभक्तिकी लालसा देख, मैं श्रीनिवृत्तिनाथका दास ज्ञानदेव कहता हूं कि हे श्रोताजनो ! अब श्रीकृष्णार्जुन-संवादको सावधानचित्त होकर सुनिये ॥ ६९ ॥ तब श्रीकृष्ण परमात्मा अर्जुनसे कहने लगे– हे पार्थ ! अब सिद्धिको प्राप्त हुए योगीपुरुषोंके संपूर्ण लक्षणोंका वर्णन करते हैं, तुम ध्यानसे सुनो ॥ ७० ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबद्ध्यते ॥ १२ ॥

देखो अर्जुन ! जिसने आत्मयोगको संपादन कर कर्मफलोंकी आशा छोड दी है, उस पुरुषको शान्ति स्वयं ही जयमाला डालती है, यह निश्चित बात समझो ॥ ७१ ॥ और इसके विपरीत अर्थात् जो योगी योगहीन हैं, आत्मयोगी नहीं, वे कर्मबन्धनरूपी दामनसे बँधे जाकर, वासनाकी ग्रंथि दे, फलभोगरूपी खूँटीमें दृढतर जकडे जाते हैं ॥ ७२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दूसरे साधारण लोग जिस कर्मफलकी आशासे कर्मको करते हैं, योगी भी उसी प्रकारसे कर्मका आचरण करता है, किन्तु उस कर्मका कर्ता मैं नहीं, इस प्रकारकी भावनासे वह उदास रहता है ॥ ७३ ॥ इस लिये वह जिसजिस तरफ दृष्टिको फेंकता है, उसउस तरफ सब जगह सुखही सुख उसे प्राप्त होता है, इतना ही नहीं बरन् उसका वसतिस्थान भी आत्मबोधका मकान बना रहता है ॥ ७४ ॥ वह इस नवद्वारवाले देहमें रहनेपर भी देहभावसे हीन होजाता है, तथा फलाशासे मुक्त होजानेके कारण कर्माचरणको करता रहता है तो भी अकर्ता ही रहता है ॥ ७५ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

यदि विचार करनेपर देखा जाय, तो जगदादिबीज जो परमेश्वर वह अकर्ता ही है, किन्तु मायोपाधिसे इस त्रिभुवनकी रचना वही करता है ॥ ७६ ॥ अतएव यदि उसको 'कर्ता' कहा जाय तो कर्मका यत्किंचित् भी संपर्क उसे होता नहीं, कारण उसकी तटस्थ ( उदासीन ) वृत्ति है, अतएव उसके हाथ पावोंमें किसी कर्मके मलका स्पर्श भी नहीं होता ॥७७॥ उसकी योगनिद्राका कभी भंग नहीं होता तथा उसका अकर्तापन स्थिरतासे कभी हलचल भी नहीं करता, इतना होते भी, इस पंचमहाभूतोंके सुडौल-महलकी व्यूहरचना वही करता रहता है ! ॥७८॥ यद्यपि वह सब संसारका जीव है, तथापि कभी किसीके अधीन नहीं होता और इस संसारके उत्पत्ति-स्थिति-संहारका उसे कभी पता भी नहीं रहता ॥ ७९ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥

संसारके अनेक तरहके अखिल पाप-पुण्य यद्यपि उसके आसपासमें घिरे रहते हैं, किन्तु वह उनकी तरफ देखता नहीं या उनका साक्षी भी नहीं होता फिर और बातोंका विचारना ही क्या है ? ॥ ८० ॥ देहकी संगतिसे देही होकर अवतारलीला किया करता है, किन्तु उस अचिन्त्य प्रभुका अमूर्तत्व, निराकारित्वादि कभी नष्ट नहीं होता ॥ ८१ ॥ और यह जो कोई कहते हैं कि वह इस संसारको उत्पन्न करता है, इसका पालन करता है तथा संहार करता है, हे अर्जुन ! वह उनका कहना, केवल अज्ञान है ॥ ८२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

और जब यह अज्ञान निःशेष नष्ट होगा, उसी समय भ्रान्तिरूपी कालिमा नष्ट होता है । इतना ज्ञान होनेपर ही 'मैं ईश्वर और अकर्ता हूं' यह अनुभव प्राप्त हो सकेगा ॥ ८३ ॥ ईश्वर अकेला ही अकर्ता है, इस प्रकार अन्तःकरणमें जब निश्चित सिद्धान्त बैठ जाय, तब तो 'मैं ईश्वर हूं' यह कुछ नया मत नहीं, यह तत्त्व तो पहले ही सिद्ध है ॥ ८४ ॥ हे अर्जुन ! इस प्रकार जिसकी दृढबुद्धि होकर अन्तःकरणमें उजेला होगया, तो फिर इस त्रिलोकीमें भेदभाव कहां रहा ? इस अवस्थाको प्राप्त हुआ मनुष्य मुक्तस्थिति ( आत्मस्वरूप ) में ही विश्वको देखता है, जैसे कि सूर्यका उदय पूर्वमें होनेपर क्या उसको ही प्रकाशकी दीपावली होती है और अन्य दिशायें क्या अन्धेरेमें रहती हैं ? ऐसा कभी हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

अपनी बुद्धिको निश्चितता प्राप्त होकर जब आत्मज्ञान हो, और 'हम ब्रह्मरूप हैं' यह सिद्धान्त निःसंशय सिद्ध होजाय तब ब्रह्मतत्त्वमें निश्चलता प्राप्त होती है, इस प्रकार ब्रह्मतन्मयत्व-ब्रह्मस्थिति-प्राप्त होते ही, ॥ ८७ ॥ सर्वव्यापी ज्ञानका लाभ होता है, और वह ज्ञान जिसके अन्तःकरणमें परिपूर्ण भररहा हो, उसे 'समदृष्टि' कहा जाता है । बस, इससे अधिक कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं ! ॥ ८८ ॥ इसमें कुतूहलकी बात यह है, कि वे जिस प्रकार समदृष्टि होकर अपनेको देखते हैं, सारे चराचरको भी उसी दृष्टिसे देखते हैं ॥ ८९ ॥ परन्तु भाग्यशाली पुरुषको इच्छा करनेपर भी जैसी दरिद्रता दिखायी नहीं देती, अथवा विचारवान्से जैसी भ्रान्तिकी पहचान भी नहीं रहती, ॥ ९० ॥ किंवा सूर्यको जैसे अंधकार इस शब्दके उच्चारणमें भी आश्चर्य मालूम होता है, अथवा अमृतको 'मृत्यु' ढूँढनेपर भी मिलती नहीं ॥ ९१ ॥ किंवा चन्द्रमाको गरमी ( ऊष्मा ) का कभी स्मरण भी नहीं होता, उसी प्रकार उन ज्ञानवानोंके लिये प्राणीमात्रमें किसी प्रकारके भेदभावका नामतक नहीं दिखायी देता ॥ ९२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

फिर यह मशक, यह हाथी, यह चाण्डाल, यह ब्राह्मण, वह मेरा, यह पराया इत्यादि प्रकारकी बातें कहां रहेंगी ? ॥ ९३ ॥ अथवा यह गौ, यह कुत्ता, यह श्रेष्ठ, यह नीच इत्यादि कल्पनाओंको वहां स्थान ही नहीं। जैसे कोई जागता रहता है उसे स्वप्न कैसे आसकेगा ? ॥ ९४ ॥ यह भेद भी तभी प्रतीत होंगे, जब अहंभावका कुछ अंश बाकी हो। और यहां तो अहंभावका समूल नाश होनेसे विषमताके लिये स्थान ही नहीं रहता ॥ ९५ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥

इस कारण, 'सब जगह सदैव काल समत्वसे रहनेवाला जो 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' वह मैं ही हूं', यह ज्ञान ही समदृष्टिका रहस्य जानो ॥ ९६ ॥ विषयोंके संगको न छोड तथा इन्द्रियोंको दंडित न कर जो कामनारहित हो निःसंगस्थितिको अपनाता है, ॥ ९७ ॥ जो साधारणलोगोंसा ही आचरण-व्यवहारको करता है, किन्तु जो लौकिक वस्तुके अज्ञानजन्य मोहसे ऐसा अलिप्त रहता है, जैसे सोता हुआ मनुष्य सब कर्मोंसे अलिप्त रहे, ॥ ९८ ॥ ऐसा पुरुष यद्यपि देखनेमें देहधारी है, तथापि सांसारिक जन उसे ऐसे नहीं पहचान सकते, जैसे किसीको भूतबाधा होरही हो, परन्तु वह पिशाच देखा नहीं जाता ॥ ९९ ॥ अथवा वायुके संसर्गसे जैसा पानी ही पानीपर लौटता है, किन्तु लोग उसे पानीसे भिन्न तरंग समझते हैं, ॥ १०० ॥ उसी प्रकार, जो केवल नाम-रूपसे भिन्न प्रतीत होता हो, तथापि जिसका मन सर्वत्र समताको प्राप्त भया है, वह पुरुष वास्तवमें ब्रह्म ही समझो ॥ १ ॥ इस तरह जो सर्वत्र समदृष्टिको प्राप्त हो चुका, उसका कोई एक विशेष चिह्न भी रहता है, हे अर्जुन ! उसका भी मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूं, तुम सुनो ॥२॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

मृगजलकी बाढसे जैसे पर्वतको कोई बाधा नहीं पहुँचती—अर्थात् वह नहीं बहता, उसी प्रकार शुभाशुभकी प्राप्तिसे योगी विकारवश नहीं होता



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ३ ॥ हे अर्जुन ! इन लक्षणोंसे युक्त पुरुषको ही तुम सच्चा समदृष्टि समझो, वही प्रत्यक्ष ब्रह्मरूप है । श्रीकृष्णने इस प्रकार अर्जुनसे कहा ॥ ४ ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥

जो आत्मस्वरूपमें रमरहा है, आत्मस्वरूपको छोडकर जो कभी इन्द्रियोंके वश नहीं होता, वह विषयोपभोगका सेवन न करे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ५ ॥ कारण, स्वाभाविक और अमर्यादं आत्मानंदसे उसका अन्तरंग परिपूर्ण भरा रहता है, अतएव उस आनंदको छोड वह कभी पांवतक बाहर नहीं रख सकता ॥ ६ ॥ देखो, ऐसा कभी हो सकता है ? कि चंद्रविकासी कुमुदिनीके पात्रमें चंद्रकिरणोंका सुग्रास भोजन करनेवाला चकोर, रेतके कणोंको खावे ? ॥ ७ ॥ यह जैसा असंभव है, उसी प्रकार जिसको आत्मसुखका लाभ प्राप्त होकर ब्रह्मरूपत्वप्राप्ति भयी है, क्या विषयोंसे वह बँधा रहेगा ? किन्तु उसके विषय आपही अनायास छूट जाते हैं ॥ ८ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

हे अर्जुन ! इन विषयोंके सुखमें कौन फँस जाते हैं, इस विषयमें तुम ही ठीक विचारकर देखो ॥ ९ ॥ इन इन्द्रियोंके विषयोपभोगमें वेही सुखी हो सकते हैं, जिन्होंने आत्मस्वरूपका अनुभव नहीं पाया हो । जैसे क्षुधासे पीडित दरिद्री लोग चूनीभूसेका भी सेवन करते हैं, ॥ १० ॥ अथवा प्याससे पीडित मृग जैसे सच्चे जलस्वरूपको भ्रमसे भूलकर, पथरैली जमीन ( भास ) को ही जल मानकर दौडते चल आते हैं, ॥ ११ ॥ उसी प्रकार जिन्होंने आत्मस्वरूपका दर्शन नहीं पाया या आत्मसुखके अनुभवसे जो वंचित हैं, वे ही इन विषयसुखोंको सुंदर और संतोषदायक समझते हैं ॥ १२ ॥ वास्तवमें, विचारपूर्वक देखाजाय तो इन विषयोपभोगमें यत्किंचित् भी सुख नहीं है, और, यदि इनमें सुख है ऐसी कल्पना की जाय, तो बिजलीकी ( वर्षाकालीन ) चमकमें संसारके व्यवहार क्यों नहीं चलते ? ॥ १३ ॥ और देखो, आकाशके अभ्रोंकी छायासे यदि वर्षा, पवन और धूपका निवारण हो सके, तो फिर तिमञ्जिले, चौमञ्जिले मकान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बनवानेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ १४ ॥ अतएव हम कहते हैं कि, 'विषयसुख' यह शब्दप्रयोग ही अनर्थकारी है, जैसे वचनागसो विषवाली औषधिको 'मदुर' या 'मधुर' नाम दिया गया है ॥ १५ ॥ अथवा भौम इस पापीग्रहको 'मंगल' कहा जाता है, किंवा मृगजलके भ्रमको 'जल' कहा जाता है ! जैसे ये शब्द अनर्थकारी अथवा वास्तव-अर्थहीन हैं, उसीप्रकार विषयोंके साथ 'सुख' शब्दकी संगति जोडना केवल भ्रम अथवा अज्ञान ही है ॥ १६ ॥ अस्तु, और जाने दो, अब तुमही कहो कि, सर्पके फनकी छाया चूहेको कभी सुखकर हो सकती है ? ॥१७॥ हे पार्थ ! जबतक मांसके कौरको मीन नहीं निगलता है, तबतक ही उसे वह बडिश सुंदर मालूम होता है। विषयसुखोंका मोह भी वैसा ही जानो, कि परिणाममें दुःखही दुःख होता है ॥ १८ ॥ हे पार्थ ! विरक्तकी दृष्टिसे यदि इन विषयोंको देखा जाय, तो पांडुरोगवाले मनुष्यकी तरह ही ये समझने चाहिये ॥ १९ ॥ इस कारण विषयभोगमें जो सुखाभास मालूम होता है, विचार कर देखनेसे, उसमें आद्यंत दुःखही दुःख भरा है। परन्तु, जो ज्ञानहीन हैं, जिन्हें विषय ही प्यारे हैं, वे क्या करें ? क्योंकि उनका तो बिना भोगोंसे कामही नहीं बनता ! ॥१२०॥ हे अर्जुन ! इसका समाधान यह है कि, वे बिचारे भोतरी, मर्मको न जाननेके कारण, विषय-भोगको ही सुखका साधन समझकर आनन्दके साथ उन्हें भोगते रहते हैं। देखो, पीवके कीचडमें रहनेवाले कीडोंको कभी पीवसे हींक ( उबकाई ) आती है ? ॥ २१ ॥ उन दुःखी जीवोंको तो वह दुःखही जीवन ( आत्म-सुख ) सा प्रतीत होता रहता है। वे विषयरूपी कीचडके मेंडक हैं, उप-भोगरूपी जलके जलचर ( मत्स्य ) हैं, क्या उस कीचड और जलको वे छोड सकेंगे ? ॥ २२ ॥ और ये विषय भी कैसे हैं ? दुःखयोनि अर्थात् दुःखोंको प्रसवनेवाले—ऐसे विषयोंसे यदि जीव विरक्त हो जांय, तो ये विषय भी वंध्यत्वको प्राप्त हो, क्या इनकी उत्पत्ति नष्ट नहीं होगी ? ॥२३॥ और यत्किंचित् भी विश्रांति लिये बिना, इस गर्भवासादि संकटोंका तथा जन्म-मरणके दुःखोंका कठिन मार्ग काटनेमें कौन तैयार हो जायगा ? ॥ २४ ॥ वैसेही, यदि विषयासक्त पुरुष विषयोंको छोड दें, तो फिर यह महादोष ( पातक ) कहाँ जायँगे ? इतना ही नहीं, किन्तु 'संसार' यह शब्द भी झूठा होकर नष्ट होजायगा ! ॥ २५ ॥ इस कारण जिन लोगोंने इस संसारको सत्य दिखानेके लिये विषय-भोगोंसे होनेवाले दुःखकोही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सुख मानकर अंगीकार किया है, उन लोगोंनेही इस मिथ्या अविद्यारूपी मायामोहको सत्य करके बतलाया है ॥ २६ ॥ परन्तु हे वीरश्रेष्ठ अर्जुन ! वे विषय अत्यंत नीच हैं, तुम भूलकर भी इनकी संगति न करो ॥ २७ ॥ देखो, अर्जुन ! जिन विरक्त लोगोंने इन विषयोंको अच्छीतरह पहचाना है, वे इन विषयोंको विषवत् त्याग देते हैं, अतएव निष्काम पुरुष उन आनेवाले दुःखोंसे यत्किंचित् भी दुःखी नहीं हो सकते ॥ २८ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

देखो अर्जुन ! ज्ञानियोंको विषयजन्य दुःखोंकी वार्ताभी नहीं रहती, कारण जबतक देह रहे तबतक उसके सब विकारोंको वे लोग, अपने वशमें कर रखते हैं ॥ २९ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु बाह्यविषयोंका तो वे नाम-तक नहीं जानते, कारण उनके अन्तरंगमें निरंतर अखंड सुखका आनंद रहता है ॥ १३० ॥ परंतु उस सुखानंदको भोगनेकी उनकी और ही रीति है, जैसे पक्षी फलको चुम्बन कर आस्वाद लेते हैं, वैसे वे सुखास्वाद नहीं लेते, किन्तु सुखका भोग लेते समय वे उस भोक्तृत्वको भी भूले रहते हैं ॥ ॥ ३१ ॥ ऐसे इस आत्मसुखके अनुभवमें उनकी ऐसी तन्मय अवस्था रहती है, कि अहंभावरूपी पडदे ( वस्त्र ) को वह दूर लौटा देती है और ऐसा दृढ आलिंगन देती है कि, जैसे जलमें जल मिलानेसे एकरूपताको प्राप्त हो-जाता है, उसी प्रकार उस तन्मयताके आलिंगनसे जीवात्मा परमात्मामें समरस ( एक ) होजाता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अथवा वायु आकाशमें लुप्त होनेपर जैसे आकाश और वायुमें भेद नहीं जान पडता, उसी प्रकार इस जीवात्माका तन्मयताके साथ योग होते ही केवल आत्मस्वरूप ही सुख-रूपमें रहता है ॥३४॥ इस प्रकार एकत्व प्राप्त होनेपर भेद ( द्वैत ) का नाम मिटजाता है, अर्थात् एकत्व रहजाता है । ऐसा होनेपर उस एकताका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये द्रष्टा-साक्षी-भी कौन रह जायगा ? कोई नहीं ॥ ३५ ॥ अस्तु,अब यह व्याख्यान यहां ही समाप्त कर देते हैं, कारण जो अकथनीय है, वह बोला भी कैसे जाय ? इस अस्पष्ट सूचनाका गूढ वे ही जान सकते हैं, जिन्हें आत्मस्वरूपका अनुभव प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

हे पार्थ ! इस आत्मसुखानुभवसे जो मत्त ( तर ) हुए हैं, जो केवल आत्मस्वरूपही होगये, मैं समझता हूं कि वे समरसके-ब्रह्मरसके-आनन्दसेही ढले हुए हैं ॥ ३७ ॥ उन लोगोंको आनंदकी प्रत्यक्ष मूर्ति, सुखके अंकुर अथवा आत्मबोधका बनाया हुआ आरामस्थान ही समझो ॥ ३८ ॥ उन्हें विवेककी उपजानेवाली भूमि, अथवा ब्रह्मतत्त्वका स्वभाव किंवा ब्रह्मविद्याके शृंगारान्वित अवयव ही समझो ॥ ३९ ॥ अथवा सत्त्वगुणकी सात्त्विकता या चैतन्यकी चलन-वलन क्रिया ही समझो । ( बीचहीमें श्रोते कहते हैं ) "अब यह विस्तार यहांही समाप्त करो, एक एक बातकी कल्पनाको कहांतक रँगाते हो ? ॥ १४० ॥ तुम सन्तजनोंकी स्तुतिमें तद्रूप हो जाते हो और प्रचलित व्याख्यानका स्मरण भी नहीं रखते, और निर्गुणविषयनिरूपणमें तो सौंदर्यान्वित, अलंकृत, शोभायुक्त शब्दोंकी तुम्हें बडी स्फूर्ति चढती है ॥ ॥ ४१ ॥ परन्तु, अब अपने स्फूर्तिले मनको वहांसे हटाओ और ग्रंथार्थरूपी दीपकको प्रज्वलित कर, सज्जनोंके अन्तरंगरूपी गृहमें कल्याणप्रद प्रभात समय करो " ॥ ४२ ॥ इस प्रकारका श्रीनिवृत्तिनाथ गुरुमहाराजका अभिप्राय जानकर, ज्ञानदेव बोले-हे श्रोताओ ! फिर श्रीकृष्णने जो अर्जुनसे कहा वही सुनिये ॥ ४३ ॥ भगवान् बोले-हे अर्जुन ! जो आत्मानंदरूपी अथाह दहमें एकबार डूब गये, वे फिर वहां ही स्थिर होकर तद्रूप होजाते हैं ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार जो शुद्ध आत्मज्ञानके प्रकाशसे संपूर्ण विश्वको अपनेहीमें देखते हैं, यद्यपि वे देहधारी मनुष्य हों, तथापि उन्हें बडे आनंदके साथ परब्रह्म ही कहना उचित होगा ॥ ४५ ॥ यह परब्रह्म वास्तवमें सत्य, अविनाशी, सर्वश्रेष्ठ और सबसे परे होकर अमर्याद है, ऐसे परब्रह्मरूपी नगरके मालिक या अधिकारी वे ही होसकते हैं, जिन्होंने सब प्रकार निष्कामता प्राप्त कर रखी है ॥ ४६ ॥ यह महर्षियोंके लिये प्रचुरतर अलग है, विरक्तजनोंके हिस्सेका है और ऐसे निस्सन्देहजनोंके लिये तो इस समृद्धिकी तो कभी भी कमी नहीं रहती ॥ ४७ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

जिन लोगोंने अपना मन विषयोंसे अलग कर ( खींचकर ) पूर्णतासे अपने वश कर लिया, ऐसे योगीजन शान्तचित्त हो, दृढताके साथ जहां सो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जाकर फिर जागृत नहीं होते, उसीका नाम ' परब्रह्मनिर्वाण ' ( मोक्ष ) है। आत्मज्ञानियोंका ध्येय जो परब्रह्म हे पार्थ ! उन पुरुषोंको वही ( परब्रह्म ) तुम समझो ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ देहके रहते हुए वे पुरुष परब्रह्मपदकी स्थितिको कैसे प्राप्त होगये ? यदि ऐसी तुम्हारी शंका होगी, तो उसका निराकरण करनेके हेतु संक्षेपसे कहते हैं ॥ १५० ॥

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

पूर्ण वैराग्यसामर्थ्यसे संपूर्ण विषयोंको बाहर निकालकर जिन्होंने अपना शरीर शुद्ध मनोमय बना दिया है, ॥ ५१ ॥ और नाडीत्रय ( इडा, पिंगला, सुषुम्ना ) का जहां एकीकरण होता है तथा जहां दोनों भौंहें एकत्र मिल-जाती हैं, उस स्थानमें उलटी दृष्टि लगाकर, दहिने बाँयें नासारंध्रोंको रोक, प्राण और अपान वायुको समानतामें लाकर उन्हें चित्तके साथ चिदाकाशमें संचार कराते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ फिर, जैसे रास्तेके छोटे छोटे नाले धीरे धीरे गंगादिनदीमें प्रविष्ट होते हैं और इसप्रकार बढी हुई वह महानदी जब समुद्रमें प्रवेश करती है, तब जैसे उसके मिले हुए जल अलग नहीं छाँटे जा सकते, ॥ ५४ ॥ उसी प्रकार समाधिस्थितिमें जब प्राण अपान वायुके सामर्थ्यसे मनको चिदाकाशमें लय किया जाता है, तब अन्य सब वासना-ओंके विचार आपही आप बन्द होजाते हैं ॥५५॥ जैसे सरोवरके सूखजाने-पर उसमें पडनेवाला प्रतिबिंब भी नष्ट हो जाता है, उसीप्रकार यह संसार-रूपी चित्र जिसपर चितारा जाता है ( प्रतिबिंबित होता है ) वह मनोरूपी वस्त्र ही उस स्थितिमें फट जाता है ॥ ५६ ॥ ऐसी अवस्थामें-अर्थात् जिसमें मूल मनही नहीं—तब अहंभावादिकोंके लिये स्थान कहां रहा ? इसलिये, इस ब्रह्मसारूप्यके सुखको अनुभव करनेवाले पुरुष, देहधारी होनेपर भी ब्रह्मरूप हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे अर्जुन ! पीछे भी हम कहचुके हैं कि, कोई पुरुष इस देहको धारण करते रहनेपर भी ब्रह्मत्वको प्राप्त होते हैं, वे भी इसी मार्गका अवलंबन करक इस स्थितिको प्राप्त भये हैं ॥ ५८ ॥ वे लोग यम, नियम, आसन, धारणादि योगसाधनरूपी बडे पहाड चढकर और योगाभ्यासरूपी महा-सागरको अतिक्रमण करनेपर इस स्थितिको प्राप्त होते हैं ॥ ५९ ॥ वे स्वयं उपाधिरहित हो, आत्मसाक्षात्कारके सामर्थ्यसे इस सारे प्रपंचका अनुभव किया करते हैं, किन्तु सचमुच देखो, तो वे नितरां शान्तरस बने रहते हैं ॥ १६० ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण कर्मयोगको निरूपण करते रहे और अर्जुन जैसे चतुर और बुद्धिमान् श्रोताको इस नूतन तत्त्वके श्रवणसे बडा आश्चर्य ज्ञात हुआ ॥ ६१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके मनका भाव जान, स्मित हास्य करके उसे पूछा-" हे प्यारे पार्थ ! मेरे इस भाषणसे तुम्हारे चित्तमें कुछ समाधान हुआ या नहीं ? " ॥ ६२ ॥ तब अर्जुन बोला-" हे सर्वज्ञ, देव ! आप दूसरोंके अन्तःकरणको सहज हीमें पहचानते हो, अतएव मेरे मनको भी आपने अनायास और ठीक ठीक पहचाना । ॥ ६३ ॥ देखो, भगवन् ! मैं जिस बातके पूछनेकी इच्छा करनेवाला था, उस बातको आप सर्वज्ञने पहले ही जानकर कह दिया । तथापि उसी बातको एकबार बिलकुल बालबोधके योग्य हो, ऐसी रीतिसे विस्तारके साथ कथन करिये ॥ ६४ ॥ देखो भगवन् ! आपने जो यह साधनमार्गका उप-देश किया, वह जैसे गहरेपानीकी अपेक्षा पांवउतारका मार्ग सुगम रहता है, उसी प्रकार दुर्बल और बुद्धिहीन हमलोगोंको सांख्य ( ज्ञान ) की अपेक्षा अधिक सुगम तथा अल्पपरिश्रमका मार्ग जान पडता है, किन्तु इस मार्गके अवलम्बनसे कालावधिका आधिक्य होनेका भी संभव है, तथापि वह बात संभवनीय हो सकती है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ अतएव हे देव ! एकबार हमारे पहले ही सब प्रश्नोंको विस्तारके साथ साद्यंत सुलभ रीतिसे वर्णन कीजिये " ॥ ६७ ॥ तब अर्जुनको संतोषित देख श्रीकृष्ण बोले-" क्यों अर्जुन ! तुम्हें यह मार्ग भला ज्ञात होता है ? ठीक, हम भी उसको फिर अच्छीतरह संतोषसे वर्णन करेंगे और तुम आनंदपूर्वक सुनो ॥ ६८ ॥ हे पार्थ ! तुम सचित्त हो श्रवण करते हो और तदनुसार आचरण करनेकी तुम्हारी इच्छा देखी जाती है, तब इतनी सिद्धता रहनेपर, क्या हम फिर कहनेमें परिश्रम समझेंगे ? " ॥ ६९ ॥ श्रोतालोगो ! जैसे माताका प्रेमभरा मन और अपने प्यारे पदार्थका उसके हाथसे खाना, फिर उस आनंदका जैसे वर्णन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शब्दके बाहर रहता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णका अर्जुनपर प्रेम और उसके हेतुकी पूर्तता करनेका मानस देख, किसको यथार्थ आनंद नहीं होगा ? ॥ १७० ॥ अर्जुनके ऊपरकी उस श्रीकृष्णकी अमृतभरी दृष्टिका मैं किस रीतिसे वर्णन करूं यह समझ ही नहीं सकता ! क्या उसे अमृतका भरा कुंड या स्नेहका भरा सरोवर कहूं, कुछ मालूम नहीं होता ! ॥ ७१ ॥ क्योंकि वह दृष्टि मानों अमृतसे ढली हुई पुतली हो, अथवा प्रेमरसके पान करनेपर उन्मत्त हुई जैसी दीखती थी, जिससे वह भी अर्जुनके मोहमें ऐसी निमग्न हो रही थी, कि वह अर्जुनको छोडनेमें असमर्थ हो रही थी ! ॥७२॥ इस विषयका वर्णन प्रेमके भी बाहर है, इसलिये यदि उसीपर जोर दिया जाय तो केवल विषयांतर होनेका मात्र संभव है, परन्तु भगवान्के स्नेह-भावका शब्दचित्र भी जैसा चाहिये वैसा नहीं बन सकेगा ॥ ७३ ॥ परन्तु यह भी एक बात है कि, इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, कारण, जिस ईश्वरको भी स्वतःका ठीक वर्णन करना नहीं बनता, क्या उसके रूपका कोई दूसरा वर्णन कर सकता है ? ॥ ७४ ॥ तथापि 'हे अर्जुन ! तुम सुनो' इस प्रकारकी बारबारकी उक्तिको स्मरण कर ज्ञात होता है कि, भगवान्को भी अर्जुनके विषे मोह प्राप्त भया हो, ऐसी कल्पना की जा सकती है और वही यथार्थ हो, ऐसा मेरा भी प्रेमभरा अभिप्राय है ॥ ७५ ॥ अब श्रीकृष्ण फिर कहेंगे कि, "हे अर्जुन ! तुम्हारे चित्तमें जिस रीतिसे यह विषय दृढ हो सके, उसी प्रकार उसका विवेचन मैं बडे संतोषसे करूंगा ॥ ७६ ॥ तुम ध्यानके साथ सुनो । हे अजुन ! योगमार्ग किसे कहते हैं, उससे क्या लाभ होता है, और उसके अधिकारी कौन हैं ॥ ७७ ॥ इस प्रकारके जो जो प्रश्न इस विषयमें संभवनीय हैं, उन सबका स्पष्टीकरण मैं करूंगा ॥ ७८ ॥ हे अर्जुन ! अब तुम बडे ध्यानके साथ एकाग्रचित्त होकर सुनो" इस प्रकार की प्रस्तावना करके भगवान् श्रीकृष्णने जो कहा, वह अगले अध्यायमें वर्णन किया जायगा ॥ ७९ ॥ अब मैं श्रीनिवृत्तिनाथका दास ज्ञानदेव श्रोताओंसे प्रेमके साथ कहता हूं कि, इस प्रपंच ( संसार ) को न छोडकर भी योगको साध्य किया जा सकता है, इस प्रकारका सदुपदेश भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके प्रति करेंगे, उस प्रसंगको मैं भी स्पष्ट करके कहूंगा॥१८०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः भाषानुवादे
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते आत्मानन्दाय ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## षष्ठोऽध्यायः ६.

संजय धृतराष्ट्रसे कहता है, हे राजन्, धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्ण परमात्माने योगरूप तत्त्वका मार्ग जो अर्जुनसे कहा, उसको तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ राजन् ! देखो, आपका और मेरा भी भाग्य बडा अच्छा है, क्योंकि भगवान् नारायणने जिस समय सहज लीलासेही अर्जुनके लिये ब्रह्मरसका भोजन दिया, फौरन उसी समय हमलोग भी महमान ( अतिथि ) हो वहां आये ! ॥ २ ॥ इसलिये हम लोगोंका अहोभाग्य है, उसका कैसे वर्णन हो सके ? जैसे किसी प्यासेको पानी दिया जाय, और वह उसको पीने लगे तो रुचि लेनेमें वह अमृत बनजाय ! ॥ ३ ॥ यही बात तुम्हारे हमारे विषे बन रही है । कारण मुख्य तत्त्व जो ब्रह्मज्ञान वह आज हमारे हाथ आ रहा है । इतनेमें धृतराष्ट्र बोला-" हे संजय ! ऐसी बातें कहनेविषे मैंने तुझसे नहीं कहा था " ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्रके इस वाक्यसे संजयने उसका मर्म पहचान लिया, कि इस धृतराष्ट्रको इस समय अपने पुत्रोंकी ही चिन्ता लग रही है ! ॥ ५ ॥ यह बात जान संजय मनहीमें हँसा और अपनेहीमें बोला, अहाहा ! इस बूढेको क्या कहा जाय ? यह तो पुत्रस्नेहसे पागल बना है, अन्यथा इस प्रकारका ( जो कभी भी सुननेमें न आनेवाला ) श्रीकृष्णार्जुनसंवाद कैसा हृदयंगम और अलभ्य हो रहा है ! ॥ ६ ॥ परन्तु जैसे जन्मान्धको सूर्यका प्रातःकाल कभी ज्ञात नहीं होता, उसी तरह इस मोह-मूढको इस भगवान्के उपदेशका कुछ भी लाभ प्रिय नहीं होता ! इस प्रकार संजय अपने मनमें ही कह रहा था, कारण । स्पष्ट कहनेमें धृतराष्ट्र क्रोधित होजाय, इस लिये डरसे घबडा गया था ॥ ७ ॥ कुछ भी हो, व्यासजीकी कृपासे मैं तो कृष्णार्जुनका अमृतमय संवाद सुनचुका और सुनता रहूंगा, ऐसा बडे आनंदके साथ संजय मनमें मानता रहा ॥ ८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


और उस आनंदसे संतुष्ट हो, मनमें स्फूर्ति होनेसे उस संवादप्रसंगका निरूपण खुशीके साथ वह करगया ॥ ९ ॥ वही यह गीताग्रंथका तत्त्वनिर्णयात्मक छठा अध्याय है । जिस प्रकार क्षीरसागरके मंथन करनेसे सर्वरत्नोंका सारभूत अमृत प्राप्त भया ॥ १० ॥ उसीप्रकार सब गीताके तत्त्वज्ञानका सार, अथवा विवेक-सागरका परतीर, किंवा संपूर्ण योगसंपत्तिरूपी खुला भाण्डार, ॥११॥ या जहां आदिमाया-मूलप्रकृति स्तब्ध होजाती है, जहां वेद मौन धारण करते हैं और जहांसे गीतारूपी वल्लीके अंकुर उत्पन्न होते हैं, ॥ १२ ॥ वही यह छठा अध्याय है । अब इसीको, मैं अपनी बुद्धिसे साहित्यकी अलंकारिक भाषाका उजेला देकर कहूंगा, आप श्रोतालोग सावधानचित्त हो, उसे श्रवण कीजियेगा ॥१३॥ इसमें मैं प्राकृत शब्दोंकी ही योजना करूंगा, किन्तु सुननेवालोंको वे रसभरे शब्द अमृतसे भी प्रिय ज्ञात होंगे और ऐसे ही शब्दोंको चुन चुनकर इसमें नियोजित करूंगा, जिनके श्रवणसे श्रवणेंद्रियकी अभिरुचि बढती ही रहेगी ॥ १४ ॥ इन शब्दोंकी यदि कोमलताके साथ तुलना की जाय, तो गायनके कोमल सुरोंको भी गर्दन नीचे करनी पडेगी, तथा इनकी मोहकतामें सुगंधको भी मोह उत्पन्न होगा ! ॥ १५ ॥ इनकी रसिकाताको देख, कानको भी जिह्वा उत्पन्न होंगी तथा सब इन्द्रियोंमें आपसमें कलह बन जायगा ! ॥ १६ ॥ वास्तवमें ' शब्द ' श्रवणेंद्रियका ही विषय है, किन्तु जिह्वा कहती है, उसमें जो रस होगा उसपर अधिकार मेरा ही है । उसीतरह घ्राणेन्द्रियका विषय ' गंध ' है, किन्तु ये मेरे प्राकृत ' शब्द ' अपने सुगंधगुणोंसे घ्राणके भी विषय होंगे ॥ १७ ॥ इसपर भी इस भाषाका यह आश्चर्य है कि, जो नेत्र हैं वे इस काव्यको देखते ही आश्चर्यान्वित हो, इसे लावण्यकी खान या ' रूप ' का विषय ही मानेंगे ॥ १८ ॥ और जब संपूर्ण वाक्यरचना पूरी होगी, तब श्रोतागणोंका मन दौडता हुआ बाहर होकर उसे ( शब्दरचनाको ) आलिंगन देनेके लिये दोनों बाँहें फैलावेगा ॥ १९ ॥ इस प्रकार सब इन्द्रियें अपनी अपनी वृत्त्यनुसार इन शब्दोंपर टूट पडेंगी, किन्तु जिस प्रकार एकेला सूर्य संपूर्ण विश्वको सचेत करता है, उसी प्रकार ये शब्द भी समभावसे सबको समझा सकेंगे ॥ २० ॥ कारण इन शब्दोंकी व्यापकता बडीही विलक्षण है; इन शब्दोंके भावार्थका यथार्थ विचार करनेवालोंको ऐसा आनंद होगा और वे ऐसा कहेंगे कि, इन्हें शब्द कहनेकी अपेक्षा चिन्तामणि कहना ही योग्य होगा !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ २१ ॥ अब इसे यहां ही समाप्त करदेना ठीक समझता हूँ, क्योंकि मैं इन शब्दरूपी थालियोंमें ब्रह्मरसरूपी भोजन निष्काम–साधु–संतोंके लिये परोस रहा हूं ॥ २२ ॥ और यहां कभी भी मंद न होनेवाले आत्मज्ञानके दीपककी ज्योतिका प्रकाश किया गया है, ऐसे भोजनका वे ही भोग पाते हैं, जिन्होंने अपने इन्द्रियोंको इस विषयका तनिक भी पता न दिया होगा ॥ २३ ॥ यद्यपि यहां श्रवणेंद्रियका काम हो, तथापि उसका भी आश्रय न कर, केवल मनके सामर्थ्यपरही निष्काम श्रोतालोग इसे ग्रहण करें ॥ २४ ॥ इस भाषा ( शब्दों ) का ऊपरी आच्छादन ( कवच ) निकालतेही अन्तर्गत ब्रह्मस्वरूप प्रकट होगा, तब उसके साथ एकरूप ( तादात्म्य ) होनेपर अनायासही अखण्ड सुखही सुख भोगनेमें आवेगा ॥ २५ ॥ यदि श्रोतालागोंके द्वारा इस प्रकारकी तपश्चर्यासे मृदुता प्राप्त की जा सके । तब ही शब्दों ( वाणी ) का यथार्थ उपयोग समझा जा सकेगा, नहीं तो यह मेरा निरूपण केवल बहरे–गूँगोंका बकवाद ही समझा जायेगा ! ॥ २६ ॥ अब इस प्रकारका यह व्याख्यान बढाना उचित नहीं, तथा इस प्रकार इन निष्काम श्रोतागणोंको जोरके साथ बारबार धमकाना भी ठीक नहीं, कारण वे तो पूर्ण अधिकारी होनेसे इस श्रवणके योग्य ही हैं ॥ २७ ॥ जिन्होंने आत्मज्ञानकी अभिरुचिपर निर्भर होकर, संसारकेही नहीं, किन्तु स्वर्ग सुखोंको भी तुच्छ समझ रखा है, वे ही इस भाषामाधुर्यको जान सकते हैं, औरोंको इसका ज्ञान नहीं होगा? ॥ २८ ॥ जैसे कौओंसे चंद्रमा नहीं पहँचाना जाता, उसी प्रकार प्राकृत ( अज्ञ ) लोग इस ग्रंथके महत्त्वको नहीं समझ सकते । और जैसे चकोरही चंद्रकिरणोंका सेवन कर सकते हैं, ॥ २९ ॥ उसी प्रकार केवल ज्ञानवान् ही इसके अथाह ज्ञानका पता प्राप्त कर सकते हैं, इतर अज्ञजनोंका ग्राम ही भिन्न है, जो इसमें नहीं मिलसकता । अतएव इस विषयमें मैं विशेष कुछ कहनेकी इच्छा नहीं करसकता, ॥ ३० ॥ तथापि प्रसंगानुसार जो कुछ कहा गया, उसके लिये सब श्रोतालोग मुझपर क्रोध न करें और श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे जो कुछ कहा, उसे सावधान चित्तसे श्रवण करनेकी कृपा रखें ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका भाषण, बुद्धिके भी परे रहनेसे उसको शब्द ( काव्यरूप ) में ग्रथित करना कितना कठिन हो, अगर अशक्य कहा जाय, तो भी अनुचित नहीं है, परन्तु श्रीसद्गुरु निवृत्तिनाथके कृपारूपदीपकके प्रकाशसे मुझे उसका ज्ञान होगा, ऐसा मैं विश्वास रखता हूं ॥ ३२ ॥ जो वस्तु दृष्टिको प्राप्त न हो सके, वह भी दृष्टिके विना अतींद्रिय–

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ज्ञानके सामर्थ्यसे प्राप्त हो सकती है ॥ ३३ ॥ देखो, दैवयोगसे यदि पारस ( स्पर्श ) प्राप्त हो सके, तो किमियागारवालेसे भी जो सुवर्ण नहीं बनसके, ऐसा सुवर्ण लोहमें भी प्राप्त किया जासकता है ॥ ३४ ॥ उसी प्रकार यदि सद्गुरुकी कृपा होजाय तो कौनसी बात असाध्य हो सकती है ? अतएव सद्गुरु निवृत्तिनाथ महाराजकी कृपासे उस इन्द्रियातीत और अमर्याद तत्त्वको भी मैं ( ज्ञानदेव ) समझा सकता हूं ॥३५॥ अतएव मैं निरूपण करता हुआ निराकार तत्त्वको शब्दोंसे साकारतामें प्रकट करूंगा तथा जो इन्द्रियोंसे परे है, उस वस्तुको इन्द्रियद्वारा ही भोग कराऊँगे ॥ ३६ ॥ सुनिये, यश, श्री, औदार्य, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इन छहगुणोंसे युक्त होनेके कारण जिन्हें 'भगवान्' कहा जाता है ॥ ३७ ॥ और वासनासंगहीन-निस्संगोंके सदाके साथी जो भगवान् श्रीकृष्ण वे अर्जुनसे बोले—हे गुडाकेश, पार्थ ! अब सावधान होकर ध्यानसे सुनो ॥ ३८ ॥

**श्रीभगवानुवाच ।**

**अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।**
**स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥**

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! योगी और संन्यासी ये एक ही है । यदि तुम इन्हें भिन्न समझते हो, तथापि विचार करनेपर ये दोनों एकही हैं ऐसा ही आखिर निर्णय होगा ॥ ३९ ॥ यदि नामभेदका आरोप दूर किया जाय तो जो योग वही संन्यास यह ज्ञात होगा, कारण ब्रह्मदृष्टिसे देखनेपर इनमें तनिक भी भेद नहीं दिखायी देगा ॥ ४० ॥ एकही पुरुषको प्रसंगानुसार जैसे पृथक् पृथक् नामोंसे संबोधा जाता है, अथवा अनेक मार्गोंसे जैसे एकही स्थानको जा सकते हैं, ॥ ४१ ॥ किंवा स्वभावतः एकही जल जैसे अनेक घडोंमें भरनेपर जुदाजुदा दिखायी दे, तो भी जैसा वह एकही है, उसी प्रकार योग और संन्यास ये नाम यद्यपि दो हैं तो भी वास्तवमें एकही है ॥ ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन ! बहुमान्य लोगोंका यही तत्त्व है कि, योगी वही कहा जाय, जो कर्माचरणके करनेपर फलमें आसक्ति नहीं रखता ॥ ४३ ॥ जैसे यह जो पृथ्वी है, वह अहंभावादि विना सहज ही वृक्षादि उद्भिज्जकोटिको निर्माण करती है, परन्तु उनसे उपजनेवाले फल-अनाजादिकोंकी इच्छा नहीं करती, ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार सर्वत्र व्यापक जो परब्रह्म उसके आश्रयसे, अपनी स्वाभाविक स्थित्यनुसार जिस समय जो जो आचरणयोग्य हो, उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उचित आचरणको जो करता रहता है, परन्तु जिसमें देहबुद्धिका यत्किंचित् भी अहंकार नहीं, तथा अपने मनको भी जो फलेच्छाका स्पर्श नहीं करा सकता, ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे अर्जुन ! वही पुरुष संन्यासी और वही निःसंशय सच्चा और श्रेष्ठ योगी समझा जायगा ॥४७॥ किसीको यदि यह योगयुक्ति साध्य न हो, और इन स्वाभाविक तथा नैमित्तिक कर्मोंको बन्धनकारक मानकर यदि उन्हें छोडदे, तो वह उसी समय आपही आप दूसरे कर्मोंसे जा चिपकता है ॥४८॥ जैसे शरीरमें लगे हुए एक लेपको धो पोंछकर साफ करता है, और स्वयं ही दूसरा लेप लगानेकी इच्छा कर लगा लेता है, वहीं स्थिति इस आग्रहके तंत्रानुसार चलनेवालेकी होकर व्यर्थ विडंबनामात्र होती है ॥ ४९ ॥ देखो, पहले गृहस्थाश्रमके स्वाभाविक भारसे हीं उत्तीर्ण होना मुश्किल हो रहा है, फिर उससे अच्छीतरह पार हुए बिना, यह संन्यासका नया बोझा शिरपर क्यों चढा लिया जाय ? ॥ ५० ॥ इसलिये, पहले अग्निहोत्रादि नित्य श्रौत-स्मार्त कर्मोंको करते रहकर तथा आचारमर्यादादिकोंका अच्छीतरह पालन कर, इस कर्मयोगको यदि ठीकतरह निभाया जाय तो वह स्वभावतः अनायास ही आत्मसुखको दे सकेगा ॥ ५१ ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! 'जो संन्यासी है, वही योगी है' इस प्रकार संन्यास और योगके एकवाक्यताकी विजयपताका आजतक अनेक शास्त्रोंने संसारमें फहराई है ॥ ५२ ॥ शास्त्रकारोंने अपने अनुभवसे यह निश्चित ठहराया है, कि जहां त्याग किये हुए संकल्प-विकल्पोंका लोप होजाता है, वहां ही कर्मयोगका तथ्य प्राप्त होता है ( योगसाररूपी ब्रह्मकी भेंट होती है ) ॥ ५३ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! अब, इस कर्मयोगरूपी पहाडके शिखरपर पहुँचनेकी यदि इच्छा हो, तो इस कर्ममार्गरूपी सोपान ( सीढी ) को कभी नहीं छोडना चाहिये ॥ ५४ ॥ इस सोपान-मार्गकी पैंडीसे यमनियमरूपी आद्यभूमिद्वारा योगासनकी पगडंडीको पकडकर प्राणायामरूपी टीलासे ऊपर चढना ॥५५॥ इसके बाद प्रत्याहाररूपी अर्धभाग प्राप्त होता है, किन्तु जहां बुद्धिके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी पैर ढीले होजाते हैं, ऐसा वह कठिन है । और इस स्थानपर पहुँचनेके बाद आगेके आक्रमणमें हठयोगियोंको भी अपनी प्रतिज्ञाओंसे भ्रष्ट होजानेकी डरके कारण वहां रुकना पडता है ॥ ५६ ॥ परन्तु अभ्यासके जोरसे तथा निश्चयात्मक वृत्तिसे इस प्रत्याहारके निरालंबनमार्गमें धीरे धीरे वैराग्यका आश्रय प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार वायुरूपी अश्वपर चढ, धारणारूप विस्तार प्रांतमें पहुँचना होता है, फिर इसी प्रांतको आक्रमण करते-करते ध्यानका लक्ष्यस्थल जबतक नहीं प्राप्त भया, तबतक चलतेही रहना चाहिये ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे ध्यानको प्राप्त होते ही, यह मार्ग वहां समाप्त होता है अर्थात् प्रवृत्तिकी लालसा नष्ट हो जाती है । कारण यहां ' साध्य और साधन ' की भेंट होकर वे दोनों एकरूप होजाते हैं, जिससे वहां ब्रह्मानंद प्राप्त होजाता है ॥ ५९ ॥ अब इसके आगे चलनेका कोई काम नहीं रहता और यहां पहुँचनेपर पिछली बातोंकी पूर्ण विस्मृति होती है । इसप्रकार योगसमाधिकी समानभूमिपर पहुंचकर, वह योगी स्थिर होजाता है ॥ ६० ॥ हे अर्जुन ! इस प्रकारके उपायोंसे योगसाधन साध्य कर, अत्यंत उच्चावस्थाको जो पुरुष प्राप्त होजाता है, उसके लक्षणोंका मैं निरूपण करता हूं, तुम ध्यानके साथ श्रवण करो ॥ ६१ ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! जिसके इंद्रियोंके घरमें विषयोंका आवागमन नहीं होता, और जो आत्मज्ञानरूपी कोठडीमें सुखसे आत्मानंदमें सोता रहता है, ॥ ६२ ॥ तथा जिसका मन सुखदुःखरूपी शरीरको मिलनेकी यत्किंचित् भी इच्छा नहीं रखता, और इंद्रियोंके विषय पास आनेपर, उनकी उपेक्षा करता रहता है, या उनका जिसे स्मरण भी नहीं रहता, ॥६३॥ एवं इंद्रियोंको कर्ममार्गमें प्रवृत्त कर, अन्तःकरणमें कर्मफलकी यत्किंचित् भी जो आसक्ति नहीं रखता, ॥ ६४ ॥ जो केवल देह धारणके लिये जागृत रहकर, आत्मभावनामें ही निरंतर रत रहता है, हे अर्जुन ! निःसंशय उसी पुरुषको तुम योगारूढ हुआ समझो ॥ ६५ ॥ भगवान्की इस बातको श्रवण कर अर्जुन आश्चर्यान्वित हो बोला, ' हे देव ! इस प्रकारकी योग्यता मुझे कैसी प्राप्त होगी ? योगीको ऐसी योग्यता कौन देता है ?' ॥ ६६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

तब श्रीकृष्ण हँसकर बोले-' देखो पार्थ ! तुम्हारा यह प्रश्न बडा आश्चर्यजनक ज्ञात होता है ! हे पार्थ ! इस अद्वैतावस्थामें कौन किसे क्या दे सकता है ? ॥ ६७ ॥ जब भ्रांतिरूपी शय्यापर सोये हुए पुरुषको, अज्ञान ( माया ) रूपी निद्रा आजाती है, उसी समय जन्म-मरणरूपी दुःखके स्वप्न दिखायी देने लगते हैं ॥ ६८ ॥ किन्तु जब अकस्मात् वह जागृतावस्थाको प्राप्त होता है, तब वह सब स्वप्नविषय उसे मिथ्या प्रतीत होता है, किन्तु जैसी भ्रांतिकी स्थिति प्राप्त भयी, आत्मबोध भी उसका निजका ही रहता है ॥ ६९ ॥ एवंच हे अर्जुन ! आखिरी फल यही होता है, कि वह कारणके बिना ही, इस देहाभिमानपर चित्त देकर आप ही अपना घात ( नाश ) करता है ॥ ७० ॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

देखो, विचारपूर्वक इस अहंकारको त्याग किया जाय तो स्वयं सद्ब्रह्मरूप बन जायगा । बस, इस प्रकार करनेसे तो अनायास आप अपना कल्याण कियेका ही श्रेय प्राप्त कर सकता है ॥ ७१ ॥ और ऐसा न कर, केवल इस शरीरके सौंदर्यको देख, और इसीको आत्मा समझ कोशके कीटककी नाईं आप अपनेको बाँध लेता है, वह स्वयंही अपना वैरी हो जाता है ॥ ७२ ॥ जैसे द्रव्यप्राप्तिके समय दुर्दैवी मनुष्यको अंधा बनजानेकी इच्छा होकर उस धनसंचयके सामने आते ही देखनेवाली अपनी आँखें मूंदकर वह उसे उलंघ जाता है ! ॥ ७३ ॥ दूसरा यह आश्चर्य भी होता है कि भ्रमसे कोई बकने लगता है कि ' देखो, यह मैं नहीं, मैं खोगया, मुझे चोर चोरी करगये ' इस प्रकार अपने अन्तःकरणमें हठ ले बैठता है ! ॥ ७४ ॥ सच देखाजाय, तो वह जो है सोही है अर्थात् जीव ब्रह्म ही है, किन्तु उसकी बुद्धि इस रास्तेपर आनाही नहीं चाहती । देखो, स्वप्नमें यदि कोई शस्त्रप्रहार करे तो उससे कोई सचमुच मर सकता है ? ॥ ७५ ॥ तोतेके शरीरके भारको पकडनेके लिये नलिकायंत्र बना रहता है, तोतेके भारसे ही वह नली उलटी घूम जाती है अर्थात् घूमतेही यदि तोता उडना चाहे तो उड

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सकता है, परन्तु गिरजानेकी डरसे उसका मन घबडा जाता है, वही स्थिति इस पुरुषकी होती है ॥ ७६ ॥ वह तोता व्यर्थ ही गर्दन ऐंठता है, छातीको संकुचित करता है, और नलीको पावोंसे दबाकर खूब जोरके साथ चोंचमें पकड रखता है ॥ ७७ ॥ और वह समझता है कि 'अब मैं सचमुच बँधगया' ऐसी झूठी भावनाके खेडुमें पड वह अपने खुले पावोंके पञ्जेको उस नलिकामें अधिकाधिक फँसा देता है ॥ ७८ ॥ इस प्रकार कोई कारण न रहते जो फँस जाता है ( बँधा गया समझता है ) क्या वह किसी दूसरेसे बांधा समझा जायगा ? किन्तु ऐसे भ्रममें एकवार उसकी जो दृढ भावना होती है, यदि उसे आधा काटा जाय, तो भी वह उस नलिकाको नहीं छोडसकता ! ॥ ७९ ॥ अतएव भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन ! ऐसे संकल्प-विकल्पोंको जो वृथाही बढाता है, वह स्वयं ही अपना शत्रु होजाता है । किन्तु ऐसे भ्रमोंके जालमें न फँसकर 'मैं ही आत्मा हूँ' इस प्रकारकी दृढ बुद्धिसे मिथ्यावस्तुमें जो कभी भी भ्रान्त नहीं होता वही श्रेष्ठ आत्मज्ञानी कहा जाता है, यह मेरा निश्चित मत है ॥ ८० ॥

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! जिसने अपना मन जीत लिया है, और संपूर्ण वासनायें जिसकी शांत होगयी हैं उस पुरुषको ऐसा कभी नहीं ज्ञात होता कि परमात्मा अपनेसे दूर या अलग हो रहा हो ॥ ८१ ॥ जैसे सुवर्णके मलको अग्निमें तपाकर निकाल देनेसे केवल शुद्ध सोना ही बाकी रहता है, उसी प्रकार इस संकल्प-विकल्परूपी भ्रमका नाश होनेपर जीव ही परमात्मा हो जाता है ॥ ८२ ॥ जैसे घटाकाशका नाश होते ही उसे आकाशमें मिल-जानेके लिये दूसरा स्थानान्तर नहीं करना पडता, ॥ ८३ ॥ उसी प्रकार जिसका मिथ्या देहाभिमान समूल नष्ट होचुका, उसे परमात्मरूप बन जानेके लिये दूसरा कुछ भी करना नहीं पडता, कारण वह पहलेसे ही सर्वत्र परमात्मरूपसे ओतप्रोत भरा हुआ है ॥ ८४ ॥ फिर इस अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषमें शीतोष्णादि सुखदुःखके विचार अथवा मानापमानकी बातोंका संभव ही कहां रहता है ? ॥८५॥ जैसे सूर्य जिस जिस मार्गका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


आक्रमण करता जाता है उस उस मार्गमें उसके तेजसे सब प्रकाशमय ही होता है, वैसे ही इस पुरुषसे जिसकी भेंट होती जाती है, वह सब तद्रूपही हो जाता है, याने उसीमें समरस होजाता है॥८६॥ जैसे मेघोंके द्वारा निकलनेवाली वर्षाकी धारायें समुद्रमें गिरजाती हैं, परंतु उनसे समुद्रको नोचनेका दुःख नहीं होता, उसी प्रकार आत्मस्वरूपत्वको प्राप्त भये इस योगिश्रेष्ठको संसारकी शुभाशुभ बातोंसे किंचित् भी क्लेश नहीं हो सकते, कारण, उन शुभाशुभ कर्मोंको वह अपनेसे भिन्न नहीं मानता ॥ ८७ ॥ इस संसार-विषयक भावनाका विचार करनेपर, यह भावना मायिक ( मिथ्या ) है, ऐसा जब निश्चित ज्ञान होता है, तब पूर्ण विचारके करनेपर वह ज्ञान दृढ होता जाता है, और वह स्वयं आत्मरूपही बनता है ॥ ८८ ॥ ऐसी स्थितिमें द्वैतभावके नष्ट हो जानेके कारण मैं व्यापक हूं या अव्यापक, इस प्रकारका ऊहापोह ( तर्क ) करना आपही बन्द होजाता है ॥ ८९ ॥ इसप्रकार जिसने इंद्रियोंको जीतकर जयकी प्राप्ति की है, यद्यपि वह देहधारी हो, तथापि परब्रह्मकी योग्यताका ही उसे समझा जायगा ॥९०॥ हे अर्जुन ! वही सच्चा जितेंद्रिय और वही श्रेष्ठ योगी कहा जायगा । कारण, यह छोटा, यह बडा, इस प्रकारका भेदभाव जिसे स्पर्श नहीं करता, ॥ ९१ ॥ उसे मेरुपर्वतके समान सुवर्णका पहाड और छोटासा मट्टीके ढेलेमें कुछ भी भेद नहीं रहता, वह दोनोंको समान ही समझता है ॥ ९२ ॥ और वह ऐसा निरिच्छ रहता है कि, पृथ्वीके मोलका तेजस्वी रत्न भी पत्थरकी बराबर समझता है अर्थात् वह सर्वत्र समबुद्धि ही होजाता है ॥९३॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

हे पार्थ ! फिर ऐसे पुरुषमें मित्र और शत्रु, पर और परिचित अथवा उदासीन या मित्र इस प्रकारके भेद भाव की विचित्र कल्पना कैसी की जा सकती है ? ॥ ९४ ॥ कारण, उसकी आत्मस्वरूपदृष्टिमें कौन किसका आप्त ( मित्र ) अथवा कौन किसका शत्रु ? 'मैं ही सब विश्वरूप हूं' यह निश्चित ज्ञान उसे पूर्णतया हो रहता है ॥ ९५ ॥ फिर उसकी दृष्टिमें अधमोत्तम भेद-भाव कहांसे आवे ? देखो अर्जुन ! यदि पारसकी ही कसौटी बना दी जाय, तब सुवर्णके भिन्न भिन्न भेद थोडे मालूम हो सकते हैं ? कारण उसपर जो जो घिसाजाय, वह सब उत्तम सोना ही ज्ञात होगा ! ॥ ९६ ॥ उसी प्रकार



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्पर्श ( पारस ) सरीखी जिसकी बुद्धि शुद्ध हो रही है, उसे यह स्थावर जंगमात्मक सब विश्व केवल आत्मस्वरूप ही ज्ञात होता है ॥ ९७ ॥ यद्यपि इस विश्वके अनेक प्रकारके अलंकार तरह तरहके आकारके तथा सजावटके दीख रहे हैं, तो भी वे सब एक शुद्ध ब्रह्मरूपी सुवर्णके ही हैं, यह पूर्ण ज्ञान उसे प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ फिर ऐसे उत्तम ज्ञानके प्राप्त होनेपर वह बाह्य चित्र-विचित्र रचनाको देखकर कैसे और क्यों भूल सकता है ? ॥ ९९ ॥ जैसे वस्त्रकी बाबतमें पूर्ण विचार करनेपर यह सिद्ध होजाता है कि, सब तंतुही तंतुकी सृष्टि उसमें ज्ञात होगी, उसी प्रकार इस विश्वमें परब्रह्मके अतिरिक्त उसे कुछ भी नहीं दीखता । इस प्रकारके निश्चयसे जिसे अनुभव प्राप्त होगया, हे अर्जुन ! उसे 'समबुद्धि' कहा जाता है । समबुद्धिमान्की इससे दूसरी व्याख्या नहीं ॥ १०० ॥ १ ॥ जिसको यावत्पवित्रवस्तुओंका राजा कहा जाता है, जिसके दर्शनसे बुद्धिको पूज्यता प्राप्त होती है, जिसके संगसे मोहग्रस्त भी ब्रह्म-बोधवान् बन जाता है, जिसके भाषणसे धार्मिक बुद्धि उत्पन्न होती है, जिसकी दृष्टिमें अष्टमहासिद्धियें जन्म प्राप्त करती हैं और स्वर्गादि सुखोपभोग जिसे खिलौने होते हैं, ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ उसके स्मरणमात्रसे स्मरणकर्ताको वह अपनासा निष्पाप और निष्काम बना देता है, फिर यदि उसकी संगति और स्तुति की जाय तो कल्याण या सुख होनेमें कोई शंका या संशय किया जासकता है ? ॥ ४ ॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

जिसके सामने अस्तका कभी समय ही नहीं, इस प्रकारके अद्वैतरूपी सूर्यका जहां उदय हो रहा है, वह पुरुष सदैव आत्मस्वरूपमें रत होकर स्थिर रहता है ॥ ५ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार जो अद्वैतदृष्टिसे विचार करता है, वह स्वयंही अद्वैत है । कारण वह तीनों लोकोंमें केवल आत्मस्वरूपसे ओतप्रोत ( परिपूर्ण ) भरा रहनेके कारण, अपरिग्रही यानी परिवारहीन वही है " ॥ ६ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने सिद्धपुरुषोंको पहँचानके विशेष लक्षण अर्जुनसे कहे, इतनाही नहीं, किन्तु उनके गौरवमें उन्हें अपनेसे भी अधिक श्रेष्ठता दी ॥ ७ ॥ भगवान् फिर कहने लगे—"हे अर्जुन ! जो योगी सब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ मुकुटमणि है, ज्ञानिजनोंकी दृष्टिका प्रकाश है, जिसके सामर्थ्यकी कल्पनासे ही इस विश्वकी रचना की जाती है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ८ ॥ उसके यशको ओढनेमें ॐकाररूपी बाजारमें बुना हुआ वेदरूपी उत्तम वाङ्मयवस्त्र भी पूरा नहीं हो सकता, ॥ ९ ॥ जिसके शरीरके तेजसे ही सूर्यचंद्रके तेज प्रकाशित होकर अपने व्यापार चलाते हैं अर्थात् ( सूर्यचंद्रके प्रकाशमें चलनेवाला ) यह जगत् जिसके तेजके न होनेसे कर्महीन बन सकेगा ॥ ११० ॥ इतना ही नहीं, किन्तु, हे पार्थ ! जिसके नामका यदि विचार किया जाय तो, उस योगीके महत्त्वके आगे यह अपार आकाश भी छोटा ही दिखायी देता है । हे अर्जुन ! उसके एक एक श्रेष्ठ गुणको तुम कहांतक ग्रहण कर सकोगे ? ॥ ११ ॥ अत एव अब उसकी स्तुतिका वर्णन यहां ही रहने दो । हे पार्थ ! हम नहीं समझते कि, इस स्तुतिके मिससें हम किसके लक्षणका वर्णन कर रहे हैं और किसलिये हमने यह वर्णन किया ॥ १२ ॥ हे अर्जुन ! जो ब्रह्मविद्या द्वैतका उद्गमस्थान ही मिटा देती है, यदि उस ब्रह्मविद्याको मैं स्पष्ट ( व्यक्त ) कर दूँगा, तो फिर 'अर्जुन मुझे प्यारा है' इस कल्पनामें जो माधुर्य भरा है वह कहां रहेगा ? ॥१३॥ इसलिये यदि हम अब अद्वैतका वर्णन करा चुके तो भी तुम्हें उसीको पकडकर नहीं ठहरना चाहिये, ( उसमें पर्देकी आड है यानी थोडा गर्भित अर्थ है वह यह कि प्रेमका भोग लेनेमें मनको जरा अलगसा कर दिया ) ॥ १४ ॥ अब हम यही चाहते हैं कि 'अहंब्रह्मास्मि' इस भावनामें रुक कर जो मोक्षसुखके लिये दीन हो रहे हैं, उनकी कलंकित या मात्सरी दृष्टि, हे अर्जुन ! तुम्हारे हमारे इस आत्यंतिक प्रेममें विघ्न न हो जाय !" ॥ १५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण मनमें विचार करने लगे, "यदि अद्वैतप्रतिपादनसे अर्जुनका अहंभाव नष्ट होकर मेरे रूपमें वह समरस होजायगा, तो फिर मैं अकेला क्या कर सकता हूं? ॥१६॥ फिर मुझे खुले तौरसे मनमाना बोलनेके लिये कौन ? अथवा जिसको देखकर मन शान्त होता है, जिसके प्रेमभावमें मैं अपनेको भूलकर स्वयं जिसे कंठ लगाता हूं, ऐसा मुझे अर्जुनके बिना प्रेमी कौन मिल सकता है ? ॥ १७ ॥ यदि यह पार्थ मेरे निरूपणके प्रभावसे मुझमें मिलगया तो मेरे हृदयकी रहस्यमय बातें मैं किसे कहूंगा ? ॥ १८ ॥" इस प्रकार प्रेमसे आतुर हो, अद्वैतमें ही द्वैतके उपदेशका बहाना कर अर्जुनके मनको अपने मनमें खींच लिया ॥ १९ ॥ श्रोताओंको यह वर्णन जरा विपरीत या विषयांतर सरीखा या औघट जान पडेगा सही, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको अपने सुखकी ढली हुई प्रत्यक्ष मूर्ति ही समझते थे ! यह बात समझनेपर शंका नहीं रहेगी ॥ १२० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इतना ही नहीं, किन्तु जैसे किसी वंध्यास्त्रीको वृद्धावस्थामें एक ही पुत्र हो, और उस पुत्रप्रेममें जो मोहकी प्रपंचरचना प्रकट होती है, ॥ २१ ॥ वही अवस्था भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रसंगमें हुई ! भगवान्के अर्जुनविषयक प्रेमका अतिरेक यदि यहां न दीखता, तो मैं भी ऐसा वर्णन न कर सकता ! ॥ २२ ॥ कैसी आश्चर्यकी बात है, कि कहां तो अद्वैतका उपदेश ! कैसी समरांगणमें हत्याकी तैयारियां और यहां देखो तो अपने समक्ष प्रेमकी ही पुतली नाच रही है ! ॥ २३ ॥ सच देखा जाय तो, 'प्रेम और लजावे नहीं' 'व्यसन और उसका तिरस्कार' 'भ्रम और भुलावे नहीं' ? ( शुद्धिपर लावे ) ऐसा हो तो फिर ये जोड ही किस कामका ! ये हैं ही ऐसे, प्रेमके आगे लज्जा नहीं रहती, व्यसनीको घृणा नहीं आती और भ्रमीको शुद्धि भी दूर ही है ॥ २४ ॥ अतएव कहनेका तात्पर्य यही कि, अर्जुन भगवान्की मैत्रीका आश्रयस्थान अथवा सुखरूपी फूले हुए श्रीकृष्णके अन्तरंगका आयना कहा जाय तो भी योग्य हो सके ॥ २५ ॥ इसलिये यही ठीक है, कि अर्जुनका सुकृत बहुत ही बडा और पवित्र था,इसीलिये श्रीकृष्णकी कृपासे भक्तिरूपी बीज बोनेके लिये एक उत्तम खेत बन गया ॥ २६ ॥ अथवा नवविधभक्तिमें आठवीं-जो आखिरी आत्मनिवेदनभक्तिकी संनिकटवर्तिनी 'सख्यरूप' भक्ति, उसकी अधिदेवताही अर्जुनको समझना ॥ २७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुन ऐसा प्यारा है, कि उसके दैवत या स्वामी ऐसे श्रीकृष्ण, पास खडे होनेपर, चाहे उनकी स्तुति न की जाय किन्तु, दास जो अर्जुन, उसके गुणगणोंकी स्तुतिमें ही भगवान्को संतोष होता है ! ॥ २८ ॥ देखो, लोकोंमें भी अनुभवकी बात प्रसिद्ध है, जैसे, कोई पतिव्रता स्त्री एकनिष्ठप्रेमसे पतिकी सेवा करती है और पति जिसकी सेवासे प्रसन्न हो, उसके गुणोंका बखान करता है, क्या वह पतिव्रता स्त्री पतिकी अपेक्षा अधिक नहीं बखानी जाती ? ॥ २९ ॥ ज्ञानदेव कहते हैं उसी प्रकार मेरे हृदयमें, अर्जुनके गुणोंका ही वर्णन करनेका विशेष उत्साह उमडा कारण मैं हार्दिक प्रेमसे और सच्चे अंतःकरणसे कहता हूं कि, संपूर्ण त्रिभुवनोंके सुकृतसंचयका अकेला अर्जुनमें ही अधिष्ठान हो रहा है ॥ १३० ॥ अतएव अर्जुनके प्रेमसे वश हुए भगवान्ने निराकारताको छोड साकार रूप धारण किया, इतना ही नहीं, किन्तु स्वयं पूर्णकाम परमात्मा अर्जुनकी उत्कंठामें उत्सुक भये ! ॥ ३१ ॥ तब श्रोता आश्चर्यचकित हो कहने लगे— "हमारा अहोभाग्य है, इन शब्दोंमें कैसा माधुर्य भरा है ! यह भाषामाधुरी गायनके सप्तसुरोंपर मात कर रही है ! ॥ ३२ ॥ क्या ही आश्चर्य मालूम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


होता है ? यह भाषा साधारण प्राकृतोंके लिये नहीं, इस भाषाको सामान्य मराठी ( प्राकृत ) भाषा नहीं कहा जाता, कारण यदि इसे सामान्य प्राकृत कहा जाय तो, इसमें साहित्यकलाके नानाप्रकारके अलंकाररसोंके रंगविरंगे जाल अद्वैत प्रतिपादनमें भी कैसे कैसे फैले हुए दिखायी दे रहे हैं ! ॥ ३३ ॥ यह सामान्य प्राकृत भाषा होनेपर भी इसमें ज्ञानरूपी चांदनी कैसी चमक रही है! तथा गूढ और रहस्यमय भावार्थकी शीतलता कैसी सुखदायी हो रही है ! इसी लिये इस शुद्धप्रकाशसे प्रमुदित हो, गीताके श्लोकार्थरूपी कुमुदिनियें स्वयं ही विकसित होती जाती हैं ! " ॥ ३४ ॥ इस सुंदर निरूपणसे मनोरथोंकी ऐसी उत्कंठा हुई कि, निष्कामश्रोता भी वासनामें प्रवृत्त हो, सकामी जैसे, अन्तरंगके आनंदसे डोलने लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारकी श्रोतागणोंकी अवस्था देखकर निवृत्तिदास-ज्ञानेश्वरने कहा–'हे श्रोताओ ! सावधान होइये, श्रीकृष्णके कृपाप्रसादसे आज पाण्डवोंके कुलमें नये सूर्यका प्रकाश हो रहा है ॥ ३६ ॥ देखो, भगवान् श्रीकृष्णको देवकीने अपने उदरमें धारण किया, यशोदाजीने बडे परिश्रमके साथ लालन-पालन किया, परन्तु आखिर सच्चे कामके लिये तो वे पाण्डवोंके ही साथी बने ! ॥ ३७ ॥ इसी लिये हम कहते हैं कि अर्जुनका सुकृत सबसे प्रबल है, कारण, श्रीकृष्णकी कृपाको संपादन करनेमें उसे दीर्घकाल सेवा करनेकी आवश्यकता नहीं रही, और प्रसन्नता प्राप्त करनेमें याचना भी नहीं करनी पडी ॥ ३८ ॥ अब इस विस्तारको न बढाकर पूर्वकथाको शीघ्र कहता हूं । श्रीकृष्णका भाषण सुनकर अर्जुनने प्रेमके साथ छोटे बालकसरीखा कहा–" हे देव ! आपने जो अभीतक संतोंके लक्षण कहे, वे मुझमें तो नहीं हैं ! ॥ ३९ ॥ सच विचार कर देखा जाय, तो इन लक्षणोंका सारांश अपनेमें प्राप्त होनेके लिये मेरी वैसी योग्यता ही नहीं, यह बात तो मैं जानता हूं, परन्तु, हे सर्वज्ञ देव ! आपके उपदेशसे इन लक्षणोंको साध्य करनेकी योग्यताको प्राप्त होऊं, ऐसा मुझे विश्वास है ॥१४०॥ अतएव हे भगवन् ! यदि आप कृपा करें तो, निःसंदिग्ध मैं ब्रह्म बन जाऊं, हे भगवन् ! आप जो आज्ञा करेंगे, मैं बडी श्रद्धासे उसका पालन करूंगा ॥ ४१ ॥ आपने जो वर्णन किया वह किसका था यह भी मुझे पूरा ज्ञात नहीं हुआ, किन्तु उसे सुनकर मुझे ऐसा आनंद हो रहा है, कि बार बार मैं भी उसका वर्णन कर रहा हूं, फिर यदि मैं स्वयं ही वैसा बनजाऊं तो मेरा सुख कहां समासके ? ॥ ४२ ॥ अतएव हे भगवन् ! जिस रीतिसे मैं इन सिद्धपुरुषोंकी स्थितिको प्राप्त करसकूं, हे सद्गुरो ! आप ऐसी कृपा अवश्य करियें"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


तब यह भाषण सुनकर भगवान् जरा हास्य करके बोले ॥ ४३ ॥ जबतक संतोषकी स्थिति प्राप्त नहीं भयी, तबतक 'सुखलाभ कैसा हो' यह चिन्ता मनमें लगी रहती है, किन्तु एकबार संतोषका लाभ होते ही, क्या किसी सुखकी न्यूनता रहती है ? ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार जिसने परमात्माकी सेवा की है, वह तो ब्रह्मसुखको प्राप्त करसकता है, परन्तु अर्जुनके भाग्यका कौन वर्णन करसके ? कारण सर्वेश्वर परमात्मा स्वयं ही ब्रह्मप्राप्तिका उपदेश कर रहे हैं, फिर ब्रह्मत्वप्राप्ति में किसकी कमी ? इसलिये पके हुए फलभारसे जैसा वृक्ष झुकता है वैसा झुकरहा है ॥ ४५ ॥ अर्जुनका बडा अहोभाग्य है, देखिये हजारों वर्ष तपश्चर्याके करते रहनेपर भी इंद्रादिकोंको जो न मिलता है, वह भक्तिप्रेमी भगवान् अर्जुनसे कैसा वश हो रहा है, कि जिस अर्जुनका एक शब्द भी विफल नहीं होने देता, क्या उन ( कृष्णार्जुन ) का प्रेम शब्दोंसे वर्णा जा सकता है ? ? ॥ ४६ ॥ अर्जुनने 'मैं ब्रह्म हो सकूंगा' ऐसा जो भगवान्से प्रश्न किया था, वह बात श्रीकृष्णने ध्यानमें रखी थी ॥ ४७ ॥ अत एव भगवान् मनमें विचारने लगे कि "इसकी बुद्धिके उदरमें वैराग्यका गर्भसंभव होजानेसे इसे ब्रह्मतत्त्वके दोहद होरहे हैं ॥ ४८ ॥ किन्तु यह वैराग्यरूपी गर्भ अभी पूरे दिनका नहीं, तथापि यह अर्जुन-वृक्ष वैराग्यवसंतकी बहारसे 'सोऽहमस्मि' इस मौरसे प्रफुल्लित हो उसके भारसे झुक रहा है ! ॥ ४९ ॥ अतएव भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनविषे ऐसा निश्चय हुआ कि, अब अर्जुनको ब्रह्मप्राप्तिका फल प्राप्त करनेमें कुछ विलम्ब नहीं लगेगा, कारण यह इतनी विरक्तताके योग्य भया दीखता है ॥ १५० ॥ और भगवान् मनमें ही कहने लगे, कि इसे ऐसी सिद्धता प्राप्त होगयी है, कि जिस-जिस तत्त्वको यह ग्रहण करना चाहे, उसका फल इसे पहले ही प्राप्त होगा । इसलिये, यदि इसे योगाभ्यासका उपदेश किया जाय, तो वृथा न होगा" ॥ ५१ ॥ तब मनमें इस प्रकार विचाकरके भगवान् अर्जुनके प्रति बोले—"हे पार्थ ! अब मैं योगाभ्यासके श्रेष्ठ राजमार्गका निरूपण करता हूं, तुम ध्यानके साथ श्रवण करो ॥ ५२ ॥ इस मार्गमें प्रवृत्तिरूपी ( सांसारिक ) वृक्षके मूलमें करोडों निवृत्ति ( मोक्ष ) के फल लगे हुए हैं । श्रीशंकर अभीतक उस मार्गकी यात्रा कर रहे हैं ॥ ५३ ॥ दूसरे योगी लोग आरंभमें इधर उधरके चिदाकाशके टेढेबांके मार्गसे ही गये थे, किन्तु इस मार्गसे जानेवाले तत्त्वज्ञोंके पैरचिह्नोंका जब उन्हें अनुभवलाभ हुआ, तब इसी राजमार्गको वे स्वीकारते भये ॥ ५४ ॥ और उन लोगोंने अन्य अज्ञानके सब टेढेमार्ग छोडकर यह आत्मज्ञानक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सीधा रास्ता पकडलिया, और खुशीके साथ इस एकही मार्गको आक्रमण करते रहे, जो आखिरी पदतक पहुँचे ॥ ५५ ॥ योगीजनोंके बाद महान् महान् ऋषि भी इसी मार्गका अवलम्बन कर, साधक-अवस्थासे सिद्धपदको प्राप्त भये। इतना ही नहीं, किन्तु जो बडे महान् तत्त्वज्ञ ( आत्मवेत्ता ) हो चुके हैं, हे अर्जुन ! वे सब इसी मार्गका अवलम्बन कर प्रतिष्ठापदको प्राप्त भये हैं ॥ ५६ ॥ इस योगके राजमार्गका अवलम्बन प्राप्त होनेपर क्षुधा-तृषाकी बाधा नहीं होती, इतना ही नहीं, किन्तु इस मार्गसे चलनेवालोंके लिये रात-दिनके कालभेदका भी संबंध नहीं रहता ! ॥ ५७ ॥ हे अर्जुन ! इस मार्गसे जानेवालोंकी योग्यताका, कैसा वर्णन किया जाय, वह जिस जिस जगह पदक्षेप करता है, मानो मोक्ष वहां हाथ जोडके तैयार रहता है, कदाचित् बीचमें ही कोई विघ्न उपस्थित हो, तो स्वर्गसुखके लिये तो कोई यत्नकरनेकी आवश्यकताही नहीं, वह तो उनके लिये पहलेसे धरा रखा ही है ॥ ५८ ॥ हे धनुर्धर, पार्थ ! इस मार्गका प्रवास तो ऐसा सीधा रहता है, कि चाहे पूर्वको जाना हो, तो सुखसे पूर्वको पहुँचोगे और पश्चिम जाना हो तो वैसेही सरलताके साथ अपना ध्येय प्राप्त करोगे ॥ ५९ ॥ इतनाही नहीं, किन्तु जिस ग्रामको जानेकी इच्छा हो, वह ग्राम स्वयं आपही बनजाते हैं, हे अर्जुन ! ऐसी बातें कहते रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, कारण तुम स्वयं ही उनका अनुभव प्राप्त कर सकते हो"॥१६०॥तब अर्जुन बोला- "हे भगवन् ! फिर मुझे वह कब प्राप्त होगा ? कारण इस बातकी मुझे बडी उत्कट इच्छा हो रही है, क्या उत्कंठारूपी सागरसे आप मुझे बाहर नहीं निकालेंगे " ? ॥ ६१ ॥ तब भगवान् बोले-हे पार्थ ! तुम इतने अधीर क्यों होते हो ? मैं स्वयंही जिस बातको कह रहा हूं, फिर बीचमेंही तुम ऐसे उसी बातके प्रश्नको क्यों करते हो ? ॥ ६२ ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥

अब मैं उसका यथासांग वर्णन करता हूं, परन्तु, यदि इसका अनुभव प्राप्त किया जाय, तभी यथार्थ उपयोग समझा जायगा, योगाभ्यासीको सर्व प्रथम एक योग्य स्थान ढूँढना चाहिये ॥ ६३ ॥ वह ऐसा हो, कि जहां विश्रांतिकी इच्छासे एकबार बैठनेपर, वहांसे उठनेकी कभी इच्छा न हो; और जिसे देखकर वैराग्य दुगुना बढजाय ॥ ६४ ॥ जहां संतजनोंका ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वास रहता हो, और इसी कारण, सिवाय संतोषके जहां कुछ रहही न सकता हो तथा वह स्थान ऐसा निर्भय हो कि, जहां मनके धैर्यको भी धीरज प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ उसी प्रकार, जिस स्थानमें बैठनेपर योगाभ्यास सहजहीमें होता जाय; तथा जहांकी रमणीयताकी शोभासे हृदय आत्मानंदके अनुभव द्वारा ओतप्रोत भरजाय ॥ ६६ ॥ हे पार्थ ! जिस स्थानके समीप जाते ही, या उसे देखते ही, नास्तिककी भी बुद्धि तपश्चर्याके करनेमें प्रवृत्त होजाय ॥ ६७ ॥ जिस स्थानकी महिमा ऐसी हो, कि कोई सकाम पथिक सहजहीमें वहांसे निकल पडने लगे तो वह निष्काम बनकर वापस जानेका स्मरण ही भूल जाय अर्थात् योगी बन जाय ! ॥ ६८ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारका स्थल न रहनेवालेको रखलेता है, भटकनेवालेको स्थिर करता है और वैराग्यको थप्पड मारके जागृत करता है ॥ ६९ ॥ जिसको देखते ही विषयासक्त पुरुष भी वैराग्यवान् हो, सुखसमृद्धिसे भरा हुआ राज्य छोड, शान्ततासे रहनेकी इच्छा करे ॥ १७० ॥ इस प्रकारका शान्त तथा सुन्दर वह स्थान हो । और पवित्रतामें ऐसा हो,कि जहां देखनेवालोंको साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही दीखता रहे ॥ ७१ ॥ उस स्थानकी विशेषतामें यह भी एक आवश्यकीय बात है कि, वह स्थान योगाभ्यासी साधकोंका ही बसा हो, किन्तु वहां दूसरे लोगोंका कभी प्रवेश न हो ॥ ७२ ॥ वहांके वृक्ष, जडसे आखिरतक अमृतसे मीठे और सदैव फूल-फलोंसे समृद्ध और सघन हों ॥ ७३ ॥ तथा वर्षाकालके अतिरिक्त समयमें भी वहां पद पदपर निर्झरोंका स्वच्छ जल निरंतर बहता हो ॥ ७४ ॥ जहां ताप ( सूर्यकिरण ) विशेष न हो, किन्तु मंद और शीतल वायु विपुलतासे बहती रहे ॥ ७५ ॥ हे अर्जुन ! वह स्थान ऐसा सघन और निःशब्द हो, जहां श्वापद ही क्या ? किन्तु तोते या भ्रमरोंका भी प्रवेश न हो ॥ ७६ ॥ किन्तु उस स्थानमें जलाश्रित हंस हो, दो चार सारस पक्षी हों, कदाचित् किसी समय कोयल भी हो, तो हो सके ॥ ७७ ॥ सदैव नहीं, तो भी किसी समय यदि मोरपक्षी वहां आता जाता रहे तो कुछ हानि नहीं होसकती ॥ ७८ ॥ हे अर्जुन ! ऐसा स्थान प्राप्त करनेमें यद्यपि बहुत परिश्रम हों, तथापि उसका पता प्राप्त करना ही पडेगा । फिर उस स्थानमें कोई मठ या शिवमंदिरकी आवश्यकता है ॥ ७९ ॥ इन दोनोंमेंसे जिसकी अभिरुचि हो, पसंद करके उसी एकान्त स्थानमें स्वस्थचित्त हो बैठजाना चाहिये ॥ १८० ॥ सरांश यह कि, अपना मन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जहां निश्चिन्ततासे रममाण होकर स्थिर रहता है या नहीं, इसप्रकारका अनुभव जिस स्थलमें प्राप्त हो, ऐसी जगह ढूँढकर तब आगे कहे अनुसार आसन लगाना ॥ ८१ ॥ ऊपरमें सुन्दर मृगचर्म हो, बीचमें ( मृगचर्मके बीच ) धुले हुए स्वच्छ वस्त्रकी तह बनाकर रखना, और उसके तले यानी सर्वप्रथम सरल और अखंड दर्भाकुरोंको बिछा देना ॥ ८२ ॥ दर्भाकुरोंको रखते समय यह ध्यान रहे, कि वे नरम और लम्बाई चौडाईमें एकसे हों, तथा जिस तरह वे इधर उधर न हों, इस तरह दृढताके साथ लगाये रहें ॥ ८३ ॥ यदि, यह आसन कदाचित् अति ऊँचा होजाय, तो शरीर स्थिर रहना असंभव होगा, और यदि अति नीचा होगा, तो जमीनमें स्पर्श होनेका संभव है ॥८४॥ अतएव उसको यथायोग्य रीतिसे ही बनाना चाहिये, परन्तु इसकी विशेष चर्चा करना उचित नहीं, वह स्थिर तथा सुखास्पद हो यही इसका मतलब है ॥ ८५ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

फिर उस आसनपर बैठकर चित्तैकाग्रतासे श्रीसद्गुरुका स्मरणपूर्वक मनमें अनुभव करलेना ॥ ८६ ॥ पश्चात् सहजहीमें सात्त्विकवृत्तिसे सबाह्य अन्तःकरण ओतप्रोत भरजायेगा, और अहंकाररूपी कठोरता नष्ट होगी, विषयोंका विस्मरण होगा, इन्द्रियोंकी इधर उधरकी हलचल बंद होगी, मन एकाग्र हो हृदयमें शांतताको प्राप्त होगा, इसप्रकार स्वाभाविक एकताकी स्थिति अनायासही जबतक प्राप्त नहीं हुई हो, तबतक सद्गुरुका स्मरण आदरभावसे करते रहना चाहिये । फिर ऐसी अवस्थामें अर्थात् आत्मबोधावस्थामें अनुभवसहित आसनमें स्थिर रहना चाहिये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ उस समय धीरे धीरे ऐसा अनुभव आजायगा, कि शरीरही शरीरको सँभालता रहेगा तथा शरीरस्थ सब वायु एकत्र हो रहे हैं, ऐसा ज्ञात होगा ॥ १९० ॥ ऐसी स्थितिमें प्रथम प्रवृत्ति पराङ्मुख होजाती है तथा चित्तकी समाधि एकाग्र समस्थितिमें इस पार ही आजाती है और आसनपर बैठतेही योगाभ्यासका साधन सुलभ होजाता है ॥ ९१ ॥ हे अर्जुन ! आसनका ऐसा बडा महत्त्व है । अब हम आसनकी विधिका वर्णन करते हैं—कमर ( कटि ) का ऊपरी भाग इस तरह होना चाहिये, कि जंघाको पिंडुलीसे मिला देना ॥ ९२ ॥ पांवके तलुए ड्योढे कर गुदास्थानके मूलमें स्थिर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



रखकर जोरसे दबा देना ॥ ९३ ॥ दहना पैर नीचे रखकर वृषणसे गुदा-स्थानतक जो रेखा चली है उसको उससे बीचमें दबा देना, ऐसा करनेपर बाँया पैर सहजहीमें उसपर आजायगा ॥ ९४ ॥ गुदा और शिश्नके बीच जो चार अंगुलका अंतर है, उसमेंसे डेढ डेढ अंगुल दोनों बगलकी जगह छोडनेसे बीचमें एक अंगुलकी जो जगह रहती है, उसे एडीके उत्तर भागसे ऐसा दबाना, कि शरीरको उसी अवस्थामें सँभाला जाय ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ पीठके नीचेका भाग इस प्रकार धीरे उठाओ कि, उठाया हुआ जरा भी मालूम न पडे तथा दोनों घुटनोंका भी तौल सँभाला जाय ॥ ९७ ॥ हे अर्जुन ! उस समय इस संपूर्ण शरीरका सब आकार केवल एडीके माथेपर स्थिर रहेगा ॥ ९८ ॥ हे पार्थ ! इसे मूलबन्धनामक आसन कहा जाता है । कोई कोई इसे वज्रासन भी कहते हैं ॥ ९९ ॥ इसप्रकार गुदा और शिश्नके मध्यभागमें जो 'आधारचक्र' है, उसपर शरीरका ऊपरी भार जब सँभाला जाता है, तथा शरीरका नीचेका भार दब जाता है ( मूलाधारबन्ध सिद्ध होता है ) तब अँतडियोंमें संचार करनेवाली अपान वायु अधोमार्ग बंद होनेसे उलटी चालसे शरीरके अंदर ही संकुचित होजाती है ॥ २०० ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥

फिर द्रोणाकार हुए हाथोंके तलुए आपही आप बाँये पावपर रहते हैं और काँधा ( बाहुमूल ) फूले हुए होकर ऊँचे दिखायी देते हैं ॥ १ ॥ शरीरदंड स्थिर होजानेसे, शिरकमल बीचमें घुसा हुआ मालूम होता है और नेत्रद्वारके किंवाड आपही आप बंद हुए दिखायी देते हैं ॥ २ ॥ नेत्रके ऊपरके पलक हिलते नहीं तथा नीचेके विकसित होजाते हैं, जिससे नेत्र खुले हों, अथवा अर्धोन्मीलित ऐसे ज्ञात होते हैं ॥ ३ ॥ फिर, दृष्टि यद्यपि भीतर रहती है, तो भी बाहर पग रखनेकी इच्छा करती हुई, सीधे नासाग्रके नोकपर आ रुक जाती है ॥ ४ ॥ इस प्रकार दृष्टिको यद्यपि बाहर जानेकी इच्छा रहती है, तथापि ऐसी स्थितिमें बाहर जानेकी रुकावट होजानेसे, अर्धस्थिति ( न बाहर न अंदर ) को प्राप्त भयी अवस्थामें उस विकसित दृष्टिको नासाग्रपर ही अपना निवासस्थान स्थिर करना पडता है ॥ ॥ ५ ॥ तब बाहरकी दिशायें देखना, या किन्हीं आकारोंके दर्शन करनेकी उसकी इच्छा, आपही आप बंद होजाती है ॥ ६ ॥ कण्ठ जकडासा ज्ञात

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


होता है, और ठोढी कण्ठके नीचेके गढेमें जम जाती है और हृदयको जोरसे दबाती रहती है ॥ ७ ॥ इस लिये कण्ठनाल उसमें घिर जाता है। इस प्रकारका जो बन्ध बनजाता है उसे 'जालंधरबन्ध' कहा जाता है ॥ ८ ॥ नाभि ऊपर उठ आती है, पेट भीतर घुस जाता है, परन्तु ऐसी स्थितिमें हृदयकोश विस्तारको पाता है ॥ ९ ॥ इस प्रकार लिंगमूलके ऊपर तथा नाभिचक्रके नीचे जो बन्ध बनजाता है, उसे 'उड्डियानबंध' ऐसा नाम दिया जाता है ॥ २१० ॥ इस प्रकारसे बंधमुद्रा द्वारा जब शरीरके बाहरी अंगोंसे अभ्यास किया जाता है,

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

—तब शरीरके भीतरी मनोधर्मका स्थान भी नष्ट होजाता है ॥ ११ ॥ और कल्पना बन्द होजाती है, प्रवृत्ति शान्त होजाती है तथा मन शरीर-भावनासे आपही आप विराम पाता है ॥ १२ ॥ क्षुधा कहां गयी ? निद्रा क्या हुई ? इत्यादि बातोंका उसे विस्मरण होजाता है, और फिर उसका शीघ्र स्मरण भी नहीं होता ॥ १३ ॥ हे अर्जुन ! अभी थोडी देरबाद जो 'मूलबंध' या 'वज्रासन' का वर्णन करचुके, उससे रुक जानेके कारण अपान वायु शरीरमें पीछे लौटती है और दबजानेसे संकुचित हो तत्काल फूल जाती है, ॥ १४ ॥ और पश्चात् उसका प्रकोप चढजानेसे मत्त हो, उस आकुंचित जगहमें रहनेके कारण, शब्द करती हुई नाभिस्थानके 'मणिपूर' नामक चक्रसे भिडकर झगडने लगती है ॥ १५ ॥ बाद, जब यह उसका तूफान शान्त होजाता है, तब शरीररूपी घरको खोज लेती है, और वहांके बचपनसे संचित कीचडको वह एकदम शरीरके बाहर फेंक देती है ॥ ॥१६॥ फिर इस अपानवायुकी मस्त लहरी अंदर न रहनेकी इच्छा करती हुई, कोष्ठगत कफ-पित्तके ठाँवतक जा भिडकर उनका स्थान नष्ट करती है ॥१७॥ फिर उसे ऐसा जोर चढजाता है, कि वह उन्मत्तवायु रुधिरादि सप्तधातुके समुद्रोंको उलट देती है, मेदाके पहाडोंको चूर कर देती है और भीतरी हड्डीमें मिलीहुई मज्जाको भी बाहर निकाल देती है ॥ १८ ॥ वह वायुमार्गकी नाडियोंको खुली करती है, सब अवयवोंको दुर्बल करती है, इतना ही नहीं, बरन् इस प्रकारसे नये साधकोंको वह अपानवायु घबडा देती है। परन्तु इन बातोंसे साधकको डरना न चाहिये ॥ १९ ॥ कारण वह अपानवायु इन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



व्यापारोंसे कोई व्याधि उत्पन्न करती है सही, तथापि उसकी शान्ति भी, वह उसी समय करदेती है। और शरीरस्थ जलांश तथा मांसमज्जादि पृथ्वीके अंश एकत्र कर मिला देती है ॥२२०॥ हे पार्थ ! इतनेमें आसनकी उष्णतासे कुण्डलिनीनामक शक्ति जागृत होती है ॥ २१ ॥ वह, जैसे कोई नागिनका छोटा बच्चा कुंकुममें नहाया हो और वर्तुलाकार बैठा हो, ॥ २२ ॥ उस प्रकार वह कुंडलिनी नाडी छोटे आकारमें, करीब साढेतीन फेरा किये ( गिण्डीमारे ) नीचे मुँह की हुई नागिनी जैसी सोती रहती है ॥ २३ ॥ बिजलीका बना हुआ कंकण अथवा अग्निज्वालाका वर्तुलाकार चक्र या शुद्ध सुवर्णके घिसे हुए पाँसेकी सी॥२४॥ वह कुंडलिनी बँधी और अच्छीतरह कसी हुई नाभिकमलके पास छोटेसे संकुचित स्थानमें दबी हुई रहती है, किन्तु वज्रासनके दबावसे दब जानेके कारण वह जाग्रत होती है ॥ २५ ॥ फिर जैसे कोई तारा ( नक्षत्र ) आकाशसे टूट पडे या सूर्यका आसन छूट जाय अथवा कोई तेजरूपी बीजमेंसे चारोंतरफ अंकुर उत्पन्न हों, ॥ २६ ॥ वैसी वह शक्ति अपनी त्रिवली ( गिण्डी ) को छोडती हुई, सहजहीमें अँगडाई लेती हुई उठती है और नाभिस्थानपर खडी होजाती है ॥ २७ ॥ उसे पहले-हीसे बडी भूँख लगी रहती है, तिसपर जगादेनेके मिससे उसे बडा आवेश आजाता है, इस कारण वह अपना मुँह खोलकर ऊपर उठाती है ॥ २८ ॥ हे पार्थ ! इतनेमें हृदयकोशके नीचे जो अपानवायु इकट्ठी हो रहती है, उस सबको अपने पंजेमें पकड वह उसे चपेट डालती है ॥ २९ ॥ और अपनी ज्वालाओंसे उसे ऊपर-नीचे तथा चारों तरफसे व्याप्त कर मांसके कौर खाने लगती है ॥ २३० ॥ जहां जहां मांसल भाग रहता है, उसे वह शीघ्र कौर करती जाती है और आखिरमें हृदयतक पहुँचकर उसके भी एक-दो ग्रास लेती है ॥३१॥ फिर पैरके तलुओं तथा हाथके तलुओंका भी धीरे-धीरे भेद करती है। इतना करनेके बाद वह हरेक संधि-स्थानको खोजती हुई ऊपरको संपूर्ण अंगपर अपना प्रभाव डालती है ॥ ३२ ॥ उसी प्रकार नीचेके भागोंको भी वह अपने काबूमें लेती हुई, नाखूनका सार भी शोष लेती है, त्वचाको धोकर वह कुंडलिनी हड्डीमें भी जा भिडती है ॥ ३३ ॥ हड्डियोंकी नलियोंका रस निकालती है, नसोंको धोकर छोटी कांडी बनाती है, और इतनी स्थिति होनेपर बालोंका उद्गम-स्थान बन्द होता है अथवा सहजमें जल जाता है ॥ ३४ ॥ ऐसे परिश्रममें उसे अत्यंत प्यास लगनेके कारण, वह रुधिरादि सप्तधातुओंको एक घूँटमें पान करती है। इस रीतिसे सब शरीरको नीरस बना देती है, जिससे वह एक शुष्क पुतलासा बनता है ! ॥ ३५ ॥ फिर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नासारंध्रद्वारा बारह अंगुलतक जो वायु बाहर निकलती है, उसे भी खींचकर पीछे हटा, अंदरही घुसा देती है ॥ ३६ ॥ ऐसी अवस्थामें नीचेकी वायु ऊपर और ऊपरकी नीचे दब जाती है, जिससे दोनोंके मिलापमें केवल बीचके चक्रोंके पुरजे या पर्दे ही बच जाते हैं ॥ ३७ ॥ यदि ये बीचके पुरजे न बचते, तो दोनों वायु उसी समय एक होजातीं किन्तु कुण्डलिनी क्षणमात्र व्यग्र हो, कहती है " क्यों, अब केवल तुम दो ही यहां रहे हो ? चले जाओ, तुम्हारा यहां कुछ काम नहीं " ॥ ३८ ॥ हे अर्जुन ! इसमें गुप्तभेद यह है, कि वह कुंडलिनी शरीरस्थ पृथ्वीके सब अंशको खा डालती है, तथा जलांशको तो नामशेष कर देती है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार यह कुंडलिनी शरीरस्थ पृथ्वी और आपरूपी दो महाभूतोंको खाकर पूर्ण तृप्त हो जाती है, और वह अल्प-स्वल्प शान्त होनेपर सुषुम्ना-नाडीके पास स्थिर होजाती है ॥ २४० ॥ वहां समाधानके साथ संतोषसे मुँहसे गरल उगलती है, किन्तु वह गरलही प्राणवायुके लिये अमृतसा होकर वह वायु जीवन धारण करती है ॥ ४१ ॥ वह प्राणवायु उस विषके अग्निसे तो बाहर आजाती है, तथापि शरीरमें सबाह्य शीतलता करती है, तथा पहला नष्ट हुआ सामर्थ्य हरेक गात्रमें धीरेसे भरने लगता है ॥ ४२ ॥ किन्तु नाडियोंके प्रवाह रुक जानेसे नवों वायुओं ( अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ) के प्रकार नष्ट होकर केवल एक प्राणवायु ही बची रहती है, इसलिये शरीरधर्म नहीं रहते ॥४३॥ फिर नासारंध्रकी दोनों नाडियें ( इडा-पिंगला ) एकमें मिल जानेसे तीनों गाँठें छूट जाती हैं और शरीरचक्रोंकी छहों कलियां खिल जाती हैं ॥४४॥ ऐसी स्थितिमें नासारंध्रके दोनों वायुओंको, जिन्हें चंद्र-सूर्यकी उपमा दी जाती है, निश्चल-दीपकसे खोजनेपर भी वे नहीं मिलतीं ॥ ४५ ॥ बुद्धिका व्यापार बन्द होजाता है तथा घ्राणेंद्रियमें जो गंध बची रहती है, वह भी कुण्डलिनी शक्तिके साथ सुषुम्ना-नाडीमें प्रविष्ट होजाती है ॥ ४६ ॥ इतनेमें ऊपरकी ओर जो चंद्रमाकी सतरहवीं कलाका अमृतसरोवर रहता है, वह धीरे धीरे टेढा होता हुआ कुण्डलिनीके मुँहमें गिरता है ॥ ४७ ॥ फिर वह रस कुण्डलिनीकी नलिकामें भर जानेसे, सर्व अंगोंमें पहुँचकर प्राणवायु-सहित सर्व गात्रोंमें जहां तहां स्थिर होता रहता है ॥ ४८ ॥ सुवर्णके गलानेके सांचेको तपानेसे उसमें लगाहुआ मोम जल जानेपर वह साँचा जैसा शुद्धरससे पूर्ण भरजाता है, ॥ ४९ ॥ उसी प्रकार इस शरीरके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



रूपसे मानों चंद्रमाकी सतरहवीं कला ही अवतार लेती है । और ऊपरसे त्वचारूपी ओढनी ओढ लेती है ॥ २५० ॥ सूर्य मेघरूपी वस्त्रको ओढकर ढँक जाता है, किन्तु उसे फेंक देनेसे वह जैसा अपनी दीप्तिमान प्रभासे प्रकट होता है, ॥ ५१ ॥ वैसेही इस कलाके ऊपर जो त्वचारूपी शुष्कशरीरका पर्दा रहता है, वह भी भूसेकी तरह उडजाता है ॥ ५२ ॥ फिर सब अवयवोंकी कांति शुद्ध स्फटिकमणिके समान या रत्नोंको बोनेसे उनसे जैसे तेजस्वी रत्नांकुर प्रकट होवें, उसी प्रकार प्रकाशित होती है ॥ ५३ ॥ अथवा संध्याकालीन आकाशकी प्रभाके रंगोंसे ही यह शरीर बना दिया हो, किंवा अंतस्थ चैतन्यज्योतिकी ही यह प्रत्यक्ष प्रतिमा हो, ॥ ५४ ॥ मानो, यह शरीर नहीं, किन्तु कुंकुमका ढेरही हो, या चैतन्यरससे ढाली हुई मूर्ति हो, ऐसा भास होता है । मैं समझता हूं कि यह शरीर प्रत्यक्ष शांतिका स्वरूप प्रकटकर रहा है ॥ ५५ ॥ यह शरीर, मानो आनंदचित्रोंके रंगकी लिखावट हो, अथवा आत्म-सुखका स्वरूप या संतोष-वृक्षका प्रफुल्लित जोरदार बिरवाही होगा ॥ ५६ ॥ अथवा यह शरीर सुवर्णचंपककी कलिका, अमृतका पुतला या कोमलताकी वहारका एक खेतही हो ॥ ५७ ॥ अथवा शरद्ऋतुकी आर्द्रतासे केवल चन्द्रबिंबही पल्लवित हुआ हो या मूर्तिमंत तेजही स्वयं इस आसनपर विराजमान हुआ हो, ऐसी कल्पना भी संभवनीय हो सकती है ॥ ५८ ॥ कुण्डलिनी जब चंद्रमाकी सतरहवीं कलाका अमृतपान करती है, तब यह शरीर ऐसा होता है । फिर इस शरीरसे काल भी डर जाता है ॥ ५९ ॥ इस शरीरकी वार्धक्यावस्था पीछे हट जाती है, यौवन की दशा भी लुप्त होती है और केवल निरी बाल्यावस्था फिर प्राप्त हो जाती है ॥ २६० ॥ यदि उसकी उम्रका विचार किया जाय तो छोटा सा बालक दिखायी देगा, किन्तु उसके निरुपम सामर्थ्यको विचारनेपर 'वाल' शब्दका अर्थ 'बल' ही करना पडेगा ! ॥ ६१ ॥ उस सुवर्णकान्ति-शरीरमें उत्तम और नये, ऐसे नाखून निकलते हैं, मानो सुवर्ण–वृक्षके नित्य नूतन-पल्लवोंमेंसे नूतन रत्नोंकी कलिकायें ही निकल रही हों ॥ ६२ ॥ उसे छोटे छोटे स्फटिकमणिके समान शुद्ध नये दाँत भी आते हैं, मानो वे दुतरफा मुँहमें हीरोंकी पंक्तियां ही बैठा दी हों ! ॥ ६३ ॥ पहलेसे ही बिलकुल छोटी, माणिकके कणसरीखी नोकदार सब शरीरपर रोमपंक्ति उगती है ॥ ६४ ॥ हाथ और पैरके तलुए रक्तकमलकेसे शोभायमान रहते हैं । और धुले हुए कमलसदृशसे नेत्रोंका कैसे वर्णन किया जाय ? ॥ ६५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


पक्व दशाको प्राप्त भये मोती जिसप्रकार, उस सीपमें नहीं समाते, और सीपके ढकनोंकी सियन जैसे आपही आप खुल जाती है, ॥ ६६ ॥ उसी प्रकार पलकोंमें दृष्टि न समा सकनेके कारण, जोरके साथ बाहर जानेकी इच्छा करती है, किन्तु यद्यपि वह अर्धोन्मीलित स्थितिमें रहती है, तथापि व्यापकतामें वह आकाशको भी संकुचित कर देती है ॥ ६७ ॥ हे पार्थ ! ध्यान दो, कि यह योगीका शरीर कान्तिसे तो सुवर्णका बन जाता है, किन्तु लघुत्वमें वायुका रहता है; कारण उसमें पृथ्वीका जडांश तथा जलका द्रवांश यत्किंचित् भी नहीं रहता है ॥ ६८ ॥ उस योगीको चाहे तो समुद्रका परतीर दिखायी देता है, स्वर्गके मंद गान सुनायी देते हैं और चींटीके मनोगतको भी वह जान जाता है ॥ ६९ ॥ वह पवनके घोडेपर सवार हो सकता है, पानीपरसे चलाजाय तो पैरमें जलका स्पर्श भी नहीं होता। एवं,यदि चाहे तो अनेक सिद्धियाँ अनायास ही उसे प्राप्त होती हैं ॥२७०॥ हे पार्थ ! जरा ध्यान देनेका विषय है इसलिये एकाग्रमन हो जाओ वह कुण्डलिनी प्राणवायुके हस्ताश्रयद्वारा हृदयाकाशीकी पैंडीसे सुषुम्ना-नाडीका जीना चढकर हृदयमें पहुँच गयी ॥ ७१ ॥ वह जगदम्बा जगज्जननी चैतन्य चक्रवर्तीकी शोभा है और ओंकारके अंकुरोंकी शीतल छाया है॥७२॥ यही शून्यका आसन अथवा निराकारकी साकारता, यही परमात्मरूपी शिव-प्रतिमाकी संपुट किंवा ओंकारकी मूल जन्मभूमि है ॥ ७३ ॥ अस्तु, इस प्रकारोक्त यह सुकुमार कुण्डलिनी जब हृदयकोशमें प्रविष्ट होजाती है, तब आपही आप प्रकट होनेवाले जो अनाहत-ध्वनिके दिव्य नाद हैं, वे इसके आनेपर गर्जना करने लगते हैं॥७४॥ कुण्डलिनी-शक्तिके साथ ही बुद्धिचैतन्य गमन करता है, इस लिये उसे भी वे अनाहत-ध्वनि मंदमंद सुनायी देती है ॥ ७५ ॥ इन नादोंके दश प्रकार हैं, उनमें जो पहला नाद, जिसे 'घोष' कहा जाता है, वह प्रथम सुनायी देता है और उसके घोषाकार कुण्डलीमेंही ध्वनिके चिह्न, आकार तथा ॐकारके रूप प्रकट होते हैं ॥ ७६ ॥ यह सब कल्पनासे जाना जा सकता है, परन्तु, कल्पक भी वहां कौन है, वास्तवमें वे नाद कैसे और कहांसे होते हैं, यह ज्ञात ही नहीं होता ॥ ७७ ॥ ओहो ! हे पार्थ ! इस कथनमें एक बात मैं बिलकुल भूलगया ! देखो, जबतक प्राणवायुका नाश नहीं भया, तबतक हृदयाकाशमें ही ध्वनि है, और वहीं यह आवाज, जो सुनीजाती है,ध्वनि करती रहती है ! ॥७८॥ उस अनाहत-ध्वनिके मेघनादसे संपूर्ण हृदयाकाश भरजाता है, अर्थात् उसके जोरसे ब्रह्मरंध्रकी खिडकी सहज खुलजाती है। हे पार्थ ! हृदयाकाशके ऊपर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जो महदाकाश या ब्रह्मरंध्र रहता है, ॥ ७९ ॥ वहां निराधार स्थितिमें चैतन्यका निवास रहता है ॥ २८० ॥ उस हृदयाकाशरूपी भवनमें, यह समर्थ कुंडलिनी देवी प्रवेश कर, अपने तेजके भोजनका ग्रास चैतन्यको अर्पण करती है ॥ ८१ ॥ और बुद्धिरूपी शाकोंका शुद्ध नैवेद्य अर्पण करती है, जिससे द्वैतका नामही मिट जाता है ॥ ८२ ॥ फिर इतना करनेपर अपनी स्वयंकी कांति छोड, वह प्राणवायुमें प्रविष्ट होजाती है। उस समय उसका रूप कैसा दिखायी देता है, वह बात कहते हैं ॥ ८३ ॥ हे पार्थ ! मानो, वह कोई पवनरूपी पुतली सुवर्णपीतांबर परिधान कर रही थी, किन्तु अब उसने वह पीताम्बर उतारकर अलग रख दिया हो ॥ ८४ ॥ अथवा वायुके भिडजानेसे जैसे दीपककी ज्योति बुझ जाती है या आकाशमें चमकती हुई विद्युत् जैसे उसी क्षण लुप्त होती है, ॥ ८५ ॥ उसी प्रकार वह कुण्डलिनी सोनेकी शलाकासी दीखती हुई, या प्रकाशरूपी जलके बहते हुए निर्झरके समान भासमान होती हुई एकाएक हृदय कमलके आकाश-रूपी अवकाशमें समा जाती है और तत्काल उस शक्तिका शक्तिमें ही लय होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इस अवस्थामें उसे शक्ति ही कहा जा सकता है, किन्तु वास्तवमें वह प्राणवायु ही होती है। उस समय नाद, बिन्दु, कांति, ज्योति और कला इत्यादि उसमें नहीं दिखायी देते ॥ ८८ ॥ फिर ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर मनको जीतना, वायुको रोकना, या ध्यानका अभ्यास करना इत्यादि कोई बात बाकी नहीं रहती ॥ ८९ ॥ इतना ही नहा, बरन् संकल्प-विकल्पकी कल्पनाका नाम भी नहीं रहता, इस लिये यह स्थिति, मानो पंचमहाभूतोंको गलानेका कोई मूसा ( सांचा ) ही बनजाती है अर्थात् पंचमहाभूतोंका निर्मूलन होता है ॥ २९० ॥ योगसाधनद्वारा पिण्डसे पिण्डका ग्रास करनेका जो नाथसंप्रदाय है, इसीका रहस्य भगवान् श्रीकृष्णने दिग्दर्शित किया है ॥ ९१ ॥ आजके इस बैठकमें, अच्छे श्रोतारूपी ग्राहक बैठे जानकर भगवान् श्रीकृष्णजीके ध्वनितार्थकी वस्त्ररूपी गठरी छोड उसमेंसे यथार्थरूपी वस्त्रोंकी तह झटका कर मैंने खुली करदी है ॥ ९२ ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

हे पार्थ ! इस शक्तिके तेजका माहात्म्य सुनो, जब यह शक्ति तेजहीन होती है, तब इस शरीरका रूप भी लुप्त होता है और वह योगी संसारके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


नेत्रोंसे दिखायी नहीं देता ( इतना सूक्ष्म हो जाता है ) ॥ ९३ ॥ यद्यपि ऊपरसे तो वह पहलेसाही देहधारी दिखायी देता है, किन्तु वह शरीर मानो वायुका ही बना हुआ हो ॥ ९४ ॥ अथवा किसी कदलीको छीलकर अंदर का गर्भ ही खडा कर दिया हो, किंवा आकाशको ही अवयव या अंकुर उत्पन्न हो रहे हो, इस प्रकार वह योगी होता है ॥ ९५ ॥ और ऐसे शरीर-धारीकी 'खेचर' संज्ञा होती है। ऐसी ( आकाशसंचारी ) योग्यता प्राप्त होनेवाले योगीके शरीर संसारके सामान्य शरीरधारी जीवोंमें कोई चमत्कार करके दिखा देते हैं ॥ ९६ ॥ हे अर्जुन ! वह योगी जिस रास्तेसे चलता है, तब उसके पदानुगामी हो, अष्टसिद्धियें हाथ जोड जगह जगह खडी हो जाती हैं ॥ ९७ ॥ वह कुछ भी हो हमें उन सिद्धियोंसे कुछ प्रयोजन नहीं । हे पार्थ ! तुम तो इतना ही समझो, कि उसके शरीरके शरीरमेंही पृथ्वी, आप और तेज इन तीन महाभूतोंका इसप्रकारसे लोप हो जाता है ॥९८॥ पृथ्वीका अंश आप ( जल ) में विराम पाता है; आप ( जल ) का अंश तेजतत्त्वमें लुप्त हो जाता है और तेजका अंश हृदयस्थ पवनतत्त्वमें विश्राम पाता है या उसमें मिलजाता है ॥९९॥ इसके बाद, केवल वायुतत्त्वही शरीरके दिखावटी आधारपर निर्भर रहता ह, किन्तु कुछ कालके अनंतर वह ( वायुतत्त्व ) भी आकाशमें समरस हो, लीन हो जाता है ॥ ३०० ॥ उस समय, उस शक्तिका कुण्डलिनी यह नाम नष्ट होकर उसे 'मारुती' ( वायु ) नाम प्राप्त होता है, परन्तु जबतक वह कुण्डलिनी ब्रह्मस्वरूपमें समाविष्ट नहीं होती, तबतक उसकी शक्ति जैसीकी वैसी बनी रहती है ॥ १ ॥ इस समय ( पूर्ववर्णित ) जालन्धरबंधको छोड, काकीमुखी सुषुम्नानाडीका मुँह तोड वह कुंडलिनी ब्रह्मरंध्रके पहाडपर जा पहुँचती है ॥ २ ॥ फिर ओंकारके पीठपर पैर देती हुई शीघ्रताके साथ पश्यन्तीवाचा-सीढी पार होजाती है ॥ ३ ॥ इसके अनंतर समुद्रमें जैसे नदी प्रवेश करती है, उस तरह अर्धमात्रातक ( ओंकारके 'म' कारतक ) ब्रह्मरंध्र-आकाशतत्त्वमें मिली हुई दिखायी देती है ॥ ४ ॥ और वहां जाकर ब्रह्मरंध्रमें स्थिर हो, 'सोहं' भावनारूपी अपनी बाहें पसार बडे वेगसे दौडती हुई परब्रह्मको दृढालिंगन देती है ॥५॥ उस समय बीचका पंचमहाभूतोंका पर्दा फटता है और उस शक्तिकी तथा परब्रह्मकी भेंट होती है, तब वह एकजीव होती हुई ब्रह्मानंदमें मग्न हो आकाशसमेत उस परब्रह्ममें समरस होती हुई विलीन होजाती है ॥ ६ ॥ जिस-प्रकार मेघोंद्वारा शुद्ध किया हुआ समुद्रका जल नदी-नालोंमें पडकर, आखिर



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



फिर अपने मूलस्थान ( समुद्र ) में जाकर एकरूप होता है, ॥ ७ ॥ उसी प्रकार, हे पार्थ ! देहात्माके मिससे जीवात्माका परमात्मामें प्रवेश होकर वह एकत्वको प्राप्त होता है, अर्थात् ब्रह्मही ब्रह्मपद प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ इस स्थितिका विवेचन करनेके लिये, उस समय कोई नहीं रहता, कि यह पहलेसे ही एक है, या दूसरा जो कोई था, सो उस समय इस वस्तुमें मिलगया ! ॥ ९ ॥ इसका अनुभव यही है कि, जिस प्रकार आकाशमें ही आकाश मिल जाता है । और ऐसा जिसे अनुभव प्राप्त भया, उसे सिद्धपुरुष या योगी समझना ॥ ३१० ॥ और ऐसी स्थितिको प्राप्त भये योगियोंके संवाद सुननेमें आजाँय, ऐसा कोई देशही नहीं, अर्थात् ऐसे शब्दही नहीं प्राप्त होते अथवा उन अनुभवोंकी वार्ता वाणीके बाहर ही है ॥ ११ ॥ इसलिये, सामान्यतः अनुभवको प्रकट करनेवाली जो वैखरीवाणी है, उसका भी अभिमान यहां नहीं चलनेसे, हे पार्थ ! वह भी दुर्बल बनकर दूरही खडी रहती है ॥ १२ ॥ भ्रुकुटीकी पिछली ओर जानेमें 'मकार' ( ॐकारकी तीसरी मात्रा ) की ही रुकावट रहती है, किन्तु केवल इस कारणसे ही अकेले प्राणवायुको गगनमें प्रवेश करनेके लिये साहस उठाना पडता है ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर वह जब ब्रह्मरंध्रके गगनमें समरस होजाता है, तब आकाशके शब्दको वर्णन करनेके लिये कुछ बाकी नहीं रहता अर्थात् शब्दकी सामर्थ्य समाप्त होती है । अब इसके आगेकी पैंडी केवल गगनका लोप ही है, ॥ १४ ॥ जब वह भी होता है, तब महाशून्यके अथाह दहमें जहां गगनका भी ठिकाना नहीं लगता, फिर शब्दका वहां क्या चल सकता है ? ॥ १५ ॥ अतएव इसका तात्पर्य यह है कि, यह वस्तु ऐसी स्पष्ट और प्रकट नहीं है, कि जो शब्दोंसे वर्णन की जाय! अथवा श्रवणेन्द्रियोंसे जिसका निश्चयसे समुचित सुनना बन पडे ॥ १६ ॥ परन्तु यदि दैवयोगसे कुछ अनुभव प्राप्त होजाय तो हो सकता है, फिर तो तुम वह वस्तु ( आत्मस्वरूप ) ही बन जाओगे । बस, यहां तो इतना ही कहा जा सकता है ॥१७॥ इसके बाद ज्ञातव्य बात कुछ नहीं रहती, फिर हे अर्जुन ! वही वही बात बारबार कहनेका क्या प्रयोजन ? अतएव इतना ( पूर्वोक्त ) कहना ही काफी है ॥ १८ ॥ इस प्रकार जहांसे शब्द पीछे लौट जाते हैं, वहां संकल्प-विकल्पोंका नाम भी नहीं रहता, फिर विचारोंकी हवाको वहां स्थान ही कहां है ? ॥ १९ ॥ जो उन्मनी अवस्थाका सौन्दर्य, चतुर्थावस्था यानी ब्रह्मात्मक जीवन्मुक्तिका दृढतर वैभव और आदिरहित, अपरिमित तथा सर्वश्रेष्ठ तत्त्व गिना जाता है, ॥ ३२० ॥ जो विश्वका आदिबीज, योगसाधनका अंतिम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



साध्य और आनंदका केवल चैतन्य समझा जाता है, ॥ २१ ॥ जहां आकारोंकी सीमा, मोक्षकी एकरूपावस्था और आदि-अंतकी जहां समाप्ति हो जाती है, ॥ २२ ॥ जो पंच महाभूतोंका आदिकारण, महातेजोंका भी तेज इतना ही क्या, हे पार्थ ! जो प्रत्यक्ष मेरा आत्मस्वरूप समझा जाता है, ॥२३॥ तथा नास्तिकों ( दुष्टों ) द्वारा भक्तजन-समूहका छल होनेके कारण, जिसे चतुर्भुजाकारके आकारको स्वीकार करना पडा, ॥ २४ ॥ वह महासुखदायक परमात्मतत्त्व शब्दवर्णनके बाहरका है, किन्तु जो पुरुष आत्मस्वरूपको पहुँच गये, अंतिमसाध्यकी सफलताको प्राप्त करनेमें जिन्होंने अत्यंत परिश्रम और कष्ट किये, ॥ २५ ॥ अभीतक जितना कहा गया, उतना करनेमें जिन्होंने शरीरको कष्ट देकर उसकी सार्थकता की, हे पार्थ ! वे ही पुरुष शुद्ध होकर हमारी योग्यताको प्राप्त कर सकते हैं ॥ २६ ॥ वे पुरुष परब्रह्म-रसको शरीररूपी मूसायंत्रमें डालकर मानो परब्रह्मके ढले पुतले बन गये हैं, यह बात उनकी शरीरकांतिके तेजको देखनेसे ही सिद्ध हो जाती है ॥ २७ ॥ जब इस प्रकारका अनुभव हृदयमें प्राप्त होता है, तब यह विश्व ही क्या ? संपूर्णका अपनेमें लय होकर वह प्रत्यक्ष परब्रह्म ही होता है। इतना सुनकर बीचमें ही अर्जुन बोला—"हे भगवन् ! आपने जो कहा वह सब मुझे निःसंशय सत्य प्रतीत होता है ॥ २८ ॥ कारण, आपने अब जो साधन कहे उनसे परब्रह्मकी अवश्य प्राप्ति होगी ॥ २९ ॥ जो लोग दृढनिश्चयके साथ इस योगाभ्यासको करते हैं, वे निःसंशय ब्रह्मत्वको प्राप्त करसकते हैं, यह तत्त्व मैं भी आपके कथनानुसार पूर्णरूपसे समझ गया ॥ ३३० ॥ हे भगवन् ! आपने तो केवल उसका वर्णन ही किया, किन्तु उसके श्रवणसे भी जो मुझे बोध और आनंद प्राप्त भया है, उसीसे मैं निश्चित समझता हूं कि, ऐसा साधन करनेपर जिन्हें अनुभव प्राप्त होगा, यदि वे उसमें तल्लीन होकर आनंदमें निमग्न रहें तो आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ३१ ॥ अतएव हे भगवन् ! अब इस विषयके विषे कुछ और पूछनेका रहा नहीं, परन्तु एक बात पूछनेकी इच्छा है, और वह आपके विना किसे पूछ सकता हूं, आप कृपा करके मेरी बातपर ध्यान दीजिये ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! आपने जो योगका वर्णन किया, वह मुझ निःसंदिग्ध मान्य है, किन्तु मैं सामर्थ्यसे दुर्बल होनेके कारण, वह योगसाधन मुझसे नहीं किया जासकेगा ॥ ३३ ॥ हे देव ! मुझमें जो सामर्थ्य है, यदि उसीसे इसकी पूर्ति हो सकेगी, तो मैं बडे आनंदसे इस मार्गका अवलम्बन कर,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इसके अभ्यासको कर सकूंगा ॥ ३४ ॥ अथवा, हे भगवन् ! मैं कहता हूं कि, आपके कहे मुताबिक कार्य करनेकी यदि मेरी योग्यता ही नहीं है, तो फिर उस दुराराध्य मार्गको छोडकर और अपनी दुर्बलताके योग्य हो, ऐसा कुछ साधन यदि आप कृपा कर बतला सकें, तो उसके पूछनेकी इच्छा है ॥ ३५ ॥ और यही मनमें इच्छा कर आपसे पूछनेकी प्रार्थना करता हूं " इतना कहकर फिर अर्जुन बोला—" हे दयानिधे ! आप जरा ध्यान दीजिये ॥ ३६ ॥ आपने जो साधन कहे उन्हें तो मैं अच्छीतरह सुनचुका, परन्तु वे साधन, चाहे जिस पुरुष ( हरेक ) को साध्य हो सकते हैं या कोई विशिष्ट योग्यतावाला पुरुष हो, तब ही प्राप्त हों, अन्यको नहीं, क्या ऐसा भी कोई प्रकार है ? " उस पार्थकी इस शंकापर भगवान्ने जो कहा वह सुनिये ॥३७॥३८॥ श्रीकृष्ण कहते हैं, हे पार्थ ! यह क्या पूंछ रहे हो ? देखो, साधारण बातके लिये भी अधिकार-प्राप्ति विना उसके पूर्ण होनेका निश्चय नहीं रहता, फिर यह तो परमार्थके साधनका-मोक्षका विषय है, इसमें योग्यताकी आवश्यकता तो अवश्य रहेगी ॥ ३९ ॥ परन्तु योग्यता भी कार्यसिद्धिसे ही निश्चित होती है, कारण जब योग्यता होनेपर कार्यारंभ किया जाता है, तभी वह कार्य सिद्ध होनेका संभव रहता है और वही योग्यताके साथ किया गया समझा जा सकता है ॥ ३४० ॥ यद्यपि यह विषय सहज साध्य होनेवाला नहीं है, तथापि इसमें विशेषयोग्यताकी भी कोई रुकावट या आवश्यकता है, यह भी बात नहीं । और हे अर्जुन ! मैं तुम्हें पूछता हूं कि, योग्यताकी कोई खानि रहती है ? कि जो प्राप्त होतेही चाहे जितनी योग्यता अपनेमें भर दी जाय ? ॥ ४१ ॥ अजी ! यदि कोई एकाध पुरुष यत्किंचित् विरक्तताको प्राप्त हो, शास्त्रविहित देहकृत्योंको नियमसे करने लगे, तो क्या वह अधिकारी नहीं माना जायगा ? ॥ ४२ ॥ देखो, निष्काम होकर विहित-कर्मोंके करनेपर तुम भी इस साधनसे अपनेमें योग्यताको प्राप्त कर सकते हो । इस प्रकार अर्जुनकी शंकाका समाधान कर, उसके मनमें जो यह संकट प्राप्त भया था, उसे भी दूर किया ॥४३॥ और फिर बोले, हे अर्जुन ! इस विषयमें यह एक बात निश्चित है, कि जो पुरुष विरक्तताके साथ अपने शास्त्रविहित-कर्मोंको नियमसे नहीं करता, उसे यह योग्यता कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती ॥ ४४ ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे पार्थ! जो पुरुष रसनेन्द्रियके वशीभूत हो उसका दास बनगया अथवा जो सर्वस्वी निद्राके अधीन होगया वह पुरुष इस साधनका अधिकारी नहीं हो सकता ॥४५॥ अथवा जो हठपूर्वक या दुराग्रहसे तृषा-क्षुधाको मारकर अपनी जीविका ( आहार ) को तोड डालता है, ॥ ४६ ॥ तथा आग्रहपूर्वक निद्राका नाम भी नहीं लेता, इस प्रकारके हठोंसे जो नाच नचाता है, वह स्वयं अपना शरीररक्षण भी अच्छीतरह नहीं कर सकता, फिर उसे योग कैसे साध्य होगा? ॥ ४७ ॥ अतएव जिस प्रकार विषयोंके सेवनका अतिक्रमण करना योग्य नहीं, उसी प्रकार उन ( विषयों ) को बिलकुल रोकना या बन्द करना अथवा उनका द्वेष करना भी उचित नहीं होगा ॥ ४८ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

आहारका सेवन तो किया ही जाय, किन्तु वह उचित तथा परिमित हो, ऐसी युक्तिसे करना। तथा संपूर्ण कर्मका आचरण भी इसी प्रकार उचित तथा नियमित होना चाहिये ॥ ४९ ॥ जैसे कि शब्द बोलने हों तो परिमित ( कार्यानुसार ), चलना हो तो अत्यंत आवश्यककार्यमें और धीरेसे, तथा निद्राको भी उचित कालमें आदरके साथ परिमित अर्थात् नियमसे ग्रहण कहना ॥ ३५० ॥ कोई समय ऐसा भी आजाय, कि जागना ही पडे, तो वह भी नियमसे किया जा सकता है, कारण उससे कफ-पित्तादिक शरीरस्थ धातुरसोंके द्रवत्वका योग्य प्रमाण बनकर सुख ही होता है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार नियमताके साथ इन्द्रियोंको उनके विषयोंका खाद्य देनेसे मन संतोषित होकर वृद्धिंगत होता है ॥ ५२ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

जैसा जैसा बाहरी क्रियाओंमें योगमुद्राका नियमितपना बन जाता है, उसी प्रकार धीरेसे अंतरंगमें भी वैसी ही सुखकी समृद्धि बढने लगती है और इस प्रकार नियमितरीतिसे चलनेपर योगाभ्यासके विना ही योगसाधनकी प्राप्ति होजाती है ॥ ५३ ॥ जैसे भाग्योदयमें केवल उद्योगके निमित्त ( बहाने ) से ही सब संपत्ति घर बैठे प्राप्त होती है, ॥ ५४ ॥ उसी प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


बुद्धिमान् पुरुष यदि नियमके साथ योग्य कर्माचरणको करता रहे, तो अनायास ही अभ्यसमार्गमें प्रवृत्त होजाता है और उसे आत्मासिद्धिके अनुभवका लाभ प्राप्त होजाता है ॥ ५५ ॥ अत एव हे पार्थ ! जिस भाग्यशाली पुरुषको इस प्रकारकी नियमितयुक्तिसे कर्मयोगका साधन प्राप्त भया हो, वह मोक्षरूपी सिंहासनारूढ हो सदैव सुखी होता है ॥ ५६ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

इस प्रकार नियमित रीतिसे चलनेपर क्रियाका समतौल योगके साथ जब मिल सकता है, तब यह शरीर प्रयाग-जैसा पवित्र क्षेत्र होता है और इस तरहके शरीरमें रहनेवाला मन शरीरके अंततक ( निश्चयात्माक ) स्थिर हो जाता है ॥ ५७ ॥ हे अर्जुन ! उस पुरुषको तुम 'योगयुक्त' संज्ञा दे सकते हो । अब प्रसंगानुसार कहते हैं कि, उसे निर्वात स्थानके दीपककी ज्योति की भी उपमा दी जा सकती है ॥ ५८ ॥ अब तुम्हारा हृद्गत पहचानकर और एक बात कहता हूं, तुम ध्यान देकर सुनो ॥ ५९ ॥ देखो, अर्जुन ! तुम तो मनमें कार्यसिद्धिकी परम इच्छा प्रकट करते हो, परन्तु उसका साधन जो अभ्यास उसके करनेमें जो कष्ट हों, उनको क्यों नहीं सहन करना चाहते हो ? इसमें तुम्हें क्या बडा भारी संकट मालूम होता है ? क्यों तू उससे डरता है ? ॥ ३६० ॥ हम कहते हैं तुम कोई कारणके बिना ही घबडा रहे हो, तुम्हें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, ये दुष्ट इंद्रियें तुम्हें वृथा डराती हैं ॥ ६१ ॥ देखो, नष्ट होनेवाली आयुको स्थिर करनेवाली या प्राणोंको वापस लानेवाली ऐसी गुणकारी यदि दिव्य औषध हो, तथापि जिह्वा उसे तो शत्रु ही समझती है, कारण उसे उससे कष्ट होता है ? ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार अपना जिसमें परमोच्च कल्याण है, उसके अनुकूल जो साधन हो उसको ये इंद्रियें कभी पसंद नहीं करतीं, यदि ऐसा न होता अर्थात् इंद्रियां अनुकूल रहतीं तो इस योगसाधनके बराबरका कोई दूसरा सुलभ साधन ही नहीं है ॥ ६३ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २० ॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे अर्जुन ! इसी लिये तो हमने पूर्वमें स्थिर और दृढ आसन लगाकर योगाभ्यासको करनेके लिये कहा है, कारण उस तरहसे चलनेपर इन दुष्ट इन्द्रियोंका कुछ भी वश नहीं चलता, किन्तु उनकी ही खूब रुकावट होती है ॥ ६४ ॥ और यदि वास्तविक विचार किया जाय तो योगसाधन द्वारा जब इन्द्रियोंका निग्रह किया जाता है, तभी चित्त आत्मस्वरूपमें प्रवेश कर सकता या आत्मस्वरूपकी उससे भेंट होती है ॥ ६५॥ और फिर जब वहांसे लौट आकर ठहरके अपनी ही ओर देखता है, तब देखते ही उसे पहचान हो जाती है, और वह स्वयं ही कहता है कि " यह तत्त्व तो मैं ही हूं " यह उसे निश्चय होता है ॥६६॥ अब इस प्रकारकी पहचानका जब उसे अनुभव आता है, तब वह सुख-साम्राज्यपर विराजमान हो सहज और लीलासे ही परमात्मतत्त्वमें मिलकर एकरूप हो जाता है ॥ ६७ ॥ ऐसी स्थितिमें पहुँचनेपर इसके बाद अब कुछ भी नहीं तथा जिसका सत्यज्ञान इन्द्रियोंको कदापि हो नहीं सकता, ऐसी वस्तुमें समरस हो तन्मयताके साथ अपने हीमें अर्थात् आत्मसुखमें निमग्न रहता है ॥ ६८ ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिँस्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥

हे अर्जुन ! अब उस देहपर मेरुपर्वत सरीखे दुःखके पहाड यदि गिर जायँ, तो भी उसका चित्त यत्किंचित् भी घबडाता नहीं ॥ ६९ ॥ इतना ही क्या ? यदि उस देहपर शस्त्राघात किया जाय अथवा उसे अग्निमें जलाया जाय तो भी उस आत्मतत्त्वके महासुखमें सोये हुए चित्तको जागृतिका भास भी नहीं होता ! ॥३७०॥ इस प्रकारसे चित्तकी एकाग्रताके बाद, वह आत्मतत्त्वमें समरस यानी लीन हो जानेपर भूलकर भी इस पांचभौतिक देहकी तरफ देखना नहीं चाहता, कारण कभी न मिलनेवाला, ऐसा जो अलौकिक आत्मसुख उसके लाभका अनुभव प्राप्त होनेसे, देहके सुखदुःखका उसे स्मरण भी नहीं रहता ॥ ७१ ॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चियेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

जिस सुखकी अभिरुचि प्राप्त होनेपर संसारमें रुका हुआ मन वासनाका स्मरण भी नहीं करता, ॥ ७२ ॥ जो सुख योगकी शोभा तथा संतोषकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



राजसम्पत्ति है, जिस सुखके लिये ज्ञानका ज्ञातृत्व सहायक होता है, ॥७३॥ वह सुख योगाभ्याससे मूर्तिमंत प्रत्यक्ष होता है और इस प्रकार उसका दर्शन होनेपर वह योगी पुरुष स्वयं तद्रूप ही हो सकता है ॥ ७४ ॥

संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४ ॥

हे पार्थ ! इस योगविषे जो तुम्हें कठिनता मालूम होती है, उसका कुछ भी भय मत करो, हम समझते हैं यह एकदम सीधा और सुलभ भी है, किन्तु इसमें एक रहस्य यह है कि, संकल्पको पुत्रशोक पैदा करना चाहियें अर्थात् उसके पुत्र जो काम-क्रोधादि उनका नाश करना चाहिये ॥ ७५ ॥ फिर, विषयोंका निःपात हुआ, अर्थात् वे फिर उठ नहीं सकते तथा इंद्रियोंका भी निग्रह हो चुका, इस बातको सुनते ही वह संकल्प अपने हाथसे छाती पीट पीटकर मर जायगा ॥ ७६ ॥ इस प्रकारका वैराग्य प्राप्त होनेपर संकल्पका नाम भी नहीं रहेगा और बुद्धि बडे सुखसे धैर्यके राजमंदिरमें निवास करेगी ॥ ७७ ॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ २५ ॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

हे पार्थ ! यदि बुद्धिको धैर्यका लाभ होजाय, तो वह अनुभवके मार्गसे धीरे धीरे मनको चलाकर, आखिर परमात्ममंदिर ( ब्रह्मस्वरूप ) में स्थापित कर देगी ॥ ७८ ॥ कहनेका तात्पर्य, इस सुलभ मार्गसे भी परमात्मप्राप्ति हो सकती है, यह तुम्हें समझना चाहिये । देखो अर्जुन ! यह मार्ग भी तुम्हें साध्य नहीं होता हो, और कठिन जान पडता हो, तो दूसरा भी एक सुलभ मार्ग है, उसे सुनो ॥७९॥ देखो, एक निश्चयसे मनःपूर्वक ऐसा नियम किया जाय कि, जिस निश्चयको किया है, उसको कैसे भी समयमें हटा नहीं सकते या कैसे भी संकटमें उसका उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ३८० ॥ ऐसे निश्चयसे यदि मनको स्थैर्य आजाय तो वह अपना काम कर सकेगा, ऐसा समझना, किन्तु इस तरह करनेपर यदि वह मन स्थिर न होता हो, तो फिर उसे इच्छानुसार( मनमाना ) चलनेके लिये छोड देना, ॥८१॥ इस प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बहका हुआ वह मन जहां जायगा, वहांसे उसको समझा बुझाकर फिर वापस लानेकी कोशिश करके नियमनके साथ रखना, जिससे धीरे धीरे उसे स्थिरताका अभ्यास होजायगा ॥ ८२ ॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

पश्चात् किसी समयमें उस स्थिरत्वकी सहायतासे वह मन आपही आप आत्मस्वरूपके पास आ पहुँचेगा ॥ ८३ ॥ और जब वह आत्मस्वरूपको देखेगा, तब उसके साथ द्वैतका विवाद कर पराजित हो अद्वैतमें समाविष्ट हो जायगा। और इस एकताके प्रभावसे यह त्रैलोक्य प्रकाशमान हो जायगा ॥ ८४ ॥ देखो आकाशमें ही आकाशसे भिन्न अभ्र दृष्टिगोचर होता है, किन्तु जब वह अभ्र आकाशमें मिल जाता है, तब सर्वव्यापी आकाशके विना कुछ बाकी नहीं रहता, ॥८५॥ उसी प्रकार इस मनका आत्मस्वरूपमें लय होकर संपूर्ण एक चैतन्य ही चैतन्य बना रहता है। इस प्रकारकी सफलता इस सुलभ मार्गसे सहजहीमें प्राप्त होजाती है ॥ ८६ ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! इस सुलभ योगोपायसे अनेकोंने सकल्पोंकी संपत्तिका त्याग करके मोक्षदर्शनका लाभ प्राप्त किया है ॥ ८७ ॥ जब मन सुखकी संगतिसे परमात्मस्वरूपके पास आ भिड जाता है, तब जैसा नमक पानीमें मिलते ही उसे छोड नहीं सकता, ॥ ८८ ॥ तद्वत् मन भी उस भेंटके समयमें उससे विलग न होकर समरस हो, संपूर्ण संसारके साथ सुखकी दीपावाली करता रहता है ॥ ८९ ॥ इसलिये अपने पैरोंसे ही अपने मूलस्वरूपके पास वापस चलना पडता है, जिससे कार्यासिद्धि हो ही जाती है। अब यह भी सुलभ उपाय तुम्हें साध्य न होता होगा, तो और भी एक दूसरा साधन मैं तुम्हें कहता हूं, तुम ध्यान देकर सुनो ॥ ३९० ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


देखो, ऐसी ही दृढ भावना हो कि, निस्सदेह मैं ही संपूर्ण देहोंमें निश्चित-रूपसे हूं और यह संपूर्ण विश्व मेरे हीमें वास करता है ॥ ९१ ॥ इस प्रकार परस्पर मिले हुए हम दोनोंसे ही यह जगत् भरा है । इस प्रकारकी दृढ भावना अपनी बुद्धिमें उत्पन्न होनी चाहिये ॥ ९२ ॥ हे अर्जुन ! वास्तविक विचार कर देखा जाय, तो जो पुरुष एकत्वकी भावनासे संर्व-भूतोंमें समत्वकी दृष्टिसे मुझे देखकर मेरा भजन करता है, ॥ ९३ ॥ भूत-मात्रोंकी दिखावटी अनेकताके भेदोंसे जिसके अन्तःकरणमें भेदभाव उत्पन्न नहीं होता, तथा जो मुझे सर्वत्र समत्वसे अर्थात् एकरूपसे देखता है ॥९४॥ उस पुरुष और मुझमें कुछ भेद नहीं अर्थात् वह पुरुष स्वयं मैं ही हूं । यह बात यद्यपि मैं स्वयं नहीं कहना चाहता, तथापि तुम्हारी भावनाके लिये कह रहा हूं, कि उस पुरुषकी योग्यता मेरे बराबरकी ही है ॥ ९५ ॥ जैसे दीपक और प्रकाशके विषयमें एकता रहती है, उसी प्रकार वह पुरुष मुझमें और मैं उसमें अभिन्न-रूपसे वास करता रहता हूँ ॥ ९६ ॥ जैसा जलके अस्तित्वसे रस वास करता है या आकाशके नापके परिमाणानुसार ही अवकाश रहता है, उसी प्रकार मेरे रूपसे ही वह साकार रूपसे वास करता रहता है ॥ ९७ ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥

जैसे वस्त्रभरमें सब तंतु ही तंतु भरे रहते हैं, उसी प्रकार वह संपूर्ण विश्व-भरके भूतोंमें एकत्वकी दृष्टिसे देखता है, ॥९८॥ किंवा नानाप्रकारके अलंकार होनेपर भी उनका अधिष्ठान जो सुवर्ण वह सबमें एक ही है, इसप्रकारकी एक भावनात्मक जिसकी स्थिति स्थिर हो रही है, ॥९९॥ अथवा वृक्षपर जितने पत्र हैं वे एक ही वृक्षके हैं, किन्तु जितने पत्र उतने उनके विरवा लगाये नहीं गये हैं, इस प्रकारके अद्वैत सूर्योदयरूपी प्रकाशसे जिनकी अज्ञान-रूपी रात्रि नष्ट हो गई है, ॥ ४०० ॥ ऐसा सर्वत्र समत्वको प्राप्त हुआ पुरुष यद्यपि इस पंचमहाभूतात्मक शरीरमें बद्ध हुआ हो, तथापि उसमें वह कैसा रुक सकता है ? कारण उसे मेरा अनुभव प्राप्त हो जानेसे वह मेरे ही तौलका बडप्पन पाता है ॥ १ ॥ आत्मानुभवसे वह मेरी व्यापकताको प्राप्त कर सकता है, यद्यपि उसका ऐसा वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जाय, तथापि स्वभावतः ही वह विश्वव्यापक बना रहता है ॥ २ ॥ हे अर्जुन !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


यद्यपि वह शरीरधारी रहता है, तथापि उसे शरीरका यत्किंचित् भी अभिमान नहीं रहता, हे अर्जुन ! क्या कहें उसका वर्णन यदि शब्दों द्वारा वर्णा जाता तो वैसा किया जाता, परन्तु वह वाणीके बाहरका ही है ॥ ३ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

अएतव हम संक्षेपसे कहते हैं, कि, जो पुरुष इस स्थावर जंगमात्मक चराचर विश्वको अपने सरीखा ही देखता है, ॥ ४ ॥ तथा जिसका मन सुखदुःखादि भावनाओंमें या शुभाशुभ कर्मोंमें भेदभाव नहीं रख सकता अर्थात् जिसे कोई विकार होताही नहीं, ॥ ५ ॥ सम, विषम, भाव तथा दूसरे विचित्र सर्व वस्तुमात्रको जो अपने अवयव ही समझता है ॥ ६ ॥ कहांतक कहा जाय,मानो यह सब त्रैलोक्य जिसकी बुद्धिको आत्मस्वरूप ही ( सब मैं ही हूं, ) दीखता है, ॥ ७ ॥ उसे यह पांचभौतिक शरीर तो रहताही है, बरन् प्रसंगानुसार लौकिकव्यवहारमें उसे सुखी या दुःखी भी कहा जाता है, किन्तु मैं स्वयं अनुभवसे कह सकता हूं कि वह पुरुष ब्रह्मस्वरूप ही है, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ८ ॥ इस लिये हे धनुर्धर पार्थ ! इस प्रकारकी समता प्राप्त करनेकी उपासना करनी चाहिये, कि जिससे स्वयं ही विश्व बनकर उसे स्वयं ही देख सके अर्थात् स्वयं विश्वरूप बनजाय ॥ ॥ ९ ॥ हे पार्थ ! यह बात हमने तुम्हें बारबार कह रखी है, और उसका यही कारण है, कि समतासे बढकर और दूसरी कोई भी वस्तु तुम्हें प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं । यही परम श्रेष्ठ साध्य है, यह निश्चय रखो ॥ ४१० ॥

अर्जुन उवाच ।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥ ३३ ॥
चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

तब अर्जुनने कहा–" हे भगवन् ! आप तो हमलोगोंपर कृपा करके बडे प्रेमके साथ कह रहे हैं, किन्तु यह मन स्वभावतः ऐसा है कि, इसके सामने हमारा कुछ वश नहीं चलता ! ॥ ११ ॥ यह मन कैसा है, कितना बडा है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


इस बातका विचार करनेपर उसका पताही नहीं मिलता ! क्या कहें, हे देव ! यदि उसके निरंतरके व्यापारका विचार किया जाय तो उसके व्यापारके लिये यह त्रैलोक्य भी कमही मालूम पडेगा ॥ १२ ॥ फिर जैसे मर्कट भी कभी शान्तरीतिसे बैठ सकता है ? या तूफानी हवाको 'स्थिर रहो' कहनेसे वह शांत हो सकती है ? इस प्रकारका यह मन रोकनेसे रुकता नहीं, ॥ १३ ॥ जो स्वयं तो स्थिर होता ही नहीं, किन्तु बुद्धिको बिगाडता है, निश्चयको स्थिर होने नहीं देता, धैर्यको विश्वास देनेका बहानाकर फँसा देता है ॥ १४ ॥ विवेकको मोह उत्पन्न कर देता है, संतोषको अतृप्त कर वासनागामी बना देता है, इतना ही क्या ! कुछ न कर स्वस्थतासे बैठना चाहें तो भी वह दश दिशाओंमें घुमाता रहता है, ॥ १५ ॥ जबर्दस्तीसे उस यदि दबाया जाय तो वह भी उतने ही जोरसे उछल पडता है, यदि निग्रह करक रोक रखनेका विचार किया जाय, तो वह निग्रही उसके क्रोधको बढानेमें सहाय ही बनता है ! हे देव ! फिर ऐसा यह दुराराध्य मन अपने चंचल स्वभावको कैसे छोड सकेगा ? ॥ १६ ॥ अतएव यह हमारा मन स्थिर हो, हम लोग साम्यावस्था ( समदृष्टि ) को प्राप्त होजायँ यह बात शशश्रृंगवत् अर्थात् नहींके बराबर ही समझना होगा । अथवा अशक्य कहें तो भी ठीक है ! ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

अर्जुनके इस वाक्यपर भगवान् बोले–हे अर्जुन ! तुम कहते हो वैसी ही यह बात है । यह मन ऐसा है कि चंचलत्व तो इसका नैसर्गिक यानी जन्मजात स्वभाव ही है ॥ १८ ॥ तथापि हे पार्थ ! वैराग्यकी सहायतासे यदि इसे योगाभ्यासमें नियोजित कर दिया जाय, तो कुछ कालके पश्चात् धीरे धीरे वह स्थिर हो सकता है ॥ १९ ॥ कारण, यद्यपि यह चंचल है, तथापि इसमें एक बडा भारी गुण भी है, वह यह कि एकबार जिस बातका वह पसंद करता है, उसपर यह ऐसा लुब्ध होजाता है मानो उसे छोडना ही नहीं चाहता ! इस लिये इसे कौतुकसे आत्मसुखका अनुभव ही निरंतर चखाते रहना ॥ ४२० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥

देखो, साधारणतः यानी स्वभावसेही जो विरक्त नहीं, तथा जो अभ्यासका प्रयत्न करना भी नहीं चाहते, वे इस मनको रोक नहीं सकते, और हमें भी यह बात मंजूर है ॥ २१ ॥ परंतु, यम-नियमोंके मार्गसे यदि हम कभी जानाही नहीं चाहते, वैराग्यका कभी स्मरण भी नहीं करते, किन्तु केवल विषयरूपी सागरमें निरंतर डूबे रहना ही भला मानते रहें, ॥ २२ ॥ तथा इस मनको नियमनरूपी कैंचीमें पकडनेका कभी प्रयत्न ही न करेंगे तो वह मन किसलिये अपना चंचलत्व छोडेगा ? उसका तो वह स्वभाव ही है, ॥ २३ ॥ अतएव हे अर्जुन ! जिस रीतिसे इस मनका नियमन हो, इस प्रकारके किसी साधनको प्रथम प्रारम्भ करो, फिर देखा जायगा कि, यह मन किस तरह तुम्हारे वशमें नहीं आता ! ॥ २४ ॥ तुम यदि यही निश्चय करके बैठो कि, यह मन कभी स्थिर नहीं होगा, किसी उपायसे वश नहीं होगा, फिर जिसे योगसाधन कहा जाता है, जिससे योगी बनते हैं, क्या यह सब झूठ ही है ? नहीं नहीं, अर्जुन ! वह सब सत्य है, चाहे तुम इतना ही कह सकते हो, कि "मुझसे अभ्यास नहीं किया जाता" ॥ २५ ॥ देखो, यदि योगसामर्थ्यका बल अपने पास तयार हो, तो इस मनके चंचलत्वकी कथा ही क्या है, जो वशमें नहीं आजाय ? अजी ! इस योगसामर्थ्यसे तो महत्तत्त्वादि सब ही मुट्ठीमें आजाते हैं ! ॥ २६ ॥ तब बीचमें ही अर्जुन बोला—हे देव ! आप कहते हैं सो सब सत्य और योग्य है, सचमुच योगसामर्थ्यके सामने इस मनका कुछ भी वश नहीं चलेगा ॥ २७ ॥ यह तो आपका कहना ठीक है, किन्तु इस योगको कैसे साध्य किया जाता है, इस बातका हमलोगोंको अभीतक किंचित् भी ज्ञान नहीं था, और इसीलिये इस बेछूटमनसे डरकर हम इसके ताबेदार बने रहे ॥ २८ ॥ हे दयानिधे ! आपकी कृपासे ही जन्मभर अज्ञानमें डूबे हुए हम लोगोंको आज योगका ज्ञान प्राप्त हुआ है ॥ २९ ॥

अर्जुन उवाच ।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥
एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

समझके साथ इतनी बात कहकर, फिर अर्जुन बोला—हे देव ! हे गुरुराज ! मेरे मनमें एक शंका उपस्थित हो रही है, और हे भगवन् ! सिवाय, आपके, उसका निराकरण करनेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ ४३० ॥ अतएव हे गोविंद ! कृपा करके मेरी इस शंकाका समाधान कीजिये । माना जाय, कि कोई एक पुरुष योगसाधनके उपायको तो नहीं जानता है, किन्तु मोक्षपदको प्राप्त करनेकी इच्छा कर उसमें तत्पर हो रहा है ॥ ३१ ॥ इंद्रियोंके मार्गको अतिक्रमण करके अत्यंत दूरस्थ आत्मस्वरूपके स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रद्धापूर्वक उस मार्गपर जा रहा है ॥ ३२ ॥ परन्तु उसे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति तो होती ही नहीं, क्योंकि वहांतक पहुँचनेकी सामर्थ्य नहीं रही, और वापस आना नहीं चाहता, इस अवस्थामें बीचो-बीच आयुष्यरूपी सूर्यका अस्त होगया, ॥ ३३ ॥ जैसा कि आकाशमें अकालप्राप्त पतला अभ्रका टुकडा जो कि ठहर भी नहीं सकता या उसकी सफलता जो 'वर्षा' वह भी नहीं कर सकता ॥ ३४ ॥ उसी प्रकार उक्त पुरुषको दोनों बातें साध्य नहीं होतीं, जैसे कि आत्मस्वरूपकी प्राप्ति तो दूर ही रही, वहांतक पहुँचही न सका और इधर श्रद्धाबलसे छोडे हुए इन्द्रिय-सुखोंको अपने हाथसे ही गवाँ दिया ! ॥ ३५ ॥ इस तरह जो केवल श्रद्धापर विश्वस्त हो रहा और जिसे एक भी साध्य नहीं हुआ अर्थात् 'न परमार्थ है न विषयसुख है' इस तरह दोनों तरफसे जो हाथ धो बैठा, उस पुरुषको कौनसी गति प्राप्त होगी ? ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

तब भगवान् श्रीकृष्ण कहने लगे—हे पार्थ ! जिसे मोक्षसुखविषयमें श्रद्धा है, उसे सिवाय मोक्षके और कौनसी गति प्राप्त होगी ? ॥ ३७ ॥ यदि ऐसा है, तथापि इस अवस्थामें एक बात उपस्थित होती है, वह यह कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ऐसी स्थितिमें उसे थोडी दुविधा प्राप्त होती है, किन्तु वह भी विश्रांति ही समझो, कारण उस समयमें भी जो सुख उसे प्राप्त होता है, वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है ॥ ३८ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! यदि वह पुरुष अभ्यासके जोरके साथ सीधे मार्गका आक्रमण करता रहता, तो उसका आयुष्यभानु अस्तंगत होनेके पहले ही, शुद्धप्रकाशमें वह 'सोहं' सिद्धिके स्थानपर पहुँच जाता ॥ ३९ ॥ परन्तु उसमें उतना वेगवान् सामर्थ्य न रहनेके कारण, उसे बीचमें विश्रान्ति लिये विना चलना नहीं बनता, कुछ भी हो, वह मोक्ष-पदको अवश्य प्राप्त करेगा, इसमें संशय नहीं, कारण उसके लिये वह रखा ही है ॥ ४४० ॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

हे अर्जुन ! उस पुरुषके विषयमें जो आश्चर्य होता है, उसे सुनो । देखो, जिन लोकोंके प्राप्तिमें इन्द्रको अनेक कष्ट भोगने पडते हैं, उस मुमुक्षुको वे लोक सहजहीमें प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ फिर वहां पहुँचनेपर जिस लोकमें जो जो दिव्य और मनमाने विषय हों उन्हें भोगता जाता है, वह इतना कि इसका मन तृप्त होकर उसे उन विषयोंसे घृणा उत्पन्न होती है ॥ ४२ ॥ उन स्वर्गस्थ विषयोंको भोगते समय वह घृणाके साथ मनमें कहता है, ' हे भगवन् ! यह व्यर्थका विघ्न मेरे पीछे क्योंकर लगा है' ? ॥४३॥पश्चात् वहांसे फिर मृत्यु-लोकमें जन्म ग्रहण करता है । वह कैसा और कहां ? हे अर्जुन ! वह पुण्यात्मा किसी अत्यंत धर्मशील और बडे श्रीमान् कुलमें ऐसा जन्म धारण करता है, कि जैसे पुष्ट पौदेको काटनेपर उसमेंसे फिर जोरदार और विपुल धान्योत्पादक अंकुर उत्पन्न हो, इस प्रकार वह ऐश्वर्यान्वित हो बढता रहता है ॥ ४४ ॥ वह सदैव नीतिमार्गसे ही चलता है, असत्यका तो उसे नामतक स्पर्श नहीं करता, हरेक बातको शास्त्रदृष्टिसे ही अवलोकन करता है ॥४५॥ वेदही जिसका दैवत है, स्वधर्म ही आचार है और सारासार या सत्यासत्यका विचार ही जिसका मददगार है, ॥ ४६ ॥ जिस कुलमें वह जन्मता है, उस पवित्र कुलमें ईश्वराचिन्तन ही उसका श्रेष्ठ विषय सदा रहता है और जिस कुलमें वह जन्मा है, उस कुलके पूज्य देवता ही उसके लिये संपत्ति हो रहती है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार अपने पुण्यप्रभावसे सर्व सुखोंके साधनोंका उसे लाभ प्राप्त होकर, उस जन्ममें इहलौकिक सब सुख संप-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


क्तिका उपभोग करती हुआ वह योगभ्रष्ट पुरुष अत्यंत सुखी होता है ॥४८॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

अथवा जो पुरुष ज्ञानरूपी अग्निकी सेवा करते हैं, जो निरंतर परब्रह्म-रूपी यज्ञको करते हैं और जो आत्मानन्दरूपी क्षेत्रके मालिक हैं, ॥ ४९ ॥ जो महासिद्धान्तके रहस्यको पहचान कर आत्मप्राप्तिके सिंहासनरूढ हो, त्रिभुवनका राज्य कर रहे हैं तथा जो संतोषवनमें विश्रांति लेते हुए कोकिलाकेसे पंचम स्वरमें आलाप ले रहे हैं ॥ ४५० ॥ और निरंतर उत्तम फलोंको देनेवाला जो विवेकरूपी वृक्ष, उसकी छायामें बैठे रहते आत्मानात्म विचार करते हैं ऐसे योग्य पुरुषों या योगियोंके कुलमें ही वह योगभ्रष्ट पुरुष जन्म पाता है ॥ ५१ ॥ उसकी छोटी अवस्थामें ही उसे आत्मज्ञानके सूर्योदयका उषःकाल प्राप्त होता है । और जैसे सूर्योदयके पहले हीं उषःकालमें प्रकाश प्रकट होता है, ॥ ५२ ॥ वैसे ही अवस्थाके पहले या प्रौढदशाकी बाट न जोहते हुए बाल्यावस्थामें ही उसके अन्तःकरणमें सर्वज्ञताका संचार हो जाता है ॥ ५३ ॥ उसकी जो पहलेहीसे बुद्धि परिपक्व हो चुकी थी, उससे सर्वविद्याओंकी प्राप्तिका प्रसाद उसे प्राप्त होता है और उसके मुँहसे सम्पूर्ण शास्त्र आपही आप निकलते हैं ॥ ५४ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारके जन्मप्रायर्थ स्वर्गस्थ देवता भी जप होमादिके आचरणको करते रहते हैं, ॥ ५५ ॥ और ऐसे महाऐश्वर्यशाली मृत्युलोकवासी योगभ्रष्टके ऐश्वर्यका भाट जैसे स्तुति-स्तोत्र गाते हैं, क्यों अर्जुन ! क्या उस योगभ्रष्टकी योग्यताको तुम साधारण समझते हो ? ॥ ५६ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४ ॥

पहले जन्ममें जो उसकी सद्बुद्धि और सच्छ्रद्धा थी, उससे प्रयत्न करते रहनेमें यद्यपि फल-प्राप्तिके पहले ही उसकी आयुर्मर्यादाकी जो रस्सी टूट गयी थी, उसी मर्यादाको आरंभ कर, पुनः अमर्याद सद्बुद्धि उसे प्राप्त होती है ॥ ५७ ॥ ऐसी स्थिति प्राप्त होते ही जैसे किसी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भाग्यशाली पुरुषकी आँखोंमें दिव्यांजन लगाया जाय तब उससे इस पृथ्वीके गर्भांतरस्थ गुप्त संपत्तिको भी वह सहजमें देख सकता है, ॥ ५८ ॥ उसी प्रकार इस योगभ्रष्ट पुरुषकी बुद्धि ऐसी तयार बन चुकी है कि, जो गुप्त रहस्य अथवा गुरूपदेशसे ही जिनका ज्ञान हो जाता है, ऐसे जो सिद्धान्ततत्त्व हैं उन्हें वह अनायास ही पहचानता है ॥ ५९ ॥ उसके प्रबल इंद्रिय मनके वशमें रहते हैं, मन वायुमें समाजाता है, और वायु चिदाकाशमें समरस होने लगती है ॥ ४६० ॥ उसका जो पूर्वाभ्यास है वही यह सब कार्य करता रहता है और आत्मसमाधि तो उसके मनकी घरकी पूछ ताछ करती हुई जैसी स्वेच्छानुरूप ही आजाती है ! ॥ ६१ ॥ इस प्रकारका पुरुष मानो योगस्थलकी अधिदेवता हो, अथवा मूलस्वरूपका महत्त्व हो, या वैराग्यबुद्धिकी मूर्तिमंत प्रतीति ही प्रत्यक्ष अवतरित हुई हो, ऐसा समझना चाहिये ॥ ६२ ॥ इस पुरुषको असामान्य संसारकी गणना करनेका नाप या अष्टांग योगसाधनका सर्वतोपरि संरक्षित बेट ( निवासस्थान ) समझना चाहिये। जिस प्रकार सुगंध ही चंदनरूप बन जाता है, ॥६३॥ उसी प्रकार ' संतोष ' इस पुरुषके रूपसे ही प्रकट होता है अथवा यद्यपि यह साधकदशा-प्राप्त पुरुष है, तथापि ऐसा भास होता है कि, यह सिद्धिके भाण्डारसे ही आ रहा है, अर्थात् देखनेमें यदि वह साधकसा दीख रहा हो, तथापि ऐसी स्पष्ट भावना हो जाती है कि, यह पहला ही कोई सिद्ध हो ॥ ६४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥

देखो अर्जुन ! करोडों वर्ष और सहस्रों जन्मकी बीचकी रुकावटें लाँघकर आत्मसिद्धिके गंभीर किनारेको जो प्राप्त करता है, ॥ ६५ ॥ क्या इस बातके विचार करनेका कोई कारण बाकी रहता है, कि उसे मोक्षप्राप्ति या मोक्षप्राप्तिके साधन प्राप्त हुए हों या नहीं ? हे अर्जुन ! मोक्षप्राप्तिके साधन तो हाथ जोडकर उसकी प्रार्थना करते रहते हैं और वह विवेक-साम्राज्यका राजा बनकर सुखमें रहता है ॥ ६६ ॥ इस अवस्थाके बाद उसका विवेकके विचारका वेग भी कुंठित हो जाता है, अर्थात् फिर जो बात विचारकी मर्यादामें आ नहीं सकती, उस परब्रह्ममें वह एकरूप होता है ॥ ६७ ॥ वहां पहुँचनेपर मनपर जो कोई अभ्र रहा हो, वह



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



फिर पिघलकर साफ हो जाता है, वायुका वायुपना नहीं रहता और चिदाकाश भी आपही आप अपनेमें लुप्त होजाता है ॥ ६८ ॥ अधिक क्या कहें, ॐकार का मस्तक भी उसमें गुप्त होजाता है, इस प्रकारका अगाध और शब्दातीत सुख उसे प्राप्त होजाता है, इस लिये जो कि, वर्णन करनेमें समर्थ बैखरी वाणी वह भी उसके वर्णनमें असमर्थ होकर पीठ फेरती है ॥ ६९ ॥ इस प्रकारकी जो ब्राह्मी स्थिति, जिसे परमगति कहा जाता है, उस निराकार अवस्थाकी वह मूर्ति बनता है ॥ ४७० ॥ हे पार्थ ! उस पुरुषने पहले अनेक जन्मोंके, विपरीत ज्ञानरूपी जलके कल्मषोंको हटा हटाकर साफ करदिया है, इस लिये वह उस स्वच्छ जलके पास जाते ही, जैसे लग्नघटिका मुहूर्तकी पूर्तिमें डूब जाती है ॥ ७१ ॥ वैसे वह ब्रह्मस्थितिमें संलग्न हो, उसमें समाविष्ट होता हुआ एकरूप होजाता है। जैसा कि विखरा हुआ अभ्र फिर एकरूप होजाता है, ॥ ७२ ॥ उसी प्रकार यह संपूर्ण विश्व जहांसे प्रकट हो फिर वापस होकर जहां लीन होजाता है, ऐसा जो ब्रह्म, वह ब्रह्म ही यह प्रस्तुत शरीरधारी योगभ्रष्ट बन जाता है ॥ ७३ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥

जिस लाभप्राप्तिकी आशासे धैर्यके हाथका सहारा लेकर कर्मकांडी लोग षट्कर्मरूपी प्रवाहमें कूदना चाहते हैं, ॥ ७४ ॥ अथवा जिस एकवस्तुकी आशापर निर्भर हो, ज्ञानीलोग ज्ञानके अभेद्य कवचको पहनकर संसारके साथ समरांगणमें विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे लडते रहते हैं, ॥ ७५ ॥ अथवा जिसकी अभिलाषासे तपोनिष्ठ मुनिलोग तपोरूपी गहन किलाके टूटे हुए और गिरानेवाले दुर्गम दुर्गपर चढनेका साहस करते हैं, ॥ ७६ ॥ किंवा जो भक्तोंका भक्तिविषय और याजकोंका यज्ञदैवत है अथवा सदा सर्वदा जो सबको पूज्य है, ॥ ७७ ॥ वह परब्रह्म, वह पुरुष स्वयं ही बना रहता हैं। हे अर्जुन ! जब यह सिद्ध-तत्त्व ही सब साधकोंका साध्य हो रहा है, और वह जिसने प्राप्त किया है ॥ ७८ ॥ तब वह कर्मनिष्ठोंके लिये वंदनीय, ज्ञानियोंके लिये ज्ञान-संपन्न और तपस्वियोंके तपकी अधिदेवता होजाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥७९॥ कि जिसका मनोधर्म इस तरहसे जीवात्मा-परमात्मामें एकताको प्राप्त होगया है, वह यद्यपि औरोंसरीखा शरीरधारी हो तथापि इस पूर्वोक्त अनौपमेय योग्यताको वह निःसं-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शय प्राप्त होता ही है ॥ ४८० ॥ अतएव हे गुडाकेश ! तुम्हें मैं बारबार यही उपदेश कर रहा हूं कि, जिस किसी तरहसे तुम योगी बनो ॥ ८१ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

हे पार्थ ! और क्या कहें जिसे योगी कहा जाता है, वह सब देवोंका देव है । वह मेरा सुखसर्वस्व है, अथवा उसे मेरा प्राण ही समझो ॥ ८२ ॥ उस पुरुषमें भक्त, भजन और भजनीय यह जो भक्तिसाधनकी त्रिपुटी है वह मैं ही हूं, इस प्रकारका उसे अनुभव होता है ॥ ८३ ॥ फिर उस पुरुषके और मेरे परस्पर प्रेमका वर्णन कौनसी वाणी कर सकती है ? अर्थात् वह हो ही नहीं सकता ॥ ८४ ॥ उस एकताकी तन्मयताके लिये यदि कोई उपमा देना चाहो, तो हे अर्जुन ! मैं देह और वह आत्मा, यही उपमा दे सकते हो ॥ ८५ ॥ इस प्रकार भक्तजनरूपी चकोरोंको आल्हादकारक चन्द्र, सद्गुणोंके सागर, त्रिभुवनमें नरश्रेष्ठ, आनंदकंद भगवान् श्रीकृष्णने अमृतपानका उपदेश नरश्रेष्ठ अर्जुनको किया, यह बात संजयने धृतराष्ट्रसे कही ॥ ८६ ॥ उस समयमें, अर्जुनके उपदेशके श्रवणकी जो पहलेसे श्रद्धायुक्त उत्कट इच्छा थी, वह अब दुगुनी होगयी, यह बात भगवान् श्रीकृष्ण समझचुके ॥ ८७ ॥ अथात् भगवान् भी मनमें संतोषित हुए और दर्पणमें जिसप्रकार देखनेवालेका प्रतिबिंब प्रतीत होता है, उस प्रकार अपने उपदेशरूपी दर्पणमें अर्जुनरूपी प्रतिबिंब हूबहू प्रत्यक्ष देख भगवान् श्रीकृष्णको आनंदका प्रेमसमुद्र उमडा, उसकी लहरमें वे परमकौतुकी देवकीनंदन भगवान् वही बात फिर विस्तारके साथ अर्जुनसे कहेंगे ॥ ८८ ॥ वह कथाप्रसंग अगले अध्यायमें है । उस प्रसंगमें शांतिरस ऐसा प्रफुल्लित होजायगा कि उससे महासिद्धान्तरूपी बीजके बँधे हुए गट्ठेको भी आपही आप मधुर अंकुर उत्पन्न होजायँगे ॥ ८९ ॥ कारण, वहां जो सात्त्विक-भावनाओंकी वर्षा होगी, उससे वहांकी भूमिकी आत्मभावनाके ढेले पिघलकर श्रोताओंके चतुरचित्तरूपी जमीनके बीजको धारण करनेवाले भाग सरल और तयार होरहे हैं ॥ ४९० ॥ उसीपर चित्तकी एकाग्रताका सुवर्णसमान ऊष्मा प्राप्त होनेसे, श्रीनिवृत्तिनाथजीको सिद्धान्तबीजके बोनेका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हर्ष हो रहा है ॥ ९१ ॥ यह निवृत्तिदास ज्ञानदेव कह रहा है कि, हे श्रोताओ ! सद्गुरु महाराजजी मुझे इस बीजके बोनेका पात्र बना रहे हैं, और मेरे मस्तकपर अर्थात् बीज-पात्रपर अपना हाथ रखकर मुझमें वह बोनेका बीज उन्होंने छोड दिया है ॥ ९२ ॥ इस लिये इस मेरे मुँहसे जो जो कुछ बाहर निकलता है, वह इधर उधर न जाकर केवल सन्तोंके अन्तःकरणमें ही जा ठहरता है। अब यह विषयांतर यहां ही समाप्त कर देना चाहिये । भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे जो कहा है, वही कथन किया जाता है ॥ ९३ ॥ अब श्रोताओंसे यही प्रार्थना है कि, उस श्रीकृष्णार्जुन-संवादको श्रोतालोग मनके कर्णसे सुनें, बुद्धिके नेत्रोंसे देखें और अपना चित्त मुझे समर्पण कर उसके बदले मेरे बोल लेलेनेकी इच्छा करें, इस प्रकारका यह लेनदेनका व्यवहार वे करेंगे, ऐसी मेरी इच्छा है ॥ ९४ ॥ फिर धीरेसे सावधानीके हाथोंसे ये मेरे बोल अपने हृदयमें भरादिये जायँ, जिससे उनकी इच्छातृप्ति हो जायगी ॥ ९५ ॥ ये मेरे शब्द आत्म-कल्याणकार्यमें हस्तके सहायक बन जायँगे, परिणामको जीवित प्रदान करेंगे और जीवको लक्षावधि सुखप्राप्तिका साधन होंगे ॥ ९६ ॥ अब यही कहता हूँ कि अर्जुनके साथ दयाघन भगवान्ने जो सुंदर, मधुर और चतुरताभरा भाषण किया है, वही मैं ज्ञानदेव 'ओंवी' छंदमें ग्रथित करके कहूँगा ॥ ४९७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः हिन्दी-भाषानुवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

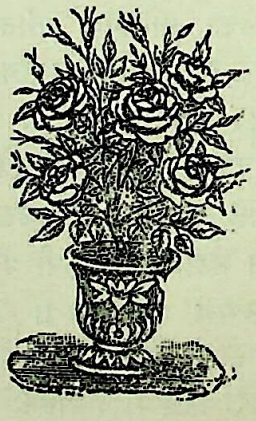

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

# श्रीज्ञानेश्वरी।

## सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीभगवानुवाच।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

हे श्रोतालोगो ! सुनिये। फिर श्रीकृष्ण भगवान्ने अर्जुनसे कहा—हे पार्थ ! अब तुम सचमुच योगयुक्त हो चुके हो ॥ १ ॥ अब मैं हर्षके साथ तुम्हें विज्ञान यानी प्रापंचिक ( व्यावहारिक ) ज्ञानके समेत ज्ञानको कहता हूं; जिससे, जैसे कोई हथेलीपरके रत्नको चारों तरफसे परखकर पहचानता है, उसी प्रकार सर्वव्यापी मुझको तुम पहचान सकोगे ॥ २ ॥ हे अर्जुन ! यदि तुम मनमें यह समझोगे कि, इस व्यावहारिक ज्ञानकी मुझे क्या आवश्यकता है ? तो ऐसा मत समझो, कारण प्रथम उसको अवश्य ही जानना पडता है ॥ ३ ॥ और फिर ज्ञान-प्रसंगमें इसके जाननेकी दृष्टि बंद हो जाती है। जिस प्रकार तीरपर रुकनेसे नौका आगे नहीं बढ सकती, ॥ ४ ॥ उसी प्रकार जहां फिर प्रापंचिक ज्ञातृत्वका पैर आगे नहीं बढता, जहांसे विचारकी गति कुंठित होनेसे उसे लौटना पडता है तथा जहां तर्ककी कल्पनाको मार्ग ही नहीं मिलता, ॥५॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे मेरे प्यारे अर्जुन ! उसीको तुम 'ज्ञान' समझो और ऐसे ज्ञानसे अलग रहा हुआ जो प्रपंच उसीकी 'विज्ञान' संज्ञा है । और यह 'प्रपंच सत्य है' ऐसी बुद्धिसे जो कल्पना की जाती है उसीका नाम 'अज्ञान' है ॥ ६ ॥ हे अर्जुन ! जिससे अज्ञानका लोप होजाता है, विज्ञानका नाश होता है और केवल शुद्ध ज्ञान-स्वरूपही स्वयं वह बन जाता है, ॥ ७ ॥ और ऐसी स्थिति प्राप्त होते ही वक्ताका वक्तृत्व बंद होजाता है, श्रोताओंके श्रवणकी इच्छा समाप्त होजाती है और यह छोटा, यह बडा, इस प्रकारकी भेदभावना मनमें भी नहीं आती ॥ ८ ॥ हे अर्जुन ! इस प्रकारका गूढ और गंभीर रहस्य जिसमें भरा है, उसीको मैं कथन करूँगा, इसका अल्प-स्वल्प ज्ञान होनेपर भी मनको संतोष और समाधान होगा ॥ ९ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! हजारों मनुष्योंमेंसे किसी विरलाकोही इस बातमें प्रीति उत्पन्न होती है और ऐसे सहस्रावधि प्रीतिमानोंमेंसे कोई एक सच्चा और ज्ञाता निकलता है ॥ १० ॥ हे अर्जुन ! सर्व संसारभरमें ढूँढ ढूँढकर जैसे तगडे और बलवान लाखों पुरुषोंको सेनामें नियुक्त किया जाता है, ॥११॥ और इस प्रकार नियोजित किये हुए पुरुषोंमें भी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे मांसके छले उडनेतकका जिसे सामर्थ्य रहता है, ऐसे किसी विरलाको ही विजयलक्ष्मीकी माला प्राप्त हो, वह राजसिंहासनारूढ हो जाता है ॥ १२ ॥ उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानके इस अथाह सागरमें करोडों कूद पडते हैं, परन्तु तैरकर परतीरको पहुँचनेवाला धैर्यशाली कोई एक विरलाही हो सकता है ॥ १३ ॥ अतएव यह पूर्वोक्त बात जैसी समझते हो वैसी सीधी सादी नहीं है, आचरणमें तो कठिनतर है ही, किन्तु कहनेमें भी गहन और बडी कठिन है, तथापि तुम्हें समझानेका मैं प्रयत्न कर रहा हूं, तुम सावधानीके साथ सुनो ॥ १४ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

फिर भगवान् कहने लगे-हे अर्जुन ! तुम सुनो । महत्तत्त्व इत्यादि रूपसे यह मेरी माया इस संसारमें ऐसी प्रतिबिम्बित हुई है, कि जिस प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


अपने शरीरकी छाया प्रतीत होती हो ॥ १५ ॥ इस मायाको ही 'प्रकृति' यह संज्ञा दी गयी है। यह भिन्न-भिन्न देहोंसे आठप्रकारकी बनी है और वही इस त्रैलोक्यको प्रसवती रहती है ॥ १६ ॥ इसके जो आठ भेद हैं वे कौनसे और कैसे हैं, यदि तुम्हें यह शंका हो, तो सुन ॥ १७ ॥ आप्, तेज, आकाश, पृथ्वी, वायु, मन, बुद्धि और अहंकार ये इस माया-प्रकृतिके आठ भेद तुम जानो ॥ १८ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

हे जिष्णु पार्थ ! इन आठ प्रकारकी प्रकृतिकी जो साम्यावस्था होती है, वही मेरी 'परम प्रकृति' तुम समझो। और इसीको 'जीव' संज्ञा भी है ॥ ॥ १९ ॥ कारण यह प्रकृति ही अचेतनोंको सचेतन ( जीवित ) करती है, चलनवालोंको चैतन्य देती है और मनको शोक मोहादि विकारयुक्त बनाती है ॥ २० ॥ बुद्धिमें जो जाननेकी शक्ति है वह भी इसी माया-प्रकृतिके सान्निध्यसे उत्पन्न होती है, इतना ही नहीं, किन्तु इस प्रकृतिसे उत्पन्न हुई जो अहंभावना है, उसीसे इस संसारका अस्तित्व स्थिर रखा जाता है ॥ २१ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

वह सूक्ष्मप्रकृति जब लीलासे ही स्थूलमहाभूतोंमें मिलकर उनके अवयव बना देती है, तब भूतसृष्टिकी ( प्राणिमात्रके उत्पत्तिकी ) टँकसाल शुरू होती है ॥ २२ ॥ इस टँकसालसे निकलनेवाले सिक्कोंमें प्राणरूपी चार सिक्के मुख्य हैं, जो आप ही आप उत्पन्न होते हैं—जैसे जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज्ज। जो कीमतमें तो एकसरीखे ही हैं, किन्तु उनकी जातियें भिन्न-भिन्न रहती हैं ॥२३॥ कुल जातियें चौरासी लाख हैं। इसके सिवाय मुख्यजातिमें जो अवान्तर-जातियाँ हैं, उनकी तो गिनती ही नहीं। इस प्रकार जिसका पार नहीं ऐसे सहस्रावधि प्राणिरूपी ठसों (मुहरों) से निर्गुण, निराकार अव्यक्त ऐसे आकाशबीजका अन्तर्भण्डार भर जाता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार इन पंचमहाभूतोंके समतौलके इतने सिक्के निकलते हैं कि, सिवाय उस माया प्रकृतिके उनकी कोई गिनती नहीं कर सकता ॥ २५ ॥ जिन सिक्कोंके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


आकारोंको नापकर उन्हें वह निकालती है, फिर उन्हीं सिक्कोंको वह गला देती है ! किन्तु मध्यावस्थामें उन सिक्कोंके द्वारा ही कर्माकर्मका शुभाशुभ व्यवहार करादेती है ॥ २६ ॥ बस, अब यह रूपकालंकार यहांही समाप्त करदिया जाय । अब सीधे और सरलशब्दोंसे वर्णन करता हूं, जिससे तुम अनायास ही समझोगे । यह प्रकृति ( माया ) ही नाम-रूपसे प्रतीत होने-वाला यह विश्वपसारा निर्माण करती है ॥ २७ ॥ और यह प्रकृति स्वयं मेरेमें ही समरस हो निवास करती रहती है, अर्थात् इस सर्व विश्वका आदि, मध्य और अंत मैं ही हूं ॥ २८ ॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

देखो अर्जुन ! यदि मृगजलके मूल-कारणका शोध किया जाता है, तब उसका कारण केवल सूर्यकिरण न समझकर, प्रत्यक्ष सूर्य ही समझा जाता है ॥ २९ ॥ उसी प्रकार इस प्रकृति-मायासे बनी हुई यह सृष्टि जब सर्व कार्योंसे निवृत्त होगी तब लय होकर मुझमें विलीन हो मद्रूप होजायगी॥३०॥ इस तरह उत्पन्न होकर लयको प्राप्त होनेवाला यह विश्व मुझमें ही स्थित रहता है । जैसे सूत्रमें मणि गुथे रहते हैं, यह विश्व भी उसी प्रकार मुझमें रहता है ॥ ३१ ॥ जैसे सुवर्णके मणि सुवर्णकी तारमें गुथे जाते हैं, उसी प्रकार अन्तर्बाह्य सब विश्व मुझमें ही भरा रहता है ॥ ३२ ॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

अत एव हे पार्थ ! जलमें जो रसगुण, वायुमें जो स्पर्शगुण या चंद्र-सूर्योंमें जो तेजगुण दीखता है, वह सब मैं ही हूं, ऐसा समझना ॥ ३३ ॥ उसी प्रकार पृथ्वीमें वास करनेवाला गन्धगुण, आकाशमें स्थित शब्दगुण और वेदमें रहनेवाला ॐकारस्वरूप जो प्रणव वह भी स्वाभाविक शुद्ध-रूपसे मैं ही हूं ॥ ३४ ॥ मनुष्यका मनुष्यत्व और जिस अहंकारके सामर्थ्यको ' पौरुष ' कहा जाता है, हे अर्जुन ! वह भी मैं ही हूं यह मुख्य तत्त्व जान बूझकर तुम्हें कहा जाता है ॥ ३५ ॥ तेजपर ' अग्नि '

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


नामक जो आवरण रहता है, उसे दूर करनेपर जो शुद्ध तेज रहता है, हे अर्जुन ! वह भी मैं ही हूं ॥ ३६ ॥ तथा नानायोनियोंमें जन्म लेकर भूतमात्र इस विश्वमें अपने अपने विशिष्ट मार्गद्वारा जो निर्वाह करते रहते हैं, ॥ ३७ ॥ जैसे कोई वायुपानद्वारा ही निर्वाह करते हैं, कोई तृणांकुर भक्षण करके रहते हैं, कोई अपनी उपजीविका अन्नद्वारा करते हैं, तो कोई केवल जलको पीकर ही जीवयात्राको चलाते हैं ॥ ३८ ॥ इस प्रकार भिन्न भिन्न प्राणियोंको जो अलग अलग जीवनके साधन स्वभावतः ही प्राप्त हुए दीखते हैं, उन सर्व साधनोंमें अभिन्नरूपसे मैं ही निवास करता हूं ॥ ३९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥
बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

जो उत्पत्तिसमयमें आकाशके अंकुरके साथ विस्तारको पाता है और संहारके समय 'अ, उ, म्,' इन ओंकारके तीन अक्षरोंको भी निगल जाता है, ॥ ४० ॥ तथा जबतक यह दृश्यमान विश्व अस्तित्वमें रहता है तबतक तो विश्वाकार भासता रहता है, किन्तु महाप्रलयकालमें संपूर्णका नाश होनेपर भी जो जैसाका तैसा ही रहता है अर्थात् जिसको कुछ भी विकार नहीं होता, ॥ ४१ ॥ इस प्रकारका जो स्वयंसिद्ध और अनादिविश्वबीज, वह मैं ही हूँ । हे अर्जुन ! यह गूढ ज्ञान होनेपर भी मैं तुम्हें सुलभ कर दे रहा हूं ॥ ४२ ॥ हे अजुन ! जब तुम इस ज्ञानका आत्मानात्मविचारके साथ संबध जोड दोगे तबही इसका मर्म या बडप्पन तुम समझ जाओगे ॥ ४३ ॥ अब यह विषयान्तर होता है, इसलिये अब जो कहनेका मुख्य तत्त्व है उसे थोडेमें कथन करत हूं । हे अर्जुन ! तपस्वियोंका जो तप है, वह मेराही रूप तुम समझो ॥ ४४ ॥ तथा बलवानोंका जो सामर्थ्य है वह भी मैं ही हूं और बुद्धिवानोंकी बुद्धिको तुम मुझे ही समझना ॥ ४५ ॥ भूतमात्रोंमें अर्थार्जनके साथ धर्मका विपुल संग्रह करनेहारा जो शुद्ध काम ( वासना ) है, जो आत्मस्वरूपमें रममाण हो रहता है, हे भरतर्षभ वह भी मैं ही हूं ॥४६॥ हे पार्थ ! यद्यपि यह शुद्ध काम स्वभावतः विकारानुरूप-प्रवाहमें पडकर इन्द्रियतृप्तिका काम किया करता है, तथापि वह इन्द्रियोंको धर्मके विरुद्ध

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जाने नहीं देता ॥ ४७ ॥ यह काम कर्मसंन्यासके टेढे मार्गको छोडकर, विधियुक्त कर्माचरणका जो राजमार्ग है, उसमें प्रवृत्त करता है और नियमितताकी मशालका प्रकाश इसके साथ सदैव रहता है ॥ ४८ ॥ इस प्रकारकी सावधानताके साथ इसका शुद्ध व्यवहार चलता रहता है, जिससे धर्मकी पूर्त्तिका यश प्राप्त होजाता है अर्थात् इस प्रकारकी नियमतासे चलनेवाले पुरुष भी सांसारिक भोगोंको भोगकर मोक्षतीर्थके मुक्तजन हो जाते हैं ॥ ४९ ॥ हे अर्जुन ! वेदोंसे स्तुति किये गये मंडपपर, जो पुरुष कामरूपी विश्वकी वल्लीको इसप्रकार चढा देता है कि, जिसके कर्मरूपी पत्र फलभारसे झुक झुककर आखिर वह मोक्षपर जा टिकती है ॥ ५० ॥ इसप्रकार संपूर्ण भूतमात्रको उद्भूत करनेवाला जो बीजरूपी काम है, हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! वह भी योगिश्रेष्ठ परमात्मा मैं ही हूं यह निश्चित समझो ॥५१॥ अजी ! एक एक बात कहांतक समझायी जायगी ? अब तुम यही समझो कि, यह सब यच्च यावत् जो वस्तुमात्र है, वह मुझसे ही विस्तारको प्राप्त हो रहा है ॥ ५२ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥

जो सात्त्विक या राजस तामस विकार हैं वे भी मेरेही स्वरूपसे प्रादुर्भूत होते हैं, यह भी तुम्हें समझना होगा ॥ ५३ ॥ किन्तु, यह बात विशेषकरके समझ रखना आवश्यक है कि, यद्यपि ये विकार मुझसे उत्पन्न होते हैं सही, किन्तु जिस प्रकार स्वप्नावस्थाके दहमें जाग्रतावस्था डूबी नहीं रहती, उसी प्रकार इन विकारोंमें मैं नहीं रहता ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार बीजकण रसद्रव्योंसे दृढ बना रहता है, किन्तु अंकुरसे लेकर डालियें वगैरह सब कठिन लकडी उसी कणसे बनती है ॥५५॥ परन्तु उस लकडीमें क्या कहीं बीजका गुण दीखता है ? उसी प्रकार, यद्यपि ये विकार मुझसे उत्पन्न होतेसे प्रतीत होते हैं, तथापि मैं उनमें नहीं रहता हूं ॥ ५६ ॥ जैसे आकाशमें अभ्र ( मेघ ) आते दीखते हैं, तथापि अभ्रमें आकाश नहीं रहता अथवा मेघसे जल उत्पन्न होता है, किन्तु वहां मेघ नहीं रहता ॥ ५७ ॥ किंवा मेघोंके वर्षणद्वारा जो जलका क्षोभ होकर तेजका चमकता हुआ प्रकाश प्रकट दिखाई देता है, क्या उस बिजलीमें जल थोडे रहता है ? ॥ ५८ ॥ अजी ! तुमही कहो, कि अग्निसे धुँआ प्रकट होता है, तो क्या उस धुँएमें अग्नि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


रहती है ? उसी प्रकार यद्यपि मुझमें विकार दिखाई देते हैं, तथापि मैं विकाररूप थोडे हो सकता हूं ? ॥ ५९ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

परन्तु, पानीपर उत्पन्न हुई सिवार जिस प्रकार पानीको ढाँप लेती है, अथवा अभ्रोंसे जैसा गगन वृथा आच्छादित किया जाता है, ॥ ६० ॥ देखो अर्जुन ! यद्यपि स्वप्नको झूठा माना जाता है, तथापि जबतक निद्रावस्थाकी सत्ता स्थित रहती है, तबतक वह सच्चा ही ज्ञात होता है और उस समय अपना अपनेको भी स्मरण नहीं रहता, ॥ ६१ ॥ अथवा नेत्रेंद्रियपर स्वयं नेत्र ही मोतिबिंदु सरीखा पटल उत्पन्न करता है, फिर वही पटल कुछ दिन बाद जैसे नेत्रकी दृष्टिको बंद कर देता है, ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार त्रिगुणात्मक माया मेरी छायारूपसे विस्तृत हो, मेरे आत्मरूपपर वह एक प्रकार पर्दा बनकर उसे ढँकती है, ॥ ६३ ॥ इस लिये प्राणीमात्र मुझे पहँचानते नहीं । हे अर्जुन ! यद्यपि वे भी मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, किन्तु व म नहीं होसकता । देखो, जैसे पानीसे उत्पन्न हुए मोती पानीसे पिघलते नहीं, ॥ ६४ ॥ अथवा जैसे मिट्टीका घट बन जाता है, यदि उसी-गीली अवस्थामें—उसे मिट्टीमें मिलादिया जाय तो उसमें मिल सकता है, किन्तु उसे अग्निसंस्कारसे तपानेपर उसका मिट्टीसे भिन्न-स्वरूप बन जाता है, ॥ ६५ ॥ उसी प्रकार, यद्यपि ये भूतमात्र मेरे ही अंश हैं, तथापि प्रकृति-मायाके योगसे वे जीवदशाको प्राप्त हुए हैं ॥ ६६ ॥ अतएव यद्यपि ये मेरे हैं तथापि वे 'मैं' नहीं होसकता । वे मेरे होते भी मेरे स्वरूपको इस लिये नहीं पहँचान सकते, कि वे अहंकार, ममता और भ्रमसे विषयांध हो रहते हैं ॥ ६७ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४ ॥

अतएव हे पार्थ ! वे जीव महत्तत्त्व इत्यादिरूपा जो मेरी माया उसके पार जाकर मेरे मूलरूप स्वरूपको कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? यही एक प्रश्न है ॥ ६८ ॥ जिस परब्रह्मरूपी पर्वतके टूटे हुए शिखरसे प्रथम संकल्परूपी जलका स्रोत उमड पडते ही, जिस मायानदीका महाभूतरूपी छोटासा बुल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बुला निकलता है, ॥ ६९ ॥ तब वह नदी सृष्टिरचनाकार्यके प्रवाहसे बहती हुई कालगतिके वेगसे बडे जोरके साथ कर्ममार्ग और मोक्षमार्ग इन दो ऊँचे तटोंपरसे उफनती हुई पार हो जाती है ॥ ७० ॥ फिर सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणरूपी मेघोंकी वर्षासे परिपूर्ण भर जाकर, मोहरूपी बाढके कारण यम ( मनोनिग्रह ) और नियम ( इंद्रियनिग्रह ) के नगरोंको वह नदी बहा देती है ॥ ७१ ॥ जिस नदीमें द्वेषरूपी भँवर जहाँ तहाँ भरे रहते हैं, मत्सररूपी मरोडों ( टेढेपन ) से वह टेढी हो रही है,और जिसमें प्रमादरूपी बडे बडे मत्स्य चमकते रहते हैं, ॥ ७२ ॥ जिस नदीमें प्रपंचके अनेक बाँक ऐसे हैं, जो एकमें, दूसरा निरंतर गुथा रहता हो । और कर्माकर्मकी बाढपर सुखदुःखरूपी कूडा-कचरा और जलाऊ लकडियें तरंगती रहती हैं, ॥ ७३ ॥ जिस नदीके विषय-विलासरूपी टापूपर कामकी लहरें फूटती रहती हैं और जीवरूपी फेनके समूह जहां तहां प्रसृत हो जाते हैं, ॥ ॥ ७४ ॥ जिस नदीमें अहंकारके मदभरे तमाशोंसे विद्यामद, धनमद और बलमदके उफान फूटते रहते हैं, जिससे विषय-वासनाकी लहरें झकोरती रहती दिखायी देती हैं ॥ ७५ ॥ जिस नदीमें उदय और अस्तकी बाढ आनेसे जन्म-मरणरूपी दह उत्पन्न होजाते हैं और उन दहोंके गढोंमें पंचभूतात्मक सष्टिके बुलबुले निरंतर उठते और फूटते रहते हैं ॥ ७६ ॥ जिस नदीमें मोह-भ्रमादि मत्स्य धैर्यके मांसको कुतरकुतरके काट खाकर निगल जाते हैं और फिर अज्ञानके झकोरोंमें घूमते रहते हैं ॥ ७७ ॥ जिस मायानदीमें भ्रमरूपी गंदे जलसे श्रद्धाकी कीचड बनती है और रजोगुणके तांडवनृत्यकी घोर आवाज स्वर्गतक पहुँच जाती है ॥ ७८ ॥ जिस मायानदीमें तमोगुणके जोरदार प्रवाह बहुत रहते हैं, किन्तु सत्त्वगुणका जो शान्त स्वरूप है, जिससे शांतिसे कार्य हो सके, वह उस नदीमें तैरनेके काममें ढीला होकर निकम्मा होजाता है । तात्पर्य यह कि इस प्रकारकी यह मायानदी, हे धनुर्धर ! अत्यंत दुष्ट और भयंकर कठिन है ॥ ७९ ॥ इसकी जन्म-मृत्युकी उफानमें सत्यलोकके किले गिर जाते हैं तथा ब्रह्माण्डरूपी गोल पत्थर भी उसके आघातसे गिडगिडाते हुए लोट पोट होजाते हैं ! ॥ ८० ॥ इस मायानदीके प्रचण्डजलप्रवाहके वेगकी दुर्धर बाढ अभीतक स्थिर ही नहीं होती, फिर इस मायानदीके दुराराध्य प्रवाहको कौन तैर जा सकता है ? ॥ ८१ ॥ हे पार्थ ! इसका एक आश्चर्य तो देखो कि इस मायानदीको तैरकर पार जानेमें जो जो उपाय किया जाता है, वह उपाय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



न होकर अपाय ही बनजाता है, वह कैसे ? उसका उत्तर सुनो ॥ ८२ ॥ इस नदीमें, कोई स्वतःके बुद्धिसामर्थ्यपर विश्वस्त हो अपने बाहुबलसे पार होनेकी भावनासे प्रवेश करते भये, किन्तु अल्पकालमें उनकी स्मृति ही नष्ट हुई। दूसरे ज्ञानके दहमें जा गिर रहे थे, कि अभिमानने उन्हें निगल डाला ॥ ८३ ॥ दूसरे कोई वेदत्रयीके तूँबोंकी सहायतासे, साथमें अहंकारके पत्थरोंका भी वेष्टन लगाकर प्रवेश कर रहे थे कि ऐसी स्थितिमें उन्मादरूपी मत्स्य उन्हें एकदम निगलही गया ! ॥ ८४ ॥ कोई तारुण्यकी सामर्थ्यके घमंडमें विषयलम्पट हो मदनके पीछे पडे रहते हैं, किन्तु, विषयरूपी मगर उन्हें चबाचबाकर अधमरे करके फेंक देते हैं ॥ ८५ ॥ फिर वार्धक्यरूपी तरंगोंके बुद्धिभ्रंशरूपी जालोंमें अटक कर, वे जहां तहां फँसे हुए रुके रहते हैं ॥ ८६ ॥ तदनंतर शोकरूपी पत्थरोंपर वे टकराते हैं, क्रोधके भँवरमें दबजाते हैं, इतनाही नहीं, किन्तु जहां जहां आश्रयकी इच्छासे माथा ऊपर उठाते हैं, वहां वहां आपत्तिरूपी गीध उनका चुंबन लेने दौडते हैं ! ॥ ८७ ॥ इसके पश्चात् उनकी ऐसी स्थिति होती है कि, दुःखरूपी कीचड़से माखे हुए वे मृत्युकी वालुकामयभूमिके गढेमें दबजाते हैं। हे अर्जुन ! विषय-लम्पट बने हुए पुरुष इस प्रकारकी अवस्थाको प्राप्त हो आखिरमें निकम्मेही होजाते हैं ! ॥ ८८ ॥ दूसरे एक प्रकारके पुरुष ऐसे हैं जो यज्ञविधानकी पिटारीको अपने पेटमें बाँधकर स्वर्गसुखकी कंदरामें जा ऐसे चिपकते रहते हैं, कि वहांसे उनका मार्गही बंद होजाता है ॥ ८९ ॥ दूसरे कोई ऐसे हैं, जिन्होंने मोक्षप्राप्तिकी आशासे कर्मरूपी बाहुओंका आश्रय ले लिया, किन्तु विधिनिषेधके भँवरमें वे स्वयं ही आ पडे ॥ ९० ॥ जहां वैराग्यकी नौकाका प्रवेश नहीं हो सकता, जहां विवेककी डोरी पहुँच नहीं सकती, जहां योगसाधनसे कुछ तैरा जाता है, किन्तु कहीं कचित् ही कोई वह कर सकता है ॥ ९१ ॥ इस प्रकारकी यह मायानदी जीव अपने सामर्थ्यसे तैर जावे तो उसे या ऐसे कहनेवालेको कौनसी उपमा दी जायगी ? ॥ ९२ ॥ यदि पथ्य न करनेवाले रोगीको भी आराम प्राप्त हो, दुर्जनोंकी बुद्धिको शान्त करनमे यदि उपाय मिलजाय, अथवा लोभी मनुष्य प्राप्त हुए सिद्धिका त्याग कर सके, ॥ ९३ ॥ यदि चोर भरी-सभामें प्रविष्ट हो सके, अथवा मछली बडिश ( गल ) को निगल सके, किंवा डरपोक पुरुष यदि डाकिनी आदिपर टूट पडसके अथवा हरिणका बच्चा यदि जालको तोड जाय, किंवा चींटी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥९४॥ मेरुपर्वतको उलांघ जाय तभी यह जीव मायानदीके पैलतीरको प्राप्त कर सकेगा ! ॥९५॥ अतएव हे अर्जुन ! जैसे स्त्रैण पुरुष अपनी स्त्रीको अपने वशमें नहीं रख सकता, उसी प्रकार जीवको यह मायानदी तैरजाना अशक्य हो जाता है ॥ ९६ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! जो एकनिष्ठ हो, अनन्यभावसे मेरा भजन करते हैं वे ही इस नदीके पारको पा सकते हैं अथवा उन्हें पारतक जानेकी आवश्यकता ही नहीं रहती, कारण उन्हें इस तीरमें ही उस मायानदीके जलका सूखा मैदान हो रहता है ! ॥ ९७ ॥ जिन्हें सद्गुरुरूपी श्रेष्ठ कर्णधार प्राप्त हुआ है, जिन्होंने अनुभव प्राप्त कर उसपर विश्वास रखा है, और आत्मबोधरूपी नौका जिन्हें प्राप्त हुई है, ॥९८॥ वे पुरुष अहंकारके बोझको फेंककर, संकल्प-विकल्पकी लहरें टालते हुए विषयासक्तिके जलप्रवाहको उल्लंघित करते हैं, ॥ ९९ ॥ जिससे उन्हें ऐक्य ( समत्व ) का तैरनेका रास्ता मिल जाता है, तब आत्मबोधरूपी साधनद्वारा नैराश्यके परतीरको वे अनायासही प्राप्त होसकते हैं ॥ १०० ॥ कारण उन्हें उस नदीमें तैरनेके लिये वैराग्यरूपी हाथ साधन होते हैं, उनकी सहायतासे उस नदीमें जोरके साथ हाथोंसे उस नदीका पानी काटते हुए 'अहं ब्रह्मास्मि' इस श्रद्धाकी सामर्थ्यपर तैरते हुए आखिर निवृत्तितटपर निश्चयपूर्वक वे अनायास ही प्राप्त हो सकते हैं ॥ १ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारसे जो मेरे भक्त मेरा भजन करते हैं वे ही इस दुर्धर मेरी मायाको तैर जाते हैं, परन्तु ऐसे भक्त कचित् विरला ही होते हैं ॥ २ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥
चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥

कारण, उनसरीखे भक्तोंके सिवाय जो दूसरे प्रकारके भक्त कहे जाते हैं, उनमें अहंकारका पिशाच जडा हुआ रहता है, जिससे उन्हें आत्मज्ञानका विस्मरण होजाता है ॥३॥ वेदोंका कहना है कि, जब अहंकारका संचार हो जाता है, तब नियम (इन्द्रियनिग्रह) का पर्दा ( मर्यादा ) नहीं रहता, भावी अधःपातके होनेमें लज्जा नहीं समझी जाती, इतना ही नहीं, किन्तु प्राणी अकार्यमें प्रवृत्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे पार्थ ! जिस कार्यके सिद्धयर्थ इस शरीरका आश्रय किया जाता है, उस कार्यको एकाएक छोडकर ॥ ५ ॥ ये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मनुष्य-प्राणी इन्द्रियरूपी गामके राजमार्गमें अहंकारका बकवाद करते करते नाना तरहके विकारोंका जमाव इकट्ठा करते हैं, ॥ ६ ॥ और जब दुःखशोकके डंडे पीठपर पडते हैं, तब उनकी स्मृतिका भ्रंश होजाता है अर्थात् उनका उन्हें स्मरण भी नहीं होता, कहनेका तात्पर्य यह कि, उन्हें मायाने ग्रसलिया है ॥ ७ ॥ इस लिये मायावश हुए प्राणी मुझे भूल जाते हैं। हे अर्जुन ! जिन्होंने मुझपर पूर्ण भरोसा रख, अपना कल्याण साध्य किया है, इस प्रकारके मेरे भक्तोंके चार प्रकार हैं:-१ आर्त, २ जिज्ञासु, ३ अर्थार्थी और ४ ज्ञानी ॥ ८ ॥ ९ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७ ॥

इन चारोंमें 'आर्त' दुःखनिवृत्त्यर्थ, 'जिज्ञासु' ज्ञानकी इच्छासे और 'अर्थार्थी' द्रव्यप्राप्तिकी इच्छासे मेरा भक्त होता है ॥ ११० ॥ परन्तु इन चारोंमें चौथा जो मेरा 'ज्ञानी' भक्त है, उसको तो किसी वासनाकी इच्छा नहीं रहती है, इसलिये 'ज्ञानी' को ही सचमुच मेरा भक्त समझो ॥११॥ कारण उस ज्ञानीके प्रकाशसे भेदभावरूपी अंधकारका नाश होकर वह ज्ञानी मद्रूप होता रहता है, और वह मेरी भक्तिमें तत्पर हो मेरा भक्त भी होता है ॥ १२ ॥ परन्तु साधारणतः सब सामान्योंकी दृष्टिमें स्वच्छ स्फटिकशिला (ऊपरसे बहनेवाले जलके कारण) क्षणिक पानीसी भासमान होजाती है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुषकी स्थिति समझो, परन्तु हे पार्थ ! यह कोई आश्चर्य है ऐसा तुम मत समझो ॥ १३ ॥ कारण, जिस प्रकार पवन शांत होकर आकाशमें स्थिर होजाता है, तब उसका आकाशसे भिन्नत्व दूर हो, 'पवनत्व' कहां रहता है ? अर्थात् वह आकाशमें ही समत्वको प्राप्त होता है, उसी प्रकार जब वह ज्ञानी मुझमें एकत्व (समत्व) को प्राप्त होता है, तब वह 'भक्त है' यह कहना ही नहीं बनता ॥ १४ ॥ यदि वायुको जबर्दस्ती हिलाया जाय तो वह गगनसे भिन्न प्रतीत हो सके, किन्तु उसका मूल स्वभाव तो गगनरूपही है ॥ ॥ १५ ॥ उसी प्रकार वह ज्ञानी जब शरीरद्वारा कोई कर्म करता रहता है, उस समय लोगोंको भले ही भक्त प्रतीत होजावे, किन्तु वह स्वतःके आत्मानुभवके गुणसे सहजहीमें मद्रूपताको प्राप्त हो चुका रहता है ॥ १६ ॥ जो अपने ज्ञानके प्रकाशसे स्वयं 'मैं आत्मा हूं' ऐसा समझता है, और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इसी कारण मैं भी उसपर उसके प्रेमसे संतुष्ट हो, उसे 'आत्मा' ही समझता हूं ॥ १७ ॥ देखो अर्जुन ! जो ज्ञानी जीवकी सीमाके बाहरी आत्मस्वरूपको सहजहीमें पहँचानकर व्यवहार करता रहता है, क्या वह भिन्न देहधारी होनेपर, परमात्मतत्त्वसे किसी प्रकार भिन्न हो सकेगा ? ॥ १८ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १८ ॥

हे पार्थ ! यद्यपि हरेक मनुष्य केवल अपने कार्यभागकी इच्छासे मेरा भजन करता हुआ मुझमें लिपटनेकी इच्छा करता है, किन्तु, मैं ही जिसका प्राणप्यारा और सर्वस्व ऐसा विषय बना होता हूं, ऐसा एक ज्ञानी ही भक्त होता है ॥ १९ ॥ ( श्रीकृष्ण भगवान्की उक्ति अतिशयोक्ति मत समझना ) कारण, व्यवहारमें देखा जाता है, कि दूधकी प्राप्तिके लिये सब लोग गौके पैरोंको बांधते हैं, तो क्या उसका बच्चा बिना पैर बाँधे दूधको नहीं पासकता ? ॥ १२० ॥ इसका यही कारण है कि वह बच्चा तन-मन-प्राणसे उस माताके सिवा किसीको जानता ही नहीं ! उसे देखकर वह हमेशः यही समझता है कि, सब कल्याण करनेवाली यही मेरी माता है ! ॥ २१ ॥ इसी प्रकार उसकी माता भी मनमें समझती है कि, यह मेरा छोटा अर्भक सिवाय मेरे बिलकुल अनाश्रित और अनाथ है, इसलिये वह गौ भी उसपर अत्यंत शुद्ध और एकांतिक प्रेम करती है, इस दृष्टान्तको देखनेपर श्रीकृष्णका जो ज्ञानीविषे मत है वह यथायोग्य है यही प्रतीत होगा ॥ २२ ॥ भगवान् फिर बोले—हे पार्थ ! और जो मेरे तीन प्रकारके भक्तोंका मैंने यहां वर्णन किया, वे भी मेरे प्यारे भक्त अपनी रीतिसे उत्तम ही हैं, और मुझे वे प्रिय भी हैं ॥२३॥ परन्तु मेरा ज्ञान होनेके बाद जो फिर वापिस जानेको भूलगये, जैसे नदी एकबार समुद्रको जा मिलनेपर उसका वापस होनेका टेढापन वह भूल जाती है ( समाप्त होजाता है ), ॥ २४ ॥ उसी प्रकार जिस मेरे भक्तके अन्तःकरणमें उत्पन्न भयी अनुभूतिगंगा मेरे स्वरूपसागरमें मिलजाती है, वह भक्त मैं ही हूँ, उसमें और मुझमें भेद नहीं । अब इसीपर विशेष विस्तार करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ २५ ॥ देखो,पार्थ! जो ज्ञानी है, वह मेरा शुद्ध चैतन्य है, प्रत्यक्ष आत्मा है, वास्तवमें यह बात बोलना भी उचित नहीं किन्तु तुम्हारे साथ बोलनेमें कभी कभी ऐसा होता है, कि किसी समय बोल भी जाता हूं ॥ २६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

देखो, अर्जुन ! वह ज्ञानी विषयरूपी सघन-वनके काम-क्रोधरूपी विकारोंकी आपत्तियोंसे बचकर सद्वासनारूपी पर्वतपर जा पहुँचा है ॥ २७ ॥ हे वीरश्रेष्ठ धनंजय ! फिर वह सत्संगतिको प्राप्त करता हुआ, कर्मसंन्यासके आडे-टेढे मार्गको छोड, केवल सत्कर्मयोगके सरल राजमार्गका ही अवलम्बन करता है ॥२८॥ और इसी मार्गसे सैकडों जन्मपर्यंत प्रवास करता रहता है, किन्तु चलते समय आशारूपी पादत्राण ( खडाऊं ) भी नहीं पहनता, फिर फलेच्छाकी वहां बात ही कहां ? ॥ २९ ॥ इस रीतिसे वह जन्म-जन्म ( हरेक जन्म ) शरीर धारणकी मायारात्रियोंमें एकला-निःसंग हो, वासनाका सर्वतोपरि त्याग करके कर्मयोगमार्गसे बडे वेगके साथ चलता रहता है, इतनेमें जब कर्मक्षय होता है, तब ज्ञानरूपी उषःकाल उसे प्राप्त होता है ॥ १३० ॥ और उसी समय गुरुकृपाका सूर्यप्रकाश दृग्गोचर हो, ज्ञानके कोमल किरण उसकी दृष्टिमें प्राप्त होते हैं और तब उसकी दृष्टि भेदभावरहित हो समताके ऐश्वर्यको प्राप्त होजाती है ॥ ३१ ॥ ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर वह जिस जिस ओर देखता है, उस ओर उसे केवल 'मैं' ही दिखाई देता हूँ, इतनाही नहीं, बरन् यदि वह निश्चेष्ट या कुछ न करके शान्त रहता है, तब उस अवस्थामें भी अन्तःकरणमें केवल मैं ही भासमान होता रहता हूं ॥ ३२ ॥ बहुत क्या ? मेरे सिवाय उसे कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देता । जिस प्रकार जलमें डूबे हुए घटमें अंतर्बाह्य सर्वत्र जलही जल हो रहता है, ॥ ३३ ॥ उसी प्रकार वह मुझमें एकताको प्राप्त होनेके कारण, उसे सर्वत्र अंतर्बाह्य मैं ही हूं और वह भी मेरेमें है, हे पार्थ ! वह अवस्था वाणीके बाहर होनेसे उसका वर्णन नहीं बन सकता ॥३४॥ अतएव अब मैं इतनाही कहता हूं कि, इस प्रकारका ज्ञान-संपत्तिका भांडार उसे प्राप्त होनेपर, वह उस ज्ञानद्रव्यसे व्यवहारको चलाता हुआ इस सारे संसारको अपना बना लेता है ॥३५॥ इतना ही नहीं, वह समझता है कि,यह सब सृष्टिगत चराचर ही वासुदेव है, ऐसा उसे पूर्ण अनुभव प्राप्त होनेसे उस स्वानुभवरससे उसका अन्तःकरण आपही आप परिपूर्ण भरजाता है, इसलिये वही श्रेष्ठ भक्त और सच्चा ज्ञानी है, यह निश्चित समझा जाता है ॥ ३६ ॥ उसके आत्मानुभवका भांडागार इतने बडे विस्तारवाला रहता है कि, जिसमें यह सब स्थावर-जंगमात्मक जगज्जात अनायास ही समा जाता है । हे मेरे प्यारे


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पार्थ ! क्यों; ऐसे महात्माकी योग्यता कैसी होगी ? कारण, ऐसा महात्मा बहुत दुर्लभ ही कोई विरला हो सकता है ॥ ३७ ॥ नहीं तो, और दूसरे भी मेरे भक्त इस चराचरमें बहुत हैं, कि जिनका भजन केवल भोगेच्छासे सकाम रहता है, और जो आशारूपी अंधेरेमें आखिर अंधे ही बन जाते हैं ! ॥ ३८ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

और फलकी उत्कट इच्छासे उनके अन्तःकरणमें कामका ( विषयवासनाका ) प्रवेश होतेही, उससे ज्ञानरूपी दीपक बुझ जाता है, ॥ ३९ ॥ इस कारण, वे सकाम पुरुष अंतर्बाह्य उस अंधेरेमें डूब जानेके कारण, यद्यपि मैं उनके पास ही रहता हूं तथापि मुझे वे भूल जाते हैं और फलेच्छासे सर्व जीवभावपूर्वक वे अन्य-देवताओंके भजनमें प्रवृत्त होते हैं ॥ १४० ॥ इस प्रकारके पुरुष तो मायाके दास पहलेही बने रहते हैं, फिर विषयवासनाकी प्रबल इच्छा उन्हें ऐसी दीन हीन स्थितिको पहुँचाती है, कि वे सकाम होकर अन्य देवताओंके भजनमेंही दृढभावना रखें—जो कि अपनी फलेच्छा को शीघ्र सफल कर देते हों ॥ ४१ ॥ फिर वे लोग अपनी बुद्धिसे ही उस भक्तिमें नियम-निर्बंध बना रखते हैं, पूजाद्रव्योंमें कितनी सामग्री इकट्ठा करते हैं और शास्त्रोक्त विधिसे बडे प्रेमके साथ उन देवताओंके अर्थ मनमाना द्रव्यार्पण भी करते हैं ! ॥ ४२ ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥

परन्तु, जो जो भक्त जिस जिस देवताके भजनकी इच्छा करके भजनको करता है, उसकी इच्छापूर्ति भी मैं ही कर देता हूं ॥ ४३ ॥ परन्तु, उसकी बुद्धिमें यह निश्चय नहीं रहता कि, उन सब देवताओंमें भी मैं ही हूं, इस कारण जो भिन्न देवता हैं, वे सचमुच भिन्न ही हैं और उनके अधिकार भी वैसे भिन्न ही हैं, इसप्रकारका भेदभाव उसके अंतःकरणमें बना रहता है ॥ ४४ ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान् ॥ २२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इस प्रकारकी श्रद्धासे इष्टदेवताका यथाविधि भक्तिपूर्वक आराधन करता हुआ अपनी कार्यसिद्धितक उसे अखंडरूपसे चलाता है ॥ ४५ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारसे चलनेवाला भक्त जैसी भावना करता है, वैसा उसको मनोवांछित फल प्राप्त होजाता है, किन्तु वह फलप्राप्ति भी मेरेसेही प्राप्त होजाती है ॥ ४६ ॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३ ॥

परन्तु, वे भक्त मुझको नहीं पहँचान सकते, कारण उनकी अल्पबुद्धिमें संकल्प-विचारोंसे बाहर कोई ज्ञान ही नहीं रहता, इस कारण, यद्यपि उनकी इच्छानुसार कर्मफलकी प्राप्ति उन्हें हो सकती है, तथापि उसका अन्त अवश्य होगा, कारण वह शाश्वत नहीं रह सकता ॥ ४७ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु इस प्रकारकी भक्ति फिर उसे संसारमें प्रवृत्तकरनेमें ही साधन बनती है, कारण जिसमें आत्मानुभवका ज्ञान न होनेसे क्षणिक स्वप्नसुखसरीखे ये फल-भोग क्षणभंगुर ही होजाते हैं ॥ ४८ ॥ अस्तु, यदि इसपर भी विचार किया जाय, तो भी यही सिद्ध होगा, कि जिस देवताका वह भक्तिपूर्वक भजन-पूजन करता है, उसी देवताको प्राप्त होवेगा ॥ ४९ ॥ किन्तु जो दूसरे तन-मन-प्राणसे मेरे मार्गका अनुसरण कर मेरा ही भजन करते हैं, वे देहपात होनेपर मद्रूपताको ही प्राप्त होते हैं ॥ १५० ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

परन्तु हे अर्जुन ! सर्वसाधारण प्राणी इस प्रकारके सीधे मार्गको छोड अपना ही अहित करते हैं । जैसे कोई हथेलीमें चुल्लूभर पानी रखकर उसमें तैरनेका प्रयत्न करे ( वास्तवमें तो हाथसे पानीको दूर करनेपर ही तैरा जाता है ) ॥ ५१ ॥ अमृतसागरमें डूबनेकी इच्छासे कूदनेपर, फिर मुँह बंद करनेका क्या काम ? क्या कीचडके पल्वोदकका स्मरण होगया? ॥५२॥ अमृतमें प्रवेश कर जानबूझकर मृत्युकी इच्छा क्यों की जाय ? उसकी अपेक्षा अमृतमें प्रवेश करनेपर उसके सरीखा अमृत बनकर उसीमें क्यों न रहा जाये ? ॥ ५३ ॥ अतएव, हे पार्थ ! मैं कहताहूं कि इस फलेच्छाके पींजरेको छोडकर अलग हो, अनुभवरूपी-पंखोंसे ज्ञानाकाशमें उड्डान कर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वहांके चिदाकाशका स्वामी बन जाना कितना सुंदर और सुलभ है ? ॥ ५४ ॥ उस ऊँचे स्थानपर उड्डानगतिसे जा पहुँचनेपर ऐसे सुखका आनंद प्राप्त होता है, कि वहांके खुले विस्तारमें आनंदके साथ चाहे जहां घूमनेमें कोइ प्रतिबंध नहीं रहता ॥ ५५ ॥ उस नापी न जानेवाली वस्तुको नापनेके प्रयत्नकी क्या आवश्यकता है ? अव्यक्त-निराकार, मुझको-व्यक्त साकार, किसलिये माना जाता है ? मेरा स्वरूप सब प्राणियोंमें सिद्ध रहनेपर उसकी प्राप्तिके लिये वृथा खटाटोप करके अनेक साधनोंको इकट्ठा करके मरणान्त श्रम क्यों किये जाते हैं ? ॥ ५६ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! विचार करनेपर इस प्रकारके प्रश्नोंको वे जीव विशेषकरके जनना नहीं चाहते, यही प्रतीत होगा ॥ ५७ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥

हे पार्थ ! ये जीवमात्र बीचमें प्रकृति-मायाका परदा होनेसे अन्धे बन-गये हैं, इसलिये प्रकाशरूपी दिनके सामर्थ्यसे मुझे नहीं देख सकते ॥ ५८ ॥ अन्यथा, ऐसी कोई भी वस्तु है ? कि जिसमें मैं नहीं हूँ ? ऐसा कौनसा जल है, कि जिसमें रस न रहता हो ? ॥ ५९ ॥ वायु किसे स्पर्श नहीं कर सकता ? अथवा आकाश किस स्थानमें नहीं रहसकता है ? बस, अर्जुन ! इस संपूर्ण ब्रह्माण्डमें मैं अकेला ही भरा हुआ हूं, यह तुम निश्चित समझो ॥ १६० ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

हे पार्थ ! जो प्राणी पूर्वकालमें हो चुके हैं, वे मद्रूपही हो रहे हैं, और वर्तमानमें जो प्राणीमात्र हैं, वे सब भी मैं ही हूँ ॥ ६१ ॥ और भविष्यमें जो भूत-प्राणी उत्पन्न होनेवाले हैं, वे भी मुझसे भिन्न नहीं रहेंगे, यह भी सब केवल मायाकी भाषा है, वास्तवमें देखा जाय तो न कुछ होता है और न कुछ जाता है ॥ ६२ ॥ रस्सी-पर भासमान होनेवाला सर्प जिस प्रकार किसीसे निश्चित-रूपसे ऐसा नहीं कहा जासकता कि, वह काला है, कौडिया है या लाल है। उसी प्रकार भूतमात्र मिथ्या होनेके कारण उनकी भी निश्चितता नहीं हो सकती ॥६३॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे पाण्डव ! इस प्रकार मैं सर्व प्राणी-मात्रमें अखंड और ओतप्रोत भरा हुआ सर्वव्यापी होनेपर भी ये जीव जिस संसारमें सर्वोपरि गुथे पडे हैं, उसका कारण अलग ही है ॥ ६४ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥ २७ ॥

ह परंतप, पार्थ ! अब वह कारण मैं थोडेहीमें वर्णन करता हूं, तुम सुनो । जिस समय 'अहंकार' और 'काया' का प्रेम मिलजाता है, ॥ ६५ ॥ तब उनसे 'इच्छा' नामकी कन्याका जन्म होता है । जब वह कन्या कामरूपी तारुण्यको प्राप्त होती है,तब वह 'द्वेष' के साथ अपना शरीरसंबंध जोड देती है ॥ ६६ ॥ फिर इन इच्छा-द्वेष-दंपत्यसे 'द्वंद्वमोह' ( सुख-दुःख, हर्ष-शोक, लाभालाभ इत्यादिसे होनेवाला अज्ञानभाव ) जन्म धारण करता है, इस द्वन्द्वमोहको उसके दादा 'अहंकार' ने पालन-पोषण करके बढा दिया ॥ ६७ ॥ फिर वह लडका सदैवकाल मनोधैर्यका शत्रु बन जाता है, जो कि इंद्रियनिग्रहके कभी वश न हो, ऐसा बलवान् बनता है । फिर वह आशारूपी दूधसे पाला जाकर बडा तुन्दिल होता है, ॥ ६८ ॥ फिर असंतोषरूपी मद्यको पी पीकर ऐसा तर्र होता है, कि सिवाय विषयोंसे उसे कुछ सूझता ही नहीं, जिससे हमेशः विषयकोठडीमें ही विकृतिके साथ रहता है ॥ ६९ ॥ ऐसी मनमानी स्थिति प्राप्त होनेपर वह शुद्ध भावनारूपी मार्गोंमें संकल्प-विकल्परूपी कंटकोंसे बिछानेके कार्यको शुरू करके अनुचित कर्मके आढे टेढे मार्गोंको खुले करता है ॥ १७० ॥ इस प्रकारकी द्वन्द्वमोहकी करतूतोंसे सब संसार भ्रममें पडकर कार्याकार्यके विचारको भूल जाता है, जिससे संसाररूपी अरण्यमें भूतमात्र गिरते हुए महत् दुःखके बोझमें दब रहे हैं ॥ ७१ ॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

इन झूठे या निष्फल संकल्प-विकल्पोंके तीक्ष्ण कण्टकोंको देख, जो लोग 'द्वन्द्वमोह' मतिभ्रमको पास भी आने नहीं देते, ॥ ७२ ॥ जो सरल एकनिष्ठतापूर्वक पद-पदमें इन संकल्प-विकल्पोंके कण्टकोंकी नोकें मोडते तोडते हुए महापातकरूपी अरण्यमेंसे चलकर पार होजाते हैं, ॥७३॥ वे पुण्यरूपी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सामर्थ्यसे दौडते हुए मेरे पास आजाते हैं, उनका क्या वर्णन किया जाय ? वे कामक्रोधादि बटमारोंसे बचकर पार होजाते हैं ॥ ७४ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! इस प्रकारकी आस्थापूर्वक भावना रखकर जो प्रयत्न करते हैं, उनकी जन्म-मरणरूपी यातायात आपही आप बंद होजाती है,यह फल उन्हें प्राप्त होजाता है, ॥ ७५ ॥ उनका वह प्रयत्न किसी समय उन्हें सिद्धि प्राप्त करा देता है, और उससे उन्हें ऐसा संपूर्ण परब्रह्मरूपी पका फल प्राप्त होजाता है जो चारों तरफसे रसभरा टपकता रहता है ॥ ७६ ॥ उस समय उनके लिये सब जगत् कृतकृत्यतासे धन्योद्गारका उच्चारण करता है, उनके आत्मज्ञानका कौतुक पूर्णताको प्राप्त होता है, कर्मकी आवश्यकता समाप्त होजाती है और मन सुखसे शान्तिको प्राप्त होजाता है ॥ ७७ ॥ हे पार्थ ! जिन लोगोंने अपना व्यवहार चलानेमें मुझको हीं पूँजी समझ रखा है, उन्हें इस प्रकारके आत्मबोधका लाभ प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ उनको साम्यावस्था प्राप्त होती है, और साथमें ब्रह्मैक्यरूपी खेतीका भी व्यापार बढता रहता है, जिससे उनकी वृत्तिमें भेदभावका दारिद्र्य कहीं भी दिखायी नहीं देता ॥७९॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जिन लोगोंने इस मायामय जडसृष्टिकोही मेरा स्वरूप पहँचानकर अनुभवरूपी हाथोंसे मुझ'साधिभूत'को पकडकर संपूर्ण देवताओंका अधिष्ठानरूप जो मेरा 'अधिदैव' स्वरूप है उसे प्राप्त किया है, ॥ १८० ॥ तथा जिन्होंने पूर्ण ज्ञानसामर्थ्यसे मेरा ' अधियज्ञ ' अर्थात् परब्रह्म स्वरूप अपने दृष्टिगोचर किया है, उन्हें इस पांचभौतिक देहक पात होनेपर, यत्किंचित् भी दुःख नहीं होता ॥ ८१ ॥ अन्यथा, दूसरे लोगोंकी आयुरूपी रस्सीके टूटनेपर जो स्थिति होती है, उसका सहन करना उसे तो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अशक्य ही होता है, किन्तु पास बैठनेवाले जीवित मनुष्य भी अपनेपर महाप्रलयका पहाड गिरा हो, ऐसा समझते हैं ॥ ८२ ॥ उस स्थितिको वे ही जानें, किन्तु जो एकनिष्ठ हो मेरे स्वरूपमें समाविष्ट होगये हैं, वे उस अंतकालिकस्थितिमें भी मेरा स्मरण नहीं भूलते ॥ ८३ ॥ साधारण रीतिसे यही समझा जा सकता है कि, इस प्रकारकी पूर्णावस्थाको जो पहुँच गये हों, वे ही सच्चे युक्तचित्त और वे ही सत्यसत्य योगी हैं ॥ ८४ ॥ श्रीकृष्ण परमात्मा इस प्रकार शब्दरूपी शीशीमेंसे वाणीरूप रसको गिराते रहे थे, परन्तु अर्जुन अवधानतारूपी अपनी हस्तांजलिको जैसी चाहिये वैसी उत्सुकतासे आगे कर उस रसको ग्रहण नहीं करता था, कारण उस समय अर्जुनका ध्यान पहले श्लोकपर आलस्यके साथ सो रहा मालूम होता था ॥ ८५ ॥ परन्तु विपुल अर्थरससे परिपूर्ण तथा सद्भावनारूपी परमसुखगंधसे सौगंधित, परब्रह्मके प्रतिपादनमें चातुर्योत्पादक वचनफल, जिस समय कृपाप्रसादके मंदवायुकी झकोरसे श्रीकृष्णरूपी वृक्षसे निकलकर अर्जुनके कर्णरूपी पल्लेमें अकस्मात् जा पडे, ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ तब, वे फल उसे ऐसे ज्ञात हुए, मानो महासिद्धान्तसेही वे बने हुए हों, अथवा ब्रह्मरसके सागरमेंसे डुबोकरही लाये हों, या परमानंदमें घोलघोलकर ही लाये हों ! ॥ ८८ ॥ उनकी मोहकतासे मोहित अर्जुनके अनिमिष ज्ञान-नेत्र, उस विस्मयामृतके घूँटपर घूँट लेने लगे ॥ ८९ ॥ फिर उस अलौकिक सुखास्वादसे अर्जुन स्वर्गके सुखको तुच्छताकी दृष्टिसे देखने लगा और उसके अन्तःकरणमें जो आनंद हो रहा था, वह समा नहीं सकता था ॥९०॥ इस बाह्य दर्शनके सौंदर्यको देखकर जब अर्जुनका सुख हृदयसे बाहर होने लगा, तब उसे उन वचनफलोंके रसास्वादकी अत्यंत उत्कट इच्छा हुई ॥ ९१ ॥ और वह अर्जुन उस समय तर्कबुद्धिके हाथमें वे वचन-फल लेकर अनुभवरूपी मुखमें एकके पीछे एक भरता जा रहा था ॥ ९२ ॥ परन्तु वे फल विचाररूपी जिह्वाको नहीं रुचते थे, और हेतुरूपी दांतोंसे फूटते भी नहीं थे, तब उस सुभद्रानाथ पार्थने उनका मुँहसे लगानाही छोड दिया ॥ ९३ ॥ फिर आश्चर्यान्वित हो, अर्जुन मनमें कहने लगा, " ओहो ! ये तो जलमें दीखनेवाले नक्षत्रगण हैं ! इनके बाहरी अक्षरोंके ठाठको देखकर मैं कैसा फँसा ! ॥ ९४ ॥ ये अक्षर भी नहीं, ये तो केवल आकाशकी घडी ( परत ) या लहरें हैं, इस विषयमें मेरी मति कितना भी ऊँचा उड्डाण करे, तो क्या वह वहांतक पहुच सकती है ? ॥९५॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



परन्तु यदि इनका पूरा पता न पाया जाय तो इन वचनोंका अर्थ समझना बनही नहीं सकता " इस प्रकारकी विवंचनामें पडा हुआ अर्जुन फिर भगवान् यादवेंद्र श्रीकृष्णकी तरफ अपनी दृष्टिको फेरता भया ॥ ९६ ॥ और वह वीरश्रेष्ठ अर्जुन विनीत हो बोलने लगा–" हे भगवन् ! ये इकट्ठे स्थित सात पद ( सात शब्द ) किसीसे भी पूर्वमें स्वाद लिये नहीं हैं, इसलिये अपूर्व हैं ॥ ९७ ॥ यदि यह मेरा मत ठीक न हो, तो जहां बडे बडे सिद्धान्तोंके निर्णय भी श्रवणद्वारा लक्ष देनेपर क्या निर्णीत नहीं होचुके हैं ? ॥९८॥ परन्तु हे देव ! संप्राते जो यह मेरे आगे समस्या है, वह बडी विलक्षण ज्ञात हो रही है । कारण इन अक्षरोंका चमत्कार देखनेपर विस्मय भी विस्मयान्वित हो जाता है ! ॥ ९९ ॥ कर्णेन्द्रियकी खिडकीके मागसे जबतक आपके वचन-किरण अन्तःकरणमें नहीं पहुँचे उतनेहीमें चमककर मैं जागृतसा हुआ, और मेरा लक्ष हिलगया ! ॥२००॥ इसलिये हे भगवन् ! इस आश्चर्यकारक बातके अर्थको जाननेकी मेरी अत्युत्कट इच्छा है, वह इतनी कि बातके करनेमें जो कालक्षेप होगा वह भी मुझे कठिन ही मालूम होगा । इसवास्ते आप शीघ्रतासे उसका विवेचन करिये " ॥ १ ॥ इस रीतिसे सिंहावलोकन-न्यायसे पीछेकी बातोंका स्मरण दिलाते हुए, आगेकी बातपर निश्चित हेतु रखकर बीचहीमें अपना घोड़ा दौडाना॥२॥अर्जुनको कैसा साध्य हो चुका है,इस बातका उसके प्रश्नसे ही प्रमाण पाया जाता है।साथमें प्रश्न करते समय शिष्टाचारकी मर्यादाका भी उसने उल्लंघन नहीं किया, यों तो वह अपना सखा समझकर आनंदके बहारमें श्रीकृष्णके गलेमें जा लपट भी सकता!॥३॥ देखिये, जब गुरुमहाराजको प्रश्न करना हो, तो इस मार्गका ही अवलम्बन करना योग्य होता है, यह बात जैसी अर्जुन जानता था वैसी कोई विरला ही जानता होगा ॥ ४ ॥ अब अर्जुनके प्रश्नपर श्रीकृष्णने जो यथोचित उत्तर दिया है, उस द्वन्द्वको संजय बडे प्रेमके साथ कैसे कहेगा, ॥ ५ ॥ उस तरफ श्रोतागण कौतुकके साथ लक्ष देनेकी कृपा करें, यह सब प्राकृत भाषामें ही निवेदित किया जायगा । कहनेका हेतु यही है कि, श्रवणेंद्रियद्वारा कानोंतक पहुँचनेके पहले ही दृष्टि वहांतक जा दौड पडे ॥ ६ ॥ बुद्धिरूपी जिह्वाद्वारा अक्षरोंके गर्भित रसका स्वाद लेनेके पूर्वहीमें, अक्षरोंके आकृतिसौंदर्यसे इन्द्रियें उत्तेजित होजाती हैं ! ॥ ७ ॥ यह देखिये कि, मालतीकी कलियोंको घ्राणेंद्रिय उनके सुवाससे तो पहँचानता ही है, परन्तु नेत्र उनकी ऊपरी शोभाको देख क्या पहले ही आनंदित नहीं होजाते हैं ?॥८॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उसी प्रकार इस प्राकृतभाषाके सौंदर्यसे इंद्रियोंको सामर्थ्य और आनंद प्राप्त होकर वे धीरेसे सिद्धान्तोंके स्थानोंपर सीधे और सरलताके साथ जा पहुँचते हैं ॥ ९ ॥ इस प्रकारके ये अनिर्वचनीय वचन जो शब्दोंसे वर्णनके बाहर हैं, मैं भाषासौंदर्यद्वारा उन्हींको स्पष्ट करना चाहता हूँ, इसलिये आप श्रोतागण सावधानताके साथ श्रवण कीजिये । इसप्रकार श्रीनिवृत्तिनाथ-दास, मैं ज्ञानदेव प्रार्थना करता हूँ ॥ २१० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः भाषानुवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## अष्टमोऽध्यायः ८.

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

फिर अर्जुनने कहा—" हे भगवन् ! अब मैं सावधान हूं, मैंने जो पूछा है, उसे कहिये ॥ १ ॥ आप मुझे प्रथम यह समझाइये कि, ब्रह्म क्या है ? कर्म किसे कहना तथा अध्यात्म क्या होता है ? ॥ २ ॥ उसी प्रकार अधिभूत और अधिदैवत किसे कहते हैं, ये बातें जिस तरह मैं समझसकूं उस तरह सरलतासे आप मुझे समझा दीजिये ॥ ३ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

हे ज्ञानमूर्ति भगवन् ! आप जिसे अधियज्ञ कहते हैं, अनुमानसे मुझे कुछ नहीं ज्ञात होता कि, इस देहमें वह कैसा और कहां है ॥ ४ ॥ उसी प्रकार हे देव ! देहावसान-समयमें नियुक्तान्तःकरणसे तुम जाने जाते हो, यह कैसा होता है, वह भी मुझे सुनाइये " ॥ ५ ॥ देखो, जैसे कोई भाग्यशाली पुरुष यदि चिन्तामणिरत्नोंके प्रासादमें सो गया हो, और वहां नींदमें कोई असंबद्ध बातको बडबडाता हो, तो उसका वह बडबडाना भी व्यर्थ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं हो जाता ॥ ६ ॥ तद्वत्, अर्जुनके मुखसे उक्त वचनके निकलते ही, भगवान् बोले—हे पार्थ ! तुमने जो पृच्छा की है, उसीको मैं समझाता हूं, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ७ ॥ अर्जुनको अर्जुन कहनेकी अपेक्षा कामधेनुका वत्स कहा जाय तो भी योग्य हो सकता है, कारण उसपर भगवत्कृपारूपी कल्पवृक्षके मंडपकी सदा शीतल छाया रहती थी, तब उसके सामने यदि मनोरथसिद्धि प्रेमके साथ स्वयं आती रहे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ८ ॥ देखिये, भगवान् श्रीकृष्णने क्रोधावेशमें आकर जिसे मारा है, वह भी यदि ब्रह्मसाक्षात्कारको पहुँच जाता है, तब जिसे बडे प्रेमके साथ ब्रह्मोपदेश किया जाता है, वह ब्रह्मसाक्षात्कारको प्राप्त हो; तो इसमें कहना ही क्या है ? ॥ ९ ॥ जब मनुष्य स्वयं कृष्णरूप होजाता है या हम कृष्णरूप हों, तब अन्तःकरण कृष्ण ही बनता है, तब ऐसी स्थितिमें प्राप्त होनेपर हमारे संकल्पके आँगनमें सिद्धियें स्वयं ही आजाती हैं ॥ १० ॥ परन्तु इसप्रकारका निस्सीम प्रेम केवल अर्जुनमें ही रहता था, इसीलिये उसके मनोरथ सदैव सफलतासे भरे रहते थे ॥ ११ ॥ अतएव ज्ञानके भी ज्ञान भगवान् श्रीकृष्णने 'अब अर्जुन ऐसा प्रश्न करेगा' इस प्रकारके अर्जुनके हृद्गतको जान, उसके प्रश्नका उत्तर पहले ही तयार कर रखा था ! ॥ १२ ॥ बालककी दृष्टि माताके स्तनपर जाते ही माता समझ जाती है, कि अब इसे भूँख लगी है, वास्तवमें देखा जाय तो वह बालक शब्दोंसे थोडे ही कहता है कि, 'मा ! मुझे स्तनपान कराओ' और उसके कहनेपर ही माता उसे ले लेती है ? ॥ १३ ॥ उसीप्रकार कृपासागर गुरुके विषयमें इतना प्रेम रहे, तो वह भी कोई आश्चर्य नहीं, अब भगवान्ने अर्जुनसे जो कहा उसे सुनिये ॥ १४ ॥

**श्रीभगवानुवाच ।**

**अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।**
**भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥**

भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन ! इस सच्छिद्र शरीरमें जो कोई वस्तु भरी हुई है, जो किसी समय भी टपकती नहीं, ॥ १५ ॥ यों तो वह ऐसी सूक्ष्म है कि, जिसे शून्य भी नहीं कहा जा सकता, उसपर भी वह आकाशके पल्लवसे छानी गई है, ॥ १६ ॥ किन्तु वह ऐसी विरलतर और पतली होनेपर भी, इस प्रपंचरूपथैलीमेंसे हिलोरनेपर भी टपकती नहीं, उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वस्तुको 'परब्रह्म' कहते हैं ॥ १७ ॥ और यदि उसे आकार प्राप्त होजाय तथापि जो जन्मके विकारोंको जानती नहीं अर्थात् जिसे जन्मधर्म लगते नहीं, तथा आकारके लोप होनेपर जिसका कभी लोप ( नाश ) नहीं होता ॥ १८ ॥ इस प्रकारका, अपनी स्वयंसिद्ध अवस्थामें निरंतर स्थित रहनेवाला जो ब्रह्मतत्त्व, हे वीरश्रेष्ठ पार्थ ! उसे 'अध्यात्म' कहा जाता है ॥ १९ ॥ फिर इस स्वच्छ आकाशमें न जाने किसी समय कहांस रंगबिरंगे अभ्रपटल प्रकट होते हैं ? किन्तु उद्भूत होते हैं अवश्य, ॥२०॥ उसी प्रकार उस निराकार नित्य शुद्ध ब्रह्मके अधिष्ठानपर प्रकृति, अहंकार इत्यादि भिन्न भिन्न भूत पैदा हो, ब्रह्माण्ड रचनाका आरंभ हो जाता है ॥ २१ ॥ इस निर्विकल्प-ब्रह्मकी ही विस्तीर्ण-भूमिपर 'अहं बहु स्याम्' प्रथम इस संकल्पका बीज अंकुरित होता है, और बडी शीघ्रतासे उनमें ब्रह्माण्डरूपी अनेक आकारके गोलकोंके फलोंकी बहार आजाती है, जिससे उसके भारसे वह झुका रहता है ॥ २२ ॥ विचारके साथ उन हरेक गोलकको देखा जाय, तो वह प्रत्येक मूलबीजोंसे यानी ब्रह्मतत्त्वसे ही भरा रहता है, परन्तु बीचमें जो जीवोंकी उत्पत्ति और नाशकी उथल-पुथल होती है, उसकी तो गिनती ही नहीं की जा सकती ॥ २३ ॥ फिर वे ब्रह्माण्डके भिन्न भिन्न अंश भी 'अहं बहु स्याम्' इस आदिसंकल्पका बडी शीघ्रताके साथ जप करते हैं, जिससे नानाप्रकारकी यह अमर्याद सृष्टि वृद्धिंगत होजाती है ॥ २४ ॥ परन्तु इन सबमें एकमेवाद्वितीय परब्रह्म ही ओतप्रोत भरा रहता है, किन्तु उसपर जो अनेकत्व, भेदभाव आदि माने जाते हैं, वे केवल ऊपरकी बाढ ही समझो ॥ २५ ॥ उसी प्रकार इस चराचर सृष्टिमें सम-विषमभाव कैसे प्रादुर्भूत हुए हों, नहीं जाना जाता, अथवा इस स्थावर जंगमात्मक विश्वकी रचनाका कारण यदि मनके संतोषार्थ माना जाय तो उसमें भी उत्पन्न करनेवाली योनियोंके भी लक्षावधि प्रकार दिखाई देते हैं ॥ २६ ॥ योंही, विचार करनेपर ज्ञात होता है कि, जीवभावके इन अंकुरोंको किसी-प्रकारकी संख्या या भेदभावकी मर्यादा ही नहीं है, किन्तु इनके मूलका यदि पता लगाना चाहो, तो यही निश्चित होगा कि, यह सब उस अव्यक्त शून्यब्रह्मसे ही प्रकट है ॥ २७ ॥ अर्थात् इसका मूलकर्ता कौन हो यह बात सिद्धही नहीं होती, तथा इस सृष्टिकी उत्पत्तिका कुछ कारण भी नहीं संभवता, परन्तु बिना कर्ताके बीचोंबीचही यह सृष्टि-कार्य आपही आप जोरके साथ वृद्धिंगत होता रहता है ! ॥ २८ ॥ इसप्रकार कर्ताके बिना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निराकार ब्रह्ममें इन्द्रियगम्य आकारका जो सिक्का मारा जाता है, उसीका नाम 'कर्म' है, ऐसा तुम समझो ॥ २९ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर ॥ ४ ॥

हे पार्थ ! अब जिसे 'अधिभूत' कहा जाता है उसका भी, मैं संक्षपसे वर्णन करता हूं । देखो, जिस प्रकार अभ्र उत्पन्न होता है और नाशको प्राप्त होता है, ॥ ३० ॥ उसी प्रकार जिसका अस्तित्व मिथ्या है और नष्टत्व सत्य है, जो पञ्चमहाभूतोंके अंशोंसे परस्पर मिश्रित हो, रूपत्वको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ जो भूतोंका आश्रय ले उन्हींमें संमिश्र हुआ दिखाई देता है, परन्तु उन भूतसंयोगके नष्ट होनेपर इसका जो नामरूपादि-विशिष्टत्व है, उसका नाश हो जाता है, ॥ ३२ ॥ उसे 'अधिभूत' कहते हैं । 'अधिदैवत' का अर्थ है पुरुष । यह पुरुष, प्रकृति-मायासे जो जो उत्पन्न हो जाता है, उस सबका उपभोग लेता रहता है ॥३३॥ यह पुरुष चैतन्य-बुद्धिका द्रष्टा होता है, जिस कारण सब इन्द्रियदेशपर इसका अधिकार रहता है । और देहके अस्तमानसमयमें संकल्प-विकल्परूपी पक्षी जिसका आश्रय लेते हैं, उनके लिये आश्रयरूपी वृक्ष यही है, ॥ ३४ ॥ जो आरंभमें परमात्मा ही है, परन्तु परमात्मासे थोडा भिन्न दिखाई देता है, कारण इसे अहंकाररूपी निद्राका नशा आजानेसे सोता रहता है, जिससे माया-प्रकृतिके स्वप्नकी क्रियामें हर्ष शोक ( सुख-दुःख ) का अनुभव प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥ जिसे स्वभावतः 'जीव' संज्ञा प्राप्त होजाती है, उसीको तुम इस पञ्चभूतात्मक शरीरपिंडका 'अधिदैवत' जानो ॥ ३६ ॥ हे पाण्डव ! इस शरीरप्रांतकी शरीरस्थबुद्धिका जो लय करता है उसे तुम 'अधियज्ञ' समझो और वह अधियज्ञ मैं ही हूँ ॥३७॥ दूसरे अधिदैव तथा अधिभूत हैं वे भी मैं ही हूं, यह बात यद्यपि सत्य है, तथापि शुद्ध सोना अशुद्ध सुवर्णके साथ मिला देनेसे क्या वह भी कम दर्जाको नहीं प्राप्त होता है ? ॥ ३८ ॥ परन्तु यद्यपि वह कम मोलका होजाता है तथापि उसका मूल शुद्धस्वरूप नष्ट नहीं होता अथवा उस अशुद्ध सुवर्णका वह अंश नहीं होता, परन्तु जबतक वह उस अशुद्धके साथ मिश्रित रहता है, तबतक वह भी हलके मोलका ही कहा जा सकता है ॥३९॥ उसी प्रकार अधिभूत आदि जबतक इस प्रकृतिमायाके अंचलसे ढके हुए रहते हैं, तबतक वे मूलब्रह्मसे भिन्न ही गिने जायँगे ॥४०॥ परन्तु अविद्यामायाका पर्दा दूर हटाया गया, भेदभाव-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


बुद्धिकी ग्रंथि टूट गयी, ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर अधिभूत-प्रभृति सर्व दृश्य लुप्त हो, परमात्मामें समत्वको प्राप्त हो, एकरूप होजानेपर, क्या कोई कह सकता है कि व परमात्मासे भिन्न थे ? या यथार्थमें भी अलग थे ? ॥ ४१ ॥ देखो गुथे हुए बालोंकी गुँडेलीपर स्वच्छ स्फटिककी शिला रखदेनेसे नेत्रोंको उसमें दरारसी दिखाई देती है, ॥ ४२ ॥ परन्तु उस गुंडेलीको यदि निकाल दिया जाय, तो उस शिलामें जो फूटा हुआ दृश्य प्रतीत हो रहा था, कौन जाने वह कहां गया हो ? क्या उस फटी हुई शिलाको किसी जोडनेवाली चीजसे फिर जोड दी जाती है ? ॥४३॥ नहीं, नहीं, वह तो पहलेसे अभंग ही है, किन्तु बालोंकी गुंडेलीका जो संसर्ग हुआ था, वही उसके खंडितसी देखनेका कारण था, अतएव बालोंकी गुंडेलीरूप उपाधिको हटाते ही वह अखंड निर्विकार जैसीकी तैसी ही होजाती है ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार अधिभूत प्रभृतियोंका अहंभाव नष्ट होनेपर वे परमात्मामें मिले हुए पहलेसे ही एकत्वको प्राप्त हुए हैं ही । और इस प्रकारका एकत्व जहां निरन्तर यथार्थ रहता है वहां ' अधियज्ञ' मैं हूं ॥ ४५ ॥ अजी ! हमने जो पूर्वमें तुम्हें कहा था कि, ' कर्मसे ही सब यज्ञोंकी उत्पत्ति होती है' ( चौथा अध्याय-'कर्मजान् विद्धि तान् सर्वान् ' इत्यादि ) वह जिस लक्ष्यको ध्यानमें रखकर कह दिया था, ॥ ४६ ॥ वही सब भूतमात्रोंकी विश्रांतिका निष्कर्मरूपी ब्रह्मसुखका स्थान है । हे पार्थ ! आज हम उसीको स्पष्ट करके तुम्हें समझा रहे हैं ॥ ४७ ॥ सर्व प्रथम वैराग्यरूपी इन्धनोंका संचय करके इन्द्रियरूपी अग्निको खूब प्रज्वलित करदेना, और उसकी प्रज्वलित ज्वालाओंमें विषयद्रव्यकी आहुतियें छोडते जाना, ॥ ४८ ॥ फिर वज्रासनरूपी भूमिको शुद्ध करके, शरीररूपी मण्डपमें मूलबन्धरूपी मुद्राको यज्ञवेदी बना देना ॥ ४९ ॥ इतनी सिद्धता होनेपर इन्द्रियनिग्रहरूपी अग्निकुंडमें इन्द्रियद्रव्यरूपी बडी बडी लकडियोंकी आहुतियोंका योग-मंत्रके घोषद्वारा हवन किया जाना चाहिये ॥ ५० ॥ पश्चात् मन और प्राणवायुका जो निग्रह करना है, वही इस हवनविधिका समारंभ माना जाता है, जिससे कि शुद्ध ज्ञानरूपी निर्धूम अग्नि प्रसन्न हो जाती है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार, हे पार्थ ! ज्ञानाग्निमें सर्वस्वका अर्पण होजानेपर जो 'ज्ञान' प्राप्त होता है वह ' ज्ञेय ' वस्तुमें लीन होता है और फिर केवल ' ज्ञेय ' स्वरूप वस्तु ही सर्वत्र शेष रहजाती है, ॥ ५२ ॥ उसी ज्ञेयकोही ' अधियज्ञ ' कहा जाता है । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने जो निरूपण किया, उसको श्रवण करते

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


ही बुद्धिवान् अर्जुन उसी समय वह सब जान गया ॥ ५३ ॥ इस बातसे संतुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे पार्थ ! तुम अच्छीतरह ध्यान दे रहे हो । भगवान्के इस वाक्यको सुनते ही अर्जुनको बडा संतोष हुआ और वह अपनेहीको धन्यवाद देने लगा ॥ ५४ ॥ देखिये, बालककी तृप्तिको देख माताको संतोष हो, अथवा शिष्यके समाधान या विजयको देख गुरुको जो कृतकृत्यता प्राप्त होती ह, उसके अनुभवको वह माता या वह गुरुही जान सकते हैं, दूसरोंसे इस बातकी कल्पना तक नहीं हो जा सकती ॥ ५५ ॥ इसलिये, अर्जुनके पहलेही गुरु-श्रीकृष्णके हृदयमें—जो सात्त्विकभावोंकी ऐसी लहरें उमड पडीं कि उन्हें भगवान्को भी वश रखना असंभवसा होगया, किन्तु भगवान्ने किसी तरह जानबूझकर अपनी बुद्धिसे सँभाल लिया ॥ ५६ ॥ और फिर भगवान्ने ऐसे कोमल और रसभरे वचन कहे कि, मानो वे पूर्णत्वको प्राप्त हुए अमृतके तरंग ही हों ॥५७॥ भगवान् बोले—हे मेरे प्यारे श्रोतृश्रेष्ठ पार्थ ! ध्यान देकर सुनो, मायाको अग्निमें जलाकर एकबार उसका नाश होतेही, उस जलानेवाले ज्ञानका भी उसी अग्निमें जलकर भस्म हो जाता है ॥ ५८ ॥

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

हे पार्थ ! जो अभी हमने तुमसे कहा, जिसे 'अधियज्ञ' कहा जाता है और जो आदिकारण अथवा आदिसे अन्ततक भरा हुआ है उस मुझको जो अन्तकालमें जानते हैं ॥५९॥ वे जिसप्रकार गृह या मठ अवकाशको अपने अन्तर्भागमें भरकर स्वयं बाहरमें भी अवकाशमें ही रहता है, उसी प्रकार इस देहको केवल ऊपरी ढकना मानकर स्वयं अन्तर्बाह्य ब्रह्मरूप हो, आत्मस्वरूपमें ही रहते हैं ॥ ६० ॥ और एकबार इस ब्रह्मानुभवके मध्यघरकी निश्चयात्मक कोठडीमें उनका प्रवेश होनेसे सिवाय ब्रह्मके इस बाहरी सृष्टिका उन्हें स्मरण ही नहीं रहता ॥ ६१ ॥ इस प्रकार वे अन्तर्बाह्य एकरूप होते हुए मद्रूपताको प्राप्त होते हैं, तब बाह्य पंचमहाभूतोंके पांचों आवरण ऐसे गिर जाते हैं कि, उन्हें इस बातकी खबर भी नहीं रहती ॥ ६२ ॥ देखो पार्थ ! जब पञ्च आवरणोंसे युक्त यह देह स्थित था, तब भी जिन्होंने उसकी पर्वा नहीं की, फिर उनके जल जानेपर दुःख हो, यह संभवनीय ही नहीं ! इसलिये यदि यह देह गिर जायगा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


तो भी उनके ब्रह्मानुभवमें यत्किंचित् भी हेरफेर नहीं होता है ॥ ६३ ॥ उनकी ब्रह्मानुभवकी प्रतीति मानो एकतासे ढालकर, नित्यत्वके सांचेमें बिठा दीगयी रहती है, और समरसताके सागरमें धुलादेनेसे ऐसी स्वच्छ और शुद्ध बनजाती है, कि जिसमें मलका नामतक नहीं रहता ॥ ६४ ॥ अजी पार्थ ! जैसे अथाह जलमें घटको डुबोया जाय, तो वह अन्तर्बाहर पानीसे ही भरा रहता है, फिर यदि दैववशात् वह फूटजाय तो क्या पानी भी फूटजाता है ? ॥ ६५ ॥ अथवा सर्प केंचुलीको छोडता है, या गरमी ( उष्णता ) के कारण वस्त्रको फेंक दिया जाय, तो क्या किसी अवयवकी टूट-फूट होजाती है ? ॥ ६६ ॥ उसी प्रकार ऊपरी वस्तुका नाश होनेसे, सद्वस्तु जो ब्रह्म उसकी कोई हानि नहीं, कारण असत्य-देहादिकोंके नाश होनेपर भी वह जैसाका तैसा ही रहता है । यही बात जब बुद्धिसे दृढतर जानी जाती है, तब वह ब्रह्ममें एकताको प्राप्त हो स्वयं ब्रह्मही बनजाती है, फिर उसे व्याकुलता क्यों प्राप्त होगी ? ॥६७॥ अतएव इस प्रकार जो मुझे देहावसानके समय जानते हुए देहका त्याग करते हैं, वे मद्रूप होते हैं॥६८॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

साधारणतः यह नियम है कि, जब मृत्युकाल आजाता है, तब जीव अन्तःकरणमें जिसका स्मरण करता है, उसीको वह प्राप्त होजाता है ॥६९॥ जिस प्रकार कोई भयसे ग्रस्त हो, दौडता हुआ कूएमें गिरजाय, ॥ ७० ॥ और दुर्दैवसे उसे सँभालनेके लिये कोई भी न रहनेके कारण, विवश हो गिरना आवश्यक हो जाता है, ॥ ७१ ॥ उसी प्रकार मरणका समय आने-पर जीवके आगे जो वस्तु आवे या कल्पना उपस्थित हो, उसीमें प्रविष्ट या मिले हुए बिना उसे कोई चारा ही नहीं रहता ॥ ७२ ॥ और जिस बातका जागृतावस्थामें ध्यास लगा रहता है, नेत्र मूँदते ही स्वप्नमें जैसे उसी वस्तुका दर्शन उसे दिखाई देता है, ॥ ७३ ॥ उसी प्रकार जीवितस्थितिमें जिस विषयकी उसकी इच्छापूर्ति न हुई हो,मृत्युसमय मनमें उसीका स्मरण विशेष करके होजाता है ॥ ७४ ॥ और मरणके समय जो जिसका स्मरण करता है, सो उसीकी गतिको प्राप्त होजाता है,

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इस लिये हे पार्थ ! तुम्हें सदैव मेरा ही स्मरण रखना चाहिये ॥ ७५ ॥ तुम जो जो आँखोंसे देखोगे, कानोंसे सुनोगे, मनसे जिसकी भावना करोगे या वाणीसे जो बोलोगे, ॥ ७६ ॥ वह सब अन्तर्बाह्य मद्रूप होकर आचरते रहो, जिससे सदा सर्वकाल सर्वत्र मैं ही स्वभावतः सिद्ध रहूंगा ॥ ७७ ॥ देखो, अर्जुन ! यदि यह बात तुम्हें अच्छी तरह साध्य होजाय, तो देहनाशके होते भी तुम्हें मरणका किंचित् भी भय नहीं रहेगा, फिर युद्ध करनेमें तुम्हें कौनसा भय होता है ? ॥ ७८ ॥ और यदि तुम सच्ची भावनासे अपना मन और बुद्धि, मेरे आत्मस्वरूपमें अर्पण कर दोगे, तो तुम मेरा आत्मस्वरूप ही बनोगे, यह तो मेरा प्रतिज्ञावचन ही है ॥ ७९ ॥ और यदि यह तुम्हें शंका हो कि, ऐसा होनेमें कुछ प्रमाण भी है ? तो तुम प्रथम अभ्यासको करके इस बातका अनुभव कर लो, और फिर यदि सफलता प्राप्त न हो, तो मुझे दोष दे सकते हो ! ॥ ८० ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

कारण, इस प्रकारके अभ्याससे यह कर्मयोग चित्तको शुद्ध और सामर्थ्यवान् बना देता है, जिस प्रकार युक्तिसामर्थ्यसे पंगु भी पहाडपर चढ सकता है, ॥ ८१ ॥ उसी प्रकार कर्मयोगके अभ्याससे युक्तिपूर्वक चित्तको परब्रह्ममार्गमें नियोजित करदो, फिर ऐसे करते समय यदि शरीर और मनका कुछ भी हो तो उसकी तुम्हें चिन्ता नहीं रखनी चाहिये ॥ ८२ ॥ देखो, अनेक प्रकारसे अनेक अवस्थाओंको प्राप्त होनेवाला जो यह चित्त है, यदि उसीको आत्मामें नियोजित करदोगे तो वहां वह रममाण होजायगा, फिर यह देह यदि नष्ट होजाय तो उसका स्मरण भी किसको होवे ? ॥ ८३ ॥ देखो, नदीका प्रवाह बडे वेगके साथ शब्द करता हुआ समुद्रको पहुँच जाता है, वह पीछे कुछ हो रहा हो, इस बातको देखनेके विचारसे कभी पीछे आ सकता है ? ॥ ८४ ॥ नहीं नहीं, वह तो समुद्रको पहुँचते ही समुद्ररूप होजाता है, उसी प्रकार चित्त भी ज्ञानस्वरूप हो चैतन्यमें ही रहजाता है । जहां जन्म-मरणरूपी आवागमनकी समाप्ति होजाती है, जो वस्तु परमानंदस्वरूप है, ॥ ८५ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् १०॥

जो निराकार है, जो जन्म-मरणादिविकाररहित है, जो सर्वसाक्षी हो सर्वत्र देखता रहता है, ॥ ८६ ॥ सबसे पूर्व जो आकाश है उससे भी जो प्राचीन है, जो परमाणुसे भी छोटा है तथा जिसके सान्निध्यसे संसारकी हिलचल होती है या वह सचेतन होजाता है, जो सब विश्वका उत्पत्ति-स्थान है, जिससे इस विश्वकी स्थिति ॥ ८७ ॥ होती है, तथा हेतु याने कार्यकारणसंबंधमें जो ऐसा अचिन्त्य है कि जहां शास्त्रका अनुमान भी डरता रहता है और जो कल्पनातीत है, ॥ ८८ ॥ जैसे दीमक कभी अग्निमें प्रवेश नहीं कर सकती अथवा अंधकारका जैसे तेजमें प्रवेश नहीं हो सकता, उसी प्रकार सूर्यके प्रखर प्रकाशमें भी जो चर्मचक्षुओंसे दिखायी नहीं देता, अर्थात् अंधकारसा अदृश्य ही रहता है, ॥ ८९ ॥ जो स्वच्छ किये हुए सूर्यकिरणोंकी राशि है और ज्ञानिजनोंके लिये जो सदैव उदय ही उदयरूप हो, अस्तमानके शब्दका जहां लक्षणसे भी प्रयोग नहीं किया जा सकता ॥ ९० ॥ उस निर्दोष और परिपूर्णस्वरूप परब्रह्मको पहँचानकर मरणसमयमें जो उसका शान्तचित्तसे स्मरण करता है, ॥ ९१ ॥ इस बाह्य देहसे 'पद्मासन' लगाकर, उत्तराभिमुख हो, स्थिरचित्तसे बैठकर, कर्मयोगके शाश्वतसुखको हृदयमें गठित करके, ॥ ९२ ॥ अन्तर्यामें ही एकाग्रचित्त हो, मनःसामर्थ्यसे ब्रह्मस्वरूपप्राप्तिकी अत्युत्कट इच्छासे, अत्यंत शीघ्रताके साथ आत्मस्वरूपमें मिलजानेकी अतिलालसासे, ॥ ९३ ॥ साध्य किये हुए योगाभ्याससे सुषुम्ना नाडीके मध्यमार्गद्वारा अग्निचक्रमार्गसे ब्रह्मरंध्रकी ओर जब जाता है, ॥ ९४ ॥ और प्राणवायु महदाकाशमें संचार करती रहती है, उस समय शरीर और चित्तका संबंध केवल ऊपरी दिखावटसा प्रतीत होता है, ॥ ९५ ॥ परन्तु, जो मनःसामर्थ्यसे धैर्ययुक्त हो सँभाला जाता है, भक्तिभावनासे जो भरा हुआ रहता है और योगबलसे कसा हुआ सज-धजकर तैयार रहता है, ॥९६॥ वह इस जडाजडको विलीन करता हुआ भ्रुकुटियोंके मध्यभागमें प्रस्फुरित होता रहता है। जिस प्रकार घंटाकी आवाज घंटामेंही लीन होजाती है, ॥ ९७ ॥ अथवा किसी बर्तनके नीचे ढँका हुआ दीपक, कब और कैसा बुझ गया ज्ञात नहीं होता, उसी प्रकार जो शांतस्थितिमें देहको छोडजाता है, ॥ ९८ ॥ हे पाण्डव ! वही निर्मल परब्रह्म है। 'परमपुरुष' जिसे कहाजाता है, मेरा स्वयंसिद्ध तेजःस्वरूप जो है, वही वह हो रहता है ॥ ९९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

जो सम्पूर्ण ज्ञानोंमें आखिरी है, और ऐसे सर्वश्रेष्ठ आत्मज्ञानकी जो खानि है, ज्ञानीजन अपनी बुद्धिसे जिसे 'अक्षर' कहते हैं, ॥ १०० ॥ जो प्रचंडवायुके वेगसे हिलता या उडता नहीं, वही सच्चा आकाश होता है, अन्यथा, यदि वह अभ्र ( मेघ ) हो तो उस वायुके वेगके आगे कैसे ठहर सकता है ? ॥१॥ वैसे,जो वस्तु ज्ञानियोंके बुद्धिगत होती है वह ज्ञानसे नापी जायगी, किन्तु जो जानी नहीं जाती वह स्वभावतः ही 'अक्षर' कही जाती है, यह ज्ञानियोंका मत है॥२॥इसालिये जो वेदज्ञाता पुरुष हैं, वे जिसे अक्षर कहते हैं, जो प्रकृतिसे परे है तथा जो सच्चिदानंदस्वरूप है, ॥ ३ ॥ और जो पुरुष विषयोंके विषयुक्त अंशको छोड, सम्पूर्ण इंद्रियोंको शुद्ध करके, उदासीन वृत्ति हो, देहरूपी वृक्षकी छायामें बैठे हैं, ॥ ४ ॥ ऐसे जो विरक्तवृत्ति पुरुष हैं, वे भी जिसकी प्राप्तिके लिये निरन्तर उत्सुक होते रहते हैं तथा निरिच्छ पुरुष भी जिसकी अभिलाषा करते हैं, ॥ ५ ॥ और जिसकी लालसासे कोई ब्रह्मचर्यादि कठिनतर व्रतोंसे संकटोंकी पर्वा न कर कठोरतासे इन्द्रियोंको बलहीन करदेते हैं, ॥ ६ ॥ इस प्रकारका जो अचिंत्य, दुर्लभ और जिसका कहीं भी पार नहीं, वह अनंतपद, कि वेद भी जिसके तीरमें ही डूबते रहते हैं, ॥ ७ ॥ उस पदको वे पुरुष प्राप्त करते हैं, जो पूर्वमें कहे हुए प्रकारसे अन्तसमय मेरा स्मरण करते हैं । हे ज्ञानेच्छु पार्थ ! अब एकबार इस स्थितिका मैं वर्णन करता हूं तुम सावधानीके साथ श्रवण करो ॥ ८ ॥ तब अर्जुनने कहा—हे कृपालु भगवन् ! जिस बातकी मैं इच्छा कर रहा था, आपने उसी मेरे अन्तःकरणकी बातको जान, फिर कहनेकी जो कृपा की है, इसपर मैं अपनेको भाग्यवान् ही गिनता हूं, अब आप कहिये ॥ ९ ॥ हे देव ! जो आप कहेंगे वह अत्यंत सरल और सीधा हो यही मेरी प्रार्थना है । तब त्रिभुवनको प्रकाशित करनेवाले ज्ञानिजन श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे पाथ ! बारबार कहनेकी क्या आवश्यकता है, क्या मैं तुम्हें पहँचानता नहीं ? मैं तुम्हें संक्षेपसे ही कहूंगा ॥ ११० ॥ परन्तु तुम इतना साधन अवश्य साध्य करो कि, इस मनकी जो स्वाभाविक इधर उधर बाहर दौडनेकी गति है, उस गतिको ऐसे रोको जिससे वह कभी भी बाहरकी तरफ देख भी न सके, और अन्दर ही अन्दर हृदयमें ही मुरझा जाय या हृदयरूपी दहमें डूबाही रहे ॥ ११ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२ ॥

परन्तु हे पार्थ! यह साध्य तभी हो सकता है, जब कि इन्द्रियरूपी दरवाजोंको निग्रह-संयमरूपी-किवाडोंसे बिलकुल बन्द किया जाय, ॥ १२ ॥ फिर यह चञ्चल मन सहजहीमें अन्दर रोका जाता है और ऐसी स्थितिमें उसे चुपचाप वहां रहे बिना चारा ही नहीं, जैसे कि, किसी हाथ-पैर टूटे हुए आदमीसे घर नहीं छोडा जा सकता, ॥ १३ ॥ उसी प्रकार इस मनकी स्थिति ( चलन-वलन बन्द ) होजानेपर प्राणवायुद्वारा प्रणवका याने ॐकारका ध्यान किया जाना चाहिये, जो कि क्रम-क्रमसे वह प्राणवायु ब्रह्मरंध्रतक पहुँच जावे ॥ १४ ॥ फिर ब्रह्मरंध्रतक उसकी गति हो जाते ही, वहां धारणाशक्तिद्वारा उसे ऐसा रोकना चाहिये कि, जो ब्रह्माकाशमें मिला या न मिला ज्ञात न हो! इसके पश्चात् ॐकारकी अ-उ-म् इन तीन मात्राओंका जबतक अर्धमात्राम लय न हो, ॥ १५ ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

—तबतक उस प्राणवायुको चिदाकाशमें निश्चल रखना चाहिये, जिससे ऐक्यावस्थामें वह संपूर्ण ओंकार मूल-ब्रह्ममें प्रतिबिंबित हुआ प्रतीत होगा ॥ १६ ॥ ऐसी स्थितिमें ॐकारका भी स्मरण बंद होजाता है और प्राणवायु भी विलीन होजाती है अर्थात् निकल जाती है। अब केवल ॐकारके परे जो शुद्ध ब्रह्मानन्दस्वरूप रहता है, वही स्थिर रहा ज्ञात होजाता है ॥१७॥ अतएव ॐकार ही मेरा एकाक्षर ब्रह्मस्वरूप है। इस मेरे ब्रह्मस्वरूपका चिन्तन करते करते, ॥१८॥ जो पुरुष इस जड देहका त्याग करता है, वह निस्संशय मेरे शुद्ध-स्वरूपको प्राप्त होजाता है। हे पार्थ! इतना होनेपर, याने मेरे स्वरूपको प्राप्त होनेपर फिर उसे कुछ प्राप्त करनेका अवशेष रहता ही नहीं!॥१९॥ हे गुडाकेश पार्थ! अब इसपर तुम्हें यह शंका अवश्य हो रही होगी कि, अंतसमयमें यह स्मरण कैसे प्राप्त होगा? इसमें क्या प्रमाण माना जायगा? ॥१२०॥ कारण इन्द्रियोंको तो जान बूझकर निर्बल बनाया गया, जीवितका सुखसमाधान नष्ट भया, अन्तर्बाह्य चारों तरफ मृत्युकी सेना खडी है, ॥२१॥ऐसी स्थितिमें कौन आसनको लगावे,कौन इन्द्रियनिरोध करे और किसका अन्तःकरण ॐकारका चिन्तन करता रहे? सारांश यह सब अशक्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सरीखा ही है ! ॥ २२ ॥ देखो अर्जुन ! इस प्रकारके अनेक विचारतरंग तुम्हारे अन्तःकरणमें उपस्थित हों,तुम साशंक बनजाओ तो इस बातकी तुम्हें जरा भी शंका नहीं करनी चाहिये, कारण इस पूर्वोक्त प्रकारसे मुझपर भरोसा रख, जो मेरा अखंड चिन्तन करता रहता है, उसके अन्तसमयमें मैं स्वयं उसका दास बनकर उसके सब काम करदेता हूं, यह तुम निश्चित समझो ॥ २३ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ २४ ॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ २५ ॥

जो पुरुष विषयोंको विषवत् त्यागकर बंधक-कर्मप्रवृत्तिके पैरोंमें बेडी ठोक, निरंतर मुझे हृदयमें रखकर मेरे स्वरूपको उपभोगते रहते हैं ॥ २४ ॥ और जिस सुखके भोगनेमें अतृप्त होनेपर भी जिन्हें तृषा क्षुधा-आदिकी स्मृति भी नहीं होती, वहां चक्षु आदि इन्द्रिय-मशकोंकी कथा ही क्या है ? ॥ २५ ॥ इस प्रकारसे जो निरंतर मुझमें एकाग्रतासे संमिलित हो रहे हैं, जो अन्तःकरणमें मुझसे युक्त हो मेरी भक्तिसे मत्स्वरूप हो रहे हैं, ॥२६॥ क्या देहावसान-समयमें वे मेरा स्मरण करें तभी मैं उनपर कृपा करूं, अन्यथा नहीं; यदि ऐसा हो तो फिर उपासनाही किस कामकी ? ॥ २७ ॥ कोई दीन संकटग्रस्त होकर मेरे नामसे "दौडो दौडो भगवन् !" इस प्रकार पुकारता हो, तो उसके दुःखसे मेरा हृदय पसीजनेसे मैं उसकी सहायताके लिये दौडता हुआ नहीं जाता ? ॥ २८ ॥ देखो, पार्थ ! मेरे एकनिष्ठ भक्तकी यदि ऐसी दीन अवस्था मेरे कारण होजाय, तो फिर भक्तिमार्गमें जायगा ही कौन ? इसलिये मैं कहताहूं कि ऐसी शंकाके लिये तुम अपने अन्तःकरणमें क्षणमात्र भी स्थान मत दो ॥२९॥ देखो, अर्जुन ! मेरा यह बाना ही है कि, जिस समय वे मेरे भक्त मेरा स्मरण करते हैं, उसी समय मैं दौडता हुआ उनके पास खडा रहता हूं, और यह मेरा आद्य कर्तव्य ही है; नहीं तो, उनकी एकनिष्ठ उपासनाका भार मुझसे सहा ही नहीं जायगा, किन्तु मैं ही उनका ऋणी हो जाऊंगा ! ॥ १३० ॥ हे पार्थ ! उनकी सर्वोपरि एकनिष्ठताकी भक्तिका ऋण मेरे सिरपर होनेके कारण उससे उऋण होनेके लिये, उनके अन्तसमयमें मैं बडी शीघ्रताके साथ दौडता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हुआ भक्तोंकी सेवामें हाजिर होजाता हूं ॥ ३१ ॥ उन सुकुमार मेरे भक्तोंको शरीरकी दुर्बलतासे किसी प्रकारकी पीडा न हो, ऐसा समझ और भीतिसे हटानेके लिये मैं आत्मज्ञानक पींजरेमें उन्हें सुरक्षित रखता हूं ॥ ३२ ॥ और उन मेरे प्रिय भक्तोंपर मैं आत्मस्मरणकी शांत और शीतल छाया बना देता हूं, जिससे उनकी बुद्धिमें निरन्तर शांति और स्थिरता वास करे ॥३३॥ कहनेका तात्पर्य, मेरे एकनिष्ठ भक्तोंको देहावसानकालका संकट कुछ भी दुःखदायी नहीं हो सकता, कारण मैं उन प्यारे भक्तोंको अनायास ही अपने स्वरूपमें स्थान देता हूं॥३४॥उनके बाह्य शरीरका आच्छादनरूप जो कवच उसे निकाल देता हूं तथा झूठे अहंभावकी धूलिमात्र रही हो तो उसको सफा करके शुद्ध वासनाद्वारा उन्हें आत्मस्वरूपमें मिला लेता हूं ॥ ३५ ॥ यह तो किया ही जाता है, किन्तु उन मेरे प्यारे भक्तोंको भी इस देहसे विशेष एकताका अपनापन रहनेके कारण, देहत्यागके समय उसके वियोगसे दुःख नहीं होता ॥ ३६ ॥ अथवा, देहान्तमें वे भक्त यह भी नहीं सोचते हैं कि, भगवान् अब आकर हमें अपने स्वरूपमें मिला देंगे; क्योंकि वे तो पहलेसे याने देहधारी रहते समयसे ही मुझमें मिले हुए रहते हैं ॥३७॥ यदि सत्यतापूर्वक विचार किया जाय तो उनका संसारमें जो अस्तित्व है, वह केवल शरीररूपी जलका प्रतिबिंब समझो, जैसे जलमें प्रतिबिंबित चन्द्रकिरण, जलके अभावमें चन्द्रमाकी सत्यतामें ही रहते हैं, उसी प्रकार शरीररूपी जलका अभाव होनेपर सत्य जो आत्मस्वरूप उसीमें वे रहते हैं । इसलिये उनका प्रतिबिंबवत् जो अस्तित्व है वह सच्चा नहीं, किन्तु उनका सच्चा स्वरूप ब्रह्मस्वरूपही समझो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार जो निरंतर मद्रूपताको प्राप्त हो रहे हैं, मैं भी उन्हें बिना प्रयास सहजहीमें प्राप्त होता रहता हूं, अतएव देहावसानमें वे मुझमें निश्चित मिल जाते हैं । हे पार्थ ! इस बातकी जरा भी शंका नहीं करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ और जो शरीर क्लेशरूपी वृक्षोंका बगीचा है, जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन तापोंकी केवल अँगीठी है, जो मृत्युरूपी कौएका बलि है, ॥१४०॥ जो विपुल दैन्यको प्रसवनेवाला है, सब दुःखोंको बढानेवाला हो दुःखोंका भाण्डार बनता है, ॥ ४१ ॥ जो दुष्टबुद्धिका आदिकारण, दुष्टकर्मोंका मूर्तिमन्त फल है और जो भ्रांतिका सदन-स्थान है, ॥ ४२ ॥ जो इस संसारके बैठनेका स्थान है, विकारोंका केवल क्रीडास्थान तथा सम्पूर्ण रोगोंका सहज खाद्य गिना जाता है, ॥४३॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो कालकी जूँठी खिचडी है, जो आशाका आश्रयस्थल और जन्म-मरणका स्वाभाविक रास्ता बनता है, ॥ ४४ ॥ जो भ्रमसे ही भरा रहता है, विकल्पके सांचेसे ढला हुआ और दुःखरूपी बिच्छुओंसे चिथडा रहता है, ॥ ४५ ॥ जो व्याघ्रकी दरी ( गुहा ) है, वारांगनाका साथी और विषयोपभोगका सर्वमान्य बडा साधन हो रहा है, ॥ ४६ ॥ जो डाकिनीके भयंकर प्रेमसरीखा या शीतल किये हुए विषके पानीकी घूँटसा है अथवा ठग-चोरके दिखावटी विश्वासवत् है, ॥ ४७ ॥ जो कुष्ठरोगीका आलिंगन, कालसर्पका मृदुत्व, वधिकका गायन, शत्रुका किया आदर सम्मान अथवा दुर्जनका किया शिष्टाचार है, क्या ? और कहांतक उसका वर्णन किया जाय ? हे पार्थ ! वह सम्पूर्ण अनर्थोंका अथाह समुद्र है ॥४८॥४९॥ जो स्वप्नमें देखेहुए स्वप्नसरीखा है, जो मृगजलसे परिवर्धित अरण्य अथवा धूम्रकणोंसे बना हुआ आकाश है, ॥ १५० ॥ इस प्रकारके लक्षणयुक्त जो यह शरीर, उस शरीरको, वे लोग जो कि अमर्याद मेरे ब्रह्मस्वरूपको एकबार पहुँच कर मद्रूप हो जाते हैं, हे पार्थ ! कभी प्राप्त नहीं होते ॥ ५१ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

किसी समय कदाचित् ब्रह्मज्ञानके घमंडी भी जन्म-मरणके आवागमनकी आवृत्तिके चक्करसे नहीं बच सकते, परन्तु जैसे मृत मनुष्यका पेट निश्चित नहीं दुःखता है, ॥ ५२ ॥ अथवा जागृत अवस्थामें जैसे कोई स्वप्नकी बाढमें डूब नहीं सकता, उसी प्रकार जो मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं, वे इस संसारके मलसे कभी लिप्त नहीं होते ॥ ५३ ॥ कारण, व्यवहारदृष्टिसे भी सिद्ध है कि, जो ब्रह्मभुवन इस नामरूपात्मक जगत्का शिरोधार्य है, जो चिरस्थायी गुणोंमें अत्यंत श्रेष्ठ है, विश्वरूपी पहाडका अत्युच्च शिखर है, ॥ ५४ ॥ जिस ब्रह्मभुवनके एकदिनके प्रहरभर दिनमें एक इंद्रकी आयु समाप्त होजाती है और सम्पूर्ण दिनभरमें जहां क्रमक्रमसे चौदहों इन्द्रोंका कारोबार समाप्त हो उनकी पंक्ति उठ जाती है, ॥ ५५ ॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

जब चारों युगोंकी हजार चौकडियां व्यतीत होती हैं, तब ब्रह्मभुवनका वास्तवमें एक दिन होजाता है तथा उसी प्रकार हजार चौकडियोंसे रात्रि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


होजाती है, ॥ ५६ ॥ इस प्रकारका जहां दिनरातका प्रमाण है, वहां रहने-वाले भाग्यवान् पुरुष मरते नहीं, किन्तु वे उन दिनोंमें स्वर्गस्थ चिरजीवी हो सब कुछ देखते रहते हैं, ॥ ५७ ॥ वहांके साधारण देवगणोंकी क्या योग्यता है ? जो सब देवोंका राजा इन्द्र उसकी तो यह दशा होती है, कि एक दिनमें पूरे प्रहरतक भी उसे सिंहासनका उपभोग नहीं मिलता ! क्योंकि दिनभरमें तो चौदह इन्द्र विराजमान होनेवाले रहते हैं ! ॥ ५८ ॥ तथापि ब्रह्माके आठ प्रहरके दिनको जो अपने नेत्रोंसें देख सकते हैं, उन्हें ' अहोरात्रविद् ' कहा जा सकता है ॥ ५९ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

उस ब्रह्मभुवनमें जब दिनका उदय होता है, उस समय निराकारमेंसे नाम-रूपात्मक साकार इतने विश्व प्रकट होते हैं, जिनकी गिनती नहीं हो सकती॥१६०॥फिर जब दिनके चारों प्रहर पूरे हो जाते हैं,तब नामरूपात्मक साकारविश्वका विस्तार एकसाथ समुद्रके पानीसरीखा सूखता है और फिर जब पुनः दिनका उदय होने लगता है तब वह विस्तारसमुद्रकी बाढ-सरीखा भरजाता है॥६१॥शरदृतुके प्रारंभमें अभ्रपटल आकाशके आकाशमें ही लुप्त होजाते हैं और ग्रीष्मऋतुके अन्तमें वे ही अभ्र ( मेघ ) जैसे फिर प्रकट होते हैं, ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार ब्रह्माके दिनारंभमें पञ्चभूतात्मक सृष्टिके समुदायका उदय होता है और वह ब्रह्माके उस दिनके सहस्रयुगकी चौकडियोंकी समाप्तितक अस्तित्वमें बना रहता है ॥६३॥ फिर जब ब्रह्माकी रात्रिका समय आता है,तब यह भूतात्मक साकार विश्व निराकार ब्रह्मतत्त्वमें विलीन हो जाता है। यह ब्रह्माका रात्रिकाल भी सहस्रयुग चौकडियोंका ही रहता है,जिसके समाप्त होनेपर फिर इस नामरूपात्मक विश्वकी रचना पूर्वके अनुसार होने लगती है॥६४॥इस निरूपणके करनेका मतलब इतना ही है,कि इस ब्रह्मभुवनके केवल एक अहोरात्रमें ही इस विश्वका उदय (उत्पत्ति) और प्रलय होजाता है ॥ ६५ ॥ इस ब्रह्मभुवनकी व्यापकता इतनी बडी भारी है कि, उसमें सब विश्वका बीज सरलतासे रखा जाता है, तथापि जन्म-मरणके आवागमनका नाप वह बराबर रख सकता है ॥ ६६ ॥ हे अर्जुन !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यादे विचारके साथ देखा जाय तो यही निश्चित होगा कि, जब ब्रह्माके दिनका उदय होता है तब एकसाथ ही इस त्रैलोक्यकी रचना की जाती है, ॥६७॥ और रात्रिका समय आते ही यह सब रचना लुप्त होजाती है अर्थात् जहांकी तहां मूल-बीजमें साम्यको प्राप्त हो जाती है ॥ ६८ ॥ जिस प्रकार आखिरमें वृक्षत्व बीजमें ही लुप्त होजाता है, अथवा मेघोंका पर्यवसान आकाशमें होता है, उसी प्रकार अनेकत्वके भेदभाव जिस स्थितिमें एक-रूपताको प्राप्त हो जाते हैं उसे 'साम्य' कहते हैं ॥ ६९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

इस साम्यमें न्यूनाधिक भाव कुछ भी नहीं रहता, अतएव पदार्थमात्रको 'भूत' ऐसे शब्दोंको भी स्थान नहीं रहता । जैसे दूधको दही बनानेपर दूधका नाम-रूप लुप्त होता है, तद्वत् विश्वके आकाशका साम्यमें लोप होने-पर विश्वका विश्वत्व कहां रहेगा ? तथापि जिस बीजसे वह साकारत्वको प्राप्त हुआ था, उसीमें वह साम्यस्थितिको प्राप्त हो, जैसाका वैसा बना रहता है ॥ १७० ॥ ७१ ॥ अतएव उसे स्वभावतः 'अव्यक्त' कहा जाता है और उस अव्यक्तमेंसे जो आकारको प्राप्त होता है, तब वह 'व्यक्त' कहा जाता है । ये दो नाम तो एक दूसरेके सूचक हैं, वास्तवमें विचार करनेपर हैं दोनों नहीं । केवल समझके लिये ही दिये जाते हैं ॥७२॥ जैसे सुवर्ण गलाया जाता है, तब उसके आकारको पासा (लगड) कहते हैं और उसके जब अलंकार बनाये जाते हैं तब उसका घनाकार नष्ट होता है, ॥ ७३ ॥ परन्तु ये दोनों विकार जैसे मूलभूत एकस्वरूप सुवर्णके ही उसी प्रकार व्यक्त और अव्यक्त ये दोनों विकृति एक परब्रह्मकी ही हैं ॥ ७४ ॥ परन्तु वह परब्रह्म न व्यक्त है और न अव्यक्त है, न नित्य है, न अविनाशी है, किन्तु वह तो इन दोनों विकारोंसे परे अनादिसिद्ध है ॥ ७५ ॥ वह परब्रह्म यद्यपि विश्वमय बना रहता है तथापि जिस प्रकार अक्षरोंके पोंछनेपर अर्थ नष्ट नहीं होता, उसी प्रकार विश्वके नष्ट होनेपर उसका नाश नहीं होजाता ॥ ७६ ॥ अथवा जिसप्रकार तरंगें उत्पन्न होतीं और विलीन होजाती हैं,परन्तु जल अपने स्वरूपमें अखंड बना रहता है, उसी प्रकार वह परब्रह्म अविनाशी होनेसे भूतोंके विनष्ट होनेपर भी नाशको नहीं पाता, ॥ ७७ ॥ अथवा अलंकारोंको गला देनेसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सुवर्ण नहीं गलता याने वह जैसाका वैसा रहता है, उसी प्रकार जीवरूपी साकारका नाश होनेपर वह ब्रह्म अमर ही रहता है, ॥ ७८ ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

कौतुकसे चाहे उसे 'अव्यक्त' कहा जाय, परन्तु इससे उसकी स्तुति न होगी, कारण वह मन और बुद्धिकी मर्यादामें नहीं आता, ॥ ७९ ॥ तद्वत् जो आकारको तो प्राप्त होता है, तथापि जिसका निराकारत्व नष्ट नहीं होता तथा आकारके लोप होनेपर भी जिसकी शाश्वतताका भङ्ग नहीं होता, ॥ १८० ॥ अतएव जिसे 'अक्षर' कहा जाता है। और इस नामसेही उसके नाशराहित्यका बोध हो जाता है। तथा जिसके परे कुछ है नहीं अर्थात् जहां गति ही बंद होगयी, उसे 'परमगति' कहा जाता है, ॥ ८१ ॥ परन्तु वह इस देहरूपी नगरमें सोये हुए पुरुषकी नाईं रहता है, क्योंकि वह न कुछ व्यापारको करता है, न कुछ कराता है ॥ ८२ ॥ तथापि हे अर्जुन ! यों तो शरीरके जो व्यापार व्यवहार हैं, उनमेंसे एक भी बंद नहीं रहता, दसों इंद्रियोंके मार्ग ठीक रीतिसे चलते रहते हैं, ॥ ८३ ॥ और मनके चौरास्तेपर विषय-रूपी बाजारकी पैंठ खुल जानेसे वहांके सुख-दुखःका भाग भी अन्तरःथ जीवको मिलता है ॥ ८४ ॥ परन्तु, राजाके सुखसे सोते रहनेपर जैसे देशका व्यापार-व्यवहार बंद नहीं रहता, प्रजाजन अपनी अपनी इच्छानुसार उद्योगके करते ही रहते हैं, ॥ ८५ ॥ उसी प्रकार बुद्धिका जानना, मनका लेन-देन, इन्द्रियोंके कर्म, वायुका संचलन, ॥ ८६ ॥ इत्यादि देहके व्यापार जिसके किसी भी सहायके बिना आपही आप भलीभांति चलते रहते हैं। जैसे कि सूर्य किसीको न चलानेपर भी उसके प्रकाशमें लोग आपही चलते रहते हैं, ॥ ८७ ॥ उसी प्रकार हे धनंजय ! इस शरीररूपी पुरमें सोते रहनेके कारण जिसे 'पुरुष' कहा जाता है ॥ ८८ ॥ और पवित्रता जो प्रकृति-माया उसके एकपत्नीव्रतकी संगतिमें रहनेके कारण भी उसे 'पुरुष' कहा जा सकता है ॥ ८९ ॥ वेदकी बुद्धिव्यापकता तो प्रसिद्ध ही है, किन्तु उनको भी जिसका आंगनतक नहीं दीख सकता, फिर गृहको वे कैसे देख सकेंगे ? जो इतना भारी व्यापक है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कि, जिससे गगनको भी सहजहीमें आच्छादन हो जाता है! ॥१९०॥ ऐसा जानकर श्रेष्ठ योगीजन जिसे 'परात्पर' कहते हैं, जो कि एकनिष्ठ एकांतिक भक्तोंके घरको स्वयं खोजता हुआ आजाता है, ॥ ९१ ॥ जो लोग काया-वाचा-मनकरके दूसरी कोई बात जानते ही नहीं, इस प्रकारके एकनिष्ठ भक्तोंका जो निरंतर पकनेवाला खेत है, ॥ ९२ ॥ हे पार्थ! इस त्रिभुवनको ही परब्रह्म पुरुषोत्तम माननेकी जिनकी सत्यतापूर्वक दृढभावना हो रही है, उन श्रद्धावंतोंके लिये जो आरामका बगीचा है; ॥ ९३ ॥ जो निरहंकारीको बडप्पन देता है, गुणहीनको ज्ञान देता है, तथा निस्स्पृहोंको सुखसाम्राज्य देता है ॥९४॥ संतुष्टियोंके लिये जो पकान्नभरी हुई स्थाली होजाता है, जो संसारके विषयमें निश्चिंत रहे हैं, उनको आश्रयरूप हो मातासरीखा रक्षक होजाता है और भक्ति जिसके घरको पहुँचनेका सीधा रास्ता होजाती है, ॥ ९५ ॥ हे जिष्णु पार्थ! अब कहांतक एक एकका वर्णन किया जायगा? सारांश, तुम समझो कि, जहांपर जानेसे जीव (मनुष्य) तद्रूपताको ही प्राप्त हो जाता है ॥ ९६ ॥ जैसे ठंढी हवाकी लहरसे गरम पानी भी ठंढा होजाता है, अथवा सूर्यके सामने जानेसे जैसे अंधकारका भी प्रकाश होजाता है, ॥ ९७ ॥ उसी प्रकार हे पार्थ! यह संसार जिस (ब्रह्म) के स्थानको पहुँचते ही मोक्षरूप बनता है, ॥ ९८ ॥ देखो, अग्निमें गिरायी हुई लकडी जिस प्रकार अग्निस्वरूप होजाती है, पश्चात् कोई हजार यत्नसे संशोधन करके उसमें काष्ठत्व प्राप्त कराना चाहे तो जैसा वह हो नहीं सकता, ॥ ९९ ॥ अथवा इक्षु (गन्ना) की एकबार खांड बना देनेपर, कोई कैसा भी बुद्धिमान् या युक्तिमान् जैसा उस खांडको फिर इक्षुत्व नहीं प्राप्त करा सकता किंवा लोहेको एकबार स्पर्शमणिका स्पर्श होनेपर उसका, ॥ २०० ॥ जो सुवर्ण बन जाता है, चाहे वह लोहा कितना भी कोई यत्न क्यों न करे फिर लोहपनेको प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १ ॥ वैसेही एकबार दूधका घृत बन जानेसे जैसे उसका दुग्धपना नष्ट होजाता है, तद्वत् एकबार जिसे प्राप्त होनेपर फिर जन्म-मरणरूप आवृत्तियां जहां बंद होजाती हैं, ॥ २ ॥ हे पार्थ! वह मेरा सर्वश्रेष्ठ, अविनाशी और सत्य पद वैसाही है। हे धनंजय! यह मेरा हृदयंगत गुप्त रहस्य मैं केवल तेरे प्रेमके लिये यहां स्पष्ट कर रहा हूं ॥ ३ ॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे भरतर्षभ ! और भी इसे जाननेका एक सुलभ उपाय है । देहावसानमें योगीलोग जिस मेरे स्वरूपमें सहजमें मिलजाते हैं, उसीको तुम गुह्य स्वरूप समझो ॥ ४ ॥ परन्तु कदाचित् किसी समय अकस्मात् असमयमें देहपात होजाय तो फिर देह धारणकरना अवश्य होता है ॥ ५ ॥ और यदि शास्त्रोक्त शुद्ध समयमें वे देहविसर्जन करें, तो अवश्य ब्रह्मस्वरूप होजाते हैं, परन्तु यदि असमयमें देहपात होजाय तो फिर जन्म-मरणके फेरेमें वे आजाते हैं ॥ ६ ॥ इसलिये 'सायुज्यता' याने परब्रह्ममें मिल जाना और 'पुनरावृत्ति' याने जन्म-मरण, ये दोनों देहपातके समयपर निर्भर हैं, अतएव प्रसंगानुसार उन दोनोंका यहां वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥ हे पार्थ ! ध्यानसे सुनो, मृत्युकी तंद्रा ( नशा ) आतेही ये पंचमहाभूत अपना अपना मार्ग पकड निकल जाते हैं ॥ ८ ॥ परन्तु, ऐसी स्थितिमें बुद्धि भ्रमसे ग्रसित न होवे, स्मृति अंधी न बनजाय तथा मन भी नष्ट न हो ॥ ९ ॥ संपूर्ण पंचप्राणनामक चेतनासमूह ब्रह्मस्वरूपके अनुभवरूपी कवचसे लपेटा रहनेके कारण निर्भय हो, तरुणसा बनजाय॥२१०॥ इस प्रकार अतींद्रियोंका समुदाय अंतसमयमें चङ्गा रहकर घबडा न जाय और सावधानीसे 'सायुज्यता' की प्राप्ति होय, यह बात तभी हो सकती है जब सर्व प्रथम शरीरगत अग्नि ( उष्णता ) की सहायता मिले ॥ ११ ॥ देखो पार्थ ! यदि, वायुसे अथवा पानीसे दीपककी ज्योति बुझजाय और उसका प्रकाशसामर्थ्य नष्ट हो, तब अपनी दृष्टि बहुत अच्छी होनेपर भी क्या उसे देख सकती है ? ॥ १२ ॥ तद्वत् मृत्युके समय अंतर्बाह्य भयंकर वातप्रकोपसे जब देह व्याप्त होजाता है, तब शरीरगत अग्निकी तेजज्योति बुझजाती है, ॥१३॥ ऐसे समयमें जब प्राणमें प्राण ही नहीं रहते, वहां बुद्धिका कौन ठिकाना? एवंच यही सिद्ध होता है कि,शरीरगत उष्णताविना देहमें जीवनतत्त्व नहीं रह सकता ॥१४॥ हे पार्थ ! इस देहसे यदि अग्नि ( उष्णता) चली जाय, तो फिर यह देह ही किस कामका ? इसे देह कहनेकी अपेक्षा कीचडका गीला गोला ही समझो । ऐसे समयमें योगी अंधेरेमें आयुष्यका अंतकाल व्यर्थ खोते रहते हैं ॥१५॥ और ऐसी अवस्थामें पिछली बातोंका स्मरण किया जाय या देहको छोडकर आत्मरूपमें मिल जानेकी चेष्टा की जाय ॥ १६ ॥ तो उसी समय इस शरीरके कफादिकोंसे कीचड बनी हुई वह जीवनज्योति ही नष्ट होती है और अगली पिछली सब बातोंका स्मरण ही नहीं होता ॥१७॥ इसलिये, जिस प्रकार पृथ्वीमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



गडा रखा द्रव्य-संचय प्राप्त होनेके पहले ही अपने हाथका दिया बुझ जाय, उसी प्रकार पूर्व किया हुआ योगाभ्यास मृत्यु आनेके पहले ही नष्ट होजाता है ॥ १८ ॥ हे अर्जुन ! अब विशेष न कहकर इसका मुख्य सारांश कहता हूं कि, ज्ञानको मुख्य आधार शरीरगत अग्निका ही है, इसलिये प्राण-प्रयाण-समयमें अग्निको पूर्ण सामर्थ्यवान् बना रखना परमावश्यकीय बात है ॥ १९ ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

तब, शरीरके हृदयभागमें अग्निर्ज्योतिका प्रकाश हो, बाहरमें शुक्लपक्ष, दिन तथा उत्तरायणके छह मासोंमेंसे कोई महीना हो ॥ २२० ॥ इस प्रकारके संपूर्ण योगोंका सुयोगकाल आनेपर जो ब्रह्मज्ञानी देहका विसर्जन करता है, वह ब्रह्मस्वरूप होजाता है ॥ २१ ॥ हे पृथापुत्र ! अच्छी तरह समझ लो कि, इस समयका कैसा माहात्म्य और कैसा सामर्थ्य है ! हे पार्थ ! मोक्षके स्थानको प्राप्त करनेके लिये यही सुलभ और सरल मार्ग है ॥ २२ ॥ इस मार्गके सोपानकी शरीरगत अग्नि पहली पैंडी, अग्निकी ज्योति दूसरी, दिनका समय तीसरी, शुक्लपक्ष चौथी, ॥ २३ ॥ तथा उत्तरायणके छह मास, इस सोपानकी आखिरी पांचवीं पैंडी है । योगीजन इन पांचपैंडियोंके मार्गसे ही सायुज्यतारूपी मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥ इस कारण देहपातके लिये यह बहुत अच्छा काल कहा जाता है । इसीको ' अर्चिरादि ' मार्ग, या सूर्यकिरणसे जानेका मार्ग कहा जाता है । हे अर्जुन ! साथमें देहत्यागके अयोग्य कालका भी वर्णन करता हूं, तुम सुनो ॥ २५ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

मृत्युसमयमें वायु और कफके प्रक्षोभसे हृदयमें अंधकार बन जाता है ॥ २६ ॥ संपूर्ण इन्द्रियां लकडीसरीखी हो जाती हैं, स्मृतिकी मतिमें भ्रम उत्पन्न होता है, मन स्थिर नहीं रहता तथा प्राण रुके पडे रहते हैं ॥ २७ ॥ शरीरस्थ अग्निका तेज नष्ट होजाता है और सर्वत्र केवल धूम्रही धूम्र होजाता है, जिससे शरीरकी चेतनावृत्तिका प्रकट होना ( संचलन ) भी बंद होजाता है ॥ २८ ॥ जैसे चन्द्रमाके सामने सजल और घन-अभ्रपटल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


आनेपर न अंधकार ही होता है न प्रकाश ही होता, इस प्रकार भ्रमयुक्त धुँधलापनसा बना रहता है, ॥ २९ ॥ तद्वत् जीवका जीवित ऐसा स्तब्ध हो जाता है कि, न मृत्यु होती है न जीवित रहता है और आयुर्मर्यादा तो मृत्युके घरमें ही पहुँच चुकी रहती है ॥२३०॥ इस प्रकारकी स्थितिमें मन, बुद्धि तथा इंद्रियोंकी चारों तरफके धूएँसे ऐसी रुकावट होते ही, जन्मभरमें कष्ट करके प्राप्त किये हुए सब लाभोंकी ही वह मृत्यु समझना होता है, ॥ ३१ ॥ और हाथमें प्राप्त हुआ ही लाभ जब चला जाता है, तो नये लाभकी आशा ही क्यों करनी ? तात्पर्य, प्राणप्रयाण-समयमें ऐसी दुर्दशा होती है ॥ ३२ ॥ हे पार्थ ! यह वर्णन हुआ शरीरके अंदरकी स्थितिका, बाहरकी स्थिति भी ऐसी ही प्रतिकूल अर्थात् कृष्णपक्ष, रात्रिका समय, तथा दक्षिणायनके छः मासोंमेंसे एक महीना, ॥ ३३ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार जन्म-मरणके नित्य आवागमनके घुमावको अखंडित रखनेवाल लक्षण जिसके मृत्युसमयमें एकत्रित होते रहते हैं, क्या ब्रह्मस्वरूप प्राप्तिकी कथा भी उसके कर्णरन्ध्रमें प्रवेश कर सकती ह ? ॥ ३४ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारकी दुरवस्थामें जिस पुरुषका देहपात होजाता है, वह योगी होनेके कारण चंद्रलोकतक पहुँच सकता है, किन्तु कुछ काल पीछे, वहांसे गिरता हुआ फिर इस मृत्युलोकके संसारमें अवश्य आजाता है ॥ ३५ ॥ हे भारत ! हमने जिसे अयोग्य काल कहा था वह यही है, और जन्म-मरणरूपी आवागमनके गामको पँहुचानेवाला जो ' धूम्रमार्ग ' कहा वह भी यही है ॥ ३६ ॥ दूसरा जो ' अर्चिरादि ' मार्ग है वह जागृत, वसाहुआ, स्वतंत्र और सब प्रकारसे सुखशांतिपूर्वक निवृत्ति ( मोक्ष ) तक पहुँचनेवाला है ॥ ३७ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥ २६ ॥

इस प्रकार ' शुक्ल ' तथा ' कृष्ण' अथवा ' अर्चिरादि' और ' धूम्र ' ऐसे ये योगिजनोंके दो मार्ग अनादिकालसे प्रचलित हो रहे हैं, उनमेंसे एक मार्ग सीधा और दूसरा आडा टेढा है, तथापि दोनोंका मैंने विस्तृत वर्णन कर तुम्हें समझा दिया है ॥ ३८ ॥ इसमें हेतु यह कि, अपना कल्याण जिसमें हो, उस सुमार्ग, कुमार्गको देखना, सत्यासत्यका निर्णय करना और अपने हिताहितको अच्छीतरह समझ लेना प्रत्येकका कर्तव्य है ॥ ३९ ॥ देखो, अच्छी सुरक्षित नौका देखनेपर भी पार जानेके लिये कोई

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथाह पानीमें कूद सकता है ? किंवा अच्छा राजमार्ग जानता हुआ कोई जानबूझकर टेढे जंगलमें घुस जायगा ? ॥ २४० ॥ जो अमृत और विषके भेदको जानता है, क्या वह अमृतको छोड सकता है ? तद्वत् जो सीधे और सरलमार्गको जानता है वह कभी भी आडेटेढे मार्गसे नहीं जा सकेगा ॥ ४१ ॥ अतएव सत्य क्या है, असत्य क्या है, इस बातकी पहले परीक्षा करनी चाहिये, कारण परीक्षा करनेपर अकालिक संकटसमयमें भी किसी प्रकारकी हानि होनेका संभव नहीं रहता ॥ ४२ ॥ अन्यथा, देहपातके समयमें इन दो मार्गोंविषे बडी कठिन भ्रान्ति उत्पन्न होनेका संभव रहता है, जिससे आजन्म किया हुआ योगाभ्यास वृथा हो जाता है ॥ ४३ ॥ अंतकालमें यदि योगी भूलसे अर्चिरादिमार्गको छोड धूम्रमार्गमें प्रविष्ट हो, तो उसे संसारके दामनमें बँध जाकर, अरघटमालिकासा घूमते ही रहना पडेगा ॥ ४४ ॥ हे पार्थ ! इस महाकष्टावस्थाको देख, इससे किस तरह योगी छूट जाय, इस बातका विचार करके ही मैंने इन दोनों योग मार्गोंका स्पष्ट निरूपण कर दिया है ॥ ४५ ॥ इन दो मार्गोंमेंसे जीव, एकसे ब्रह्मस्वरूप होजाता है और दूसरेसे जन्म-मरणरूपके चक्करमें आजाता है, परन्तु देहान्तके समय दैवयोगसे जिसे जो माग मिले वही सही ! ॥ ४६ ॥

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

देहावसान समयमें अपनी इच्छानुसार सब कुछ होवे, यह तो असंभव ही है, दैवयोगसे अकस्मात् जो कुछ मिलनेवाला हो, वही अहेतुक मिलेगा, फिर एकमार्गसे जाकर ब्रह्मरूपताकी प्राप्ति हो यह भी कैसे हो सकता है ? ॥ ४७ ॥ ऐसी शंकापर, 'देह रहे अथवा जावे, हम तो केवल ब्रह्मरूप ही हैं' कारण रस्सीपर जो मिथ्या सर्पका भास होजाता है, उसके लिये भी रस्सी ही मूलकारण है ॥ ४८ ॥ क्या कभी पानी भी इस बातका विचार करता है, कि मुझमें तरङ्गत्व है या नहीं ? वह तो सब अवस्थाओंमें अर्थात् तरंगें रहती या न रहती हों, जलस्वरूप ही रहता है ॥४९॥ वह तरंगोंके उद्भवपर न उत्पन्न होता है, और न उनके नष्ट होनेपर नष्ट होता है । इस प्रकार विचार कर, जो देहके धारण करते रहनेमें ही ब्रह्मस्वरूपत्वको प्राप्त होजाते हैं वे ही 'विदेही' कहे जाते हैं ॥ २५० ॥ अब अर्जुन ! तुमही विचार सकते हो कि, ऐसे विदेही पुरुषोंमें जब देहका कुछ नाम-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


गाम ही न रहा, फिर उन्हें मृत्यु किस काल और कैसे हो सकती है ? ॥ ५१ ॥ ऐसी स्थितिमें उन्हें मार्ग शोधनेकी भी क्या आवश्यकता रहेगी ? और उनके लिये कहांसे कहां, और कब जानेका रहा है ? क्योंकि सब देश, काल इत्यादि वे स्वयं ही बन जाते हैं ॥ ५२ ॥ देखो, अर्जुन ! जिस समय घट फूटता है, तो उसमेंका आकाश जब सीधे मार्गसे चला जाय तभी आकाशतत्त्वमें मिले, अन्यथा नहीं मिलसकता, ऐसा कभी हो सकता है ? ॥ ५३ ॥ सच तो यह है कि, घटके नाशके साथ ही केवल घटाकारका नाश होता है, किन्तु उसमें जो मूल आकाश रहता है, क्या घटके पहले वह नहीं था ? अथवा घटके नाशके बाद नहीं रहेगा ? ॥ ५४ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारके ब्रह्म-ज्ञानसे जो ब्रह्मरूप हो रहे हैं, उन योगिजनोंको योग्यायोग्य मार्गके ढूँढनेका संकट कभी नहीं पडता ॥ ५५ ॥ अतएव हे मध्यमपाण्डव अर्जुन ! तुम निरंतर योगयुक्त बने रहो, जिससे तुम इस उपायद्वारा आपही आप ब्रह्मस्वरूप हो जाओगे ॥ ५६ ॥ फिर यह देहका बंध किसी समय चाहे रहे चाहे चला जाय, तुम्हारे अनिर्बंध ( स्वतंत्र ) ब्रह्मस्वरूपमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं हो सकती ॥ ५७ ॥ ऐसा ब्रह्मस्वरूप योगी, कल्पके आदिमें विश्व रचनाके समय जन्मको नहीं पाता, तथा विश्व प्रलयमें मृत्युके हाथ नहीं जाता और कल्पादि या कल्पान्तके बीचकालमें भी यह स्वर्ग, यह संसार इत्यादि की सुंदरतासे मोहित नहीं होता ॥ ५८ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारका ज्ञान जिस योगीको होजाता है, वही इस ज्ञानके मार्गकी सरलताको पाता है, कारण वह उन विषयोपभोगोंको ऐसे तुच्छ समझता है कि, उन्हें लातोंसे कुचलता हुआ सीधे मार्गद्वारा आत्मस्वरूपको ही पहुँचता है ॥५९॥ उसकी योग्यताका क्या बखान किया जाय ? अरे, इन्द्रादि देवोंके जो सर्वसुखभरे साम्राज्य स्वर्गमें गर्जते रहते हैं, उन्हें तो वह कपर्दिका ( कौडी ) के समान त्याज्य समझता हुआ धिक्कारता रहता है ॥ २६० ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥२८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादेऽक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

यदि संपूर्ण वेदपठनसे प्रत्यक्ष वेदोनारायण बनजाय, या शास्त्रोक्तविधिसे यज्ञोंके द्वारा अपरिमित फलप्राप्ति की जाय अथवा पुरश्चरण या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दानोंकरके बडा पुण्यसंचय प्राप्त हो, ॥ ६१ ॥ तथापि उस निर्मल शुद्ध और अविनाशी ब्रह्मकी तौलमें उन सब सुकृतोंका फूलाफला संपूर्ण बगीचा भी बराबरीमें नहीं प्राप्त होगा ॥ ६२ ॥ जो सुख नित्यानंदकी तुलनासे कम नहीं है, स्वर्गसुखसे अत्यंत बडा है; जिस सुखके वेद, यज्ञ इत्यादि साधन हैं ॥ ६३ ॥ जो सुख कभी विकारवश नहीं होता या जिसकी घृणा नहीं आती तथा जो कभी समाप्त ही नहीं होता अथवा उपभोगनेवालेकी इच्छासे वृद्धिंगत होता जाता है, इतना ही नहीं किन्तु जो अपने चढेबढे गुणोंसे प्रत्यक्ष परब्रह्मका सगा-संबंधी ही क्या ? सगा भाईसा बनता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकारका जो सुख है, वह दृष्टिको सुखकारी होनेके कारण जहां प्रारब्ध हो, वहां जा बैठता है,जो स्वर्ग-सुख किसीको सौ यज्ञोंके करनेपर भी प्राप्त नहीं होता, ॥ ६५ ॥ ऐसे महान् स्वर्गसुखको भी जब श्रेष्ठ योगी जन अपनी दिव्य दृष्टिद्वारा देखकर ब्रह्मज्ञानकी योग्यतासे अपनी हथेली पर तौलते हैं, तब उन्हें वह हलका तथा कम दर्जेका प्रतीत होता है ॥ ६६ ॥ तब उस सुखकी सीढी बनाकर उसकी पैंडीसे योगी परब्रह्मपदपर चढ जाते हैं ॥ ६७ ॥ अस्तु, इस प्रकार जो स्थावर-जंगमात्मक सम्पूर्ण विश्वोंके इकट्ठे किये हुए वैभवरूप भगवान् हैं, जिनकी आराधनामें ब्रह्मदेव तथा शंकर निमग्न रहते हैं, जो योगीजनोंके उपभोग्य वस्तु हैं, ॥६८॥ जो सकलकलाओंकी कुंजी हैं, जो परमानन्दकी मूर्ति हैं, जो सम्पूर्ण विश्वके जीवनके जीवन हैं, जो सर्वज्ञताका उद्गमस्थान हैं, यादवकुलके दिव्यकुलदीपक हैं,उन श्रीकृष्ण परमात्माने उस गुप्त रहस्यको भक्तश्रेष्ठ अर्जुनको बडे प्रेमके साथ निवेदन किया ॥ ६९ ॥२७०॥ ज्ञानदेव कहते हैं, श्रोतागणो ! इस प्रकारकी कुरुक्षेत्रकी वार्ताको संजय धृतराष्ट्रसे कह रहा है, उसी वार्ताका आगेका वृत्तान्त आप भी सुनिये ॥ २७१ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः हिन्दी-भाषानुवादे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

# श्री ज्ञानेश्वरी।

## नवमोऽध्यायः ९.

श्रोतागणो और सन्त महात्माओ ! सुनिये, यदि एकाग्रचित्तसे सावधानीके साथ मेरी इस कथाको आपलोग श्रवण करते रहेंगे, तो मैं प्रतिज्ञावचनसे कह सकताहूं कि, आप सहजहीमें संपूर्ण सुखोंको प्राप्त होंगे ॥ १ ॥ हे सन्तो ! यह बात मैं अभिमानसे नहीं कह रहा हूं, कारण आप सर्वज्ञ हैं और आपलोगोंके सामने मैं बालक हूं, इसलिये आप मेरी बातपर विशेष ध्यान दे दें ऐसी इच्छासे मैं प्रेमभरी प्रार्थना कर रहा हूं ॥ २ ॥ कारण, श्रीमान् पिताका नैहर प्राप्त होनेपर हठ भी क्यों न किया जाय ? और उसके मनोरथपूर्तिमें कमी भी किस बातकी हो ? इसलिये आप श्रीमानोंके प्रेमसे मैं भी अपने मनोरथोंकी सिद्धिको अवश्य प्राप्त कर सकूंगा ॥ ३ ॥ अभीतककी जो आपकी कृपार्द्रदृष्टि रही, उससे मेरे खेत या बगीचाओंका पूर्ण बहार आरहा है, और उसीकी शीतल छायामें बैठनेपर, संसारतापोंसे थका हुआ मैं शान्तिको प्राप्त कर उस छायामें लोटपोट रहा हूं ॥ ४ ॥ हे संतो ! आप केवल सुखामृतके दह ही हैं, इसलिये जितना चाहें उतना अमृत मैं पा सकता हूँ फिर ऐसे सुअवसरमें शान्तचित्तसे प्रेमभरी बातें करनेमें यदि मैं हिचक जाऊँ तो फिर ऐसा सुअवसरभी मुझे कब आवेगा?॥५॥ जिस प्रकार माता अपने नन्हे बालकके तोतले बोल और टेढे-मेढे चलनेका कुतूहल मानकर सुखी होती है, ॥ ६ ॥ उसी प्रकारका आप सर्वज्ञ संतजनोंका प्रेम मुझे प्राप्त हो, इस उत्कंठासे मैं आपलोगोंके सामने बोलनेकी ढिठाई कर रहा हूं ॥ ७ ॥ अन्यथा, आप जैसे सर्वज्ञ श्रोतागणोंके सामने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मुझ जैसे वक्ताके वक्तृत्वकी तुलना करना, मानो सरस्वतीपुत्रको पाठ देकर सिखाना ही है ! ॥ ८ ॥ देखिये, जुगुनू कितना ही बडा क्यों न हो, क्या वह सूर्यके महातेजके सामने अपना स्वल्प प्रकाश प्रगट कर सकता है ? और ऐसा कोई रसपरिपाक भी है जो अमृतकी थालीमें परोसने योग्य हो सके ? ॥ ९ ॥ अजी ! शीतकिरण चन्द्रमापर पंखा हिलाना, किंवा नाद-तत्त्वको गाना सुनाना, अथवा अलंकारोंको गहने पहनाना, क्या ऐसी बातें कभी संभवती हैं ? ॥ १० ॥ अथवा ऐसा भी कभी हो सकता है कि, सुगंध अपनेको ही सूँघे ? अथवा सागर किसी दहमेंही स्नान करे ? या सर्व आकाश जिसमें समाजाय ऐसा स्थल-विस्तार भी कोई हो ? नहीं कभी नहीं ॥ ११ ॥ उसी प्रकार, आपका चित्त संतोषित होकर आपके मुखसे धन्यवादोद्गार जिसे प्राप्त हो रहे हैं, ऐसा आनंदित करनेवाला वक्तृत्व भी आप कहां पासकते हैं ? ॥ १२ ॥ परन्तु, विश्वको प्रकाशित करनेवाले सूर्यको, क्या हाथसे बनी हुई बत्तीसे आरती नहीं की जासकती ? अथवा अथाह जलका संचय जो सागर उसे चुल्लूभर जलसे अर्घ्यप्रदान नहीं दिया जाता ? ॥ १३ ॥ हे कृपासागरो ! आप श्रोतालोग शंकरकी मूर्तियें हैं, और मैं आपका बालक दुर्बल भक्त हूँ तथा मेरा वक्तृत्व केवल निर्गुण्डीके पत्रोंकासा है, तथापि उसे बेलपत्रसा समझकर आप अवश्य उसका स्वीकार करेंगे ही ॥ १४ ॥ देखिये, अज्ञान बालक पिताकी थालीमें हाथ डालकर उसमेंसे पिताको ही ग्रास देने लगे, सो पिता भी उसका ग्रास लेनेमें उत्सुकतासे मुँह आगे करता है, ॥ १५ ॥ तद्वत् बालबुद्धि मैं आपलोगोंसे यदि टेढी-मेढी बातें बनाकर आपसे विनोद करूंगा तथापि आप संतोषित हो, मुझपर प्रेमही करेंगे, क्योंकि प्रेमका यह स्वाभाविक धर्म ही है ॥ १६ ॥ और सन्तजन जिसको अपनाते हैं, उस आश्रितसे आपको बडा प्रेम रहता है, यह आपका स्वाभाविक ही व्रत है, इसलिये मेरी इस ढिठाईका आपको भार नहीं मालूम होगा ॥ १७ ॥ देखिये, लोगोंमें अनुभव है कि, स्तनपान करनेवाले बालकके मुखका झटका लगनेपर माता अधिक पन्हाती है, उसी प्रकार प्रेमीके क्रोधके झटकेसे प्रेम भी उछलकर दुगुना होजाता है ॥ १८ ॥ अतएव मेरे सरीखे बालकके शब्दोंसे आपका सोया हुआ कृपालुत्व जागृत हो रहा हो, यही समझकर मैं भी बोल रहा हूं ॥ १९ ॥ विचारकर देखा जाय, तो क्या चांदनी पक्की बनानेके लिये पालमें दबाकर ढका दी जाती है ? अथवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वायुको कोई ऐसा हुक्म फरमाता है कि तू इसतरह ही बहती रहो ? किंवा आकाशको कोई खोलमें ढका सकता है या ऐसी खोल भी बना सकता है कि जिसमें वह ढका जाय ? ॥ २० ॥ अजी ! जिस प्रकार जलको पतला बनाना नहीं पडता, अथवा माखनको मथानेके लिये उसमें मंथा नहीं डाला जाता, उसी प्रकार जिस गीतार्थको देख मेरा वक्तृत्व आपही आप लज्जित हो लौट जाता है, ॥ २१ ॥ इतना ही क्या परन्तु शब्दब्रह्मरूपी वेद भी अपनी गतिको कुंठित समझकर, जिस खाटपर सोता रहता है, उस गीतार्थको प्राकृतभाषामें योग्य रीतिसे स्पष्ट करनेमें मेरी कैसी योग्यता होगी ? ॥ २२ ॥ परन्तु, ऐसी कठिनतापर भी जो मेरे सरीखे दुबलेका ढाढस करना है, वह केवल आपलोगोंका प्रेमपात्र बनना, यही इसका उद्देश है ॥ २३ ॥ अब मेरी यही प्रार्थना है कि, जिसमें चंद्रमासे भी अधिक शीतलता है और अमृतसे भी बढकर जीवनशक्ति है, ऐसा जो आप लोगोंका अवधान-दान, उससे आप मेरे मनोरथोंका पोषण कर, मुझे उत्तेजित करते रहिये ॥ २४ ॥ कारण, जब आपकी कृपावर्षा होती है, तभी मेरे मनोरथोंकी सिद्धियें सफलीभूत हो जाती हैं, और जब वह कृपावर्षा न हो, और आप लोग यदि उदासीनवृत्तिही रहजायँ, तो जो ज्ञानांकुर प्राप्त होगया हो, वह भी सूख जाता है ॥ २५ ॥ सुजन संतो ! सुनिये, यदि वक्ताके वक्तृत्वको श्रोताका अवधानरूपी खुराक मिलजाय तभी सिद्धान्तप्रतिपादक शब्द हृष्ट-पुष्ट हो, मुखसे निकलते हैं, ॥ २६ ॥ और अर्थ तो शब्दके बाहर आनेकी बाट ही जोहता रहता है, फिर अभिप्रेत अर्थोंकी परंपरा शुरू होती जाती है, जिससे बुद्धिपर भावरूपी पुष्पोंकी तरुण-बहार आजाती है ॥ २७ ॥ इसलिये, वक्ता और श्रोताकी एकतानतारूपी वायुका संचार होनेपर हृदयाकाशमें रसरूपी मेघ उद्भूत होते हैं, किन्तु श्रोतालोग यदि उदासीनतासे अनवधान रहें, तो बना-बनाया वक्तृत्वररूपी मेघ पिघल भी जायगा ॥ २८ ॥ देखिये, चंद्रकांतमणि पसीजता है, यह बात सच है; परन्तु पसीजनेका सामर्थ्य तो चंद्रमामें रहता है; तद्वत् योग्यश्रोताओंकी सावधानताविना वक्ताका वक्तृत्व हो ही नहीं सकता ! ॥ २९ ॥ परन्तु क्या चावलोंको खानेवालोंसे कहना पडता है कि, हमें मीठा बना लीजिये, कलसूत्री पुतलियें क्या नचानेवाले सूत्रधारकी प्रार्थना करती हैं कि, हमें नचाओ ? ॥ ३० ॥ और वह सूत्रधार जो पुतलियोंको नचाता है वह क्या उन पुतलियोंके हितके लिये ? नहीं, नहीं; किन्तु अपने ज्ञान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( कला ) की प्रसिद्धिके लिये है। तब हमें भी व्यर्थकी खटाटोपसे क्या काम है ? ॥ ३१ ॥ इतनी बातें हो रही हैं, इतनेमें सद्गुरुने कहा, " अरे इसमें क्या है ? क्यों डरते हो, तेरा अभिप्राय समझगये, अब तुम श्रीकृष्णभगवान्ने जो कहा है, उसे निवेदन करो " ॥ ३२ ॥ यह सुनकर आनंदित हो, बडे उत्साहके साथ निवृत्तिदासशिष्य-ज्ञानदेव बोले—' बहुत अच्छा ' अब आपकी आज्ञानुसार वही कहता हूं जो भगवान् श्रीकृष्णने कहा ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

हे पार्थ ! यह मेरे हृदयके अंदरमें रहनेवाला सर्वज्ञानोंका आदिबीज जो अत्यंत गुप्त रहस्य है, उसे आज फिर मैं तुम्हें कहताहूं ॥ ३४ ॥ यदि तुम्हें ऐसी शंका हो कि, इतना अंतर्हृदयका गुह्यसे गुह्य खुला करनेमें ऐसा कौनसा प्रसंग यहां उपस्थित हो रहा है ? ॥ ३५ ॥ तो हे बुद्धिमान् पार्थ ! सुनो, तुम तो भक्तिभावनाका मूर्तिमंत अवतार ही हो, कारण जो मैं कहता हूं उसे तुम सावधानताके साथ सुनकर बडी श्रद्धाके साथ हृदयमें धारण करते रहते हो ॥ ३६ ॥ अतएव हे अर्जुन ! हम चाहते हैं कि, हमारे मनका गुप्त-गुह्य यदि प्रकट हो, तो होजाय; तथा न कहने सरीखी बात भी कह दीजाय, किन्तु जो मेरे मनमें है सो सब तेरे अन्तःकरणमें जैसाका तैसा जा बसे, यही मेरी इच्छा है ॥ ३७ ॥ देखिये पार्थ ! स्तनोंमें दूध गुप्तरूपसे भरा रहता है, तो क्या वह स्तनोंको मीठा लगता है ? नहीं, किन्तु जब उसका मीठा स्वाद लेनेवाला एकनिष्ठ जीव प्राप्त होता है, तब उस वत्सकी इच्छातृप्तिकरनेका गौको सहज ही प्रेम उमडता है ॥ ३८ ॥ अनाजकी कोठडीमेंसे बीजको निकालकर, अच्छी बनीबनायी भूमिमें अपने हाथसे फेंककर बो दिया जाय तो क्या वह व्यर्थ गया ऐसा माना जायगा ? ॥ ३९ ॥ इसलिये, जिसका मन शुद्ध है, बुद्धि निर्मल है, जो अनिंदक और एकनिष्ठ है उस प्रेमी भक्तको अपना गुह्यतर गुह्य भी बेशक, आनंदसे कहा जाता है ॥ ४० ॥ और इस प्रस्तुत प्रसंगमें तो उपरोक्त गुणयुक्त, सिवाय तेरे, यहां कोई है ही नहीं; अतएव जो मेरा गुह्य है, उसे मैं तुझसे छिपाना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं चाहता ॥ ४१ ॥ हे पार्थ ! मेरा बारबारका गुह्य-गुह्य शब्द सुनकर तुम्हें उसके लिये जरा अनादर हो रहा होगा, अतएव अब तुम्हें विज्ञानके साथ ज्ञानको कहता हूं ॥ ४२ ॥ परन्तु वह ऐसा परीक्षित हो कि, जिस-प्रकार सच्चे तथा झूठे सिक्के एकत्र मिलनेपर जैसे वे अलग अलग कर दिये जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान तथा विज्ञानको मैं अलग अलग परखना चाहता हूं ॥ ४३ ॥ अथवा एकत्र हुए दूध और पानीको जैसे राजहंस अपनी चंचुद्वारा अलग अलग छांटता है, उसी प्रकार ज्ञान और विज्ञानको तुम्हें अलग अलग करके दिखा दूंगा ॥ ४४ ॥ फिर, जैसे वायुके वेगमें मिला हुआ अनाजका भूसा उडजाता है और केवल धान्यका ढेर ही पीछे बच जाता है, ॥ ४५ ॥ तद्वत् ज्ञान और विज्ञानकी समझके साथ छानबीनसे परीक्षा होनेपर, केवल ज्ञानकी प्राप्ति होती है तब मनुष्य, जन्म-मरणरूपी संसारको इस नामरूपात्मक संसारके हवाले कर, परमज्ञानके द्वारा अक्षय्य मोक्षसुखके सिंहासनपर विराजमान होजाता है ॥ ४६ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

वह ज्ञान सर्वविद्याओंमें महाश्रेष्ठ आचार्यपदपर विराजमान है । वह सब गुह्योंमें गुह्यतम होनेसे सबका स्वामी है, सब पवित्रवस्तुओंमें अग्रगण्य है, ॥ ४७ ॥ उसी प्रकार वह ज्ञान धर्मका निजधाम है और जो सर्वश्रेष्ठ होनेसे उसकी प्राप्ति होनेपर जन्म-मरणका काम ही नहीं रहता ॥ ४८ ॥ वह ज्ञान गुरुमुखसे अल्पमात्र निकला हुआसा प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः वह जिस तिसके हृदयमें स्वयंभू ही बना रहता है, और आपही आप उसे प्रत्यक्ष होने लगता है ॥ ४९ ॥ तद्वत् उसकी प्राप्तिके लिये जिस समय आत्मसुखकी सीढी चढी जाती है, तब उसी समय उसकी भेंट होजाती है, फिर भोक्ता, भोग्य और भोग यह त्रिपुटी नष्ट होनेसे भोक्ताका भोक्तृत्व भी उसीमें लीन होजाता है, ॥ ५० ॥ परंतु इस लयस्थितिके इस पारकी सीमापर ही अन्तरंग परमसुखसे भरकर स्थिर रहजाता है । ऐसा वह ज्ञान सुलभ तथा सुगम होकर प्रत्यक्ष परब्रह्म ही है, ऐसा समझो ॥ ५१ ॥ हे पार्थ ! इसके अतिरिक्त इस ज्ञानका विशेष लक्षण यह है कि, जब यह एकबार प्राप्त होजाता है, तब फिर कभी नष्ट नहीं होता तथा अनुभव करने-पर कम नहीं होता या उसमें न कभी मलिनता भी आती है ॥५२॥ हे बुद्धि-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मान् पार्थ ! इसपर तुम्हें यह आशंका उपस्थित हो सकती है कि, ऐसी अनुपमेय और अमोल वस्तु लोगोंके हाथसे कैसी बच रही ? ॥ ५३ ॥ जो लोग एकरुपया सैकडे व्याजसे अपनी पूँजी बढानेमें बलती हुई आगमें भी कूदनेका साहस करनेमें पीछे नहीं हटते, क्या अनायास प्राप्त होनेवाले इस आत्मसुखके माधुर्यको वे छोड सकते हैं ? ॥ ५४ ॥ और जो ज्ञान पवित्र, रम्य, सुखलभ्य होकर आत्मसुख देनेवाला है, फिर भी जो धर्मानुकूल होकर आत्मतत्त्वका लाभ करदेता है, ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सब तरहसे जिसमें आनंदही आनंद भरा है, लोगोंने ऐसे सर्वसुखभरे हुएको हाथसे छोडा भी कैसा हो ? निस्सन्देह ऐसी शंका अवश्य उपस्थित हो सकती है, परन्तु हे पार्थ ! तुम इस शंकाको अपने हृदयमें स्थान मत दो ॥ ५६ ॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

हे परंतप अर्जुन ! ध्यान दो, देखो, दूध स्वयं पवित्र तथा मधुर रहता है, और वह गौकी पतलीसी त्वचाके परदेकी ओटमें पास ही भरा रहता है, परन्तु किलनी ( गीचड ) उस दूधको छोड क्या रक्तको ही नहीं पीती रहती है ? ॥५७॥ अथवा कमलकंद (भौंरे) और दादुर दोनों एकही कमल के पास रहते हैं, परन्तु भौंरे तो कमलके परागका मधु सेवन करते हैं, और दादुरोंके लिये तो केवल कीचडही रहता है ! ॥ ५८ ॥ अथवा किसी भाग्य-हीनके घरमें हजारों रुपयोंसे भरे हण्डेके हण्डे धरे रहते हैं, और वह उसी घरमें रहकर भी भूखा मरता है, किंवा आजन्म दरिद्रावस्थामें ही दिन काटता रहता है ! ॥५९॥ तद्वत् सर्वसुखोंका भण्डार आत्माराम जो मैं, वह अन्तरङ्गमें प्रत्यक्ष रहता हूँ तब भी मायामोहसे मोहित पुरुषोंको विषयोप-भोगमें ही इच्छा होती है ॥६०॥ अपरिमित मृगजलको आखोंसे देख, जैसे मुखमें रही अमृत-घूंट उगल दी जाय, किंवा सींपपर मोहित हो, गलेमें बँधा हुआ पारसमणि फोडं दिया जाय, ॥ ६१ ॥ उसी प्रकारकी स्थितिमें प्राप्त हो अहंममताकी घमंडमें पडकर ये बिचारे विचारहीन पुरुष मेरेतक नहीं पहुँचते, इसलिये जन्म-मरणरूपी दोनों तीरोंमें निरंतर डुबकी खाते रहते हैं ॥ ६२ ॥ अन्यथा, मैं कैसा हूं कि बिलकुल नेत्रोंके पासही हूं, ऐसा नहीं कि जैसा सूर्य कभी दीखता है तो कभी मेघपटलसे आच्छादित हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अदृश्य होजाता है ! हे अर्जुन ! यह न्यूनाधिकभाव मुझमें नहीं, मैं तो निरंतरका तेजस्वी तथा निर्मल ही हूं ॥ ६३ ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

यदि मेरा विस्तार देखा जाय, तो क्या ? यह सर्व विश्वही मैं नहीं हूं ? जैसे दूधको जमानेसे, वही दही बन जाता है, ॥ ६४ ॥ अथवा बीज ही तरुरूपसे प्रकट होजाता है, किंवा सुवर्ण ही अलंकाररूप हो रहता है, तद्वत् मेरे एकका ही यह सब विस्तार विश्व है ॥६५॥ मेरा निराकार तत्त्व जो अव्यक्त-दशामें जमा हुआ है, वही नामरूपात्मक विश्वाकारमें पिघलजाता है, और वही निराकार ब्रह्म मैं त्रिलोकीमें साकारके विस्तारको पाता हूं ॥ ६६ ॥ जैसे जलमें फेन ( झाग ) साकाररूपसे भासमान होता है, वैसे महत्तत्त्वसे लेकर सब भूतजात मेरेहीमें भासमान होता है ॥ ६७ ॥ परन्तु उस फेनमें जैसा जल नहीं दीखता, अथवा स्वप्नस्थितिमें भासमान होनेवाले नाना आकार जागृतावस्थामें प्रतीत नहीं होते, ॥ ६८ ॥ तद्वत् ये सब भूत-जात यद्यपि मुझमें भासमान होते रहते हैं, तथापि उन भूतोंमें मैं कभी नहीं रहता । हे पार्थ ! यह तत्त्वविचार मैंने तुझे एकबार पहले भी कह दिया है, ॥ ६९ ॥ इस कारण एकबार कहे हुएका फिर विस्तार करते रहना उचित नहीं, इसलिये यह बात इतनी ही काफी है । परंतु, हे अर्जुन ! तेरी दृष्टि मेरे स्वरूपमें प्रविष्ट होकर, विस्तारको प्राप्त होजाय, यही तेरा कर्तव्य है ॥ ७० ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

हे पार्थ ! इस महामाया-प्रकृतिके परेका जो मेरा रूप है, कल्पनारहित हो उसका यदि तुम विचार करोगे, तो ये भूतमात्र मेरेमें हैं, यह सिद्धान्त भी मिथ्या हो जायगा, कारण सब कुछ मैंही हूं, मेरेसे भिन्न कुछ भी प्रतीत नहीं होगा ॥ ७१ ॥ परन्तु, प्रथम संकल्पसे जब ज्ञानाज्ञानका अंधासा संधिकाल प्राप्त होजाता है,तब क्षणमात्र ज्ञानचक्षु-बुद्धि भी अंधीसी हो जाती है, इसलिये वह परब्रह्म वस्तु वास्तवमें विकार तथा आकारहीन रहते भी उस अविद्यारूप संधिकालके अंधेरेमें यह भूतमात्र भी परब्रह्मसे भिन्न है, ऐसी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कल्पना होने लगती है ॥ ७२ ॥ किन्तु जब वह संकल्पजन्य संधिकाल समाप्त हो जाता है, तब अखंड, अविकृत, शुद्ध, परब्रह्म ही स्वस्वरूपसे रह-जाता है, जैसे अंधेरेमें क्षणमात्र रस्सीपर सर्पका भास हो रहा था, किन्तु दीपकके प्रकाश-ज्ञानसे वह स्वस्वरूप रस्सी ही प्रतीत होजाती है ॥ ७३ ॥ वास्तवमें देखा जाय तो कहीं भूमिसे घडों, गागरोंके अंकुर निकलते हैं, किन्तु यह तो कल्पना कुम्हारकी बुद्धिके अन्तर्गतकी है, ॥ ७४ ॥ अथवा समुद्रके जलमें क्या लहरियोंकी खाने रहती हैं ? वह तो वायुकी स्वतंत्र कर्तबगारी है ॥ ७५ ॥ किंवा कपासके पेटमें क्या कपडोंकी संदूकें भरी रहती हैं ? वह तो पहननेवाले की दृष्टिसे ही कपडारूप होजाता है ! ॥ ७६ ॥ यद्यपि सुवर्णका अलंकार बनाया गया तो क्या वह सोना कोई दूसरा हो सकता है ? वह सुवर्ण ही रहता है। किन्तु उसमें जो बाह्यतः अलंकारत्व प्राप्त होता है, वह पहननेवालेकी भावनासे दृष्टिगत होता है ॥ ७७ ॥ कहो तो सही, कि प्रतिध्वनि जो उत्तर देता है, या दर्पण जो रूप दिखाता है, क्या वह सचमुच पहला अपना ही रहता है, अथवा प्रतिध्वनि या दर्पण कोई अपने यहांसे नया बना देता है ? ॥ ७८ ॥ तद्वत्, मेरे अविकृत, शुद्ध, मूल स्वरूपपर जो भूतसृष्टिका आरोप करता है, उसीके संकल्पके कारण सृष्टिका आभास होता है ॥ ७९ ॥ यदि वह कल्पना करनेवाली माया-प्रकृति खतम होजाय, तो वह भूताभास, जो पहलेसेही मिथ्या है, लुप्त होजाता है, अर्थात् केवल मेरा अविकृत शुद्ध स्वरूप ही बचा रहता है ॥ ८० ॥ और रहने दो। जैसे अपनेको चक्कर आजानेपर या पासमें चक्कर घूमनेसे, आस-पासकी गिरिकंदरायें घूमतीसी दिखाई देती हैं, उसीप्रकार अपनी ही कल्पनाके कारण अखंड, विकारहीन परब्रह्ममें भूतमात्रका आभास होता रहता है ॥ ८१ ॥ और जब वह कल्पना छोड-कर देखोगे तो 'मैं भूतमात्रमें हूं और भूतमात्र मुझमें है' यह बात स्वप्नमें भी सच्ची नहीं मानी जायगी, यह अनुभव आवेगा ॥ ८२ ॥ अतएव 'मैं ही इस भूतमात्रका आधार हूं' या 'मैंही इस भूतमात्रमें रहता हूं' इस प्रकारका कहना केवल संकल्पवातके सन्निपातका बकवाद ही समझो ॥ ८३ ॥ अतएव हे मेरे प्यारे सखा अर्जुन ! तुम अच्छीतरह ध्यानमें रखो कि, मुझे विश्व समझना या विश्वात्मा मानना, यह केवल मिथ्या भूतमात्रोंकी मिथ्या कल्पना है ॥ ८४ ॥ जिस प्रकार सूर्यकिरणोंसे ही मिथ्या-मृगजल भासमान होता है, उसी प्रकार यह मिथ्याभूतमात्र मुझमें भास-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मान होता है, इतना ही नहीं, किन्तु वह ऐसा जबर्दस्त है कि, जो मुझे भी अपनेमें भासमान करा देता है ! ॥ ८५ ॥ इस प्रकार यदि मैं भूतभावन ( भूतमात्र उत्पन्न करनेवाला या उनका आधार ) हूं, किन्तु प्रभा और सूर्य जैसे एकही है, वैसेही मैं भूतमात्रसे अभिन्न हूं ॥ ८६ ॥ इस तत्त्वविचार-पद्धतिको 'ऐश्वर्ययोग' कहाजाता है । अब इसका तुम्हें अच्छीतरह ज्ञान हुआ, अब कहो तो सही, यहां भेदभावके लिये कहीं शंका है ? ॥ ८७ ॥ सारांश, यही कि, भूतमात्र मेरेसे भिन्न नहीं, और मैं भी उनसे पृथक् हूं ऐसा तुम कभी मत समझो ॥ ८८ ॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

देखो, पार्थ ! जितना बडा गगन है, वायु भी उतनी ही बडी गगनमें समाविष्ट है, परन्तु जब पंखाआदिसे उसे हिलाया जाता है, तभी उसका भिन्नत्व प्रतीत होता है, अन्यथा वह गगनमें एकरूप ( गगन ) ही है ॥ ८९ ॥ उसीतरह यदि कल्पना की जाय तो यह भूतमात्र मुझमें भासमान होता है, अन्यथा निर्विकल्पस्थितिमें वह भूतमात्र जब नहीं दिखाई देता, तब मैं ही मैं अकेला रहजाता हूं ॥ ९० ॥ अतएव 'नहीं' और 'है' अर्थात् नाश तथा उत्पत्ति ये सब कल्पनाके खेल हैं, कल्पनाका लोप होनेपर नामरूपात्मक विश्व नहीं, और कल्पनाका संचार होतेही यह सब प्राणिमात्र है ॥ ९१ ॥ परन्तु, जब कल्पना करने-वाला ही नहीं रहेगा अर्थात् कल्पनारूपी पूँजी ही समाप्त हुई तब फिर 'है' 'नहीं' ऐसा उच्चारण भी कौन करेगा ? अतएव इस मेरे ऐश्वर्य योगको तुम फिर एकबार समझ लेओ ॥ ९२ ॥ इस परमज्ञानरूपी समुद्रमें तुम तरंगाकार बनजाओ, और जब तुम्हें अनुभव होगा, तब यह सब चराचर स्वयं तुमही बने रहे हो ऐसा तुम्हें ज्ञात होगा ॥ ९३ ॥ भगवान् कहते हैं हे पार्थ ! इस परमज्ञानसे तेरे हृदयमें प्रकाश हुआ या नहीं ? और इस प्रकारकी जागृतावस्थामें द्वैतरूपी तेरा स्वप्न नष्ट होगया या नहीं ? ॥९४॥ हे अर्जुन ! फिर किसी समय यदि बुद्धिको कल्पनाकी नशा आजाय तो, स्वप्नमें यह अभेदज्ञान तुम भूलजाओगे, ॥ ९५ ॥ अतएव जिससे अविद्या-रूपी नींदको जडमूलसे निकाल दिया जाय तथा आत्मज्ञानकी जागृति निरंतर स्थिर रहे ऐसा जो रहस्य-ज्ञान उसको मैं स्पष्ट कर दिखा देता हूं ॥ ९६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे धनुर्धर पार्थ ! मेरी बातपर धैर्यसे एकाग्रचित्त हो जाओ । देखो, सब प्राणिमात्रकी उत्पत्ति तथा नाश केवल मायाप्रकृति ही करती रहती है ॥९७॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

जिसे 'प्रकृति' कहा जाता है और जिसके दो प्रकार मैं तुम्हें पहले कह चुका हूं कि, जो आठ भिन्नस्वरूपोंसे व्यक्त ( प्रकट ) होती है, उसे 'अपरा-प्रकृति' कहते हैं, और जो जीवरूपसे प्रकट होती है उसे 'परा-प्रकृति' कहा जाता है ॥ ९८ ॥ माया-प्रकृतिका विषय तुम्हें पहले समझा चुका हूँ, इसलिये बारबार वही बात कहनेमें क्या अर्थ है ? ॥ ९९ ॥ तात्पर्य इतनाही समझो कि, मेरी इस प्रकृतिके ही कारण महाप्रलयके अन्तसमयमें सर्व भूतप्राणी, मेरे निराकार-अव्यक्तरूपमें एकरूपसे विलीन होजाते हैं ॥१००॥ देखो, ग्रीष्मऋतुकी तीव्र गरमीमें, तृण जैसे बीजके साथ भूमिमें लय होजाता है, ॥ १ ॥ अथवा वर्षाकालीन मेघोंका समूह, वर्षा-कालके निकल जानेपर, जब शुद्ध निर्मल शरद्ऋतुका समय आता है, तब वह आकाशके आकाशमें ही जैसा विराम पाता है, ॥ २ ॥ किंवा, आकाशके गर्भमें ही वायु शांत होकर लय होती है अथवा जलमें ही तरंग लुप्त होजाता है, ॥ ३ ॥ किंवा जागृतावस्था प्राप्त होनेपर स्वप्न जैसे मनके मनमें ही नष्ट होजाते हैं, उसी प्रकार प्रकृतिजन्य यानी माया-प्रकृतिके कारण भासमान होनेवाला भूतमात्र महाप्रलय-कालमें प्रकृतिमें ही विलीन होकर समरस होजाता है ॥ ४ ॥ और फिरसे जब नया कल्पारम्भ होजाता है, तब भी मैं ही पुनः भूतसृष्टिको उत्पन्न करता हूँ, ऐसा जो कहा जाता है, हे पार्थ ! उस बातको सत्य और स्पष्ट करके दिखाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥ ५ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

हे पार्थ ! जैसे तंतुके समूहसे तंतु ही स्वयं आडे सीधे रूपमें पटरूप धारण करते हैं, तैसे इस माया-प्रकृतिको मैं स्वयंही लीलासे आश्रयभूत हो जाता हूं ॥ ६ ॥ और उस तंतुओंकी बुनावटसे जब चौकोने छोटे छोटे आकार बनते बनते थान तयार होते हैं, उस प्रकार इस मायाको जब मैं आश्रय देता हूँ तब पञ्चभूतात्मक आकारके रूपसे प्रकृतिही स्वयं प्रकट होती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


है ॥ ७ ॥ जिस प्रकार छांछका स्पर्श होनेसे तत्ता दूध भी जमने लगता है, उसी प्रकार मूलप्रकृतिमें वह सृष्टित्व बिंबित होजाता है ॥ ८ ॥ बीजको जलका संग होते ही वह जैसा अंकुरित हो शाखोपशाखारूपसे वृक्षत्वको प्राप्त होता है, उसी प्रकार यह प्रकृति-जन्य भूतसृष्टि मुझसे ही प्रसारित हो जाती है ॥ ९ ॥ देखो, ऐसा कहा जाता है कि, 'राजाका बसाया नगर है' वास्तवमें यह बात सत्य भी है, परन्तु उसके किसी कार्यमें भी राजाके हाथको कोई कष्ट उठाना पडता है ? ॥ ११० ॥ तद्वत् मैं भी प्रकृतिका स्वीकार कैसा करता हूं, कि जैसे कोई स्वप्नस्थितिमेंसे मनुष्य जब जागृतावस्थामें प्रविष्ट होता हो, ॥११॥ देखो, स्वप्नस्थितिमेंसे मनुष्य जब जागृतावस्थामें आता है, क्या तब उसके पैरोंको श्रम होते हैं ? या ग्रामान्तरका दृश्य स्वप्नमें देखा जाय तो क्या प्रवास करना पडा ? तुम ही कहो ॥ १२ ॥ इस सम्पूर्ण विवेचनका सारांश यही समझो कि, इस भूतसृष्टिकी रचनामें मुझे कुछ भी करना नहीं पडता है, ॥ १३ ॥ जिस प्रकार राजाकी आज्ञामें रहनेवाली प्रजा, अपने अपने व्यापार-व्यवहार यथारुचि नित्य करती रहती है, राजा कुछ भी नहीं करता, उसी प्रकार केवल प्रकृतिका स्वीकारत्व मुझमें आता है, किन्तु कर्म करनेवाली प्रकृति ही है, मेरा उसमें कोई संबंध नहीं ॥ १४ ॥ देखो, पौर्णमासीके चन्द्रमाकी भेंट होनेपर समुद्रको अपार आनंद होता है, तब क्या चन्द्रमाको कोई श्रम होते हैं ? ॥ १५ ॥ लोहा स्वयं जड है, परन्तु लोहचुंबकके पास आनेपर उसे हिलचल ( गति ) प्राप्त होती है, तो क्या उसके हिलचलमें चुंबकको कोई कष्ट करने पडते हैं ? ॥ १६ ॥ बहुत क्या कहा जाय, तुम निश्चित समझो कि, ज्यों ही मैं प्रकृतिका स्वीकार करता हूं, त्योंही यह भूतसृष्टि आपही आप अस्तित्वको प्राप्त होजाती है ॥ १७ ॥ हे पार्थ ! बीजको, बेल, पत्र, पुष्पादिके प्राप्तिमें जैसी भूमि आश्रयभूत हो रहती है, उसी प्रकार इस भूतसृष्टिके उदय होनेमें प्रकृति ही आधारभूत होजाती है ॥ १८ ॥ अथवा बाल्य, तारुण्य आदि अवस्थाओंके लिये जैसा शरीर ही मूलकारण है, या आकाशकी वर्षाके लिये जैसी मेघमाला कारण रहती है, ॥१९॥ किंवा स्वप्नके लिये जैसे नींद कारण होती है, हे नरश्रेष्ठ पार्थ ! उसी प्रकार इस समस्त भूतसृष्टिके लिये प्रकृति ही समर्थ कारण है ॥ १२० ॥ हे पार्थ ! अब तुम निश्चित समझ गये होंगे कि, यावत् स्थावर और जंगम, स्थूल और सूक्ष्म, बहुत क्या ? सब भूतमात्रकी उत्पत्तिका मूलकारण यह प्रकृति ही है ॥ २१ ॥ इस लिये भूतसृष्टिका निर्माण करना, अथवा निर्मि-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तोंकी पालना करना इत्यादि क्रियाओंसे हमारा कोई संबंध नहीं रहता ॥ २२ ॥ जैसे चन्द्रकिरण जलमें पडकर उनकी लंबी वेलें बनती हैं, परन्तु वह कार्य चन्द्रमा नहीं करता वह तो दूरही रहता है, तद्वत् सब: कर्म यद्यपि मुझतक पहुँच जाते हैं तथापि वे मुझसे अलग और दूरही रहते हैं ॥ २३ ॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

देखो, समुद्रके जलका स्पर्श होते ही जो नमक पानी बन जाता है,क्या समुद्रकी प्रचण्डलहरोंको उस नमकका घाट ( बन्धारा ) रोक सकता है ? उसी प्रकार जो कर्म आखिरमें मुझमें ही लीन होनेवाले होते हैं, क्या उनसे मुझे बन्धन हो सकता है ? ॥ २४ ॥ धुएँके रजःकणोंका पींजरा क्या वायुकी गतिको रोक सकता है,या 'थँभो ऐसा कह सकता है ?' ॥२५॥ जैसी ये बातें असंभव हैं, वैसा मैं भी कर्मोंसे बँधजाऊँ यह असंभव है। और जाने दो, परन्तु जिस प्रकार वर्षाकी धाराओंसे पर्वतका हृदय विद्ध नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिका किया हुआ कर्मसमूह मुझे बन्धनकारक नहीं होसकता ॥ २६ ॥ वास्तविक विचारकर देखा जाय तो, इस प्रकृतिके बनाये नामरूपादि विकारोंको मेरा आश्रय है, अथवा मैं उनमें भरा हुआ भी हूं, परन्तु मैं उदासीन तटस्थ रहनेके कारण न कुछ करता हूं न कराता हूँ ॥ २७ ॥ धरमें रखा हुआ दीपक जैसे किसीको न रोकता है या न किसीको कर्ममें प्रवृत्त कराता है, इतना ही नहीं, किन्तु वह तो यह भी नहीं जानता कि कौन मनुष्य क्या कर रहा है, ॥ २८ ॥ यद्यपि ऐसा, केवल साक्षीभूत या उदासीन रहता है, तथापि वह जैसा घरके कार्यके प्रवृत्तिका कारण हो जाता है, तद्वत् भूतमात्रमें साक्षीरूपसे मेरे रहनेपर उनके कर्मोंसे यत्किंचित् भी मेरा संबंध नहीं रहता ॥ २९ ॥

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

हे सुभद्रानाथ, अर्जुन ! यह एकही विषय भिन्न भिन्न प्रकारसे तुम्हें कितनी बार कहता रहूं ? अब तुम एकबार इतना ध्यानमें रखो, ॥ १३० ॥ कि जैसे सूर्य लोगोंके सम्पूर्ण व्यापारोंका केवल निमित्त ही है, तद्वत् मैं भी विश्वकी उत्पत्तिमें केवल तटस्थतासे निमित्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


कारण ही होता हूं; ॥ ३१ ॥ कारण मैं इस मूल प्रकृतिका आश्रयभूत हो रहा, इसी लिये इस विश्वकी उत्पत्ति होती है; इस विचार-पद्धतिसे भी जगदुत्पत्तिका कारण मैं ही होता हूं ॥ ३२ ॥ अतएव इस दिव्यज्ञानके प्रकाशसे तुम मेरे ऐश्वर्य-योगकी ओर देखोगे, तो तुम्हें ज्ञात होगा कि, मुझमें भूतमात्र हैं, किन्तु मैं भूतमात्रमें नहीं हूं ॥ ३३ ॥ अथवा हे पाण्डव ! यह सब भूतमात्र मुझमें नहीं, और मैं भी उन भूतमात्रोंमें नहीं । मेरे प्यारे पार्थ ! इसमें मुख्य गुरुत्व इतना ही है और उसे तुम कभी मत भूलो ॥ ॥ ३४ ॥ हे पार्थ ! यह हमारा अत्यंत गुह्य सर्वस्व है, किन्तु उसको खोल-कर तुम्हें स्पष्ट करदिया है, अतएव इधर उधर दौडनेवाले इन्द्रियोंको रोक-नेके लिये किंवाड बंद करदो और आत्मचिन्तनद्वारा हृदयमें इस रह-स्यकी मधुरताका तुम उपभोग करो ॥ ३५ ॥ हे पार्थ ! जबतक यह रहस्य प्राप्त नहीं हुआ, तबतक हे धनंजय ! जैसे भूसेमें पडा हुआ धान्यकण प्राप्त नहीं होता, तद्वत् इस नामरूपात्मक भरे हुए विश्वमें मेरे यथार्थरूपका ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता, यह तुम निश्चित समझो ॥ ३६ ॥ यों तो तर्क-द्वारा वह मर्म ज्ञात हुआसा जान पडता है, परन्तु अनुभवके बिना वह तर्कना व्यर्थ होती है; देखो, कहीं मृगजलकी आर्द्रतासे भी भूमि भीगकर मृदु होती है ? ॥३७॥ हे पार्थ ! तुम ही कहो, कि जलमें डाले हुए जालमें चंद्रबिंब अटका हुआसा मालूम होता है, परन्तु, तीरपर उस जालको झट-कारनेसे वह बिंब कहां जाता है ? ॥३८॥ तद्वत्, लोग वृथापांडित्यसे अपने शब्दोंद्वारा ही अनुभवकी आँखोंमें धूल फेंकते हं, यानी बिना अनुभवसे, अनुभववान् कहाते हैं, किन्तु सत्य ज्ञानके समय बोध न रहनेके कारण उनकी वाचालता वृथा होती है ॥ ३९ ॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! बहुत कहनेसे क्या ? यदि तुम्हें इस जन्म-मरणरूपी संसा-रकी डर हो, और मेरी प्राप्तिविषे तुम्हारी सच्ची प्रीति हो, तो तुम्हें यह मेरी विचारपद्धति यत्नके साथ ध्यानमें रखनी चाहिये ॥ १४० ॥ ऐसा न हो, तो जैसे पीलिया रोगवालेकी दृष्टिमें शुभ्र चांदनी भी पीली ही दिखायी देती है, तद्वत् मेरे निर्मल-निर्लेप-शुद्ध-स्वरूपमें भी दोष दिखायी देगें ॥ ॥ ४१ ॥ अथवा ज्वरसे मुखकी रुचि जानेपर मधुर दुग्ध भी जैसा विषवत्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


कडुवा लगता है, तद्वत् अज्ञानके कारण, अमानुष जो मैं, उस मुझे, लोग मनुष्य समझने लगते हैं ॥ ४२ ॥ इस लिये हे प्यारे अर्जुन ! बार बार मैं तुम्हें यही समझा रहा हूं कि, तुम इस परम-रहस्यको कभी मत भूलो; कारण, इस मेरे तत्त्वभरे रहस्यके बिना यह ऊपरी स्थूल-दृष्टि किसी कामकी नहीं ॥ ४३ ॥ इस स्थूल-दृष्टिसे जो मुझे देखता है, उसका वह अज्ञानका देखना किसी कामका नहीं । कारण कि, स्वप्नके अमृतपानसे कोई अमरत्व नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ४४ ॥ यों तो मूढजन सामान्यतः स्थूल-दृष्टिसे मुझे भले प्रकार जानते हैं, किन्तु वह जानना केवल यथार्थ ज्ञानको एक तरहसे दृष्टिके पीछे छिपा देना है । जैसे, नक्षत्रोंके प्रतिबिंबोंको रत्न समझकर आशावादी हंस उनकी इच्छासे पानीमें डूबकर मरजाते हैं, ॥४५॥४६॥ मृगजलको गंगा समझकर क्या स्नानकी इच्छासे जानेपर कुछ फलप्राप्ति हो सकेगी ? या बबूलको कल्पवृक्ष मानकर सेवा की जाय तो सिवाय कंटकोंके कुछ मिल सकेगा ? ॥ ४७ ॥ अथवा काले साँपको नीलमणिका हार समझकर कोई हाथमें भी पकडेगा ? किंवा रत्न समझकर सफेद पत्थरों ( ओलों ) को कोई चुन ले तो क्या कुछ भी लाभ हो ? ॥ ४८ ॥ अथवा द्रव्यका बडा संचय समझकर खैरवृक्षके तीव्र अंगारोंको कोई अपने पल्लवमें बाँध देगा, या अपनी परछांईको न पहँचानकर यदि सिंह कूएमें कूद पडे, तो सिवाय मृत्युके उसे कुछ प्राप्त हो सकता है ? ॥ ४९ ॥ तद्वत्, हे पार्थ ! उन लोगोंको तुम निश्चित ऐसा ही समझो कि, जो मुझ परमात्माको इस संसारमें साकाररूपसे अवतरित होता हुआ निश्चितमतिसे मानकर उस प्रपंचमें निमग्न होते हैं, वे मानो जलमें पडे हुए चंद्रके प्रतिबिंबको आलिंगन देनेके लिये, जलमें कूद रहे हैं ॥ ॥ १५० ॥ अतएव ऐसे लोगोंका यह भ्रान्त-निश्चय वृथा ही समझो । देखो पार्थ ! जैसे कोई काँजीका पान करे, और अमृतके गुणोंकी उसमें स्वाद चाहे तो जैसे हास्यास्पद होगा, उसीप्रकार नामरूपात्मक इस नाशमान स्थूलपर पूर्ण श्रद्धा रखकर मुझ अविनाशी शाश्वतके रूपको देखना चाहे तो उसे वह कैसे दिखाई देगा ? ॥५१॥५२॥ क्यों पार्थ ! ऐसा भी कभी हो सकता है कि, जाना तो है पश्चिम-समुद्रको, और चला है पूर्वकी तरफ, फिर पश्चिममें कभी पहुँच भी सकता है ? अथवा हे बुद्धिमान् पार्थ ! भूसको कितना भी कूटा जाय तो धान्यकणिका प्राप्त हो सकती है ? ॥५३॥ तद्वत्, इस विकारवान् स्थूलके जाननेसे, मेरा निर्विकार, निराकार, निर्गुण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


स्वरूप थोडा पहिचाना जाता है ? क्या, फेनके पी जानेसे तृषाकी शान्ति हो सकती है ? ॥५४॥ तात्पर्य, वे लोग मोहसे भ्रान्तचित्त हो, मुझ परमात्माको ही यह सब विश्व समझते हैं, और यहांके जन्म-मरणादिकर्म भी मुझमें लगा देतेहैं ॥५५॥ इतना ही नहीं,किन्तु मुझ नामरहितको नाम रख दिया जाता है, अक्रियको क्रियावान् समझते हैं और मैं जो विदेह हूं उस मुझपर उत्पत्ति आदि देहधर्मका आरोप करते हैं ! ॥ ५६ ॥ हे पार्थ ! देखो, मैं जो निराकार हूं उसे साकार मानते हैं, उपाधिहीनको उपचारविधिके साहित्य अर्पण करते हैं तथा कर्तव्याकर्तव्यसे रहित-मेरेमें, आचार-व्यवहार लगा देते हैं। मुझे वर्ण-हीनको वर्णवान्, निर्गुणको गुणवान् और हस्तपादरहितको हस्त-चरणवाला समझते हैं। तथा जो मैं अपरिमित-नापा न जानेवाला--हूं उसे मापा जाता है और मुझ सर्व-व्यापीको एकदेशीय मानते हैं। जिस प्रकार, सोया हुआ मनुष्य शय्यापर ही स्वप्नमें अरण्यको देखता है,॥५७॥५८॥५९॥ उसी प्रकार वे लोग मुझे श्रवणहीनको श्रवणवान्, नेत्रहीनको चक्षुमान्, तथा गोत्र-रूप-आकार-इच्छा-तृप्ति-वस्त्र-भूषण-कारण इनमेंसे कुछ भी नहीं रहते, वे सब मुझमें हैं ऐसी भावना करते हैं और सकलकारणका कारण भी मुझे समझते हैं ॥ १६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ मैं स्वयंसिद्ध रहते मेरी मूर्तियां बनाते हैं, मैं सदा स्वयंसिद्ध हूँ, उसकी प्रतिष्ठा करते हैं और मैं सदा सर्वदा अखंड, सर्वत्र व्यापक ऐसे रहते, मेरा आवाहन और विसर्जन करते हैं ॥ ६३ ॥ मैं तो नित्यका स्वयंसिद्ध अविकृत एकरूप हूँ, तथापि मुझमें बाल, तरुण, वृद्ध आदि संबंध लगा देते हैं ॥ ६४ ॥ मैं द्वैतहीन हूँ, ऐसेको भी द्वैतवान् समझते हैं, क्रियाहीनको मुझे क्रियावान् कहते हैं और अभोक्ता जो मैं उसे उपभोगोंको भोगनेवाला मानते हैं ॥ ६५ ॥ मुझे कोई कुल या गोत्र नहीं रहते कुल-गोत्रवाला समझते हैं और मेरे कुलका वर्णन करते हैं तथा मुझ अविनाशीमें मृत्युकी कल्पना करके कष्टी होते हैं और सर्वत्र सम रहनेवाला जो मैं, उसमें शत्रु-मित्रकी भावनाका संबंध जोड देते हैं ॥६६॥ आत्मानंदका सागर जो मैं, उसे नानाप्रकारके सुखोंकी इच्छा करनेवाला समझते हैं और सर्वत्र समभावसे निरन्तर रहनेवाला जो मैं उसे एकदेशीय याने अमुक एकही स्थलमें रहनेवाला समझते हैं ॥ ६७ ॥ संपूर्ण स्थावर-जंगम, सर्वका आत्मा जो मैं उसपर ये लोग ऐसा आरोप करते हुए मेरी कीर्ति प्रगट करते हैं कि, मैं किसी एकका पक्ष करके दूसरेपर क्रुद्ध हो उसे मरवा डालता हूँ ! ॥ ६८ ॥ तात्पर्य, हे पार्थ ! इस प्रकार जो नाना मनुष्य-धर्म हैं, उन्हीं मनुष्यधर्मवानोंमेंसे एक 'मैं' हूँ ऐसी भावना करके मुझे नाम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



देते हैं अर्थात् इस प्रकार उनके ज्ञानका रूप सत्यके विपरीत रहता है॥६९॥ देखो, अनुभवकी बात है, कोई मूर्ति सामने देखनेपर उसे देव कहके भजते हैं, किन्तु वह यदि फूट जाय, तब यह देव नहीं समझकर फेंक देते हैं ! ॥ १७० ॥ इस प्रकार सर्वतः वे मुझे साकार मनुष्य ही समझते हैं, अतः उनका वह उलटा ज्ञान, सच्चे ज्ञानको अंधेरेमें रखता हुआ दृष्टिके पीछे पडदेकी ओटमें करदेता है ॥ ७१ ॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

इस कारण, उन पुरुषोंका जीवित वृथा ही समझो । जैसे बिना वर्षाकालके मेघ अथवा मृगजलकी लहरें, केवल दूरसेही देखने योग्य होती हैं, कारण पास जाकर यदि उनकी परीक्षा ली जाय तो उनमें कुछ नहीं मिलेगा, ॥ ७२ ॥ अथवा खिलौनेवालेके खेलके घोडे-सवार या बाजीगरके अलंकार, किंवा आकाशमें जो आकाशके चित्र-विचित्र कोट ( गंधर्वनगर ) बनते हैं, जो कि मूलमें कुछ ही नहीं रहते केवल भासमान होते हैं, ॥ ७३ ॥ सुरुवृक्ष ( सरपत ) जैसा सीधा लंबा बढ जाता है, किन्तु उसमें कभी फल नहीं लगाता, तथा अन्तर्गर्भमें भी वह पोला ही रहता है, किंवा अजा ( बकरी ) के गलेमें जैसे निरर्थक स्तन रहते हैं, ॥ ७४ ॥ तद्वत् उन मूढ-पुरुषोंका जीवित निकम्मा होता है । उनका किया हुआ कर्म भी सेमरके फलसरीखा होनेके कारण धिक्कारा जाता है याने वह किसी कामका नहीं ॥ ७५ ॥ इस लिये यद्यपि उन्हें कोई ज्ञान प्राप्त हुआ हो या वे कुछ पढे हों तो भी वह मर्कटके तोडे हुए नारियल-सरीखा या अन्धेके हाथमें लगे हुए मोतीके समान वृथा ही होजाता है ॥ ७६ ॥ मतलब इसका यही समझो कि, उनके पढे लिखे शास्त्र केवल छोटी लडकियोंके हाथमें दिये हुए शास्त्र अथवा अपवित्र-पुरुषको दिये हुए बीजमंत्रवत् निरर्थक ही हैं ॥ ७७ ॥ उसी प्रकार हे पार्थ ! उनका ज्ञानसंग्रह या कर्मसंग्रह दोनों दिखावटी हानक कारण वृथा हैं, कारण उनके अंतःकरणमें यथार्थ-ज्ञानका अभाव रहता है ॥ ७८ ॥ अतएव सुबुद्धिको ग्रसनेवाली तथा विवेकके स्थानको नष्ट-भ्रष्ट कर अज्ञानांधकारमें प्रवृत्त करनेवाली जो तामसी राक्षसी प्रकृति-माया, ॥७९॥ उसीके अधिकारमें वे मिलजाते हैं, इस कारण उनका चित्त नष्ट-भ्रष्ट हो, आखिरी वे उस तमोगुणवाली चिन्तारूपी राक्षसीके मुँहमें



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जा पडते हैं ॥ १८० ॥ उस तामसी राक्षसीके मुखमें आशाकी लारसे भरी हुई हिंसारूपी जिह्वा लटकती रहकर, असमाधनरूपी नीरसमाँसको वह निरंतर चबाती रहती है ! ॥ ८१ ॥ और वह हिंसारूपी जिह्वा होठोंको चाटती चाटती अनर्थरूपी कानोंतक बाहर निकलती है। यह उन्मत्त तामसी निशाचरी दोषोंके पर्वतकी कंदरामें नित्य भटकती रहती है ॥ ८२ ॥ उसके मुखमें द्वेष ही डाढें हैं, जिनसे वह ज्ञानके ढेरको चबाचबाकर उसका चूर्ण करदेती है। जिसकी त्वचा और अस्थियाँ मूर्खजनोंकी स्थूल-बुद्धिको आच्छादन होजाता है ॥ ८३ ॥ इस प्रकारकी इस तामसी माया-राक्षसीके मुखमें, पिशाचको दिये हुए बलिके समान जो गिर पडते हैं, मानो, अज्ञान-भ्रान्तिरूपी दहमें डूबकर वे निमग्न हो रहते हैं ॥ ८४ ॥ इस प्रकार अविचारी बनकर तमोगुणके गढेमें जो गिरगये, उन्हें ऊपर निकालनेमें विचारका हाथ आगे नहीं होता, इतना ही क्या ? वे कहां गये होंगे, इस बातका भी पता नहीं चलता ॥ ८५ ॥ अतएव, ऐसे मूढ लोगोंका यह वृथा वर्णन अधिक न करना ही ठीक है, कारण ऐसे पापियोंके वर्णनमें वृथा क्लेश ही होंगे। ॥ ८६ ॥ इस प्रकार जब भगवान् बोले, तब बुद्धिमान् पार्थने, " आपका कहना यथार्थ और सत्य है " ऐसा कहा, पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण कहने लगे, हे पृथापुत्र धनंजय ! अब जहां वाचाको विश्रान्ति मिलती है, ऐसे जो साधु-संत हैं, उनकी स्थितिका मैं वर्णन करता हूं, तुम ध्यानके साथ उसे श्रवण करो ॥ ८७ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

पवित्र-स्थानमें निरंतर रहनेवाला मैं, जिनके शुद्ध अंतःकरण हैं उनमें क्षेत्रसंन्यासी होकर रहता हूं, जिन्हें नींदमें भी वैराग्य छोडता नहीं, ॥ ॥ ८८ ॥ जिनकी श्रद्धायुक्त भावनामें धर्मका साम्राज्य वास करता है तथा जिनके अन्तःकरणमें सदैव विवेक जागता रहता है, ॥ ८९॥ जो ज्ञानगंगामें स्नान कर रहे हैं और पूर्ण ब्रह्मस्थितिकी प्राप्तिमें पहुँचकर जो संतोषित हो रहे हैं, तथा जो शान्तिरूपी वल्लीमें स्वयं पल्लव बन रहे हैं, ॥ १९० ॥ जो विश्वकी परिणति ( परिणाम ) जिसमें होती है, उस परब्रह्मके कोमल अंकुर हैं, जो धैर्यके आधारस्तंभ हैं, किंवा आनंदसमुद्रमें डुबोकर निकाले हुए भरेपूरे वट ही हैं, ॥ ९१ ॥ जो भक्तिमें इतनी श्रद्धा और ऐसा प्रेम रखते

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हैं कि, उस भक्तिके आगे वे उस मोक्षको भी तुच्छ समझकर उसे "पीछे हटजाओ" ऐसा कहते हैं, उसकी कुछ भी कीमत नहीं समझते, तथा जिनके सहजके आचरणमें भी नीति सदैव जागृत रहती है, ॥ ९२ ॥ जिनके संपूर्ण इन्द्रिय ऐसे वश रहते हैं, कि मानो वे शान्तिके ही शृंगार पहने हुए हों, और उनका चित्त तो ऐसा विशाल बनजाता है कि, सर्वव्यापक मुझे भी वह किसी समय आच्छादनरूप होता रहता है, ॥ ९३ ॥ ऐसे जो महात्मा, केवल दैवीसंपत्तिके सौभाग्यरूप हैं, जो मेरे सत्यस्वरूपको सर्वतः जानते हैं, तथापि मुझमें जो उनका अलौकिक प्रेम रहता है, उस चढे बढे प्रेमसे मेरा भजन करते हैं, किन्तु ऐसी स्थितिमें भी द्वैतका उन्हें यत्किंचत् स्पर्श भी नहीं होता,॥ ९४ ॥ ९५ ॥ हे मध्यमपाण्डव अर्जुन ! वे मद्रूप होकर भी मेरी ही सेवा करते रहते हैं, कारण उस सेवामें भी एक कौतुक भरा रहता है, वह भी तुम्हें कहता हूं, सुनो ॥ ९६ ॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

ऐसे भक्तोंने कीर्तनप्रसंगमें भक्तिपूर्वक नाचकर प्रायश्चित्तका व्यापार बंद करदिया है,कारण उनमें पापका नामतक नहीं रहता॥९७॥ यम और दमको वे निस्तेज कर डालते हैं, तीर्थोंके स्थान उन्होंने उठा दिये हैं और वे यम-सदनका रास्ता बिलकुल बंद कर देते हैं ॥ ९८ ॥ यम कहता है " इन लोगोंने इंद्रियोंका तो दमन पहले ही कर दिया है फिर नियमन किसका किया जाय " उसी प्रकार इनका मनोनिग्रह देख दम कहता है अब दमन किसका किया जाय ? तीर्थ कहते हैं इनमें तो नाममात्रके लिये भी पाप-मल नहीं रहता फिर हम पावन भी कैसे कर सकते हैं ? ॥ ९९ ॥ इस प्रकार वे मेरे परमभक्त महात्मा लोग मेरे नामकीर्तनके नामघोषद्वारा सब विश्वके दुःखका नाश कर डालते हैं और उस सब विश्वको आत्मसुखानंदके महासुखसे भरापूरा कर डालते हैं ॥ २०० ॥ प्रातःकालके विना ही वे ज्ञानदिवसको प्रकाशित कर देवे हैं, अमृतके बिना ही जिला सकते हैं और योगसाधनाबिना ही आँखोंको प्रत्यक्ष मोक्ष दिखा देते हैं । उनके यहां यह भेदभाव नहीं रहता कि, यह राजा है और यह रंक ॥ १ ॥ तथा यह भी गिनती नहीं होती कि यह बडा और यह छोटा है, किन्तु किसी प्रकारका पंक्तिप्रपंच वहां रहही नहीं सकता, अत एव सब विश्वके लिये वे लोग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एक प्रकार आनन्दकी वाडी ही बन जाते हैं ॥ २ ॥ वैकुण्ठके लिये तो कभी कोई किसी समय एकाध जाता होगा, किन्तु वे महात्मा लोग तो सर्वत्र ही वैकुण्ठ बना देते हैं । इस प्रकार केवल नामसंकीर्तन द्वारा ही सब विश्वको प्रकाशमय बना देते हैं ॥ ३ ॥ वे सूर्यके समान तेजस्वी रहते हैं लेकिन् सूर्यमें जो अस्तका दोष रहता है उनमें उसका स्पर्श भी नहीं रहता ! चंद्रमा पूर्णमासीके दिन संपूर्णकलायुक्त होनेसे पूर्णत्वको पाता है, परन्तु वे महात्मा लोग तो सदा सर्वदाही पूर्णत्वको प्राप्त करते रहते हैं ॥ ४ ॥ मेघ उदारतामें बडा है यह बात सत्य है, परन्तु उसका जलसंचय हीं किसी वक्त समाप्त रहता है, इसलिये वह भी इनकी उपमाको नहीं ठहरता, ये तो साक्षात् शंकर या उडनेवाले सपक्ष सिंह ही हैं ॥ ५ ॥ जिस मेरे नामकी महिमा ऐसी है जो हजार जन्म लेनेपर भी श्रद्धायुक्त अंतःकरणसे एकवार मुखसे नाम निकलना दुष्प्राप्य होजाता है, वह नाम इनकी जिह्वा-पर निरंतर आनंदके साथ नाचता रहता है ॥ ६ ॥ हे पार्थ ! ऐसा जो मैं हूं वह न वैकुण्ठमेंही रहता हूं, न सूर्यमण्डलमें दिखाई देता हूं, अथवा योगियोंके मनको उल्लंघन कर देता हुआ वहां भी किसीसमय नहीं रहता, ॥ ७ ॥ परन्तु हे पार्थ ! जिस स्थानमें मेरे एकनिष्ठ भक्त प्रेमपूर्वक मेरे नामसंकीर्तनका घोष करते रहते हैं, कहीं भी न मिलनेवाला मैं वहां अवश्य प्राप्त होजाता हूं ॥ ८ ॥ वे मेरे अनन्यभक्त मेरे गुणोंमें ऐसे निमग्न रहते हैं, कि उन्हें काल या देशका भी स्मरण नहीं रहता, किन्तु सब कुछ मेरे नामको ही साधन समझते हुए वे आत्मसुखसे आनंदित रहते हैं ॥ ९ ॥ 'कृष्ण, विष्णु, हरि, गोविंद' इन शुद्ध नामोंकी अखंड स्मृति चालू रहती है, और आत्मा तथा अनात्माके विचारकी खुले दिलसे चर्चा करते हुए मेरे गुणोंका गान स्पष्ट और उच्चस्वरसे गाते हैं ॥ २१० ॥ अब यह विस्तार यहां ही बस कर देता हूं । हे पार्थ ! इसप्रकार वे मेरे एकनिष्ठ भक्त मेरा नामसंकीर्तन करते हुए इस चराचरमें भ्रमण करते रहते हैं ॥ ११ ॥ हे पार्थ ! उनमें यह भी एक विशेषता है कि, पञ्चप्राणोंको तथा मनको जीतकर उन्हें अपने वशमें ऐसे रखते हैं, ॥ १२ ॥ कि जैसे कोई राजा किला बना कर बन्दोबस्त करता है, उसी प्रकार वे बाह्यतः यम-नियमकी दीवालें बनाकर अंदर वज्रासनका कोट बना देते हैं, और प्राणायामरूपी तोपोंसे मोर्चाबंदी कर रखते हैं, ॥ १३ ॥ उस अवस्थामें कुण्डलिनी शक्तिके प्रकाशमें मन और प्राणवायुकी सहायतासे चन्द्रामृत ( सतरहवीं कला )

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



का यानी परिपूर्ण ज्ञानामृतका सरोवर प्राप्त होजाता है, ॥ १४ ॥ उस समय प्रत्याहारका पराक्रम दिखानेका मौका आता है और उस प्रकार वह विकारोंकी वाचा बंद कर, एकाग्रताके साथ सब इंद्रियोंको अंतर्मुख करता हुआ उन्हें हृदयमें खींच लेता है ॥ १५ ॥ इतनेमें धारणारूपी घुडसवार डटकर महाभूतोंको इकट्ठा कर देते हैं, जो आकाशमें लीन होते हैं और संकल्पविकल्पोंकी चतुरंग सेना ( मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ) को नामशेष करदेते हैं ॥ १६ ॥ फिर तुरंत ही ध्यान " जीत होगयी जीत हो गयी " इस प्रकार अपने प्रचंड विजयका डंका बजाता है और तन्मयतारूपी ब्रह्मैक्यका चमकता हुआ एक छत्र वहां दिखाई देता है ॥ १७ ॥ इसके बाद समाधिरूपी लक्ष्मीके सिंहासनपर अखंड आत्मानुभवरूपी राज्यसुखके ऐक्य-रससे राज्याभिषेक होता है ॥ १८ ॥ हे पार्थ ! ऐसा यह मेरा भजन बडा गहन और परम रहस्यभरा हुआ रहता है, इस प्रकार और भी मेरे एकनिष्ठ भक्त एकप्रकारसे भजन करते हैं उन्हें भी सुनाता हूं, तुम श्रवण करो, ॥ १९ ॥ वे मुझे ऐसा देखते हैं कि, वस्त्रमें जैसे इस छोरसे उस छोरतक केवल तंतुही ततु भरे हुए रहते हैं, उसी प्रकार इस चराचरविश्वमें मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं, इसप्रकार मुझ परमात्माको ही सर्वत्र भरा हुआ जानते हैं ॥ २२० ॥ ब्रह्मासे लेकर मशकतक बीचमें जो कुछ भरा हुआ है, वह सब मेरा ही स्वरूप है इसप्रकारका पूर्ण ज्ञान उन्हें हो रहता है ॥ २१ ॥ फिर, छोटा बडा, सजीव निर्जीव इस प्रकारका भेदभाव न रखकर जो कुछ दृष्टिगत होता है, वह सब मेरा स्वरूप समझकर वे लोग आदरके साथ प्रणाम करते हैं ॥ २२ ॥ उन्हें अपने बडप्पनकी स्मृति ही नहीं रहती, उसी प्रकार सामने आये हुएकी योग्यता-अयोग्यताका वे विचार नहीं करते रहते, किन्तु जो अपने सामने आया हो, साक्षात् वह ब्रह्मरूपही है, ऐसी भावनासे आदरके साथ नम्रतापूर्वक दंडवत् करना ही सदा सर्वदा उन्हें पसंद रहता है ॥ २३ ॥ जैसे जल यद्यपि ऊँचे स्थानसे गिरजाय तो भी स्वाभाविक रीतिसे वह नीचेकी ओर जाता रहता है, उसी तरह भूत-मात्रको देखते ही नम्रताके साथ नमस्कार करना उनका सहज स्वभाव बनता है ॥२४॥ अथवा फलभारसे झुकी हुई वृक्षकी डालियाँ जैसी आपही आप भूमिकी तरफ नम्र होती हैं, उसी प्रकार परिपक्वान्तःकरण हुए वे भक्त भूतमात्रको देख स्वाभाविक नम्र होजाते हैं ॥ २५ ॥ वे मेरे भक्त, हे पार्थ ! निरन्तर अभिमानरहित होते हैं, उनका सर्व वैभव नम्रता ही है, और उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने वैभवको वे जयजय मंत्रपूर्वक मुझे ही अर्पण करते रहते हैं ॥ २६ ॥ इसप्रकार निरंतर भूतमात्रको नमस्कार करते रहनेके कारण उनके मान-अपमानके भाव नष्ट होजाते हैं, अतएव आपही आप अनायास ही वे मद्रूप हो मुझमें समरस हो जाते हैं और मेरी उपासनामें ही निमग्न रहते हैं ॥२७॥ हे बुद्धिमान् पार्थ ! इसप्रकार मेरी श्रेष्ठ भक्तिका विचार तुम्हें निवेदन किया, अब जो लोग ज्ञानयज्ञसे मेरी उपासना करते हैं, उनका वर्णन तुम श्रवण करो ॥ २८ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! भजन करनेका कौशल्य तो तुम जानते ही हो, कारण एकबार पहले उस विषयका विवेचन कर चुके हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण कहते भये, इतनेमें अर्जुनने कहा, हां जी, सच है, आपने एकबार मुझपर सुदैवका प्रसाद किया है, तथापि अमृतरसके बारबार परोसनेवालेको 'अब बस करो' ऐसा कोई थोडे कह सकता है ? ॥२३०॥ इस वचनसे भगवान् समझ गये कि, अब इस विषयमें अर्जुनको उत्कंठा लगी है और उससे वह अंतरंगमें झूमने लगा है ॥ ३१ ॥ तब आनंदित हो भगवान् बोले, धन्य है अर्जुन ! धन्य है तुम्हारी, तुमने बहुत अच्छा कहा, तुम्हारा ध्यान ठीक है, नहीं तो वास्तवमें इस विषयका यह प्रसंग कुछ आवश्यक नहीं था, तथापि हे अर्जुन ! तेरे विषे जो मुझे स्नेहादर है, वह मुझे ऐसे प्रसंगोंको उपस्थित करा देता है ॥ ३२ ॥ यह सुनकर अर्जुन फिर बोला, भगवन् ! यह क्या बात है ? देखिये, चकोरके बिना क्या चांदनी नहीं रह सकती ? कारण जगत्को शांत करना यह तो उसका स्वभाव ही है ? ॥ ३३ ॥ वे चकोरपक्षी केवल अपनी इच्छापूर्तिके लिये चन्द्रमाकी ओर अपनी चोंचें खोलकर रहते हैं, उसी प्रकार हम लोग भी आप कृपासागरके पास अल्पस्वल्प विनती करते हैं कि, हे प्रभो ! हमपर भी कृपा रखिये ॥ ३४ ॥ देखिये भगवन् ! मेघ अपनी वर्षाकी सामर्थ्यसे सारे विश्वको तृप्त कर देता है, अन्यथा विचार करनेसे उसकी वर्षाके आगे चातककी तृषा कितनी है ? लेकिन् उसे तो अतृप्तिके कारण पुकारते रहना ही पडता है ! ॥ ३५ ॥ एक चुल्लूभर पानीके लिये भी गंगाको जाना ही पडता है, वैसे हमारी इच्छा थोडी हो या बहुत, किन्तु आप देवको निरूपण विस्तारके साथ करना ही चाहिये ॥ ३६ ॥ फिर भगवान् बोले अब यह रहने दो, हमें बडा आनंद हो रहा है, उसपर तुम्हारे मुखसे और स्तुतिकी कुछ आवश्यकता नहीं ॥ ३७ ॥ कारण, तुम भली भाँति ध्यानके साथ मेरी बातें श्रवण कर रहे हो, यही मेरे वक्तृत्वको सहाय हो रहा है । इस प्रकार अर्जुनका उत्साह बढाकर भगवान् फिर कहने लगे ॥ ३८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

अब ज्ञानयज्ञ किसे कहा जाता है वह सुनो। परब्रह्ममें आपही आप उद्भूत होनेवाला 'अहं बहु स्याम् प्रजायेय' यह उसका जो मूल-संकल्प वही यज्ञस्तम्भ है, पंचमहाभूत मण्डप है और द्वैत यज्ञपशु है ॥ ३९ ॥ पंचमहाभूतोंके जो विशिष्ट गुण हैं और इंद्रियें तथा प्राण यही इस ज्ञानयज्ञकी सब सामग्री है और अज्ञान इस यज्ञमें आहुतिके लिये घृत है ॥ २४० ॥ इस ज्ञानयज्ञमें मन और बुद्धिके कुण्डमें ज्ञानाग्नि अत्यंत प्रज्वलित हो जाती है, हे मेरे प्यारे पार्थ ! वहां साम्यभावनाको ही तुम शुभ वेदी जानो ॥ ४१ ॥ विवेकयुक्तबुद्धिकी कुशलता वहां मंत्रविद्याकी शक्ति है, शान्ति ही यज्ञपात्र और जीव ही यज्ञकर्ता यजमान है ॥ ४२ ॥ वह जीव ब्रह्मानुभवपात्रसे, विवेकरूपी महामंत्रके उच्चारणपूर्वक ज्ञानाग्निहोममें द्वैतकी आहुतिका होम ( नाश ) करता है ॥ ४३ ॥ फिर अज्ञानके नष्ट होनेपर यज्ञकर्ता तथा यज्ञविधि सब समाप्त हो जाता है, तब आत्मैक्यरूपी जलमें जीव यज्ञांत अवभृथ स्नान करता है , ॥ ४४ ॥ उस समय भूत, विषय तथा इन्द्रियें इनका पृथक्त्व नहीं दिखायी देता, आत्मैक्यबुद्धि पूर्णताको प्राप्त होनेसे सब कुछ ब्रह्म ही जान पडता है ॥ ४५ ॥ हे किरीटी ! जागृत होनेपर पुरुष जैसे कहता है कि, स्वप्नमें जो अद्भुत सैन्य दिखायी दे रहा था, वह सब निद्राके वशमें ही बन गया था,॥ ४६ ॥ हां ! अब मैं जागृत हूं, वह स्वप्नकी सेना केवल भ्रान्ति ही थी, जो सब सेना मैं बनगया था वह वास्तविक सेना नहीं थी अकेला मैं ही था, उसी प्रकार अज्ञान-द्वैतका भ्रम दूर होनेपर ज्ञानयज्ञकर्ताको सब विश्व एक अभिन्न रूप ब्रह्मही दीखता है ॥ ४७ ॥ फिर उसे यह भी स्मरण नहीं रहता, कि यह जीव है;कारण परमात्मज्ञानसे वह बाह्याभ्यंतर सर्वत्र ब्रह्म ही बन जाता है। हे पार्थ ! कोई इस प्रकारके ज्ञानयज्ञसे मेरी भक्ति करते हैं ॥ ४८ ॥ अथवा दूसरे कोई भक्त ऐसे भी हैं, जो इस विश्वको अनादि तथा भिन्न भी मानते हैं कारण इसमें जो पदार्थकी एक दूसरेसे भिन्नता दिखायी देती है और नामरूपादि भी अलग अलग प्रतीत होते हैं, ॥ ४९ ॥ इस कारण विश्वकी भी भिन्नता भासमान होजाती है, तथापि उन भक्तोंके ज्ञानमें भेदभाव नहीं उत्पन्न होजाता। जैसे अवयव भिन्न भिन्न हों, तथापि वे एकही शरीरके रहते हैं, ॥ २५० ॥ अथवा शाखायें छोटी बडी अनेक तरहकी हों तो भी वे एकही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


वृक्षकी होती हैं, किंवा असंख्य किरण होनेपर भी वे केवल एकही सूर्यके रहते हैं, ॥ ५१ ॥ उसीप्रकार वस्तु नानारूपात्मक हैं, उनके नाम भी भिन्न भिन्न हैं, उनके पृथक् पृथक् व्यापार हैं, ये भेद तो वे भक्त केवल भौतिक-विश्वकी भावनामात्रमें समझते हैं, परन्तु सब तरहसे भेदभावहीन जो मैं उसे जाननेका उत्कृष्ट अभेद-ज्ञान उनमें सदा ही बना रहता है ॥ ५२ ॥ हे धनंजय ! इस प्रकार वे मेरे भक्त इस भिन्नतासे उत्तम ज्ञानयज्ञ ही करते हैं, कारण वे लोग अपने ब्रह्मरूपज्ञानको भेदभावका स्पर्श होने नहीं देते ॥ ५३ ॥ और जिस समय जिस स्थानमें उन्हें जो जो कुछ दिखाई देता है, वह केवल मुझ परब्रह्मका स्वरूप ही है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं; इस प्रकारका ज्ञान उन्हें होता रहता है ॥ ५४ ॥ देखो, बुलबुला उत्पन्न होता है, वह तो जलरूप रहता है, फिर यदि वह गल गया या गुप्त हुआ तो भी वह सब कार्य जलमें ही होता है, ॥ ५५ ॥ किंवा, वायुसे धूलिके परमाणु उडते हैं तथापि वे अपने पृथ्वीपनेको नहीं छोडते, कारण जब नीचे गिरते हैं तो भी वे पृथ्वीपर ही गिरते हैं, ॥ ५६ ॥ उसीप्रकार चाहे जिस भावनासे कोई भी वस्तु उत्पन्न हो, वह चाहे रहो या नष्ट हो वह निरंतर ब्रह्मरूप ही रहती है, ऐसी उन्हें प्रतीति होजाती है ॥५७॥ जिस प्रकार मैं सर्वव्यापक रहता हूं, उनका ब्रह्मानुभव भी वैसा ही सर्वव्यापक रहता है। अर्थात् इस नानाविध विश्वमें मद्रूप होकर ही वे व्यवहार करते रहते हैं ॥५८॥ देखो अर्जुन ! यह सूर्यबिंब चाहे जिस देखनेवालेको अपने सम्मुखही दीखता है, उसी प्रकार इस विश्वको ब्रह्मबोधसे व्याप्त रहनेके कारण सदा सर्वदा वे सम्मुख ही रहते हैं ॥ ५९ ॥ हे पार्थ ! उनके ज्ञानमें भेदभावका लेश भी नहीं रहता, जैसे वायु अभेदभावसे गगनमें सर्वत्र भरी रहती है, उसी प्रकार उनका सर्वत्र व्यापक ज्ञान समभावसे संपूर्ण विश्वमें भरी रहती है ॥ २६० ॥ हे पार्थ ! क्या कहा जाय ? जितनी मेरी व्याप्ति रहती है, समत्वकी तुलनामें उनके ज्ञानकी भी उतनी ही व्याप्ति रहती है, अतएव वे यद्यपि कुछ भी न करें तथापि मेरी उपासनाका फल अवश्य उन्हें प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ विचार करनेपर यही सिद्ध होगा कि, एकमेवाद्वितीय सर्वत्र मैं ही हूँ, फिर मेरी उपासना किसने या कौनसे समय नहीं की हो ? अर्थात् सब कोई सहजहीमें कर सकता है, परन्तु हे पार्थ ! सर्वव्यापकताका जिन्हें ज्ञान नहीं हुआ हो, वे तो उस मेरे ठौरको नहीं प्राप्त हो सकते यानी अप्राप्त-स्थितिमें ही रहते हैं, कारण मेरे यथार्थ स्वरूपके ज्ञान विना उनकी वह उपासना अधूरी ही होजाती है ॥ ६२ ॥ अब

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यह विस्तार यहां ही समाप्त करते हैं। इस प्रकारके योग्य ज्ञानयज्ञ द्वारा मेरी उपासना कैसी की जाती है, उसका विवेचन मैंने कर दिया ॥ ॥ ६३ ॥ भिन्न भिन्न साधनों या व्यक्तियों द्वारा जो जो कुछ कर्म किया जाता है, वह सब ओरसे आखिरी मुझे ही अर्पण होता है, किन्तु यह गुप्त-रहस्य न जाननेके कारण, हे पार्थ ! मूढ-जन मेरे शुद्ध-स्वरूपको नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ६४ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

जब उस शुद्ध-ज्ञानका उदय होगा, तब ऐसी प्रतीति होगी कि, जो वेद है वह मैं ही हूँ तथा उस वेदविधिसे जो यज्ञानुष्ठान किया जाता है, वह यज्ञकर्म भी मैं ही हूँ ॥ ६५ ॥ फिर उस यज्ञकर्मसे उत्तम तथा अंगोपांग-सहित और यथायुक्त संपूर्ण यज्ञ जो प्रकट होता है वह भी मैं ही हूँ ॥ ॥ ६६ ॥ उसी प्रकार, स्वाहा मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, सोम इत्यादि ओषधि, वल्ली, घृत, समिधा, मंत्र, आहुति-द्रव्य, होता, अग्नि, हवनीय वस्तु इत्यादि जो जो यज्ञके लिये हवनमें लिया जाता है, वह सब, हे पार्थ ! मैं ही हो जाता हूँ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७ ॥

जिसके अंगसंगसे इस अष्टधा-प्रकृति-मायाके कारण यह नामरूपात्मक जगत् जन्म लेता है, वह जगत्पिता मैं ही हूँ ॥ ६९ ॥ अर्धनारीनटेश्वरके रूपमें जो नर, सो ही जैसा नारीरूपसे रहता है, उस तरह इस चराचर जगत्की माता भी मैं हूँ ॥ २७० ॥ और उत्पन्न हुआ विश्व जिसके आधार-पर रहता है, जिसके आश्रयसे बढता है, वह भी सब मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं ॥ ७१ ॥ यह प्रकृति-पुरुषकी ( शिव-शक्तिकी ) जोडी, जिस अन्तःकरणरहित स्वरूपसे अर्थात् जिसके सहजसंकल्पसे जन्म लेती है, वह इस विश्वका पितामह–त्रिभुवनका पिता मैं ही हूँ ॥ ७२ ॥ हे बुद्धि-मान् पार्थ ! ये संपूर्ण भिन्न भिन्न ज्ञानमार्ग अन्तमें जिस ग्रामकी ओर जाना चाहते हैं, जिसे 'वेद्य' अर्थात् जाननेकी वस्तु कहा जाता है; ॥ ७३ ॥ जहां अनेक मताभिमानियोंके मतमतान्तर शान्त हो निश्चित समझ हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाती है, तथा जहाँ भिन्न भिन्न शास्त्रोंकी आपसमें पहँचान होकर उनके मतोंके भेदभाव नष्ट होते हैं और जहां भूले हुए ज्ञान इकट्ठे होकर उनका मेल होजाता है, वा जिसे 'पवित्र' यह नाम दिया जाता है, ॥ ७४ ॥ और आदिसंकल्परूपी ब्रह्मबीजका अंकुर, तथा परा-पश्यन्ती आदि वाचाओंकी घोषध्वनिका मूल-स्थान जो ॐकार, वह भी मैं ही हू ॥ ७५ ॥ उस ओंकारके पेटमेंसे अकार, उकार और मकार ये तीन अक्षर जो वेदके साथ निर्माण भये वे भी मैं ही हूँ ॥ ७६ ॥ अर्थात् ऋक्, यजुष् और साम ये तीनों वेद मैं ही हूँ, एतावता हे पार्थ ! संपूर्ण वाङ्मयकी वेदपरंपरा तुम मुझे ही समझो ॥ ७७ ॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

यह सब चराचर विश्व, जिस प्रकृति-मायामें समाया जाता है, जब वह श्रमके कारण थक जाती है, तब उसके विश्रामका स्थान भी मैं ही हूँ ॥७८॥ तथा वह प्रकृति जिससे जीवित रहती है, जिसके अंगीकार करनेपर इस विश्वको उत्पन्न करती है और जो इस प्रकृतिके सहवाससे गुणोंका उपभोग करता है, ॥ ७९ ॥ वह इस विश्वलक्ष्मीका पति हे पाण्डव ! मैं ही हूँ । और इस संपूर्ण त्रिभुवनोंका शास्ता या स्वामी मैं ही हूँ ॥ २८० ॥ आकाश सर्वत्र व्याप्त रहे, वायु क्षणभर भी निश्चल न रहे, अग्नि जलती रहे, जल वर्षता रहे, ॥ ८१ ॥ पर्वत स्थिर रहें, समुद्र अपनी मर्यादाको न छोडें और पृथ्वी प्राणियोंका भार सहन करती रहे, हे पार्थ ! ये सब बातें मेरी आज्ञासे ही होती रहती हैं ॥ ८२ ॥ यदि मैं बोलनेको कहूं, तभी वेद बोलते हैं, मेरे चलानेसे ही सूर्य चलता है, तथा यदि मैं चलन देऊं तभी प्राण, जो जगत्के चलनेका कारण है, वह भी मेरे हिलानेसे ही हिलता है ॥ ८३ ॥ मेरे नियमके अनुसार ही यमराज भूतोंका संहार करता है, हे पार्थ ! जिसके कहनेसे ये सब कार्य होते हैं अर्थात् जिसके ये सेवक हैं, ॥ ८४ ॥ ऐसा सामर्थ्यवान् इस सब चराचरका जो प्रभु वह मैं ही हूँ; तथा आकाशके समान कुछ भी न करनेवाला तटस्थ-वृत्तिवान् जो है वह भी मैं ही हूँ, ॥ ८५ ॥ हे किरीटी ! जो समस्त नामरूपमें भरा रहा है तथा इस नामरूपका जो मूलाधाररूप है, ८६ ॥ जिस प्रकार जलमें तरंग उत्पन्न होते हैं और उनमें भी जल ही रहता है, तद्वत् इस समस्त भौतिक विश्वको जो आधारभूत हो रहता है वह सर्वा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


धार भी मैं ही हूँ ॥ ८७ ॥ हे पार्थ ! जो अनन्यतासे मुझे शरण आता है, उसका जन्म-मरण मैं ही दूर करदेता हूँ, अतएव शरणागतको 'शरण्य' अर्थात् शरण जानेके योग्य, ऐसा केवल एक मैं ही हूँ ॥८८॥ इतना ही नहीं, किन्तु एक मैं ही अनेकत्वको धारण करता हुआ प्रकृतिके भिन्न भिन्न गुणोंसे जीवित जगत्के प्राणद्वारा चेष्टा करता रहता हूँ ॥ ८९ ॥ यह समुद्र है, यह गड्ढेका कीचड जल है, इस प्रकारका भेदभाव न करके किसी भी जलमें जैसा सूर्य प्रतिबिंबित होता है, तद्वत् ब्रह्मासे लेकर कीडे-चिउंटीतक सब भूतमात्रमें सख्यत्वसे रहनेवाला मैं ही हूँ ॥ २९० ॥ हे पार्थ ! मैं ही इस त्रिभुवनका आधार हूँ, और सृष्टिकी उत्पत्ति, नाश तथा पुनरुत्पत्तिका मूल-कारण मैं ही हूँ ॥ ९१ ॥ जैसे बीज शाखाओंको उत्पन्न करता है, और संपूर्ण वृक्षत्व बीजमें ही समा रहता है, तद्वत् संपूर्ण विश्व आदिसंकल्पस उत्पन्न होता है और अन्तमें उस संकल्पमें ही समा रहता है ॥ ९२ ॥ इस प्रकारका अमूर्त ( अव्यक्त ) और वासनारूप जो जगत्का बीज-संकल्प है, वह संकल्प कल्पान्तमें जहां फिर समाजाता है, वह स्थान भी मैं ही हूँ ॥ ९३ ॥ जिस समय ये नाम-रूप नष्ट होते हैं व्यक्तिगत विशिष्टत्व ( रंग-आकार ) लय पाता है, जातिभेद नामशेष होजाते हैं, आकार मिटजाते हैं, ॥ ९४ ॥ ऐसी स्थितिमें, आदि-संकल्प और वासनाके संस्कार फिरसे विश्वकी रचनाके हेतु जहां अमर हो रहते हैं, वह सुख-स्थान भी मैं ही हूँ ॥ ९५ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

मैं जब सूर्यका वेष धारण करता हूँ तब यह सब जगत् या जल सूख-जाता है, और फिर जब इन्द्ररूप होकर बरसता हूँ तब यह जगत् या जल पूर्ण भराहुआ हो जाता है ॥ ९६ ॥ अग्नि लकडीको जलाती है, तब लकडी ही अग्नि होती है, अतएव मरनेवाला या मारनेवाला दोनों मेरे ही स्वरूप हैं, ॥ ९७ ॥ इस कारण, जो जो मृत्युके स्वाधीन होता है, वह मेरा ही रूप है तथा जो नहीं मरता या अमर रहता है, वह तो स्वाभाविक ही मैं हूँ ॥ ९८ ॥ हे पार्थ ! अब लम्बा चौडा व्याख्यान न करके मैं तुम्हें एक शब्दमें ही कहता हूँ और तुम भी उसे ही समझ जाओ, कि सत् और असत् यानी अविनाशी और विनाशी अथवा व्यक्त और अव्यक्त यह सब मेरा ही रूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


है । ( शब्द भिन्न अर्थ एक ही है ) ॥९९॥ इस लिये हे अर्जुन ! क्या ऐसा कोई स्थान है कि, जहां मैं नहीं हूँ ? परन्तु इन भाग्यहीन प्राणियोंका दैव ही ऐसा विपरीत है कि मैं उन्हें दीखता ही नहीं ! ॥ ३०० ॥ हे पाण्डव ! कैसी आश्चर्यकी बात है ? कि तरंग बिना पानीसे सूख रहें, किंवा सूर्यकिरण दीपकके न होनेसे अंधे बनजायँ, उसी प्रकार वे मद्रूप रहते हुए 'मैं नहीं' इस कल्पनासे मद्रूप न होकर भ्रान्त होते हैं, क्या यह आश्चर्य नहीं हैं ? ॥ १ ॥ इस सब विश्वको बाह्याभ्यन्तरसे मैं व्याप रहा हूँ, यह सब चराचर मेरी ही मूर्ति है, परन्तु इन भाग्यहीनोंका दुर्दैव ऐसा टेढा होजाता है कि 'मैं नहीं हूँ' ऐसा ही वे कहते हैं ! ॥ २ ॥ जैसे, कोई अमृतके कुएँमें गिरे और स्वयं ही कुएँके बाहर जानेकी इच्छा करे, तो ऐसे अभागेको कौन क्या कर सकता है ? ॥ ३ ॥ हे धनुर्धर ! देखो, एक ग्रासभर अन्नके लिये दौडता हुआ अन्धा, अन्धेपनके कारण, पांवमें लगे हुए इच्छितफलदाता चिन्तामणिको जैसे ठुकरा जाता है, ॥ ४ ॥ वही स्थिति ज्ञानको त्याग कर जानेवाले जीवकी होती है, इसलिये ज्ञानके विना किसी भी किये हुएका फल नहीं प्राप्त होता, यह तुम निश्चित जानो ॥ ५ ॥ अन्धेको गरुडकेसे पंख हों, तो उनसे क्या कुछ उसे लाभ हो सकेगा ? तद्वत् ज्ञानके विना सत्कर्मके भी श्रम वृथा ही होजाते हैं ॥ ६ ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥

हे पार्थ ! देखो, जो आश्रमधर्मानुसार आचरण करके सदाचारकी स्वयं कसौटी बन जाते हैं, ॥ ७ ॥ जिनके कुतूहलके साथ किये यज्ञकर्मको देख, वेदत्रयी संतोषपूर्वक अपना माथा डुलाती है, तथा यजनक्रियाका फल जिनके सामने मूर्तिमंत खडा है, ॥ ८ ॥ ऐसे जो यज्ञमें सोमपान करनेवाले दीक्षित हैं, जो स्वयं ही यज्ञका रूप हो रहे हैं, उन्होंने पुण्यके नामसे पापका ही संग्रह किया हो, ऐसा तुम समझो ॥ ९ ॥ कारण, वे तीनों वेदोंको जानते हुए, सैंकडों यज्ञ करके, मुझ याज्यको भूलकर स्वर्गप्राप्तिकी याचना करते हैं ! ॥ ३१० ॥ उनका करना ऐसा हास्यास्पद होता है कि, जैसे कोई दैवहीन पुरुष कल्पवृक्षके तले बैठकर भीख माँगनेकी तैयारीमें अपनी झोलीमें गांठ बना रहा हो ॥ ११ ॥ उसी तरह ये लोग सैंकडों यज्ञद्वारा मेरी उपासना करते हैं, और उसमें इच्छा रखते हैं स्वर्ग-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सुखकी ! तब वास्तवमें क्या वह पुण्य है ? वह पाप नहीं, ऐसा कौन कह सकता है ? ॥ १२ ॥ अतएव मुझे छोडकर स्वर्गकी इच्छा करना, यह अज्ञानका पुण्यमार्ग है, परन्तु ज्ञानी पुरुष इस मार्गको विघ्न या सुखकी हानिका मार्ग मानते हैं ॥ १३ ॥ वैसा तो नरकके दुःखको देखकर वे स्वर्गको सुखका स्थान कहते हैं, परन्तु, विचारके साथ देखा जाय तो निर्दोष, नित्यानंद, और अविनाशी एक मेरा ही स्वरूप है ॥ १४ ॥ हे वीरश्रेष्ठ पार्थ ! मेरे स्वरूप प्राप्तिके मार्गमें स्वर्ग और नरक ये दो आडे-टेढे चोरोंके रास्ते लगे रहते हैं ॥ १५ ॥ पुण्य और पापके मिश्रणसे स्वर्गप्राप्ति, पापरूपी पापसे ( केवल पापसे ) नरककी प्राप्ति और शुद्ध, निर्दोष, केवल पुण्यसे ही मेरी प्राप्ति होजाती है, ऐसा नियम है ॥ १६ ॥ और हे अर्जुन ! मुझमें रहते हुए भी जिस कारण जीवको मुझसेही वञ्चित रहना पडे, उसे यदि पुण्य कहा जाय तो कहनेवालेकी जिह्वाके शतशः टुकडे कैसे न हों ? ॥ ॥ १७ ॥ अब इस विषयांतरको रहने दो, प्रस्तुत-विषयमें ध्यान दो, इस प्रकार वे यज्ञकर्ता दीक्षित यज्ञद्वारा मेरी उपासनासे केवल स्वर्गभोगकी याचना करते हैं ॥ १८ ॥ और जिस कर्मसे उन्हें मैं प्राप्त नहीं होता, कारण वह पापरूप-पुण्य होता है, वे तो उस पुण्यके सामर्थ्यसे बडी अभिलाषाके साथ स्वर्गको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ उस स्वर्गमें अमरता ही सिंहासन है । वहां बैठनेके लिये ऐरावत हाथी, रहनेके लिये अमरावती राजधानी है ॥ ॥ ३२० ॥ वहां महासिद्धियोंके भण्डारके संग्रह हैं, तथा अमृतके कुण्ड भरे रहते हैं और कामधेनुके जहां समूह ही होते हैं ॥ २१ ॥ सेवाके लिये जहां देवता रहते हैं और वहांकी धरती केवल चिन्तामणि-पत्थरोंसे बनी रहती है तथा जहां तहां कल्पवृक्षोंके ही क्रीडोपवन हैं ॥ २२ ॥ वहां निरंतर गंधर्वोंका गाना चलता रहता है और रंभाजैसी अप्सरायें नृत्य करती हैं तथा जहां उर्वशी-प्रमुख स्त्रियें विलासवती होती हैं ॥ २३ ॥ जहां शय्यागारमें व्यवस्था और सेवा करनेके लिये प्रत्यक्ष कामदेव ही रहता है, चंद्रमा आंगन सींचनेका काम करता है और वायु जैसे आज्ञाधारक सेवक सेवा करनेके लिये इधर उधर दौडते रहते हैं ॥२४॥ बृहस्पतिजी जिनमें प्रमुख हैं ऐसे ब्राह्मण-देवता वहां स्वास्तिश्रीपूर्वक आशीर्वाद देनेके लिये सदैव उपस्थित रहते हैं और स्तुति-स्तोत्र गानेवाले भाटोंका काम बहुतेरे देवता ही करते रहते हैं ॥२५॥ जहां लोकपालोंकी पंक्तिमें खडे रहनेवाले बहुतसे बडे बडे सरदार होते हैं और उच्चैःश्रवा जो इन्द्रका घोडा वह अग्रगामी घोडोंमें कोतवाल-घोडा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( श्रेष्ठ घोडा ) रहता है ॥ २६ ॥ तात्पर्य, जबतक पुण्यसंचय रहता है, तबतक इन्द्रोपभोग-सुखके समान बहुतसे उपभोग वे लोग वहां भोगते रहते हैं-॥ २७ ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१ ॥

-परन्तु, जब वह पुण्यसंचय समाप्त होता है, तब जिस पुण्यसीढीसे ऊपर चढे थे, उसका आश्रय छूटता है और उसी क्षण इन्द्रत्वका तेज उतर जाता है और धीरे धीरे मृत्युलोकमें आने लगते हैं ॥२८॥ जिस प्रकार कोई वेश्यागामी पुरुष जब विषयोपभोगमें सब द्रव्य खर्च करके दरिद्री बनता है, तब उस वेश्याके दरवाजेतक जानेकी भी उसकी हिम्मत नहीं होती; तद्वत् उन यज्ञकर्ता दीक्षितोंकी पुण्यसंग्रह समाप्तिमें जो लज्जास्पद और अत्यंत शोचनीय स्थिति होजाती है, उसका वर्णन ही न करना ॥ २९ ॥ हे पार्थ ! इस तरह मुझ शाश्वत रहनवालेको भूलकर पुण्यकृत्योंसे जिन्होंने स्वर्गभोग प्राप्त किये, उन्हें सच्चा अमरत्व न प्राप्त होनेसे अन्तमें फिर मृत्युलोकमें ही आना पडता है ॥ ३३० ॥ फिर क्या ? माताकी उदररूपी गुहामें विष्ठामूत्रकी गरमीमें नव मास तक पककर बार बार जन्मते और मरते हैं ॥ ३१ ॥ देखो, स्वप्नमें द्रव्यसंग्रह हाथ आया दीखता है, किन्तु जागृतिमें वह थोडा रहता है ? उसी प्रकार यज्ञकर्ता वेदज्ञोंको मिलनेवाला यह स्वर्ग-सुख स्वप्नवत् झूठा ही समझो ॥ ३२ ॥ देखो पार्थ, धान्यकण पृथक् करनेपर बचता क्या है ? केवल भूसा ! फिर चाहे जैसे श्रम करनेपर उसमेंसे कुछ फलप्राप्ति नहीं होगी, तद्वत् कोई वेदवेत्ता वेदद्वारा यज्ञ करे, किन्तु, यदि मुझ शाश्वतको जाननेका उसे ज्ञान न हो तो उसके श्रम वृथा होते हैं ॥ ३३ ॥ इस कारण, मुझ अकेलेका ज्ञान न होनेसे संपूर्ण वेदोक्त धर्म निष्फल होते हैं, अत एव तुम चाहे आर कुछ भी न जानकर, केवल मेरे सत्स्वरूपको जानोगे तो सब तरहसे सुखी होंगे ॥ ३४ ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥

जो संपूर्ण भावोंसे मुझे चित्त अर्पण करते हैं, जिस प्रकार गर्भाशयका पिण्ड कोई भी उद्योग नहीं जानता, तद्वत् जो मेरे बिना अन्य कोई भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भला नहीं समझते और संपूर्ण अपने जीवनको जो मद्रूपही कर रहे हैं, ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मद्रूपताको प्राप्त हो, जो एकनिष्ठतापूर्वक मेरा चिन्तन करते रहते हुए मेरी उपासना करते हैं, हे पार्थ ! उनकी सेवा मैं भी करता हूं ॥ ३७ ॥ जिस समय वे सर्व जीवभावोंसे एकाग्रचित्त हो मेरे भजनमें लगते हैं, उसी समय सब तरहसे उनकी व्यवस्था करनेकी चिन्ता मुझे उत्पन्न होती है ॥ ३८ ॥ फिर उन्हें जो जो करना उचित रहता है, वह सब मुझेही करना पडता है। जैसी पक्षिणी अपने बच्चोंको पंख न फूटे हुए हों,इसी लिये अपना जीवन धारण करती हुई भी अपनी प्यास-भूँख नहीं जानती, किन्तु, जो मेरे नन्हे बच्चे हैं, उनका पोषण कैसा हो यही जिसे चिन्ता रहती है, और यही मुझ माताका कर्तव्य है, ऐसा ही समझती रहती है। तद्वत् ही, जो सब तरहसे मुझपर विश्वसित हो मेरी उपासनामें निमग्न हो रहे हों, उनका सब कुछ कार्य मैं ही करता हूँ ॥३९॥ ॥ ४० ॥ हे पार्थ ! यदि उन्हें मेरे सायुज्य ( मोक्ष ) की इच्छा हो, तो वह उनकी इच्छा-तृप्ति मैं कर देता हूँ और यदि उन्हें मेरी सेवामें ही अभिरुचि हो, तो मैं अपना प्रेम उनके सम्मुख रख देता हूँ ॥ ४१ ॥ इस प्रकार, जो जो उनके मनकी भावना हो, वह सब उन्हें दे उनके हेतु पूर्ण कर देता हूँ, इतना ही नहीं, अर्जुन ! उनकी इच्छानुसार जो जो कुछ उन्हें दे दिया है, उसका संरक्षण भी मुझे ही करना पडता है ॥ ४२ ॥ देखो पार्थ ! जिनके सर्व भाव मेरे आश्रयसे ही रहते हैं, इसलिये उनका योगक्षेम चलाना भी मुझे ही आवश्यक होता है ! ॥ ४३ ॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

इसके अतिरिक्त और भी कई संप्रदाय है, परन्तु वे मेरे इस समष्टि ( सर्वव्यापक ) रूपको नहीं जानसकते, कारण वे अग्नि, इन्द्र, सूर्य, सोम इनके उद्देशसे यजन करते हैं ॥ ४४ ॥ वास्तवमें उनका किया हुआ यजन भी मुझे ही प्राप्त होता है, कारण, यह जो सब विश्व है, वह सब मैं ही हूँ, परन्तु यह उपासना-पद्धतिका मार्ग सरल नहीं, किन्तु टेढा समझा जाता है ॥ ४५ ॥ देखो पाथ ! वृक्षकी शाखायें और पल्लव क्या एकही बीजके नहीं हैं ? किन्तु पानीके शोषनेका काम जडका ही रहता है, इसलिये वह पानी जडहीमें देना चाहिये ॥ ४६ ॥ अथवा अपने जो ये दश

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इन्द्रियाँ हैं, सो तो यद्यपि इस एकही देहकी हैं, तथा उनके सेवन किये हुए भी विषय एकही जगहमें पहुँचते हैं, ॥ ४७ ॥ तथापि बना बनाया अन्न कानमें कैसे भराया जाय ? अथवा पुष्पोंको लाकर आँखोंमें बांधनेसे योग्य हो सके ? ॥४८॥ नहीं,रसका सेवन मुखसे ही करना चाहिये, पुष्पोंका सुगंध नाकसे ही सूँघना चाहिये, यह जैसा योग्य है, तद्वत् ही मेरे स्वरूपको पहचान कर ही मेरी उपासना या मेरा यजन करना अवश्य होगा ॥ ४९ ॥ अन्यथा, मेरे स्वरूपके ज्ञानविना जो भजन किया जाता है, वह अनुचित अथवा वृथा बकना ही होता है, अतएव कर्ममें ज्ञानदृष्टिकी अवश्य आवश्यकता रहती है, और वह ज्ञानदृष्टि भी निर्दोष और निर्मल होनी चाहिये ॥ ३५० ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ २४ ॥

विचार पूर्वक देखा जाय, तो हे पार्थ ! इन यज्ञोंके संपूर्ण उपचारोंका भोक्ता मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन है ? ॥ ५१ ॥ मैं ही सब यज्ञोंका आदिकारण हूँ तथा संपूर्ण यज्ञोंका आखिरी परिणाम भी मैं ही हूँ, परन्तु वे यज्ञकर्ता इस ज्ञानसे वञ्चित हो जानेके कारण, अज्ञजनोंकी नाईं मुझे भूलकर अनेक अन्य देवताओंका यजन करते हैं ! ॥५२॥ जैसे गंगाका जल देवपितरोंके नामसे गंगाहीमें छोडा जाता है, तद्वत् वे सब विधिविधानसे मेरा मुझको ही देते हैं, परन्तु वह अर्पणविधि दूसरे भिन्न भिन्न देवताओंके उद्देशसे करते हैं ॥ ५३ ॥ अत एव हे अर्जुन ! वे विधिविधानसे कर्म करते हुए भी मुझे नहीं प्राप्त होते, किन्तु जिनके उद्देशसे मनमें आस्था रखते हैं उन अपने उपास्योंके स्थानमें ही पहुँचते हैं ॥ ५४ ॥

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥ २५ ॥

जिन्होंने मन, वाणी व इन्द्रियोंको जिन देवताओंके भजनमें लगा दिया, देहपात होते ही वे उन उन देवताओंके रूपकोही पाते हैं ॥ ५५ ॥ अथवा जिनके मन पितृव्रत आचरणमें निमग्न हो रहे हों, वे मृत्युके अनंतर पितृत्वको प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ किंवा, वेताल, पिशाच आदि क्षुद्रदेवताही जिनके श्रेष्ठ दैवत हैं, तथा जारण–मारणादिकर्मोंके लिये ही जो उनकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उपासना करते हैं ॥ ५७ ॥ उनकी देहरूपी जवनिकाको जब मृत्यु हटा देती है, तो उसी क्षण वे पिशाचयोनिको प्राप्त होते हैं, इस प्रकार अपने संकल्पसे ही वे अपने कर्मका फल पाते हैं ! ॥ ५८ ॥ परन्तु जिनकी दृष्टि मेरे स्वरूपको ही देखती है, जिनके कान मेरा ही कीर्तन श्रवण करते हैं तथा जिनके मनमें मेरा ही चिन्तन रहता है, जो वाणीसे मेरी ही कीर्तिका गान करते हैं, ॥ ५९ ॥ जो सर्वत्र सर्वांगोंसे मेरे उद्देशसे ही नम्र होते हैं तथा जो कुछ दान, पुण्य आचरण करते हैं, वह सब मेरे प्रीत्यर्थ ही किया करते हैं, ॥ ३६० ॥ जो मेरा ही अध्ययन—अभ्यास करते हैं तथा जो सबाह्यांतर मद्रूप हो संतुष्ट हो रहे हैं, जिनका जीवनकाल मेरे ही लिये है ॥ ६१ ॥ जो केवल हरिके गुणानुवाद गानेके लिये ही हम जन्म धारण कर रहे हैं, ऐसा अभिमान रखते हैं, और जिन्हें केवल मेरे अकेलेमें ही प्रेमका लोभ भरा रहता है, ॥ ६२ ॥ जो केवल मेरी प्राप्तिके लोभी बनकरही सकाम हो जाते हैं, जो मेरे प्रेमके लिये ही प्रेमाकुल हो जाते हैं और मेरा सर्वव्यापी स्वरूप सर्वत्र भराहुआ भासमान होनेके कारण, जिन्हें जगत्के लौकिक भाव भासमान भी नहीं होते, ॥ ६३ ॥ तथा जो शास्त्रोंसे मेरेही ज्ञानका उपार्जन करते हैं और मंत्रोंसे मेरी ही प्राप्तिकी इच्छा करते हैं; सारांश, उनकी हरेक क्रिया मेरे भजन या मेरी उपासनाके अर्थ ही रहती है ॥ ६४ ॥ अतः वे मेरे भक्त मृत्युके पहले ही मेरे सत्य, शुद्ध, चिदानन्दस्वरूपमें मिलजाते हैं, हे पार्थ ! फिर मृत्यु होनेपर वे दूसरे स्थानमें कैसे और क्यों जायँगे भला ? ॥ ६५ ॥ इस लिये, सेवाके मिससे अपने सर्व व्यवहारोंके साथ स्वयं अपनेको भी मेरे स्वरूपमें जो अर्पित हो रहते हैं, ऐसे वे मेरे याज्ञिक उपासक, मेरे स्वरूपमें ही मिल जाते हैं ॥ ६६ ॥ हे अर्जुन ! आत्मसमर्पणके बिना मेरे लिये प्रेम नहीं उत्पन्न होता । तथा दूसरे किसी उपायसे मैं किसीको वश नहीं हो सकता ॥ ६७ ॥ इस विषयमें अपनेको जो ज्ञानी समझता है, वही अज्ञानी है, जो अपना बडप्पन बढाना चाहता है, उसमें न्यूनता या अधूरापन है और 'अब हम परिपूर्ण होगये' ऐसे गर्जनेवालोंको तो कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ है, वह निरा मूर्ख है, ऐसा समझनेमें कोई दोष नहीं । ॥ ६८ ॥ उसी प्रकार, हे पार्थ ! यज्ञ-यागादि, अथवा तपश्चरण आदिकी वृथा प्रतिष्ठाको जो महत्त्व देते हैं, वह प्रतिष्ठा इस आत्मसमर्पणके सामने एक तृणकी भी बराबरी नहीं कर सकती ॥ ६९ ॥ अजी ! क्या ज्ञान-



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सामर्थ्यमें वेदोंसे कोई बडा है ? और वक्तृत्वमें कोई सहस्रवदन शेषसे बढकर वक्तृत्व कर सकता है ? ॥ ३७० ॥ परन्तु, वह शेष भी मेरी शय्यातले जो दबा हुआ सा चुपचाप बैठ गया है और वेद तो मेरे स्वरूपका पूर्ण पता न प्राप्त कर सकनेके कारण " नेति नेति " कहते हुए पीछे हट जाते हैं, और क्या ? जो सनकादि तपश्चर्याके मूर्तिमंत अवतार वा ज्ञान-सागर हैं वे भी इस विषयमें पागलसे बनगये हैं ॥७१॥ यदि तपस्वियोंका विचार किया जाय, तो शूलपाणि शंकरकी बराबरी कौन कर सकता है ? परन्तु वह शंकर भी सब अभिमानको छोडकर मेरा चरणतीर्थ मस्तकमें धारण करता है ॥ ७२ ॥ देखो, लक्ष्मीके बराबर कोई संपन्नतामें श्रेष्ठ है ? कारण श्रीदेवी जैसी उसकी दासियें बनकर सदा सेवा करती हैं ॥ ७३ ॥ उनके जो छोटी लडकियोंके गुडियागुडी खेलमें मिट्टीके घर बनते हैं वे ही अमरपुर कहे जाते हैं ! फिर, देवाधिपति इन्द्रादि उनके खेलकी सचमुच गुडियां नहीं हैं ? ॥ ७४ ॥ जब खेलसे अप्रसन्न हो वे बने बनाये घरौं-दे तोड डालती हैं, तब महेंद्रादि सब रंक बन जाते हैं ! वे दासियें जिन वृक्षोंकी तरफ दृष्टिको फेरती हैं वे सब कल्पतरु बनजाते हैं ॥ ७५ ॥ इस प्रकारका अलौकिक सामर्थ्य जिसके घरकी परिचारिकाओंमें रहता है, उन की मुखिया या नायिका जो लक्ष्मी उसका भी महत्त्व इस नारायणके पास विशेष नहीं रहता ! ॥ ७६ ॥ हे पार्थ ! इस कारण ही वह लक्ष्मी सब तर-हसे अभिमानको छोडकर भगवान्से आत्मसमर्पण करती हुई नारायणके पैर धोनेका भाग्य प्राप्त करनेपर ही समाधान मानती है ! ॥ ७७ ॥ इस लिये, हे पार्थ ! सब तरहके अभिमानको छोडदेना, बडप्पनका नाम मिटा देना, विद्वत्ताकी घमंडको भूलना और " सब विश्वभरमें मैं ही छोटा हूं " ऐसी सच्ची भावना करके विनयके साथ आजानेकी इच्छा करना, तब कहीं मेरे सान्निध्यका लाभ हो सकता है ॥ ७८ ॥ देखो, सहस्रकिरण सूर्यके सामने चन्द्रमा भी निस्तेज होजाता है, फिर जुगनु यदि अपने तेजका वहां घमंड करे तो उसकी कैसी दशा होगी ? ॥ ७९ ॥ इसी प्रकार जहां लक्ष्मीका महत्त्व या शंकरके तपश्चर्याकी मात्रा नहीं चल सकती, वहां अन्य प्राकृत दुर्बल मूर्खजनोंकी कथा ही क्या है ? ॥ ३८० ॥ इसलिये शरीराभिमानको जडमूलसे निकाल देना चाहिये, सब सद्गुणोंकी प्रतिष्ठाका मुझपरसे राई-नोंन उतारकर सम्पत्तिके मदकी निछावर कर, उसे एकदम बाहर कर-देना चाहिये ॥ ८१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

फिर अमर्याद प्रेमरसभरे अन्तःकरणसे वह भक्त कोई भी वृक्षका कैसा भी फल मुझे अर्पण करनेकी इच्छासे जब मेरी तरफ उस फलको करता है, तब बडी उत्सुकताके साथ उस फलको लेनेकी इच्छासे मैं अपने दोनों हाथ पसारता हूँ और उस फलका डण्ठल तोडनेमें भी अवकाश न देकर प्रेमसे उसको जैसाका तैसा ही सेवन करता हूँ ॥८२॥८३॥ हे पार्थ ! यदि मेरा भक्त मुझे भक्तिपूर्वक प्रेमभावसे एक फूल भी दे, तो वास्तवमें उसे मुझे सूँघनाही चाहिये, परन्तु भक्तप्रेमकी अतिशयतापर प्रसन्न हो, उसे मैं मुखमें ही डालता हूँ ॥ ८४ ॥ यह तो रहने दो, फूलकी बात ही क्या है ? भक्तके प्रेमका एक पत्ता भी हो, वह किस वृक्षका है, ताजा या पुराना है, इस बातका विचार न कर केवल प्रेमभावोंसे भरा है इतना ही मैं देखता हूँ और कोई भूखा मनुष्य जैसे अमृतपानसे तृप्त होता है तद्वत् उस पत्तेको खाने-पर मुझे संतोष हो मैं पुष्ट होजाता हूँ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ अथवा कोई समय-पर पत्ता भी न मिले, ऐसा भी होसकता है, परन्तु जलके लिये तो कमी नहीं ? ॥ ८७ ॥ वह तो कहींभी बिना दामसे ही मिलजाता है, वह मुफ्तमें मिला हुआ जल अपना सर्वस्व समझकर जब मुझे अर्पण करता है, ॥ ८८ ॥ तब मैं समझता हूं कि उस प्रेमीने वैकुण्ठसे भी बढ़कर मंदिर बना दिये अथवा कौस्तुभसे भी बडे तेजस्वी रत्नोंके अलंकार मेरे अंगपर चढा दिये, ॥ ८९ ॥ किंवा क्षीरसागरसे भी सुखकर असंख्य नये दुग्धशय्यास्थान निर्माण करदिये, ॥३९०॥ अथवा कपूर,चंदन, कृष्णागरु-जैसे सुगंध-द्रव्योंका अत्युच्च मेरुपर्वत ही मेरे उपभोगार्थ बना दिया, किंवा मेरी दीपमालिकापर हाथकी बनी हुई एक बत्तीको लगाकर दूसरा सूर्य ही निर्माण किया हो, ॥ ९१ ॥ अथवा गरुडसरीखे वाहन, कल्पतरुसे बगीचा या कामधेनुजैसी गौएँ ही मुझे अर्पण करदीं, ॥ ९२ ॥ किंवा अमृतसे भी सुचारु नानाप्रका-रके दिव्य पकान्न ही मुझे परोस दिये हों, हे पार्थ ! उन भक्तोंके प्रेमसे दिये हुए जलके बिन्दुसे मैं इतना अपरंपार संतोषित होजाता हूँ ॥ ९३ ॥ हे पार्थ ! तुम्हें कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं, तुम प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे देखचुके हो कि, तीन मुट्ठी चावलोंके लिये भक्त सुदामाके फटेटूटे कप-डोंकी ग्रंथियें मैंने छोड दी हैं ! ॥ ९४ ॥ हे पृथापुत्र ! मैं सिवाय भक्तिके और कुछ नहीं देखता, फिर यह छोटा, यह बडा, यह उच्च, यह नीच ऐसी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भेदभावकी कल्पना मेरेमें नहीं रहती, मैं केवल सच्चा प्रेमभावही देखता हूँ, फिर कोई भी और कैसा भी क्यों न हो, उसके भावके ही हम पाहुने बनते हैं ॥ ९५ ॥ वास्तवमें विचारके साथ देखा जाय तो, पत्र-पुष्प-फल ये बातें केवल भक्ति दिखानेके साधन या बहाने हैं, वास्तवमें इन बातोंसे हमें कोई सरोकार नहीं । कारण, हमारा तत्त्व तो इतना ही है, कि निष्कलंक भक्ति रहे ॥ ९६ ॥ अतएव हे बुद्धिमान् पार्थ ! इस बातको साध्य करनेका एक सुलभ उपाय हम तुम्हें बता देते हैं, उसे ध्यानमें रखो । हे पार्थ ! तुम इतना ही करो कि, अपनी बुद्धिको अपने वश करके मनोमन्दिरमें मेरा विस्मरण कभी न होने दो ॥ ९७ ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥

तुम जो जो कुछ कर्म करो, जो जो कुछ भोग भोगो अथवा नाना-प्रकारके यज्ञ-संपादन करो, ॥९८॥ अथवा जब कभी किसी सत्पात्रमें दान दो, वा सेवकोंका कोई वेतन या निर्वाहसाधन दो, किंवा व्रताचरण, तपाचरण करो ॥ ९९ ॥ वे सब क्रियायें जिस तरह जिस अवस्थामें स्वभावतः उत्पन्न हो जांय वैसी ही अवस्थामें सब भक्तिभावोंसे मेरे निमित्त या प्रीत्यर्थ अर्पण करते रहो ॥ ४०० ॥ परन्तु, ऐसा करते समय हे पार्थ ! यह भी पूर्ण ध्यान रखो कि, उनके अर्पण करनेपर अन्तःकरणमें उनकी स्मृति भी न रहे । ऐसे स्वच्छ धुले हुए और निर्मल कर्म निरहंकार-हृदय होकर, तुम मुझमें समर्पित करते रहो ॥ १ ॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

फिर अग्निकुण्डमें भुने हुए बीज जैसे अंकुरित नहीं हो सकते तद्वत् मुझमें समर्पित किये हुए शुभाशुभकर्म निष्फल हो जावेंगे अर्थात् वे कर्ताको बन्धनकारक नहीं होंगे ॥ २ ॥ हे पार्थ ! जब कर्मका अंश बचा रहता है तभी उसका सुख-दुःखरूपी फल उत्पन्न होता है, और उस फलको भोगनेके लिये जीवको किसी भी देहका फिर आश्रय करना आवश्यक होता है, ॥ ३ ॥ परन्तु, वे कर्म निःशेष मुझे अर्पण किये गये हों, तो उसी समय जन्म-मरणके स्थान समूल नष्ट हो जाते हैं, और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जब जन्म-नाश ही न रहा, तब उसके संग होनेवाले श्रम नष्ट होनेमें शंका किस बातकी ? ॥ ४ ॥ हे पार्थ ! इसका सारांश तुम यही समझो कि, आत्मस्वरूपकी प्राप्तिमें अत्यंत सीधा और सुलभ उपाय जो कर्मफल-संन्यास उसका तुम्हें उपदेश दिया है, उसमें शीघ्रता या बुद्धिमत्ताका अनुभव करना तुम्हारा कर्तव्य है ॥ ५ ॥ मेरे कहे हुए इस मार्गपर चलनेसे तुम इस देहकी बंदीमें न आओगे, सुख-दुःखके घोर सागरमें न डूबोगे, किन्तु सहजहीमें मेरे आनन्दमय स्वरूपमें मिलकर अक्षय्य सुखको भोगते रहोगे ॥ ६ ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥

सो मैं कैसा हूं ? ऐसी यदि तुम्हें शंका हो तो, मैं सर्वदा सब भूतमात्रोंमें समभावसे ही रहता हूँ, अपना-पराया इस प्रकारका भेदभाव मुझमें यत्किञ्चित् भी नहीं रहता ॥ ७ ॥ जो लोग मेरे सत्य शाश्वतरूपको जान, अहंकारको समूल नष्ट करते हुए सब भावोंसे अपने सब कर्म मुझे अर्पण कर अन्तःकरणसे मेरा भजन करते हैं, ॥ ८ ॥ वे यद्यपि शरीरधारी होकर सब कर्म करते हुए दिखाई देते हों, तथापि वे सब भावोंसे मुझमें ही रहते हैं, और मैं भी सब तरहसे उनके हृदयमें ही रहता हूँ ॥ ९ ॥ जिस प्रकार बडा भारी वट-वृक्ष विस्तारके साथ, छोटेसे बीजकणमें रहता है और वह बीज-कण भी वट-वृक्षमें ही रहता है, ॥ ४१० ॥ तद्वत् हममें तथा उन भक्तोंमें केवल बाह्याकारमें नाम-मात्रका अन्तर रहता है, अन्यथा अन्तर्गत-वस्तुविषे यदि विचार किया जाय तो वे मद्रूप ही हैं । हमारे और उनमें भेद नहीं ॥ ११ ॥ जैसे किसीका अलंकार थोडी देरके लिये माँगकर अपने शरीरपर केवल दिखावटके लिये धारण किया जाता है, उसमें आत्मीयत्व नहीं रहता, तद्वत् वे उदासीनतापूर्वक देहको धारण करते रहते हैं उसमें अपनापन नहीं ॥१२॥ वायुके साथ सुगंध निकलजानेपर, निर्गंध और बासी पुष्प, गिरनेतक जैसा डण्ठलमें ही चिपका रहता है, तद्वत् आत्मीयत्व जिसमेंसे निकलगया है, ऐसा उन भक्तोंका देह अन्तकालतक आयुष्यके हाथ पकडा हुआ रहता है ॥ १३ ॥ हे पार्थ ! उसके कर्तापनेका जो अभिमान है, वह मुझमें समारोपित करनेसे मेरेमें लीन होजाता है, इस लिये मेरे उस भक्तको किसी प्रकारसे बन्धनकारक न होनेके कारण वह मुझमें मिलजाता है ॥ १४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥

इस प्रकार निर्मल प्रेमभावसे भजनेवालेको शरीर भी बाधक नहीं होता, फिर वह किसी भी जातिका हो तो क्या हर्ज है ? ॥ १५ ॥ और यदि उसका आचरण देखनेपर वह निरा दुराचारी ही ज्ञात हो, तथापि देहान्तमें अपना जीवन-सर्वस्व उसने भक्तिमार्गमें समर्पित कर दिया था, हे पार्थ ! इस बातको भूलना न चाहिये ॥ १६ ॥ देखो, 'अन्ते या मतिः सा गतिः' इस कहावतसे, आगेकी गतिका स्वरूप निश्चित रहता है, अतएव जिसने देहान्तमें अपना जीवित भक्तिमें ही समर्पित कर रखा हो, वह यद्यपि दुराचारी दिखाई दे, तथापि भक्तिके सर्वश्रेष्ठ सामर्थ्यसे वह परम-पावन ही गिना जा सकता है। देखो, कोई पुरुष बडी बाढमें डूबगया हो, परन्तु न मरकर उसने किनारा प्राप्त किया, ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब उसका डूबना वृथा ही हुआ, क्योंकि अपना जीवित सुरक्षिततापूर्वक उसे प्राप्त भया ! तद्वत् अन्तकालिक भक्तिसे उसका सब पूर्व-पाप मिट जाता है, इसमें संदेह नहीं ॥ १९ ॥ इस कारण, कोई पुरुष यद्यपि दुराचारी रहे, तथापि पश्चात्तापरूपी तीर्थमें सुस्नात हो सब भावोंसे मेरे स्वरूपमें प्रविष्ट होगा, ॥ ४२० ॥ तब वह ही क्या ? उसका सब गोत्र भी पवित्र समझना चाहिये, उसका कुलीनत्व सचमुच निर्दोष है और उसीके जन्मका यथार्थ सार्थक होकर वह कृतकृत्य होगया ऐसा समझो ॥ २१ ॥ कारण उसने विद्या, तप, अष्टांगयोग सब कुछ साध्य किया है ॥ २२ ॥ अब हे किरीटी ! यह विस्तार यहां ही समाप्त कर देता हूँ और थोडेमें मैं तुम्हें यही कहता हूँ कि जो सब भावोंसे मेरेमें ही निमग्न हो रहता है, वह इस पार ही सब कर्मोंसे पार हो चुका ॥ २३ ॥ जिसने अपने मन तथा बुद्धिके सब व्यापारोंका पिटारा भरकर एकनिष्ठतापूर्वक मेरे हवाले कर रखा है, हे पार्थ! वह इस प्रकार कर्मातीत होता है ॥ २४ ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

वह मेरा भक्त मृत्युके बाद कुछ काल पश्चात् ही मेरे सरीखा होता होगा, ऐसी यदि तेरी कल्पना हो, तो मैं तुम्हें पूछता हूँ, हे पार्थ ! जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अमृतमें ही रहता है, उसे मृत्यु भी कैसी होगी ? ॥ २५ ॥ जिस समय सूर्यका उदय नहीं रहता, उसीको रात्रि कहा जाता है, तद्वत् मेरी भक्तिके बिना जो जो किया जाता है, वह सब क्या महापाप नहीं है ? ॥ ॥ २६ ॥ अतएव हे पाण्डव ! ज्यों ही उसकी चित्तवृत्ति मेरे सान्निध्यमें पहुँच जाती है, त्यों ही वह मेरे सत्स्वरूपमें मिलजाता है ॥ २७ ॥ दीप-कसे दीपक लगानेपर, जब दोनों दीपकोंको देखाजाय तो यह जैसा नहीं ज्ञात होता कि, पहला दीपक कौनसा है ? तद्वत् जो सर्व-भावोंसे मेरी भक्ति करके मुझमें मिलजाता है, वह उसी समय मत्स्वरूप ही हो जाता है ॥ २८ ॥ फिर जो मेरी अक्षय शान्तवृत्ति है, वही उसको प्राप्त होती है और जो मेरा तेज है उसीस वह बडा तेजस्वी हो जाता है, किंबहुना मेरे जीवनसे ही वह जीवन धारण करता है, ऐसा ही समझो ॥ २९ ॥ देखो पाथ ! बार बार इस विषयका चर्वितचर्वण कितना किया जाय ? मुख्य तत्त्व तुम यही समझो, कि यदि मेरी प्राप्तिकी इच्छा हो, तो मेरी एकनिष्ठ भक्तिको कभी मत भूलो ॥ ४३० ॥ हे पार्थ ! वंशकी शुद्धतापर दृष्टि मत रखो, कुलीनताकी प्रशंसापर मत ध्यान दो और वृथा ज्ञान वा विद्याके अभिमानसे न फूलकर पीछे हटजाओ ॥ ३१ ॥ अथवा रूप-लावण्य और यौवनबलका गर्व भी किस लिये किया जाय ? द्रव्याढ्यतासे संप-त्तिकी वृथा गर्जनामें क्यों श्रम किये जाँय ? कारण, यदि एक मेरी भक्ति न हो तो ये सब बातें वृथा ही हैं ॥ ३२ ॥ छूछे मुट्टे तो खेतमें घने लगे रहते हैं, परन्तु, यदि उनमें दाने न हों तो वे किस कामके ? शहर बडा और सुडौल है, परन्तु यदि वह निर्जन स्मशानवत् सुनसान पडा हो तो कैसा लगे ? ॥ ३३ ॥ किंवा, सूखा हुआ सरोवर हो अथवा दुबलों-दुबलोंकी जंगलमें भेंट हो, या जिनमें फल ही न लगें ऐसे फूलोंकी बहारवाले वृक्ष हों, ॥ ३४ ॥ तो जैसी ये बातें निरर्थक होती हैं, तद्वत् वह सब वैभव, कुलका बडप्पन या जातिका महत्त्व वृथा ही समझो । देखो शरीरमें जहांके तहां यथासांग संपूर्ण अच्छे अवयव हैं, परन्तु यदि उसमें चिच्छक्ति ( जीवनकला ) न हो तो वह किस कामका होगा ? अथवा लकडीमें और उसमें क्या अन्तर हो ? उसी प्रकार जिसमें मेरी भक्ति नहीं वह जीवित भी धिक्कारणीय ही समझना, कारण, इस प्रकारसे पृथ्वीपर जीवित रहनेवालोंके जीवितमें और पाषाणोंमें भेद क्या है ? ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कंटकयुक्त अजान वृक्षकी सघनछायाको निषिद्ध समझकर विद्वान् लोग जैसे उसे टाल देते हैं ॥ ३७ ॥ नीमका वृक्ष

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


नीमकौडियोंको बहारसे यद्यपि झुक जाय, तो वह कौओंकी ही दिपवाली बनावेगा ? वैसेही भक्तिहीन पुरुष यदि वैभवको प्राप्त होगा, तो पापों (दोषों) का ही विशेष प्रसार करेगा ॥ ३८ ॥ देखो, खपरेमें घड़सयुक्त अन्न परोसकर उसे चौराहोंमें रखा जाय तो उसे कुत्ते ही खा जाँयगे और उससे जो एक चाँई रोग ( जिससे बाल झडते रहते हैं वह रोग ) उत्पन्न होता है, वह भी उन्हें होजायगा ॥ ३९ ॥ उसी प्रकारका भक्तिहीनपुरुषोंका जीवित-चरित्र होता है। जिसके स्वप्नमें भी सुकृतका कृत्य नहीं आता, उसे संसारदुःखरूपी पकान्नोंकी भरी थाली ही समझो ॥ ४४० ॥ अतएव भक्तिमें उत्तम कुलकी आवश्यकताका कुछ प्रयोजन नहीं, जाती शूद्र हो या अतिशूद्र हो तो पर्वा नहीं, इतना ही क्या ? यदि पशुका शरीर हो तो भी कुछ दोष नहीं, ॥ ४१ ॥ देखो, अर्जुन ! तुम जानते ही होंगे, कि जब नक्रने हाथीको अपनी पकडमें पकड लिया, तब उस गजेंद्रने मेरी ही भक्तिपूर्वक स्तुति की, और इस प्रकार एकनिष्ठताके साथ मेरा स्मरण करनेपर वह मद्रूपताको प्राप्त हो मेरे सांनिध्यको पहुँच गया और उसका पशुत्व भी उसी क्षण नष्ट हो चुका ! ॥ ४२ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ३२ ॥

हे पाण्डव, पार्थ ! देखो, जिनका नाम लेना भी लोक अनुचित समझते हैं, ऐसे हीन जातिवाले हों, अधमोंसे भी अधम—जातिमें या पाप—योनिमें जिनका जन्म हुआ हो, ॥ ४३ ॥ ऐसे अधम—योनिमें उत्पन्न होकर फिर ज्ञानमें भी केवल पत्थर सरीखे हों, परन्तु सर्वभावोंसे मेरेमें जिनका चित्त दृढ है ॥ ४४ ॥ और जिनकी वाणीमें निरंतर मेरे गुणानुवादके ही गीत रहते हैं, जिनकी दृष्टि मेरे रूपका ही अवलोकन करती रहती है, जिनका मन सदैव मेरे विषयके ही संकल्प किया करता है, ॥ ४५॥ उसी प्रकार जिनके श्रवण मेरी कीर्तिके सिवाय और कुछ सुनना ही नहीं चाहते, मेरी निरंतर सेवा करते रहना ही जिनके सब अंगमात्र अपना भूषण मानते हैं, ॥ ४६ ॥ जिन्हें विषयोंके ज्ञानका भान ही नहीं रहता, किन्तु सब कुछ एक मैं ही हूँ, ऐसी जिनकी पूर्ण भावना ही रही है, इसलिये जिनका ज्ञातृत्व मैं ही रहता हूँ और इस प्रकारका लाभ यदि प्राप्त न हो, तो अपना जीना केवल मरण-तुल्य है, ऐसी जिनकी बुद्धि होती है ॥४७॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे पार्थ ! इसप्रकार जिन्होंने अपने सब भाव जीवित रखनेके लिये केवल मेराही आश्रय लिया है, ॥ ४८ ॥ वे चाहे पापयोनिमें जन्म धारण करें, चाहे विद्याहीन हों, किन्तु मेरे साथ यदि उनकी तुलना की जाय तो वे मुझसे किसी योग्यतामें कम नहीं होंगे, ॥ ४९ ॥ देखो अर्जुन ! इस भक्तिके ऐश्वर्यसे ही देवताओंको भी दैत्योंके आगे सिर नीचा करना पडा है ! तुम जानते ही हो कि, मेरा आत्यंतिक प्रिय भक्त प्रह्लाद, क्या दैत्य-कुलमें नहीं जनमा ? परन्तु उसकी जो एकनिष्ठतात्मक भक्ति है वही मुझे नृसिंहावतार धारण करनेमें कारण हुई ! ॥४५०॥ उस प्रह्लादकी योग्यता तो किसीसे वर्णी ही नहीं जायगी ! कारण अनेकोंने हरतरहसे उसका अत्यंत छल किया, तो भी वह अपनी भक्तिसे डिगा नहीं, इसलिये मैं जो कुछ उसे देनेका मनमें लाता, वह उस पहले ही तयार रहता था ! ॥५१॥ अन्यथा, उसका कुल तो दैत्यका, परन्तु इन्द्र भी उसकी श्रेष्ठता या बराबरीको नहीं प्राप्त करसका ! अतएव इसका मुख्य कारण केवल एक शुद्ध भक्ति ही तुम समझो, यहां जाति-पांतिका कुछ महत्त्व नहीं ॥ ५२ ॥ देखो पार्थ ! राजाज्ञाके अक्षरोंका सिक्का, यदि छोटेसे चर्मखंडपर रहे तो उस चर्मखंडसे सब वस्तु मिल सकती हैं, ॥ ५३ ॥ परन्तु यदि वह राजाज्ञाके अक्षरोंका सिक्का न हो, तो सोना-रूपाके टुकडोंका भी योग्य मूल्य नहीं आता ! अर्थात् केवल सोना-चांदी भी प्रमाण नहीं, किन्तु राजाज्ञाका ही महत्त्व है, इस कारण, राजाज्ञाके अक्षरोंसे युक्त जो चर्मखंड है, वह यदि प्राप्त हो तो, सोना-चांदी आदिसे लेकर सब वस्तुओंको वह प्राप्त करा देता है ॥ ॥ ५४ ॥ उसी प्रकार बडप्पन या सर्वज्ञताका महत्त्व तभी समझना जब कि, मेरे सच्चे प्रेमसे मन तथा बुद्धि परिपूर्ण भरी रहती है ॥ ५५ ॥ इस कारण कुल, जाति, वर्ण इत्यादि सब वृथा आडंबर हैं। हे बुद्धिमान् पार्थ ! जो कुछ संसारमें धन्यत्व या कृतार्थता है, वह मेरी सच्ची भक्तिमें ही है ॥ ॥ ५६ ॥ फिर वह सच्चा भक्तिभाव किसी भी स्वरूपका हो, उस भावसे एकबार मन मुझमें प्रविष्ट होनेपर, उसके पुण्य-पापके सब चरित्र पीछे जाते हैं ॥ ५७ ॥ जैसे छोटे बडे नाले तभीतक पहँचाने जाते हैं, जबतक वे गंगाजीमें नहीं मिले हों, परन्तु एकबार गंगाजलमें मिल जानेसे वे गंगारूप ही हो जाते हैं ॥ ५८ ॥ अथवा चंदन, खैर इत्यादि पृथक् नामकरण लकडीमें तभीतक रहता है, जबतक वे लकडियें अग्निमें पडकर अग्निरूप न हुई हों, ॥ ॥ ५९ ॥ तद्वत् जबतक मेरे स्वरूपमें मिलकर तादात्म्य नहीं हुआ, तबतक ही क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अंत्यज आदि जातियें भिन्न भासमान होती हैं ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


॥ ४६० ॥ परन्तु जिस प्रकार नमक सागरमें पहुँचते ही उसमें लीन होकर तद्रूप होजाता है, तद्वत् मुझमें मिलकर समरस होजानेपर जाति तथा व्यक्तिके भेदका नाम-निशान भी नहीं रहता ॥ ६१ ॥ नद और नदियोंके नाम और यह पश्चिमवाहिनी यह पूर्ववाहिनी इत्यादि कल्पना तभीतक रहती है जबतक उन्होंने समुद्रसे भेंट नहीं की ॥ ६२ ॥ कहनेका तात्पर्य तुम यही समझो, कि किसी भी मिससे एकवार चित्तका प्रवेश मुझमें अवश्य होजाय, जिससे कि, वह आपही आप मद्रूपताको प्राप्त होजाता है ॥ ॥ ६३ ॥ अजी ! पारस फोडनेके निमित्तसे यदि लोहा उससे स्पर्श करे, तो भी स्पर्श करते ही उसीक्षण वह लोहा सुवर्णरूप होजायगा ॥ ६४ ॥ हे अर्जुन ! देखो, पतिके मिससे व्रजकी स्त्रियें प्रेमभरे अन्तःकरणसे क्या मेरे रूपको नहीं प्राप्त हो गयीं ? ॥ ६५ ॥ उसी प्रकार, हे पार्थ ! भयके निमित्तस कंस, सदाके शत्रुत्वसे शिशुपाल आदि शत्रु और सगोत्रत्वसे यादव तथा ममताके निमित्तसे वसुदेव आदि, क्या मेरी सायुज्यताका नहीं प्राप्त होगये ? ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ नारद, ध्रुव, अक्रूर, शुक और सनत्कुमारोंको जिस प्रकार मैं केवल भक्तिगुणसे ही प्राप्त होचुका हूँ ॥ ६८ ॥ तद्वत् ही गोपियोंको विषयबुद्धिसे, कंसको भयभ्रान्तिसे और शिशुपालादिघातकोंको उनकी भिन्न भिन्न दुष्ट-मनोवृत्तिसे प्राप्त हुआ हूँ ॥ ६९ ॥ हे पाण्डव ! मैं सबका आखिरी स्थान हूँ, फिर वह मेरी प्राप्तिका ध्येय चाहे जिस मार्गसे, यानी भक्तिसे, विषय-बुद्धिसे, वैरवृत्तिसे अथवा किसी भी प्रकारकी मनोवृत्तिसे, प्राप्त कर सकते हैं ॥ ४७० ॥ अतएव, मेरे प्यारे पार्थ ! मुझमें प्रवेश करनेके लिये इस संसारमें साधनोंकी कुछ कमी नहीं है ॥ ७१ ॥ हे पार्थ ! मैं स्पष्ट कहता हूं कि, चाहे जिस जातिमें जन्म हो, और भक्ति हो अथवा चाहे विरोध भी हो, परन्तु भक्त या शत्रु मेरा ही हो, इतना ध्यान रखनेसे वह मेरे स्वरूपमें मिलजाता है ॥ ७२ ॥ अजी ! किसी प्रकारसे क्यों न हो, एकबार भक्तिसे मुझमें प्रवेश होनेपर वह मद्रूपताका ही लाभ होगया, यह निश्चित है ॥ ७३ ॥ अतएव हे अर्जुन ! तुम यह बात निश्चित समझो कि, पाप-योनि हो, या वैश्य, शूद्र, अथवा स्त्री हो, एकनिष्ठतासे भक्तिके साथ जो मेरी उपासना करते हैं वे सब मेरे सदनको ही पहुँचते हैं ॥ ७४ ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तो फिर चातुर्वर्ण्यमें श्रेष्ठ, स्वर्ग जिनकी स्वयंसिद्ध जागीर, मंत्रविद्याके भवनरूप ऐसे जो ब्राह्मण, ॥ ७५ ॥ जिन्हें पृथ्वीपरके भूदेव ऐसी संज्ञा है, जो तपके अवतार कहे जाते हैं, जिनके दर्शनसे तीर्थ भी अपनेको पवित्र मानते हैं ॥ ७६ ॥ जो यज्ञ-यागादि-क्रियाओंके निरंतरके आधारस्तंभ हैं, जो वेदोंके अमर्याद अभिमानी और जिनकी कृपादृष्टिकी गोदमें कल्याण पुष्टिको प्राप्त होकर वह बढता रहता है, ॥७७॥ जिनके आदर-सत्कारसे सत्कर्म विस्तारको पाता है तथा जिनकी इच्छापर ही सत्यता जीवित है, ॥ ७८ ॥ जिनके अभय-आशीर्वादसे अग्निको आयुष्य प्राप्त है, और जो अपने सहजशत्रु समुद्रसे ही जल पीकर पुष्ट हो वडवानलनामसे उसीमें रहता है, ॥ ७९ ॥ जिनके प्रेमके लिये मैंने साक्षात् लक्ष्मीको भी हटा दिया तथा कौस्तुभ-मणिको भी हृदयसे निकाल हाथमें लिया और जिनके चरण-रजके लाभार्थ मैंने अपने वक्षस्थलको खुला करके आगे किया, ॥ ४८० ॥ हे पार्थ ! ऐसा जो पवित्र-चरण उसको बडे यत्नके साथ सँभालनेमें यद्यपि मुझे श्रम होते हैं, तथापि मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणकी वह पवित्र-चरण-मुद्रा बडे आनंदके साथ अपने वक्षस्थलपर रखकर शोभाको पाता हूँ; ॥ ८१ ॥ हे सुभट पार्थ ! जिन ब्राह्मणोंका क्रोध काल, अग्नि, रुद्रोंका वसति-स्थान है और जिनके कृपा-प्रसादसे अष्टमहा-सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त होती हैं; ॥ ८२ ॥ इसप्रकारके जो अत्यंत पवित्र और पूज्य ब्राह्मण वे अत्यंत बडी योग्यताको प्राप्त करते रहनेसे बडे ज्ञानवान् हैं और मेरे स्वरूपमें लीन भी होते रहते हैं, उन्हें मेरे स्वरूपका लाभ होनेमें हे पार्थ ! किसी बातकी शंका हो सकती है ? ॥ ८३ ॥ देखो, चंदनके स्पर्शसे सुगंधित हुई वायुका जो संसर्ग है, उससे आसपासके नीम आदि जड वृक्ष भी सुगंधित होकर देवताओंके मुकुट बन मस्तकको पाते हैं, ॥ ८४ ॥ फिर स्वयं चंदन उस स्थानको पाता हो या न पाता हो ऐसी कोई शंका भी कर सकेगा ? अथवा इस बातकी सत्यताका समर्थन करनेकी भी कोई आवश्यकता है ? ॥ ८५ ॥ उसी प्रकार हालाहलविष-प्राशनमें शीतलताके लिये शंकरजी अर्धचंद्रमाको ही मस्तकपर निरंतर धारण करते हैं, ॥ ८६ ॥ तो चंद्रमासे भी शीतलतामें श्रेष्ठ, पूर्ण और सुगंधमें चंद्रमासे भी बढकर ऐसा जो चंदन, उसका स्वभावतः ही सर्वांगमें लेप क्यों न लगाया जावे ? ॥ ८७ ॥ अथवा जिस गंगाजीका आश्रय लेनेपर रास्ताका बहता पानी भी समुद्रतक जा पहुँचता है, फिर गंगाजीका समुद्रमें पहुँचना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


कोई दुष्प्राप्य है ? उसे तो अन्य गतिही नहीं ! वह अवश्य ही पहुँचेगी॥८८॥ तद्वत्, हे पार्थ ! फिर जो राजर्षि हैं, जो ब्राह्मण हैं वे मुझे यदि जीवभावसे गति-मति देनेवाला या शरण्य याने रक्षणका साधन मानते हैं, तो उनके लिये शाश्वत सुखका स्थान जो मुक्ति वह मैं ही हूँ तथा सब सुखोंका स्थान भी मैं ही हो जाता हूँ इसमें संदेह नहीं ॥ ८९ ॥ अतएव जिसमें सौ छिद्र पडगये हों ऐसी नौकामें निश्चिन्त क्यों बैठना ? शस्त्रोंकी वर्षा हो रही हो, ऐसी जगहमें खुले देहसे क्यों खडे रहना ? ॥ ४९० ॥ शरीरपर पत्थर गिर रहे हों, और उसके निवारणका उपाय न करना क्या योग्य होगा ? जो कई रोगोंसे पीडित हो रहा हो, वह औषधोपायमें बेफिक्र रहे, तो कैसे चलेगा ? ॥ ९१ ॥ चारों तरफसे दावाग्नि भडक उठी हो, फिर बाहर निकलनेका यत्न भी न किया जाय, ऐसा हो सकता है ? फिर हे अर्जुन ! इस सुख-दुःखरूपसे भरेहुए मृत्युलोकमें आकर मुझे न भजना यह भी कैसा युक्त होगा ? ॥ ९२ ॥ और मैं पूछता हूँ, हे पार्थ ! मुझे न भजनेको तुम्हारे सरीखे जीवोंके पास कोई सामर्थ्य भी है ? फिर उन्मत्तताकी घमंड किस लिये दिखाना ? क्या घर-दारमें, विषय-विलासमें भोगोंकी निश्चिन्तता होगई है ? जिनपर विश्वस्त रहकर आनंद भोगेंगे ? ॥ ९३ ॥ देखो, मेरे भजनविना, विद्या अथवा यौवन पर निर्भर रहकर मनुष्यको सुखोपभोग या आनंद प्राप्त करनेका क्या कोई मार्ग भी है? ॥९४॥ जो जो विषयभोग हैं, वे सब इस देहके ही कामके रहते हैं, और यह देह तो निरंतर कालके मुँहमें पडाहुआ ही है ! ॥ ९५ ॥ जिसमें हजारों दुःखरूपी मालके बोझे छूटे हुए इधर उधर पडे हुए हैं और मृत्युके गट्ठेपर गट्ठे आ रहे हैं, इस प्रकारके इस जन्म-मरणरूपी मृत्युलोकके बाजारमें वे चलते चलते पहुँचे ही हैं ॥ ९६ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारके दुःखरूपी बाजारमें सुखका कोई व्यवहार हो, यह विश्वास क्यों रखना ? देखो, पार्थ ! विभूति ( राख ) फूंकनेसे भी दीपक लगाया जा सकता है? ॥९७॥ अजी ! विषरूपी कन्दोंको पीसकर उन्हें निचोडनेसे जो रस निकलेगा, उसे 'अमृतरस' कहकर पी जाना, और अमरत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करना, तो वह जैसा सुखदायक होगा, ॥ ९८ ॥ तद्वत् ही विषयसुखको समझो, इसमें सुखका लेश भी नहीं है, परन्तु क्या किया जाय ? मूर्ख लोग उसका सेवन किये बिना नहीं रहते ॥ ९९ ॥ हे पार्थ ! मृत्युलोकका सब सुख ऐसा है, जैसे कि अपना पैर टूटा हो, तो उस घावमें बाँधनेके लिये अपना सिर काटकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बाँध देना ! यह जैसा विपरीत है वैसा ही वह सुख है ॥ ५०० ॥ अत एव इस मृत्युलोकमें किसके कानोंको सच्चे सुखकी कथा श्रवण करनेका लाभ होगा ? अजी ! जिस शय्याभरमें बिच्छू ही बिच्छू भरे हैं, क्या कोई उसमें सुखसे सो सकता है ? ॥ १ ॥ जिस लोकका चंद्रमा क्षयरोगी है, जहांका सूर्य केवल अस्त होनेके लिये ही उदयको पाता है, दुःख जहां सुखका रूप लेकर संसारका छल करता रहता है; ॥ २ ॥ जहांके मंगलोंके अंकुरोंमें उसी क्षण अमंगलरूपी कीटक उत्पन्न होता है, जहां मृत्यु तो माताके गुप्त गर्भाशयमें गर्भको भी ग्रसता है; ॥ ३ ॥ जहां असत्य बातका ही ध्यास लगा रहता है, किन्तु उस वस्तुको भी यमदूत जबर्दस्तीसे हिरा ले जाते हैं, और वह कहां गई क्या हुई इसका भी पता नहीं लगता ॥ ४ ॥ जहांके सब मार्गोंको खोजनेपर भी छूटनेका कोई मार्ग नहीं मिलता तथा मृत्युसे लौटा हुआ मनुष्य कोई भी दिखाई नहीं देता, और हे पाण्डव ! जहांके पुराण मानो सब मृतकोंकी कथायें ही हैं, ॥ ५ ॥ और जहांके अशाश्वत वस्तुमात्रका वर्णन, यदि कोई ब्रह्माकी आयुके बराबरके दीर्घ कालतक करता रहे, तथापि पूर्ण नहीं हो सकेगा, ॥ ६ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारकी जहांकी अशाश्वत या अनित्य स्थिति है, वहां जन्म लेकर निश्चिंतता का लेश भी प्राप्त होता हो तो बडा आश्चर्य ही समझना होगा ! ॥ ७ ॥ अजी जहां लौकिक लाभके लिये जिनके गांठसे कौडी नहीं छूटती, परन्तु जहां सब तरहसे हानि ही हानि है, वहां करोडों रुपये खर्च करनेमें वे जरा भी हिचकते नहीं ॥ ८ ॥ वे लोग, जो अनेक तरहके विषयोंमें फँसा हुआ है, उसे 'बडा भाग्यवान्, बहुतसुखी' कहते हैं, और जो वासना या लोभके बोझोंमें दबा जाता है, उसे 'ज्ञानी' समझते हैं ! ॥ ९ ॥ जिसकी आयु कम होती जाती है, तथा बल-बुद्धि आदि जिसकी नष्ट हो रही है, उसे बडा समझकर उसके चरणोंमें साष्टांग करते हुए नम्र होते हैं ! ॥ ५१० ॥ ज्यों ज्यों बालक बढता जाता है, त्यों त्यों माँ-बाप प्रेमभरे कौतुकसे नाचते रहते हैं, परन्तु वे अज्ञानी यह नहीं जानते कि, इसके आयुका डोरा दिनों दिन घटता जा रहा है ! इस बातका उन्हें किंचित् भी खयाल नहीं रहता अर्थात् दुःखहीको सुख मानते हैं ! ॥ ११ ॥ जन्म लेनेपर मनुष्यको प्रत्येक दिनमें कालके अधीन होना पडता है, परन्तु वर्षदिन-घटे आयुको-वर्षगांठ कहते हुए बडा उत्सव मनाते हैं और आनंदके साथ ध्वजा-पताकायें फहराते हैं ! ॥ १२ ॥ अजी, पार्थ ! देखो, लोगोंमें 'मरण' इस शब्दका सुनना भी बडा कठिन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


होता है, और किसीके मरनेपर बडे बडे आवाजसे रोते हैं, परन्तु वे मूर्ख, इस बातका तनिक भी विचार नहीं करते, कि अपनी बची हुई आयु कम हो रही है ! ॥ १३ ॥ जैसे स्वयं तो सर्पसे निगल जा रहा है, ऐसी अवस्थामें भी मेंढक अपनी जिह्वाद्वारा मक्खियां पकड पकडकर खाता रहता है, तद्वत् ये मनुष्य-प्राणी अपनी वासनाएँ दिनोंदिन बढाते ही रहते हैं! यह नहीं जानते कि हम कालके मुखमें हैं ! ॥ १४ ॥ हाय, हाय ! इस मृत्युलोककी कैसी विपरीत स्थिति है ! यहां तो सब तरहसे निकृष्टावस्थाको ही पहुँचना होता है। हे पृथापुत्र, अर्जुन ! तुम अपनी कर्मगतिसे यहां ही जन्मे हो, ॥ १५ ॥ तथापि अब किसी बातका विलंब न कर यहांसे शीघ्र निकल जाओ, और जिस भक्तिके मार्गसे मेरे अक्षय सुखके पदका तुम्हें लाभ हो, उस मार्गसे चलकर मेरा अविनाशी निजधाम प्राप्त करो ॥ १६ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

हे पार्थ ! तुम अपना मन मद्रूप कर दो, मेरे भजनमें एकनिष्ठ प्रेम रखो और सब जगह मेरा अस्तित्व मानकर, मुझे एकको ही नमस्कार करो ॥ १७ ॥ मेरेमें ध्यान लगाता हुआ अपने सब संकल्पोंको जो मुझमें होम करता है अर्थात् यजन करता है, वही निर्मल यजन करनेवाला 'मद्याजी' कहाता है ॥ १८ ॥ इस प्रकारके मेरे ध्याससे जब तुम पूर्ण संपन्न होंगे तभी तुम मेरे सत्स्वरूपको प्राप्त कर सकोगे, यह मेरे अन्तःकरणका रहस्य आज मैंने तुम्हें प्रकट कर दिया है ॥ १९ ॥ हे पार्थ ! आजतक जो मैंने किसीसे नहीं कहा, सबोंसे छिपा रखा उस गुह्यको प्राप्त कर तुम सुखरूप बन जाओ ॥ ५२० ॥ इस प्रकार भक्तोंके मनोरथोंके कल्पवृक्ष, साँवली सूरत परब्रह्म-मूर्ति भगवान् श्रीकृष्णने परमप्रियभक्त अर्जुनको बोधामृतका पान कराया, यह बात संजयने कही ॥ २१ ॥ तब यह बात वृद्ध धृतराष्ट्र चुपचाप सुन रहा था, जैसे कि कोई महा आलसी भैंसा नदीके बाढमें भी बैठा रहता है, तद्वत् वह बैठा ही था ॥ २२ ॥ तब संजय गर्दन हिलाता हुआ मनमें कहने लगा, "यहां सतत अमृतकी वर्षा हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



रही है, और यह बूढा यहां रहते हुए भी नहींकी बराबर ही है ! ॥ २३ ॥ परन्तु क्या किया जाय, हमारा अन्नदाता है, इसलिये स्पष्ट कहनेसे वाणी दूषित होगी, इसलिये इसका यह स्वभाव ही समझकर स्वस्थ रहना ही उचित है ॥ २४ ॥ कुछ भी हो, मेरा तो अहोभाग्य है; कारण इस वृद्धको समरांगणका वृत्तांत निवेदन करनेके निमित्तसे श्रीव्यासजी महाराजने मुझे यहां निर्भय नियुक्त कर रखा है " ॥ २५ ॥ इस प्रकार बडे प्रयाससे मनको अंदरही खींचता हुआ संजय मनमें ही कह रहा था, तो भी उसका सात्त्विक भाव जो उमडने लगा, वह मनमें नहीं समासका ॥२६॥ उसके चित्तको चक्कर आया, जिह्वा जहां की तहां स्तब्ध होगई और सर्वाङ्गमें रुएँ खडी होगई ॥२७॥ अर्धोन्मीलितनयनोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे तथा अन्तःकरणमें उछलनेवाले सुखके तरंगोंसे बाह्य शरीर भी थरथर कांपने लगा ॥२८॥ उसके प्रत्येक रोम-रोममेंसे स्वेदबिन्दु ऐसे चमकने लगे, ॥ २९ ॥ मानों वह संजय मोतियोंकी जाली पहना हुआ हो ! इस प्रकार महासुखके अपरंपाररसमें डूबा हुआ संजय, जीवदशाको भूल जानेसे, श्रीव्यासजीके नियोजित कार्य ( रणवृत्तांत ) को कहनेमें असमर्थ हुआ ॥५३०॥ इतनेमें भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंकी मधुर ध्वनि जब उसके कर्णरंध्रमें घुसगयी, तब उस ध्वनिने संजयरूपी शीतभूमिको गरम करके रणवृत्तांत कहनेमें तैयार किया ॥ ३१ ॥ तब संजय अश्रुबिंदु पोंछने लगा, सब अंगभरमें जो स्वेद बहरहा था उसे भी पोंछ लिया और कहने लगा–" हे राजन् धृतराष्ट्र महाराज ! आगेका वृत्तांत सुनिये" ॥ ३२ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्णके वचन मानो निर्मल पुष्ट बीजरूप हैं और संजयकी सात्त्विक-वृत्ति उस बीजको दूसरीबार बोनेका खेत है, ऐसा एकपंथ दो काजवाला योग श्रोतालोगोंके सिद्धान्तोंके फलोंकी बहार ही समझना चाहिये ॥ ३३ ॥ श्रोता गणो ! आपलोग इस कथामें सावधानीके साथ ध्यान देकर आनन्दकी राशिपर जा विराजिये, आपके श्रवणेंद्रियोंका आज बडा भाग्य खुला है, ॥ ३४ ॥ अतएव निवृत्तिनाथके दास ज्ञानदेव कहते हैं, कि अब सिद्धान्तराज शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको विभूतियोंके स्थान कहेंगे उन्हें आप शान्तचित्तसे श्रवण कीजिये ॥ ५३५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः भाषानुवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## दशमोऽध्यायः १०.

हे गुरुराज ! आप विशद बोध करनेमें समर्थ हैं, हे विद्यारूपी कमलके विकास करनेवाले ! हे परा-प्रकृतिरूपी यौवनवती स्त्रीसे विलास करनेवाले ! आपको नमस्कार है ॥ १ ॥ हे गुरुराज ! संसाररूपी तमको नाश करनेवाले आप सूर्य हैं, आपका सामर्थ्य अपरिमित है, अतितरुण तुर्यावस्था ( आत्म-समाधि ) के साथ सहजहीमें लीला करनेवाले आपही हैं, हे सद्गुरो ! आपको नमस्कार है ॥ २ ॥ हे संपूर्ण विश्वके पालक ! हे संपूर्ण शुभरत्नोंके भाण्डार ! हे सज्जनवनके सुगंधित और शीतल करनेवाले चन्दन ! हे आराधनाके दैवतस्वरूप ! आपको नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे चतुर और ज्ञानीजनचित्त-चकोरचंद्र ! हे आत्मसाक्षात्कारज्ञानके नरेंद्र ! हे वेदोंके ज्ञानरसके सागर ! हे सर्वजगत्के मथन करनेवाले मन्मथके गर्वहारक ! आपको नमस्कार है॥४॥ हे सद्भक्तोंके भजनके पात्र ! हे संसाररूपी मत्तहार्थीके गंडस्थलको फोडनेवाले ! हे जगदुत्पत्तिके आदिकारण ! हे गुरुराज ! आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥ हे गुरुश्रेष्ठ ! आपका प्रसाद ही विद्यापति गणेश है, और उसकी कृपा जिस-पर होजाती है,तब मूढ बालक भी सब वाङ्मय ( विद्याओं ) में प्रविष्ट हो सकता है, ॥ ६ ॥ जब गुरुकी उदार वाणी अभयवचन देती है, तब शृंगारादि नव रसोंके अथाह अमृतसागरका पता लग सकता है ॥ ७ ॥ हे ज्ञानमूर्ति, गुरुवर्य ! आपकी प्रेमरूपी वाणी यदि गूँगेको अपनाये, तो वह गूँगा भी बृहस्पतिसे स्पर्धा कर, तत्तुल्य ग्रन्थ रचनेकी प्रतिज्ञा कर सकता है ॥ ८ ॥ बहुत क्या कहा जाय ? आपकी दृष्टिका प्रकाश जिसपर पडता है अथवा आपका कोमल कर-कमल जिसके माथेपर रखा जाता है, यदि वह साधारण जीव हो, तो भी शिव ( शंकर ) की योग्यता प्राप्त कर सकता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है ॥ ९ ॥ हे गुरुराज ! इस प्रकारके सामर्थ्यवाले महाराजके माहात्म्यका मर्यादितवाणीवाला मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ ? अजी ! सूर्यको कोई उबटन लगा सकता है ? ॥१०॥ कल्पवृक्षपर भी कोई फुलवारी कर सकता है ? अथवा क्षीरसागरको कौनसे पकान्नोंसे पहुनाई की जा सकेगी ? कपूरको सुवासित करनेमें कौनसा सुगंध लाया जावे ? ॥ ११ ॥ चन्दनको शीतलताके लिये कोई दूसरा उबटन भी मिल सकेगा ? अमृतको क्या रसोईकी नाँई पकाया जा सकता है ? आकाशको ऊचा उठानेमें भी कोई तरकीब मिल जायेगी ? ॥ १२ ॥ उसी प्रकार श्रीगुरुका माहात्म्य पूर्णतासे आकलन करनेके लिये कोई साधन है ? कोई भी साधन नहीं मिलेगा, ऐसा जानकर ही मैंने चुपचाप हो, नमन किया ॥ १३ ॥ और यदि कोई कहेगा कि, "श्रीगुरुसामर्थ्यका मैं सब तरहसे वर्णन कर सकता हूँ" तो उसका कहना ऐसा हास्यास्पद होगा, जैसे कोई सच्चे और तेजस्वी मोतियोंको अभ्रककी पुट देना चाहता हो ! ॥ १४ ॥ अथवा श्रीगुरुपर बनाये स्तोत्र, ऐसे हो सकेंगे कि शुद्ध-सोनेपर चाँदीका मुलम्मा चढा दिया हो ! इसलिये किसी प्रकार कुछ भी न बोल चुपचाप गुरु-चरणोंमें माथा नवाना ही मैं श्रेष्ठ समझता हूँ ॥ १५ ॥ फिर मैंने महाराज श्रीगुरुसे कहा—स्वामी ! आपकी कृपा-दृष्टि होनेपर, गंगा-यमुनासंगम ( प्रयाग ) में जैसा अक्षयवट हो रहा है, श्रीकृष्णार्जुनसंवादसंगममें मैं भी वैसा ही हुआ हूँ ॥ १६ ॥ पूर्वकालमें उपमन्युके दूध माँगनेपर भगवान् श्रीशंकरजीने जैसें क्षीरसागरको ही दूधका कटोरा बना, उसके आगे रख दिया, ॥१७॥ अथवा रूठे हुए ध्रुव बालकको प्यार करते हुए वैकुण्ठपति नारायणने जैसे ध्रुवपदरूपी मिठाई खिलौना देकर समझाया, ॥ १८ ॥ तद्वत् आप श्रीगुरुने मुझपर ऐसी कृपाकी छाया की है कि, जो संपूर्ण अध्यात्मविद्या ( ब्रह्मविद्या ) ओंमें श्रेष्ठ, जिसमें सब शास्त्रोंका मतैक्य होनेसे वे सुखसे एकत्र रहते हुए विश्रांति पाते हैं, ऐसी जो श्रीमद्भगवद्गीता उसपर [ओवीबद्ध] टीका रचनेमें मुझे समर्थ बना दिया ॥१९॥ जिस वाणीरूपी वनमें परिश्रमके साथ घूमते रहनेपर सार्थ अक्षरोंके फलोंका नामतक सुना नहीं जाता, ऐसी जो मेरी रूक्ष वाणी, उसे आपने विवेककी कल्पलता ही बना दिया ॥ २० ॥ जो मेरी बुद्धि सतत देहभावमय हो रही थी, आप श्रीगुरुने आज उसे ब्रह्मानन्दके भाण्डारकी कोठडी बना दिया, और मेरे मनको गीतार्थरूपी सागरमें सुखशय्याका स्थान प्राप्त करा दिया है ॥ २१ ॥ श्रीगुरुकी ऐसी एक एक अलौकिक महिमा है, तो फिर संपूर्ण



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



महिमाओंका वर्णन मुझसे कैसे होसकता है ? तथापि जो कुछ वर्णन मैंने किया है वह मेरा साहस ही है, और उसके लिये श्रीगुरु मुझे अवश्य क्षमा करें, ऐसी मेरी प्रार्थना है ॥ २२ ॥ हे गुरुराज ! आपके कृपा-प्रसादसे मैंने भगवद्गीताके पहले खण्डकी [ ओवीबद्ध ] टीका बडे प्रेमसे बना दी ह॥२३॥ पहले अध्यायमें अर्जुनको आत्म-स्वकीयोंके नाशकी कल्पनासे उत्पन्न भये विषादका वर्णन है । दूसरे अध्यायमें निर्मल कर्मयोग स्पष्ट कर दिया है, तथा सांख्योंके ज्ञानयोगमें जो भेद है, वह भी दिखाया है ॥ २४ ॥ तीसरेमें केवल कर्मका ही पुरस्कार किया है । चौथेमें उसी कर्मके साथ ज्ञानका प्रतिपादन किया है । पाँचवेमें योगतत्त्वका गौरव वर्णित है ॥२५॥ छठेमें फिर वही योग-तत्त्व स्पष्टतासे अधिक वर्णित है, जिसका मतलब कि आरम्भके आसनसे लेकर ब्रह्मैक्य-स्थिति ( जीवात्मपरमात्मैक्य ) पर्यंत स्पष्टीकरण किया है ॥ २६ ॥ और उसी छठे अध्यायमें योगस्थिति, योगभ्रष्टोंकी जो गति होती है, उसका भी विचार किया गया है ॥ २७ ॥ सातवें अध्यायमें माया—प्रकृतिका उपक्रम और परिहार तथा चार प्रकारके जो भक्त, अपनी अपनी प्रकृतिसे ईश्वरोपासना करते हैं, उनका वर्णन किया है ॥ २८ ॥ इसके बाद आठवें अध्यायमें सातों प्रश्नोंके उत्तरोंके साथ अध्यायसमाप्तितक, मरणसमयमें चित्तशुद्धि आदिकी स्थितिका विचार किया है ॥ २९ ॥ फिर अपार शब्दब्रह्म जो वेद, जिनमें असंख्यात तरहसे वर्णन है, उन वेदोंसे जो तत्त्वज्ञान लाभ हो सकता है, वह सब ज्ञान एकलक्ष श्लोकयुक्त महाभारतग्रंथसे प्राप्त होता है; ॥ ३० ॥ तथा सर्व भारतभरमें जो ज्ञान भरा है वह सब ज्ञान, श्रीकृष्णार्जुनसंवादके सातसौ श्लोकोंसे उपलब्ध हो जाता है और श्रीकृष्णार्जुनसंवादके सातसौ श्लोकोंका जो सारसर्वस्व है, वह इस गीताके केवल नवें अध्यायमें एकत्र संचित किया हुआ प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ ऐसे उस नवें अध्यायके स्पष्ट प्रतिपादनमें जो मैं घबडा रहा था, वह उचित ही था, कारण जहां वेदोंकी गति नहीं पहुँचती वहाँ मेरा गर्व कहांतक टिक सकेगा? ॥ ३२ ॥ देखिये, गुड तथा खांडके ढेले एकही इक्षुरसके बनाये हुए रहते हैं, किन्तु उनकी मधुरतामें रुचि भिन्न भिन्न ही रहती है ॥ ३३ ॥ उसी-प्रकार ये सब ही अध्याय यद्यपि गीताके ही हैं, तथापि कोई अध्याय ब्रह्मस्वरूपको जानकर उसका स्पष्टीकरण करते हैं, कोई जहांके तहां ही ब्रह्मस्वरूपको सूचित करते रहते हैं और कोई अपने जाननेके प्रयत्न करते

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हुए गुणोंके साथ उसमें ही मिल जाते जाते, ब्रह्मरूप होते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकारके ये गीताके अध्याय हैं सही, परन्तु नववें अध्यायका माहात्म्य तो शब्दोंद्वारा नहीं कहा जा सकता, ऐसी स्थितिमें उसका वर्णन मैंने जो किया वह केवल हे गुरुराज! आपका ही सामर्थ्य है ॥ ३५ ॥ अजी! देखिये तो सही, किसीकी छाटी ( अँगोछे ) से सूर्य ढँक गया ( वसिष्ठ ), किसीने प्रतिसृष्टि निर्माण की ( विश्वामित्र ), किसीने समुद्रपर पत्थरोंका सेतु बनाकर अपनी सेना पैदल पार उतारी ( रामचंद्र ), किसीने सूर्यको हाथोंसे पकड लिया ( हनुमान ), किसीने तो सारे सागरको एक चुल्लूहीमें भर दिया ( अगस्ति ), उसी प्रकार, आप-लोगोंने भी मुझ गूँगेके मुखसे, वाणीको अगम्य जो ब्रह्माध्यात्म-विवरण, उसका वणन आज करा दिया है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ परन्तु, आपके इस अद्भुत सामर्थ्यको कोई उपमाही न मिलेगी, राम-रावणका युद्ध कैसा हुआ? इस प्रश्नका उत्तर जैसे कि 'राम-रावणयोरिव' कहा जाता है अर्थात् उनके युद्धको दूसरी उपमा नहीं ॥ ३८ ॥ उसी प्रकार नववें अध्यायमें जो श्रीकृष्णने निरूपण किया, वह नववें अध्याय-सरीखा ही है, इतना कहना ही उचित है। उसे कोई उपमा नहीं, यही मेरा मत है। और गीतार्थको जो अन्तःकरणपूर्वक अपना रहे हैं, वे तत्त्वज्ञानी भी इस निर्णयको पसंद करते हैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार मैंने गीताके पहले नव अध्यायोंका अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया है। अब आप स्वस्थचित्तसे उत्तरखण्डका वर्णन, श्रवण कीजिये ॥ ४० ॥ इस खंडमें प्रथमारंभमें ही भगवान् अपनी प्रधान तथा गौण विभूतियोंका निरूपण अर्जुनसे कहेंगे, उस मधुर कथाका विवेचन मैं करूँगा ॥ ४१ ॥ यह प्राकृत-देशभाषा है, यह बात सत्य है, तथापि उसके सौंदर्यका आश्रय लेकर इसका शांतरस शृंगार-रसपर मात करेगा और पद, शब्द, अलंकार, वाङ्मय ये शास्त्रोंकी सजावटमें भूषण होंगे ॥ ४२ ॥ मूल संस्कृतग्रंथ और [ ओवीबद्ध ] प्राकृत-भाषाकी तुलना करनेपर श्रोताओंको अर्थाकलन करनेमें यह भ्रान्ति होना संभव है कि, मूल कौन और भाषाटीका कौनसी ॥४३॥ जिस प्रकार शरीरकी स्वाभाविक सुंदरता, सुडौलता आदिसे अलंकारको ही शोभा हो, वह शरीर ही अलंकारको अलंकार होता है, तब जैसे अलंकारसे शरीर, या शरीरसे अलंकार अलंकृत है, यह निश्चयसे कहा नहीं जाता, ॥४४॥ तद्वत्, प्राकृत-भाषा और संस्कृतभाषा प्रकृतविषयमें एकार्थक आसनमें विराजमान हो,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कैसी तुल्य-शोभाको प्राप्त हो रही हैं, यह बात शुद्धान्तःकरणसे देखनेपर यहां ही दिखाई देगी ॥ ४५ ॥ भावोंके रूपका उदय होने लगते ही रसवृत्तिकी संतत वर्षा शुरू होजाती है और साथमें चातुर्य भी अपनी प्रतिष्ठा चाहता हुआ फूल जाता है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार भाषाका सौंदर्य लूटकर उसके सेवनसे रसोंको यौवन प्राप्त होगा और उन रसोंसे भरापूरा पुष्ट हुआ जो यह गहन गीतार्थतत्त्व, उसका यहां प्रतिपादन किया जायगा ॥ ॥ ४७ ॥ अब चराचर विश्वके गुरु तथा ज्ञानी और श्रेष्ठ जनोंके चित्तको संतोषदायक यादवपति भगवान् जो कुछ कहेंगे, आप उसे श्रवण कीजिये ॥ ॥ ४८ ॥ श्रीनिवृत्तिनाथदास-ज्ञानदेवका कथन है कि, भगवान् कहते हैं, हे पार्थ ! अब तुम आत्मज्ञानके प्रतिपादनको श्रवण करनेमें बहुत ही योग्य हो रहे हो ॥ ४९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

हे पार्थ ! हमने पहले जो निरूपण किया, वह तेरा चित्त कैसा स्थिर है, तुम विषयको कैसे आकलन करते हो इसके लिये था, परन्तु तुम परीक्षामें ठीक उतरे, तुम्हारा ध्यान पूरापूरा पाया ॥ ५० ॥ बर्तनमें थोडासा जल डालकर यदि वह उसमेंसे न गिरे, तभी पूरा मुखतक भर देते हैं। इसी न्यायसे पहले थोडा श्रवण तुझसे कराया, तब हमें निश्चय हुआ कि, संपूर्ण-आकण्ठ, श्रवण करनेके योग्य तुम होगये हो ॥ ५१ ॥ कोई अकस्मात् आये हुए नये नौकरको रखते समय परीक्षाके लिये, मौल्यवान् वस्तु ऐसी जगह छोड देना कि, उसकी निगाहमें आजाय और यदि उसकी अभिलाषामें न पडकर वह विश्वास-पात्र बन जावे तो फिर उसे भाण्डारी बना दिया जाय। हे पार्थ ! उसी प्रकार तुम्हारी कसौटी ठीक उतरी और मैं बहुत प्रसन्न होगया। अब तुम मेरा निजधाम होगये हो ॥ ५२ ॥ इस प्रकार उस सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहकर, प्रेमातिरेकसे उसकी तरफ देख लिया, तब जैसे ऊँचे पर्वतके दर्शनसे मेघ भर आता है, तद्वत् श्रीकृष्णका प्रेम उमड आया और वे बोले—हे वीरवर, पार्थ ! पहले जो तत्त्व मैंने कथन किया है, उसीको फिर कहता हूँ तुम सावधान होकर सुनो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ देखो, हरसाल खेत बोया जाता है और फसलकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जैसी जैसी उसमें वृद्धि होती देखी जाती है, तैसे तैसे कष्ट करनेमें भी आलस्य नहीं होता ॥ ५५ ॥ सुवर्णको बारबार तपानेसे उसमें तेज अधिक बढता जाता है, इस लिये हे पार्थ ! उसको अधिकाधिक शोधनेकी इच्छा होती है, ॥ ५६ ॥ तद्वत्, हे पाण्डव ! हम कोई यह तुम्हारेपर उपकार नहीं करते, किन्तु हम अपनी ही इच्छासे स्वसंतोषार्थ, फिर फिर कह रहे हैं ॥ ५७ ॥ जैसे अज्ञान बालकको अलंकार पहनाये जाते हैं, तो क्या उन अलंकारोंसे बालकको सुख या शोभाका ज्ञान रहता है ? या वह क्या उन्हें चाहता है ? परन्तु उन अलंकारोंका सुख-समारंभ माताकी दृष्टि ही भोगती हुई हर्षित होती है,॥५८॥ हे मेरे प्यारे पार्थ ! उसी प्रकार, ज्यों-ज्यों तुम्हें आत्म-सुखका लाभ होता जाता है, त्यों-त्यों हमारा सुख-संतोष भी बढता जाता है, ऐसा हमें अनुभव हो रहा है ॥ ५९ ॥ हे अर्जुन ! अब यह अलंकारिक भाषा यहां ही समाप्त करें, मैं तो स्पष्ट कहदेता हूँ कि, तेरे स्नेहमें मेरा प्रेमी चित्त ऐसा प्रेमाकुल हो रहा है, कि तेरे देखे बिना मेरे चित्तकी तृप्ति ही नहीं होती ॥ ६० ॥ केवल इसीलिये मैं बारबार वही वही बात तुम्हें कह रहा हूँ। अस्तु, इस प्रस्तावनाको यहां ही रहने दो और प्रकृत विषयको एकाग्रतासे श्रवण करो ॥ ६१ ॥ हे बुद्धिमान् पार्थ ! मेरे रहस्यभरे तत्त्वको सुनो ! यह अगाध-तत्त्व, मानों अक्षरोंका रूप धारण करके प्रत्यक्ष परब्रह्मही तुम्हारे कण्ठमें माला पहरनेके लिये आ रहा है ! ॥ ६२ ॥ हे वीरवर पार्थ ! वास्तवमें जैसा चाहिये वैसा मेरे स्वरूपका निश्चित ज्ञान अभी तुम्हें नहीं हुआ, हे पार्थ ! जो मैं तेरे सामने खडा हूँ, वही विश्व है ॥ ६३ ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

देखो पार्थ ! मेरे स्वरूपका प्रतिपादन करते करते वेद मौन धारण कर-रहे, मन तथा वायुकी भी गति कुंठित हुई और अस्त होनेके पहले ही चंद्र सूर्य निस्तेज होगये ॥ ६४ ॥ अजी ! माताके पेटका गर्भ जैसी माताकी तरुणावस्थाको नहीं जानता, तद्वत् कोई भी देव मेरे स्वरूपको नहीं जान सकता ॥ ६५ ॥ और सागरमें रहनेवाले जलचर जैसे विस्तीर्ण सागरका पार नहीं पा सकते अथवा मक्खियां जैसी गगनमण्डलको नहीं लाँघ सकतीं, उसी तरह बडेबडे महर्षियोंका ज्ञान भी मेरे स्वरूपको नहीं जान सकता ॥ ६६ ॥ मैं कौन हूँ, कितना बडा हूँ, किससे उत्पन्न भया हूँ इत्यादि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रश्नोंके निर्णयमें कल्पावधि काल चला गया ॥ ६७ ॥ इसका कारण, हे पार्थ ! तुम यही निश्चित समझो कि, समस्त देव, महर्षि और यावद्भूतमात्रोंका आदिकारण ही मैं हूँ, इसलिये हे पार्थ ! इन्हें मेरा ज्ञान होना असम्भव ही है ॥ ६८ ॥ पर्वतसे नीचे उतरा हुआ जल यदि फिर पर्वतपर चढजाय, बढा हुआ वृक्ष यदि फिर जडको आ मिले, तभी संभव हो सकेगा कि मुझसे उत्पन्न हुआ जगत् मुझे जान ले ॥ ६९ ॥ अथवा पूरे वट वृक्षको यदि अंकुरही ढांक सके,किंवा जलतरंगमें ही समुद्र समाजाय अथवा मिट्टीके सूक्ष्म रेणुमें यदि सारी पृथ्वीका गोल समा सके, ॥ ७० ॥ तभी मेरेसे उत्पन्न हुए भूतमात्र, महर्षि तथा देवता मुझे जाननेमें अवकाश पावेंगे ( समर्थ हो सकेंगे ) ॥ ७१ ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

ऐसा होते हुए भी, यदि कदाचित् कोई लौकिक ( बाह्य ) प्रवृत्तिको छोडकर, सब इन्द्रियोंसे पराङ्मुख हो, ॥ ७२ ॥ और प्रवृत्तिकी चाल चल रहा हो, तो भी उससे तुरन्त ही पलट आवे, तो वह देहभावको भूलकर पंचमहाभूतोंके शिखरपर चढ सकता है, ॥ ७३ ॥ और वहां निश्चित स्थिरताको प्राप्त हो, निर्मल आत्मप्रकाशमें अपने नेत्रोंसे मेरे जन्ममरणरहित ( अजत्व ) स्वरूपको देख सकता है ॥ ७४ ॥ जो कोई इस रीतिसे मुझे जान लेता है कि, मैं आदिकारणसे भी परे हूँ और सकल लोकोंका नियंता हूँ, ॥ ७५ ॥ वह जीवरूपी पाषाणोंमें स्पर्श ( परिस ) है । जिस प्रकार संपूर्ण रसोंमें अमृत है, तद्वत् वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ है । हे पार्थ ! उसे मेरा ही अंश तुम समझो ॥ ७६ ॥ वह पुरुष प्रत्यक्ष चलता हुआ ज्ञानसूर्यका मंडल ही है, उसके सब अवयव सुखवृक्षके कोमल अंकुर ही समझो, और उसे मनुष्य कहना भ्रमबुद्धि है, अथवा वह लौकिक-दृष्टिका व्यवहार हो सकता है, परन्तु वह सत्य नहीं ॥ ७७ ॥ देखो, अकस्मात् कपूरमें हीरा पडगया और ऊपरसे उसमें पानी गिरा हो, तो वह पहचाना नहीं जाता, तथापि वह पिघलता नहीं, ॥ ७८ ॥ तद्वत्, मनुष्यलोकमें यद्यपि वह रहे और मनुष्यसरीखा बाह्याचरणमें दिखाई दे, तथापि माया-प्रकृतिका उसे स्पर्शतक नहीं रहता या मायाके दोषकी वार्तातक उसमें नहीं रहती ॥७९॥ इतना ही क्या ? पाप आपही आप उसे छोड भागते हैं, हे पार्थ ! मुझे जाननेवालेको सब संकल्प ऐसे छोड जाते हैं, जैसे जलते हुए चंदनके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वृक्षको सर्प छोड जाते हैं ॥ ८० ॥ अब, यदि तेरे चित्तमें यह शंका उपस्थित हो रही हो, कि ऐसा यह मेरा ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? तो सुनो, मैं कैसा हूँ और मेरे भाव कैसे रहते हैं, यह आगेके कथनसे स्पष्ट होगा ॥ ८१ ॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

जो ये मेरे भाव भिन्न भिन्न भूतमात्रोंमें उस उसकी स्थित्यनुसार सर्वत्र त्रिभुवनमें प्रसृत हो रहे हैं, ॥ ८२ ॥ उनमें पहली 'बुद्धि' जानो, फिर निःसीम ज्ञान, निर्मोहता, सहनशीलता, क्षमा और सत्य ॥ ८३ ॥ फिर मनोनिग्रह तथा इन्द्रियनिग्रह ये दो । हे पार्थ ! उसी प्रकार विश्वका सुख-दुःख और जनन-मरण ये भी मेरे ही विकारोंमें समझो ॥८४॥ हे पाण्डव ! भय और निर्भयता, अहिंसा और समता, संतोष और तप, दान, यश तथा अपयश ये भाव जो भूतमात्रोंमें दिखाई देते हैं, वे सब मुझसे ही हुए हैं ॥ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ जैसे भूत-प्राणी भिन्न भिन्न हैं, वैसे ये भाव भी भिन्न भिन्न रहते हैं । भेद इतना ही है कि,कोई तो मेरे ज्ञानके समय उत्पन्न होते हैं और कोई अज्ञानके । अर्थात् किसीको मेरा ज्ञान होता है और किसीको नहीं होता ॥ ८७ ॥ जैसे प्रकाश और अंधकारका कारण सूर्य ही होता है, उसके उदयसे प्रकाश होता है और अस्त हो जानेसे अंधकार भासमान हो जाता है ॥ ८८ ॥ तद्वत्, मेरा ज्ञान होना या न होना उस उस प्राणीके भावों (कर्मों) का फल है, इसलिये भावोंके कारण ही प्राणियोंमें विषमता दिखाई देती है अर्थात् भावोंका अस्तित्व ही संकटमय सिद्ध होजाता है ॥ ८९ ॥ हे पार्थ ! इस तरह यह सब भूतसृष्टि, मेरे भावोंमें बँधी गयी है ॥ ९० ॥ अब, इस सृष्टिको पालन करनेवाले, जिनके अधीन यह सब सृष्टि रहकर लोक व्यवहार करते हैं, उन ग्यारह पृथग्भावोंका मैं वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥ ९१ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सर्व गुणोंमें तथा ज्ञानोंमें श्रेष्ठ जो कश्यपादि सप्तर्षि हैं, तथा चौदह मनुओंमें जो स्वायंभु प्रभृति चार श्रेष्ठ मनु हैं, ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ऐसे ये जो ग्यारह भाव हैं, हे अर्जुन ! वे मेरे मनसे उत्पन्न होकर, सृष्टिका व्यापार करते रहते हैं ॥ ९४ ॥ जबतक लोगोंकी स्थिति नहीं भयी थी, जबतक त्रिभुवनका विस्तार नहीं भया था, तबतक महाभूतोंका समुदाय भी कुछ न करता हुआ स्तब्ध ही था ॥ ९५ ॥ फिर, पहले प्रथम ये ग्यारह भाव अस्तित्वमें आये, और इन लोगोंने लोगोंकी रचना की और उन लोगोंमें आठ लोकपाल अधिपति नियत किये ॥ ९६ ॥ अतएव ये ग्यारह राजा हैं, और सब लोग इनकी प्रजा है, एवंच यह सब विश्व मेरा ही विस्तार है, यह बात निश्चित समझो ॥ ९७ ॥ देखो, आरंभमें केवल एक बीज ही रहता है, फिर वही बीज बढकर जड जमती है और उससे अंकुर उत्पन्न होते हैं और उनका पौधा हो उसमें शाखायें आती हैं ॥९८॥ उन शाखाओंमें दूसरी शाखाएँ लगती हैं और सबपर पत्ते लगते हैं ॥ ९९ ॥ फिर फूल, फल आजानेसे वृक्ष पूर्णताको प्राप्त होजाता है,देखो, अर्जुन ! विचार करो, अब यह विस्तार किसका है ? उस अकेले छोटेसे बीजका ही है कि नहीं ? ॥ १०० ॥ इसी न्यायसे, पहले मैं मूलतत्त्व एकही हूँ, फिर जो अकेला 'मैं' उस मुझसे ही मन उत्पन्न भया, और इस मनसे ही सात ऋषि और चार मनु उत्पन्न भये ॥ १ ॥ फिर इन ग्यारह लोगोंने लोकपालोंकी स्थिति निर्माण की और लोकपालोंने अनेक प्रकारके लोक उत्पन्न किये, फिर लोगोंसे सब प्रजा उत्पन्न भयी ॥ २ ॥ इस प्रकार, इस विश्वका विस्तार मुझसे ही हुआ है, अथवा यह सब विस्तार मैं ही हूँ, परन्तु यह बात जानता है कौन ? एक वही जान सकेगा, जो भावोंकी व्युत्पत्तिमें श्रद्धा रखकर विचार करेगा ॥ ३ ॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

अत एव, हे सुभद्रापति ! ये भाव मेरी विभूतियां ही हैं, और सब विश्व इनकी व्याप्तिसे ही भरा हुआ है ॥ ४ ॥ इस कारण, ब्रह्मासे लेकर चिऊँटीतक, इस सृष्टिमें मेरे बिना दूसरी वस्तु ही नहीं है, ॥ ५ ॥ यह बात यथार्थतासे जो जान सकता है, वही ज्ञातृत्वका सचमुच अधिकारी हो सकता है । फिर यह श्रेष्ठ, यह कनिष्ठ; यह भला, यह बुरा; इस प्रकारकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भेदकल्पनाके दुष्ट स्वप्न उसे कदापि नहीं दिखाई देते ॥ ६ ॥ मैं याने मेरी विभूतियें और उन विभूतियोंके आश्रित रहनेवाले सबोंको अपने आत्मयोगके अनुभवद्वारा यह सब एक ही मानना आवश्यक है ॥ ७ ॥ फिर इसमें संदेह नहीं कि, वह अपने आत्मयोगद्वारा अन्तःकरणसे मुझमें निश्चयपूर्वक मिल सकता है। और इस बातकी भी कोई शंका नहीं कि, वह शुद्ध और कृतार्थ हो चुका हो ॥८॥ हे किरीटी ! जो कोई इस प्रकार अभेदबुद्धिसे मेरा भजन करता है, उसके भजनरूपी गृहमें मुझे प्रवेश करनाही पडता है ॥ ९ ॥ इस कारण, अब जो अभेदात्मक भक्तियोग मैंने कहा, इसमें किसी प्रकारकी शंकाका कोई कारण नहीं, और न कोई इसमें न्यूनता हो सकती है, न दुर्बलतासे भी हानि हो सकती है । अथवा अभ्यास करते करते यदि किसी कारण, यदि यह भक्तियोग बंद होजाय अर्थात् मृत्यु आवे तो भी कुछ हानि नहीं होती, किन्तु एक तरहसे लाभ ही होता है, यह बात हमने पहले छठे अध्यायमें स्पष्ट कर दी है ॥ ११० ॥ अब, यदि तुम इस अभिन्नताका स्वरूप अन्तःकरणसे जानना चाहते हो, तो सुनो, मैं स्पष्टरीतिसे उसका वर्णन करता हूँ ॥ ११ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

हे पांडव ! इस संपूर्ण विश्वका आदिकारण मैं हूँ और मुझसे ही संपूर्ण सृष्टिकी स्थिति-गति प्रवर्तित होती रहती है, ॥१२॥ अनेक तरङ्गमालाओंका जन्म जलमें ही होता है और उनका आश्रय तथा जीवित-साधन सब जल ही है ॥१३॥ इसप्रकार जैसे जलबिना तरङ्गोंका कुछ प्रभाव ही नहीं, जल ही सब कुछ है, तद्वत् मेरे बिना इस विश्वमें दूसरा कुछ भी नहीं है ॥१४॥ इस प्रकारके मेरे सर्वव्यापक स्वरूपको जानकर, जो चाहे जहां मेरा भजन करते हैं;परन्तु वह भजन सच्ची हृदयकी उत्कण्ठासे प्रेमपूर्वक करते हैं,॥१५॥ तथा देश, काल, वर्तमान आदि सब वस्तुजात मैंही हूँ, अर्थात् मुझसे अभिन्नही समझते हैं, और वायुकेसा आचरण करनेवाले याने जैसी वायु गगनरूप हो गगनमें ही संचरण करती रहती है, तद्वत् जगद्रूप मुझको सर्वत्र समभावसे देखते हुए आत्मज्ञानद्वारा संपूर्ण त्रिभुवनोंमें सुखसंचार करते हुए, ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो जो प्राणी मिल जाय, वह सब भगवत्स्वरूपही समझते हैं, वे ही सच्चे योगी हैं। हे पार्थ ! इस प्रकार सर्वत्र भगव-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



द्रूप माननेकी स्थिति प्राप्त होना, यही सच्चा भक्तियोग है, यह तुम निश्चित समझो ॥ १८ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९ ॥

जिनका चित्त मद्रूप होगया, मेरे स्वरूपकी प्राप्तिसे जिनका अन्तःकरण समाधान पाता है तथा स्वात्मबोधके सतत आनंदसे जो जन्म-मरणको भूल जाते हैं, ॥ १९ ॥ वे मेरे भक्त फिर उस आत्मबोधके बढते हुए प्रभावसे ज्ञानरूपी नशेमें आकर परस्परसंवाद-सुखमें संतोषसे नाचते हैं और आत्मबोधरूपी-ज्ञानका ही लेन देन करते रहते हैं ॥ १२० ॥ जिस प्रकार पास-पासमें रहनेवाले दो सरोवर पूर्णताको प्राप्त होनेपर उनकी तरङ्गें उछलती हुई आपसमें मिलजाती हैं, और उन तरंगोंके लिये परस्पर तरङ्गेंही मन्दिर बन जाती हैं, ॥ २१ ॥ तद्वत्, उन भक्तोंकी परस्परमें गांठ-भेंट होनेसे आनन्द-तरंगोंकी एक तरहसे वेणी बनजाती है और उसमें आत्मबोधको आत्मबोधके अलंकारोंसे स्वयं आत्मबोधही सुशोभित करता है अर्थात् ज्ञान ही ज्ञानालंकाररूप होजाता है ॥ २२ ॥ जिस प्रकार एक सूर्यही दूसरे सूर्यकी आरती करे, अथवा चन्द्रमाही चन्द्रमाको क्षेमालिंगन दे, अथवा दो समान जलप्रवाह ही परस्परमें प्रविष्ट हों, ॥ २३ ॥ उस प्रकार उन भक्तोंके समरसत्वकी एकताका पवित्र प्रयाग बनजाता है और उसमें सात्विक-भावका कचरा उफानता हुआ बह जाता है । और वे मानो संवादरूपी चौराहेके गणेश सरीखे अध्यक्ष हो रहते हैं ॥ २४ ॥ फिर आत्मानंदके सुखातिरेकके कारण देहरूपी गांवसे बाहर आकर मेरी प्राप्तिके पूर्ण-लाभसे समाधान-युक्त अन्तःकरणसे जयघोष करने लगते हैं ॥ २५ ॥ जिस एकाक्षरीमंत्रका उपदेश गुरु जैसे एकान्तमें शिष्यके कानमें करते हैं, वे लोग उसी मंत्रको मेघगर्जनासे तीनों लोकोंमें चहुँओर गर्जते रहते हैं ॥ २६ ॥ जिस प्रकार कमलकी कली विकसित-दशापर पहुँचनेसे वह अपना मधुर मकरंद रस हृदयमें दबा नहीं रख सकती, और राजासे रंकतक अपने सुगंधकी भेंट देती है ॥ २७ ॥ तद्वत्, वे भक्तियुक्तयोगी अपने आनंदातिशयमें आकर संपूर्ण विश्वभरमें मेरा वर्णन करते रहते हैं, और उस कीर्तनघोषसे उत्पन्न हुए संतोषमें कथाको ही भूलते हुए स्तब्ध होजाते हैं और उसी विस्मृतिमें रममाण हो, तन-मनसे विराम पाते हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार, ऐसे प्रेमा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तिरेकके कारण उन्हें रात-दिनका भी स्मरण नहीं रहता। हे पार्थ! इस प्रकार जिन्होंने मेरे निर्दोष स्वरूपका पूर्ण सुखलाभ प्राप्त किया है, ॥ २९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १० ॥

उन्हें, हे अर्जुन! हम जो कुछ देना चाहें, उसका अत्यंत उत्तमोत्तम भाग वे पहले ही प्राप्त करते रहते हैं ॥ १३० ॥ कारण, हे सुभट पार्थ! जिस मार्गसे वे चलते हैं, उस मार्गकी स्थितिका वास्तविक विचार करनेपर, यही कहा जा सकता है कि, स्वर्ग और मोक्षके रास्ते उसके आगे आडे-टेढे ही मानने पडेंगे ॥ ३१ ॥ अतएव, वे जो प्रेम अपने अन्तःकरणमें रखते हैं, हमें भी उन्हें उसीकी भेंट करनेकी इच्छा रहती है, परन्तु, हमारी, जो देय-वस्तु है, वह भी उन्होंने पहलेही सिद्ध की हुई होनेसे उनके अधीन ही है ॥ ३२ ॥ तथापि अब हमारा इतना ही कर्तव्य बाकी रहता है कि वह प्रम निरंतर चढता बढता रहे और उसपर कालकी नजर न लगकर वह दोषी न बनजावे ॥ ३३ ॥ हे किरीटी! खेलते हुए अपने लाडिले बालकको स्नेहपूर्ण दृष्टिके आच्छादनसे माता जैसी उसके पीछे-पीछे दौडती है, ॥ ३४ ॥ और उसकी इच्छानुसार, वह जो जो खिलौना मांगे वह वह बडे प्यारके साथ उस बालकके प्रेमसे मुग्ध हुई दयावती माता आगे रख देती है, तद्वत् ही मैं भक्तिमार्गका पोषण करनेमें जो जो करना आवश्यक है, उसे पहलेही करता रहता हूं ॥ ३५ ॥ उपासनाकी प्रौढीके पोषणद्वारा वे बिनाश्रम मुझमें प्राप्त हों, ऐसा कुछ भी उनका कार्य हो तो, उसे करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूं ॥ ३६ ॥ अजी! भक्तोंका मुझमें प्रेम रहता है, और उनके अनन्यशरणगतिकी हमें भी बडी इच्छा रहती है, कारण हमारे प्रेमीभक्तोंका जो संकट, वह हमारे घरकाही संकट है, हमारे घरमें भक्तोंका ही दुकाल है! ॥ ३७ ॥ देखो, पार्थ! स्वर्ग और मोक्ष ये दो मार्ग जो हमने उत्पन्न किये हैं, वे उन्हींके अधिकारमें दे रखे हैं, इतना ही नहीं, किन्तु लक्ष्मीके साथ हमने अपना शरीर भी उन्हें समर्पित कर रखा है ॥ ॥ ३८ ॥ परन्तु, देहसे भिन्न और अहंतारहित जो निरंतर और शाश्वत आत्मसुख है, वह उन प्रेमियोंके लिये जैसाका वैसा ताजा स्वतंत्र बना रखता हूं ॥ ३९ ॥ इस सुखमर्यादातक, हे पार्थ! हम अपने प्रेमी-भक्तोंके लिये अपना स्वयंका भी परित्याग करते हैं! क्यों? फिर ये बातें कहीं शब्दासें कही जा सकती हैं? ॥ १४० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

अतएव मेरे स्वरूपका प्रेम जिन्होंने अपने जीवनका आश्रय करलिया है, और मेरे सिवाय किसीपर श्रद्धा न रखकर जो सब मिथ्या मानते हैं,॥४१॥ हे पार्थ ! उन तत्त्वज्ञोंके लिये दिनमें ही कपूरकी मशाल हाथमें लेकर उनके आगे आगे चलनेवाला मैं उनका मशालची बनता हूं ॥ ४२ ॥ और अज्ञानकी रातमें जो घन तमका समुदाय घिर आता है, उसका निराकरण कर, उसे हटा देता हुआ उनके लिये नित्यप्रकाशका उदय कर देता हूँ ॥ ॥ ४३ ॥ प्रेमियोंके प्रेमनिधान भगवान् श्रीकृष्ण, जब इस प्रकार बोल चुके, तब अर्जुन मनोभावसे तृप्त हो नम्रतासे बोला—मेरा समाधान होगया ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! सुनिये, आज आपने मेरा संसाररूपी सब कचरा उडा दिया है। अब मैं जन्म-मरणरूपी अग्निसे मुक्त होचुका हूँ ॥ ४५ ॥ मेरे जन्मका सचमुच सार्थक हुआ, यह बात मैं अपनी आँखोंसे देखकर कहता हूँ। और मेरा जीवन कृतकार्यसा हुआ, मुझे ज्ञात होता है ॥ ४६ ॥ आज मेरा आयुष्य सफलताको प्राप्त हुआ ! आज मरा सुदैव सफलीभूत होगया ! कारण परमात्मा परमेश्वरकी प्रसाद-वाणी आज मेरे कर्णरंध्रमें प्रविष्ट हुई ॥४७॥ अब परमात्माके इन वचनोंके प्रकाशसे मेरा अन्तर्बाह्य सार्वत्रिक अंधकार लुप्त होगया, यही कारण है कि आज मैं परम पुरुष भगवान्के स्वरूपका दर्शन कर रहा हूं ॥ ४८ ॥

अर्जुन उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥

हे जगन्नाथ ! आप इस विश्वके पवित्र विश्रांतिका स्थान हैं, आप परब्रह्म हैं और आपही परम श्रेष्ठ हैं ॥ ४९ ॥ आपही ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवोंके दैवत हैं, पचीसवां तत्त्व जो पुराण-पुरुष वह आप ही हैं । माया-प्रकृतिके परे आप दिव्य स्वरूप हैं ॥१५०॥ हे स्वामी ! आप स्वयं अनादि-सिद्ध हैं, जिन्हें जन्मबन्धनकी कभी बाधा नहीं होती, वे आप ही हैं, यह निश्चित ज्ञान आज मुझे प्राप्त हुआ है ॥ ५१ ॥ और आज मैं निश्चयसे यह भी जान गया कि, भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों कालोंके चलानेवाले

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सूत्रधार आप ही हैं, जीवकलाके मुख्य अधिष्ठाता आपही हैं, और सकल ब्रह्माण्डके आश्रयरूप भी आपही हैं ॥ ५२ ॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥

इस ज्ञानका प्रत्यंतर इस बातसे अनुभूत होजाता है कि, पहले समयमें ऋषीश्वरोंने आपका ऐसा ही वर्णन किया है ॥५३॥ परन्तु उस वर्णनका यथार्थ अनुभव मुझे आज ही प्रत्यक्ष हो रहा है, और यह सब आपकी कृपाका ही फल है ॥५४॥ अन्यथा, नारदजी तो हमेशः हमारे घरमें यह आपका वर्णन गायनरूपसे हमें सुनाते थे, परन्तु उस समय इसका किंचित् भी तत्त्वार्थ न समझकर, केवल गायनके सुर-तालोंमें ही हम संतुष्ट हो सुखी होते थे ॥५५॥ देखिये भगवन्! यदि अन्धोंके गाममें सूर्य आपही आप आजाय, तो अन्धे उसकी उष्णतासे ही प्रसन्न होंगे, क्या उन्हें प्रकाशका अनुभव हो सकेगा ? ॥ ५६ ॥ तद्वत्, देवर्षि नारदजी तो स्वयं हमारे घरपर आकर अध्यात्म-विषयक ज्ञानका गाना गाते थे, परन्तु हमारी समझमें तो उनके राग-रागिनियोंकी मधुरताके सिवाय कुछ नहीं आता था ॥ ५७ ॥ हे देव ! आपका यह स्वरूप-वर्णन, मैंने असित और देवलऋषिके मुखसे भी सुना था, परन्तु उस समय मेरी बुद्धि विषयरूपी विषसे व्याप्त या अंधी हो रही थी ॥ ५८ ॥ इस विषय-विषका जोर ऐसा है कि, मधुर अध्यात्म-ज्ञान भी कडुवा भाता है, और अत्यंत हानिकारक और कडुवा विषय ही मधुर तथा प्रिय लगता है ॥ ५९ ॥ अब मैं अन्य जनोंकी वार्ता क्या कहूँ, प्रत्यक्ष श्रीव्यासदेवजी हमारे मंदिरमें आकर हमेशः आपके स्वरूपका ही वर्णन करते थे, ॥ १६० ॥ परन्तु, अन्धेरेमें हाथ लगा हुआ चिन्तामणि, जैसे कोई दुर्दैवी मनुष्य पत्थर समझकर उसे फेंक देता है, और सूर्योदयमें उसे देखकर 'अहाहा ! यह चिन्तामणि है' ऐसा पहचानता है, ॥ ६१ ॥ उसी प्रकार, उन व्यासादिकोंके वचन, मरे सामने केवल रत्नोंकी खानें थीं, परन्तु हे ज्ञाननिधे ! हे श्रीकृष्णमहाराज ! यह आपका सूर्यप्रकाश न रहनेके कारण, उस समय मैं उनकी उपेक्षा ही करता रहा ॥ ६२ ॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


परन्तु, अब आपके वाक्यरूपी सूर्य-किरणोंका प्रकाश होनेसे, उन ऋषि-श्रेष्ठोंने वर्णन किये हुए मार्गोंका परिचय मुझे अनुभूत हो रहा है ॥ ६३ ॥ हे देव ! उनके वचन मानों प्रत्यक्ष ज्ञानके बीज हैं और वे हृदयरूपी भूमिमें गहरी जगहमें जा पडे थे, परन्तु अब उनपर आज आपकी कृपाकी आर्द्रता हुई, इसलिये उन्हें अंकुर आकर, इस आपके एकवाक्यतारूपी फलका लाभ मुझे प्राप्त हो गया है ॥ ६४ ॥ हे अनंत ! नारदप्रभृति संतोंके वचनरूपी नदियोंका संवादरूपी एकवाक्यताके सुखको भोगनेवाला मैं अपरंपार सागर बनगया हूँ ॥ ६५ ॥ हे प्रभो ! इस संपूर्ण जन्मभरमें मैंने जो जो उत्तम पुण्य संपादन किये हैं, हे सद्गुरो ! मैं निश्चयसे: कहता हूँ कि उनमेंसे एक भी ऐसा समर्थ नहीं होगा, जो आपके उपस्थितिमें अर्थात् जो आप देंगे, उसको वे दे सकेंगे ॥६६॥ यों तो बडे बडे वृद्धोंके मुखसे मैं आपके गुणानुवाद हमेशः कानोंसे सुनता था, परन्तु हे सद्गुरो ! जबतक आप अकेलेकी कृपा नहीं हुई थी, तबतक मुझे कुछ भी ज्ञान न हुआ था ॥६७॥ यह भी ठीक है कि, जब भाग्य अनुकूल होता है, तभी सब उद्योगोंमें सफलता प्राप्त होती है, इसी तरह जब सद्गुरुकी कृपा होती है, तभी पढा हुआ या सुना हुआ ज्ञान सफलीभूत होजाता है ॥ ६८ ॥ देखिये, माली अत्यंत परिश्रमपूर्वक जन्मभर वृक्षोंको सींचता रहता है, परन्तु, बिना वसंत-ऋतुके थोडे फल-प्राप्ति होती है ? ॥ ६९ ॥ अजी ! विषमज्वर जब उतरजाय तभी मीठी वस्तु भी मीठी लगती है । और रसायनोंका भी महत्त्व तभी समझा जाता है, जब शरीरको कुछ लाभ होजावे, ॥ १७० ॥ अथवा इन्द्रियें, वाचा और प्राण शरीरमें रहनेकी सार्थकता तभी हो सकती है, जब उनमें चैतन्यका संचार होने लगे ॥ ७१ ॥ उसी प्रकार वेदशास्त्रोंका अध्ययन किया, किंवा योगादिकोंका अभ्यास किया, परन्तु उनकी सफलता तभी माननी होगी, जब सद्गुरुकी कृपा होगी ॥ ७२ ॥ इस प्रकार आत्मानुभवसे परिप्लुत हुआ अर्जुन, श्रद्धान्वित हो, कोई प्रकारकी मनमें शंका न कर नाचने लगा, और वारवार कहने लगा कि, हे देव ! हे अनंत ! आपके वचनोंका मुझे पूरापूरा अनुभव आया, यह मैं सत्य सत्य कहताहूं ! ॥७३॥ हे परब्रह्मरूप ! हे कैवल्यपति ! अब मुझे सचमुच ऐसी प्रतीति हो रही है कि, देव, दानवोंकी बुद्धि भी आपके सच्चेरूपको नहीं जान सकती ॥ ७४ ॥ हे देव ! अब निश्चय-पूर्वक मेरी बुद्धिमें यह बात स्थिर होगई है कि, जो कोई आपके बोध-वचनोंका अनुभव न होते हुए, केवल अपनी बुद्धि या ज्ञानके भरोसे आपको जाननेकी चेष्टा करे, वह कभी आपको नहीं जान सकता ॥ ७५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

जैसे आकाशकी विस्तृतता आकाश ही जान सकता है, या पृथ्वीके घनत्वका माप पृथ्वी ही जान सके, ॥७६॥ तद्वत्, हे लक्ष्मीपति ! अपनी अपारशक्तिका सर्वतः आकलन केवल आपही कर सकते हैं । इतर जो वेदादि हैं, उनकी बुद्धिकी प्रतिष्ठा इस विषयमें व्यर्थ है ॥ ७७ ॥ देखिये, कोई भी वेग मनको पीछे हटा सकता है ? अथवा पवनको कोई अपनी बगलमें पकड रख सकेगा ? किंवा आदेशून्य जो मायातत्त्व, उसे बाहोंसे तैरकर पार जा सकता है ? क्या किसीसे ये कार्य हो सकत हैं ? ॥७८ ॥ ऐसा ही आपका यह पूर्ण ज्ञान है, इस कारण वह किसीसे जाना नहीं जा सकता । केवल इस ज्ञानको हे देव ! हे अनंत ! आपही जान सकते हैं ॥ ७९ ॥ अजी, भगवन् ! आपही अपनेको जान सकते हैं तथा दूसरेको इस ज्ञानका उपदेश करनेके लिये आपही समर्थ हैं, इस हेतु हे देव ! एकबार हमारी उस ज्ञानके सुननेकी अभिलाषा पूरी कीजिये ॥ १८० ॥ हे देव ! आप ही भूतमात्रोंके उत्पन्न करनेवाले हो, विश्वभ्रमरूपी हाथीके मदको दूर करनेवाले सिंह आप ही हो, संपूर्ण देव-देवताओंके आराध्यदैवत आप ही हो, हे देव ! इस चराचर सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले तथा पालन करनेवाले आप ही हो, हे जगन्नायक ! आपकी महिमाका जो अपार पार हमने सुना है, और आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं, तथापि हम आपके पास खडे रहनेके भी योग्य नहीं हैं; परन्तु, हे दयानिधे ! ऐसी दीनतासे यदि हम आत्म-ज्ञानविषयमें विनती करनेके लिये आपसे डरते ही रहें, तो हमें सिवाय आपके, कोई दूसरा उपाय ही नहीं है ! ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ देखिये भगवन् ! सागर, नदियें इत्यादि चहुँ ओर जलसे भरी पडी हैं तथापि चातकके लिये तो सब शुष्क शुष्क ही हैं, कारण मेघसेही जब बिन्दु गिरेगा तभी उसे जलकी प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥ तद्वत्, हे प्रभो ! श्रीगुरु तो जहां तहां सर्वत्र हैं, किन्तु हमारे लिये तो केवल आप ही गति हैं । बस, अब यह मेरा निरर्थक कथन यहांही समाप्त करता हूं, अब आप अपनी विभूतियोंका वर्णन कीजिये ॥ ८४ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे भगवन् ! आपकी विभूतियें तो सभी हैं, परन्तु जो आपके दिव्यसामर्थ्यसे व्यापक हो रही हों, उनको मुझे वर्णन कर बताइये ॥ ८५ ॥ हे अनंत ! आप जिन दिव्य-विभूतियोंसे इन अनन्तलोकोंको व्याप रहे हैं, उनमेंसे जो मुख्य हैं उनका वर्णन कीजियेगा ॥ ८६ ॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ १७ ॥

हे देव ! आपको मैं किस रूपमें समझूँ ? और क्या समझकर आपका सर्वदा चिन्तन करू ? यदि ऐसा समझा जाय कि, यह सब विश्व आप ही हैं, तो फिर ध्यान कैसे हो सकेगा ? ॥ ८७ ॥ इसलिये, आपने थोडे समय पहले जैस अपने भाव संक्षेपसे कहे थे, उन्हींका विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ ८८ ॥ हे अनंत ! जिन जिन आपके भावोंका चिन्तन करते समय मुझे कष्ट न हों,ऐसे अपने भावोंको सरलरीतिसे मुझे स्पष्ट समझाइयें, जिससे मैं आपको प्राप्त होजाऊँ ॥ ८९ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

हे श्रीकृष्णदेव ! और मैंने जो विभूतियां पूछी हैं, उन सबका वर्णन करो । हे भूतपति ! यदि आप कहें कि बारबार वही वही बात कैसी कही जा सकती है ? ॥ १९० ॥ तो हे देव ! हे जनार्दन ! इस बातके लिये आप अपने अन्तःकरणमें यत्किंचित् भी स्थान न दीजिये, कारण साधारण अमृतपानमें भी कोई 'बस करो' 'अब नहीं चाहिये' ऐसा नहीं कहता है, ॥ ९१ ॥ और वह अमृत भी कैसा है ? वह तो कालकूट महाविषका भ्राता ही है ! और मृत्युके भयसे तथा अमरत्वकी इच्छासे देवोंने जिसका पान किया, परन्तु जिसका प्राशन करनेपर भी, ब्रह्माके केवल एक दिनमें चौदह इंद्र अमरराजके सिंहासनमें विराजमान होते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं ! ॥ ९२ ॥ इसलिये वह तो क्षीरसागरसे निकला हुआ कोई एक रस है । 'अमृत' याने 'अमरत्वको देनेवाला' यह जिसके नामका निरा भ्रम है । हे भगवन् ! उस केवल अमृत–नामाभिधानवालेसे भी यदि कोई तृप्त नहीं होता, ॥ ९३ ॥ और उस क्षुद्र अमृतके माधुर्यका यदि इतना गौरव और माहात्म्य है, फिर आपके ज्ञानामृतसे कौन तृप्त हो सकता है ? यह तो मोक्ष देनेवाला सच्चा परमामृत ही है ॥ ९४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो बिना मंदराचलके मंथासे हिलाये और बिना क्षीरसमुद्रके मंथनसे मथे, अनादिकालसे स्वतः ही स्वयंसिद्ध है, ॥ ९५ ॥ जो न द्रवता है न वहता है, न घनत्वको पाता है, न जिसमें रस-गंध आदिकी वार्ता भी है । ऐसा होनेपर भी जो कोई भी एकनिष्ठतासे स्मरण करे उसे अनायास ही सुलभ हो जाता है, ॥ ९६ ॥ जिसकी वार्ताका श्रवण होते ही सर्व संसार मिथ्या जान पडता है, और अपनेमें नित्यताका निश्चय होने लगता है, ॥ ९७ ॥ जन्म-मरणकी वार्ताका नामतक नहीं रहता और बाह्याभ्यन्तरमें सर्वत्र आत्म-सुखानुभवकी वृद्धि होती जाती है ॥ ९८ ॥ हे देव ! फिर ऐसा यह परम-ज्ञानामृत, यदि सुदैवसे किसीको अकस्मात् सेवन करनेके लिये प्राप्त हो, तो सेवन करनेवाला जीव निश्चित आत्मस्वरूपको प्राप्त होगा । अतएव हे देव ! हे अनंत ! ऐसे अमृतका आप मुझे पान कर रहे हैं, तो मैं उसे 'बस करो' 'तृप्ति हुई' ऐसा कभी कह सकता हूँ ? ॥ ९९ ॥ हे भगवन् ! आपका तो नाम भी हमें बडा प्यारा लगता है, फिर प्रत्यक्ष दर्शन-का लाभ और उसपर भी आपका सहवास तथा आप स्नेहसे मुझे समीप-कर मेरे साथ अन्तःकरणकी प्यारी बातें कहते हो ! ॥ २०० ॥ तो अब हे देव ! यह सुख कैसा है, यह मुझसे कहा नहीं जाता, मेरे अन्तःकर-णमें जो संतोष हो रहा है, उसका स्वयं मैं भी वाणीसे वर्णन नहीं कर सकता ! तथापि मैं यही चाहता हूं कि, आप उस परमामृतवचनको फिर अपने मुखसे कहें और मैं सुनूं ॥ १ ॥ अजी ! सूर्य क्या कहींसे नया आता है ? किन्तु वही रहता है, तो क्या उसे कोई बासी कह सकता है ? तथा सबको पवित्र करनेवाली अग्नि कभी अपवित्र हो सकती है ? अथवा हमेशः बहनेवाले गंगाजलके प्रवाहको कोई अस्नात कहेगा ? ॥ २ ॥ आपने अपने मुखसे जब परमामृतवचनोंका हमें लाभ कर दिया, तब ऐसा ज्ञात हुआ कि, आज शब्दब्रह्मने मूर्तिमत अवतार ही धारण किया है, अथवा आज चंदनवृक्षके फूलोंकी सुगंधको ही हम उपभोग रहे हैं ॥ ३ ॥ ऐसा, अर्जु-नका सुंदर और मनोहर भाषण श्रवण कर, समाधानपूर्वक सर्वांग सहित भगवान् डोलने लगे और मनमें कहने लगे 'अब यह अर्जुन भक्ति तथा ज्ञानका पक्का उत्तम मंदिर बनगया है' ॥ ४ ॥ इस प्रकार सर्वतोपरि जिस अर्जुनका भार भगवान् अंगीकार कर रहे थे, उस अर्जुनके परम संतोषसे भगवान्का जो प्रेम उमडा, उस प्रेमप्रवाहको जिस किसी तरहसे थाँभ कर, भगवान्ने अर्जुनसे जो कहा, उसे सुनिये ॥ ५ ॥



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रीभगवानुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

वे भगवान् इस बातको मानो भूलही गये कि, मैं पितामह जो ब्रह्मा उसका पिता हूं, और अर्जुनसे कहने लगे " बापा पाण्डुसुत ! शाबास, तुमने अच्छा कहा " ॥ ६ ॥ इस प्रसंगमें श्रीकृष्णने अर्जुको 'बा' 'बापा' कहा, इसका हमें आश्चर्य करनेका कोई कारण नहीं, कारण कि देहसे क्या वे नन्दबाबाके लडके नहीं हो रहे थे ? ॥ ७ ॥ प्रस्तुत प्रसंगमें ये शब्द केवल प्रेमातिरेकसे ही उमड पडे थे, अस्तु । फिर भगवान् अर्जुनसे कहने लगे–हे धनुर्धर ! अब वह बात श्रवण करो ॥ ८ ॥ हे सुभद्रानाथ ! तुमने जो मेरी विभूतियां पूछी हैं, वे तो इतना हैं कि, उनकी गिनती ही नहीं, यद्यपि वे सब मेरी ही हैं, तथापि सर्वतोपरि उनका आकलन मेरी बुद्धिसे भी नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ जैसे अपने अंगपर अपनेही रोम हैं, परन्तु उनकी भी गिनती अपनेसे नहीं होती, तद्वत् यद्यपि सब मेरी विभूतियां हैं तथापि मुझसे भी उनकी गिनती अगणनीय ही समझो ॥२१०॥ इसलिये मैं कितना बडा हूं, कैसा व्यापक हूं इसका मुझे भी स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता, अतएव मेरी जो मुख्य प्रसिद्ध विभूतियां हैं, उनका मैं वर्णन करता हूं तुम उन्हें श्रवण करो ॥ ११ ॥ हे किरीटी ! जो मेरी प्रसिद्ध विभूतियां हैं, उनका ज्ञान होनेसे दूसरी गौण विभूतियोंका ज्ञान सहजहीमें हो सकेगा । जिस प्रकार बीज हाथमें आनेसे वृक्षही करगत हुआ समझा जाता है, ॥ १२ ॥ अथवा संपूर्ण बगीचा प्राप्त होजानेपर फूल, फल आपही आप प्राप्त होजाते हैं, तद्वत् इन विभूतियोंको देखनेसे संपूर्ण विश्वको भी देखा गयासा होगा ॥ १३ ॥ अन्यथा, हे धनुर्धर ! मेरे विस्तार अथवा मेरी अखिल विभूतियोंका पारही नहीं है । देखो, यह आकाश तो अमर्याद है, किन्तु वह भी मुझमें कहां रहता है, इसका मुझे पता ही नहीं रहता॥१४॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ २०॥ ॥

घूँघरवाले बालोंको मस्तकमें धारण करनेवाले, तथा धनुर्विद्यामें प्रतिशंकर हे पार्थ ! मैं हरेक प्राणीमात्रमें आत्मरूपसे रहनेवाला हूँ ॥ १५ ॥ भूतोंके अंतर्यामभें मैं ही रहता हूं और बाहर भी मेरा ही आवरण है । उन भूतोंका आदि, मध्य और अंत मैं ही हूं ॥ १६ ॥ जैसे मेघोंके लिये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नीचे ऊपर, अन्तर्बाह्य सर्वत्र एक आकाश ही रहता है, और वे मेघ आकाशमें ही रहते हैं और आकाश ही उन्हें आधार है, ॥ १७ ॥ तत्र जब वे विलीन होते हैं, तब उस समय भी आकाशरूप ही हो रहते हैं, तद्वत् इन सब भूतोंकी भी उत्पत्ति, स्थिति और नाश मैं ही हूं ॥ १८ ॥ इस प्रकार मेरा विस्तार और मेरी नानाविध व्यापकता तुम मेरे विभूतियोगके द्वारा ही जान लो। और अपनी सब चैतन्यशक्तिको श्रवणेंद्रियमें संगठित करके श्रवण करो ॥ १९ ॥ अब हे सुभद्रानाथ ! हमने जिन विभूतियोंके बतानेका तुम्हें प्रतिज्ञावचन दिया है, और जिनका वर्णन किया जायगा, उनमेंसे मुख्य मुख्य विभूतियोंको मैं कहता हूं, तुम सुनो ॥ २२० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

इस प्रकार कहकर उन दयालु श्रीकृष्णने कहा—द्वादश आदित्योंमें विष्णु यह मेरी प्रधान विभूति है। प्रकाशवानोंमें किरणयुक्त सूर्य मैं हूं ॥ २१ ॥ फिर श्रीशार्ङ्गी कहने लगे उनचास मरुद्गणोंमें मरीचि मैं हूं और आकाशके सब तारागणोंमें चंद्रमा मैं ही हूँ ॥ २२ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

भगवान् गोविन्द कहते हैं, वेदोंमें जो सामवेद है, वह मैं हूं, देवोंमें जो मरुद्बन्धु इन्द्र है वह मैं हूं ॥ २३ ॥ इन्द्रियोंमें ग्यारहवां जो मन है वह मैं हूं और भूतमात्रोंमें जो स्वाभाविक चेतना शक्ति ( जीवनकला ) है, वह भी मैं ही हूं ॥ २४ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥

संपूर्ण रुद्रोंमें मदनशत्रु जो शंकर वह मैं हूँ, इसमें किसी बातका संदेह मत करो ॥ २५ ॥ फिर अनंतने कहा—यक्ष और राक्षसगणोंमें शंकरका मित्र जो कुबेर वह मैं हूँ ॥ २६ ॥ और आठों वसुओंमें जो अग्नि है वह मैं हूँ तथा सब शिखरवान् पर्वतोंमें अत्यंत ऊँचा शिखरवान् जो मेरु है, वह मैं ही हूँ ॥ २७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥

संपूर्ण पुरोहितोंमें श्रेष्ठ स्वर्गाधिपति इन्द्रका आधारभूत और सर्व ज्ञानोंका मूलस्थान जो बृहस्पति वह मैं हूँ ॥ २८ ॥ हे महामतिमान्, पार्थ ! त्रिभुवनोंके सेनापतियोंमें अग्रगण्य, शंकरके वीर्य और अग्निके संगसे कृत्तिकामें जिसने जन्म धारण किया वह कार्तिकस्वामी मैं हूँ ॥ २९ ॥ संपूर्ण सरोवरोंमें जलका अपारनिधि जो सागर वह मैं हूँ और महर्षियोंमें तपोराशि जो भृगुऋषि वह भी मैं हूँ ॥ २३० ॥ वैकुण्ठविलासी श्रीकृष्ण कहते हैं—संपूर्ण वाङ्मयोंमें जिसका सत्य व्यवहार है, जो सत्यका ही क्रीडा-स्थान है वही एक सत्य अक्षर ( ॐ ) मैं हूँ ॥ ३१ ॥ संपूर्ण यज्ञोंमें कर्म-काण्डके त्यागद्वारा ॐकारादिसे जो उत्पन्न होता है, सर्वयज्ञोंमें श्रेष्ठ, जो जपयज्ञ वह मैं हूँ ॥३२॥ नामजपयज्ञ तो सबसे ही श्रेष्ठ है । इसे स्नानादि नित्यकर्मोंकी भी बाधा नहीं हो सकती, नामजपसे धर्म और अधर्म दोनों पवित्र होते हैं । वेदार्थसे ही नामकी पवित्रता निश्चित हो गई है, नाम पर-ब्रह्म है ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीपति भगवान् कहते हैं, अचल पर्वतोंमें पुण्यराशि और पूज्य जो हिमालय वह मैं हू ॥ ३४ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥
उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

भगवान् कहते हैं, कल्पद्रुम, पारिजातक तथा चंदन ये वृक्ष गुणोंमें प्रसिद्ध हैं; तथापि वृक्षमात्रमें मेरी प्रधान विभूति अश्वत्थ ही है ॥ ३५ ॥ हे पाण्डव ! देवर्षियोंमें जो नारद है, वह मैं ही हूँ तथा सर्व गंधर्वोंमें चित्ररथ मुझे ही समझो ॥ ३६ ॥ हे ज्ञानवंत पार्थ ! संपूर्ण सिद्धोंमें कपिलाचार्य मैं हूँ और सब अश्वजातिमें इन्द्रका घोडा जो उच्चैःश्रवा वह मैं हू ॥ ३७ ॥ हे अर्जुन ! राजाओंको भूषणभूत जितने हाथी हैं, उनमें समुद्रमंथनसे उत्पन्न हुआ जो ऐरावत वह मैं हूँ ॥ ३८ ॥ सब प्रजाजन जिसकी आज्ञा शिर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



झुकाकर मानते हैं, नरोंमें भूषणभूत जो राजा वह भी मेरी ही विभूति तुम समझो ॥ ३९ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥
अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥

सौ यज्ञ करनेपर होनेवाले इन्द्रके हाथमें कृतकार्यरूप रहनेवाला जो वज्र, हे पार्थ ! सर्व हथियारोंमें श्रेष्ठ वह मैं ही हूँ ॥ २४० ॥ भगवान् फिर कहते हैं, गौओंमें इच्छित फल देनेवाली कामधेनु मैं हूँ और जन्मदेनेवालोंमें जो मदन वह भी मैं ही हूँ ॥ ४१ ॥ हे कुंतीसुत ! सर्पकुलोंका अधिपति जो वासुकि वह मैं हूँ और संपूर्ण नागोंका राजा अनंत मुझे ही समझो ॥४२॥ फिर अनंतने कहा—पश्चिम दिशाका अधिपति और सर्व जलचरोंका स्वामी जो वरुण वह मैं हूँ ॥ ४३ ॥ हे पाथ ! तुम ध्यानक साथ सुनो, जो मैं कह रहा हूँ वह यथार्थ है । संपूर्ण पितृगणोंमें अर्यमानामक जो पितृदेवता है वह मैं हूँ ॥ ४४ ॥ जगत्के शुभाशुभ कर्म लिखनेवाले तथा जीवोंके अन्तःकरणका पता पाकर उन्हें कर्मानुसार फल भुक्तानेवाले ॥ ४५ ॥ जो नियन्ता ( नियमनाधिकारी ) हैं, उन सबके कर्मोंका देखनेवाला जो यम वह मेरी ही प्रधान विभूति है ॥ ४६ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

अजी ! दैत्योंमें प्रह्लाद यह मेरी ही विभूति समझो, और इसीलिये तो उसे दैत्यकुलकी बाधा नहीं हुई, ॥ ४७ ॥ गोपालने कहा—हरण करनेवालोंमें महाकाल मैं ही हूँ और श्वापदोंमें जो सिंह है, वह भी मेरी ही विभूति रहती है ॥ ४८ ॥ पक्षियोंकी जातिमें गरुड मेरी ही विभूति है, और इसी कारण वह मुझे निरंतर पीठपर ले जा सकता है ॥ ४९ ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ३१ ॥

हे धनुर्धर पार्थ! इस अत्यंत विस्तृत पृथ्वीमें एक घडी भी विलंब न लगकर एकही उड्डानमें जो सातों समुद्रोंकी प्रदक्षिणा कर सकते हैं, ॥२५०॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उन सब वेगवानोंमें अत्यंत वेगवान् जो पवन वह मैं हूँ । हे पाण्डुसुत ! सब शस्त्रधारियोंमें श्रीराम मुझे ही समझो ॥ ५१ ॥ देखो, जिसने संकटमें पडे हुओंका पक्ष करके त्रेतायुगमें केवल एकही धनुषकी सहायतासे विजयलक्ष्मीकी माला अपने अकेलेके ही कंठमें पहरायी ॥ ५२ ॥ तदनंतर लंकाके समीपस्थ सुवेलपर्वतपर खडे होकर महाप्रतापी लंकाधिपति रावणकी मस्तकपंक्तिको जयजयकारके घोषमें आकाशस्थ भूतोंके लिये बलिस्वरूपमें अर्पण कर दी ॥ ५३ ॥ उस श्रीरामचंद्रने देवोंका संकट दूर कर सम्मान किया, धर्मका रक्षण कर जीर्णोद्धार किया और सूर्यवंशके लिये मानो वह प्रत्यक्ष सूर्य ही हो रहा ॥ ५४ ॥ वह शस्त्रधारियोंमें जो एक, सीतापति वह मैं ही हूँ । जिन्हें पुच्छ रहता है ऐसे जो जलचर प्राणी, उनमें मकर मैं हूँ ॥ ५५ ॥ संपूर्ण प्रवाहोंमें पवित्र, भगीरथकी लाई हुई जो गंगा, जिसे मार्गमें जह्नु राजा प्राशन करगया और फिर उसीने अपनी जांघको फाडकर जाह्नवी नाम दे बाहर निकाला, ऐसी तीनों लोकपावनी त्रिभुवन-प्रवाहिनी जो जाह्नवी नदी वह मैं ही हूँ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ देखो, पार्थ ! इस प्रकार सब सृष्टिकी विभूतियोंका अलग अलग नाम लेकर यदि मैं कथन करता रहूँ तो सैकडों जन्ममें भी आधी विभूतियां न गिनी जा सकेंगी ॥ ५८ ॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥
अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

संपूर्ण नक्षत्रोंको एकत्र चुननेकी इच्छा होनेपर, जैसे आकाशकी ही गठरी बांधनी चाहिये, ॥ ५९ ॥ अथवा किसीको पृथ्वीके परमाणुओंकी गिनती करनेकी इच्छा उपजे तो जैसे समग्र भूगोलको ही बगलमें मारना अवश्य होगा, उसी प्रकार मेरी सर्वविभूतियोंको यदि देखना चाहो, तो प्रत्यक्ष मुझे ही जाननेका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥ २६० ॥ जैसे किसीको यह इच्छा हो कि, शाखा, पत्र, फल, फूल सब एकही साथ समेटें, तो उसे उस समूचे वृक्षको ही उखाड लेना पडेगा, ॥ ६१ ॥ तद्वत्, हे पार्थ ! मेरी विशेष विभूतियोंको सम्पूर्ण जानना चाहो, तो मेरा निर्दोष, शुद्ध और व्यापकस्वरूप ही जानना आवश्यक होगा ॥ ६२ ॥ अन्यथा मेरी भिन्न

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भिन्न विभूतियां कितनी और कहांतक कही जासकेंगी ? इस लिये अब तुम एकसाथ ऐसा ही समझो कि सब मैं ही हूँ ॥ ६३ ॥ हे किरीटी ! जिस प्रकार वस्त्रके आदि, मध्य, अन्तमें सर्वत्र तंतुही तंतु रहते हैं, तद्वत् इस सृष्टिके आदि ( उत्पत्ति ), मध्य ( स्थिति ), तथा अंत ( नाश ) में सर्वत्र मैं ही ओतप्रोत भरा हूँ ॥ ६४ ॥ मुझे इस प्रकारका सर्वव्यापक जानोगे, तो भिन्न भिन्न विभूतियोंके भेदका क्या काम है ? परन्तु हे पार्थ ! अभी इतनी व्यापकता जाननेका तुम्हारा अधिकार नहीं है, इसलिये यह विवेचन यहां ही रहने दो ॥ ६५ ॥ तथापि, हे सुभद्रानाथ ! तुमने विभूतियोंका ही प्रश्न किया है, इसलिये उन्हींका वर्णन करताहूँ सुनो । सर्व-विद्याओंमें–जो इस प्रसंगमें चल रही है–वह अध्यात्मविद्या भी मेरी प्रधान विभूति है ॥ ६६ ॥ अजी ! बोलनेवालोंमें जो वाद, वह मैं हूँ, कैसा है वह ? जो सब शास्त्रों-की एकवाक्यता कर, कभी बंद नहीं होता, ॥ ६७ ॥ जिसको समाप्त करना चाहो तो और ही बढता है, जिसे सुननेवाले अधिक ईर्ष्यावान् हो जाते हैं और वक्ताओंके वक्तृत्वमें जोर और माधुर्य वृद्धिंगत होता रहता है । इस प्रकार भगवान् गोविंदने कहा कि प्रोतपादितोंमें जो वाद सो मैं हूँ और अक्षरोंमें पहला अक्षर जो शुद्ध 'अ' कार वह मैं ही हूँ ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ समासोंमें जो द्वन्द्व समास है, वह मैं हूँ और मशकसे लेकर ब्रह्मातकका ग्रास करनेवाला काल मैं हूँ ॥२७०॥ जो मेरु, मंदरादि पर्वतोंके साथ संपूर्ण पृथ्वीको पचा देता है, प्रलयकालमें संपूर्ण विश्वको जलमय करनेवाले अपार सागरको भी जहांके तहां जो सुखा देता है, ॥ ७१ ॥ जो प्रलयके तेजसे लिपट जाता है, जो पवनको निःशेष निगल डालता है और हे किरीटी ! आकाश जिसके उदरमें सहजहीसे समाविष्ट हो रहता है, ॥ ७२ ॥ ऐसा जो अपार काल है, हे पार्थ ! वह मैं हों हूँ । फिर लक्ष्मीप-तिने कहा, हे पार्थ ! फिरसे सृष्टिकी रचना करनेवाला भी मैं हूँ, यह तुम निश्चित जानो ॥ ७३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ३४ ॥

और सर्व भूतोंको उत्पन्न करनेपर उनका रक्षण भी मैं ही करता हूँ, सबका जीवन भी मुझे ही समझो और आखिर जब इनका संहार भी करता हूँ इसलिये इनका मृत्यु भी मैं ही होता हूँ ॥ ७४ ॥ अब स्त्रीसमुदायमें जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


मेरी सात विभूतियां हैं, उनका भी विवेचन कौतुकसे करता हूँ, सुनो ॥ ७५ ॥ हे अर्जुन ! जो कीर्ति कभी भी दोषयुक्त न होकर नित्य नयी प्रतीत होती है, वह मैं ही हूँ और जिसके साथमें नित्य उदारता रहती है, ऐसी जो सम्पत्ति, वह मेरी ही विभूति समझो ॥ ७६ ॥ और न्यायासनपर आरूढ हो, सुखके आधारसे नित्य विवेकमार्गपर चलनेवाली जो वाणी वह मैं ही हूँ ॥ ७७ ॥ पदार्थके देखनेसे जो मेरा स्मरण करा देती है, वह स्मृति भी मैं ही हूँ ॥ ७८ ॥ उसी प्रकार आत्महितको साधन करानेवाली बुद्धि, धैर्यको रखनेवाली धृति, और सर्वत्र शान्ति रखनेवाली जो क्षमा वह मैं ही हूँ ॥ ७९ ॥ इसप्रकार स्त्रीसमूहमें ये मेरी सात विभूतियां प्रधान हैं । यह बात संसाररूपी हाथीको नाश करनेवाले सिंह, श्रीकृष्णने अर्जुनसे कही ॥ २८० ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

फिर रमाकांत भगवान् बोले, हे प्रियोत्तम पार्थ ! वेदत्रयीके सामवेदमें जो बृहत्साम है, वह मैं हू ॥ ८१ ॥ और यह बात तुम निश्चयसे समझो कि, सब छन्दोंमें जिसे गायत्रीनाम छंद कहा जाता है, वह भी मैं ही हूँ ॥ ८२ ॥ श्रीशार्ङ्गधरने कहा, द्वादशमासोंमें जो मार्गशीर्षमास है, वह मेरी ही विभूति है और छः ऋतुओंमें वसंतऋतु मैं ही हूँ ॥ ८३ ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥

हे ज्ञानवान् अर्जुन ! छल करनेवालोंमें कुशल जो द्यूत ( जुगार ) वह मैं ही हूँ, और वह यद्यपि एक प्रकारसे खुली चोरी है, तथापि चौराहेमें भी उसका कोई निवारण नहीं करते ॥ ८४ ॥ संपूर्ण तेजवान् पदार्थोंका जो तेज है, वह मैं ही हूँ और समस्त कार्योंके संकल्पमें जो विजय है वह भी मैं ही हूँ ॥ ८५ ॥ सुराधीश भगवान् बोले, संपूर्ण व्यापारोंमें वह व्यापार मैं हूँ जिससे निर्मल न्याय दिया दिखाई देता है ॥ ८६ ॥ संपूर्ण सात्त्विक पुरुषोंमें जो सत्त्व रहता है, वह मैं हूँ और समस्त यादवकुलमें ऐश्वर्यवान्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो है, वह मैं हूँ ॥ ८७ ॥ जो देवकी और वासुदेवसे उत्पन्न हुआ, जो कुमारी कन्याके बदलेमें और गोपियोंके प्रेमार्थ गोकुलमें गया, सो मैं ही हूँ तथा जिसने बाल्यावस्थामें पूतनाका स्तनपान कर उसके प्राण हर लिये; ॥ ८८ ॥ केवल कौमार अवस्थाहीमें जिसने पृथ्वीको दैत्यहीन कर दिया तथा गोवर्धन-पर्वतको हाथपर धारण कर इन्द्रकी महिमाको नाप, उसके गर्वको चूर कर डाला, ॥ ८९॥ जिसने यमुनाके हृदयका शल्यरूप कालिया नागको मथ डाला, जिसने जलते हुए गोकुलको योगसामर्थ्यसे बचा लिया और बछडोंके संबंधमें तो अपनी मायाके प्रभावसे ब्रह्माको भी पागलसा बना दिया, ॥ ९० ॥ हे धनुर्धर, जिसने अपनी बाल्यावस्थाके उदयकालमें ही कंस जैसे बडे बडे महान् शत्रुओंको सहजही धूलमें मिला दिया; ॥ ९१ ॥ हे अर्जुन ! ये बातें कहांतक कही जायँ ? तुमने ये सब सुनी और कहीं कहीं देखी भी हैं। तात्पर्य ऐसा पराक्रमवाला यादवोंमें जो श्रीकृष्ण वह मेरी ही प्रधान विभूति है ॥ ९२ ॥ और चंद्रवंशमें उत्पन्न हुए तुम पाण्डवों में मध्यम पाण्डव जो अर्जुन वह भी मेरी ही विभूति है, और इसी लिये तो तुम्हारे हमारे पारस्परिक प्रेममें कभी बिगाड नहीं होता ॥ ९३ ॥ अजी पार्थ ! तुमने संन्यासीका भेष धारणकर मेरी बहन सुभद्राका हरण कर लिया, क्या इस बातको मैं नहीं जानता था, परन्तु मेरे मनमें विपरीत भावना नहीं आयी, क्योंकि तुम और हम दोनों एकरूपही हैं ! ॥ ९४ ॥ फिर यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्णने कहा, हे अर्जुन ! सर्व मुनिगणोंमें व्यासदेव मैं हूँ और कविवरोंमें धैर्यका स्थान जो शुक्राचार्य वह मैं ही हूँ ॥ ९५ ॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥

अजी ! चिँटीसे लेकर ब्रह्मदेवतक सबको नियतसमयपर चलनेके लिये दमन करनेवालोंमें अनिवार्य जो दण्ड वह मैं हूँ ॥ ९६ ॥ अच्छे बुरेका निर्णय करनेवाले तथा धर्मज्ञानका पक्ष करनेवाले सर्वशास्त्रोंमें नीतिशास्त्र मैं हूँ ॥ ९७ ॥ हे मित्र, अर्जुन ! समस्त गूढबातोंमें मौन मैं हूँ, कारण मौन धारण करनेवालेके आगे ब्रह्मा भी मौन हो जाता है ॥ ९८ ॥ हे पार्थ ! ज्ञानिजनोंमें जो ज्ञान रहता है, वह भी मैं ही हूँ। अब यह बात रहने दो, इन मेरी विभूतियोंका पार नहीं है ॥ ९९ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

हे धनुर्धर पार्थ ! चाहे कोई वर्षाके धाराओंकी गणना कर सके, अथवा पृथ्वीके तृण तथा अंकुरोंकी भी गिनती कर सकेगा; ॥ ३०० ॥ परन्तु जिस प्रकार समुद्रके तरंगोंकी गिनती नहीं हो सकती, तद्वत् ही मेरी विशेष विभूतियां भी नहीं गिनी जा सकतीं, कारण जिनको सीमा ही नहीं ॥ १ ॥ तथापि अभी जो मैंने सात-पांच ( ७५ ) प्रधान विभूतियोंका वर्णन किया, उनका भी उद्देश वृथा ही मुझे मालूम होता है ॥ २ ॥ कारण अन्य विभूतियोंके विस्तारको सीमाही नहीं, इसलिये तुम कहांतक सुनोगे और हम कहांतक कहते रहेंगे ? ॥ ३ ॥ इसलिये हम एकसाथ ही तुम्हें अपना मर्म बता देते हैं, और वह यही है कि, हे पार्थ ! इन भूतरूपी अंकुरोंसे जो विस्तृत होता रहता है, उन सबका बीज ही मैं हूँ ॥ ४ ॥ अतएव किसीको भी छोटा बडा न कहना चाहिये, ऊँच-नीच भाव छोड देना चाहिये और यावद्वस्तुजात जितना है, वह सब केवल अकेला मैं ही हूँ, ऐसी निश्चित मद्रूपही भावना होनी चाहिये ॥ ५ ॥ तथापि मैं सर्वसाधारण एक चिह्न बता रखता हूँ उसे तुम ध्यानमें रखो, जिससे तुम मेरी विभूतियोंको जान लोगे ॥ ६ ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥ ४१ ॥

हे धनंजय ! जिस जिस भूतप्राणीमें ऐश्वर्य और दया ये दोनों गुण एकत्र बसे हुए दृग्गोचर होंगे, वह वह मेरी ही विभूति, मेरा ही अंश है ऐसा तुम समझो ॥ ७ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

देखो अर्जुन ! आकाशमें सूर्यबिंब अकेला ही रहता है, परन्तु उसकी प्रभा जैसी त्रिभुवनोंमें फैलती रहती है, तद्वत् मेरे अकेलेकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही आज्ञा सब जगत् पालता है, ॥ ८ ॥ ऐसे मुझको तू अकेला या निर्धन मत समझो, क्योंकि निर्धनता तो मैं जानता ही नहीं। देखो पार्थ ! कामधेनु क्या सर्वसंग्रह अपने साथ बांधती चलती है ? ॥ ९ ॥ नहीं, किंतु उसके पास जो कोई जिस वस्तुकी याचना करता है, उस वस्तुको वह शीघ्र ही उत्पन्न करने लगती है, तद्वत् संपूर्ण विश्वके ऐश्वर्य मुझ विश्वबीजमें ही भरे रहते हैं ॥ ३१० ॥ इस प्रकारका जो मैं अथवा मेरा अंश, उसे पहचाननेका एक ही चिह्न है, और वह यही है कि, हे प्राज्ञ ! जगत् जिसको नम्र होता है और जिसकी आज्ञाको मानता है वही मेरा अवतार समझो ॥ ११ ॥ और इन अवतारोंमें " यह साधारण है, और यह विशेष है " ऐसा भेदभाव मानना बडा पाप है, क्योंकि सर्व विश्व मैं ही हूँ ॥ १२ ॥ फिर उत्तम, साधारण इस प्रकारका भेदभाव किस कल्पनासे किया जाय ? और व्यर्थ अपनी बुद्धि किसलिये कलंकित की जाय ? ॥ १३ ॥ क्या घीको कोई मथना चाहता है ? अथवा अमृतको औटाकर कोई आधा करना चाहेगा ? अजी, पार्थ ! पवनको दहिना-बांया कोई भाग भी रहता है ? ॥ १४ ॥ देखो, सूर्यबिंबका पेट और पीठ देखनेकी कोई इच्छा करे तो उसकी दृष्टि ही नष्ट हो जायेगी। इसी प्रकार मेरे स्वरूपके विषयमें साधारण और विशेष इस प्रकारके भेदभावकी कल्पनाका गंधतक नहीं है ॥ १५ ॥ इसके सिवाय, हे पार्थ ! मेरी अलग-अलग विभूतियोंसे मुझ अपारकी गणना तुम कहांतक कर सकोगे ? अतएव हे सुभद्रानाथ ! मेरे स्वरूपको जाननेके प्रयत्न अब तुम यहांही रहने दो ॥ १६ ॥ देखो, पार्थ ! केवल मेरे एक अंशसे ही यह सब चराचर विश्व भरापूरा व्याप्त हो रहा है, इसलिये सब कल्पनाओंको त्यागकर, सर्वत्र समबुद्धि हो, मुझेही सर्वत्र देखता हुआ मेरा भजन करो ॥ १७ ॥ ज्ञानी-जन-वनको प्रफुल्लित करनेवाले वसंत और विरक्तोंके संपूर्ण एकांत, सर्वैश्वर्यसंपन्न श्रीकृष्ण परमात्मा जब इस प्रकारसे बोले, ॥ १८ ॥ तब अर्जुनने कहा—हे स्वामिन् ! मुझमें भेद और भिन्नता नहीं है, फिर भेदको छोड दो ऐसा अनुचित क्यों कहा जाता है ? ॥ १९ ॥ देखिये महाराज ! सूर्य भी कभी विश्वको कहता है कि, अँधेरेको यहांसे हटा दो ? उसी प्रकारका आपका यह कहना अनुचित समझना पडता है, परन्तु हे दयानिधे ! यदि मैं ऐसा कहूँ तो मेरा भाषण उपमर्दकारक गिना जायगा ! ॥ ३२० ॥ हे भगवन् ! आपका नामही यदि किसीके मुँहसे निकले या किसीके श्रवणपथमें सुनाई दे तो उसी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



समय उसके हृदयसे भेदभावको भागना ही पडेगा ॥ २१ ॥ फिर मेरा अहोभाग्य प्रसन्न हो संपूर्ण परब्रह्मको अर्पण करनेके लिये आज मेरे हाथपर जल छोड रहा है, तो फिर भेदभावोंको कौन, कहां और किसवास्ते देखेगा ? ॥ २२ ॥ क्यों, भगवन् ! चंद्रबिंबके गर्भांतरमें प्रविष्ट होनेपर भी उष्णताकी बाधा हो सकेगी ? परन्तु हे भगवन् ! हे श्रीकृष्ण ! आप बडे हैं, आप अपने बडप्पनमें ऐसे बोलें तो बोल सकते हैं ! ॥२३॥ इस प्रकारका अर्जुनका भाषण सुनते ही परमात्माने परम संतोषित हो अर्जुनसे दृढालिंगन दे कहा, हे पार्थ ! मेरे भाषणपर क्रोध न करो ॥२४॥ अजी ! मैंने भेदका अंगीकार कर जो जो भिन्न भिन्न विभूतियाँ वर्णन कीं, उनकी अभिन्नता तुम्हारेमें प्रतीत हुई है या नहीं, इस बातकी जाँच करनेके लिये ही हमने बाह्यात्कारमें ऐसा वचन कहा था, परन्तु अब मालूम हुआ कि, विभूतियोंके विषे तुम्हें उत्तम ज्ञान हो चुका है ॥ २५ ॥ २६ ॥ तब अर्जुनने कहा, भगवन् ! यह तो आपही जानें, परन्तु मेरी दृष्टिमें तो यह सब विश्व केवल आपका ही रूप भरा दिखाई दे रहा है ॥ २७ ॥ हे राजन्, धृतराष्ट्र ! अर्जुनको इस प्रकार आत्मानुभवकी योग्यता प्राप्त होगयी । यह संजयकी बात धृतराष्ट्र चुपचाप ही सुन रहा था ॥ २८ ॥ तब संजय बडा कष्टी हुआ और मनमें ही कह रहा था, अहो ! कैसी आश्चर्यकी बात है, कि सुदैव फलान्वित हो, फल देनेके लिये आ रहा है और लेनेवाला ( धृतराष्ट्र ) उसका धिक्कार कर रहा है ! मैं समझ रहा था, कि इसकी बुद्धि तो अवश्य अच्छी होगी ? परन्तु अब स्पष्ट हो रहा है कि, जैसे यह बाहरी चर्मचक्षुओंसे अंधा है, ज्ञानचक्षुओंसे अन्तःकरणमें भी वैसा ही अंधा प्रतीत होता है ! ॥ २९ ॥ अस्तु । अर्जुन तो अपने कल्याणका प्रमाण और भी बढाता रहा था; कारण, अब उसके अन्तःकरणमें और एक उत्कंठा उत्पन्न होगयी थी ॥ ३३० ॥ उसने चाहा कि, हमारे अन्तःकरणमें जो आत्मस्वरूपका अनुभव प्रतिबिंबित हो रहा है, वह बाह्य जगत्में भी मैं अपने नेत्रोंसे देखूं, इस बुद्धिसे उसका मन बहुत हलचल करने लगा ॥ ३१ ॥ वह बडा भाग्यवान् था, इसी लिये उसने ऐसी इच्छा की, कि इन्ही नेत्रोंसे संपूर्ण विश्वरूपको मैं देख सकूँ, ऐसी अभिलाषा उसने की ॥ ३२ ॥ हे सन्तजनो ! अर्जुन आज कल्पवृक्षकी शाखाही बन रहा है, फिर उसमें निष्फल फूल क्यों आवेंगे ? वह जिस जिस बातकी मुँहसे इच्छा करता है, भगवान् श्रीकृष्ण उस बातको उसी समय सत्यही कर बता रहे थे ॥ ३३ ॥ जो भगवान् प्रह्लादके वचनके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हेतु स्वयं विश्वरूप होगये वे ही नारायण आज अर्जुनको सद्गुरुरूपसे प्राप्त हो रहे हैं ॥ ३४ ॥ अब निवृत्तिनाथ-शिष्य ज्ञानदेव कहते हैं, हे संतजनो ! वह अर्जुन अब अपने सद्गुरु श्रीकृष्ण महाराजको "मुझे विश्वरूप दिखाइये" इस प्रकारकी प्रार्थना जिन शब्दोंसे करेगा वह मैं अगले अध्यायमें कथन करूंगा ॥ ३३५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः हिन्दीभाषानुवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

# ज्ञानेश्वरी ।

## एकादशोऽध्यायः ११.

अब, इसके अनंतर इस एकादशाध्यायमें, पार्थको जिसमें विश्वरूपका दर्शन होगा, वह कथा कही जायगी, जो शान्त और अद्भुत इन दोनों रसोंसे परिपूर्ण भरी हुई है ॥ १ ॥ कारण, इस कथामें मूलका शान्तरस प्रधान है, और उसके घरमें अद्भुत रस पहुनाईके लिये आया हुआ है, इस लिये उसकी पहुनाईमें साथ साथ अन्य रसोंको भी उसकी पंक्तिका बहुमान लाभ प्राप्त होगया है ॥ २ ॥ श्रोतालोगो ! जिस प्रकार दूलह और दुलहिनके विवाहसमारम्भमें इतर बरातियोंको भी वस्त्रालंकार पहनाये जाते हैं, उसी प्रकार इस देशी-भाषारूपी सुखासनमें सब रसोंको आनंदकी शोभा प्राप्त हो रही है ॥ ३ ॥ परन्तु, यहां शान्त और अद्भुत रस इतने स्पष्ट हैं कि, जिन्हें प्रत्यक्ष नेत्रोंसे देखाजाय तो यही समझा जाय कि, परस्पर प्रेममें आकर हरि-हर ही दृढालिंगन दे रहे हैं ! ॥ ४ ॥ अथवा अमावास्याके दिन जैसे सूर्य-चन्द्रके बिंब एकत्रित मिले रहते हैं, तद्वत् इन दोनों रसोंका इस अध्यायमें मेल हो रहा है ॥ ५ ॥ अथवा जैसे गंगा-यमुनाके प्रवाहका संगम हो प्रयाग बनजाता है, उसी प्रकार यहां इन रसोंका शुभ क्षेत्र बनगया है, अत एव यहां स्नान करके जगत्को पवित्र होना चाहिये ॥६॥ यहां गीतारूपी सरस्वती गुप्तरूपसे समझी जायगी और ये दो रसप्रवाह यहां स्पष्ट प्रकट हैं, अर्थात् यह अध्याय मानो त्रिवेणी-संगम ही हो रहा है ॥ ७ ॥ ज्ञानदेव कहते हैं, मेरे श्रीगुरु निवृत्तिनाथजीने ऐसी उदारताकी कृपा की है, कि इस त्रिवेणी तीर्थमें केवल श्रवणमार्गसे ही मनुष्य सुलभताके साथ प्रवेश करसके ॥ ८ ॥ इसके संस्कृत-भाषात्मक कठिन तीरोंको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



फोडकर श्रीनिवृत्तिनाथजीने भाषारूपी शब्द-सोपान बाँध दिये हैं, जिनपरसे धर्मके सिक्के अनायास प्राप्त हो जायँगे ॥ ९ ॥ इस कारण, कोई भी श्रद्धावान् मनुष्य इस तीर्थमें स्नान कर प्रयागके विराट्स्वरूपी माधवके दर्शनका लाभ प्राप्त करके, जन्म-मरणरूपी अपार संसारकी परंपराको तिलांजलि दे, उससे मुक्त हो सकेगा ॥ १० ॥ अस्तु, कहनेका तात्पर्य यह है कि, इस अध्यायमें मूर्तिमान् रसोंकी ऐसी बहार आ रही है कि मानो विश्वको श्रवणसुखका साम्राज्यलाभ ही प्राप्त हो रहा हो, ॥११॥ इस अध्यायमें शान्त और अद्भुत ये दो रस तो सर्वत्र प्राधान्यसेही प्रकट हैं, किंतु दूसरे रसोंका भी माहात्म्य कम नहीं समझा गया है। किंबहुना यह अध्याय सब रसपूरित हो, मोक्षसुखका ही प्रकट स्वरूप धारण कर रहा है ॥ १२ ॥ जो यह ग्यारहवां अध्याय भगवान् श्रीकृष्णके लिये भी विश्रांतिका स्थान हो रहा है। ऐसे महिमावाले अध्यायके बडप्पनमें अर्जुनके भाग्योदयका भी जो सुयोग आया वह भी उचित ही है, कारण भाग्यवानोंमें सचमुच अर्जुन ही बडा भाग्यवान् है, और इसीलिये उसका यहां प्रवेश हो रहा है ॥ १३ ॥ हम कहते हैं, कि यहां अर्जुनको ही प्रवेश मिल रहा है ऐसा क्यों कहना ? यहां तो चाहे जिस भाग्यवान्को पहुँचनेका सुकाल हो रहा है, कारण यहां गीतार्थ देशीभाषामें स्पष्ट प्रकट हो जानेसे कोई भी इसमें प्रवेश कर सकता है ॥ १४ ॥ इस कारण, श्रोताजनो ! मेरी नम्र प्रार्थना सुनिये कि, आपलोग मेरी ओर ध्यान देते रहें ॥ १५ ॥ आप सन्तजनोंकी सभामें ऐसी साहसकी बातें करना केवल मेरा ढाढस ही हो, तथापि आप प्रेमसे मुझे अपना बालक ही समझियेगा ॥ १६ ॥ देखिये, तोतेको आप स्वयं ही पढाते हैं और जब वह थोडा थोडा बोलने लगता है, तो आपही संतोषसे माथा डुलाते हैं, अथवा अपने बालकको कोई चीज बनानेके लिये कही जाय, और उसको बनी देखकर क्या माताको आनंद नहीं होता ? ॥ १७ ॥ इसी प्रकार मैं जो जो कहता हूँ हे प्रभु ! वह सब आपलोगोंका सिखाया हुआ ही है इसलिये आपका सिखाया ही, आप केवल मेरे मुखसे श्रवण कीजिये ॥ १८ ॥ हे सन्तजनो ! यह वाङ्मय ( विद्या ) रूपी मधुर वृक्ष आपलोगोंने ही लगाया है, इसलिये अवधानरूपी अमृतजलसे सिंचन कर इसको बढाते जाइये ॥ १९ ॥ आप इस प्रकार करें तो यह रसभावके फूलोंकी बहारसे फूलेगा, अनेक अर्थरूपी फलोंसे फलता रहेगा और केवल आप लोगोंके सुकृतसे ही विश्वको इसके सुखका सुकाल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


होगा ॥ २० ॥ ज्ञानदेवके इन वचनोंसे श्रोतालोग आनंदित हुए और बोले वाहवा ! तुमने अच्छा किया हमें बडा संतोष हो रहा है, अब अर्जुनने जो कहा वह कहो ॥ २१ ॥ तब निवृत्तिनाथके शिष्य ज्ञानदेवने कहा—अजी सन्तजनो ! कृष्णार्जुनका वह गहन संवाद मैं साधारण मनुष्य कैसा जान सकता हूँ, परन्तु आप लोगही मेरे मुखसे कथन करा सकते हैं ॥ २२ ॥ देखिये, सन्तो ! अरण्यमें रहनेवाले और वृक्षके पत्ते खानेवाले वानरोंने भी लंकेश्वर रावणको पराजित किया ! अथवा अकेले अर्जुनने क्या ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको नहीं जीता ? ॥ २३ ॥ अत एव आपसे समर्थ जो कुछ करना चाहें, वह न बन सके ऐसी इस चराचरमें कौनसी बात है ? इस लिये यद्यपि मेरा अधिकार न हो, तथापि आप मुझसे वह कथन करावोगे ही ॥ २४ ॥ अब, आपलोग श्रवण कीजिये ! भगवान् वैकुण्ठपतिके मुखकमलसे जो गीता निकली उसका भावार्थ मैं कहता हूँ ॥ २५ ॥ इस गीताग्रन्थकी महिमाका क्या वर्णन किया जाय ? कारण वेदोंके प्रतिपाद्य देव जो भगवान् श्रीकृष्ण, वे ही इस गीताग्रंथके वक्ता हैं ॥ २६ ॥ इस श्रेष्ठ ग्रंथका अर्थगौरव इतना बडा है, कि जिसे शंकरकी भी बुद्धि पूर्णतासे आकलन नहीं कर सकती ! अत एव अन्तःकरणपूर्वक एकनिष्ठतासे उसे वन्दन करना ही योग्य है ॥ २७ ॥ अस्तु, फिर अर्जुन प्रभुके विश्वरूप दर्शनकी मनमें इच्छा रखकर, संवादका कैसा उपक्रम करता भया सो सुनिये ॥ २८ ॥ यह सब विश्व केवल एक परमेश्वर ही है, ऐसा जो सिद्धान्त मुझे अपने मनमें अनुभूत हो रहा है, वह इन चर्मचक्षुओंसे बाह्यमें भी अनुभूत हो जाये, ऐसी अर्जुनके अन्तःकरणमें बडी उत्कंठा उत्पन्न हो रही थी, परन्तु यह मनकी बात, देवको कैसी विदित की जाय ? यह चिन्ता अर्जुनको उपस्थित हो रही थी, कारण विश्वरूप गुह्य है, उसे प्रकट कर दिखादेनेको कैसे कहा जाय ? ॥ २९ ॥ ३० ॥ अर्जुन मनमें विचार करने लगा कि, देवके किसी भी भक्तने पहले कभी भी जो बात नहीं पूछी, उसे मैं अकस्मात् " मुझे विश्वरूप दिखाइये " कैसे कहसकता हूँ ? ॥३१॥ हो सकता है कि, मैं श्रीकृष्णका निकटका प्यारा सखा हूं, तो क्या माता ( लक्ष्मीजी ) निकटकी और मुझसे भी प्यारी नहीं हैं ? वे भी इस विश्वरूप-दर्शनके प्रश्नमें डर गयीं ! ॥ ३२ ॥ अगर, मैंने इनकी इच्छानुसार खूब सेवा की हो, तथापि क्या वह गरुडकी सेवाकी बराबरी कर सकती है ? किन्तु वह गरुड भी विश्वरूपदर्शनका कभी नामतक नहीं सुनाता ! ॥ ३३ ॥ मैं क्या सनकादि तपस्वियोंसे भी इनका निकटवर्ती हूँ ? परन्तु वे सनकादि भी इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बातको अभी तक कभी मनमें भी नहीं लाये ! हां, क्या गोकुलके प्रेमी गोपबालोंसे भी मैं श्रीकृष्णको प्यार हूँ ? कभी नहीं, परन्तु उन गोपबालोंको भी बाल-लीलासे ही सुखी किया, तथा अंबरीषादि कई भक्तोंके लिये भगवान्ने गर्भवास भी धारण किया, परन्तु अपना यह विश्वरूप उनसे गुप्त ही रखा, इसका किसीको भी दर्शन नहीं दिया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तात्पर्य, यह गूढ रहस्य अभीतक भगवान्ने अपने अन्तरंगमें गुप्तही रखा है, फिर मैं भी एकाएक उसे प्रकट करनेको कहू, तो यह भी कैसे हो सकता है ? ॥ ३६ ॥ अस्तु, यदि न पूँछूँ, ऐसा विचार कर स्वस्थ रहनेकी इच्छा करूँ, तो विश्वरूपके दर्शन बिना मुझे सुख नहीं होगा, इतना ही नहीं, किन्तु मेरा जीवन भी रहे या न रहे इसकी भी शंका हो रही है ॥ ३७ ॥ अतएव धैर्य करके कुछ पूँछूँ तो सही फिर देव मनमाना चाहे सो करें। इस प्रकारका निश्चय कर अर्जुनने डरते डरते बोलनेकी हिम्मत की ॥ ३८ ॥ परन्तु, वह अर्जुनका भाषण ऐसा सुंदर और प्रेमभरा था, कि उसके एक-दो शब्द सुनते ही भगवान् स्वयं अपने संपूर्ण विश्वरूपका दर्शन उसे दिखादे सकें ॥ ३९ ॥ देखिये, बछडेको देखते ही गौ झटपट उठकर खडी होती है, फिर स्तनमें मुख लगानेपर क्या वह पनियायेगी नहीं ? ॥ ४० ॥ वैसेही पाण्डवोंके लिये भगवान् अरण्यमें भी दौडते हुए उनका रक्षण करते रहे, फिर क्या प्रिय अर्जुनके प्रश्न करनेपर उसकी इच्छा तृप्ति किये बिना वे रह सकते हैं ? ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण तो केवल प्रेमके अवतार हैं और उस प्रेमके लिये अर्जुनरूपी खुराक प्रत्यक्ष ही है। फिर ऐसे सुयोगमें भिन्नता रहे, तो इससे और आश्चर्य कहां दिखाई देगा ? ॥ ४२ ॥ इसलिये अर्जुनके मुखसे शब्द निकलनेका ही अवधि है, वह निकलते ही भगवान् उसी क्षण विश्वरूप बन जायंगे, यही पहला प्रसंग है, आप सावधानीके साथ सुनिये ॥ ४३ ॥

अर्जुन उवाच।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

पार्थने श्रीकृष्णसे कहा, हे दयासागर प्रभु ! जो शब्दोंसे भी कही न जाती, ऐसी अनिर्वाच्य वस्तु भी मेरे लिये आपने कहकर प्रकट कर



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दी ॥ ४४ ॥ जब महाभूत ब्रह्ममें विलीन होजाते हैं और जीव महदादि ( जीव-माया ) के स्थान भी नहीं रहते, ऐसे समयमें परब्रह्म जिस स्वरूपमें रहता है, वह उसका आखिरी या विश्राम-स्थान है ॥ ४५ ॥ जो स्वरूप अभीतक किसी कंजूषके समान आपने अपने हृदयान्तमें गुप्त रखा था, जिसका अभीतक वेदोंको भी पता नहीं लगा, वही आपके हृदयका गुप्त रहस्य आपने मेरे सामने खोलकर प्रकट कर रखा है। जिस अध्यात्म रहस्य परसे श्रीशंकरने अपना सब ऐश्वर्य निछावर कर फेंक दिया ॥४६॥४७॥ हे भगवन् ! वही गुप्त रहस्य आज आपने दया करके एकदम मुझको दे दिया! परन्तु, यदि हम ऐसा कहते हैं तो भी आपके व्यापक-स्वरूपसे हम भिन्न कैसे हो सकते हैं ? ॥ ४८ ॥ परन्तु महामोहरूपी मायाकी अपरंपार बाढमें सचमुच सिरतक डूबा हुआ देखकर हे भगवन् ! आपने ही उसमें कूदकर मुझे बाहर निकाला है ॥ ४९ ॥ अब सिवाय आपके, इस विश्वमें हमारे लिये कोई वार्ता भी नहीं रही है, परन्तु हमारा दैव ऐसा कठिन है कि, 'हम कोई पृथक् हैं' ऐसी भाषा हमारे मुखसे अभीतक वह निकालता ही है ! ॥ ५० ॥ इस संसारमें अर्जुन नामक कोई मैं पुरुष हूँ, इस प्रकारका देहाभिमान अभीतक मुझमें चिपक रहा था, और इन कौरवोंको अभीतक मैं अपने 'स्वजन' कहा करता रहा, ॥५१॥ इतना ही क्यों ? यह भी कह रहा था कि, इन्हें मारकर अनेक पापोंसे चिथडा हुआ मैं कहां जा पडूंगा ? ऐसा दुष्ट-स्वप्न मैं देख रहा था, कि प्रभुने त्वरित आकर मुझे जगा दिया ॥ ५२ ॥ हे देव ! हे लक्ष्मीनाथ ! मैं सच्चे हरेभरे शहरको छोड झूंठे गंधर्वनगरीको ही जा रहा था, पानी समझकर मृगजलको ही पीना चाहता था ॥ ५३ ॥ कपडेका सर्प तो झूठा ही होता है, परन्तु उसके दंशकी झूठी भावनाको सच्ची समझनेसे उसकी जो विषकी लहरें आने लगीं, उनसे अभी यह जीव मरजायगा, ऐसी भावनामें, हे भगवन् ! आपने ही आकर जीवदान देनेका पुण्य संपादन कर लिया ॥ ५४ ॥ अपनी ही परछांईको कूंएमें देखकर यह कोई दूसरा सिंह है, ऐसी भावनासे कूँएमें गिरते हुए सिंहको रोककर जैसे कोई कूंएसे बचाता है,तद्वत् आपने मुझे बचाया है ॥५५॥ नहीं तो हे देव ! मैंने आज ऐसा निश्चय किया था कि, सातों समुद्र इकट्ठे होकर उछलते रहें, ॥ ५६ ॥ चाहे संपूर्ण विश्व प्रलयके जलमें डूब जाय अथवा समस्त आकाश चाहे टूटकर नीचे गिरपडे, परन्तु मैं इन मेरे स्वकीयोंके साथ युद्ध कभी न करूँगा ॥ ५७ ॥ इस प्रकारके अहंकारसे दुराग्रहरूपी अथाह सागरमें डूब रहा था, परन्तु, हे नाथ ! यदि ऐसे समयमें आप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं होते, तो मुझे कौन बाहर निकालता ? ॥ ५८ ॥ विचार करनेपर जो वस्तु थी ही नहीं, मैंने उसे 'है' ऐसी भावनाके अहंकारसे उसका अस्तित्व मान लिया और जिनका कोई भी अस्तित्व नहीं, उनको गोत्रज ऐसा नाम दिया। इस प्रकारके भ्रमसे मैं पागल बनगया था, परन्तु आपने मेरा रक्षण किया ॥ ५९ ॥ पहले एकबार आपने ही जलते हुए लाक्षागृहसे बाहर निकालकर हमें बचाया था, परन्तु उस समय तो केवल हमारे शरीरके नाशका ही भय था, परन्तु अब तो इस भ्रमकी पीडामें हमारे चैतन्य ( आत्मा ) को भी भय उत्पन्न होनेका संभव था ॥ ६० ॥ दुराग्रही हिरण्याक्ष दैत्यने जैसी पृथ्वीको बगलमें दबा लिया था, उसी प्रकार मेरा दुराग्रह मेरी बुद्धिको अपने बगलमें दबाकर, वह मोहरूपी समुद्रके गवाक्षमें घुसगया, जो समुद्र उस बुद्धिके बाहर जानेमें अर्गला ही था ॥ ६१ ॥ परन्तु, हे देव ! आपके सामर्थ्यसे वह बुद्धि फिर ठिकाने आगयी; इस प्रसंगमें मेरे लिये आपने मानो दूसरा वाराहावतार ही लिया ! ॥ ६२ ॥ हे अनंत ! ऐसे ऐसे कितने आपके उपकार हैं ? मैं उनका एक जिह्वासे कैसे वर्णन कर सकता हूँ ? तो भी इतना कहे बिना रहा ही नहीं जाता, कि आज आपने मेरे पञ्च-प्राण मुझे समर्पित कर दिये हैं ॥ ६३ ॥ कुछ भी हो, वे पुण्यकृत्य कभी व्यर्थ नहीं जा सकते, हे देव ! आपको बडी यशःप्राप्ति हो रही है, जो कि आपने मेरी मायाको जड-मूलसे उखाड डाला है ॥ ॥ ६४ ॥ हे भगवन् ! आनन्दसरोवरके कमलसरीखे आपके नेत्र, जिनके लिये आप अपने प्रसादका विश्राम स्थान बना देते हैं, उनकी और मोहकी भेंट हो जाय, यह बात कभी संभवनीय भी है ? अजी ! वडवानल भभक रहा हो, तो वहां मृगजलकी वर्षाका कुछ काम है ? ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ और मेरे विषयमें कहो तो हे सद्गुरो ! मैं आपके कृपारूपी मंदिरके मध्यभागमें बैठकर ब्रह्मरसका ही भोजन कर रहा हूँ ! ॥ ६७ ॥ हे देव ! ऐसी स्थितिमें यदि मेरा मोह नष्ट होगया, तो आश्चर्य ही क्या है ? सारांश, हे भगवन् ! मैं आपके चरणस्पर्श कर कहता हूँ, कि आज मेरा सचमुच उद्धार होगया ॥ ६८ ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

हे कमलपत्रके समान विस्तीर्ण-नेत्रवाले ! हे कोटिसूर्यके समान तेजवाले, स्वयं प्रकाशमान् अनंत ! मैंने आज आपसे ज्ञानबोधका निरूपण श्रवण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



किया ॥ ६९ ॥ देवने आज मुझे ऐसा स्पष्ट समझाया कि, यह भूतमात्र जिससे उत्पन्न होता है और जिससे उसका लय होता है, उसका कारण केवल माया-प्रकृति ही है ॥ ७० ॥ उस प्रकृतिका आपने साद्यंत स्पष्टीकरण तो किया ही, परन्तु साथमें उस पुरुषका भी निर्देश किया कि, जिस परब्रह्मकी महिमाका वस्त्र पहनकर वेद भी अपनेको वस्त्रयुक्त कहाता है ॥ ७१ ॥ देखिये, यह जो वाङ्मयसागर ( शब्दसमूह ) बढता रहता है, जो निरंतर स्थिर रहता है और धर्मसिद्धान्त जैसे रत्न उत्पन्न करता है, उसका कारण केवल यही है कि, वह आपके तेजोमय-चरणोंका आश्रय करता है ॥ ७२ ॥ ऐसा जो आपका अपार और अगाध माहात्म्य है, संपूर्ण साधनमार्गोंका जो एकही ध्येय है और जिसकी मधुरता केवल आत्मानुभवसे ही प्रतीत होती है, वह आज आपने मुझे स्पष्ट कर दिखा दिया ॥ ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार आकाशके सर्व अभ्रपटल नष्ट होनेपर, स्वच्छ सूर्यबिंब दिखाई देने लगता है, अथवा जलपर चढे हुए सेवारको हाथसे दूर करनेपर जैसे स्वच्छ जल दीखता है, ॥ ७४ ॥ किंवा चंदनवृक्षमें लपेटे हुए सर्पकी लपेटें निकालनेपर जैसी चंदनवृक्षकी भेंट होती है, अथवा पिशाचोंके भाग जानेपर जैसे भूमिगत द्रव्य अपने हाथ आ सकता है, ॥ ७५ ॥ तद्वत्, प्रकृति-मायाका पडदा जो बीचमें पडा हुआ था, उसे आपने दूर हटाकर मेरी बुद्धिको तत्त्वनिष्ठ बना दिया; जो आज परब्रह्मरूपी सुखशय्यापर लेट रही है ॥ ७६ ॥ हे देव ! इन बातोंसे तो मैं हृदयमें निःशंक निश्चित हो रहा हूँ, परन्तु मेरे मनमें एक और ही प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हो रही है ॥ ७७ ॥ हे देव ! यदि संकोच करें, और आपको पूँछनेसे डरें तों दूसरे किससे पूँछूँ ? मैं आपके अतिरिक्त क्या और किससे जानता हूँ ? या मुझे दूसरा कोई आश्रय है ? ॥ ७८ ॥ जलचर यदि अपनेसे जलको त्रास होता है समझे, अथवा बालक यदि स्तनपान करनेमें मातासे संकोच करे, तो हे भगवन् ! उनके जीवनके लिये दूसरा उपाय ही क्या है ? अतएव अब मैं किसी बातका संकोच न करके जो मनमें आया है उसे आपको स्पष्ट कहदेना ही मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ । तब श्रीकृष्ण बीचमें ही कहने लगे, हे पार्थ ! अब विस्तार मत करो, जो तेरी इच्छा हो सो कहदे ॥ ७९ ॥ ८० ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तब किरीटी पार्थने कहा, आपने जो मुझे ज्ञानोपदेश किया, उससे मुझे अनुभवकी दृष्टिका लाभ प्राप्त हुआ है ॥ ८१ ॥ अब जिसके आद्य-संकल्पसे यह विश्व उत्पन्न होता है, और यथाकाल विलीन होजाता है, जिस स्थानको आप स्वयं 'मैं' ऐसा कहते हैं, ॥ ८२ ॥ वह आपका आद्य स्वरूप जिस मूलस्वरूपसे आप देवोंके संकट हरण करनेके लिये द्विभुज,चतुर्भुज रूप लेकर अवतार धारण करते हैं, ॥ ८३ ॥ और फिर जब बहुरूपियेकी तरह जल-शयनका अथवा मत्स्य, कूर्म इत्यादि रूपोंसे घूमनेका नाटक समाप्त कर अपना लीलारूपी सगुणत्व जहां लीन कर रखते हैं, ॥८४॥ जिसे उपनिषद् गान करते हैं, योगीजन जिसे अन्तर्मुखदृष्टि होकर देखते हैं, सनकादिगण जिसे आलिंगन दिये रहते हैं, ॥८५॥ ऐसा जो आपका अनंत विश्वरूप है, जिसे हम कानोंसे सुनते हैं, हे प्रभो ! एकबार उसे आखोंसे देखनेके लिये मेरा मन उतावला हो रहा है ॥ ८६ ॥ देवने मेरा संकोच छोडकर, मेरी इच्छा जो प्रेमसे पूछी और आजतक जो आप मेरी इच्छा पूर्ण कर रहे हैं तो केवल यह भी मेरी इच्छा आप सफल करेंगे, यही मेरी प्रार्थना है ॥ ८७ ॥ हे देव ! आपके विश्वरूपका दर्शन इन नेत्रोंसे मुझे होजाय, यही एक अभिलाषा मैं कर रहा हूँ ॥ ८८ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

परन्तु हे शार्ङ्गी, नारायण ! इस बातमें मुझे एक शंका उपस्थित हो रही है, कि आपका विश्वरूप देखनेके लिये मैं पात्र हूं या नहीं, ॥ ८९ ॥ इस बातको मैं अपने आपही नहीं जानता । यदि आप देव कहदें कि, तुम क्यों नहीं जानते ? तो मैं पूछता हूँ कि, रोगी कभी अपने रोगका निदान आप जानता है ? ॥ ९० ॥ तथा मेरी इस उत्सुकताका जोर इतना बढ रहा है कि, मेरी इस आसक्तिकी योग्यता मुझमें है या नहीं यह भी मैं भूल जाता हूं । जैसे किसी प्यासेके पास यदि समुद्र रखा जाय तो वह समझता है कि यह भी मुझे काफी होगा या नहीं, तद्वत् इस मेरी प्रबल इच्छाके मोहके कारण मैं अपनी मर्यादाको संभाल नहीं सकता, इसलिये अपने बालककी इच्छाको जैसी माता जानती है, ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उसी प्रकार हे जनार्दन ! आपही मेरा अधिकार विचारिये और यदि मैं योग्य हूं, तो मुझे विश्वरूपका दर्शन दिखानेका आरंभ करिये ॥ ९३ ॥ हे देव ! ऐसी आप कृपा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


करें, कि मैं विश्वरूपको देखूं अथवा 'यह नहीं बन सकता' ऐसा कहो तो भी ठीक है । कारण बहिरेके सामने पञ्चम स्वरके अलाप निकालनेमें क्या कभी गायनका सुख मिलसकता है ? ॥९४॥ देखिये, देव ! एक चातककी तृषा-तृप्तिके मिससे मेघ सम्पूर्ण विश्वको अपनी जल-वर्षासे शान्त करता है या नहीं ? परन्तु वह वर्षा यदि चट्टानपर हो तो किस कामकी ? ॥ ९५ ॥ चन्द्रमा चकोरोंके लिये अमृत देता है, तो क्या औरोंके लिये मना कर रखता है कि कोई इसे नहीं लेना ? यह नहीं है, किन्तु यदि नेत्र ही न हों तो चन्द्रप्रकाश भी क्या करेगा ? वह वृथा ही है ॥९६॥ अत एव आप सहसा विश्वरूप दिखायेंगे यह तो मुझे पूरा विश्वास है, कारण, आप ज्ञाताओं और मूर्खोंके लिये नित्य समान हैं और आपका रूप नित्य नया अद्भुत ही है ॥ ९७ ॥ हे देव ! आपकी उदारता स्वयंसिद्ध और अनिर्बंध है । आप जब किसीको देनेकी इच्छा करते हैं तो उसके पात्रापात्रका भी विचार नहीं रखते; देखो मोक्ष जैसी पवित्र वस्तु भी आपने शत्रुओंको दे दी है ॥ ९८ ॥ मुक्ति क्या सहजमें प्राप्त हो सकती है ? किन्तु वह भी आपके चरणोंकी दासी होकर सेवा करती रहती है ! इतना ही नहीं, बरन् नौकरकी तरह जहाँ भेजो तहाँ जाती है ! ॥९९॥ देखिये भगवन् ! जो पूतना राक्षसी, अपने स्तनोंमें विष भरकर दुग्ध प्राशन करानेके लिये आई थी, आपने सनकादिकोंके समान उसे भी सायुज्य-मुक्तिका माधुर्य प्रदान किया ! ॥ १०० ॥ देखिये भगवन् ! हमारे राजसूय यज्ञमें त्रिभुवनके सभासदोंके समक्ष सैंकडों दुर्वचन कहकर आपको जिसने अपमानित किया,॥१॥ ऐसे महाअपराधी दुष्ट शिशुपालको भी हे गोपालकृष्ण ! आपने अपने स्वरूपमें मिला लिया ! उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुवने क्या अक्षय ( ध्रुवपद ) की इच्छा की थी ? ॥ २ ॥ वह वनमें केवल इस हेतुसे आया था कि, जिस किसी तरहसे मैं पिताकी गोदमें बैठ जाऊँ, ऐसी मेरी योग्यता हो । किन्तु आपने तो उसे ध्रुवपद दे चन्द्र-सूर्यादिसे भी श्रेष्ठ बनाकर उनकी अपेक्षा ऊँचा स्थान दे दिया ! ॥ ३ ॥ इस प्रकार सिवाय आपके, आर्तोंके दुःखका विचार भी न कर, ऐसी उदारता करनेवाला कौन है ? नहीं, भगवन् ! केवल अकेले आप ही हैं । अजी ! 'नारायण' नामसे पुत्रको पुकारनेवाले महापापी अजामिलको उसके दुष्ट चरित्रोंका विचार न कर केवल नामोच्चारमें मुक्तिपद आपने ही दिया ! ॥ ४ ॥ हे उदार ! आपकी शांतिका मैं क्या बखान कर सकता हूँ, देखिये, जिस भृगु ऋषिने आपके वक्षस्थलमें लत्ताप्रहार किया, उसके पैरका चिह्न शोभाकी तरह आप अपने वक्षस्थलमें धारण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर भूषित हो रहे हैं। तथा आपका शत्रु जो शंखासुर उसके शरीर ( शंख ) को आप नित्यशः अपने हाथमें प्रेमसे धारण करते हो! ॥ ५ ॥ हे देव! इस प्रकार अपकार करनेवालोंपर भी आप कैसे कैसे उपकार करते हैं, अयोग्योंके लिये भी उदारता दिखानेवाले हे देव! आप ही हैं। बलिराजाके पास आप दान माँगने गये, किन्तु उसपर प्रसन्न हो आखिर उसके ही द्वारपाल बन रहे! ॥ ६ ॥ जो गणिका न आपका कभी पूजन करती थी, न कभी आपके गुणानुवादका नामोच्चारण करती थी, किन्तु अपनी सुख चैनके लिये केवल तोतेको 'राम राम रटा' कहा करती थी, उस पापाचारिणीको भी आपने सुखका स्थान वैकुण्ठपद देदिया! ॥ ७ ॥ इस प्रकार झूठे बहाने देकर भी आप कइयोंको अपनी इच्छासे जबर्दस्ती मुक्तिपद दे चुके हैं। फिर हे देव! हे कृपाघन! क्या मेरे विषे आप उदारता छोडकर कोई दूसरी बात करेंगे? ॥ ८ ॥ देखिये देव! जो अपने दुग्धके प्रभावसे संसारके संकटोंको हरण करती है, क्या उसी कामधेनुके बछडे कभी भूखे रह सकते हैं? ॥ ९ ॥ अतएव मैंने जो आपके पास 'विश्वरूप दिखाइये' ऐसी प्रार्थना की है, वह मेरी इच्छा तो आप पूर्ण करेंगे, इसमें मुझे तनिक भी संशय नहीं है, परन्तु उसे देखनेकी योग्यता मुझमें प्रथम उत्पन्न करिये ॥ १० ॥ हे देव! आपका विश्वरूप मैं इन नेत्रोंसे देख सकूँ ऐसा आपको यदि विश्वास हो, तभी मेरे मनोरथ पूर्ण कीजिये ॥ ११ ॥ इस प्रकार किसी तरहका संकोच न कर उस सुभद्रानाथ अर्जुनने जब भगवान्के प्रति अपना उद्देश साफ साफ कह दिया, तब उस षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न चक्रवर्ती राजा श्रीकृष्णसे धैर्य न रहा ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण मानो दयामृतके मेघ हैं और अर्जुन मानो साक्षात् सभीप आया हुआ वर्षाकाल है, अथवा श्रीकृष्णको कोकिल कहें, तो अर्जुन वहां वसन्तरूप है! ॥ १३ ॥ अथवा पूर्णिमाका पूर्णचन्द्रबिंब देखकर जैसा क्षीरसागर बडी उत्कंठासे उछलता है, तद्वत् भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके प्रेमसे वश हो, दुगुनेसे भी अधिक उल्लसित हो गये ॥ १४ ॥ फिर उस चित्तप्रसन्नताके आवेशमें, दयामय श्रीकृष्ण गरजकर बडे आवाजसे कहने लगे—हे पार्थ! "देखो, देखो, मेरे असंख्यात रूपोंको तुम देखो" ॥१५॥ अर्जुनने तो केवल श्रीकृष्णके एकलेही विश्वरूपके देखनेकी इच्छा की थी, परन्तु भगवान्ने तो संपूर्ण विश्वको विश्वरूप कर डाला ॥ १६ ॥ सामर्थ्यवान् देवकी उदारता तो अपरिमित ही है, परन्तु याचक ही अपनी इच्छासे माँगनेमें तयार रहना चाहिये। फिर वे भगवान् उसकी इच्छासे हजारगुना अपना सर्वस्व दे देते हैं ॥ १७ ॥ अजी! जिस गुप्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

 Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS 

रहस्यका दर्शन सहस्राक्ष शेषको भी नहीं हुआ था, जिससे प्रत्यक्ष वेद भी वंचित रहे, इतना ही क्या ? लक्ष्मीको भी जिस हृदयस्थ गुह्यका पता नहीं था, ॥ १८ ॥ उसी गुप्तरहस्यको नानाप्रकारसे प्रकट कर भाग्यशाली अर्जुनको विश्वरूप दिखानेका उद्योग आज श्रीकृष्ण कर रहे हैं ॥ १९ ॥ जिस प्रकार जागृतावस्थासे स्वप्नावस्थामें पहुंचा हुआ मनुष्य स्वयं स्वप्नदृष्टि ही बनजाता है, तद्वत् वे भगवान् स्वयं ही अनंत ब्रह्माण्ड हो रहे हैं ॥ १२० ॥ उन्होंने अपना ' कृष्ण ' रूप गुप्त कर, अज्ञानरूपी माया-जवनिकाको हटादिया और वह स्वरूप एकदम प्रकट किया, मानो देवने अपनी योगसंपत्ति या योगसर्वस्व ही खुला कर दिया ॥ २१ ॥ परन्तु भगवान्को इस बातका भी ध्यान न रहा कि, इस रूपको देखनेकी अर्जुनकी योग्यता है या नहीं । वे प्रेमसे उतावले हो कहने लगे "देखो, इस विश्वरूपको देखो" ॥ २२ ॥

**श्रीभगवानुवाच ।**

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णने कहा—हे अर्जुन ! तुमने एक ही विश्वरूप दिखानेके लिये कहा, और मैंने भी जो उतना ही दिखा दिया, तो फिर मैंने क्या दिखाया ? अब तुम मेरे इस विश्वरूपमें क्या क्या भरा है उसे देखो ॥ २३ ॥ इसमें कौन कौन कैसे कैसे हैं वे सब देखो । इसमें कोई कृश हैं तो कोई स्थूल, कोई ह्रस्व तो कोई विशाल; कोई बडे मोटे हैं तो कोई सरल और अमर्याद हैं ॥ २४ ॥ कोई बेकाबू तो कोई सरल गरीब; कोई चंचल तो कोई निश्चल, कोई उदासीन या विरक्त तो कोई प्रेमासक्त, और कोई तो तीव्र हैं ॥ २५ ॥ कोई मदांध तो कोई सावधान, कोई सीधे हैं तो कोई बडे अगाध हैं, कोई उदार तो कोई कंजूष और कोई तो बडे कोपिष्ट हैं ॥ २६ ॥ कोई शान्त हैं, कोई मदोन्मत्त हैं, कोई निर्विकार तो कोई सन्तापवान् हैं, कोई गर्जनेवाले हैं तो कोई मौनी हैं; और कोई तो समानशीलवाले हैं ॥२७॥ कोई आशावान् हैं तो कोई विरक्त हैं; कोई जागृत हैं तो कोई निद्रित हैं, कोई संतुष्ट हैं तो कोई लोभग्रस्त हैं, और कोई तो सदा प्रसन्न ही रहते हैं ॥ २८ ॥ कोई सशस्त्र तो कोई शस्त्रविहीन हैं, कोई अति भयंकर तो कोई प्रेमी हैं, कोई भयानक हैं तो कोई विचित्र ही हैं और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कोई तो समाधिमें ही स्थित हैं ॥ २९ ॥ कोई प्रजोत्पादनमें निमग्न हैं तो कोई प्रेमसे प्रजापालनकर्ममें रत हैं, कोई क्रोधसे प्रजा-संहार करनेवाले हैं तो कोई ऐसे हैं जो केवल तटस्थ ( साक्षी ) रह-कर मजाही चखते रहते हैं ॥ १३० ॥ इस प्रकार नानातरहके दिव्य तेज और प्रकाशसे भरे रूप हैं। फिर उनके प्रकाशके रंग भी ऐसे हैं जो एक दूसरेसे भिन्न रहते हैं ॥ ३१ ॥ कोई तो ऐसे हैं मानो तपाहुआ सुवर्ण जैसा पीला होता है तद्वत् हैं, कोई कपिल वर्ण हैं, कोई तो सर्वांगसे ऐसे हैं, जैसे किसीने आकाशको सिंदूर लपेट दिया हो ॥ ३२ ॥ कोई तो स्वभा-वतः ही ऐसे सुंदर हैं, कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड माणिकोंसे जडा हुआ हो। कोई तो लालरंगसे मिश्रित अरुणोदयकी प्रभासे चमकते रहते हैं ॥ ३३ ॥ कोई तो स्वच्छ स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल हैं, कोई इन्द्रनील-मणिके समान नीलवर्णके हैं, कोई कज्जलके समान कालेवर्ण हैं और कोई कोई तो लालवर्णके ही हैं ॥ ३४ ॥ कोई उज्ज्वल तपेहुए सुवर्णके समान पीले तो कोई जलसे भरे हुए मेघोंके समान श्यामवर्ण हैं, कोई चंपक कलिकाके समान निर्मल और गोरे तो कोई केवल हरे रंगके ही हैं ॥ ३५ ॥ कोई तपे हुए तांबेके समान लाल तो कोई सपेद चन्द्रमाके समान शुभ्र वर्णके हैं। ऐसे ये नाना वर्णके मेरे रूपोंको तुम देखो ॥ ३६ ॥ ये वर्ण जैसे अलग अलग हैं, इन रूपोंकी आकृतियां भी वैसी ही अलग अलग हैं। इन रूपोंमें कोई ऐसे सुन्दर हैं कि मदनको भी सिर नीचा कर शरण आना पडे ॥ ३७ ॥ कोई कोई स्वभावतः ही अति लावण्यवान् हैं, कोईके ऐसे मनोहर शरीर हैं, जिनकी कांतिको ही देखता रहे और कोई रूप तो ऐसे हैं, मानो शृंगारलक्ष्मीके खुले भाण्डार समझे जाते हैं ॥ ३८ ॥ कोई कोई तो पुष्ट और मांसल अवयवोंसे बने प्रतीत होते हैं, कोई शुष्क हैं तो कोई अति विकरालरूप हैं, कोई लम्बग्रीवाके हैं तो कोई बडे माथेवाले और भयंकर हैं ॥ ३९ ॥ हे पार्थ ! ऐसी नाना प्रकारकी आकृतियोंको देखने लगो तो उनका पार ही न लगेगा। और इन आकृतियोंमें हरेकके अंग-प्रदेशमें एक एक जगत् भरा हुआ तुम्हें दिखाई देगा ॥ १४० ॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

इन रूपोंमेंसे जब मैं दृष्टि खोलता हूँ तब द्वादश आदित्योंकी सृष्टि उत्पन्न होती है, परन्तु जब मैं वह दृष्टि बंद करता हूँ तो उसी समय वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सृष्टि विलीन होजाती है ॥ ४१ ॥ मेरे मुखसे जो उष्ण श्वास निकलता है, उससे सब ज्वालाही ज्वाला उत्पन्न होती हैं और उनमेंसे पावक-प्रभृति अष्ट-वसुओंका समुदाय जन्म धारण करता है ॥ ४२ ॥ और इस स्वरूपके क्रोधसे जब टेढी भौंहोंकी नोकें एकत्र मिलजाती हैं, तब ग्यारह रुद्रोंका समूह निर्माण हुआ दिखाई देता है ॥ ४३ ॥ परन्तु मेरी सौम्यताका जीवन ऐसा है कि, किंचित् आर्द्रताकी दृष्टिसे अश्विनीकुमार-जैसे असंख्य जीवन-दाता निर्माण होते हैं और हे पाण्डव ! मेरे कानोंसे वायु उत्पन्न होती है ॥ ४४ ॥ इसप्रकार मेरे एक-एक अवयवके सहज लीलासे देवों और सिद्धोंके कुल उत्पन्न होते हैं और इसप्रकारके रूप तो मेरे इस विश्वरूपमें इतने भरे हुए हैं कि, जिनका अंत या पार ही नहीं ! ॥ ४५ ॥ जिनका वर्णन करते करते वेदोंकी वाणी बंद होगयी ! जिन्हें देखनेके लिये कालका आयुष्य पूरा नहीं हुआ और प्रत्यक्ष ब्रह्मदेवको भी जिसका पूरापूरा पता नहीं लगा ॥ ४६ ॥ हे पार्थ ! जिनकी वार्तातक वेदत्रयीने सुनी नहीं, ऐसे जो मेरे अनेक और विशाल रूप हैं, जिन्हें तुम प्रत्यक्ष देखकर आश्चर्यानन्दित होते हुए आत्यंतिक सुखका उपभोग लेओ ॥ ४७ ॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

हे किरीटी पार्थ ! देखो, जैसे कल्पवृक्षके मूलमें तृणांकुर उत्पन्न होते हैं, तद्वत् इन मूर्तियोंके रोमरंध्रोंमें सृष्टियां भरी हैं ॥ ४८ ॥ गवाक्षोंके छिद्रोंमेंसे आये हुए किरणोंके परमाणु जैसे उडते हुए देखे जाते हैं, तद्वत् इन मूर्तियोंके अवयवोंकी संधियोंमें ब्रह्माण्ड घूमते हुए दिखाई देते हैं ॥ ४९ ॥ देखो, इनके प्रत्येक अवयवोंके भागोंमें विश्व विस्तृत हुआ देखा जाता है । अब विश्वके परे जो कुछ है, उसे देखनेकी यदि तेरी मनीषा हो, ॥ १५० ॥ तो इस बातमें भी कुछ विशेषता हो, यह मत समझो, कारण मेरे इस स्वरूपमें तुम जो चाहो सो देख सकते हो ॥ ५१ ॥ इसप्रकार विश्वमूर्ति करुणापुञ्ज भगवान् कहते भये, परन्तु 'देखता हूँ या नहीं' इस बातके विषे अर्जुन कुछ भी जवाब न देकर चुपचाप ही रहा ॥ ५२ ॥ तब, अर्जुन ऐसा गूँगेके समान स्तब्ध क्यों हो रहा है ? ऐसी आशंकासे भगवान्ने जब अपनी दृष्टि उसके तरफ फेंकी, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि, वह तो पहलेकी तरह उत्कण्ठारूपी अलंकारोंसे भूषित हुआ जैसाका वैसा खडा ही है ! ॥ ५३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

तब भगवान् समझ गये कि, इसकी जो पहले उत्कण्ठा थी, अब कुछ भी कम नहीं हुई । अभीतक इसको आत्मसुखका लाभ प्राप्त नहीं हुआ, और हमने जो सत्यस्वरूप प्रकट कर दिखाया, वह यथार्थमें इसके ध्यानमें नहीं आया ॥ ५४ ॥ इसप्रकार मनमें जानकर भगवान् हँसे और अर्जुनको जैसाका वैसा खडा देखकर कहने लगे, हे पार्थ ! हमने तो तुझे विश्वरूप दिखा दिया, परन्तु तुमने तो उसे देखाही नहीं ॥ ५५ ॥ यह भगवान्की बात श्रवण कर, वह बुद्धिमान् अर्जुन कहने लगा, महाराज ! यह दोष किसका है ? आप बगुलेको व्यर्थ चाँदनी चखाना चाहते हैं ! ॥ ॥ ५६ ॥ हे देव ! आप दर्पणको पोंछ ताछकर स्वच्छ करके अन्धेके सामने पकड रहे हैं ! अथवा हे प्रभो ! हृषीकेश ! आप बहिरेके सामने गायनके आलाप निकाल रहे हैं ! ॥ ५७ ॥ किंवा जानबूझकर फूलोंके मकरंद ( मधु ) दादुरको चखानेका आपही वृथा प्रयत्न कर रहे हैं, फिर हे नारायण ! आप दूसरोंपर क्यों कोप कर रहे हैं ? ॥ ५८ ॥ जो बात इन्द्रियोंको अगोचर है, यह पहलेसे निश्चित हो रहा है, और जो कवल ज्ञानदृष्टिका ही हिस्सा है, वह यदि आप मुझ जड-चर्मचक्षुओंके सामने रखते हैं, तो मैं उसे कैसे देख सकता हूँ ? ॥ ५९ ॥ परन्तु, हे प्रभो ! आपकी कमीको बताकर, आपकी अप्रतिष्ठा करनेकी अपेक्षा चुपचाप खडे रहना ही मैंने उचित समझा । अर्जुनकी इस बातको सुनकर देवने कहा, मेरे प्यारे पार्थ ! तुम्हारा कहना बिलकुल सत्य है ॥ १६० ॥ हे पार्थ ! यदि हमें विश्वरूप दिखाना था, तो उसे देखनेका सामर्थ्य भी पहले तुम्हें देना चाहिये था, परन्तु हे पार्थ ! मैं तेरे प्रेमके कारण, बोलते बोलते उस बातको भूल ही गया ॥ ६१ ॥ परन्तु उससे क्या हुआ ? कि पृथ्वीको बिना जोते यदि उसमें बीज बोया जाय, तो बीजके साथ वह बीजांकुर भी व्यर्थ जावेगा, वही प्रकार प्रस्तुत प्रसंगमें हुआ है । अस्तु, अब हम तुम्हें वह दृष्टि देते हैं, जिससे तुम मेरा विश्वरूप देख सकोगे ॥ ६२ ॥ हे पाण्डव ! फिर तुम उस दृष्टिसे हमारा विश्वव्यापक संपूर्ण ऐश्वर्ययोग देखकर, तुम सुखसे आत्मानुभवमें प्रविष्ट हो जाओगे ॥ ६३ ॥ वेदांतोंसे प्रतिपाद्य, संपूर्ण विश्वके आदिकारण और त्रिभुवनवंद्य भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने इस प्रकार कहा ॥ ६४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

तब संजय बोलने लगे—हे कौरवकुलचक्रवर्ती, राजन् ! मुझे एक बातका बडा विस्मय हो रहा है, वह यह कि, इस त्रिभुवनमें लक्ष्मीसे बढकर क्या कोई भाग्यवान् है ? ॥ ६५ ॥ अथवा संकेत द्वारा वर्णन किया जाय, ऐसा वेदोंके अतिरिक्त कोई दूसरा साधन हो तो दिखाइये ? किंवा सेवामें, शेषसे बढकर भगवान्की सेवा करनेवाला भी कोई है ? ॥ ६६ ॥ अजी ! नारायणकी प्राप्तिके लिये, आठों प्रहर योगियोंकी तरह एकनिष्ठतासे उपासना करनेवाला गरुडके समान कौन भक्त है ? ॥ ६७ ॥ परन्तु ये सब अलग ही रहगये । और जिस दिनसे इन पाण्डवोंका जन्म हुआ है, उस दिनसे सांप्रतकालमें नारायणके सुखको इकट्ठा करनेवाला एक पाण्डवोंका स्थान नयाही उदय हो रहा है ! ॥ ६८ ॥ तथा उन पांचों पाण्डवोंमें भी अर्जुनके प्रेममें भगवान् स्वयं ही ऐसे अधीन हो रहे हैं, जैसे कोई कामी-पुरुष लावण्यवती स्त्रीके अधीन हो जाता है ! ॥ ६९ ॥ पढाया हुआ पक्षी भी ऐसा नहीं बोल सकता, क्रीडार्थ रखा हुआ हरिण भी ऐसा नहीं नाचता, जैसा कि श्रीकृष्ण अर्जुनके प्रेमाधीन हो, बोलते चालते हैं ! न जाने अर्जुनका ऐसा कौनसा भाग्योदय अनुकूल हो रहा है ! ॥ १७० ॥ देखिये धृतराष्ट्र ! आज संपूर्ण परब्रह्मको देखनेका सौभाग्य, इसके नेत्रोंको प्राप्त हुआ है । अहोभाग्य अर्जुनका है ! कि, जिसकी हरेक लाडिली बात भगवान् प्रेमसे पूरी कर रहे हैं ॥ ७१ ॥ यदि अर्जुन कोप करे तो भगवान् उसे चुपचाप सह लेते हैं, यदि किसी समय अर्जुन रूठ जाय तो हरतरहसे उसे समझाते हैं । बडा आश्चर्य है ! मैं समझता हूँ, अर्जुनके प्रेमसे श्रीकृष्ण पागलसे बन रहे हैं ! ॥ ७२ ॥ विषयोंको जीतकर जिन शुक आदि योगियोंने जन्म लिया, वे ही इन श्रीकृष्णके रासक्रीडादि-विषयोंका वर्णन करनेमें भाटसे बन गये ॥ ७३ ॥ ये भगवान् योगिजनोंकी समाधिका गुप्त-धन है अर्थात् योगी आत्मचिन्तनमें श्रीकृष्णका ही ध्यान करते रहते हैं, वे श्रीकृष्ण आज पार्थके कैसे आधीन हो रहे हैं ? हे राजन् ! इस बातका मुझे बडा आश्चर्य हो रहा है ॥ ७४ ॥ परन्तु इतनेमें फिर संजयने कहा, हे कौरवश्रेष्ठ ! इसमें आश्चर्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी क्या है ? श्रीकृष्ण जिसका अंगीकार करते हैं, उसका भाग्योदय ऐसा ही होता है ॥ ७५ ॥ इस कारण ही देवोंके देवने अर्जुनसे कहा, हे पार्थ ! अब हम तुम्हें दिव्यदृष्टि देते हैं, जिसमे तुम मेरे विश्वरूपको देख सकोगे ॥ ७६ ॥ श्रीकृष्णके मुखारविंदसे ये अक्षर निकले न निकले हों, कि तुरंत अर्जुनका अविद्यारूपी अंधकार मिटने लगा ॥७७॥ श्रोताओ ! वे भगवान्के मुखके अक्षर नहीं, किन्तु श्रीकृष्णने अर्जुनके लिये ब्रह्म-साम्राज्यका ऐश्वर्य दिखानेवाला ज्ञान-दीपक ही प्रकाशित करदिया हो ॥ ७८ ॥ फिर अर्जुनको दिव्य-दृष्टिका प्रकाश प्राप्त हुआ और उससे अर्जुनकी ज्ञानदृष्टि विकसित होगयी । इसप्रकार श्रीकृष्णचंद्रने अपने विश्वरूप-योगका ऐश्वर्य अर्जुनको दिखा दिया ॥ ७९ ॥ ये जो ईश्वरक सब अवतार हैं, वे जिस सागरके तरंग हैं, जिसके किरणमात्रसे यह विश्वरूपी मृगजल भासमान होता है, ॥ १८० ॥ जिस अनादिसिद्ध, स्वयंभू, सरलभूमिपर यह चराचररूपी चित्र स्पष्ट चितारा जाता है, श्रीकृष्णने अपना वही विश्वरूप अर्जुनको स्पष्ट करके दिखादिया ॥ ८१ ॥ पहले बाल्यावस्थामें जब एकबार मिट्टी खाई थी, उस समय माता यशोदाजीने क्रोधकर जब श्रीकृष्णको हाथमें पकडा था, ॥ ८२ ॥ तब 'मैं निदाष हूँ, मेरे मुँहमें मिट्टी नहीं' ऐसा कहकर डरते डरते अपनी सफाई दिखानेके लिये जब मुँह खोला, तो चौदहों भुवनोंका दर्शन यशोदाजीको होगया था ॥ ८३ ॥ अथवा मधुवनमें जिस प्रकार ध्रुवपर कृपा की थी कि, गालको शंखका स्पर्श करते ही, जो वेदोंसे भी ठीक ठीक नहीं जानी जाती, उस वस्तुका शीघ्रताके साथ ध्रुव निरूपण करने लगा ॥८४॥ हे राजन्, धृतराष्ट्र ! वैसा ही अनुग्रह भगवान् श्रीहरिने अर्जुनपर किया, जिससे 'माया' इस शब्दका अर्जुनके लिये पता भी न रहा ॥ ८५ ॥ फिर अर्जुनके लिये एकदम प्रभुके ऐश्वयतेजका प्रकाश हुआ और जहां तहां सर्वत्र चमत्कारका ही समुद्र दिखा देने लगा, जिससे उसका चित्त आश्चर्यरूपी समुद्रमें डूब गया ॥ ८६ ॥ जिस प्रकार एक बार ब्रह्मलोकतक भरे हुए जलमें अकेले मार्कण्डेयजी तैरते रहे थे, उसी प्रकार आज विश्वरूपके महोत्सवचमत्कारमें अर्जुन लोटता रहा॥८७॥ वह मनमें कहने लगा, ओहो ! यहां तो कितना विशाल आकाश दीखता था, उसे कौन कहां लेगया ? वह संपूर्ण स्थावर जंगम भूतसृष्टि कहाँ अदृश्य होगयी ! ॥ ८८ ॥ दिशाओंके चिह्नतक दीखते नहीं, ऊपर-नीचेकी कल्पना ही नहीं की जाती ! आकाश-पाताल भी न जाने कहाँ लुप्त हुए ? अनेक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



लोकाकार कहाँ हैं ? जागृतावस्थामें जैसे स्वप्न-सृष्टिका लोप होता है, तद्वत् ही मुझे प्रतीत हो रहा है ॥ ८९ ॥ किंवा सूर्यके तेजके प्रभावसे जैसे चंद्र और तारागण अदृश्य होजाते हैं, तद्वत् प्रभुके इस विश्वरूपने सब सृष्टि-रचनाको गिलंकृत कर दिया हो यही निश्चय होता है ॥ १९० ॥ उस समय उसके मनका मनत्व ही नष्ट हुआ, बुद्धि अपनेको भी संभाल न सकी, और बहिर्मुख इन्द्रियें उलटकर हृदयमें ही प्रविष्ट होने लगीं ! ॥ ९१ ॥ तब स्तब्धता स्थिर होगयी, एकाग्रताकी टक लग रही, मानो उस समय सम्पूर्ण विचारोंपर किसीने मोहनास्त्रका ही प्रयोग किया हो ! ॥ ९२ ॥ इस प्रकार आश्चर्यान्वित हुआ अर्जुन, प्रेमसे देखने लगा, तो उसके सामने चतुर्भुज श्रीकृष्णकी मूर्ति खडी है, ऐसा भी उसने देखा, किन्तु वही मूर्ति सर्वत्र भरी हुई उसे दिखायी देने लगी ॥ ९३ ॥ जिस प्रकार वर्षाकालके मेघ बढते रहते हैं अथवा महाप्रलयका तेज अधिकाधिक होता जाता है, तद्वत् प्रभुके विश्वरूपने बढते बढते एक भी स्थान ऐसा न रखा, जहां प्रभुकी मूर्ति न हो ॥ ९४ ॥ प्रथमतः अर्जुन अन्तःकरणमें इस प्रकार साक्षात्कारका अनुभव आनेसे, समाधानयुक्त होकर स्तब्ध होगया और फिर, जब उसने आंखें खोलीं तो बाहर भी उसे सर्वत्र विश्वरूप ही दिखायी दिया ॥ ९५ ॥ उसकी जो इच्छा थी कि, मैं इन "दो आंखोंसे विश्वरूप देखूं" वह उसकी इच्छा, श्रीकृष्णने अन्तर्बाह्य दोनों तरहसे पूर्ण की ॥ ९६ ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

इस विश्वरूपमें कई मुख थे, मानो लक्ष्मीपतिके वे राजभवन ही हों, अथवा मानो लावण्यलक्ष्मीके वे भांडार ही खुलगये हों, किंवा उन्हें मुख कहनेकी अपेक्षा हरेभरे आनन्दवन ही समझो, अथवा सौन्दर्यको लेकर राजसमृद्धि ही प्रकट हो रही हो, इस प्रकार हरिके सुन्दर शोभायमान अनेक वदनोंको पार्थने देखा ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ परन्तु इन सुन्दर वदनोंमें भी कोई कोई तो ऐसे भयानक थे कि, मानो वे कालरात्रिकी सेना ही साथ लेकर आये हों ! अथवा मृत्युको ही मुख उत्पन्न हो रहे हों, किंवा केवल वे भयके किले ही बनाये गये हों, या प्रलयाग्निके प्रचण्ड कुण्डही खोले गये हों ! ॥ ९९ ॥ २०० ॥ इस प्रकार विलक्षण विकराल और भयंकर वदन वीरश्रेष्ठ अर्जुनने उस विश्वमूर्तिमें देखे, तथा अलौकिक सामान्य और शृंगारयुक्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अनेक मुख उस मूर्तिमें देखे ॥ १ ॥ वह अर्जुन यद्यपि ज्ञानदृष्टिसे देख रहा था, तथापि उनका अन्त उसने नहीं पाया। तब वह बडे कुतूहलके साथ उस विश्वरूपके नेत्रोंको देखने लगा ॥ २ ॥ तब उसे नाना रंगके फूले हुए कमलवनोंके समान देदीप्यमान सूयकी पंक्ति ही पंक्ति उन नेत्रोंमें दिखायी दी ॥ ३ ॥ और उन्हीं नेत्रोंमें, कृष्ण-मेघोंके समूहमें जैसी कल्पान्तमें विद्युत् चमकती है, तद्वत् वक्र और कृष्ण भौंहोंके नीचे अग्निके समान तेजस्वी पीली दृष्टि दिखायी दे रही थी ॥ ४ ॥ इस प्रकार, उस एक ही रूपमें कई अलग अलग चमत्कार देखनेसे, अर्जुनको अनेकरूपत्वके दर्शनकी प्रतीति हुई॥५॥तब अर्जुन मनमें विचारने लगा, इस विश्वरूपके पैर कहाँ हैं ? मुकुट किधर हैं और हाथ कहाँ हैं?इस प्रकार प्रेमस देखनेकी उसकी इच्छा बढने ही लगी ! ॥ ६ ॥ और इस प्रसंगमें तो अर्जुनका सुकृतपुंज पूर्ण उदयोन्मुख था, उसका सौभाग्य हाथ जोड आज्ञाकी वाट जोह रहा था, फिर वह इच्छा भी क्यों न करे ? और उसके मनोरथ सफल क्यों न हों ? क्या शंकरके तरकसमें कोई मोघ ( निष्फल ) बाण रह सकते हैं ? ॥ ७ ॥ अथवा ब्रह्माकी वाणीमें असत्य-शब्दोंको कभी स्थान प्राप्त होसकता है ? इस हेतु उस अपार विश्वमूर्तिका अर्जुनने अपनी इच्छानुसार सार्यंत दर्शन करलिया। जिसका अन्त वेदोंको भी नहीं मिला, उसके संपूर्ण अवयवोंको अर्जुन, दो नेत्रोंसे एक समयमें एकसाथ देखता भया ॥ ८ ॥ ९ ॥ उसने चरणोंसे लेकर मुकुटतक उस विश्वरूपको देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि, विश्वमूर्ति नानालंकारोंसे शोभायमान हो रही है ॥ २१० ॥ वह परब्रह्म देव अपने शरीरपर पहननेके लिये आप ही नानालंकार बन गया था, उनकी उपमा किससे दी जा सकती है ? ॥११॥ जिस प्रभाके तेजसे चंद्र और सूर्य प्रकाशमान होते हैं, जो संपूर्ण विश्वके महातेजोंका जीवनसर्वस्व है, वह तेज ही इस विश्वरूपका शृंगार समझो। इसका आकलन करनेका ज्ञान किसकी बुद्धिमें है ? अर्जुनने देखा कि, भगवान् स्वयं ही अलंकार बन अलंकृत हो रहे हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ फिर अर्जुनने ज्ञानदृष्टिसे उस विश्वरूपके सरल हाथोंको देखनेकी इच्छा की, तब उन हाथोंमें ऐसे चमकते हुए शस्त्र दिखायी दिये,कि मानों वे कल्पान्तकी ज्वलज्ज्वालाओंको काट रहे हैं ॥ १४ ॥ शरीर और अलंकार, हाथ और हथियार, जीव और शरीर इन सब जोडोंमें दोनों वे स्वयंही हो रहे हैं, इस प्रकार सब विश्व उस अर्जुनने श्रीकृष्णसे ही भरा हुआ देखा ॥ १५ ॥ उन हथियारोंके तीव्रतर किरणोंसे नक्षत्र मानो चने जैसे फूट रहे हैं और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उनके तेजसे जलनके भयसे अग्नि मानो समुद्रमें प्रवेश करनेकी इच्छा कर रहा था ॥ १६ ॥ फिर, कालकूटविषकी लहरोंसे भरे हुए अथवा महा-विद्युत्के वन ही प्रकट हुए हों, इस प्रकारके शस्त्र चलानेवाले देवके असंख्य हाथ उस अर्जुनने देखे ॥ १७ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

उन शस्त्रयुक्त हाथोंसे डरकर ही, अर्जुनने वहांसे अपनी दृष्टि हटाली । और वह प्रभुका कण्ठ और मुकुट देखनेकी इच्छा करने लगा, तो जिनसे कल्पवृक्षकी सृष्टि उत्पन्न हुई, ॥ १८ ॥ अथवा जो महासिद्धिके आद्यस्थान हैं, किंवा थकित हुई लक्ष्मीजी जहां विश्राम पाती हैं, ऐसे अत्यंत स्वच्छ और सुंदर पुष्प धारण किये हुए कंठ और मुकुट उस अर्जुनने देखे ॥ ॥ १९ ॥ मुकुटके ऊपर हरतरहके रंग बिरंगे फूलोंके गुच्छे, जहां-तहां अनेक प्रकारके पूजोपचार बंधे हुए और कंठमें दिव्यपुष्पोंकी मालाएँ झूलती हुई दिखाई दे रही थीं ॥ २२० ॥ जैसे स्वर्गने सूर्यके तेजको परिधान किया हो अथवा मेरुपर्वतको जैसे सुवर्णसे मढाया गया हो, इसप्रकार उस विश्व-मूर्तिके नितम्ब-भागपर पीताम्बर पहिरा हुआ था ॥२१॥ कर्पूर-गौर-शंकरको कपूरका उबटन किया हो, अथवा कैलासके धवलागिरिको पारेका लेप कर दिया हो किंवा क्षीरसमुद्रको दूध जैसे सफेद वस्त्रसे ढका दिया हो, ॥२२॥ अथवा चांदनीकी घड़ी ( परत ) को खोलकर आकाशके लिये उसके घूँघटका आच्छादन किया हो, तद्वत् प्रभुके सर्वाङ्गमें चंदनका उबटन लगा हुआ अर्जुनने देखा ॥ २३ ॥ जिस सुगंधसे आत्म-प्रकाशको विशेष तेज चढता है, ब्रह्मानन्दका दाह शान्त होजाता है और जिस सुगंधसे पृथ्वीको जीवित प्राप्त होता है, ॥ २४ ॥ जिसके लेपसे निर्मलता प्राप्त होती है, जिसे अंग-रहित ब्रह्म या मदन भी सर्वांगमें धारण करता है, उस सुगंधके महिमाका कौन वर्णन कर सकता है ? ॥ २५ ॥ इस प्रकार एक-एक शृंगारकी शोभाको देखते-देखते अर्जुन ऐसा घबडा गया, कि देव खडे हैं बैठे हैं या सो रहे हैं यह भी न जान सका ! ॥ २६ ॥ नेत्रोंको खोलकर देखने लगा तो सर्वत्र मूर्तिमय-मूर्ति ही दिखाई दे रही हैं, तब आँखें बंद कर स्वस्थ चुपचाप रहा तो वहां अन्तर्यामें भी वही सर्व देवमय ही है ! ॥ २७ ॥ सामने अन-गिन्त मुख दिखाई दे रहे हैं, उनके डरसे उनकी तरफ पीठकर मुँह फेरता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है तो उधर भी देवके मुख, कर, चरण सब वैसे ही दिखायी देते हैं ! ॥२८॥ अजी ! आँखें खोलकर दिखायी दें तो आश्चर्य ही क्या है ? परन्तु आश्चर्य तो यही है कि नेत्र बंद कर कुछ भी देखनेका नहीं, ऐसा निग्रह करनेपर भी दर्शन होता रहता है ! ॥ २९ ॥ कैसा आश्चर्य है ! कैसी प्रभुकी कर्तूत है ! कैसी अर्जुनपर कृपा है कि, अर्जुनका देखना और न देखना भी प्रभुने व्याप्त कर दिया अर्थात् इन दोनों क्रियाओंमें अर्जुनको प्रभुका दर्शन ही होता है ! ॥ ३३० ॥ और अर्जुन एक आश्चर्य की अथाह बाढमेंसे निकलकर ज्योंही किनारेको पहुँचता है, तो तत्काल उसी क्षण, दूसरे आश्चर्यसमुद्रमें जा गिरता है ! ॥ ३१ ॥ इस प्रकार अनंतरूपी श्रीकृष्णने अपने दर्शनके असामान्य सामर्थ्यसे अर्जुनको सर्वतोपरि लिपटा लिया ॥ ३२ ॥ प्रभु तो स्वभावतः ही विश्वतोमुख हैं और अर्जुनने " मुझे विश्वरूप दिखाइये " ऐसी प्रार्थना की, तब सहजहीमें भगवान् स्वयं ही विश्वरूप हो वहां प्रगट होगये ॥ ३३ ॥ और वहां जो भगवान्ने अर्जुनको दिव्य दृष्टि दी थी, वह ऐसी नहीं थी, कि दीपक या सूर्यका प्रकाश न हो तो सब व्यर्थ हो, अथवा नेत्र बंद करनेसे कुछ न देखे, ॥ ३४ ॥ अत एव नेत्र बंद रहें, चाहे खुले रहें अर्जुनके लिये उस रूपको देखे बिना कोई चाराही नहीं था, इसलिये वह दोनों तरहसे रूपको देखता ही था, यह बात हस्तिनापुरमें संजयने धृतराष्ट्रसे कही ॥ ३५ ॥ फिर संजय बोला हे राजन् ! और कुछ नहीं तो भी, इतना तो तुम ध्यानपूर्वक चित्तमें अवश्य रखो कि, अर्जुनने प्रभुके नानालंकार पहरे हुए विश्वतोमुखके विश्वव्यापी विश्वरूपका दर्शन किया ॥३६॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

राजन् धृतराष्ट्र ! उस विश्वरूपके अंगकांतिकी शोभाका किसके समान वर्णन करें ? महाप्रलयकालमें जैसे बारह सूर्य एकत्र मिलजाते हैं, ॥ ३७ ॥ उस प्रकारके हजारों दिव्य सूर्य यदि एक साथ उदय हों, तो भी वे इस विश्वरूपके महातेजकी उपमाको नहीं प्राप्त हो सकेंगे ! ॥ ३८ ॥ विश्वकी सब विद्युतोंको एकत्र करिये, प्रलयकालकी अग्निकी सर्व सामग्री इकट्ठी करी जाय, और साथ ही प्रसिद्ध दश महातेज मिला दीजिये, ॥ ३९ ॥ तथापि वह सब इकट्ठा हुआ तेज भी, उस अंगशोभाकी तुलनामें कुछ अल्पसा ही होगा, किन्तु उसकी समानताको प्राप्त हो, निश्चयसे ऐसा कभी कहीं मिलही नहीं



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सकता ॥ २४० ॥ इस प्रकारकी महिमाका गौरव तो श्रीकृष्णमें स्वाभाविक ही है । उनके सर्वांगका सर्वत्र विकसित होनेवाला वह तेज, आज मैंने भी श्रीव्यासमुनिकी कृपासे देखकर अपने जन्मकी सार्थकता समझी ॥४१॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥

और उस विश्वरूपके एक कोनेमें यह सर्व विश्व अपने विस्तारके साथ ऐसा देखा जाता था, मानो महासमुद्रमें भिन्न भिन्न केवल बुलबुले उठ रहे हों, ॥ ४२ ॥ किंवा आकाशमें जैसे गन्धर्वनगर ( मेघ ) हों, अथवा भूमिपर जैसे चिउँटियोंके घर बने रहते हों, या मेरुपर्वतपर जैसे छोटे-छोटे अनेक परमाणु भरे रहते हों, ॥ ४३ ॥ तद्वत्, संपूर्ण विश्व उस चक्रवर्ती भगवान्‌के शरीरमें उस समय अर्जुनने देखे ॥ ४४ ॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य सिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥

उस समय अर्जुनके मनमें विश्व कोई अलग वस्तु है, और मैं कोई उससे भिन्न वस्तु हूँ, इस प्रकारका जो भेदभावनाका अंश शेष था, वह भी नष्ट हो गया तथा उसका अन्तःकरण एकदम पिघल गया ॥४५॥ अन्तःकरणमें आनंदका संचार हुआ । बाहरी अवयवोंका बल नष्टप्राय होगया और नखशिखांत सर्व शरीर रोमांचोंसे भरगया ॥ ४६ ॥ वर्षाकालके प्रथमारंभमें, पानी बह जानेपर जैसे पर्वतके सर्वांगपर कोमल अंकुर उगे हुए दीखते हैं, तद्वत् अर्जुनके सर्वांगपर रोमाञ्च खडे होगये ! ॥ ४७ ॥ चंद्रकिरणके स्पर्शसे जैसा चंद्रकांत-मणि पिघलता है, तद्वत् उसके शरीरभरमें स्वेदबिंदु आ रहे थे ॥ ४८ ॥ कमल-कलिमें भ्रमरके फँसे जानेपर वह कलिका जैसी पानीपर ही हिलती रहती है, उसी प्रकार अन्तर्यामके सुखके लहरोंसे उसका बाहरी शरीर काँप रहा था ॥ ४९ ॥ कर्पूर-कदलीकी छालको निकालते समय उसमें दबे हुए कपूरके कण जैसे टपकने लगते हैं, तद्वत् इस अर्जुनके नेत्रोंसे अश्रु-बिंदु टपकने लगे ॥ २५० ॥ चन्द्रके उदय होनेपर जैसा भराहुआ समुद्र अधिकाधिक उछलने लगता है, तद्वत् आनंदकी लहरोंसे वह अर्जुन बारबार उछलने लगा ॥ ५१ ॥ इस प्रकार संपूर्ण आठों सात्विकभाव परस्परमें स्पर्धा करते हुए उसके अंगमें प्रविष्ट हुए । तब उसके जीवको माना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ब्रह्मानन्दका साम्राज्य ही प्राप्त होगया ॥ ५२ ॥ परन्तु, इस प्रकारके आत्मानंद-सुखानुभवके उपरान्त भी उसने द्वैतको सँभाला, अर्थात् देव और भक्तकी वृत्तिका प्रतिपालन किया और एक श्वास लेकर अपनी दृष्टि बाहर फेंकी ॥ ५३ ॥ जिस ओर श्रीकृष्ण बैठे थे, उसी ओर उसने प्रभुको माथा नवाकर नमन किया और हाथ जोडकर वह कहने लगा ॥ ५४ ॥

अर्जुन उवाच ।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

अर्जुनने कहा, हे प्रभो, हे स्वामिन् ! आपका जयजयकार हो, आपने मुझपर बडी अपूर्व कृपा की, कारण मुझसा सामान्य मनुष्य आज आपके विश्वरूपका दर्शन कर रहा है ॥५५॥ हे गोस्वामिन् ! कृष्ण ! आपने सत्य-सत्य बडा उपकार ही किया है और मुझे भी बडा संतोष हो रहा है, कारण आपही इस सब सृष्टिके आधार हैं, यह आज मैंने प्रत्यक्ष अपनी दृष्टिसे देख लिया ॥ ५६ ॥ हे देव ! जिसप्रकार मंदराचलके शरीरपर अनेक जगह वनचर श्वापदोंके संघ रहते हैं, तद्वत् अनेक भुवनोंके संघ आपके शरीरमें मैं देख रहा हूँ ॥ ५७ ॥ अजी ! आकाशके विस्तारमें जैसे ग्रहगणोंके समूह दिखाई देते हैं, अथवा किसी विशाल-वृक्षमें जैसे पक्षियोंके घोंसले लटकते हुए दिखाई देते हैं, ॥ ५८ ॥ तद्वत्, हे देव ! हे श्रीहरि ! आपके इस विश्वरूपी शरीरमें देवगणोंसहित मैं स्वर्गकूं देख रहा हूँ ॥ ५९ ॥ हे प्रभो ! इस आपके शरीरमें महाभूतोंके पञ्चक ( पञ्चमहाभूत-समूह ) तथा भूत-सृष्टिके अनेक समुदाय मुझे दीखते हैं ॥ २६० ॥ अजी ! भगवन् ! आपके शरीरमें सत्यलोक तो दीखता है, फिर उसमें ब्रह्मदेव न हो, ऐसा कभी हो सकता है ? और दूसरी ओर देखता हूँ तो कैलास भी दीख रहा है ! ॥६१॥ हे भगवन् ! आपके एक अंशमें भवानीसहित शंकर भी मुझे दीख रहे हैं, इतना ही क्या ? बरन् हे हृषीकेश ! आप भी इस अपने रूपमें दिखायी दे रहे हैं ! ॥ ६२ ॥ हे देव ! कश्यपादि ऋषिगण अपने कुलोंसहित हैं और सर्पोंसहित पाताल लोक भी इस रूपमें दिखाई देते हैं ॥ ६३ ॥ किंबहुना, हे त्रैलोक्यपति ! आपके एक-एक अवयवरूपी दीवालमें चौदहों भुवन मातों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चित्राकृति लिखे हुए दिखाई दे रहे हैं ॥ ६४ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु उन भुवनोंके जो जो लोक हैं, वे भी यहां चित्राकृति छपे हुएसे प्रतीत हो रहे हैं । हे नाथ ! इस प्रकार आपकी अगाधता बडी विलक्षण और अपूर्व है, ऐसा मुझे अनुभव हो रहा है ॥ ६५ ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥ १६ ॥

इस दिव्य-दृष्टिके साहाय्यसे जो मैं चहुँओर देखता हूँ, तो मुझे आपके बाहुदण्डोंमें मानों आकाशको अंकुर फूटे हुए ही ज्ञात होते हैं ॥ ६६ ॥ और हे देव ! आपके हाथ एकही कालमें निरंतर सब तरहके व्यापार करते हुए दिखाई दे रहे हैं ॥ ६७ ॥ फिर आपके अनंत उदर भी ऐसे देखे जाते हैं, जैसे अव्यक्त ब्रह्मके विस्तारमें ब्रह्माण्डके भाण्डार ही प्रकट हो रहे हैं ॥६८॥ अजी ! आपके इस शरीरके सहस्रों मस्तकोंकी एकही समयमें करोडों आवृत्तियां देखी जाती हैं और इस परब्रह्मरूपी वृक्षको, वे वदनरूपी सहस्रों फल मानो अपने भारसे झुका रहे हैं ॥ ६९ ॥ हे विश्वमूर्ति ! ऐसे आपके वदन जहां तहां मैं देख रहा हूँ और उसी प्रकार आपकी नेत्र-पंक्तियोंके अनेक समुदाय मैं जहां-तहां देख रहा हूँ ॥ २७० ॥ इतना ही क्या ? हे देव ! स्वर्ग, पाताल, भूमि, दिशा, आकाश इत्यादि बातोंकी यहां तो वार्ता ही नहीं रही, किन्तु सब कुछ यहां मुझे मूर्तिमय ही दीखता है ॥ ७१ ॥ हे अनंत ! आपके अतिरिक्त यहां कोई परमाणु बराबरका अवकाश भी मुझे प्रतीत नहीं होता, इस प्रकार आपने सर्वत्र सबको व्याप दिया है, जिससे मुझे बारबार आश्चर्य हो रहा है ॥ ७२ ॥ हे सर्वव्यापी अनंत ! यह जो नानाविध और अनगिन्त महाभूतोंका विस्तार पहले था, वह सब विस्तार आपने अपनेमें व्याप दिया है ॥ ७३ ॥ ऐसे आप कहांसे आये, आप यहां खडे हैं या बैठ गये हैं, ऐसे आप किस माताके गर्भमें थे और आपका स्थान कितना विशाल था, ॥ ७४ ॥ आपका रूप तथा वय कैसा है, आपसे परे और क्या है, तथा आपको मूलाश्रय क्या है अर्थात् आप किसपर स्थिर रहे हैं, इत्यादि बातोंको जो मैं देखने लगता हूँ, ॥ ७५ ॥ तो मुझे एकसाथ ऐसा ज्ञात होने लगता है कि, आपका आश्रय आप ही हैं, आपने किसीसे जन्म

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



धारण नहीं किया, किन्तु आप अनादि स्वयंसिद्ध ही हैं ॥ ७६ ॥ आप न खडे हैं न बैठे हैं, आप न ऊँचे हैं न ह्रस्व हैं, हे वैकुण्ठनाथ ! आपके लिये नीचे और ऊपर सब आपही हैं ॥ ७७ ॥ हे देव ! आप स्वरूपमें आप जैसे ही हैं और आप ही अपनी आयु हैं तथा हे परमेश ! अपने लिये आगे और पीछे आप ही हैं ॥ ७८ ॥ हे अनंत ! मैं अधिक क्या कहसकता हूँ, परन्तु मैं बारबार देख चुका हूँ कि, आपका सब कुछ आप ही हैं, यही मैं कहदूंगा ॥ ७९ ॥ हे प्रभो ! आपके इन रूपोंमें मुझे एक कमी प्रतीत हो रही है, वह यह कि, इनमें आदि, मध्य और अन्त यह त्रितय तो कहीं भी दिखायी नहीं देता ! ॥२८०॥ वास्तवमें देखनेपर आपने तो सर्व व्याप दिया है, परन्तु आपका पता तो कहीं भी नहीं दीखता, इससे मुझे निश्चय होता है कि, ये तीनों बातें आपमें नहीं हैं ॥ ८१ ॥ इसप्रकार हे आदिमध्यान्त-रहित अनंत ! हे अपरिमित विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप ! आपका विश्वरूप मैंने देख लिया, यह बात निश्चित सत्य है ॥ ८२ ॥ हे देव ! आपकी इस विराट्-मूर्तिमें जो अनेक पृथक्-पृथक् मूर्तियां अपनी अपनी तरहसे बिंबित हो रही हैं; उनसे ऐसा प्रतीत होता है, मानों आपने अनेक रंगके अंगरखा ही अपने अंगमें पहिने हैं ॥ ८३ ॥ अथवा हे देव ! मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि, ये भिन्न-भिन्न मूर्तियां मानों आपके देहरूपी पर्वतपर वृक्ष और वल्लीसे बनकर दिव्य अलंकाररूपी फल और फूलोंकी बहारसे प्रफुल्लित हो रही हैं ॥ ॥ ८४ ॥ किंवा हे अनंत ! आप महासमुद्र हैं और ये मूर्तियां उसके तरंग-रूपी झोंके बनकर आप ही हिल रहे हैं । किंवा आप एक अतिविशाल वृक्ष हैं और ये मूर्तियां मानो आपही फलरूप हो, भारसे उसको झुका रहे हैं ॥ ८५ ॥ अजी, देव ! यह पृथ्वी जैसी भूतमात्रोंसे भरी हुई दिखायी देती है, अथवा आकाश जैसा नक्षत्रोंसे आच्छादित प्रतीत होता है, हे देव ! आपका रूप भी वैसा ही मूर्तियोंसे भरा हुआ दिखाई दे रहा है ॥ ॥ ८६ ॥ हे जगन्नाथ ! आपके इस विशालरूपके रोम-रोममें इतनी बडी-बडी मूर्तियां प्रकट हो रही हैं, कि एक-एकके अवयवमें यह त्रिभुवन प्रकट होता है और लय पाता है ! ॥ ८७ ॥ फिर, ऐसा जिसका विस्तार है, वे आप कौन हैं, ऐसा जब मैं विचार करने लगा, तो मुझे मालूम हुआ कि, आप तो मेरे सारथी वे श्रीकृष्ण ही हैं ! ॥८८॥ तथापि हे मुकुंद ! विचार करनेपर यही सिद्ध होता है कि, आप सर्वदा ऐसे ही व्यापक हैं, परन्तु केवल भक्तपर कृपा करनेके हेतु ऐसा प्रेममय सुंदर और मनोहररूप आप धारण करते हैं ॥ ८९ ॥ अहा हा ! यह चतुर्भुज श्यामस्वरूप कैसा सुंदर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है कि जिसे देखनेपर मन और नेत्र एक हो समाधि लगाते हैं, और उसे आलिंगन करनेके लिये हाथ पसारे जाँय तो दोनों हाथोंमें वह सहजहीमें समाजाता है ॥ २९० ॥ हे विश्वरूप देव ! आप ऐसा सुंदर मनोहर रूप केवल हमलोगोंपर कृपा करनेके लिये ही धारण करते हो न ? हे भगवन् ! क्या कहें, हमारी दृष्टि ही बडी दूषित है, जो असामान्य आपको हम सामान्य-दृष्टिसे देखते हैं ! ॥ ९१ ॥ कुछ भी हो, अब मेरी दृष्टिका मल साफ नष्ट होगया, आपने कृपा कर सहज ही दिव्य-दृष्टि दे मुझे प्रकाशमान् बना दिया, जिससे आपकी महिमाको मैं यथार्थतःसे देख सका ॥ ॥९२॥ परन्तु हे अनंत, हे देव ! अब मैंने आज खूब जान लिया कि, हमारे रथके मकराकारवदन जुँएके पीछे जो बैठे हुए थे, वे ही आप यह विराट्रूप धारण किये यहां दीख रहे हैं ॥ ९३ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

हे श्रीहरि ! आपके मस्तकपर मुकुट तो वही है, परन्तु उसका आजका तेज और प्रभाव बडा विलक्षण और अपूर्व ही प्रतीत होता है ॥ ९४ ॥ और हे विश्वमूर्ते ! आपके ऊपरके हाथमें जो आपने चक्र धारण किया है, वह फेंकनेकी इच्छासे ही सँभाला हुआ दीखता है, तो भी उसका चिह्न अभी वैसाका वैसा ही मालूम होता है ॥ ९५ ॥ दूसरी ओर यह जो आपके हाथमें गदा है, क्या पहिचानी नहीं जाती ? तथा हे गोविन्द ! आपके नीचेके ये दो हाथ, जिनमें शस्त्र नहीं हैं, केवल घोडोंके बागडोर सँभालनेके लिये ही फैलाये हैं, ॥९६॥ और हे विश्वेश ! मेरी इच्छामूर्तिकी उत्कंठाके समान, आप भी वैसीही शीघ्रताके साथ एकदम विश्वरूप हो गये, यह बात अभी मैं जान गया हूँ ॥ ॥ ९७ ॥ परन्तु हे देव ! यह जो आपका अद्भुत और अनोखा चमत्कार है, उसे देखकर होनेवाले विस्मयका बल मुझमें नहीं है । हे देव ! इस आश्चर्यको देखकर मेरा चित्त पागलसा बनगया है ॥९८॥ हे अनंत ! यह आपका विश्वरूप यहां है या नहीं यह भी मुझे निश्चय नहीं होता, कारण आपके शरीरकी प्रभा चहुँ ओर ऐसी भरी है, कि यह सब विश्वसमुदाय यहां ही इकट्ठा कर रखा हो, ऐसा मालूम हो रहा है ॥ ९९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे श्रीकृष्ण ! आपके इस अनुपम तेजसे अग्निकी दृष्टि भी जलगईसी प्रतीत होती है और सूर्य खद्योतके समान लुप्त हो रहा है, ऐसा यह आपका तीव्र तेज है ॥ ३०० ॥ अजी, हे देव ! आपके इस प्रचण्ड तेजसागरमें मानों संपूर्ण सृष्टि डूब रही है, अथवा महाप्रलयकालीन विद्युत्समूहने आकाशको ढँका दिया हो ॥ १ ॥ किंवा विश्वप्रलयकी अग्निज्वालाओंको तोड-फोडकर उनका यह आकाशमें मानों मण्डप ही बनाया गया हो, जिसे मेरी यह दिव्य दृष्टि भी देख नहीं सकती ! ॥ २ ॥ इसकी देदीप्यमान प्रभा क्षण-क्षणमें अधिकाधिक बढ रही है और उससे जो दाह उत्पन्न हो रहा है, वह ऐसा विलक्षण है कि, दिव्य-दृष्टिके नेत्र भी उसको सह नहीं सकते ॥ ३ ॥ महाप्रलयकारक अग्निका भभकता हुआ तेज जो श्रीशंकरमें गुप्त था, मानो वही आज तृतीय नेत्रकी कलिकाको फोडकर बाहर निकलपडा हो ॥ ४ ॥ उसी प्रकार आपके चहुँओर विस्तृत प्रकाशमें पञ्चाग्नियोंकी ज्वालाओंके भौंरेसे पड जानेपर संपूर्ण ब्रह्माण्डोंके कोयले हो रहे हैं ॥ ५ ॥ हे देव ! इस प्रकारका आपके अद्भुत तेजःपुञ्जका समुदाय जन्मभरमें मैंने आजही देखलिया ! हे अनंत ! आपकी व्यापकता और तेजस्विताका पार ही नहीं है ॥ ६ ॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

हे देव ! आप अविनाशी हैं, आप ॐकारकी साढे तीन मात्राओंसे परे हैं, और श्रुति जिसका शोध कर रही है, ॥ ७ ॥ जो सर्व आकारोंका आदिकारण है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व एकत्र किया जाता है, वह अक्षय्य, गूढ और अविनाशी स्थान आपही हैं ॥ ८ ॥ हे देव ! धर्मका जीवन आप ही हैं, आप अनादिसिद्ध हैं, नित्य नये हैं और मैं समझता हूँ कि छत्तीस तत्त्वोंसे परे सैंतीसवें तत्त्व पुराण-पुरुष आप ही हैं ॥ ९॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे देव ! आप आदिमध्यान्तरहित हैं, आप स्वयंसिद्ध पराक्रमी हैं, आप अनंत हैं, विश्वबाहु हैं, अपरिमित हैं और आपके चरण विश्वव्यापी हैं ॥ ३१० ॥ चंद्र और सूर्य आपके नेत्र हैं और उनके कारण आप कृपाप्रसादकी या क्रोधकी निरंतर लीला कर रहे हैं । किसीका आप तमोरूपी नेत्रोंसे देख शासन करते हैं तो किसीका कृपादृष्टिकी शीतल छायासे देखकर पालन करते हैं ॥ ११ ॥ हे देव ! इस प्रकारका आपका रूप मैं ही देखरहा हूँ । अजी ! आपका यह मुख मानो प्रलयकालकी अग्निज्वालासा मुझे प्रतीत हो रहा है ॥ १२ ॥ हे देव ! दावाग्निसे जलते हुए पर्वतको लिपटकर जैसी ज्वालायें हरेक वस्तुमात्रको लपेटती जाती हैं, तद्वत् यह आपकी जिह्वा दाढें चाटती हुई दांतोंमें लटक रही हैं ॥ १३ ॥ इस मुखकी दाहकतासे और संपूर्ण शरीरके तेजसे यह विश्व तपायमान होकर अत्यन्त क्षुब्ध हो रहा है ॥ १४ ॥

द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

और हे देव ! स्वर्ग और पाताल, पृथ्वी और अंतराल, तथा दशो दिशायें अथवा संपूर्ण दिशाचक्र इन सबको आपने व्याप रखा है, सिवाय आपके वहां मैं कुछ भी नहीं देख सकता, परन्तु आपके भयानक रूपने आकाशको मानो निगलडाला हो ऐसा ही विदित होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ अथवा आपके इस विश्वरूपके अद्भुत-रसकी तरंगोंमें मानो चौदहों भुवन भी फँस रहे हों, फिर हे देव ! मेरी अल्पबुद्धि इस आश्चर्यमय रूपको कहांतक देख सकती है ? ॥ १७ ॥ यह विलक्षण-व्यापकता समेटी नहीं जाती, आपके तेजकी तीव्रतर उग्रता सही नहीं जाती, हे देव ! आपके इस रूपको देख, विश्वका सुख तो दूर ही भाग रहा है, परन्तु जीवन भी कैसा रहे विदित नहीं होता ॥ १८ ॥ हे देव ! ऐसा आपका रूप देखकर, भयकी बाढ कैसी आ रही है, यह भी मुझे ज्ञात नहीं होता ! अब इस बाढके दुःखरूपीतरंगोंमें संपूर्ण त्रिभुवन डूब रहे हैं ॥ १९ ॥ हे देव ! वास्तवमें विचार करनेपर, आप जैसे महात्माओंके दर्शनमें भय और दुःख मिश्रित क्यों हो रहे हैं ? यह मुझे तो अनुचित दीखता है, परन्तु हे देव ! आपके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दर्शनके गुणोंमें मुझे जो अनुभव आ रहा है, उसमें तो सुखका लेश भी नहीं प्रतीत होता है ॥ ३२० ॥ हे अनंत ! जबतक आपका रूप दृष्टिसे नहीं देखा था, तबतक जगत्के संसार-सुख ही प्रिय लगते थे, परन्तु अब आपके रूपको देखनेपर उन विषयोंकी ऐसी घृणा आती है कि, उनका नाम सुनतेही एकतरहसे हींक आजाती है और उससे चित्त क्षुभित होता है ॥ २१ ॥ तथा आपके इस रूपको देखकर क्या प्रेमसे आपको एकदम आलिंगन कर सकते हैं ? और यदि वैसा प्रेमालिंगन न दे सकें, तो ऐसे शोक-संकटोंमें हम कैसे रह सकते हैं ? ॥२२॥ अच्छा, यदि ऐसी अवस्थामें आपको छोड पीछे हटजांय तो इस जन्म-मरणरूपी अनिवार्य संसारचक्रमें फँसते हैं और इससे डरकर आगे बढें तो आपका यह अद्भुत और अतर्क्य रूप हमसे सहा नहीं जाता ! ॥ २३ ॥ इसप्रकार दो संकटोंके बीचमें पडा हुआ यह बिचारा त्रैलोक्य, भूने हुए चनोंकी तरह व्यर्थ दुःख पा रहा है, ऐसा मुझे इसका मथितार्थ जान पडता है ॥ २४ ॥ जैसे कोई अग्निसे जलनेपर उसकी दाह-शांतिके लिये समुद्रको जाय, किन्तु वहां तो उसकी उछलती हुई लहरोंको देख और भी डर कर घबरा जावे, ॥ २५ ॥ वही दशा इस जगत्की हो रही है । यह विश्व आपके इस दर्शनसे अत्यंत उदास हो रहा है !–

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

और हे देव ! इस स्वरूपमें उस ओर जो देवोंके बडे बडे समुदाय हैं वे भले हैं ॥ २६ ॥ और वे आपकी अंगप्रभासे सब कर्मोंके बीजोंको जलाकर अपनी सद्भावनासे आपके स्वरूपमें लय होरहे हैं ॥ २७ ॥ और इधरकी ओर जो स्वभावतःही भीरु हैं, सर्वभावोंसे आपके सम्मुख हो, दो हाथोंसे आपकी प्रार्थना कर रहे हैं ॥ २८ ॥ वे ऐसी प्रार्थना कर रहे हैं कि, " हे प्रभो ! हमलोग अविद्यारूपी महासागरमें डूब रहे हैं, विषयोंकी बागडोरमें बँधगये हैं, तथा संसार और स्वर्ग इन दो पेंचप्रसंगमें आकर विचारशून्य हो रहे हैं ॥ २९ ॥ तो, हे देव ! आपके बिना इस संकटसे हमारा छुटकारा कौन कर सकेगा ? हे दयाघन ! हम सर्व जीवभावसे आपकी शरण हैं, यही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हमारी बारबार प्रार्थना है" ॥ ३३० ॥ हे देव ! इस ओर ये महर्षि, सिद्ध और विद्याधरोंके समूह 'स्वस्ति' इसप्रकारके कल्याणसूचक वचनोंसे आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ३१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

रुद्र और आदित्योंके समुदाय, अष्ट-वसु तथा संपूर्ण साध्यदेव, दोनों अश्विनीकुमार, विश्वेदेव तथा वायुदेव ये सब अपने ऐश्वर्यके साथ, ॥ ३२ ॥ तथा पितृदेव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, इन्द्र प्रभृति सब देव और सिद्धादिक, ॥ ३३ ॥ ये भी सब अपने अपने स्थानोंसे बडी उत्कंठाके साथ आपकी देदीप्यमान विशाल-मूर्तिका दर्शन कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ फिर देखते-देखते अन्तरंगमें विस्मययुक्त हो, अपने मस्तकोंके मुकुटोंसे हे देव ! आपके चरणोंमें आरती कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ वे 'जय जय' इस मंजुलघोषके शब्दोंसे सप्त स्वर्गोंको गुंजारते रहे हैं और दोनों हाथोंके करसंपुट अपने ललाटपर रखकर आपको नमन कर रहे हैं ॥३६॥ उस विनयरूपी वृक्षोंके अरण्यमें सात्त्विक-भावनाओंके वसन्तकालका उदय होनेसे, उनके जोडे हुए करसंपुटरूपी पल्लवोंमें हे प्रभो ! आप मानो फलरूप हो चिपक रहे हैं ॥ ३७ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

हे देवाधिदेव ! आज हमारे नेत्रोंका भाग्योदय हो रहा है, मनको सुखके सुकालका उदय हो रहा है; कारण जिन्होंने आपके इस विशाल विश्वरूपका दर्शन किया ॥ ३८ ॥ तीनों लोकोंको व्यापनेवाले इस रूपको देखकर, देव भी भयसे काँपते हैं, किन्तु आज इस रूपको कोई साधारण मनुष्य भी चाहे जहाँसे सम्मुखही देख सकता है ! ॥ ३९ ॥ इस प्रकारका यह रूप एकही है, परन्तु इसके मुख विचित्र और भयानक हैं । इसके अनेक नेत्र हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


और शस्त्रधारण करनेवाले अनेक हाथ हैं ॥ ३४० ॥ इसकी जांघें असंख्य हैं तथा बाहु और चरण भी अनेक हैं। इसके अनेक उदर हैं और इसमें नाना वर्ण हैं। इसप्रकारका यह स्वरूप होनेपर भी, प्रत्येक मुखमें आवेश ऐसा भर रहा है, ॥४१॥ मानो महाप्रलयकालीन संतप्त यमने प्रलयाग्निकी जहाँ-तहाँ भभकती हुई ज्वालायें पसार रखी हों ॥ ४२ ॥ अथवा वे मुख मानो विश्वसंहार करनेवाले रुद्रके यन्त्र ही बने हों, किंवा प्रत्यक्ष प्रलय-भैरवोंके समुदाय वहां मुखरूपसे आ प्रगट हुए हों, अथवा कल्पान्त करनेकी शक्तिवाले भूतरूपी खिचडीको पकानेके वे पात्र ही हों, ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! इस प्रकारके जहाँ-तहाँ आपके प्रचण्ड और भयानक मुख दिखाई दे रहे हैं। और जैसे गुफाओंमें न समानेवाले सिंहोंकी क्रोधमुद्रा गुफाओंके बाहर दिखायी देती है, तद्वत् आपके उग्र दाँत मुखके बाहर दिखाई देते हैं ॥ ४४ ॥ कालरात्रिका आश्रय लेकर घात करनेकी इच्छासे जैसे पिशाच एक साथ आनंदसे निकलते हैं, तद्वत् आपके मुखमें आपकी डाढें रक्तसे भरी हुई प्रलय करनेके लिये निकलीसी प्रतीत हो रही हैं ॥ ४५ ॥ इतना ही नहीं, बरन् हे देव ! जैसे कालनें युद्धको ही बुलाया हो, अथवा संपूर्ण विश्वके संहारार्थ मृत्यु ही उन्मत्त हो रही हो, तद्वत् आपके मुखोंमें अत्यंत भयोत्पादक उग्रता दिखाई दे रही है ॥ ४६ ॥ आपने इस बिचारी सृष्टिको अपनी दृष्टिसे किंचित् ही देखी न देखी हो कि, वह तत्काल कालिंदी नदीके वृक्षस्वरूपको प्राप्त होगई, अर्थात् विषसे जली हुईसी दीख रही है ॥ ४७ ॥ हे देव ! यह आपका स्वरूप महामृत्युका सागर है, और उसमें यह त्रैलोक्यजीवितरूपी नौका दुःख-रूपी आंधीकी लहरोंसे इधरसे उधर हिलोरे खा रही है ॥ ४८ ॥ हे वैकुंठनाथ ! आप क्रोध कर यदि ऐसा कहें कि, " तुझे इन लोकोंकी स्थितिके भले-बुरेसे क्या पडी है, तुमने जिस रूपको देखनेकी इच्छा की थी, उस विश्वरूपके दर्शनका उपभोग करो " ॥४९॥ तो हे भगवन् ! मैं इन लोगोंके निमित्तकी ढाल तो वृथा ही बीचमें रख रहा हूँ, किंतु सच पूछिये तो मेरे ही प्राण थर थर काँप रहे हैं ! ॥ ३५० ॥ हे देव ! क्या कहूं, जिस मुझसे संहार करनेवाला रुद्र डरता है, जिस मेरे भयसे प्रत्यक्ष यम भी छिपता है, वह मैं आज इस प्रसंगमें थरथर काँप रहा हूं, इस प्रकारकी हीन दीन-स्थिति आपने कर रखी है ॥ ५१ ॥ परन्तु हे तात ! हे दयालु प्रभो ! यद्यपि यह विश्वरूप है तो भी इसका सबसे बडा विचित्र आश्चर्य है, कारण इसको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



महामारी ही कहना पडेगा । क्योंकि इस विश्वरूपकी भयानकता ऐसी विलक्षण है कि, वह भयको भी भय उत्पन्न करती है ॥ ५२ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥

हे देव ! आपके ऐसे भयानक मुख हैं, जो महाकालको भी केवल लीलासे जीत सकते हैं। और विस्तारमें ऐसे विशाल हैं, जिनके सामने यह विस्तीर्ण आकाश भी अल्पसा प्रतीत होता है ॥५३॥ अजी ! ये आपके मुख गगनकी विस्तीर्णतामें भी नहीं समा सकते ! त्रिभुवनके वायुसे भी व्यापे नहीं जाते, और इनकी भाफ अग्निको भी जला डालती है, ऐसे ये कैसे भभक रहे हैं ! ॥ ५४ ॥ और इसपर भी यह आश्चर्य है कि, ये एक दूसरेके समान नहीं दिखाई देते ! इन मुखोंमें नाना-प्रकारके वर्णोंके भेद भी दिखाई दे रहे हैं, और ऐसा विदित होता है कि, प्रलयकालमें जो प्रलयाग्नि संहारके लिये उत्पन्न होती है, वह मानों इन्हींकी सहायता लेती हो ! ॥५५॥ आपके इन मुखोंकी तेजस्विता इतनी प्रखर है कि त्रैलोक्यकी राख करनेमें इन्हें कुछ भी विलंब नहीं लग सकता। इस शरीरमें ऐसे कई मुख हैं, और उनमें अत्यंत विशाल और कठिन दांत तथा भयानक डाढें भी हैं ॥ ५६ ॥ इन संहारक मुखोंका तेज ऐसा दीखता है मानो वायुको ही इनसे धनुर्वात हुआ हो, अथवा स्वयं महासागर ही बडी बाढमें डूब जा रहा हो, किंवा विषाग्नि वडवानलको नाश करनेके लिये सिद्ध हो रही हो, ॥ ५७ ॥ अथवा हालाहल विष अग्निको भक्षण कर रहा हो, अथवा सब विस्मयोंका विस्मय यह प्रतीत होता है कि मृत्युको दूसरे मृत्युकी सहायता प्राप्त हो रही हो, इस प्रकारका यह संहारक तेज भासमान हो रहा है ॥ ५८ ॥ यह कितना वडा है ? यदि ऐसा विचार किया जाय तो यही कहना पडता है कि, अन्तराल टूटटूटकर आकाशके इर्द गिर्द चहुँ ओर घिर रहा हो ॥ ५९ ॥ अथवा जब हिरण्याक्ष पृथ्वीको बगलमें दबाकर गुहामें घुसा था उस समय श्रीशंकरने जैसी पातालगुहा निर्माण कर दी थी॥३६०॥ तद्वत् इन मुखोंका विस्तीर्ण विस्तार दिखाई दे रहा है। और इन मुखोंकी जिह्वायें भी ऐसी विलक्षण दिखाई दे रही हैं, कि इस विश्वका एक ग्रास

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


भी उनके लिये काफी नहीं होगा और इसी हेतु आपकी यह मूर्त्ति इस विश्वको निगलना नहीं चाहती ! ॥ ६१ ॥ देखिये देव ! जैसी पातालके सर्पोंके फूत्कारकी विषज्वालायें आकाशतक जा पहुँचती हैं, तद्वत् आपके इस मुखरूपी गुहाओंमें ये विशाल जिह्वायें भयोत्पादक दिखाई दे रही हैं ॥६२॥ प्रलयकालीन विद्युतोंके समुदायसे गंधर्वनगरोंके मेघोंको शृंगारित करनेपर वे जैसे चित्रविचित्र रंगके प्रासादसरीखे दिखाई दे सकेंगे, तद्वत् आपके होठोंके बाहर भभकती हुई तीव्र डाढें आडीटेढी दिखाई दे रही हैं ॥ ६३ ॥ और आपके नेत्र इस विशाल भालपटलकी खोलमेंसे मानों भयको ही डराते हुए प्रतीत हो रहे हैं । अथवा ये कोई महामृत्युके समुदाय ही अँधेरेमें छिपे हुए बैठगये हों ! ॥ ६४ ॥ हे विश्वमूर्ते ! इस प्रकारका भीषण रूप धारण करके आप न जाने कौनसा कार्य करना चाहते हो ! परन्तु हे देव ! मैं निश्चित समझ रहा हूँ कि, मुझे यहाँ मरण ही प्राप्त हो रहा हो ! ॥६५॥ हे देव ! मैं नहीं समझता कि किस दुर्बुद्धिसे आपसे विश्वरूप दिखानेके लिये हट किया होगा, जिसका फल मुझे उचित ही प्राप्त हो रहा है ! हे महाराज ! मैंने आपका रूप देखलिया, मेरी आँखें अत्यंत तृप्त होगई ! ॥ ६६ ॥ अजी ! यह जड शरीर चलाजाय तो जाय, उसकी मुझे पर्वा नहीं, परन्तु यह चैतन्य भी रहता है या नहीं, इसका भी मुझे भरोसा नहीं आता ! ॥ ६७ ॥ कारण, यदि ऐसा न होता, तो भयसे शरीरमें कंप आजाता, अथवा क्षणैक मन भी संतप्त होजाता, किंवा बुद्धि भी डर जाती या अभिमान भी गलजाता, ॥ ६८ ॥ परन्तु इन सबोंसे भिन्न, सबोंसे परे, केवल आनन्दमूर्ति जो निश्चल अन्तरात्मा वह भी आज काँप उठता है ! ॥ ६९ ॥ साक्षात्कारका कैसा बडा प्रभाव है?मेरा सर्व ज्ञान आज लुप्तप्राय हो रहा है,परंतु गुरु-शिष्यसम्बंध भी टिकता है या नहीं, इसकी मुझे चिंता उत्पन्न हो रही है! ॥३७०॥ हे देव! हे प्रभो! आपके इस दर्शनसे मेरे अन्तःकरणमें जो दुर्बलता घुस रही है, उसे सँभालनेके लिये उसपर धैर्यका आच्छादन करनेकी इच्छासे जो उपाय करने जाता हूँ, ॥ ७१ ॥ तो मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि, मेरा धैर्य मुझे छोडगया हो ! उचित ही है, कारण उसने भी आपके विश्वरूपको देखा हो ! जो कुछ हो, सब आपकी ही इच्छा है । परन्तु मुझे आपने इसमें खूब उपदेश दिया और मैं भरपाया ! ॥ ७२ ॥ वह यही है कि, यह जीव बिचारा विश्रांतिकी इच्छासे इधर उधर दौड-धूप करता रहता है, परन्तु उसे कहीं भी मार्ग नहीं मिलता, ॥ ७३ ॥ इसप्रकार, इस विश्वरूपी महा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मारीमें मेरे समेत संपूर्ण चराचरका जीवन नष्ट हो रहा है ! हे देव ! यदि इसप्रकार हम न बोलें, तो बचें भी कैसे ? ॥ ७४ ॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

अजी ! महाभयंकर कोई अखंड घडा आंखोंके सामने फूटनेपर, जैसा वह भयानक दीखता रहता है, तद्वत् आपके ये प्रचंड मुख फैले हुए दिखाई दे रहे हैं ॥ ७५ ॥ और उनमें जो दांतों तथा डाढोंकी भीड हो रही है, वह होठोंके अंदर न समासकनेके कारण दोनों होठोंपर, मानों प्रलयकालीन शस्त्रोंकी चहुंओर बागुरसी बन रही है ॥ ७६ ॥ जैसे तक्षकको नया विष चढजाय, अथवा अंधेरी रातको जैसे भूतबाधाका संचार होजाय, किंवा अग्निअस्त्रको विद्युत्का पुट चढाया जाय, ॥ ७७ ॥ उसीप्रकार आपके इन भीषण-मुखोंमें भराहुआ आवेश बाहर उफान रहा है, जिससे यह प्रतीत होता है कि, हमपर ये मरणरूपी जलके प्रवाह ही आ रहे हैं ! ॥ ७८ ॥ विश्वसंहार-कालीन प्रचंड वायु और महाप्रलयाग्निका जब संयोग होजाता है, तब हे विश्वमूर्ते ! कौनसी चीज जलनेसे बच सकती है ? ॥ ७९ ॥ उसीप्रकार संहार करनेवाले ये आपके मुख देखनेपर, हमारा धैर्य भी हमें छोडकर क्यों न जायेगा ? और मुझे भ्रम भी हो रहा है तो उसमें भी क्या आश्चर्य ? परन्तु हे देव ! अब मेरी स्थिति ऐसी हो रही है कि, मुझे दिशाओंका भी ज्ञान नहीं रहा, इतना ही नहीं, किन्तु मैं स्वयंको भी जान नहीं सकता ! ॥८०॥ हे देव ! मैंने किंचित् मात्र आपके इस विश्वरूपका आँखोंसे दर्शन किया, तो मुझे सुखका अकाल हो रहा है, अब मेरी प्रार्थना है कि, यह आपका विश्वरूप आप समेटिये, समेटिये ॥ ८१ ॥ हे देव ! यदि मैं पहलेसे जानता कि, आप इसप्रकारसे मेरी दुर्दशा ही करेंगे, तो मैं ऐसी इच्छा भी क्यों करता ? हे प्रभो ! अब एकबार इस स्वरूपके प्रलयसे मेरे प्राण बचाइये, मेरे प्राण घबरा रहे हैं ॥ ८२ ॥ हे अनंत ! हे गुरुमहाराज ! यदि आप हमारे स्वामी हैं, तो मेरे प्राणोंकी रक्षा करें, और इस महामारीरूपी प्रलयाग्निके विस्तारको अब न बढावें ॥ ८३ ॥ हे सकलदेवोंके देव ! हे प्रभो ! सुनिये, आपने ही इस विश्वको अपने चैतन्यसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


निर्माण किया है, क्या इस बातको आप भूलगये ? और स्वयं ही उसका संहार करनेमें उद्यत हो रहे हो ? ॥ ८४ ॥ अतएव हे देवराज ! अब शांति धारण करो, कृपालु बनजाओ और इस मायाको समेटते जाओ । हे देव ! आप कृपाघन हैं, तो मुझपर भी शीतवर्षा करके इस महाभयसे मेरी रक्षा करो ॥ ८५ ॥ हे देव ! अबतक मैं कितनीबार दीनवाणीसे प्रार्थना कर रहा हूँ, हे दयाघन ! मैं बिलकुल बावला बनगया हूँ, मेरा रक्षण करो ॥ ८६ ॥ हे देव ! आपको स्मरण होगा, जब मैं अमरावतीपर चढाई करने गया था तब अकेला ही था, किन्तु मैंने उसे जीत लिया था । मैं कालके विकराल मुखोंसे भी कभी नहीं डरता था, ॥ ८७ ॥ परन्तु हे देव ! आजकी यह बात वैसी सीधी सादी नहीं, यह बात ऐसी है, आप सब विश्वका संहार करते हुए मृत्युको भी निगल रहे हो और साथमें मेरा भी कब घूँट होजाय, इसका भी मुझे पता नहीं रहेगा ॥ ८८ ॥ वास्तवमें विचार करनेपर, यह कोई प्रलयकालका समय नहीं आ रहा था, परन्तु न जाने बीचमें ही आप क्यों कालस्वरूप बन गये और यह बिचारा त्रिभुवनरूपी गोलक क्यों अल्पायु हो गया ! ॥ ८९ ॥ कुछ नहीं, मेरे दैवकी गति ही विपरीत चालसे चल रही है, कारण मैं तो शान्तिलाभका यत्न करने चाहता था और यहां तो महाभयंकर विघ्न ही खडा हो रहा है ! हाय ! हाय ! अब निश्चयसे विश्व-संहार होनेलगा ! भगवन् ! कृपानाथ ! यह क्या ? आप विश्वको ग्रसने लगे ! ॥ ३९० ॥ हे देव ! यह क्या मुझे दीखता नहीं है ? कि आप अपने असंख्य-मुखोंको पसार कर इधर उधर इस सेनाको निगल रहे हैं ? ॥ ९१ ॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥

ये कौरवकुलके वीर नष्ट हो रहे हैं, और ये अन्धे धृतराष्ट्रके पुत्र हे देव ! ये सब परिवारसमेत आपके मुखमें जा रहे हैं ॥ ९२ ॥ और इनके सहायक मित्रकी तौरपर जो देश-देशांतरोंके अनेक राजा आये हैं, उन्हें तो आप ऐसे निगल रहे हैं, जिनका नाम कहनेतक किसीको पीछे नहीं रख सकते हैं ॥ ९३ ॥ हे देव ! इन हाथियोंके समुदायोंको तो आप गट-गट पी रहे हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और उनके माहुतोंके समूहोंको आप लिपटा रहे हैं ॥ ९४ ॥ तोपें तथा और दूसरे मारकयंत्र, उसीप्रकार पैदलसमूह ये सब आपके मुखमें बोझे बनकर जा रहे हैं ॥ ९५ ॥ जो यमराजके भाई हैं, जो एक-एकही विश्वको ग्रस सकते हैं, ऐसे करोडों शस्त्रसमूह आप लीलासे निगल रहे हैं ॥ ९६ ॥ हे परमेश ! हे विश्वनाथ ! आपको इस बातमें क्या आनंद हो रहा है ? आपकी यह क्या प्रसन्नता है ? कि जो आप हाथी, घोडे, रथ, पैदल इत्यादि इस रणकी चतुरंगसेना तथा जिनमें घोडे जुते हैं, ऐसे सब रथ आप बिना दाँतोंसे ही स्वाहा कर रहे हैं ? ॥ ९७ ॥ हे देव ! सत्य और शूरतामें जिसकी बराबरी करे, ऐसा भीष्मके समान कौन है ? परन्तु उसे तथा आचार्यवर्य ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणको भी हाय ! हाय ! आपने निगल डाला ! ॥ ९८ ॥ हा ! कष्ट है ! अब यह सूर्यपुत्र जो वीरश्रेष्ठ कर्ण वह भी आपके मुखमें गया ! और हमारे पक्षके सब मुख्य मुख्य वीरोंको तो आप कचरा जैसे उडा रहे हैं ! ॥९९॥ हाय ! विधाता ! यह क्या परिणाम हो रहा है ? भगवन् ! क्या यह कृपाप्रसाद है ? अजी ! परमेश ! मैंनेही याचना कर विश्वरूप दर्शनके निमित्तसे बिचारे जगत्की मौत बुला लायी ! ॥ ४०० ॥ पहले मुझपर अनुग्रह करके देवने थोडी बहुत विभूतियां स्पष्ट करके कहदीं थीं, उसी मुआफिक यह भी रूप हो, इस इच्छासे मैंने आग्रह किया, ॥१॥ परंतु कहा जाता है कि भावी किसीसे टाली नहीं टलती, तद्वत् मेरा प्रारब्ध ही ऐसा है, और बुद्धि भी होनहार जैसी ही होती है ! आज सब लोग अपने मरणका दोष मेरे मत्थे मारेंगे, वह किस तरह टलनेवाला था ! ॥ २ ॥ पूर्वकालमें समुद्रमंथन करते करते देवोंको अमृत प्राप्त होगया, तथापि जब वे तृप्त न हुए, और अधिक इच्छा करने लगे तो आखिरी कालकूट विष ही उत्पन्न हुआ ! ॥ ३ ॥ परन्तु इस प्रसंगमें यह कालकूट भी कम ही गिना जायगा, कारण उसका प्रतिकार किसी तरह हो सकता था, इतना ही नहीं, किंतु श्रीशंकरने उसे प्राशन कर वह संकट भी दूर किया, ॥ ४ ॥ परन्तु यह जलती हुई अग्नि कौन बुझा सकता है ? यह कालकूटसे व्याप्त हुआ आकाश कौन निगल सकेगा ? महाकालके साथ झगडनेका किसका सामर्थ्य है ? ॥ ५ ॥ इस प्रकार शोकान्तःकरणान्वित अर्जुन मनमें दुःख कर रहा था, परन्तु श्रीकृष्णका उस प्रसंगका अभिप्राय वह न समझ सका ॥६॥ वह जो मोहसे कह रहा था, कि " मैं मारनेवाला" और " ये सब कौरव मरनेवाले हैं" इस मोहको हटानेके लिये ही, भगवान्ने यह गुप्त विराट्रूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दिखाया था ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने विश्वरूप-दर्शनके मिषसे अर्जुनको यह स्पष्ट कर दिखा दिया कि, अरे भाई संसारमें कोई किसीको मार नहीं सकता, मैं ही सबका संहार करता हूँ ॥ ८ ॥ परन्तु यह न समझनेसे वह वृथाही शोकाकुल हो गया था और इसी कारण उसका धैर्य छूट जानेसे वृथाही उसका कम्प अधिकाधिक बढ रहा था ॥ ९ ॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

और वह कहने लगा—देखिये देखिये, देव ! जिस प्रकार अभ्रपटल आकाशमें समाजाते हैं, तद्वत् आपके इस भीषण मुखमें दोनों ओरकी सेनायें तलवार तथा कवचोंके साथ एकदम समा रही हैं ! ॥ ४१० ॥ किंवा महाकल्पान्तसमयमें सृष्टिपर क्रुद्ध हुआ काल जैसा पातालोंके साथ एक्कीसों स्वर्गोंको लिपट लेता है, ॥ ११ ॥ अथवा प्रतिकूल दैववालेकी पाई पाई इकट्ठी की हुई धन-संपत्ति जैसी जहांकी तहाँ आपही आप नष्ट होजाती है, ॥ १२ ॥ उसी प्रकार शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित हुई दोनो तरफकी सेनायें आपके विशाल मुखमें विलीन होगई, परन्तु दैवकी गति भी ऐसी विलक्षण है कि, उस मुखसे एक भी वाहर नहीं आता ! ॥ १३ ॥ अशोकवृक्षके कोमल-पत्ते ऊंटके चबानेपर जैसे वे वृथा होजाते हैं, तद्वत् ये लोक आपके मुखमें प्रविष्ट हो नष्ट हो रहे हैं ॥ १४ ॥ मुकुटोंके समेत डाढोंकी कैचीमें मिले हुए ये शिर कैसे चूर्ण हो रहे हैं ! ॥ १५ ॥ और मुकुटोंके कई रत्न आपके दाँतोंके बीचके अवकाशमें अटक रहे हैं, कइयोंका चूर्ण होकर वह आपकी जिह्वाके अग्रभागमें चिपक रहा है, और कितनेक रत्न तो आपकी डाढोंकी नोकमें चिपक रहे हैं ॥ १६ ॥ ऐसा देखकर विदित होता है कि, विश्वरूपी कालने लोगोंके शरीर और बलको तो लील डाला है, परन्तु उनके देहकी छालको जान बूझकरही रख छोडी हो ॥ १७ ॥ उसी प्रकार इन शरीरोंमें जो उत्तमांग शिर थे, वे तो इस महाकालके रूपमें चले गये, और शरीर मानो निकम्मे समझकरही पीछे छोडदिये गये हों ! ॥ १८ ॥ फिर अर्जुनने कहा हे देव ! अब यही अनुमान किया जाता है कि, जो जन्म पाता है, उसे मरना तो निश्चित है, ऐसा विचार कर मानो जगत्, आपही आप आपके



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मुखरूपी दहमें प्रविष्ट हो रहा हो! ॥ १९ ॥ हे देव! ये सब सृष्टियें स्वयं ही आपके मुखमार्गका आक्रमण कर रही हैं और पास आतेही आप परमात्मा संहाररूपी महाकाल जहांके तहाँ खडे खडे ही स्वस्थतापूर्वक उन्हें लिपटा रहे हैं ॥ ४२० ॥ ब्रह्मदेवादि सब देव आपके ऊर्ध्वभागमें प्रविष्ट हुए दीख रहे हैं, और ये जो दूसरे साधारण वीर हैं वे तो, इसीपार आपके इस ठिंगणे मुखमें घुस रहे हैं ॥ २१ ॥ और ये दूसरे जो भूतप्राणी हैं वे तो जहाँ उपजते हैं, वहीं ग्रासित हो जाते हैं। परन्तु इन मुखोंके प्रवाहसे कोई भी छूट गया हो, यह कभी नहीं हो जाता है ॥ २२ ॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥

जिसप्रकार महानदियोंके प्रवाह अतिशीघ्रतासे समुद्रके विस्तारमें जा मिलते हैं, तद्वत् चहुँओरसे आकर जगत् इस मुखमें प्रवेश कर रहा है ॥ २३ ॥ तथा भूतप्राणी आयु-मार्गपर रातदिनरूपी सीढियां बनाकर बडे वेगके साथ इस मुखमें प्रविष्ट होनेके लिये पर्वणीकी साधना कर रहे हैं ॥ २४ ॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

जलती हुई पर्वतोंकी गुहाओंमें जैसे पतंगोंके झुंडके झुंड आ पडते हैं, तद्वत् ये सब लोक आपके मुखमें कूद रहे हैं ॥ २५ ॥ परन्तु हे देव! जिस प्रकार तपे हुए लोहेपर पानी गिरानेसे वह नामशेष होजाता है, तद्वत् आपके इस मुहमें जो जो गिरता है, उसका नाम गाम सब व्यवहारसे निकाल दिया जाता है ॥ २६ ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान् समग्रान् वदनैर्ज्वलद्भिः।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

और इतना भक्षण करनेपर भी इसकी भूँख तो यत्किंचित् भी कम नहीं होती ! न जाने वह कैसी तीव्रतर हो रही है? ॥२७॥ जैसे कोई रोगी ज्वरसे उठा हो, अथवा भिखमँगेके लिये अकाल आ खडा हुआ हो, तद्वत् होठोंको चाटती हुई जिह्वायें लपलपा रही हैं ॥२८॥ तथा आहारके नामका (भक्ष्य) इस मुखसे कुछ भी नहीं बचा ! न जाने यह कैसी आश्चर्यकारक अनोखी भूँख है ! ॥ २९ ॥ क्या समुद्रका एक घूँट लूँ या पर्वतका एक ग्रास करडालूँ अथवा इस सारे ब्रह्माण्डको ही डाढोंके बीच दबा लूँ ॥ ४३० ॥ किंवा इन सब दिशाओंको त्वरित निगल डालूँ अथवा सब तारागणोंको चाट लूँ । हे प्रभो, हे विश्वनाथ ! इस प्रकारकी आपके इस स्वरूपकी स्वाभाविक ही अतृप्ति दिखायी दे रही है ॥३१॥ जैसे विषय भोगते-भोगते कामवासना अधिकाधिक बढजाती है, अथवा बलती हुई अग्निमें काष्ठ डालनेसे जैसी वह अधिक ही भडकती है,तद्वत् खाते खाते आपके इस अतृप्त-मुखकी इच्छा ऐसी बढ रही है कि, जिसका पार ही नहीं ! ॥३२॥ यह यद्यपि एक ही मुख है, तथापि इतना बडा और विशाल है, मानो त्रिभुवन उसकी जीभकी नोकपर सहजहीमें रखा हुआ वडवानलमें कैथ ( कपित्थफल ) की मुआफिक भासमान हो रहा है ॥ ३३ ॥ इस प्रकारके आपके इस स्वरूपमें अनेक मुख हैं, परन्तु इनको खानेके लिये अनेक त्रिभुवन चाहिये, वे कहां हैं ? फिर ऐसी स्थितिमें आपने ऐसे विशाल असंख्य मुख किसलिये पसार रखे हैं ? ॥३४॥ हे प्रभो ! यह बिचारा जीवलोक आपकी प्रखर-वदनज्वालाओंसे ऐसा वेष्टित हो रहा है, जैसे दावाग्निके चहुँओर भडकनेपर मृग वेष्टित हो जाते हैं ॥३५॥ सांप्रत इस विश्वकी भी वैसी ही अवस्था हो रही है । यह देव नहीं, किन्तु यह कर्म-भोग ही प्रकट हो रहा है । मानो जगद्रूपी मछलियें कालरूपी जालमें फँस रही हैं ! ॥ ३६ ॥ अब ऐसी चिन्ता उत्पन्न हो रही है कि, इस विश्वरूपकी अंगप्रभाके पाशसे ये चराचर कैसे मुक्त हो सकेंगे ? अजी ! ये विश्वरूपके मुख नहीं, किन्तु चराचरको जलानेके लिये ये लाक्षागृह ही उत्पन्न हुए हैं ! ॥ ३७ ॥ अपनी प्रखर उष्णतासे कैसी दाह होती है, यह बात अग्नि स्वयं नहीं जानती, परन्तु वह दाहकता जिसे लगती है, वह तो मृत्युको ही प्राप्त होता है, कारण उसे कोई दूसरा उपाय ही नहीं रहता ॥ ३८ ॥ अथवा अपनी पैनी धारकी तीक्ष्णतासे दूसरोंके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्राण निकल जाते हैं, यह बात क्या शस्त्र कभी जानता है ? किंवा विषको भी अपने मारक-गुणका जैसे अनुभव नहीं रहता, ॥ ३९ ॥ उसी प्रकार हे प्रभो ! आपको भी अपनी भीषण-तीव्रताकी किंचित् भी सुधि नहीं है, परन्तु आपके इस ओरके मुखमें तो विश्वकी खाँइयां भर रही हैं ! ॥४४०॥ हे देव ! यदि आप सर्व-विश्वव्यापक तथा सब विश्वके आत्मस्वरूप हैं, तो आज काल-जैसे घातक बनकर हमपर क्यों उछल रहे हैं ? ॥४१॥ हे प्रभो ! अब ऐसे प्रसंगमें मैं भी अपने जीवितकी आशा छोड देता हूँ और आप भी किसीतरहका संकोच न कर, जो अपने मनमें हो, उसे स्पष्ट और निश्चित कह दीजिये ॥ ४२ ॥ अजी ! आप अपना यह उग्र रूप और कितना बढाना चाहते हैं ? आपका विश्वपालकत्व जरा ध्यानमें लाइये, निदान कुछ न हो तो, एक मुझपर तो कृपा करिये ॥ ४३ ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
नहि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

हे वेदोंसे जानने योग्य, त्रिभुवनके एकही आदिकारण, हे सर्वविश्ववंद-नीय ! एकवार आप मेरी विनती सुनिये ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कहकर उस पार्थने श्रीकृष्णके चरणोंपर मस्तक रखकर नमस्कार किया, और वह कहने लगा—" अजी सर्वेश्वर भगवन् ! मेरी बात सुनिये ॥ ४५ ॥ मैंने अपने अन्तःकरणके समाधानके वास्ते विश्वरूपका ध्यान पूछा, और आप तो संपूर्ण त्रिभुवनको निगलनेके लिये ही तयार हो रहे हो ! ॥ ४६ ॥ तो आप ऐसे ये कौन हैं ? ये इतने भयानक और विस्तीर्ण मुख आपने क्यों इकट्ठे किये हैं ? और इन सब हाथोंमें आपने ये शस्त्र किसलिये पकड रखे हैं ? ॥ ४७ ॥ अजी ! जब देखो तब आप क्रोधसे बढते बढते आकाशको भी नीचा कर देते हो, और ऐसे ये लाल-नेत्र बनाकर हमें क्यों डरा रहे हैं ? ॥ ४८ ॥ हे देव ! सांप्रतकालमें आपने यमके साथ स्पर्धा करनेकी क्यों ठानी है ? हे प्रभो ! आपके ऐसे कृत्योंका जो अभिप्राय हो, वह हमें बता दीजिये " ॥ ४९ ॥ इसपर अनंतस्वरूप श्रीकृष्णने कहा—" मैं कौन हूँ और ऐसी उग्रतासे क्यों बढ रहा हूँ, यह पूछनेकी ही तेरी इच्छा है न ? ॥४५०॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रीभगवानुवाच ।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

अच्छा, तो अब सुनो । मैं तो सचमुच काल ही हूँ और लोकसंहारके लिये ही बढ रहा हूँ । और हे अर्जुन ! चहुँओर जो मैंने विशाल मुख फैला रखे हैं, उनमें सब चराचर विश्वको अब मैं ग्रस लूँगा " ॥ ५१ ॥ ऐसी बात सुनतेही अर्जुन मनमें कहने लगा, हाय ! हाय ! ! बडा कष्ट है ! पिछले संकटसे डरकर घबराते हुए जो मैंने इनकी प्रार्थना की, तो अब यह तो उस संकटपरही मात कर रहा है ! अब क्या किया जाय ? ये तो दुष्टतासे और ही उछल रहे हैं ! ॥ ५२ ॥ परन्तु ऐसे शब्दोंसे अर्जुन घबडाकर निराश और दुःखी होगा, ऐसा विचारकर श्रीकृष्णने उसी समय कहा, हे किरीटी ! इसमें और एक निराली ही बात है ॥ ५३ ॥ वह यह कि, इस मेरे संहार-कृत्यसे तुम पाण्डव बाहर हो । इतना सुनते ही अर्जुनके मनमें थोडा धैर्य आया और जानेवाले प्राण अब बच जायँगे, ऐसा उसे विश्वास आया ॥ ५४ ॥ कारण वह तो अपनेको मृत्युके हाथमें ही पडा हुआ समझ रहा था, परन्तु अब उसे चेतना आयी और वह फिर भगवान्के वचनोंपर ध्यान देने लगा ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णने कहा, हे अर्जुन ! ध्यान रखो तुम पाण्डव मेरे प्रिय हो, इसलिये तुम्हारे अतिरिक्त और जितने यहां हैं, उन्हें ग्रसनेके लिये ही मैं सिद्ध हो रहा हूँ ॥ ५६ ॥ भयंकर वडवाग्निमें जैसी माखनकी गोली डाली जाय, तद्वत् तुम्हारा देखा हुआ सब जगत् मेरे मुखमें पडा हुआ है, यह आज तुमने प्रत्यक्ष देखा है ॥ ५७ ॥ इसमें किसी प्रकारकी शंका मत करो, यह सब सत्य है । ये जो सैन्य अपने अपने भरोसे वृथा वलगना कर रहे हैं, वे सब निरर्थक हैं ॥ ५८ ॥ और इस चतुरंगिनी सेनाका सामर्थ्य या उसके वीरोंका पराक्रम-मद केवल महाकालके साथ ही स्पर्धा कर रहा है, ॥ ५९ ॥ वे अपने घमंडसे जो गरज रहे हैं कि " हम प्रतिसृष्टि निर्माण कर सकेंगे, प्रतिज्ञापूर्वक सब मिलकर मृत्युको ही मार डालेंगे, अथवा इस सारे विश्वको एक ग्रासमेंही लील डालेंगे, ॥ ४६० ॥ अथवा संपूर्ण पृथ्वीको निगलते हुए इस आकाशको ऊपरके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ऊपर ही जला डालेंगे और इधर उधर दौडनेवाले वायुको बाणोंसे एकही स्थानमें रोक डालेंगे" ॥ ६१ ॥ इसप्रकार अनेक तरहसे वल्गना करनेवाले ये सैन्यसमूह जो अपनी घमंडमें आकर, यमको भी कुछ नहीं समझते हुए अपनेही बलको बखान रहे हैं, ॥ ६२ ॥ देखनेमें तो इनके ये शब्द शस्त्रोंसे भी तीक्ष्ण प्रतीत हो रहे हैं, उनकी मुद्रायें अग्निसरीखी दाहक दिखाई दे रही हैं और मारनेमें तो कालकूट-विषको भी मधुर कहलावेंगे ॥ ६३ ॥ परन्तु ये सब आकाशके पोलेपनके बने हुए प्रासाद ही समझो, अथवा ये वीर मानो चित्रमें लिखे हुए पुतले ही हैं, ॥ ६४ ॥ हे अर्जुन ! इसको तुम ऐसा समझो कि यह एक तरहकी मृगजलकी बाढ आई है, यह सैन्य-समूह नहीं, किन्तु यह कपडेका बना हुआ सर्प ही है, अथवा कोई समझदारकी सिंगारी हुई गुडियां ही खडी की हैं ॥ ६५ ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

हे पार्थ ! इस सैन्यमें जो विशेष जोरदार तथा चेष्टा करनेवाले वीर हैं उनका बल तो मैंने पहले ही हरलिया है । अब जो ये तुम्हें दीख रहे हैं वे मानो कुम्हारके बनाये हुए निर्जीव पुतले हैं ! ॥ ६६ ॥ अपनी बुद्धिसे सूत्रोंपर नचानेवाले पुतलियोंको नचाते नचाते यदि उसकी डोरी कोई बीचमें तोड डाले तो जैसी खंभेपरकी पुतलियां उलट पुलट गिर पडती हैं, ॥ ६७ ॥ तद्वत् इस सैन्यको उलटानेमें किंचित् भी विलम्ब नहीं लगेगा । इसलिये हे पार्थ ! तुम उठो, उठो और अपनी बुद्धिमत्ता दिखानेके लिये भ्रमको दूर करके अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ६८ ॥ हे पार्थ ! तुमने विराट्नगरीमें गो-ग्रहणके समय एकदम मोहनास्त्रका प्रयोग कर, सर्व कौरव-सैन्यको मूर्छित किया और डरपोक विराट्पुत्र उत्तरके द्वारा उनके वस्त्र भी हरण किये, ॥ ६९ ॥ परन्तु, यह कार्य तो उससे भी सीधा है, कारण यह सैन्य तो पहले ही मरा हुआ-बिना-प्राणका-ही यहां खडा है । इसलिये, इन सबका तुम संहार करो और 'अकेले अर्जुनने ही, सब सैन्यको मारडाला' ऐसी विजय-पताका फहराते हुए यश सम्पादन करो ॥४७०॥ और हे पार्थ ! यह यश, केवल यश ही नहीं है, किंतु साथमें समस्त राज्य भी हाथ आने-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वाला है। इसलिये, हे सव्यसाचिन्! इस कार्यमें तुम केवल निमित्तमात्र बन जाओ ॥ ७१ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युद्ध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

द्रोणकी पर्वा मत करो, भीष्मका भी मनमें डर न मानो, तथा इस कर्ण-पर मैं कैस शस्त्र चलाऊं, इसकी जरा भी शंका न करो, ॥ ७२ ॥ और यह किंचित् भी मनमें मत लाओ कि, इस जयद्रथको कैसा मारा जाय? और दूसरे जो प्रख्यात वीर हैं, ॥ ७३ ॥ हे अर्जुन! उन्हें तुम ऐसा समझ रखो कि, ये केवल चित्रके लिखे हुए प्रचंड सिंह हैं! जिन्हें तुम अपने गीले हाथोंसे पोंछ डाल सकोगे ॥ ७४ ॥ हे पाण्डव! हे पार्थ! इस तरहका यह सब सैन्य-समुदाय यहां है, क्या इसमें किसी तरहका महत्त्व है? अरे, यह तो केवल आभास है, जो कुछ इसमें महत्त्व था वह तो मैंने पहले ही ग्रस डाला है ॥७५॥ अजी! जब तुमने इन वीरोंको मेरे मुखमें गिरे हुए देखा था, उसी समय इनकी आयु समाप्त हो चुकी है, अब ये जो यहां तुम्हें दिखाई देते हैं वे तो निरे निःसत्त्व तुष-सरीखे हैं ॥७६॥ अतएव, तुम अब शीघ्र उठो और मैंने जिन्हें पहले ही मार रखा है उन्हें मारो और मिथ्या भ्रमसे जो तुम शोक-संकटमें पडे हो, उस शोकको हटा दो ॥ ७७ ॥ हे पार्थ! जैसे खेलमें आपही निशाना बनाकर उसको लक्ष्य करके अपने ही बाणसे गिराया जाता है, वैसी ही स्थिति यहां हो रही है, अर्थात् मैंने सब कुछ तो करही रखा है, तुम्हें केवल निमित्त-साधन बना दिया जाता है ॥ ७८ ॥ हे सखा, पार्थ! तुम्हारे जो विरुद्ध थे, वे तो जन्मते ही नष्ट हुए या उन्हें बाघ ले गया समझो; अब जिसमें सब तरहसे राज्य-सुख ही भरा हुआ है, ऐसे सुयशको तुम भोगो ॥ ७९ ॥ जो तुम्हारे दायाद (भाईबन्धु) स्वभावतः ही उन्मत्त हो रहे थे, और अपने बलके घमंडमें आकर, विश्वको जो अपनी अजेयता दिखा रहे थे, उन्हें हमने अनायास ही मार डाला है ॥ ४८० ॥ हे किरीटी! अब तुम ये बातें (अर्जुन विजयी हुआ) विश्वके वाणीरूपी पटपर लिख रखो और सुयश संपादन करता हुआ विजयी हो जाओ ॥ ८१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

ज्ञानदेव कहते हैं–हे श्रोतागणो ! इस प्रकार यह सब कथा, संजयने निराश हुए कौरवपति धृतराष्ट्रसे निवेदन करदी ॥ ८२ ॥ फिर सत्यलोकसे निकली हुई गंगाजी जिसप्रकार अपने प्रचंड-वेगसे खलबलाती हुई नीचे आती है, तद्वत् श्रीकृष्ण जब ऐसे वचन बोले, ॥ ८३ ॥ अथवा जैसे मेघ-समूह एकाएक ऊपर आकर अपनी भयंकर गर्जना करते हैं, किंवा मंदराचलके मंथनसे क्षीराब्धिसे जैसी मंथनकी गंभीर आवाज आती है, ॥ ८४ ॥ उसीप्रकार विश्वबीज अनन्तरूपी श्रीकृष्णने बडे गंभीर महाशब्दसे जो वचन कहे, ॥ ८५॥ उन्हें अर्जुनने सुना हो, या न सुना हो, इतनी अल्पावधिमें उसे जो कुछ दुगुना सुख या भय होगया, यह निश्चित कहा नहीं जाता ! परन्तु उसका संपूर्ण अंग थरथर काँपने लगा था, ॥ ८६ ॥ और उसका शरीर भगवान्‌के आगे ऐसा लीन होगया, मानो अर्जुनके शरीरकी पोटलीसी बनगयी थी । अर्जुन हाथ जोडकर श्रीकृष्णके चरणोंपर बारबार अपना मस्तक झुका रहा ॥ ८७ ॥ फिर, अब कुछ बोलूं, ऐसी इच्छा उसे हो रही थी, परन्तु उसका कंठ ऐसा भर आया कि, मुखसे शब्द ही नहीं निकलता ! ऐसी स्थितिमें अर्जुनको सुख हुआ हो, या भय इसका आपही विचार कीजिये ॥ ८८ ॥ इसपर यह शंका उपस्थित होती है कि मुझ ( ज्ञानदेव ) को यह कैसा विदित हुआ होगा ? तो श्लोकके पदोंसे मैंने पहचाना था कि, श्रीकृष्णके बचनसे अर्जुनकी ऐसी दशा हुई होगी ॥ ८९ ॥ फिर वह अर्जुन डरते-डरते नमस्कारपूर्वक हाथ जोड, भगवान्‌से कहने लगा–"हे देव ! हे विश्वमूर्ते ! आपने ऐसा कहा है कि, ॥ ४९० ॥

अर्जुन उवाच ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यंति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



"हे अर्जुन ! मैं काल हूँ और इस विश्वका ग्रास करना मेरा खेल है" हे देव ! आपकी यह वाणी हम निश्चयसे अन्तःकरणमें सत्य मानते हैं, ॥९१॥ परन्तु, हे देव ! हे जगदाधार ! आपकी यह बात हमारी बुद्धिमें ठीक नहीं जँचती कि, आज विश्वकी स्थिति ( अस्तित्व ) का काल रहते तथा प्रलयका कुछ भी संबंध न होते हुए भी आप विश्वका ग्रास करनेके लिये ऐसे कालस्वरूप क्यों प्रगट हो रहे हो ? ॥ ९२ ॥ क्या शरीरके तारुण्यको निकालकर उसकी जगह कोई वार्धक्यको भरना चाहता है ? हे देव ! यह कैसा उचित होगा अतएव आप कहते हैं, वैसी बात होना प्रायः असंभवसा जान पडता है ॥ ९३ ॥ हे अनंतस्वरूप ! हे विभो ! ऐसा भी कभी हो सकता है कि,चार प्रहर पूरे होनेके पहले मध्याह्न ( दो प्रहरों ) में ही सूर्यका अस्त होगया ? ॥ ९४ ॥ वास्तवमें विचारनेपर आप अखण्डित कालस्वरूप हैं, और आपके भिन्न-भिन्न कार्योंके तीन समय भी आपने नियत कर रखे हैं, जो अपने अपने समयमें ही सर्वसमर्थ रहते हैं ॥ ९५ ॥ जिस समय उत्पत्ति होती है, तब स्थिति और प्रलय ( नाश ) का अभाव रहता है, तथा स्थिति-कालमें उत्पत्ति और प्रलयका लोप होजाता है ॥ ९६ ॥ पश्चात् जब प्रलयका समय आता है, तब उत्पत्ति तथा स्थितिका लोप होजाता है। एवं यह जो अनादिकालसे परिपाटी चल रही है, इसमें कभी किसीप्रकारका अन्तर नहीं हो जाता ! ॥ ९७ ॥ फिर, संप्रति तो विश्वका स्थितिकाल है और वह सब तरहके योगोंसे भरा हुआ है, ऐसी अवस्थामें उसे ग्रसनेको आप क्यों तयार हो रहे हो ? हे देव ! यह बात हमें उचित नहीं जान पडती, या हमारी बुद्धिमें नहीं जँचती ॥ ९८ ॥ तब श्रीकृष्णने संक्षेपमें संकेतद्वारा सूचित किया कि, हे पार्थ ! तुम्हें हमने प्रत्यक्ष दिखा दिया है कि, इन दोनों सेनाओंकी आयु समाप्तिपर आ रही है, और दूसरे लोगोंका मरण यथाकालमें ही होजायगा, यह सत्य समझो ॥ ९९ ॥ श्रीकृष्णको ये शब्द उच्चारनेमें जितनी देरी हुई थी, उतनी ही देरीमें अर्जुनने फिरसे वह सब विश्व पूर्ववत् देखा ॥ ५०० ॥ तब वह कहने लगा कि, हे देव ! आप इस विश्वके नाटक करनेवाले सूत्रधार हैं, यह जगत् फिर अपनी पूर्व-स्थितिको प्राप्त होगया ! ॥ १ ॥ हे श्रीहरि ! आपकी यह कीर्ति तो विख्यात ही है, कि आप दुःख-सागरमें डूबे हुओंको बाहर निकालते हैं, उस कीर्तिका स्मरण मुझे आज हो रहा है ॥ २ ॥ और आपकी कीर्तिका बार बार स्मरण करता हुआ मैं आनंदामृतका अनुभव कर रहा हूँ और उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आनंदसागरकी तरंगोंपर लोट-पोट हो रहा हूँ ! ॥ ३ ॥ हे देव ! यह जगत् जीवदान मिलनेके कारण, आपमें प्रेमासक्त दिखाई दे रहा है और दुष्ट लोग आपही आप अधिकाधिक नष्ट हो रहे हैं ॥ ४ ॥ हे हृषीकेश ! त्रिभुवनके दुष्ट राक्षसोंके लिये आप बडे महाभयानक दिखाई देते हैं, इसलिये वे दशों-दिशाओंमें भागना चाहते हैं ॥ ५ ॥ और आपके पास इधर-उधर खडे हुए ये देव मानव, किन्नर, सिद्ध किंबहुना सब चराचर विश्व समेत आपके दर्शनसे आनंदित हो, आपको बार बार नमस्कार कर रहे हैं ॥ ६ ॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनंत देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

परन्तु, हे देव ! ये राक्षस आपके चरणोंमें लीन न होकर क्यों भाग रहे हैं ? ॥ ७ ॥ वास्तवमें यह बात आपसे पूँछनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, कारण हमें भी यह ज्ञात होना चाहिये था कि, सूर्यके उदय होनेपर अंधकार कैसे रह सकताहै ? ॥ ८ ॥ हे ज्योतिष्मन् ! आप प्रकाशका उत्पत्तिस्थान हैं और हमारी दृष्टिमें प्रत्यक्ष हो रहे हैं, फिर यह निशाचररूपी अँधेरा आपही आप मिटगया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ९ ॥ हे श्रीराम ! इतने दिनोंतक आपकी इस बातका हमें यत्किंचित् भी ज्ञान नहीं रहा था, परन्तु हे विश्वभावन ! हे देव ! आपकी यह गंभीर महामहिमा आज हमें पूर्णतया अनुभूत हो रही है ॥ ५१० ॥ जिससे इस विविध-सृष्टिकी पंक्तियां निकलती रहती हैं, जिससे भूतसमुदायरूपी वेलें विस्तारको प्राप्त होती हैं, वह विश्वबीज महद्ब्रह्म आपकी इच्छाके संकल्पसे ही उत्पन्न हुआ है ॥११॥ हे देव ! आप अमर्याद और स्वयंसिद्ध तत्त्वसे परिपूर्ण हैं । हे देव ! आप निस्सीम और अनंत-गुणोंसे भरे हुए हैं तथा साम्यावस्थाके आप स्तम्भरूप हैं और संपूर्ण देवताओंके आराध्यदेव आप ही हैं ॥ १२ ॥ हे देव ! आप तीनों भुवनोंके जीवन हैं, आपही अविनाशी और नित्य हैं । हे सदाशिव ! आप मंगलस्वरूप हो, तथा सत् और असत् भी आप हैं, किन्तु उससे परे जो वस्तु है, हे देव ! वह भी आपही हैं ॥ १३ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनंतरूप ॥ ३८ ॥

हे अनन्त ! प्रकृति और पुरुषका आदिस्थान आप ही हैं, हे देव ! महत्तत्त्वकी सीमा आप ही हैं और आप स्वयंसिद्ध, पुरातन और अनादि हैं ॥ १४ ॥ हे देव ! आप सब-विश्वके जीवन तथा आदिकारण हैं और भूत-भविष्यका ज्ञान केवल आपके ही हाथ रहता है ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! आपके स्वरूप-दर्शनसे ही श्रुतियोंके लोचन सुखी होते हैं, ऐसे भेदरहित केवल आप ही हैं। संपूर्ण त्रिभुवनके आश्रयस्थानोंके आश्रयस्थान आपही हैं ॥ १६ ॥ अतएव आपको 'परम तथा महाधाम' कहा जाता है। अजी ! कल्पान्तसमयमें महद्ब्रह्मतत्त्व ( महामाया ) आपमें प्रविष्ट हो लीन होजाता है ॥ १७ ॥ किंबहुना-अर्थात् थोडेमें कहा जाय, तो ऐसा ही कहना पडे कि, यह सब विश्व आपने निर्माण कर उसका विस्तार भी आपने ही कर रखा है। अतएव हे देव ! हे विश्वाधार, अनंत ! आपका वर्णन कौन और कैसे कर सकता है ? ॥ १८ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

हे देव ! आप अकेले जिसमें नहीं हो, क्या ऐसी कोई वस्तु भी है ? आप क्या नहीं हैं ? किस स्थानमें नहीं हैं ? परन्तु अब बहुत नहीं कहता हूँ, आप जैसे हों, वैसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १९ ॥ हे अनन्त ! आप वायु हैं, सबका नियंता आप यम हैं और प्राणीमात्रमें रहनेवाला जठराग्नि भी आप ही हैं ॥५२०॥ हे भगवन् ! वरुण, सोम, सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव आप ही हैं और उस पितामह-ब्रह्मदेवके भी आद्य-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जनक और सर्वश्रेष्ठ आप हैं ॥ २१ ॥ हे जगन्नाथ ! इसके अतिरिक्त जो जो कुछ साकार वा निराकार आपका रूप हो, उस रूपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥ इस प्रकार प्रेमसे भरे अन्तःकरणपूर्वक पार्थने नमस्कार किया और फिर बोला, " हे प्रभो ! मैं आपको वन्दन करता हूँ, वंदन करता हूँ " २३ ॥ पश्चात् उस श्रीकृष्णकी मूर्तिका आपादमस्तक ध्यानके साथ अवलोकन कर फिर पार्थ बोला ' नमस्ते नमस्ते' ॥ २४ ॥ उस मूर्तिके प्रान्त-प्रान्तके अलग अलग अवयव देखते देखते अर्जुनके मनमें समाधान होगया और वह बारबार कहने लगा हे प्रभो ! ' नमस्ते नमस्ते' ॥ २५ ॥ इस चराचर विश्वके जीवोंको उस मूर्तिमें देख, फिर अर्जुन कहने लगा, हे प्रभो ! ' नमस्ते नमस्ते' ॥ २६ ॥ इस प्रकार प्रभुके अनन्त और अद्भुत-रूप ज्यों ज्यों आश्चर्यसहित उस मूर्तिमें अर्जुन देखने लगा तो बारवार नमस्ते नमस्ते ही कहता जाता था ॥ २७ ॥ उस समय अर्जुनकी ऐसी स्थिति भयी कि, प्रभुकी कैसी स्तुति की जाय यह स्मरण उसे नहीं होता था, इतना ही नहीं वरन् प्रेमभरमें क्या कह रहा हूँ, इसकी भी उसे सुधि न रही ॥२८॥ तात्पर्य, अर्जुनने उस समय हजारोंबार प्रभुको नमन किया तथापि कह रहा था, हे श्रीहरि ! मैं आपके सम्मुख हो नमस्कार करता हूँ ॥२९॥ आपको आगा-पीछा है या नहीं, इस बातकी हमें क्या आवश्यकता है ? तथापि हे देव ! मैं आपको पीठकी ओर भी नमस्कार करता हूँ ॥ ५३० ॥ हे अनन्त ! आप मेरी पीठपर खडे हैं ( सँभालनेवाले हैं ) इसलियें आपको ' पिछले ' कहता हूँ, परन्तु, वस्तुतः आप न जगत्के आगे हैं न पीछे हैं, या कहां हैं यह भी नहीं कहा जाता ! ॥ ३१ ॥ हे देव ! आपके अलग अलग अवयवोंके रूप-भेदका मैं वर्णन नहीं कर सकता, अतएव हे सर्वरूपिन् ! सर्वात्मक-प्रभो ! मैं सबको एकसाथ नमस्कार करता हूँ ॥३२॥ हे अनंत ! हे अनन्तबलप्रभाववान् ! हे अपरिमित-पराक्रमी ! हे भेदभावरहित ! हे सर्व-कालसमान-सर्वव्यापी ! आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ संपूर्ण आकाशको व्याप्तकर अवकाशरूपसे जैसे आकाश ही रहता है तद्वत् आपही सबमें व्याप्त होकर सर्वत्वसे सबमें प्रकटरूप हुए हैं ॥ ३४ ॥ किंबहुना, हे देव ! आपही यह सब विश्व हैं जैसे क्षीरसागरमें दूधके ही तरंग उछलते रहते हैं, उसी प्रकार यहां आपका ही संबंध सर्वत्र भरा हुआ है ॥ ३५ ॥ अतएव हे देव ! मुझे यह प्रतीति हो रही है कि, इस विश्वके किसी भी पदार्थसे आप भिन्न नहीं हैं, इस लिये यह सब आप ही हैं ॥ ३६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥

परन्तु, हे महाराज ! हे स्वामिन् ! आपका यह स्वरूप हमें कभी ज्ञात न हुआ था, इसलिये हम आजतक आपके साथ सगे-सम्बन्धीके नातेसे व्यवहार करते रहे ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! यह कितना बडा भारी प्रमाद होगया ! कि अमृतको आँगन-सींचनेके काममें उपयोग किया ! अथवा कामधेनुके बदलेमें घोडा ले लिया ! ॥३८॥ पारसमणिका पर्वत हाथ आ रहा था; उसे फोडतोडकर हमने मानो घरकी पैंडीमें बिठा दिया अथवा कल्पवृक्षको तोडकर खेतीके लिये वागुर बना दी ॥ ३९ ॥ किंवा चिन्तामणिकी खानि हाथ आयी थी, परन्तु उसकी परीक्षा न होनेके कारण, उसके पत्थरोंसे जानवरोंको मारनेका काम हमने किया हो, हे परमात्मन् ! वैसे ही आपके सान्निध्यका लाभ प्राप्त होनेपर भी अज्ञानसे हमने उसे हेलमेलमें खोदिया ! ॥ ५४० ॥ और तो रहने दो, यह आजका युद्ध-प्रसंग ही देखिये, विचार करनेपर यह कितनीसी बात है ? परन्तु हे प्रभो ! हमलोगोंने आपको इसमें सारथी बना दिया है ! ॥ ४१ ॥ हे जगदीश्वर ! इन कौरवोंके घर आपको बसीठ बनाकर हमने भेजा था, हे प्रभो ! इस तरह आपको न जानकर हमने अपने कार्यमें आपको मानो मोल लिया हो ऐसा आपका उपयोग करदिया ! ॥ ४२ ॥ अजी दयानिधे ! मुझ मूर्खको इतना ही ज्ञान न हुआ कि, आप योगिजनोंके समाधिसुख हैं। हे देव ! आजतक हमलोग आपके समक्ष कैसी कैसी ठट्ठा-मस्करीकी बातें करते रहे ! ॥ ४३ ॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

आप इस विश्वके अनादि स्वयंसिद्ध बीज हैं, परन्तु इस योग्यताको न जानकर, आप जिस सभामें बैठते थे, वहां मैं सगे-सम्बन्धके नातेसे आपसे ठट्ठा विनोदकी बातें करता था ॥ ४४ ॥ जब कभी आपकी द्वारका-नगरीमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आपके मंदिरमें आता तो वहां आपसे मान-सम्मान भोगता था, परन्तु यदि आपसे सम्मानमें कभी कमी हुई हो तो, आपपर मित्रकी तौरसे या घरू-संबंधसे क्रोधकर रूठ जाता था ॥ ४५ ॥ हे शार्ङ्गपाणे ! हे विभो ! आज-तककी हमारी ऐसी कर्तूत है कि, जिसके कारण आपके चरणपर नम्र होकर लज्जाके कारण चुपचाप रहना ही उचित है ॥४६॥ हे देव ! अपनेको स्नेही, संबंधी समझकर आपके सामने हमलोग मनमाने पीठ फेरकर भी बैठ गये हैं । हे वैकुण्ठपते ! क्या ये बातें हमें उचित थीं ? कभी नहीं, हे देव ! यह हमारी बडी भारी भूल हुई है ॥ ४७ ॥ हे देव ! हमलोग आपके साथ अनुचित खेल भी खेल रहे, अखाडोंमें आपके साथ झूमाझूमी लडते थे, चौपड खेलते समय कई खोटे घर चुराते थे, और फिर बडे अभिमानके साथ आपसे ही झगडते थे ॥ ४८ ॥ कोई भी अच्छी वस्तु आपके पास देखी जाय तो तुरंत उसे माँगते थे, और तो जाने दो, हे देव ! कईवार हमने आप सर्वज्ञको भी सिखानेमें कुछ विचार नहीं रखा था ! हाय ! हाय! यह भी कहनेमें त्रुटि न की कि, " क्या हम तुम्हारे लागनदार हैं ? " कैसी अनुचित बातें हैं ! ॥ ४९ ॥ हे दयानिधे ! हमारा यह अपराध इतना बडा है कि, त्रिभुवनमें भी नहीं समा सकेगा । परन्तु हे देव ! आपके चर-णकी सौगन्ध खाकर मैं कहता हूँ कि,यह सब अज्ञानके कारण ही हो रहा था ॥५५०॥ हे भगवन् ! जब आप भोजनके समय मेरा स्मरण कर पुकारते, तो वृथाभिमानी मैं रूठही बैठता था ! ॥५१॥ हे देव ! कैसा स्मरण करूं ? देखिये आपके आरामगृहमें निःशंकतासे खेलते थे और आपकी शय्यापर आपके पास ही सोया करते थे ॥ ५२ ॥ हे देव ! आपको साधारण-मनु-ष्यकी तरह समझ ' कृष्ण ' कहकर पुकारते थे, आपको साधारण यादवों-सा ही मानते थे और हमारी बात न मानकर आप जाने लगते तो आपकी ही सौगन्ध लगाकर पीछे फेरते थे ॥ ५३ ॥ आपके पास एकही आस-नपर बैठना, आपके शब्दको न मानना, इत्यादि कई बातें आपके साथ घरू-व्यवहारके नातेसे चलनेमें मेरे हाथसे हो गयी हैं ! ॥ ५४ ॥ हे देव ! हे अनंत ! ऐसे कई प्रकार या प्रमाद हो रहे हैं, जिनका निवेदन करना भी कठिन है । हे प्रभो ! मैं सर्व अपराधोंका राशि हूँ ॥ ५५ ॥ अतएव हे प्रभो ! आपके समक्ष या अपरोक्ष जो कुछ अनुचित आचरण मैंने किया होगा, उन अपराधोंको माताके समान आप पेटमें रखते हुए मुझे क्षमा करिये॥५६॥ देखिये भगवन् ! किसी समय नदियें भी कीचडभरा गँदला पानी ले आती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हैं, तो समुद्रको उनका भी स्वीकार करना पडता है, कारण नदियें दूसरी जगह कहां जा सकती हैं ? ॥ ५७ ॥ उसी प्रकार मैंने प्रेमसे या प्रमादसें जो जो आपके विरुद्ध आचरण किया होगा, हे मुकुन्द, हे प्रभो ! आप उसे अपनी क्षमाशीलतासे सहन करियेगा ! ॥ ५८ ॥ और हे देव ! आप क्षमावान् हैं, इसीलिये तो यह क्षमा ( पृथ्वी ) सहनशीलवती हो, सब भूतप्राणियोंको आधारभूत हो रही है । अतएव हे देव ! हम आपकी जितनी विनती करें वह आपके लिये थोडी ही है ॥५९॥ अतः, हे अतर्क्य ! हे अप्रमेय ! मैं सर्व भावोंसे आपकी शरण हूँ; आप मुझे अपराधीको क्षमा कीजिये ॥ ५६० ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३ ॥

हे देव ! हे अनंत ! अब आपका प्रभाव मैंने अच्छीतरह पूर्णतया जान लिया । हे देव ! आप इस स्थावर-जंगम संपूर्ण चराचरके मूल-बीज हैं ॥६१॥ हे देव ! हरिहरादि संपूर्ण देवोंका परम दैवत आपही हैं और वेदोंको सिखानेवाले ( ज्ञानदाता ) आद्यगुरु आप ही हैं ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! हे श्रीराम ! आप सब भूतप्राणियोंमें समभावसे व्यवहार करनेवाले हैं, आप संपूर्ण-गुणोंमें अनुपम और अद्वितीय हैं ॥ ६३ ॥ आपके समान और कुछ भी नहीं है, यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? कारण आप आकाश होते हैं और यह सब विश्व उसमें समाता है ॥ ६४ ॥ फिर आपके समान दूसरी कोई वस्तु हो, ऐसा कहना लज्जास्पद ही समझा जायगा, फिर आपके विषयमें आपसे अधिक कोई बडी वस्तु हो यह बात कभी सम्भवती है ? ॥ ६५॥ अतएव संपूर्ण त्रिभुवनोंमें एक आपही अद्वितीय हैं । आपके समान अथवा बडा कोई भी नहीं है । हे देव!आपकी महिमा ऐसी विलक्षण है कि, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता ॥ ६६ ॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इसप्रकार कहकर अर्जुनने दंडवत् प्रणाम किया, तब उसके हृदयमें आठों-सात्त्विकभाव भर आये ॥ ६७ ॥ तब वह गद्गद-कंठसे कहने लगा- हे देव ! कृपा कीजिये, प्रसन्न हूजिये, मेरी वाणी कांप रही है, मेरेसे बोला नहीं जाता, हे देव ! इस अपराधसागरसे मुझे बाहर निकालिये ॥ ६८ ॥ हे देव ! आप सर्वविश्वके सुहृद हैं, परन्तु यह ज्ञान मुझे नहीं हुआ, और आपको सगे-सम्बन्धी की तरह ही जाना, आपका यथोचित संमान तो नहीं किया, वरन् आप विश्वेश्वरके सामने अपना ऐश्वर्य दिखाते थे, हे देव ! ऐसे अनेक आश्चर्ययुक्त घृणित आचरण हमने किये ॥ ६९ ॥ हे देव ! वर्णनीय तो आप हैं, परन्तु भरी सभामें आपनेही प्रेमसे मुझे बडप्पन दे, मेरा वर्णन किया, और मैं तो क्षोभयुक्तान्तःकरणसे अधिकाधिक बलगना ही करता रहा ॥ ५७० ॥ हे मुकुन्द ! इसप्रकारके मेरे अपराधोंकी गिनती ही नहीं है, इसलिये हे देव ! इस उन्मत्ततासे या प्रमादसे मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ७१ ॥ हे भगवन् ! 'मुझे क्षमा करो' ऐसी प्रार्थना करनेकी भी योग्यता मुझमें कहां है ? परन्तु, हे देव ! जैसा बालक निडर होकर, प्रेमसे पिताके पास बोलता है, ॥ ७२ ॥ और यदि उसके अनगिन्त अपराध हों, तथापि पिता द्वैतभाव न रखकर क्षमा करता है, तद्वत् आप मेरे अपराधोंको सहन करके क्षमा कीजिये ॥ ७३ ॥ मित्रकी उद्धतता जैसे मित्र अपनी सह-नशीलतासे सह लेता है, तद्वत् आप भी मेरे अपराधोंको सह लीजिये ॥ ७४ ॥ जिसप्रकार अपने प्रियजनसे कोई प्रेमीजन संमानकी इच्छा नहीं रखता, तद्वत् हे भगवन् ! आपने हमारे घर राजसूयमें जूँठन उठाये और हमलोगोंने उठाने दिये, इसके लिये क्षमा कीजिये ॥ ७५ ॥ अथवा अत्यंत प्यारे मित्रकी भेंट होनेपर, जैसे हृदयस्थ अनेक संकटोंको उसके सामने प्रकट करनेमें संकोच नहीं होता, ॥ ७६ ॥ किंवा जिसने अपना मन, शरीर और आत्मा सब एक-साथ पतिको अर्पण कर दिया है; वह पतिव्रता, पतिकी भेंट होते ही जैसी अपना हृदय खोले विना नहीं रह सकती, ॥ ७७ ॥ तद्वत् हे सद्गुरुमहाराज ! आपके पास मैंने यह नम्र विनती की है, ऐसा कहनेमें और भी एक बात है, उसे भी मैं कहना चाहता हूँ ॥ ७८ ॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे देव ! आपके पास बडे आग्रहसे हमने विश्वरूप दिखानेके लिये हठ किया और आप विश्वके माता-पिताने प्रेमसे वह मेरा मनोरथ पूर्ण कर-दिया ॥ ७९ ॥ कल्पवृक्षके झाड मेरे आँगनमें लगा दिये जायँ, कामधेनुके बछडे मुझे खेलनेको दिये जायँ, ॥ ५८० ॥ नक्षत्रोंके पांसे बनाकर मुझे खेलमें खेलने दिये जायँ, चन्द्रमाको मुझे खेलनेका गेंद बना दिया जाय इत्यादि प्रकारके जो मेरे अनुचित हठ थे, वे सब प्रेमी माताके समान आपने पूरे करादिये ॥ ८१ ॥ जिस अमृतके एक बिन्दुकी प्राप्तिमें कितने ही कष्ट उठाने पडते हैं, हे देव ! उस अमृतकी चारों महीने आपने मानो वर्षा कर दी और पृथ्वीको जोतकर उस जमीनकी क्यारियोंमें जहां तहां चिन्तामणि ही बो दिये ॥ ८२ ॥ हे दयानिधे ! इसप्रकार आपने मेरा गौरव बढा दिया, बडे प्रेमसे पालन किया और जिस विश्वरूपको शंकर और ब्रह्मदेवने कानोंसे भी नहीं सुना था, उसका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन करादिया ॥ ८३ ॥ अजी ! देखनेकी बात तो जाने दो, परन्तु उपनिषद् भी जिसे विचारके साथ जान नहीं सकते, वह हृदयका गुप्त रहस्य आज मेरे वास्ते खोलकर आपने प्रकट कर दिया ॥ ८४ ॥ हे नाथ ! कल्पके आरंभसे लेकर आजकी घडीतक जितने मेरे जन्म हुए होंगे, ॥ ८५ ॥ उन सबको विचारके साथ देखनेपर भी, किसी समय यह रहस्य देखनेका या सुननेका प्रसंग आया हो, यह प्रतीत नहीं होता ॥ ८६ ॥ जाननेमें श्रेष्ठ जो बुद्धि वह भी इस विश्वरूपके आंगन तक नहीं पहुँच सकती, अन्तःकरण इसका शब्द सुननेका भी सामर्थ्य नहीं रख सकता, ॥ ८७ ॥ फिर उसको नेत्र प्रत्यक्षमें देखसकें, यह कभी होही नहीं सकता । सारांश, यह आपका विश्वरूप पहले किसीने कभी न देखा था न सुना था ॥ ८८ ॥ परन्तु वह विश्वरूप आपने आज मेरे दृष्टि-गोचर कर दिया । अतएव हे देव ! आज मेरा मन बहुत आनन्दित हो रहा है ॥ ८९ ॥ परन्तु हे देव ! मेरे मनमें ऐसी इच्छा हो रही है कि, आपके साथ मधुर-मधुर बातें करूँ और आपकी समीपतामें रहकर प्रेमालिङ्गन करता रहूँ ! ॥ ५९० ॥ परन्तु हे देव ! आपके इस विश्वरूपके साथ बोलना या आलिंगन करना चाहूँ तो इन असंख्य-मुखोंमेंसे किसके साथ बोला जाय या किसको आलिंगन दिया जाय ? कारण इस रूपको कुछ सीमा ही नहीं ॥ ९१ ॥ अतएव, वायुके साथ दौडना, आकाशको लिपटाना अथवा समुद्रमें जलक्रीडा करना, यह जैसे नहीं बनसकता, ॥ ९२ ॥ तद्वत्, आपके स्वरूपको देख मेरे हृदयमें भय उत्पन्न होता है, इसलिये अब कृपा करके



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मेरा इतना हेतु अवश्य पूर्ण कीजिये कि, इस स्वरूपको छिपादीजिये ॥ ९३ ॥ स्थावर-जंगम विश्वको कुतूहलसे देखकर जैसे कोई घरमें जाकर सुखसे विश्राम लेनेकी इच्छा करे, तद्वत् आपका जो सौम्य चतुर्भुज-स्वरूप है, वही हमें विश्रांतिका स्थान होता है ॥ ९४ ॥ चाहे हम योग-अभ्यास करें, परन्तु आखिर इसी रूपका हमें अनुभव चाहिये । चाहे शास्त्रका यथासांग अध्ययन करते रहें तो भी अन्तमें यही सिद्धान्त प्राप्त हो ॥ ९५ ॥ यज्ञ, यागका फल भी यही आपका दर्शन है और सकल तीर्थयात्राओंका भी यही फल हो ॥ ९६ ॥ हे देव ! इसके अतिरिक्त हम जो-जो पुण्य दान करें तो उसका फल भी यही हो कि,आपके इस चतुर्भुज-रूपके दर्शनका लाभ प्राप्त हो ॥ ९७ ॥ हे देव ! आपके इस चतुर्भुज-रूपमें मेरी इतनी प्रीति है, कि मैं अब उसे कब देखूं, ऐसी त्वरा अन्तःकरणमें हो रही है ! सो हे देव ! यह मेरी चिन्ता आप शीघ्र दूर करो ॥ ९८ ॥ हे सर्वान्तर्यामिन् ! सर्व-विश्वको स्थापनकरनेवाले ! सब देवोंके पूज्य ! और हे देवाधिदेव ! अब प्रसन्न हूजिये ॥ ९९ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

जिस शरीरकी अंगकांति नीलकमलको नीलताका नमूना होती है, आकाशको अपने रंगसे नीला करती है और नीलमणि इन्द्रनीलको तेजवान् बना देती है, ॥ ६०० ॥ जैसे मरकतमणिको सुगन्ध उत्पन्न हुई हो, अथवा आनन्दको भुजा फूटी हों, इस तरह जिसकी जानुकी शोभासे मदन सुशोभित होता है ॥ १ ॥ मस्तकपर जो मुकुट धारण किया है, उससे मस्तक सुशोभित हुआ है या मस्तकसे मुकुट अलंकृत हो रहा है यह भ्रम होता है, कारण उस अंगकांतिकी शोभा ही शृंगारको अलंकार हो रही है ॥ २ ॥ हे शार्ङ्गपाणे ! ऐसा वह आपका शरीर इन्द्रधनुषसे वेष्टित जैस मेघ दिखाई देता है, तद्वत् वैजयन्ती-मालासे वेष्टित हो रहा था ॥ ३ ॥ आपकी गदा ऐसी उदार थी, जो दैत्य-दानवोंको भी मोक्षदान देती थी । हे गोविन्द ! आपके हाथका वह चक्र अत्यंत सौम्यतेजसे चमकता रहता था ॥ ४ ॥ अब बहुत वर्णन करनेमें मुझे धैर्य नहीं है, इसलिये हे देव ! आप शीघ्रताके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


साथ वह सुन्दर मनोहर रूप धारण करिये ॥ ५ ॥ अजी ! आपके इस विश्वरूपके दर्शनसे मेरे नेत्रोंकी इच्छा-तृप्ति होगई, अब ये मेरी आँखें आपकी वह सौम्य कृष्णमूर्ति देखनेके लिये ही तरस रही हैं ॥ ६ ॥ हे नाथ ! अब इन आँखोंको साकार श्रीकृष्णमूर्तिके दर्शनके अतिरिक्त कुछ भी देखना सूझता नहीं, उस सौम्य-रूपके देखेबिना, इस आपके विश्वरूपका इन्हें महत्त्व नहीं प्रतीत होता ॥ ७ ॥ सच है, उस श्रीकृष्णमूर्तिके सिवाय हमें भोग और मोक्ष देनेवाली कोई भी वस्तु नहीं है, इसलिये हे भगवन् ! अब इस विश्वरूपका उपसंहार करते हुए, वह मनोहर साकार श्रीकृष्णरूप धारण करिये ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

अर्जुनके इन वचनोंको सुनकर विश्वरूपी भगवान्‌को आश्चर्य प्रतीत हुआ और वे कहने लगे, तुम्हारे-सरीखा अरसिक वा अविचारी हमने कहीं नहीं देखा ! ॥ ९ ॥ अजी ! तुम्हें कितनी बडी भारी वस्तु प्राप्त हो रही है ? क्या उसका तुम्हें कुछ भी आनंद नहीं होता और यह किसी डरपोककी तरह न जाने तुम क्या क्या बोल रहे हो, जो सुननेमें हमें बडा विस्मय होता है ! ॥ ६१० ॥ अरे ! हम जब सहजमें किसीको प्रसन्न होते हैं, तब जडमर्यादा ( ऊपरी-ऊपरी ) तक ही देदेते हैं, भक्तकी वैसी योग्यता न होनेपर अपने जीका रहस्य, कौन दे सकता है ? ॥ ११ ॥ परन्तु, आज हमने केवल तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेके लिये, यह अन्तरका रहस्य श्रम-पूर्वक तयार करके विशाल विश्वरूप बना दिया ॥ १२ ॥ तुम्हारे विषे हमें इतना प्रेम क्यों हो रहा है, समझमें नहीं आता ! परन्तु तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होनेमें हम पागलसे बन रहे हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण, हमने गुप्त-रहस्यको विश्वमें प्रत्यक्ष प्रगट-कर दिया ॥ १३ ॥ ऐसा यह मेरा अपरंपार और परात्पर स्वरूप है। इस स्वरूपसे ही कृष्णादि अवतार अवतीर्ण होते हैं ॥ १४ ॥ यह स्वरूप ज्ञानतेजका सारसर्वस्व है और यह विश्वस्व-रूप केवल विश्वमय, शुद्ध, अचल, अनंत और सबका आदिकारण है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥१५॥ हे पार्थ ! इस स्वरूपको तेरे व्यतिरिक्त अभीतक किसीने न देखा है और न सुना है, कारण यह किसी भी साधनसे प्राप्त नहीं हो सकता ॥१६॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

इस स्वरूपका पता पानेमें आखिर वेद मौन होगये और यज्ञकर्ता याज्ञिक स्वर्गतक पहुँचकर पीछे लौट पडे ॥ १७ ॥ साधक लोग इसकी इच्छासे अभ्यास करते रहे, परन्तु कष्ट जान उन्होंने योगाभ्यास छोड दिया । उसी प्रकार इस रूपके प्राप्त करनेकी योग्यता केवल अध्ययनसे भी नहीं आती ॥ १८ ॥ अव्वल दर्जेके जो पुण्यकर्म हैं वे अपनी श्रेष्ठता दिखाते हुए बडे आवेशके साथ दौडते हैं, परन्तु वे भी सत्यलोकतक ही पहुँचते हैं ! ॥ १९ ॥ तुमने इस रूपका ऐश्वर्य केवल देखा ही होगा, कि उसकी उग्रता खडे खडे ही कहीं नष्ट होगई ! इस प्रकार तपके तथा अन्यसाधनोंके भी जो अपार अन्तरमें रहता है ॥ ६२० ॥ वह विश्वरूप हे अर्जुन ! तुम्हें अनायास ही देखनेको मिला । इस विश्वरूपका दर्शन मनुष्यलोकमें जैसा तुमने किया, वैसा किसीको प्राप्त नहीं होता ॥ २१ ॥ अरे ! इस विश्वमें इस रूपसंपत्तिसे केवल अकेले तुमही भाग्यवान् हो रहे हो, इस प्रकारका परम भाग्य ब्रह्मदेवका भी नहीं है ! ॥ २२ ॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

इसलिये, इस विश्वरूपके लाभसे तुम आनंदित होजाओ, इसका किंचित् भी भय न मानो और इसके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु उत्तम हो, यह मनमें भी मत समझो ॥ २३ ॥ अजी ! अमृतसे समुद्र भरा हुआ हो, और दैववशात् वह अपने अंगपर आया, तो क्या डूबनेके भयसे उसे कोई छोड देगा ? ॥ २४ ॥ अथवा सुवर्णका पहाड प्राप्त हो रहा है, किंतु वह बहुत

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वडा है, उठा नहीं जायगा ऐसा समझकर क्या उसे कोई त्याग सकता है ? ॥ २५ ॥ देखो, सुदैवसे चिन्तामणि रत्नका अलंकार प्राप्त हो, तो क्या उसे बोझा समझकर पहिरा न जायगा ? अथवा पालन करनेका सामर्थ्य नहीं, इसलिये कामधेनुको कोर बाहर निकाल देगा ? ॥ २६ ॥ किंवा चंद्रमा घर आवे, तो उसे कोई कहेगा कि, "चलो, हटो हमें तुमसे बडी उष्णता हो रही है" अथवा सूर्य घर आवे तो कहना कि, तुम यहांसे चले जाओ, तुम अन्धकार क्यों करते हो ? हे पार्थ ! इस प्रकारकी बातें क्या कहीं उचित कही जायँगी ? ॥२७॥ तद्वत्, मेरे इस ईश्वरी महा-तेजका ऐश्वर्य अनायास तुम्हारे हाथ आया है, तो तुम इससे घबडाकर क्यों व्याकुल हो जाते हो ? क्या यह तुम्हें उचित है ? ॥२८॥ परन्तु हे धनञ्जय ! तुम अज्ञानी हो, इस विषयका तुम्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। लेकिन्, हे पार्थ ! अब तुम्हारेपर क्रोध-करके भी क्या करना है ? कारण तुम सच्चे शरीरको छोड छायाको ही आलिंगन देना चाहते हो ! ॥२९॥ देखो पार्थ ! मेरा यह सत्य स्वरूप देखकर तुम डरते हो और मेरे चतुर्भुज-रूपपर प्रेमभाव रखते हो, परन्तु वह मेरा सत्य-स्वरूप नहीं है ॥ ६३० ॥ अतएव हे अर्जुन ! अब भी उस रूपकी इच्छा छोड दो और इस विश्वरूपमें आस्थावान् बनजाओ ॥ ३१ ॥ हे पार्थ ! यद्यपि यह विश्वरूप घोर, भयंकर, विकराल और विशाल दीखता है तथापि यही एक सच्चा है, ऐसी दृढ-भावना अन्तःकरणमें निश्चित करो ॥ ३२ ॥ किसी द्रव्यकंजूसका मन जैसे गढे हुए द्रव्यमें ही गुथा रहता है, और वह केवल देहसे ही व्यवहार करता है, ॥ ३३ ॥ अथवा पक्षिणी जैसी अपने मनको घोंसलेमें अपने पंखहीन बच्चोंके पास रखकर आकाशमें घूमती रहती है, ॥ ३४ ॥ अथवा गौ पहाड-पर चारा खानेके लिये जाती है, परन्तु उसका वात्सल्यभरा मन, घरमें बछडेके पासही लगा रहता है, उसी प्रकार हे पार्थ ! तुम भी अपना प्रेम इसी स्वरूपमें निश्चितरूपसे बाँध रखो ॥ ३५ ॥ और ऊपरी चित्तसे बाह्यतः सख्य-सुखके लिये, चाहें तो तुम मेरी चतुर्भुज मूर्तिका यथेच्छ ध्यान करो ॥ ॥ ३६ ॥ परन्तु हे पार्थ ! बारबार मैं तुम्हें यह बात कहता हूँ कि, इस विश्वरूपको तुम कभी भी मत भूलो तथा इस परका सद्भाव न हटाते हुए तुम निरंतर इसके ही श्रद्धावान् बनो ॥ ३७ ॥ यह स्वरूप तुमने पहले कभी न देखा था, इस लिये जो तुम्हें भय उत्पन्न हुआ है, उसे तुम छोड दो और अपना सब प्रेम-सर्वस्व इसीमें भर दो ॥ ३८ ॥ इतना कहकर, विश्वरूपी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रीकृष्ण अर्जुनसे बोले, अब मैं तुम्हारी इच्छानुसार करता हूँ, अब यह मेरा पूर्व-स्वरूप तुम मनमाना देखते रहो ॥ ३९ ॥

सञ्जय उवाच ।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

इतना उच्चारण कर तत्काल भगवान् मनुष्यरूप होगये । इसमें तो कुछ आश्चर्य नहीं, परन्तु आश्चर्य है उनके अर्जुनविषयक प्रेमका, इसमें तनिक भी संदेह नहीं ॥ ६४० ॥ श्रीकृष्ण केवल परब्रह्म हैं, ऐसा होते हुए भी उन्होंने अपना सार-सर्वस्व जो विश्वरूप वह अर्जुनके लिये स्पष्ट कर दिया, परन्तु वह अर्जुनको पसंद नहीं आया ! ॥ ४१ ॥ जैसे कोई किसी वस्तुकी याचना करे और मिलनेपर उसे फेंक दे, अथवा कोई रत्नमें दोष देखे, किंवा कन्याको निरीक्षण कर फिर कहे कि, हमें नहीं भाती, वही प्रकार अर्जुनने किया ॥ ४२ ॥ देखिये, जो आजतक किसीने देखा नहीं, वह विश्वरूप दिखानेकी प्रीति अर्जुनपर प्रगट कर, भगवान्ने उसको यहांतकका सर्वोत्तम उपदेश किया, ॥ ४३ ॥ परन्तु सोनेकी लगड ( टुकडा ) गलाकर मन-माना अलंकार बना दिया जाय और अब वह नहीं भाता, कहकर फिरसे उसे गला दिया जाय, ॥ ४४ ॥ देवको अर्जुनके लिये यही करना पडा । कारण इस अर्जुन-शिष्यके लिये वे प्रथम चतुर्भुज कृष्णरूप थे, उसके विश्वरूप बन गये और जब वह उसे न भाया, तो फिर विश्वरूपके कृष्णरूप बनगये ! ॥ ४५ ॥ अपने शिष्यका हठ यहांतक सहन करनेवाले गुरु कौनसे देशमें हैं ? परन्तु अर्जुनके विषे इतना गाढा प्रेम भगवान्के मनमें क्यों हो रहा है, कुछ कहा नहीं जाता ? इस प्रकार आश्चर्यान्वित हो संजयने धृतराष्ट्रसे कहा ॥ ४६ ॥ इसके बाद, भगवान्ने जो दिव्य तेज विश्वको व्याप्तकर प्रगट किया था, उसे फिर श्रीकृष्णरूपमें समाविष्ट किया ॥ ४७ ॥ जैसे आत्मविचार करते करते [ त्वंपद ] का ब्रह्मरूप [ तत्पद ] में समावेश किया जाता है, अथवा जैसे संपूर्ण वृक्षस्वरूपका बीजकणिकामें ही अन्तर्भाव हो जाता है, ॥ ४८ ॥ किंवा स्वप्नदशाके विस्तारको जीवकी जागृतदशा निगल डालती है, उसी प्रकार विश्वरूपी भगवान्ने अपना योग अपनेमें समाविष्ट किया ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ४९ ॥ सूर्यकी प्रभा जैसे बिम्बमें विलीन होती है अथवा मेघसमूह आकाशमें किंवा समुद्रकी बाढ समुद्रके गर्भमें ही लीन होजाती है, तद्वत् ही यह हुआ ॥६५०॥ कैसा आश्चर्य है, कि श्रीकृष्णरूपी विश्वाकार वस्त्रकी जो बनी बनायी तह ( घडी ) थी, वह श्रीकृष्णने अर्जुनरूपी ग्राहकके प्रेमके लिये इच्छानुसार खोलकर दिखायी, ॥ ५१ ॥ परन्तु ग्राहक ( अर्जुन ) ने उसकी लम्बाई-चौडाई तथा रंग, सूत, पोत इत्यादि देखा तो उसे न भाया, तब श्रीकृष्णने उस वस्त्रकी पहलीसी तह बना दी ॥ ५२ ॥ तब, जो रूप अपनी अपरिमित विशालतासे बढते-बढते सब विश्वको व्याप रहा था, वही फिर शान्त, मनोहर और सुन्दर-आकारवाला होगया ! ॥ ५३ ॥ तात्पर्य, अनंत भगवान्ने फिर अपना छोटासा रूप बनाकर, उस डरे हुए अर्जुनको किसी तरह आश्वासन देदिया ॥ ५४ ॥ तब, जैसे कोई मनुष्य स्वप्नस्थितिमें स्वर्गको जाय और अकस्मात् जागृत् हो जावे, तो उसे जैसा विस्मय होता है, तैसा ही विस्मय अर्जुनको होगया ॥ ५५॥ अथवा सद्गुरुकी कृपा होनेपर जैसे प्रपंचका ज्ञान नष्ट हो, ब्रह्मतत्त्वका प्रकाश होता है, श्रीकृष्णदर्शनसे अर्जुनकी भी वैसा ही स्थिति होगयी ॥ ५६ ॥ तब समाधानयुक्त अन्तःकरणसे अर्जुन मनमें कहने लगा, बडा अच्छा हुआ, इस श्रीकृष्णमूर्तिके बीचमें जो विश्वरूपी परदा आ रहा था, अब वह हट गया ॥ ५७ ॥ वह समझने लगा, आज हमने कालको ही जीतलिया हो, अथवा बादली हवाको दौडमें पीछे करदिया हो, किंवा अपने हाथोंसे सातों समुद्र तैरकर पार होगया हो ॥५८॥ इस प्रकार अर्जुनके चित्तमें उस विश्वरूपके पश्चात् कृष्ण-स्वरूपको देखनेपर अनिर्वचनीय आनन्द होगया ॥५९॥ फिर, सूर्यास्तके अनंतर जैसे आकाशमें तारागण उदय पाते हैं,तद्वत् यह पृथ्वी और उसपरके लोकसमूह उसे दिखाई दिये ॥६६०॥ अब वह इधर-उधर जब देखने लगा तो वही कुरुक्षेत्र, वेही दोनों सेनाओंमें अपने सगे गोत्रीय वीर शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥६१॥ और उन वीरोंके बाण-मण्डपमें ही, अपना रथ जैसाका वैसा पूर्ववत् खडा है तथा रथके जूएपर श्रीकृष्ण बैठे हैं और मैं—अर्जुन रथके पास खडा हूँ, ऐसा उसे दिखाई दिया ॥ ६२ ॥

**अर्जुन उवाच ।**

**दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।**
**इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इस प्रकार उस वीर्यशाली अर्जुनने जैसी याचना की थी, वैसा ही उसने दर्शन पाया । फिर वह कहने लगा कि हे श्रीकृष्ण महाराज ! अब मेरे जीमें जी आया हो ॥ ६३ ॥ मेरी बुद्धिका ज्ञान डरकर अरण्यमें घुसगया था, मन अहंकारको छोड परदेश गया था, ॥ ६४ ॥ मेरी सब इन्द्रियें निश्चल होरही थीं, वाणी मूक हो रही थी, इसप्रकार मेरे शरीरकी सब दुर्दशा हो रही थी ॥ ६५ ॥ परन्तु, हे देव ! आपके दर्शनसे वे सब जीवित हुई मेरे हाथ ह । हे भगवन् ! इस श्रीमूर्तिके दर्शनसे अब मैं जीवित हूं, ऐसा मुझे मालूम होता है ॥ ६६ ॥ इसप्रकार अन्तःकरणमें समाधानयुक्त हुआ अर्जुन फिर श्रीकृष्णसे कहने लगा—हे देव ! आपका यह मनुष्यरूप मैंने देखा ॥६७॥ हे देवराज ! आपने यह रूप दिखाकर ऐसा किया, कि जैसा अपने भूले हुए बालकको प्राप्त हो, माता उसपर प्यार करती हुई उसे स्तनपान कराती है ॥ ६८ ॥ अजी, देव ! उस विश्वरूपी सागरमें मैं दोनों हाथोंसे तरंगोंको काट रहा था, कि अकस्मात् आपकी इस सगुण-मूर्तिरूपी तीरपर आ पहुँचा ॥ ६९ ॥ हे द्वारकानाथ श्रीकृष्ण ! आपने यह दर्शन नहीं दिया, किन्तु सूखे हुए एक अर्जुन-वृक्षपर मेघवृष्टि ही करदी हो ॥ ६७० ॥ हे दयानिधे भगवन् ! स्वाभाविक तृषासे मैं घबरा गया था, तो आपका सगुणाकार-रूपी अमृत-सागर ही मुझे प्राप्त होगया । अब मैं जीवित होगया हूँ यह विश्वास मुझे आया ॥ ७१ ॥ अब मेरी इस हृदय-भूमिमें हर्षलतायें लगरही हैं, और मुझे आनन्द और समाधानका साथ मिल रहा है ॥ ७२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

इसप्रकार अर्जुनके मुखसे शब्द सुनकर, श्रीकृष्ण कहने लगे, हे अर्जुन ! तुम यह क्या कह रहे हो ? अरे, इस विश्वरूपको देख तुम्हें प्रेमही बढाना चाहिये था, ॥ ७३ ॥ और मेरी इस श्रीमूर्तिको आलिंगन देनेके लिये तुम अकेलेही-( संगरहित हो ) केवल शरीरसे आओ, इसप्रकारका जो उपदेश थोडी देर पीछे हमने किया, हे सुभद्रानाथ ! उसे तुम भूलगये ? ॥ ७४ ॥ हे अर्जुन ! अन्धेके हाथ मेरुपर्वत आजाय तो उसे छोटा ही जान पडता है, यह तो मनकी भूल कही जाती है ॥ ७५ ॥ उसीप्रकार हमने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो तुम्हें विश्वरूपका दर्शन कराया, वह शंकरको इतने बडे तपःसामर्थ्यसे भी नहीं होता ॥ ७६ ॥ और हे अर्जुन ! योगीजन अष्टांग-योगसाधनके अनेक कष्ट सह लेते हैं, परन्तु उनको भी इस दर्शनका कभी लाभ नहीं होता ॥ ७७ ॥ और विश्वरूपका कोई एकाधबार थोडासा भी दर्शन हो, इस चिन्तामें देवोंका कितना काल जा रहा है ॥ ७८ ॥ जिसप्रकार चातक आशारूपी हाथोंको जोड, हृदयरूपी मस्तकपर रखकर मेघोंकी बाट जोहते हुए आकाशकी ओर दृष्टि लगाते रहते हैं, ॥ ७९ ॥ तद्वत्, बडे बडे देव आठों प्रहर इस रूपके दर्शनकी लालसामें उत्कंठित रहते हैं, ॥ ६८० ॥ परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन तो दूरही रहा, विश्वरूपके समान वस्तु किसीको स्वप्नमें भी नहीं दिखायी देती ! हे पार्थ ! वह स्वरूप तुमने आज अनायास सुखपूर्वक आँखोंसेही देख लिया ! ॥ ८१ ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

हे सुभट पार्थ ! इस विश्वरूपकी प्राप्ति करदेनेवाला किसी भी साधनको मार्ग नहीं मिलता । छह शास्त्रोंके सभेत वेदोंने भी इस विषयमें हार खा ली है ॥ ८२ ॥ हे धनुर्धर पाण्डव ! इसीप्रकार मेरे विश्वरूपके मार्गमें चलनेके लिये तपोंकी राशियें भी योग्यता नहीं रखतीं ॥८३॥ और दान तथा पुण्यकर्मोंसे भी मेरी प्राप्ति होना दुष्कर ही है ! यज्ञविधानसे भी मैं वैसा प्राप्त नहीं होता, जैसा आज तुमने मुझें अनायास सुखसे देख लिया है ॥ ८४ ॥ परन्तु हे पार्थ ! जैसा मैं आज तुम्हें प्राप्त हो रहा हूं, इसप्रकार प्राप्त होनेमें केवल एकही मार्ग है, और वह यही है कि, जब अन्तःकरणको प्रेमभक्ति आकर जयमाला पहरावे, अर्थात् एकनिष्ठ-प्रेमभक्ति ही सबसे श्रेष्ठ साधन है ॥ ८५ ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

परन्तु हे पार्थ ! वह भक्ति ऐसी हो, जैसी वर्षाकी धारायें पृथ्वीके अतिरिक्त कहीं जाही नहीं सकतीं, ॥ ८६ ॥ अथवा जलसंचयको इकट्ठा कर जैसी गंगानदी सागरको खोजती हुई इतरत्र कहीं भी न रुककर सागरको अवश्य प्राप्त होती है, ॥ ८७ ॥ तद्वत् सर्व भावोंको एकत्र कर, हृदयमें न

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



समाते हुए प्रेमसे जो भक्ति मद्रूप हो मुझमें प्रवेश कर समरस होजाती है, वही सच्ची भक्ति है ॥ ८८ ॥ और भक्तके लिये मैं कैसा हूँ, कि जैसा क्षीर-सागर तीरपर क्षीरका रहता है, बीचमें भी वैसा क्षीरकाही बना रहता है, तद्वत् ॥ ८९ ॥ और चिउँटीसे लेकर मैं हूँ किंबहुना सब चराचर विश्व मैं ही हूँ, इस भावनासे भजनके लिये कोई दूसरी वस्तु ही नहीं, यही भक्तिका सच्चा चिह्न है ॥ ६९० ॥ इसप्रकारकी भक्ति जब प्राप्त होगी तो उसी क्षण मेरे स्वरूपका ज्ञान प्राप्त होगा । और स्वरूपज्ञान प्राप्त होनेपर उसका दर्शन भी हो सकेगा ॥९१॥ फिर लकडीमें अग्नि लगनेपर जैसे लकडीका नामतक न रहकर केवल अग्निस्वरूप हो जाती है, ॥९२॥ अथवा जबतक सूर्यप्रकाश नहीं होता, तबतक संपूर्ण आकाश अंधकारमय रहता है और सूर्योदय होते ही सर्व प्रकाशमय हो जाता है, ॥ ९३ ॥ तद्वत्, एकबार मेरे स्वरूपका साक्षात्कार होनेपर अहंकारका आवागमन एकदम बंद होजाता है और अहंकार नष्ट होते ही, आपही आप द्वैतका लोप होजाता है ॥ ९४ ॥ फिर 'मैं' और 'वह' यह स्वभावतः दूर हो केवल सब विश्व ( मैं ) हूँ यह ज्ञान होता है, किंबहुना वह भक्त समरस होजाता है अर्थात् एकरूपताको ही प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

केवल जो मेरे लिये ही सब कर्म समर्पण करता है, जिसे मेरे अतिरिक्त चराचरमें दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं लगता, ॥ ९६ ॥ तथा जिसके इहलोक और परलोक मैं ही हूँ और जिसने अपने जीवनकी सफलता मुझमें ही निश्चित कर रखी है, ॥ ९७ ॥ और जो 'भूत-प्राणी' इस शब्दको भूलही जाता है, कारण उसकी दृष्टिमें केवल मैं ही भरा रहता हूँ, इसप्रकार किसीप्रकारके वैरभावसे सदैव मुक्त हुआ, सर्वत्र समबुद्धिसे जो मेरा भजन करता है, ॥ ९८ ॥ ऐसा जो कोई भक्त हो, उसका जब यह कफ-वात-पित्तात्मक जड देह छूटता है, तब हे पार्थ ! वह मुझमें समरस हो मेरी एकताको प्राप्त होगा ॥ ९९ ॥ संजयने धृतराष्ट्रसे कहा, हे राजन् !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जिनके उदरमें ये सब ब्रह्माण्ड भरे रहनेके कारण जो तुंदिल दिखाई दे रहे हैं, वे करुणारससे भरे हुए भगवान् श्रीकृष्णजी इसप्रकार अर्जुनसे बोले ॥७००॥ तब भगवान्के मधुर वचन श्रवण कर अर्जुनको अत्यंत हर्ष हुआ। श्रीकृष्णचरणकी सच्ची भक्ति करनेमें विश्वमें वही एक चतुर था ॥ १ ॥ कारण उसने श्रीकृष्णकी दोनों मूर्त्तियोंका अच्छीतरह निरीक्षण करलिया, परन्तु विश्वरूपकी अपेक्षा उसको कृष्णमूर्ति ही अधिक प्यारी लगी ॥ २ ॥ परंतु, देवने उसके इस ज्ञानको नहीं सराहा, कारण विश्वरूप व्यापक है और कृष्णमूर्ति एकदेशी अर्थात् दिक्कालादिकोंसे मर्यादित है ॥ ३ ॥ यह बात सिद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णने एक दो दृष्टान्तोंसे विषयका स्पष्टीकरण किया ॥ ४ ॥ तब वह स्पष्टीकरण सुनकर सुभद्रापति अर्जुन मनमें कहने लगा, इन दोनों स्वरूपोंमें सचमुच कौनसा श्रेष्ठ है, यह बात फिर पूछूंगा ॥ ५ ॥ ऐसा मनमें विचार कर अर्जुनने वह बात किस युक्तिसे पूछी, वह कथा आगेके अध्यायमें सुनिये ॥ ६ ॥ ज्ञानदेव कहते हैं, वह कथा सीधे सुलभ और मधुरशब्दोंसे इस ( ओंवीछन्द ) द्वारा कुतूहलके साथ मैं कहूँगा, उसे आप श्रोतागण आनन्दसे श्रवण करिये ॥ ७ ॥ अब प्रेमकी अञ्जलिमें ये ( ओंवीरूपी ) छूटे-छूटे पुष्प भरकर विश्वरूप प्रभुके दोनों चरणोंपर समर्पित करता हूँ ॥ ७०८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः हिन्दीभाषानुवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

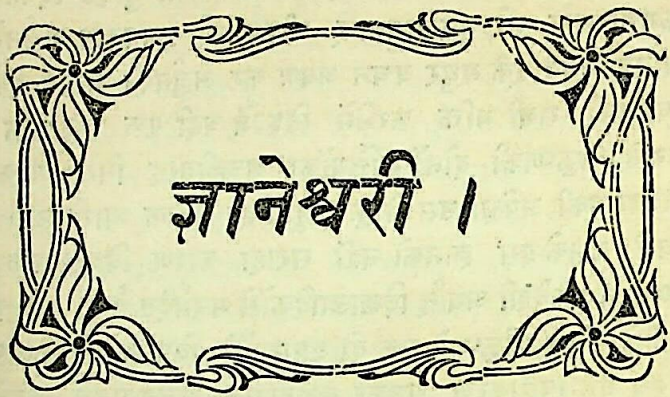


## द्वादशोऽध्यायः १२.

हे पवित्रोंमें पवित्र ! हे उदार ! हे सुप्रसिद्ध-उदार और सदैव आनन्दकी वर्षा करनेवाली गुरुमूर्ति ! आपका जय-जयकार हो ॥ १ ॥ हे सद्गुरो ! आपकी कृपादृष्टि ऐसी है, कि विषयरूपी सर्पोंसे लिपटे हुए मनुष्यको विषकी बाधासे मुक्त कर निर्विष बना देती है ॥ २ ॥ फिर, यदि आपके प्रसादरसकी उछलती हुई लहरोंकी बाढ आजाय, तो संसारका त्रिताप किसको ताप दे सकता है ? या शोक किसे जला सकता है ? ॥ ३ ॥ हे कृपासागर गुरुदृष्टि ! आपका प्रेम आपके सेवकोंको योग-सुखका आनन्द प्राप्त करा देता है, तथा आप उनके ब्रह्मसाक्षात्कारके हठ भी प्रेमके साथ पूरे करती हैं ॥ ४ ॥ आप उन शिष्य-बालकोंको मूलाधारचक्ररूपी शक्तिकी गोदमें प्रेमसे बिठलाकर उनका संवर्धन करती हैं और अपने हृदयाकाशरूपी झूलेमें सुलाकर आत्मज्ञानके उपदेशसे उन्हें झुलाती रहती हैं ॥ ५ ॥ आपकी कृपा ऐसी रहती है कि, आप उनपरसे जीवात्मभावोंको न्यौछावर कर, मन और प्राण उनके लिये खिलौने बना देती हैं और आत्मानन्दके ही बाल-अलंकार उन्हें पहना देती हैं ॥ ६ ॥ सतरहवीं जो पूर्णकला है उसका अमृतपानरूपी दुग्ध उन्हें पिलाती हैं, अनाहत नादघोषका गीत सुनाती हैं और समाधिज्ञानरूपी शांतिसे समझाती हुई सुला देती हैं ॥ ७ ॥ अतएव सब साधकोंके लिये आप माता हैं । आपके चरणोंसे ही सब विद्यायें उत्पन्न होती हैं, इसलिये, हे गुरुकृपा ! आपकी शीतल-छाया मैं नहीं छोडसकता ॥ ८ ॥ हे सद्गुरुकृपादृष्टि ! आपकी करुणा जिसपर कृपा करती है, वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


समस्त-विद्याओंका निर्माता ब्रह्मदेव ही होजाता है ॥ ९ ॥ अतएव श्रीमती-अम्बा ! हे भक्तजनोंकी कल्पलता गुरुदृष्टि ! मुझपर कृपा करती हुई, मुझे ग्रन्थनिरूपणकी आज्ञा दीजिये ॥ १० ॥ हे माता ! इस निरूपणमें मुझसे नवरसोंके सागर भरवाइये, उत्तम रत्नोंके भाण्डार बनवाइये और भगवान्के सच्चे भावार्थोंके पहाड खडे करवाइये ॥ ११ ॥ प्राकृतभाषारूपी पृथ्वीमें वाङ्मयालंकारकी सुवर्ण-खानें खुलवाइये और जहां-तहां विवेकरूपी लतायें लगवा दीजिये ॥ १२ ॥ हे गुरुकृपा ! एकवाक्यरूपी सिद्धान्तोंके बगीचा-ओंको फूल-फलोंसे समृद्ध बनानेकी मुझे आज्ञा दीजिये ॥ १३ ॥ और पाखंडियोंकी गुफाएं, वितंडवादोंके आडे-टेढे मार्ग तथा कुतर्करूपी हिंस्रक श्वापदोंको जडमूलसे उखाड डालिये ॥ १४ ॥ हे गुरुमाता ! श्रीकृष्णके गुणगानमें मुझे सामर्थ्यवान् बना दीजिये तथा इन श्रोतागणोंको श्रवणानन्दके साम्राज्यका लाभ प्राप्त करादीजिये ॥ १५ ॥ इस भाषारूपी नगरमें ब्रह्मविद्याका मनमाना बाजार बनादीजिये, जिसमें कि, लोग इस विद्यानन्दकाही यथेच्छ लेन-देन करें ॥ १६ ॥ हे गुरुमाता ! यदि आप अपनी कृपादृष्टिरूपी अंचलकी शीतल छाया मुझ भाग्यवानपर कर सकोगी, तो ये सब घटनायें मैं तत्काल निर्माण कर सकूंगा ॥ १७ ॥ इसप्रकारकी दासकी प्रेमभरी विनती सुनते ही गुरुने उसी वक्त कृपादृष्टिसे देखा और कहा, हे ज्ञानदेव ! अब अधिक प्रस्तावना-विस्तार न करके गीतार्थ-निरूपणका आरंभ करो ॥ १८ ॥ तब " ठीक है, महाराज ! गुरुमाता ! आपका यह गुरुप्रसाद ही है " इसप्रकार आनंदके साथ कहकर ज्ञानदेव श्रोताओंसे बोले, अब मैं ग्रन्थनिरूपण करताहूं आपलोग सावधानचित्तसे सुनिये॥१९॥

अर्जुन उवाच ।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

सब वीरोंमें श्रेष्ठ, सोमवंशका विजयध्वज, पाण्डु-राजाका पुत्र अर्जुन कहने लगा ॥ २० ॥ हे श्रीकृष्ण महाराज ! आप मेरा कहना सुनिये । आपने जो मुझे विश्वरूप दिखाया, वह बडा ही अद्भुत था, इस लिये उसे देखकर मेरा चित्त डर गया ॥ २१ ॥ और इस मधुर मनोहर कृष्णमूर्तिका परिचय रहनेके कारण, मेरा चित्त इसीमें लगा रहा, परन्तु ' यह ठीक नहीं ' ऐसा कहकर आपने मेरा निषेध किया ॥ २२ ॥ परन्तु, हे देव ! व्यक्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और अव्यक्त ( सगुण और निर्गुण ) ये दोनों निश्चयसे एक आपके ही स्वरूप हैं । भक्तिसे व्यक्त ( सगुण ) रूपकी प्राप्ति होती है और योगसे अव्यक्त ( निर्गुण ) की ॥ २३ ॥ हे वैकुण्ठ ! ये दोनों मार्ग आपकी प्राप्तिके ही हैं, और ये ही दो मार्ग पहले-पहिलके सगुण-निर्गुणके दरवाजे हैं ॥ २४ ॥ सौ भार वजन सुवर्णका जो कस होता है, अलग किये रत्तीभारका भी वही होता है । इसी प्रकार व्यापक ( संपूर्ण ) और एकदेशी ( अंश ) रूपकी योग्यता सरीखी ही है ॥ २५ ॥ अमृतके सागरमें जो सामर्थ्यकी महिमा है, वही महिमा अमृतलहरीकी चुल्लूभरमें रहती है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! इस प्रकारका निश्चित ज्ञान मेरे अन्तःकरणमें मुझे प्रतीत हो रहा है, परन्तु, हे योगेश्वर देव ! मैंने जो आपसे प्रश्न किया है, उसका हेतु यही है कि, आपने जो यह विश्वव्यापक रूप क्षणभर धारण किया था, वही आपका सत्य स्वरूप है अथवा केवल कुतूहलसे आपने उसका स्वीकार किया था ? इस बातका मुझे संशय है ॥ २७ ॥ २८ ॥ और जो भक्त सब कर्म आपको ही समर्पण करते हैं, आपही जिनके लिये सर्व श्रेष्ठ हैं और जिन्होंने अपना सब मनोभाव आपकी भक्तिमें मोल दे रखा है ॥ २९ ॥ इस प्रकार हे श्रीहरि ! सब तरहसे जो आपके बँधे हुए हो, प्रेमसे आपकी ही उपासना करते रहते हैं, ॥ ३० ॥ तथा जो ॐकारसे परे है, जो वाणीके लिये अगोचर है और जिसके लिये किसीकी उपमा नहीं दी जा सकती, ॥ ३१ ॥ ऐसा जो अक्षर, अव्यक्त, निर्मल और व्यापक स्वरूप, जिसकी ज्ञानीजन आत्मैक्यभावसे उपासना करते हैं ॥ ३२ ॥ उन ज्ञानियोंमें और पूर्वोक्त-भक्तोंमें, हे अनन्त ! योगके यथोचित ज्ञानका अधिकारी किसे समझना ? हे नाथ ! कृपा करके यह बात आप कहिये ॥ ३३ ॥ अर्जुनका इस प्रकारका भाषण सुनकर भगवान् संतोषित होगये और कहने लगे, हे पार्थ ! प्रश्न करनेमें तुम बहुत चतुर होगये ! ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

हे किरीटी पार्थ ! अस्ताचलको सूर्य जानेपर, जैसे उस बिम्बके पीछे पीछे किरणें भी जाती हैं, ॥ ३५ ॥ अथवा हे पाण्डुसुत ! वर्षाकाल आनेपर नदी जैसी बढने लगती है, वैसे ही नित्य उपासना करनेवालोंकी श्रद्धा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


दिनोंदिन नयी दिखाई देती है, ॥ ३६ ॥ अथवा समुद्रको प्राप्त होनेपर भी जिनका प्रवाह पीछेसे सदैव आता ही रहता है, उन गंगादि नदियोंके समान प्रेमभावके प्रकारकी अधिकता रहती है ॥ ३७ ॥ तथा सब इन्द्रियों-समेत अपने अन्तःकरणको मुझमें समर्पण कर, रात-दिन समयासमयका विचार न करते हुए मेरी उपासना करते हैं, ॥ ३८ ॥ इस प्रकार जो भक्त स्वयं सर्व-भावोंसे मुझमें समर्पित हो रहते हैं, हे पार्थ ! उन्हींको मैं परमयोगयुक्त-श्रेष्ठ-योगी मानता हूँ ॥ ३९ ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥

और हे पाण्डुसुत ! दूसरे जो सोऽहंभावसे आत्मसाक्षात्कारके अधिकारी होना चाहते हैं, वे निराकार अक्षरको ही जा चिपकते हैं ॥ ४० ॥ जहां मनका नोकतक नहीं पहुँच सकता, जहां बुद्धिके किरण भी जा नहीं सकते, कहो पार्थ ! फिर वह इन्द्रियोंसे कभी साध्य हो सकता है ? ॥ ४१ ॥ इतना ही नहीं, जो ध्यानको भी प्राप्त होना दुर्लभ है, अतएव हे पार्थ ! वह किसी-एक स्थानमें निश्चित हाथमें नहीं लगता अथवा किसी-एक आकारमें वह नहीं रहता ॥ ४२ ॥ परन्तु जो सर्वदा, सर्वकाल, सर्वत्र सर्व-रूपसे उपस्थित रहता है, जिसे प्राप्त करनेपर चिन्तनकी चिन्तनशक्ति भी स्तब्ध हो जाती है, ॥ ४३ ॥ जो न उत्पन्न होता है तथा न नष्ट होता है; और जो है नहीं और नहीं भी नहीं, इस तरहका होने-पर जिसे प्राप्त करनेका कोई भी उपाय नहीं चल सकता, ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार जो न चलित होता है, न हटता है, जो न कभी मलिन होता है, न समाप्त होता है, हे पार्थ ! ऐसी वस्तुको जिन्होंने अपने सामर्थ्यसे अपने स्वाधीन करलिया है, ॥ ४५ ॥ जिन्होंने अपने तीव्रतर वैराग्य-अग्निसे विषयरूपी सेनासमूहोंको जलाकर भस्मसात् किया है और तपी हुई इंद्रियें अपने धैर्यबलसे आत्मसात् ( वश ) कर रखी हैं, ॥ ४६ ॥ तथा उन इंद्रि-योंको निग्रहरूपी फाँसी लगा, उलटाकर हृदयरूपी गुफामें रोक रखा है, ॥ ४७ ॥ फिर, जिन्होंने अपानद्वारको बन्द कर, आसनमुद्रा बाँध, मूलबं-धका किला सुशोभित करादिया है, ॥ ४८ ॥ और जिन्होंने आशाके सब

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सम्बंध तोड डाले हैं, भयके मार्ग उखाड डाले हैं तथा अज्ञान-निद्राका अंधकार निकाल कर शुद्ध किया है, ॥ ४९ ॥ तथा वज्रासन यानी मूलबंधकी अग्निज्वालाओंसे शरीरगत सात धातुओंकी होली जलाकर व्याधियोंके मस्तक षट्चक्ररूपी तोपोंद्वारा फोड डाले हैं ॥ ५० ॥ फिर आधारचक्रपर कुण्डलिनीरूपी देदीप्यमान पलिता ( ज्योति ) खडा करके, उसके प्रकाशसे मस्तकतक सब शरीर-प्रदेश जिन्होंने प्रकाशमय कर रखा है, ॥ ५१ ॥ और नव इन्द्रियोंके दरवाजोंको विग्रहरूपी अर्गला लगाकर, केवल दशमद्वार जो सुषुम्ना-नाडी उसकी भी केवल खिडकी ही खुली रखी है, ॥ ५२ ॥ जिन्होंने प्राणवायु-शक्तिरूपी चामुण्डादेवीके प्रीत्यर्थ संकल्परूपी बकरोंको मारकर, मनरूपी महिषके मस्तकका बलिदान कर दिया है, ॥ ५३ ॥ जिन्होंने चन्द्र और सूर्य ( इडा और पिंगला ) नामक नाडियोंका एकीकरण कर, अनाहत-ध्वनिकी गर्जनाके साथ सतरहवीं पूर्णामृतकलाके सरोवरका जल शीघ्रतासे जीत लिया है, ॥ ५४ ॥ फिर मध्यमानाडी यानी सुषुम्नाके मध्य-विवरमें जो सूक्ष्म सोपान है, उससे चढकर अन्तिम ब्रह्मरंध्रको प्राप्त किया है ॥ ५५ ॥ इतना ही नहीं, बरन् ऊपरके दशमद्वार ( मकार ) का जो गहन जीना है, उसको भी चढते हुए महदाकाशको बगलमें मारकर ब्रह्ममें जा मिलते हैं, ॥ ५६ ॥ इस प्रकार समबुद्धि होकर केवल मेरी प्राप्तिके निमित्त कठिनतर योगरूपी दुर्गोंद्वारा सोऽहं सिद्धिको वश कर लिया है ॥ ५७ ॥ और जिन्होंने अपने जीवभावके बदलेमें निर्गुण, निराकार, शून्यरूप ब्रह्मको शीघ्रतासे प्राप्त किया है, हे पार्थ ! वे भी मुझको ही प्राप्त कर लेते हैं ॥ ५८ ॥ तुम ऐसा मत समझो कि, ऐसे योगबलके द्वारा उन्हें उन भक्तोंकी अपेक्षा कुछ अधिक मिलता हो, किंतु उलटा उन्हें कष्टही अधिक करना पडता है ॥ ५९ ॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

जो संपूर्ण भूतप्राणियोंका कल्याणकारक है, आश्रयहीन और अव्यक्ततत्त्व उसकी प्राप्तिमें जो भक्तिबिना आसक्ति रखते हैं, ॥ ६० ॥ उनके मार्गमें महेन्द्रादि 'पद' मारकरूप बनते हैं, तथा ऋद्धि-सिद्धि भी उन्हें रुकावट करनेमें विघ्नरूप हो जाती हैं ॥ ६१ ॥ उनके मार्गमें काम-क्रोध भी बहुत उपद्रवकारी होजाते हैं, इतना सहन करके शरीरसे शून्यवस्तु जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ब्रह्म उसके साथ झगडना होता ह ॥ ६२ ॥ प्यासको प्याससे ही शान्त करना, भूँखको भूँखसे ही मिटाना पडता है। तथा दिन-रात हाथोंसे ही वायुको नापते रहना पडता है ॥ ६३ ॥ दिनमें घाममें सोना, इन्द्रिय-निग्रहके साथ क्रीडा करना, वृक्षोंसे हेलमेल कर बात-चीत करते रहना, ॥ ६४ ॥ शीत तथा ऊष्मा ये ही ओढने पहरनेके लिये वस्त्र, और वर्षा हो तो, उसीमें घर समझना ॥ ६५ ॥ हे पार्थ ! बहुत क्या कहें, यह योगसाधन ऐसा है, जैसे कि पतिके न रहनेपर भी नित्य सती हो जाना ( अग्नि-प्रवेश किया जाय ) ॥ ६६ ॥ देखो अर्जुन ! ऐसे कष्ट करनेपर कोई स्वामि-कार्य नहीं करनेका होता है अथवा न कोई कुलपरम्पराका धर्म साध्य करनेका रहता है, किन्तु दिनरात नयी मृत्युके साथ झगडनेका ही काम पडता है ॥ ६७ ॥ इस प्रकार मृत्युसे भी तीव्र और जलानेवाला यह विष क्योंकर प्राशन किया जाय ? देखो, अर्जुन ! कोई पर्वतको निगलना चाहे तो उसका मुँह नहीं फटेगा ? ॥६८॥ अतएव हे वीर पार्थ ! इस योगमार्गसे जो चलते हैं, उनके दैवमें केवल दुःखका कोरा हिस्सा रखा हुआ ही है ॥ ६९ ॥ हे पार्थ ! तुमही देख लो कि, जिसके सब दांत गिरकर मुँह पोपला होगया है, यदि उसे लोहेके चने चबाने पडे, तो उसका पेट भरजाय या प्राण निकल जायँगे ? ॥ ७० ॥ देखो, हाथोंसे तैरकर क्या समुद्र पार किया जा सकता है ? अथवा क्या आकाशमें भी किसीसे पैदल चलना बन सकता है ? ॥ ७१ ॥ युद्धमें जानेपर शरीरमें कोई भी चोट न लगनेसे भी कोई सूर्यलोकको प्राप्त कर सकेगा ? ॥ ७२ ॥ इसलिये हे अर्जुन ! मैं कहता हूं पंगुको जैसे वायुके साथ स्पर्धा करना उचित नहीं है, उसी प्रकार शरीरधारियोंको भी अव्यक्तकी प्राप्तिमें ऐसे साधनोंसे केवल कष्ट ही होते हैं, प्राप्ति नहीं होती ॥ ७३ ॥ फिर इतना कष्टदायक साहस करके जो आकाश (शून्य) से झूमनेकी चेष्टा करते हैं अव्यक्तसे मिलना चाहते हैं तो उन्हें अत्यंत कष्टही सहने पडते हैं ॥ ७४ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! जो दूसरे योगिलोगोंने इस भक्तिमार्गका अवलम्बन किया, उन्हें इस प्रकारके दुःखका कभी भी अनुभव नहीं होता ॥ ७५ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥

अपने वर्णाश्रमानुसार जो कर्म अपने हिस्सेमें आये हैं, उन सब कर्मोंको कर्मेन्द्रिय सुखसे करते हैं, ॥ ७६ ॥ शास्त्रोक्त विधिके अनुसार कर्म करते हैं,



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निषिद्ध-कर्मोंका त्याग करते हैं और सब कर्म मुझे अर्पण कर, उनका जो बंधन ( फल ) उसे नष्ट करते हैं ॥ ७७ ॥ हे पार्थ ! इसप्रकार कर्मोंको मुझे समर्पित कर, जो उनका नाश कर देते हैं, ॥ ७८ ॥ उसीप्रकार जिनकी कायिक, वाचिक, मानसिक-प्रवृत्तियें हैं, वे भी मेरे बिना अन्यत्र कहीं भी दौडती नहीं हैं, ॥ ७९ ॥ इसप्रकार जो केवल मत्पर होते हुए मेरी ही उपासना करते रहते हैं, ध्यानके निमित्तसे निरंतरके जो मेरे निवास-मंदिर ही बनगये हैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने अपने प्रेमसे केवल मेरे साथ ही व्यवहार किया है, इतना ही नहीं, वरन् जिन्होंने मेरे प्रेमके लिये विषयभोग और मोक्षपदको दरिद्री और दुर्बल समझकर छोड दिया है, ॥ ८१ ॥ इसप्रकार एकनिष्ठ भक्तियोगद्वारा जिन्होंने जीवभावसे अपना अन्तःकरण, मन और शरीर मेरे स्वाधीन करदिया है, उनका मैं क्या वर्णन करूं ? हे पार्थ ! उनका मनोगत सबकुछ मुझे ही पूरा करना आवश्यकीय होता है । मैं उनका बिका हुआ ही रहता हूं ॥ ८२ ॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

बहुत क्या कहाजाय ? हे धनुर्धर ! जो माताके पेटसे उत्पन्न होता है, वह उस माताको कितना प्यार रहता है भला ! ॥ ८३ ॥ उसीप्रकार वे भक्त कैसे भी क्यों न हों, मुझे अत्यन्त प्रिय ही हैं, मैं उनका सगाही बनता हूँ, कलिकालको भी जीतकर उनका रक्षण करना मेरा स्वभाव ही बनता है ॥ ८४ ॥ और यदि ऐसा न हो तो मेरे भक्त, और उन्हें संसारकी चिन्ता ! यह तो बडी असंबद्ध कल्पना होगी ! देखो पार्थ ! ऐसा कभी संभवता है, कि श्रीमान् समर्थ की भी प्रियपत्नी टुकडा मांगती है ? ॥८५॥ उसीप्रकार मेरा भक्त मेरा कुटुम्बी ही होता है,फिर उनके लिये क्या मैं किसी बातकी लज्जा रख सकता हूँ ? कभी नहीं ॥ ८६ ॥ जन्म-मृत्युकी लहरोंमें डूबती हुई इस सृष्टिको देख, मुझे मनमें ऐसा मालूम हुआ कि, इस संसार-सागरकी उछलती लहरोंसे किसे भय नहीं लगता ? फिर इसमें कदाचित् मेरे भक्त भी डर जायँगे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इस लिये हे पार्थ ! मैंने अपनी मूर्तियोंका वेष इकट्ठा कर, राम-कृष्णादिरूपोंद्वारा सगुणरूपसे दौडता हुआ मैं उनके घरपर आया हूँ ॥ ८९ ॥ संसार-सागरमें मेरी राम-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कृष्णादि हजारों नामरूपी नौकायें उनके लिये तैयार कर मैं ही उनका तारक बनगया हूँ ॥९०॥ जिन्हें कौटुम्बिक प्रपंचका कुछ सम्बन्ध नहीं ऐसे जो कोई ब्रह्मचारी मिले, उन्हें मैंने अपने ध्यानमें लगा दिया, और जो परिवारवाले थे, उन्हें इन नाम-नौकाओंपर बिठा दिया ॥ ९१ ॥ किसी किसी भक्तके पेटमें प्रेमकी संदूक थी, उसमें प्रेम लंगर लगादिया, इस प्रकार उन सब भक्तोंको आत्मैक्यके—सायुज्यके-तटपर ले आया हूँ ॥९२॥ इतना ही नहीं, वरन्, जिन-जिन भक्तोंने प्रेमसे भक्ति की, उनमें कोई जानवर भी हों तो भी भक्तिके कारण उन्हें वैकुण्ठके साम्राज्यके योग्य बना दिया है ॥ ९३ ॥ अतएव हे पार्थ ! कहनेका तात्पर्य, मेरे भक्तोंको किसीप्रकारकी चिन्ता नहीं रहती, कारण उनकी चिन्ता दूरकर उद्धार करनेके लिये मैं सदा सर्वकाल कमर कसके तैयार रहता हूं ॥ ९४ ॥ उन भक्तोंने जिस क्षण अपनी चित्तवृत्ति मुझे समर्पित कर दी, उसी क्षणसे उन्होंने मुझे अपने प्रपंचरूपी व्यापारमें भागीदार बना रखा है ॥ ९५ ॥ इसलिये, हे मेरे प्यारे भक्तराज धनंजय ! तुम भी यही मन्त्र पढते रहो कि, इस अनन्यभक्तिका मार्ग ही इस जीवके उद्धारके लिये उत्तम है, और वही श्रेष्ठ-भक्त गिना जायगा जो अनन्यभक्त होगा ॥ ९६ ॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

हे पार्थ ! तुम बुद्धि और मनको निरंतर निश्चयसे मुझमें समर्पित कर स्थिर रखो ॥ ९७ ॥ हे पार्थ ! यदि बुद्धि तथा मन ये दोनों प्रेमके साथ मेरेमें प्रवेश कर सकेंगे, तो तुम निश्चयसे मुझमें प्रविष्ट होंगे ॥ ९८ ॥ कारण यदि मन और बुद्धि मुझमें स्थिर होकर निश्चयसे मेरेमें ही अपना घर बना लेंगे, तो फिर 'मैं और तू' यह द्वैतकी बात ही नहीं रहेगी ॥ ९९ ॥ इसलिये जैसे दीपक वस्त्र-पल्लवसे बुझाया जाय तो साथ ही उसका तेज भी जाता है, अथवा सूर्यबिंबका अस्त होते ही प्रकाश भी नष्ट होजाता है, ॥ १०० ॥ किंवा शरीरस्थ प्राणोंके निकलते ही इंद्रियें भी शक्तिहीन होजाती हैं, तद्वत् मन और बुद्धिके साथ अहंकार भी आपही आप आजाता है ॥ १ ॥ इस लिये तुम मन और बुद्धिको मेरे स्वरूपमें स्थिर बना रखो, इससे तुम मेरे सर्व-व्यापक स्वरूपको प्राप्त होगे ॥ २ ॥ हे पार्थ ! इस सिद्धान्तविषे तुम कुछ भी संदेह मत करो, ह बात मैं अपनी स्वयंकी शपथ लेकर कहता हूँ ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि यदि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

अब, यदि तुम मन और बुद्धिके सहित सबतरहसे अपना संपूर्ण चित्त मुझे देनेमें असमर्थ हो, तो ऐसा करो कि, दिनके आठ प्रहरोंमेंसे एक क्षण भी तो मनोबुद्धिके साथ मुझे चित्त दो ॥ ४ ॥ ५ ॥ फिर, ऐसा करनेपर जिस-जिस क्षणमें मेरे सुखका तुम्हें अनुभव होगा, वह क्षण तो विषयोंसे घृणा ही करेगा ॥ ६ ॥ तब, जिसप्रकार शरत्कालके आते ही नदियां सूखने लगती हैं, तद्वत्, वह सुख तुम्हारे चित्तको प्रपंचसे शीघ्रताके साथ बाहर निकालेगा॥७॥ऐसा होनेपर, हे पार्थ ! पौर्णमासीके पश्चात् जैसा चंद्रबिंब दिनोंदिन क्षीण होते २ आखिर अमावास्याको एकदम विलीन होजाता है ॥ ८ ॥ उसी प्रकार विषय-भोगोंसे निकल निकलकर चित्त मुझमें प्रविष्ट हो, हे पाण्डुसुत ! धीरे-धीरे तुम्हारा चित्त मत्स्वरूप बनकर तुम मद्रूप होओगे ॥ ९ ॥ हे पार्थ ! जिसे 'अभ्यासयोग' कहा जाता है वह यही है । और हे जिष्णो ! अभ्यासयोगसे साध्य न हो, ऐसी कोई भी चीज दुनियामें नहीं है ॥११०॥ देखो पार्थ ! कोई आकाशमें चलते हैं सो कुछ और साधन है ? नहीं किंतु केवल अभ्यासकाही वह सामर्थ्य है । कोई व्याघ्र और सर्पोंको भी अपने अभ्याससे वश कर रखते हैं ॥ ११ ॥ कोई विषको ही आहार बना देते हैं, तो कोई सागरपर पादचारी बनकर गमन करते हैं और कोई कोई तो अभ्यासमामर्थ्यसे शब्द-ब्रह्मको भी जान सकते हैं ॥ १२ ॥ इसलिये हम कहते हैं कि, अभ्याससे कोई भी साध्य दुर्लभ नहीं है, अतः तुम अभ्यासके द्वाराही मेरी प्राप्ति कर लेओ ॥ १३ ॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

अथवा, ऐसा अभ्यास करनेका भी तुम्हारे शरीरमें यदि सामर्थ्य न हो, तो तुम जिस जगहमें जैसी स्थितिमें हो वैसाही वहां रहो ॥ १४ ॥ इंद्रियोंका निग्रह मत करो, भोगोंका त्याग न करो तथा अपनी जातिका अभिमान भी मत छोडो ॥ १५ ॥ अपने कुलधर्मोंके आचारोंको करते रहो, विधि और निषेधोंका पालन करते रहो, इस प्रकार हम तुम्हें सरल-रीतिसे चलनेमें छूट देते हैं ॥ १६ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! मनसे, वाणीसे तथा शरीरसे जो-जो कर्म किया जाय, बस उसे " मैं करता हूँ " ऐसा कभी मत

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


मानो ॥१७॥ करना या न करना, यह सब वह विश्वचालक परमात्माही जानता है ॥१८॥ यह कर्म न्यून है, यह कर्म पूर्ण है, इस प्रकारकी भावना अपने चित्तमें न आने दो और अपना जीवभाव एकत्र करके अपना जीवन परमात्माका सजातीय कर, उसे चलाते रहो ॥ १९ ॥ देखो, माली जिस ओर ले जानेकी इच्छा करता है, जल उस ओर चुपचाप चला जाता है, तुम उस जलसरीखा निरभिमानी बनकर शान्त होजाओ ॥ १२० ॥ अतः प्रवृत्ति और निवृत्तिके बोझोंमें अपनी बुद्धिको मत दबा लो, किंतु अपनी चित्तवृत्तिको मुझमें रखो ॥ २१ ॥ सच विचार करो, तो मालूम होगा कि, रास्ता सीधा सरल हैं, या टेढ-बेढा हैं यह चिन्ता क्या कभी रथको रहती है ? ॥ २२ ॥ अतः जो कुछ कर्म किया जाय, वह थोडा या अधिक इस प्रकारकी चर्चा न करके शान्तचित्तसे जो कुछ हो, वह सब मुझे समर्पण करते रहना चाहिये ॥ २३ ॥ हे धनुर्धर पार्थ ! इस प्रकार यदि मुझ-परमात्माविषे तुम्हारी भावना होजाय, तो देहपातके अनंतर, हे पार्थ ! तुम मेरे सायुज्यरूपी मन्दिरमें अनायास पहुँचोगे ॥ २४ ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! यदि तुम यह कर्म भी मुझे समर्पित कर नहीं सकते हो, तो तुम कर्मोंका सेवन करते रहो, ॥ २५ ॥ परन्तु बुद्धिसर्वस्वके साथ कर्मके आरंभमें तथा अन्तमें यदि मेरा स्मरण रखना भी तुमसे कठिन जान पडता हो, तो यह बात भी रहने दो, इतना ही क्या मेरा ध्यास रखना भी छोड दो, परन्तु हे पार्थ ! तुम इतना तो अवश्य करो कि, तुम्हारी बुद्धिको इन्द्रियनिग्रहमें लगा दो ॥ २६ ॥ २७ ॥ और जिस-जिस समय जो-जो कर्म तुमसे किये जाँय उनके फलोंकी आशा मत करो—फलत्यागी-बनो ॥ २८ ॥ जिस प्रकार वृक्ष या वल्ली अपने फलोंको छोड देते हैं, अथवा लोग उनके फलोंको तोडनेके बाद जैसा उनका त्याग करते हैं, उसी प्रकार कर्मसिद्धि होनेपर उनका तुम त्याग करदो ॥ २९ ॥ इतना ही नहीं, बरन् मेरा स्मरण करना या मेरे प्रीत्यर्थ ही कर्म करना, यह भी आवश्यकता नहीं, चाहे जैसे वे कर्म फलसहित शून्यमें ही सपर्पित करदो ॥ १३० ॥ जैसे पत्थरपर हुई वर्षा अथवा अग्निमें भुना हुआ बीज निष्फल रहता है, तद्वत् अपना किया हुआ कर्म निष्फल या स्वप्नवत् समझो ॥३१॥ देखो पार्थ ! कन्याविषे कोई भी पिता जैसे निष्काम रहता है, तद्वत् अपने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सब कर्मोंविषे तुम्हें निरभिलाष बनना चाहिये ॥ ३२ ॥ अग्निकी ज्वाला जैसी आकाशमें निष्फल जाती है, उसी प्रकार तुम अपने सब कर्म शून्यमें ही लुप्त होने दो ॥ ३३ ॥ हे पार्थ ! यह कर्मफल-त्याग तुम्हें बिलकुल सुलभ मालूम होता होगा, परन्तु यह योग सब योगोंमें श्रेष्ठयोग है ॥ ३४ ॥ देखो पार्थ ! बाँसका वृक्ष एकबार फलनेपर ( बीज आनेपर ) वृथा-वंध्या होता है, उसी प्रकार इस कर्मफल-त्यागद्वारा जिस-जिस कर्मका त्याग ( नाश ) किया जाता है, वह कर्म फिर कभी भी वृद्धिंगत नहीं होता या उससे कर्म उत्पन्न नहीं होता । तथा इस वर्तमान शरीरका पात होनेपर फिर शरीर धारण करना नहीं पडता, इतनाही क्या ? किन्तु जन्म-मृत्युका रास्ता ही बन्द होजाता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार हे अर्जुन ! अभ्यासकी एक एक पैंडी चढनेपर ज्ञानका घर प्राप्त होजाता है तथा ज्ञानसाधनसे ध्यानको प्राप्त किया जाता है ॥ ३७ ॥ फिर ध्यानमें जब सब वृत्तियें एक होकर आनंदसे रँगी रहती हैं, तब सब कर्म-समूह आपही आप वहांसे हट जाते हैं ॥ ३८ ॥ इसप्रकार कर्मसमूहके हट जानेपर फलत्याग तो आपही आप होजाता है और इसप्रकार फलत्याग होनेपर, अखंड शान्ति प्राप्त होजाती है ॥ ३९ ॥ इसकारण हे सुभद्रानाथ, अर्जुन ! शान्ति प्राप्त करनेका यह एक-एक पैंडी चढनेका सीधा मार्ग है, अतएव अब अभ्यास करना ही सर्वश्रेयस्कर समझो ॥ १४० ॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२ ॥

हे धनंजय ! अभ्याससे फिर ज्ञान श्रेष्ठ ( कठिन ) है, ज्ञानसे ध्यानको विशेष महत्त्व दिया है, ॥ ४१ ॥ फिर ध्यानकी अपेक्षा कर्मफलत्याग करना ही उत्तम माना है और त्यागसेही शान्ति-सुखका भोग प्राप्त होता है । अतएव हे वीर अर्जुन ! इसप्रकारका मंजिल दरमंजिल क्रम-क्रमसे चलनेका यह शान्ति-सुखका मार्ग चलकर जिसने शान्तिसुखका ( ब्रह्मानंदका ) मंदिर प्राप्त किया है, ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥

—वह चैतन्यकी तरह किसी प्राणिमात्रका द्वेष नहीं करता, तथा जैसा चैतन्यको यह अपना, यह पराया इसप्रकारके भेदभावका स्पर्श भी नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


रहता, तद्वत् वह भी राग-द्वेषसे अलिप्त रहता है ॥ ४४ ॥ जैसे इसप्रकारका शोचविचार पृथ्वी मनमें नहीं रखती कि, उत्तमके लिये अपना स्थान दिया जाय और अधमको गढेमें गिरा दिया जाय। उसी प्रकार वह भी ऐसी बातें कभी नहीं सोचता ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार कृपालु प्राण-वायु यह नहीं सोचता कि, राजाके शरीरमें मैं रहूँगा, परन्तु दरिद्रियोंके शरीरको स्पर्श भी नहीं करूंगा। अथवा जल जैसे गौकी प्यासको तो बुझाऊं, किन्तु व्याघ्रके लिये मैं विष बनकर उसके प्राण हरण करडालूं, इसप्रकारका भेदभाव नहीं रखता, तद्वत् वह सबके लिये कृपालुत्वका ही बर्ताव करता रहता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तथा जिसकी सब प्राणिमात्रोंके साथ एकरूपी भावना रहनेसे समान मैत्री रहती है और सबके लिये जो समभावकी कृपाका आश्रयभूत बनता है ॥ ४८ ॥ और अहंकाररहित होनेसे अपना और पराया यह भेदभाव जानता ही नहीं, इसकारण उसे सुख-दुःखका यत्किंचित् भी क्लेश नहीं होता ॥ ४९ ॥ क्षमाके विषयमें तो सर्वंसहा पृथ्वीकी ही उपमाको वह प्राप्त होजाता है तथा संतोषको तो उसने अपनी गोदमें बिठा दिया हो, यही कहना योग्य है ॥ १५० ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

हे पार्थ ! जिसप्रकार जलवर्षाके बिना ही समुद्र परिपूर्ण भरा रहता है, उसीप्रकार वह भी किसी प्रकारकी उपचारसामग्रीके बिना सदा संतुष्ट रहता है ॥ ५१ ॥ जो अपने अन्तःकरणको शपथ देकर स्वाधीन रखता है, जिसके कारण उसका निश्चय ध्रुवपदकी तरह अखंड रहता है ॥ ५२ ॥ जीव और परमात्मा जिसके हृदयमंदिरमें एकीभावको प्राप्त होकर एकासनमें ही विराजमान होते रहते हैं ॥ ५३ ॥ हे पार्थ ! इतना योग-संपन्न होनेपर भी जो अपने मन और बुद्धिको मुझे निरंतर समर्पण करता रहता है, ॥ ५४ ॥ तथा अन्तर्बाह्य योगकी सिद्धि दृढतर साध्य होनेपर भी मेरे प्रेममें रँगीला बना रहता है ॥ ५५ ॥ हे पार्थ ! वही मेरा भक्त, वही योगी और वही मुक्त समझो। अजी ! जिसप्रकार पतिव्रता रूपवती स्त्री पतिको प्राणप्यारी होती है, तद्वत् ही वह मुझे प्रिय होता है ॥ ५६ ॥ हे अर्जुन ! वह मुझे 'प्राणोंके समान प्यारा है' इतना कहनेपर भी उसके प्रेमका पूर्णत्व मुझसे ठीक वर्णा नहीं गया हो ! ॥ ५७ ॥ देखो, यह प्रेमी भक्तकी कथा मानो,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भुलानेवाली एक जादूसी है, कारण इसका वर्णन शब्दोंके बाहर है, तथापि तुम्हारे साथ जो मेरा प्रेम है, इसलिये यहां थोडा कहा ॥ ५८ ॥ और उस प्रेमके कारण ही पति-पत्नीकी उपमा हमारे मुँहसे निकल पडी, परन्तु विचार किया जाय तो क्या निःसीम प्रेमका वर्णन किया जा सकता है ? ॥ ५९ ॥ परन्तु हे पार्थ ! ये बातें अब रहने दो, कारण मेरे प्रियभक्तोंका विषय जहां निकलता है, वहां मेरा भक्त-प्रेम दुगुना बलवान् होकर उछलने लगता है ॥ १६० ॥ और ऐसे समय यदि किसी प्रेमी-भक्तके साथ संवाद करनेका प्रसंग आजाय, तो हे अर्जुन ! उस विषयकी मधुरताको तौलनेके लिये क्या तराजू भी कहीं मिलसकेगा ? ॥ ६१ ॥ परन्तु हे पार्थ ! आज तो तुमही मुझे प्रेमी-भक्त मिले हो और प्रेमी श्रोता भी तुम ही हो और प्रसंगानुसार विषय भी प्रेमी-भक्तोंका ही चल रहा है, ॥ ६२ ॥ इसकारण उस विषयका वर्णन स्वाभाविक ही हो रहा है, जिससे मैं उसमें ऐसा निमग्न हुआ कि मैं अपनेको भी भूलगया । इतना कहकर भगवान् आनंदके साथ फिर कहने लगे ॥ ६३ ॥ भगवान् बोले-हे पार्थ ! जिस भक्तको मैं अपने अन्तःकरणमें आसन लगानेके लिये स्थान देता हूँ, उस भक्तका लक्षण सुनो ॥ ६४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

भगवान् बाले-सुनो पार्थ ! सागर कैसी भी घोर गर्जना करे, परन्तु वहांके जलचरोंको उससे किंचित् भी भय नहीं उपजता, तथा कितने भी जलचर हों तो उनसे सागर नहीं ऊबता, ॥ ६५ ॥ उसी प्रकार जगत्की उन्मत्ततासे जिसे कभी घृणा नहीं आती, तथा जिसके संसर्गसे जगत् दुःखी नहीं होता, ॥ ६६ ॥ इतना ही नहीं, पार्थ ! किन्तु जिस प्रकार यह शरीर अवयवोंका कभी भी तिरस्कार नहीं करता, उसी प्रकार स्वयं जीव हूँ ऐसी आत्मैक्यभावनाके कारण वह प्राणीमात्रसे कभी ऊबता नहीं ॥६७॥ जगत् ही मेरा देह है, इस भावनासे प्रेरित हुआ वह प्रिय वा अप्रिय-भावको जानता ही नहीं, और स्वयं अद्वैत होनेके कारण हर्ष-शोकका नाम-निशान भी जिसमें नहीं रहता है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार जो द्वन्द्वबुद्धिके अर्थात् सुख-दुःखके द्वन्द्वोंसे मुक्त है, तथा भय, उद्वेगोंसे अलिप्त हो रहा है, इस पर भी, मेरा प्रेमी-भक्त भी है ॥ ६९ ॥ उस पुरुषका मुझे मोह होता है । क्या कहूँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पार्थ ! उस मोहका मैं कैसे वर्णन कर सकूँ ? वह मेरा सच्चा प्रेमी है, वह मेरे प्राणोंका भी प्राण है ॥ १७० ॥ जो आत्मानंदसे सदा संतुष्ट रहता है, हे पार्थ ! परिणामानुसार यद्यपि वह जन्म धारण कर रहा है, तो भी वह एक प्रकार पूर्णब्रह्महीको साथ ले आया है, और पूर्णतारूपी स्त्रीका मानो वह वल्लभ होगया है, ॥ ७१ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! उसके अन्तःकरणमें वासना प्रवेश नहीं कर सकती, और उसके अस्तित्वसे सुखको बाढ आती है, ॥ ७२ ॥ काशीक्षेत्र अपनी उदारतासे मोक्षलाभ दे देता है, परन्तु किसको ? जो कोई उस क्षेत्रमें देहपात कर दे उसको ही वह लाभ होता है ॥ ७३ ॥ हिमालयपर्वत भी पापोंका नाश कर सकता है, परन्तु इस पापनाशके साथ प्राणनाश भी होता है, परन्तु भक्तोंकी पवित्रता वैसी नहीं, ॥ ७४ ॥ पवित्रवस्तुओंमें गंगाकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं, और वह पाप-तापोंका नाश भी करती है, किन्तु वह पवित्रता प्राप्त करनेके लिये स्नान करना पडता है और किसी समय डूबनेका भी भय रहता है ॥ ७५ ॥ परन्तु, इस भक्तिरूपी नदीकी गहराईका यद्यपि पार नहीं है, तथापि भक्तको इसमें डूबनेका भय नहीं और बिना देहपातके ही उसे मोक्षलाभ होता है ॥ ७६ ॥ अजी ! जिन संतोंके समागमसे गंगाको शुचित्व प्राप्त होकर वह पापोंका क्षालन करती है, फिर उन संतोंकी पवित्रता कितने श्रेष्ठ-दर्जेकी हो भला ! ॥ ७७ ॥ इस कारण, हे अर्जुन ! जिसने अपनी पवित्रतासे तीर्थोंको भी पवित्रताके विषे आश्रय दिया है, जिसने मनोमालिन्यको दश-दिशाओंसे बाहर कर भगा दिया है ॥ ७८ ॥ जो अन्तर्बाह्य शुद्ध है, जो सूर्यके समान स्वच्छ है, और किसी 'पायल' मनुष्यको जिस प्रकार भूमिगत द्रव्यसंचय ज्ञात होता है, तद्वत् जो तत्त्वरहस्यको ज्ञात करता है, ॥ ७९ ॥ जैसे आकाश सबको व्याप्त करके सबसे निर्लेप रहता है, उसी प्रकार जिसका मन सर्वत्र व्यापक होनेपर भी निरंतर सबसे उदासीन रहता है ॥ १८० ॥ जिस प्रकार कोई पक्षी व्याधेके हाथसे छूटनेपर सुखी होता है, तद्वत् वह संसारतापोंसे छूटनेके कारण सदैव निराशासे अलंकृत रहता है और विरक्तिमें निमग्न हुआ अत्यंत सुखी होता है ॥ ८१ ॥ तथा निरंतर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आत्मसुखके आनंदमें भरा रहनेके कारण, जिसे किसी प्रकारका दुःख पीडा नहीं दे सकता, जैसे कि, मृत-मनुष्यको लज्जा स्पर्श नहीं करसकती ॥ ८२ ॥ और किसी कर्मके आरम्भमें जिसे अहंकारकी बाधा नहीं होती, ईंधनके न मिलनेपर जैसे अग्नि आपही आप बुझ जाती है, ॥ ८३ ॥ वैसे ही, मोक्षकी अंगभूत जो शान्ति, वह उसके भागमें अनायास ही प्राप्त हुई रहती है ॥ ८४ ॥ हे पार्थ ! ऐसी योग्यता प्राप्त करनेमें जो सोऽहं भावसे भरा हुआ ब्रह्मैक्यत्वको प्राप्त हुआ है, वह द्वैतके पैल-पारकोही पहुंचा है, ॥ ८५ ॥ परन्तु, भक्ति-सुखके अनुभवको प्राप्त करनेकी इच्छासे वह स्वयंको ही दो-भागोंमें बाँटकर, उसमेंसे एकको सेवकाईका काम करनेमें अपनेको नियुक्त करता है ॥ ८६ ॥ और उसका जो दूसरा भाग 'मैं' उसे 'देव' नाम देता है और जो भक्ति-हीन पुरुष हैं, उन्हें उत्तम भक्ति-मार्गके आचरणका कुतूहल दिखा देता है, इसप्रकारका जो योगी होता है, ॥ ८७ ॥ उसके साथ हमारा बडा प्रेम रहता है, वह हमारा आत्मस्वरूप होनेसे हम उसका ध्यान करते हैं, बहुत क्या कहें अर्जुन ! उसके साथ जब हमारा मिलन होता है, तब हमें अत्यन्त समाधान होता है ॥ ८८ ॥ उसके लिये हमें सगुणरूप होना पडता है, ऐसे मेरे प्रेमी-भक्तोंके लिये ही हमें विश्वमें संचार करना पडता है, हे पार्थ ! वह भक्त हमें इतना प्यारा लगता है, कि उसपरसे जी-जान निछावर करदेना भी हमें प्रिय लगता है ॥ ८९ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥

हे पार्थ ! आत्मरूपलाभके समान और कुछ भी उत्तम नहीं समझता, जिस कारण किसी भी भोगविशेषमें आनंद नहीं आता है, ॥ १९० ॥ "मैं ही सब विश्व हूँ" इस-प्रकारके ज्ञानसे जो विश्वमय होगया है और भेदभाव जिसके नष्ट होगये हैं, इस कारण जिस पुरुषमें द्वेष रह ही नहीं सकता, ॥ ९१ ॥ जो सचमुच अपनी वस्तु ( तत्त्व ) है, वह कल्पान्तमें भी नष्ट नहीं होती, इस प्रकारकी दृढभावनासे जो गतवस्तुविषे दुःख नहीं करता, ॥ ९२ ॥ और जिस वस्तु ( तत्त्वकी ) अपेक्षा अधिक कुछ भी नहीं है, वह वस्तु ( आत्मस्वरूप ) आप स्वयं ही होगया है, इस कारण जो किसी वस्तुकी आकांक्षा ( इच्छा ) नहीं करता, ॥ ९३ ॥ जिस प्रकार सूर्यको रात्रि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और दिवस कभी प्रकट नहीं होत, उसी प्रकार जिसको भला या बुरा इस प्रकार भेद प्रतीत नहीं होता; ॥ ९४ ॥ इस प्रकार जो केवल शुद्ध-ज्ञानरूप बनगया है, तिसपर भी जो निरन्तर मेरा भजन करता रहता है, ॥ ९५ ॥ हे पार्थ ! मैं तुम्हारी सौगन्धसे कहता हूँ कि, उस भक्तके समान हमें दूसरा कोई भी प्रेमी और आप्त-सगा नहीं है ॥ ९६ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शाताष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥

हे पार्थ ! जिस पुरुषमें विषमभावका नाम भी नहीं है, तथा जो शत्रु और मित्र दोनोंको समान मानता है, ॥ ९७ ॥ हे पाण्डव पार्थ ! घरके मनुष्योंको तो प्रकाश देना और दूसरोंको अन्धकार करना यह बात जैसे दीपक जानता ही नहीं, ॥ ९८ ॥ अथवा जो अपनेको काटनेके लिये कुल्हाडा मारता है तथा जिसने स्वयं बीज लगाकर बढा दिया है, उन दोनोंके लिये वृक्ष जैसे शीतल-छाया ही देता है, ॥ ९९ ॥ अथवा इक्षु ( गन्ना ) जैसे पानी देकर बढानेवालेको मधुर और चरकमें डालकर गलानेवालेको कडुवा कभी नहीं बनता, ॥ २०० ॥ उसी प्रकार हे पार्थ ! जो शत्रु और मित्रमें एक ही भावना रखता है, जो मान और अपमानको एक ही समझता है, ॥ १ ॥ तीनों ऋतुओंमें आकाश जैसा एकरूप ही रहता है, उसी प्रकार शीत, उष्ण इत्यादि द्वन्द्वोंमें जो एकसा ही रहता है, ॥ २ ॥ हे धनुर्धर ! दक्षिणवायु तथा उत्तरवायुके बीच जैसा मेरुपर्वत अविकृत तथा अचल रहता है, तद्वत् वह आये हुए सुख-दुःखोंसे विकाररहित हो, सदैव उदासीन रहता है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार चांदनी, राजा और रंकके लिये अपनी मधुरताको समान भावसहा देती रहती है, तद्वत् जो संपूर्ण भूतमात्रोंविषे समान-भावसे वर्तन रखता है ॥ ४ ॥ संपूर्ण विश्वके लिये एकही जल जैसे आवश्यकीय रहता है, उसी प्रकार वह भी त्रिभुवनको परमप्रिय ज्ञात होता है ॥ ५ ॥ जो बाह्यान्तरमें विषयोंका सम्बन्ध और संग छोडकर अपने आत्मामें ही स्थिर होकर एकान्तमें समाधान-वृत्तिसे रममाण रहता है, ॥ ६ ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

तथा जो निन्दाकी उपेक्षा करता रहता है, और स्तुतिसे कभी फूलता नहीं, जैसे आकाश मेघादिकोंसे निर्लेप रहता है, ॥ ७ ॥ उसी प्रकार निंदा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


और स्तुतिको एकही पंक्तिमें बिठाकर समानतासे देखता है, और प्राणवृत्तिसे जनोंमें तथा वनोंमें निश्चल-वृत्तिसे ही संचार करता रहता है, ॥ ८ ॥ जो सत्य और मिथ्या कुछ भी न बोलता हुआ मौनी बन गया है और 'उन्मनी' नामक ब्रह्मस्थितिका अनुभव लेते समय कभी भी जो विमुख नहीं होता; ॥ ९ ॥ जिस प्रकार जलवर्षा न होनेपर समुद्र सूखता नहीं, वैसे ही वह यथासमय यथाप्राप्त लाभसे सन्तुष्ट रहता है, किंतु कुछ भी प्राप्त न हो या कोई हानि हो, तो भी रुष्ट नहीं होता, ॥ २१० ॥ और जैसे एकही स्थानमें कभी रुकी नहीं रहती, तद्वत् वह भी किसीका आश्रय ले रुका नहीं रहता, ॥ ११ ॥ और वायु जैसे नित्य सब आकाशभरमें सर्वत्र वास करती है, तद्वत् जो इस संपूर्ण विश्वको विश्रांतिका स्थान बना रखता है ॥ १२ ॥ यह विश्वही मेरा घर है, ऐसी जिसकी निश्चित बुद्धि हो रही है, किंबहुना यह सब चराचर विश्व ही मैं हूँ, ऐसा जो समझता है, ॥ १३ ॥ और हे पार्थ ! ऐसी स्थितिप्रत पहुँचनेपर भी जो मेरे भजनमें श्रद्धा और निरन्तर आस्था रखता है; हे पार्थ ! मैं उसे अपने मस्तकपर धारण करनेके लिये मुकुट बनाता हूँ ॥ १४ ॥ कहो पार्थ ! उत्तम मनुष्यके आगे मस्तक झुकाना कौन आश्चर्यकी बात है ? परन्तु ऐसे भक्तके चरणामृतको त्रिभुवन भी मस्तकपर धारण करता है, ॥ १५ ॥ हे पार्थ ! मैं अपने श्रद्धावान् भक्तका कैसा आदर करता हूँ, जिसपर श्रद्धा रखनी चाहिये, उस वस्तुके प्रेमकी रीति कैसी होनी चाहिये इस बातका अनुभव तभी हो सकता है, जब कि, श्रीसदाशिवको गुरु किया जाय ॥ १६ ॥ परन्तु अब यह वर्णन यहां ही समाप्त करते हैं, कारण शंकरकी स्तुतिसे स्वयं अपने ही वर्णन करनेका अभिमान सिद्ध होता है, इस प्रकार कहकर फिर रमापति श्रीकृष्णने कहा, परन्तु हे अर्जुन ! ऐसे प्रेमी भक्तोंको मैं अपने सिरपर रखता हूं ॥ १७ ॥ १८ ॥ कारण, चतुर्थ पुरुषार्थ जो मोक्ष, उसे अपने हाथमें लेकर, वह भक्तिमार्गमें प्रवेश करता है, और उस मोक्षको सब जगत्के लिये देना चाहता है ॥ १९ ॥ वह मोक्षका अधिकारी होनेसे कैवल्यकी ही गठडी बाँधने-छोडनेका व्यापार किया करता है, परन्तु जलके समान नम्रताके स्थानको ही स्वीकारता रहता है अर्थात् सदैव नम्र रहता है ॥ २२० ॥ अतः हे पार्थ ! हम उसे नमस्कार करते हैं, अपने माथेका मुकुट बनाते हैं, इतना ही क्या ? उसका चरण वक्ष-स्थलमें भूषणसरीखा रखते हैं ॥ २१ ॥ हे पार्थ ! उसके गुण ही अपनी वाणीको हम अलंकार पहनाते हैं और उसकी कीर्तिके कुंडल हम अपने कर्णोंमें धारण करते हैं ॥ २२ ॥ ऐसे प्रेमी-भक्तके दर्शनार्थ ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अचक्षु होते हुए हम चक्षुष्मान् बनते हैं और हमारे हाथमें जो कमल रहता है, उससे उसकी हम पूजा करते हैं ॥ २३ ॥ उसको दृढालिंगन देनेकी इच्छासे ही हमने इन दो हाथोंपर और दो हाथ लगा दिये हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकारके-भक्तके समागमके सुखके लिये ही, हम विदेह होते हुए भी देह धारण करते हैं। हे पार्थ ! बहुत क्या कहूँ ? उसपर जो मेरा प्रेम रहता है, उसके लिये कहीं भी कोई भी उपमा नहीं मिल सकती अर्थात् मेरा अनुपम प्रेम रहता है ॥ २५ ॥ फिर उसके साथ निर्मल मैत्री हो, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? परन्तु ऐसे प्रेमी-भक्तोंका चरित्र जो सुनते हैं या गाते हैं, वे भी मुझे प्राणोंके समान प्रिय होते हैं, हे पार्थ ! इसमें कुछ भी संदेह नहीं, तुम इस बातको यथार्थ ही जानो ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे अर्जुन ! आज हमने तुम्हें यह जो 'भक्तियोग' नामक सर्व श्रेष्ठ योग साग्र कथन किया है, ॥ ॥ २८ ॥ जिसके कारण मैं भक्तको प्रिय मानता हूँ, उसपर अत्यंत प्रेम करता हूँ, उसको मस्तकपर धारण करता हूँ या अन्तःकरणमें स्थान देता हूँ, जिस योगका इतना सामर्थ्य है,—॥ २९ ॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ।

---

कि उस योगकी मनोहर, रम्य, धर्मानुकूल अमृतधारासरीखी मधुर-कथा सुनकर, जो उसका अनुभव लेते हैं ॥ २३० ॥ और श्रद्धापूर्वक प्रेमसे जिनमें वह विस्तारको पाती है, अथवा जिनके अन्तःकरणमें यह योग निरंतर रहकर जिसको वे आचरते रहते हैं, ॥ ३१ ॥ इसका मतलब यही कि, जैसा हमने कथन किया है, उसी प्रकार जिनके मनकी स्थिति हो रही है, जिससे उत्तम पकनेवाली भूमिमें बीज बोया गया है, और उसमें अत्यंत फलप्राप्ति होरही है, तथापि जो मुझे ही सर्वश्रेष्ठ समझकर, मेरी भक्तिमें जो प्रेम है, उसमें लेशमात्र भी भेद न रखते हुए, यही हमारा सर्वस्व है, इस दृढबुद्धिसे भक्ति करते हैं, ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे पार्थ ! वे ही इस संसारमें सच्चे भक्त हैं, वे ही योगी हैं और उन्हींविषे मेरे अन्तःकरणमें निरंतर उत्कंठा लगी रहती है ॥ ३४ ॥ जिन पुरुषोंको भक्ति-कथामें ही प्रेम रहता है, हे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्जुन ! वे ही तीर्थ हैं, वे ही क्षेत्र हैं और इस संसारमें वे ही सचमुच पवित्र हैं ॥ ३५ ॥ हम उन्हींका ध्यान करते हैं, हमारा देवतार्चन भी वे ही हैं, उनकी अपेक्षा हमें कुछ भी भला नहीं दीखता ॥ ३६ ॥ हमें उन्हींका व्यसन रहता है, हमारा द्रव्यसंचय भी वे ही हैं, किंबहुना वक्तव्य करनेके लिये हे पार्थ ! जब उन भक्तोंका हमारा मिलन होता है, तभी हमें अन्तःकरणमें समाधान होता है ॥ ३७ ॥ हे पाण्डुपुत्र अर्जुन ! हमारे ऐसे प्रेमी-भक्तोंकी कथा जो गाते हैं, उन्हें भी हम अपने श्रेष्ठ-देवतासे मानते हैं ॥ ३८ ॥ संजय कहते हैं, हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस प्रकार भक्तमनोरंजन और संपूर्ण विश्वके आदिकारण जो भगवान् वे अर्जुनके प्रति बोलते भये ॥ ३९ ॥ संजयने फिर कहा, हे राजन् धृतराष्ट्र ! जो भगवान् कृष्णदेव शुद्ध हैं, दोषहीन हैं, जो इस संसारपर सदैव कृपा रखते हैं, शरणागतपर प्रेम करनेवाले हैं और सबके रक्षक ह, ॥२४०॥ देवोंपर उपकार करते रहना जिनका स्वाभाविक धर्म बना है,विश्वका लालन-पालन करना जिनकी सहज लीला है, और शरणागत तथा विश्वका प्रतिपालन करना जिनका नित्यका खेल है ॥ ४१ ॥ जिनका पवित्र धर्म और यश अत्यंत निष्कलंक है,जो अत्यंत सरल होकर अगाध दानशील हैं, और जो अनुपम सामर्थ्यवान् होनेसे किसीको भी अपने काबूमें लानेमें सहज सामर्थ्यवान् दिखाई देते हैं तथापि बलिके प्रेममें बँधे जाते हैं, ॥ ॥ ४२ ॥ जो भक्तोंके लिये प्रेमी हैं, शरणागतोंके स्नेही हैं, भक्तोंको प्रेमसे अनायास प्राप्त होनेवाले, सत्यके तारक और संपूर्ण कला-कौशल्यके जो भाण्डार हैं, ॥ ४३ ॥ वे भक्तोंके सम्राट् वैकुण्ठाधिपति श्रीकृष्ण भगवान् कह रहे हैं और भाग्यवान् भक्तशिरोमणि अर्जुन सुन रहा है ॥ ४४ ॥ इतना कहकर, संजय फिर बोला-इसके आगेका निरूपण किया जायगा उसे भी आप सुनिये ॥ ४५ ॥ वही संजयकी कथन की हुई मधुर और सरल-कथा प्राकृत-भाषामें अब वर्णी जायगी, इस लिये हे श्रोतालोगो ! सावधान रहें ॥ ४६ ॥ श्रीनिवृत्तिनाथ-शिष्य ज्ञानदेव कहते हैं कि, मेरे गुरु श्रीनिवृत्तिनाथजीने मुझे यही सिखाया है कि, आप सन्तजनोंकी शरणमें जाकर आपलोगोंकी सेवा करते रहो मुझे वही करना चाहिये ॥ २४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः हिन्दी-भाषानुवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## त्रयोदशोऽध्यायः १३.

जिनका स्मरण करनेसे शिष्य सब विद्याओंका आश्रय-स्थान बनजाता है, उन श्रीगुरुचरणोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ तथा जिनके स्मरणसे काव्य करनेकी अनुपम शक्ति प्राप्त होती है, और सम्पूर्ण-विद्यायें जिह्वामें आ उपस्थित रहती हैं, ॥ २ ॥ जिनके स्मरणसे वक्तृत्वमें ऐसा रसभरा-माधुर्य उत्पन्न होता है कि, जिसके आगे अमृत भी फीका होजाता है और अक्षर-अक्षरमें सम्पूर्ण रस आश्रितसे बने रहते हैं, ॥ ३ ॥ और वे उद्दिष्ट अर्थको मूर्तिमान् खडा करके रहस्य-ज्ञानका तत्त्वानुभव प्रकट करते हैं, जिससे सम्पूर्ण आत्मज्ञान हाथ आजाता है, ॥ ४ ॥ इसप्रकारके श्रीगुरुचरणोंको हृदयमें स्थान देकर जब उनका स्थिरत्व प्राप्त किया जाता है, तभी इस पूर्वोक्त-प्रकारके ज्ञानका भाग्योदय होता है ॥ ५ ॥ अत एव उन गुरुचरणोंको मैं प्रथम नमस्कार करता हूँ । अब ब्रह्मदेवके यानी जगत्के पितामहके पिता और लक्ष्मीके पति श्रीकृष्णने जो अर्जुनसे कहा, उसे सुनिये ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥

हे अर्जुन ! श्रवण करो, इस देहको 'क्षेत्र' ऐसा नाम है, और इसको जो जानता है, उसे ज्ञाताओंने 'क्षेत्रज्ञ' यह संज्ञा दी है ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

परन्तु, इस प्रसंगमें जिसे क्षेत्रज्ञ कहा है, वह मैं ही हूँ कारण सम्पूर्ण क्षेत्रोंकी यानी शरीरोंकी मैं ही रक्षा करनेवाला हूं यह तुम निःसंदेह समझ रखो ॥ ८ ॥ और क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञको अच्छीतरह जानना यही सच्चा है, ऐसा हमारा मत है ॥ ९ ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

अब इस शरीरको जिस उद्देशसे हमने 'क्षेत्र' यह नाम दिया है, उसके कारणके साथ संपूर्ण वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १० ॥ इस क्षेत्र क्यों कहा जाता है, यह कैसे और कहां उत्पन्न होता है तथा कौन-कौन विकार इसकी वृद्धिका विस्तार करते हैं, ॥ ११ ॥ क्या यह क्षेत्र साढे-तीन हाथका छोटासा है, या कितना बडा अथवा कितने आकारका है ? और ऊसर है या उपजाऊ है ? और उसका कोई मालिक भी है कि नहीं ? ॥ १२ ॥ इत्यादि इसके जो जो भाव या प्रश्न हैं, उस विषयमें हम सांगोपांग सविस्तर वर्णन करते हैं, तुम सुनो ॥ १३ ॥ हे पार्थ ! इन प्रश्नोंके विषे वेद भी निरंतर बकवाद करते रहते हैं और तर्कशास्त्रकी वाचालता सदैव चल रही है ॥ १४ ॥ इसी विषयपर छहों दर्शन लडते लडते आखिरी सीमातक पहुँच गये हैं, किन्तु अभीतक उनका मतैक्य ( द्वन्द्वोंका ऐक्य ) नहीं हुआ ॥ १५ ॥ इस वस्तुविषे शास्त्रोंका आपसंबंध टूट रहा है, और इसी एक वस्तुके कारण संसारभरमें अभीतक अखंड वादविवाद चालू ही है ॥ १६ ॥ इस विषयमें किसी प्रकार एकसे दूसरेका मुख नहीं मिलता, एकसे दूसरेका मत जमता नहीं । सारांश हे पार्थ ! केवल अपने-अपने मतका ऊहापोह ( युक्ति ) करते करते सब हार रहे हैं, निष्पन्न तो कुछ नहीं ॥ १७ ॥ क्षेत्रका मालिक कौन है, यह तो किसीसे निश्चित नहीं होता, परन्तु अहंकार इतना बलवत्तर भरा रहता है, कि, घर घरमें इसी विषयपर सिर पचाते रहते हैं ॥ १८ ॥ पाखंडियोंके साथ मुकाबला करनेमें वेदोंने अपना विस्तार बढा दिया, तब उन नास्तिकोंने वेदोंके विरुद्ध मनमाना बकवाद करना ही शुरू किया ॥ १९ ॥ वे पाखंडी वेदोंसे कहते हैं कि, " तुमने निरर्थक और निराधार असत्य शब्द-पांडित्य फैलाया

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


है, यदि यह हमारा कथन असत्य समझते हो तो, हम शर्त लगाते हैं कि, तुममें सामर्थ्य हो और अपने वचनोंका विश्वास हो तो यह पूगीफल ( शर्त ) उठाओ और अपना कहना सिद्ध करो " ॥ २० ॥ पाखण्डी बनकर कितने तो दिगम्बर ( वस्त्रहीन ) हुए हैं, कोई अपना माथा मुँडाते हैं, तथापि उनके वितण्डावाद ही उन्हें धूलिमें मिला देते हैं ! ॥२१॥ मृत्युके असीम सामर्थ्यके आगे यह क्षेत्र व्यर्थ नष्ट होता है, इस डरसे योगी आगे आते हैं, ॥ २२ ॥ और मृत्युके डरके मारे वे योगी एकान्त ( निर्जन ) में जाकर केवल यम-नियमादिकोंके उपाधिरूप समूहोंको जमाते हैं ॥ २३ ॥ इसी देह-क्षेत्रकी विवंचनाके लिये और अभिमानके कारण श्रीशंकरने शिवलोकके राज्यको त्यागा, और जहां-तहांकी उपाधियोंसे घबराकर श्मशान भूमिमें निवास-स्थान बना दिया ॥ २४ ॥ शंकरकी प्रतिज्ञा तो ऐसी तीव्र थी कि, उसने दशों-दिशाओंको आच्छादन ( वस्त्र ) किया और यह काम जो दुनियाको छलनेमें बडा निर्लज्ज है उसको भस्मसात् करडाला ॥ २५ ॥ ब्रह्मदेवको भी इस वस्तुका निश्चय न होता देख, उसे चार मुख उत्पन्न हुए, तथापि इस विषयमें अभीतक किंचित् भी उसे यथार्थ ज्ञान न प्राप्त भया ॥ २६ ॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

कोई कहते हैं कि, यह देहक्षेत्र पहलेसे संपूर्ण जीवका ही स्थल है,और प्राण जो है वह इस खेतको करनेवाला जीवका असामी ( व्यवस्थापक ) है ॥२७॥ और इस प्राणके घरमें अपान, व्यान, समान और उदान ये मददगार चार उसके भाई हैं और मन इन सबके ऊपर देख-भाल करनेवाला किसानी-नौकर है ॥ २८ ॥ वह किसान दश इन्द्रियरूपी संदूकको जोडकर, किसी प्रकारकी विश्रांति न लेता हुआ, अर्थात् रात-दिनको भी न जानता हुआ विषयरूपी खेतमें निरन्तर अपार मिहनत करता रहता है ॥२९॥ इस प्रकार उस पिटारा-द्वारा विषयरूपी मिट्टीको खींचता रहनेके कारण,उसकी कर्तव्यकर्मरूपी ऊब(गरमी) गवाँ देता है और अन्यायरूपी बीज बो देता हुआ कुकर्मरूपी खाद डालता है॥३०॥ फिर तदनुसार ही उसमें पापोंकी ऐसी फसल आती है, कि इस जीवको करोडों जन्मतक दुःखही दुःख भोगना पडता है ॥३१॥ परन्तु इसप्रकार न कर यदि वह शास्त्राज्ञाकी ऊब ( उष्णता ) में सत्कर्मरूपी बीज बोवे तो वह जीव सैंकडों जन्मतक सुखको ही भोगता रहेगा ॥ ३२ ॥ इसपर दूसरे कहते हैं कि, ऐसा



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कहना कभी भी नहीं बनता । यह क्षेत्र जीवका ही है ऐसा समझना केवल अज्ञान है । इस विषयमें जो कुछ पूँछना हो सो हमहीसे पूँछो ॥ ३३ ॥ महाराज ! यह जीव कोई एक प्रवासी है, वह चलते-चलते रास्तेमें इस क्षेत्रमें क्षणिक आ बैठता है और प्राण इस क्षेत्रका हकवाला नौकर होनेसे पहरा देता हुआ हमेशः जागता रहता है ॥ ३४ ॥ सांख्यशास्त्रमें जिसे 'अनादि प्रकृति' कहा जाता है, वास्तवमें उसीको इस क्षेत्रकी वृत्तिवाली तुम समझो ॥ ३५ ॥ और उसीके घर यह सब खेतीका समुदाय उपस्थित रहता है, उसकी सहायतासे वह स्वयंही इस क्षेत्रको जोतती है ॥ ३६ ॥ इस संसारमें जो बिलकुल पहलेसे इस खेतीके काममें अत्यंत निपुणता प्राप्त हुए तीन गुण हैं, वे इसी प्रकृतिके पेटसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३७ ॥ उन गुणोंमें रजोगुण बोनी करता है, सत्त्वगुण रक्षण करता है और तमोगुण यथासमय इसकी कटाई करता है ॥ ३८ ॥ फिर महत्तत्वका आँगन बनाकर उसमें वह सब इकट्ठा करके, केवल कालरूपी एकही बैलद्वारा उसकी खुदवानी कराता है, इतनेमें वहां अव्यक्तरूपी संध्या आ उपस्थित हो जाती है ॥ ३९ ॥ इतनेमें दूसरे कोई अहंमन्य इन वचनोंका तिरस्कार करते हुए कहने लगे कि, ये सब कोटिक्रम या कल्पनायें अर्वाचीन हैं ॥ ४० ॥ अजी ! सुनिये, परतत्त्व अर्थात् ब्रह्ममें, प्रकृतिकी वार्ता ही कहां है ? इसलिये, तुम कालक्षेप न करके इस क्षेत्रका स्पष्टीकरण चुपचाप हमसे ही सुनलो ॥ ४१ ॥ अव्यक्त ( शून्य ) रूपी शय्यागृहमें लयरूपी पटियापर जो आदिसंकल्प घोर-निद्रामें सो रहा था, ॥ ४२ ॥ वह एकाएक जाग उठा, और स्वभावतःही वह उद्योगी और चंचल रहनेके कारण, उसने अपनी इच्छानुसार इस विश्वकी सामग्रीका संचय इकट्ठा किया ॥ ४३ ॥ और निराकार परब्रह्मकी जो त्रिभुवनरूपी बाडी खाली पडी थी, आदिसंकल्परूपी उद्यमीने अपने उद्योगसे उस बाडीको खूब हरीभरी बना दिया ॥ ४४ ॥ फिर उसने महाभूतरूपी बांजरको चहुँओरसे घेरकर उसके भूतसमुदायरूपी व्यवस्थित चारभाग बना दिये । इन चार जारज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्जको ही भूतग्राम समझो ॥ ४५ ॥ इसके अनंतर पञ्चमहाभूतोंके एकीकरणको तोड, उसके अलग-अलग पांचभौतिक भेदोंकी बँधिया बनाकर, ॥ ४६ ॥ उसके दोनोंओर कर्म और अकर्मरूपी पत्थरोंका बँधारा बना दिया । फिर उसमें ऊसर, वञ्जर, अरण्य इत्यादि भाग बना दिये ॥ ४७ ॥ और इस प्रदेशमें हमेशः आनेजानेके लिये, उस संकल्पने जन्म और मृत्युरूपी दो सुरंग ( भुयार ) बना दिये, जो कि इस सृष्टिसे लेकर निरालम्ब ब्रह्मतक पहुँचा सकते हैं ॥ ४८ ॥ फिर इस आदिसंकल्पने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अहंकारके साथ अपना मेलकरके बुद्धिके साथ अहंकारका ऐक्य बना दिया और वह युक्तिसे बुद्धिद्वारा ही इस चराचर विश्वका संपूर्ण व्यापार जन्म-भर कराता रहता है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार प्रथमतः निर्गुण निरालम्ब ब्रह्ममें आदिसंकल्परूपी अंकुर प्रादुर्भूत हुआ और इस जगन्मण्डलमें उसकी अनेक शाखोपशाखायें भी प्रसृत हुई, इस कारण वह आदिसंकल्पही इस प्रपंचका मूलकारण सिद्ध होता है ॥ ५० ॥ इसप्रकार संकल्पवादियोंका मत सुनते ही आवेशमें आकर पराभव करनेके हेतुसे एकमत-वादियोंने कहा, वाहवा ! आप क्यों कह रहे हो ? कुछ विचार भी आपके पास है ? ॥ ५१ ॥ अजी ! परब्रह्मके यहां यदि संकल्पकी शय्याकी कल्पना करनी हो, तो फिर सांख्य-मतवाली प्रकृति उस संकल्पके जगह माननेमें तुम्हारा क्या बिगडा ? तुमने विशेष क्या कहा ? ॥ ५२ ॥ परन्तु जाने दो । इतना ही निश्चित समझो कि यह कहना ठीक नहीं है । सभ्यो ! इनके मतसे कुछ निर्णय नहीं होसकता । अब इस विषयकी सच्ची व्युत्पत्ति हम स्पष्ट कर देते हैं ॥ ५३ ॥ आकाशमें मेघोंको कौन भरने जाता है ? आकाश और तारोंको कौन थँभाता रहता है ? ॥ ५४ ॥ आकाशका चँदोवा किसने और कब तना दिया था ? वायुको निरंतर घूमते रहनेकी किसने आज्ञा दी ? ॥ ५५ ॥ बालोंको किसने बोया था ? समुद्रको इतने जलसे किसने भराया ? वर्षाकी धारायें कौन बनाता है ? ॥ ५६ ॥ यह सब जैसे अपने स्वभाव-धर्मसे आपही आप बन-रहा है, उसीप्रकार यह देहक्षेत्र भी स्वभावतः आपही सिद्ध है । यह किसी एककी विशिष्ट-वृत्ति नहीं; जो इसको जोतेगा उसे वह फलेगा, दूस-रेको नहीं । अर्थात् दूसरेको उसका लाभ नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥ इस प्रकारका उनका कथन श्रवण कर, बडे अहंकारके साथ दूसरे बोले—हां ! यदि आपका ऐसा कथन है, तो फिर इस देहक्षेत्रपर केवल अकेले कालकी ही क्यों सत्ता है ? ॥ ५८ ॥ और उसकी वह अनिवार्य सत्ता-जिसका हमेशः आघात होरहा है—उसको देखकर भी आप अपने मतका वृथा ही अभिमान करते हो ? ॥ ५९ ॥ महाराज ! यह मृत्यु, क्रोधरूपी सिंहकी गुफा ही समझो, परन्तु क्या किया जाय ? तुम्हारे सरीखे बकवादियोंके सामने कोई पूरा पड सकता है ? तुमलोग कभी माननेवाले हैं ? ॥ ६० ॥ अजी ! इस कालको तुमलोग क्या समझे हो ? यह महाकल्पके पार जाकर, अपनी लपेटमें सत्यलोकके उत्तमलोगोंको भी, सिंह जैसा हाथीको लपेटता है तद्वत् अपने वश करलेता है ॥ ६१ ॥ यह कालरूपी सिंह स्वर्गके अरण्यमें घुस-कर नित्य नये-नये लोकपालों और दिग्गजोंके समुदायोंका संहार करता है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ६२ ॥ और अन्य जो दुर्बल जीवरूपी हरिण इत्यादि हैं, वे तो इस कालसिंहके अंगवायुसे ही निर्जीव होकर जन्म-मृत्युरूपी गर्तमें पडकर घूमते रहते हैं ॥ ६३ ॥ देखो तो सही, इस कालसिंहने कितना बडा मुँह पसार रखा है! इसमें वह विश्वाकार-हाथीको पकडकर उसे दबा रहा है॥६४॥ इस कारण, इस देहरूपी क्षेत्रपर, एक कालकी ही सच्ची सत्ता है, ऐसा हमारा निश्चित मत है । हे पार्थ ! इसप्रकार इस क्षेत्रके विषयमें अनेक वाद या पक्ष हो चुके हैं ॥ ६५ ॥ नैमिषारण्यवासी ऋषियोंने भी इस विषयपर बहुत भवति न भवति की है । और पुराण ग्रन्थ भी इसके अभिप्रायमें प्रमाण हो चुके हैं ॥६६॥ अनुष्टुप् इत्यादि छन्दोंमें तथा अनेक प्रबन्धोंमें जो इस विषयकी विविध चर्चा की गयी है, उसका आधार भी बडे आवेशके साथ अभीतक लिया जाता है, ॥ ६७ ॥ वेदोंमें बृहत्सामसूत्रको ज्ञान-दृष्टिसे बडा पवित्र माना जाता है, परन्तु उस बृहत्सामको भी इसका पूरा ज्ञान नहीं भया ॥ ६८ ॥ इसके अतिरिक्त कई दूरदर्शी महाकवियोंने भी अपना बुद्धि-सामर्थ्य इस विषयमें लगादिया है, ॥ ६९ ॥ परन्तु यह ऐसा है, इतना है, और वह किसी अमुक एकका है, यह बात किसीसे भी निश्चित नहीं हुई ॥ ७० ॥ अब इसपर, हम यह क्षेत्र जैसा है, उस विषयमें तुम्हें साद्यंत वर्णन कर बताते हैं, तुम सुनो ॥ ७१ ॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

पञ्चमहाभूतोंका समुदाय और एक अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त दश इन्द्रियां, ॥ ७२ ॥ और ग्यारहवाँ एक मन । तथा दश विषय और सुख, दुःख, द्वेष, इच्छा, ॥ ७३ ॥ चेतना और धृति इन सबका जो व्यक्त स्वरूप वही क्षेत्र समझो अर्थात् ये तत्त्व क्षेत्रव्यक्तिमें रहते हैं । यह क्षेत्रतत्त्वकी नामावली तुम्हें सुना दी है ॥ ७४ ॥ अब महाभूत कौन हैं, विषय कौन हैं, इन्द्रियें कैसी होती हैं, सो सब पृथक् पृथक् तुम्हें बता देते हैं ॥ ७५ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पञ्च महाभूत हैं ॥ ७६ ॥ जागृतावस्थामें जैसी स्वप्नावस्था छिपी रहती है, अथवा अमावास्याके दिन जैसा चंद्रमा गुप्त रहता है, ॥ ७७ ॥ किंवा तरुणावस्था जैसी छोटे बालकके पास आ छिपी रहती है, अथवा फूल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


नेकी स्थितिको प्राप्त हुई कलिकामें जैसी सुगंध लुप्त रहती है ॥ ७८ ॥ हे पार्थ ! बहुत क्या कहा जाय, काष्ठमें जैसी अग्नि गुप्त रहती है उसी प्रकार जो प्रकृतिके पेटमें छिपा हुआ रहता है ॥ ७९ ॥ और फिर, जिस प्रकार शरीरस्थ रुधिरादि धातुगत ज्वर कुपथ्यके मिसकी बाट देखता रहता है, और कुपथ्य होते ही जैसा एकसाथ अन्तर्बाह्य फैल जाता है, ॥ ८० ॥ उसी प्रकार जब इन पांचों भूतोंका एकत्र मेल होता है, और देहाकृति प्रकट होती है, तो तत्काल उसी क्षण ही, उस देहको जो चारोंओरसे नचाने लगता है, हे पार्थ ! उसे अहंकार समझो ॥ ८१ ॥ इस अहंकारकी बात तो ऐसी विलक्षण है कि, वह विशेषकरके अज्ञानियोंके पीछे नहीं लगता, परन्तु ज्ञानियोंके गलेको ऐसा पकड रखता है कि उससे छुटकारा होनाही कठिन होता है, इतनाही नहीं वरन् उन्हें अनेक संकटोंमें डालता रहता है ॥ ८२ ॥ इसके बाद, यदुराज श्रीकृष्णने कहा, हे पार्थ ! सुनो; जिसे 'बुद्धि' कहा जाता है, उसे इन लक्षणोंसे जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ कामके बलसे और इन्द्रियवृत्तिके समागमसे विषयोंके समुदाय अन्दर घुस जाते हैं, ॥ ८४ ॥ और जब उनके संगके कारण जीवको सुख दुःखकी प्राप्तिका अनुभव होता है, तब दोनों-सुखदुःखोंकी जो उत्तम प्रकारसे चुनाव करनेमें तुल्यता दिखाती है, ॥ ८५ ॥ जैसे कि यह सुख, यह दुःख है; यह पुण्य, यह पाप है; यह निर्मल, यह मलिन है; इस प्रकार जो निर्णय करती है, ॥ ८६ ॥ तथा जिसके कारण भला-बुरा जाना जाता है, छोटा-बडा जाननेका ज्ञान आता है और जिसकी दृष्टिसे जीवको विषयोंके पहँचाननेका ज्ञान आता है ॥ ८७ ॥ जो ज्ञानतेजकी आदिकारण है, जो सत्त्वगुणकी वृद्धि करानेवाली है, तथा जो आत्मा और जीव दोनोंका मिलान कर सकती है, ॥ ८८ ॥ हे पार्थ ! ऐसी योग्यतावालीको तुम 'बुद्धि' समझो । अब अव्यक्त-प्रकृतिके लक्षण तुम सुनो ॥ ८९ ॥ हे महामतिमान् पार्थ ! सांख्यशास्त्रमतवादियोंके सिद्धान्तमें जिसे प्रकृति कहा जाता है, सांप्रत उसे ही यहां अव्यक्त-संज्ञा दी गयी है ॥ ९० ॥ तथा सांख्यशास्त्र और योगशास्त्रके मतानुसार हमने जो तुम्हें ( सातवें अध्यायमें ) प्रकृतिके दो प्रकार वर्णन कर बताये थे, ॥ ९१ ॥ उनमेंसे दूसरा प्रकार जो 'जीव प्रकृति' जिसे जीवदशा ( ज्ञानदेवी, ७ । १९ में ) कहा था, उसीको हे पार्थ ! यहां पर्यायसे 'अव्यक्त' यह नाम दे दिया है ॥ ९२ ॥ रात्रिकी समाप्ति होकर प्रातःकाल होते ही जैसे नक्षत्र आकाशमें ही गुप्त होते हैं, अथवा सूर्यास्त होते ही जैसे प्राणिमात्रोंके व्यवहार आप ही बंद होजाते हैं, ॥ ९३ ॥ अथवा हे अर्जुन ! देहके छोडनेपर जैसे देह इत्यादि सब उपाधियां कृतकर्मरूपी संदूकमें गुप्त हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जाती हैं ॥ ९४ ॥ किंवा बीजके स्वरूपमें जैसा सम्पूर्ण वृक्ष गुप्तास्थितिमें समा रहता है अथवा वस्त्ररूपसे जैसा तन्तु वस्त्रमें लीन रहता है ॥ ९५ ॥ उसी प्रकार सब स्थूलधर्म छोडकर महाभूत और भूतग्राम ( प्राण–समूह ) सूक्ष्म-रूप होकर जहां लीन हो जाते हैं ॥ ९६ ॥ हे पार्थ ! उसीको ' अव्यक्त ' कहा जाता है। अब सम्पूर्ण इंद्रियोंके भेदका वर्णन करता हूं तुम सुनो ॥९७॥ कान, आँख, त्वचा, नाक और जिह्वा ये पांच ज्ञानेन्द्रिय कहे जाते हैं ॥९८॥ इन पांचोंका तत्त्वमेल होते ही, इनके द्वारा बुद्धि सुख-दुःखका विचार करती है ॥ ९९ ॥ इनके अतिरिक्त वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदद्वार ये पांच प्रकार हैं ॥ १०० ॥ कैवल्यपति श्रीकृष्ण कहते हैं, इन्हीं पाचोंको कर्मेंद्रिय भी कहा जाता है ॥ १ ॥ हे पार्थ ! प्राणकी स्त्री जो ' क्रिया-शक्ति ' वह शरीरमें रहकर इन पञ्चकर्मेंद्रियोंद्वारा आवागमन करती रहती है ॥ २ ॥ इस प्रकार पञ्च ज्ञानेंद्रिय और पञ्च कर्मेंद्रियोंका वर्णन किया। अब जिसे मन कहा जाता है, उसका स्पष्टीकरण हम करते हैं, तुम सुनो ॥ ३ ॥ इन्द्रियें और बुद्धि इनके बीचकी जो संधि है, उसमें रजोगुणके कन्धेपर चढकर जो खेलता रहता है, ॥ ४ ॥ आकाशकी नीलिमा या सूर्यकिरणकी जैसी मृगजल–लहरें वृथा ही भासमान होती हैं, तद्वत् वह वृथा वायुरूप हो चमकता है ॥ ५ ॥ और पुरुषका शुक्र व स्त्रीका रुधिर इनका मेल होते ही जो पञ्चतत्त्वका आकार बनता है, उसमें वह एक ही वायुतत्त्व दश प्रकारसे हो जाता है ॥ ६ ॥ फिर वे दशविध वायुभाग अपने–अपने विशिष्ट धर्मोंसे युक्त होकर शरीरके दशों भागोंमें अलग–अलग जा बसते हैं ॥ ७ ॥ उसमें एक केवल निरी चञ्चलता ही रहती है, इस कारण वह रजोगुणका बल प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ वह उसका चञ्चलत्व बुद्धिके बाहर और अहंकारसे मिला हुआ बीचमें रहनेके कारण प्रबल बनता है ॥ ९ ॥ उसको ' मन ' कहना व्यर्थ है । वास्तवमें विचार किया जाय, तो वह मूर्तिमती कल्पना समझनी चाहिये, कारण जिसके संगसे परब्रह्म–वस्तु जीवदशाको प्राप्त हुई दिखायी देती है, ॥ ११० ॥ जो माया–प्रकृतिका आदिकारण है, जिससे कामवासनाको बल चढता है, जो अहंकारके साथ नित्य स्पर्धा करता है ॥ ११ ॥ जो इच्छाको बढाता रहता हुआ आशाको चढाता है और भयको पुष्ट करता रहता है, ॥ १२ ॥ जो द्वैतको उत्पन्न करता है, जो अविद्या को बलवती बना देता है और इन्द्रियोंको जो विषय-गर्तोंमें गिरा देता है, ॥ १३ ॥ जो केवल संकल्पोंसे ही सृष्टि-रचना करता है और अपनी इच्छासे विकल्पोंद्वारा सहज ही उसका नाश भी कर देता है । तथा इच्छानुसार मनोरथोंके घटोंको एकपर एक चढा देता है और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



लीलासे ही उन्हें गिरा देता है ॥ १४ ॥ जो भूलका गहरा भाण्डार या गढा है, वायुतत्त्वका अंतःसार है और जो बुद्धिके द्वारको बन्द कर देता है; ॥१५॥ हे किरीटी ! उसे ही ' मन ' समझना चाहिये । इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं करना । अब जिन्हें विषय कहते हैं, उनक भेद श्रवण करो ॥ १६ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच प्रकारके पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंके पांच विषय हैं ॥ १७ ॥ हरा सुन्दर चारा देखकर जैसे कोई जानवर उत्कंठाके साथ दौडजाता है, तद्वत् इन पांचों द्वारोंसे ज्ञान बाहर दौडता ह ॥ १८ ॥ अब स्वर, व्यंजन और विसर्गका उच्चारण करना, वस्तुका ग्रहण करना, अथवा छोडना, चलना और मल-मूत्रोत्सर्ग करना ये पाँच कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं, जिनका रास्ता बनाकर उसके आधारसे प्रत्येक क्रियाकी बाहर जानेकी प्रवृत्ति होती है ॥ १९ ॥ १२० ॥ इस प्रकार शरीरमें दश विषय हैं । अब इच्छाका वर्णन करते हैं ॥ २१ ॥ जिस प्रवृत्तिसे किसी पिछली बातका स्मरण होता है, अथवा किसी बातका कानमें शब्द सुनाई देते ही जो भावना क्षुब्ध होती है; ॥ २२ ॥ जो इन्द्रिय और विषयोंकी भेंट होते ही कामका हाथ पकड खडी रहती है; ॥ २३ ॥ जिसके उठते ही मन घबराकर इधर-उधर दौडने लगता है, और जहां पैर रखना भी अनुचित, वहां इन्द्रियें मुँह डालती हैं; ॥ २४ ॥ जिस भावनाके प्रेमसे बुद्धि पागल बन जाती है, और जिसे विषयोंमें अत्यंत प्रेम रहता है, हे पार्थ ! ऐसी जो भावना उसे तुम ' इच्छा ' समझो ॥ २५ ॥ और इच्छानुसार जब इन्द्रियोंको विषयोपभोगका लाभ प्राप्त नहीं होता, तब विषयोपभोग न मिलनेसे जो स्थिति ( विकार ) प्राप्त होती है, उसीको ' द्वेष ' समझो ॥ २६ ॥ अब जिसको सुख कहा जाता है, उसका वर्णन सुनो, जिस एककी प्राप्तिके कारण जीव संपूर्ण बातें भूल जाता है, ॥ २७ ॥ मन, वाणी और देहको जो अपनी शपथ दे बाँधता है, जो देहकी स्मरणशक्तिको मिटा देता है; ॥२८॥ जो उत्पन्न होते ही प्राणको पंगु बना देता है और सात्त्विक भावोंको जो दुगुनेसे भी अधिक लाभ करा देता है; ॥ २९ ॥ इसके अतिरिक्त सब इन्द्रियवृत्तियोंको हृदयके एकान्तस्थानमें शान्ततापूर्वक थपकी देता हुआ सुलाता है; ॥ १३० ॥ इतना ही नहीं, बरन् जीवको आत्म-स्वरूपके मार्गका जिस अवस्थामें लाभ होता है, उस समय जो भासमान होता है, हे पार्थ ! उसे तुम ' सुख ' समझो ॥ ३१ ॥ और हे पार्थ ! ऐसी अवस्थाका लाभ न होते हुए जो जीवित रहना है, उस अवस्थाको तुम सर्वथा ' दुःख ' समझो ॥ ३२ ॥ संकल्प-विकल्पोंमें अर्थात् वासनासंगके कारण सुख नहीं होता, परन्तु संकल्प-विकल्पोंके अभावमें—वासनाक्षयमें—सुख सिद्ध

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


ही है । अतएव सुख और दुःखमें अनुक्रमसे संकल्प-विकल्पोंका अभाव और भाव ये ही दो कारण संभवते हैं ॥ ३३ ॥ हे पाण्डुसुत ! इस देहमें संगहीन और साक्षीभूत चैतन्यकी जो सत्ता रहती है, उसे ' चेतना ' कहते हैं ॥ ३४ ॥ जो नखसे लेकर शिरके बालोंतक संपूर्ण शरीरमें निरंतर खडी जागती रहती है और जो जागृति आदि तीनों अवस्थाओंमें नहीं बदलती-अखंडरूप रहती है; ॥ ३५ ॥ मन, बुद्धि आदि जिससे हरेभरे रहते हैं, और प्रकृतिरूपी वनके लिये जो वसन्त—लक्ष्मी ही है; ॥ ३६ ॥ जो सजीव-निर्जीव यानी स्थावर-जंगममें अंशभेदसे ( न्यूनाधिकप्रमाणसे ) सदैव संचार करती रहती है, वह ' चेतना ' है इसमें असत्यका लेश भी नहीं, तुम इसे सत्यही समझो ॥ ३७ ॥ देखो, राजा या उसके परिवारको वास्तवमें सैनिकोंका ज्ञान नहीं रहता, परन्तु जैसे उसकी आज्ञाही परचक्र ( शत्रु ) को जीतती है अथवा चंद्रमा संपूर्ण कलाओंसे युक्त होते ही जैसे समुद्रमें आपही आप बाढ आती है; ॥ ३८ ॥ अथवा चुम्बक-मणिके पास आते ही जैसे लोहामें चेतना आजाती है, किंवा सूर्योदय होते ही जैसे लोग जागकर अपने-अपने व्यवहार करने लगते हैं; ॥ ३९ ॥ अथवा हे पार्थ ! स्तनोंमें बच्चोंका मुख लगाये बिना कूर्मी ( कच्छपी ) के केवल दृष्टिके निरीक्षणसे ही, जैसे उसके बच्चोंका पोषण होजाता है; ॥१४०॥ उसी प्रकार हे अर्जुन ! आत्माकी संगति, इस शरीरमें रहकर जडको सजीवताका लाभ प्राप्त करा देती है; ॥ ४१ ॥ उसीको तुम ' चेतना ' समझो । अब धृतिका वर्णन करते हैं, सावधान होकर श्रवण करो ॥ ४२ ॥ हे पार्थ ! क्या तत्त्वोंमें परस्पर स्वभावजन्य वैर नहीं है ? देखो जल क्या पृथ्वीका नाश नहीं करता ? ॥४३॥ तथा जलको भी अग्नि ( तेज ) जला सकती है, तेज ( अग्नि ) के साथ वायु झगडती रहती है और आकाश वायुको निगल डालता है ॥४४॥ और वह आकाश किसीके साथ मेल तो करता नहीं, परन्तु सबमें घुसा हुआ स्वयं स्वतंत्र ही रहता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार ये पांचों भूत परस्परमें वैरभावसे ही रहते हैं, तथापि इस शरीरक्षेत्रमें सब एक होजाते हैं ॥ ४६ ॥ इतना ही नहीं, वरन् अपने स्वाभाविक वैरको छोड अथवा वाद न कर, एक दूसरेको अपने गुणसे पोषक बन जाते हैं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार वास्तवमें जिनका सख्य नहीं है, जिनका मेल होना असंभव है, वह मेल जिस धैर्यके कारण बनता है और निश्चित रहता है, हे पार्थ ! उसे ' धृति ' समझो, यह मेरा निश्चित मत है ॥ ४८ ॥ और हे अर्जुन ! जीवसमेत इन छत्तीस तत्त्वोंका जो एक मेल रहता है, उसे तुम ' संघात ' जानो ॥ ४९ ॥ इस प्रकार हमने तुम्हें छत्तीस तत्त्वोंके लक्षणोंका स्पष्टीकरण कर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बताया है, इन सबका जो मेल उसीको तुम 'क्षेत्र' समझो ॥ १५० ॥ हे पाण्डव ! रथके अलग-अलग भाग रहते ही जैसे सब अंग मिलनेपर उस समुदायको ही रथ कहा जाता है, अथवा ऊपरके और नीचेके सब अवयवोंके संचाको जैसे देह संज्ञा है, ॥ ५१ ॥ किंवा हाथी, घोडे इत्यादि चतुरंगके समुदायको जैसे सेना कहा जाता है, या अक्षरोंके समूहको जैसे वाक्य कहा जाता है, ॥ ५२ ॥ अथवा जलधरों ( मेघों ) के समुदायको जैसे अभ्र कहते हैं, किंवा संपूर्ण लोकसमुदायको जग कहा जाता है ॥ ५३ ॥ अथवा तैल, वर्त्तिका और अग्निके एकस्थानमें मिलाप करनेपर जैसे संसारमें दीपक बन जाता है, ॥ ५४ ॥ उसी प्रकार ये छत्तीसों तत्त्व जिससे एकरूप होते हैं, उन सबोंके समुदायको 'क्षेत्र' कहा जाता है ॥ ५५ ॥ और इन पञ्चमहाभूतोंके समुदायका जो निरंतर इसमें व्यापार चलता है, उससे पाप और पुण्य पकता है, इसलिये हम भी इसे कुतूहलसे 'क्षेत्र' कहते हैं ॥ ५६ ॥ कोई-कोई इसे देह भी कहते हैं, अब इस विषयको बढाना ठीक नहीं, कारण इसके अनेक नाम हैं ॥ ५७ ॥ परन्तु परब्रह्मके इस ओर, और स्थावर ( जड ) की मर्यादातक जो कुछ होता जाता रहता है, वह सब क्षेत्रही है ॥ ५८ ॥ परन्तु उसमें देव, मनुष्य, सर्प इत्यादि योनिभेद जो दिखायी देते हैं वे सत्त्व, रज और तमोगुणके कर्म और गुणके संगके कारण उत्पन्न होते हैं ॥ ५९ ॥ हे पार्थ ! इन गुणोंका वर्णन आगे करदेंगे, अब हम ज्ञानका वर्णन स्पष्ट कर देते हैं ॥ १६० ॥ क्षेत्रका वर्णन उनके विकारोंसहित हम विस्तारसे कर चुके, अब शुद्ध और श्रेष्ठ ज्ञानका वर्णन सुनाते हैं, सावधान होकर सुनो ॥ ६१ ॥ जिस ज्ञानकी प्राप्तिके लिये योगी लोग स्वर्गका आडा-टेढा मार्ग लाँघकर आकाशको निगल डालते हैं, ॥ ६२ ॥ ऋद्धि-सिद्धिके मोहमें नहीं फँसते, और योग-साधनके समान कठिनतर मार्गको भी तुच्छ समझते हैं, ॥ ६३ ॥ तपके कठिन दुर्गों ( किलों ) को उल्लंघन करते हैं, करोडों यज्ञयागोंकी निछावर कर डालते हैं और संपूर्ण कर्मकाण्डको उलट पुलटकर जडमूलसे फेंक देते हैं॥६४॥ किंवा कोई भजन-मार्गमेंसे निकलकर खुले देह दौडते हुए सुषुम्नानाडीके सुरुंगमें घुसजाते हैं ॥ ६५ ॥ इसप्रकार जिस ज्ञान-प्राप्तिके लाभार्थ बडेबडे मुनीश्वर लोग आशावादी बनकर वेद-वृक्षके पत्ते-पत्तेमें लटकते रहते हैं,॥६६॥ हे पार्थ ! यह सब इस विचारसे कि, कभी भी वह ज्ञान प्राप्त होजाय ! ऐसी आशासे सैंकडों जन्म गुरुसेवामें खर्च करते हैं ॥ ६७ ॥ जिस ज्ञानके प्राप्त होते ही, अविद्या आपही आप चली जाती है, और जीव तथा आत्माका एकवाक्यतारूपी मिलन होजाता है ॥ ६८ ॥ जो ज्ञान इन्द्रियोंके द्वार बंदकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


देता है, प्रवृत्तिके पैर तोड डालता है और मनके दुःखको निकाल देता है ॥ ६९ ॥ जिस ज्ञानके कारण द्वैतका दुकाल होजाता है अर्थात् द्वैत भासता ही नहीं और समभावनाका-ऐक्यका-सुकाल उत्पन्न होजाता है ॥१७०॥ जो ज्ञान प्राप्त होतेही मदका स्थान नष्ट होजाता है, बलवान् मोहको जो निगल डालता है और 'यह मैं यह दूसरा' इस प्रकारके भेदभावका नामतक नहीं रहने देता ॥ ७१ ॥ जो संसारको समूल उखाड डालता है, संकल्प-रूपी कीचडको साफ धोडालता है और आकलनमें न आनेवाले सर्व-व्यापक परब्रह्मकी सहजहीमें भेंट करा देता है ॥ ७२ ॥ जिसके उदय होते ही प्राण पंगु बनजाता है और जो अपने चातुर्यसे ही जगत्के व्यापारको चलाता है ॥ ७३ ॥ जिस ज्ञानके प्रकाशसे बुद्धिकी आँखें खुलजाती हैं और जीव आनंदकी राशिपर लोट-पोट करता रहता है ॥ ७४ ॥ ऐसा जो ज्ञान पवित्रताका जो आश्रयस्थान जिससे दोषोंमें चिथडा हुआ मन परम पवित्र हो जाता है, ॥ ७५ ॥ आत्माको जो जीवबुद्धिरूपी क्षयरोग लगा रहता है, वह आत्मा इस ज्ञानकी प्राप्ति होते ही निरोगी हो जाता है ॥ ७६ ॥ हे पार्थ ! ऐसा जो ज्ञान, जिसका वर्णन करना शक्य नहीं, तथापि हम जो उसका वर्णन करते हैं, उसे सुनकर बुद्धि ही जान सकती है, इसलिये उसे बुद्धिमें ही रखना होगा, कारण वह आँखोंसे दिखायी दे ऐसी वस्तु नहीं है ॥ ७७ ॥ परन्तु वह ज्ञान जब एकबार बुद्धिमें आकर शरीरमें अपना प्रभाव प्रकट करता है, तब इन्द्रियोंके व्यापारोंमें वह आँखोंसे भी दिखाई देता है ॥ ७८ ॥ वृक्षोंके हरे-भरेपनसे जिस प्रकार वसंत-ऋतुके आगमनका ज्ञान होजाता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंके समझदार-व्यापारोंसे ही ज्ञानका बोध हो सकता है ॥७९॥ देखो अर्जुन ! वृक्षोंकी जडको भूमिके पेटमें जो जल मिलता है, वह जैसे उस वृक्षकी शाखाओंद्वारा जैसा बाहर जाना जाता है ॥ १८० ॥ अथवा पृथ्वीकी मृदुता जैसे उसमेंसे निकले हुए अंकुरोंकी कोमलतासे अनुभूत होजाती है, किंवा उत्तमकुलमें जन्मे हुए पुरुषकी योग्यता जैसे उसके आचरणसे विदित होती है, ॥ ८१ ॥ अथवा आदर-सत्कारकी तैयारीकी गडबडसे जैसे स्नेह स्पष्ट होता है, किंवा शांत और गंभीर-मुद्रासे जैसे पुण्यवान् पुरुष पहँचाना जाता है; ॥८२॥ अथवा कर्पूर-कदलीके वनमें सुगंधसेही जैसी कर्पूरकदली जानी जाती है, अथवा शीशेके बर्तन ( फाणस ) में रखे हुए दीपकसे जैसे प्रकाश बाहर प्रकट दिखाई देता है, ॥ ८३ ॥ उसी प्रकार शरीरमें आन्तरिक ज्ञान प्राप्त होनेसे उसके जो बाहर चिह्न प्रकट दिखाई देते हैं, उनके लक्षण वर्णन करते हैं, तुम ध्यानके साथ सुनो ॥ ८४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

किसी भी लौकिक-विषयमें एकसाथ मिलजाना ( उसमें गढ जाना ) जिसे नहीं भाता, लोगोंमें संभावितपनेका बडप्पन दिखाना जिसे बोझासा जान पडता है, ॥ ८५ ॥ अपनेमें जो गुण हैं, उनका स्तुति-स्तोत्र सुननेसे अपना बहुमान करनेसे वा बडी योग्यताकी मिजाज अपनेमें चिपकाने वालोंसे, ॥ ८६ ॥ वह ऐसा घबरा जाता है, जैसा किसी व्याधेके जालमें फँसा हुआ हिरन तडफडाता हो, अथवा जलमें तैरते-तैरते कोई भँवरमें फँसनेसे जैसे घबडाता है, ॥ ८७ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार लोगोंके आदर सम्मानसे वह डरता रहता है, मानो वह सत्कार उसे संकट ही जान पडता है, इस लिये किसी भी लौकिक-बडप्पनसे वह दूर ही रहता है, मतलब यह कि अपनेको उसका स्पर्शतक न हो; ॥८८ ॥ तथा जो अपना बहुमान या पूज्यता आँखोंसे देखना नहीं चाहता, कानोंसे अपनी कीर्तिको सुननेकी भावना नहीं रखता और जिसे यह स्मरण भी नहीं रहता कि, मैं अमुक हूँ ॥ ८९ ॥ फिर उसमें आदरातिथ्यकी बात ही कहां रहती है ? और वहां आदरका अंगीकार भी कौन कर सकता है ? इतना ही क्या ? लोगोंसे किये हुए नमस्कारसे भी उसे मृत्युसा दुःख होता है ॥ १९० ॥ यद्यपि वह बृहस्पति-सरीखा ज्ञानवंत हो, तथापि वह महिमाकी भीतिसे पागलसा बना रहता है, ॥ ९१ ॥ अपनी कुशलता दिखाना तुच्छ समझता हुआ उसे छिपा रखता है, श्रेष्ठताका लोप कर देता है, और अपनी इच्छासे पागलपनेका व्यवहार करता रहता है ॥९२॥ अपने नाम-लौकिक तथा कीर्तिसे जिसे घृणा उत्पन्न होती है, शास्त्रार्थोंकी चर्चा सुननेमें वह उदासीन रहता हुआ, केवल चुपचाप शांततासे बैठे रहना ही पसंद करता है; ॥ ९३ ॥ वह मनसे चाहता है कि, संसार मेरा अपमान करे, कोई सगे-संबंधी हों तो मेरी तरफ वे देख भी न सकें; ॥ ९४ ॥ प्रायः वह ऐसे ही कर्म करता रहता है, जिनसे अपनेको लघुत्व प्राप्त हो, दीनतारूपी गहने लोगोंको दिखायी दें; ॥ ९५ ॥ उसकी मानसिक इच्छा ऐसी रहती है कि, लोग ऐसा ही तर्क करें कि ' यह मरा हो, या जीवित हो ' ॥ ९६ ॥ यह स्वयं चलता है किंवा पवन ही उसे अपने साथ उडाता चला जा रहा है, ऐसी लोगोंकी भावना होवे यही उसकी हार्दिक इच्छा रहती है; ॥ ९७ ॥ और वह ऐसा भी चाहता रहता है, कि मेरा अस्तित्व नष्ट होजाय, मेरा नाम-रूप मिटजाय और मेरा रूप देखकर भूत-प्राणियोंको डर उत्पन्न होकर वे भाग जाँय ॥ ९८ ॥ इस प्रकारकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



देवी-देवताओंके सामने जिसकी मानो मानताएँ ही रहती हैं ! सदैव एकान्तमें वास करना ही वह पसंद करता है, इतना ही नहीं वरन् एकान्त ही उसके जीवितका मुख्य आश्रय रहता है, ॥ ९९ ॥ जिसका वायुके साथ सख्य रहता है, जिसे आकाशके साथ संवाद करना प्रिय लगता है और वृक्ष ही जिसे जीवों-भावोंसे प्यारे लगते हैं, ॥ २०० ॥ हे पार्थ ! बहुत कहांतक कहा जाय ? जिस पुरुषमें ये उपरोक्त लक्षण दिखायी देते हैं, उसको ही तुम सच्चा ज्ञानवान् या ज्ञानमें तद्रूपताको प्राप्त हुआ समझो ॥ १ ॥ पुरुषमें 'अमानित्व' प्राप्त हुआ या नहीं, यह बात इन्हीं लक्षणोंसे जाननी चाहिये । अब 'अदंभित्व' किस तरहसे जाना जायगा, इसका मार्ग तुझे बता देते हैं ॥ २ ॥ अदंभित्व ऐसा रहता है, कि जिस प्रकार लोभी मनुष्यका मन, गढा हुआ द्रव्य-संचय कहां है; इस बातको प्राणोंपर बीतनेपर भी नहीं कह सकता ! तद्वत् हे पार्थ ! प्राणपर कैसा भी संकट आजाय तथापि अपना किया हुआ पुण्य-कर्म जो अपने मुँहसे कभी प्रकट नहीं करता; ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे पार्थ ! जैसी लतियल गौ पन्हानेको छिपा लेती है अथवा वेश्या अपनी वृद्धावस्थामें आयुको चुरा देती है, ॥ ५ ॥ अथवा अरण्यमें एकाकी होनेपर धनवान् जैसा अपनी धनाढ्यताको प्रकट नहीं दिखा देता, अथवा कुलवती स्त्री जैसी अपने अवयवोंको छिपाती रहती है; ॥ ६ ॥ किंवा किसान जैसा अपना बोया हुआ बीज मिट्टीके नीचे गुप्त कर देता है, उसी प्रकार जो अपना किया हुआ दान-पुण्यका सब कर्म गुप्त रखता है; ॥ ७ ॥ जो शरीरको बाहरसे बनावटी सुशोभित नहीं करता, लोगोंकी मर्जी संपादन करना अनिष्ट मानता है तथा अपने धार्मिक-कृत्योंको अपने मुँहसे शब्दद्वारा ऊँचा करना नहीं चाहता; ॥ ८ ॥ अपने किये हुए परोपकारका शब्द भी उच्चारता नहीं, अपने किये हुए अभ्यासका प्रदर्शन करना बुरा समझता है और अपने संपादित ज्ञानका, अपनी कीर्ति बढानेमें विक्रय नहीं कर सकता; ॥ ९ ॥ शारीरिक विषयभोगोंमें जो कृपणकी नाईं दिखा देता है, परन्तु धार्मिक-सत्कृत्योंमें जो कम-जादह धन खर्चनेमें त्रुटि नहीं रखता; ॥ २१० ॥ उसके घरमें चाहे जैसा दारिद्र्य निवास करता हो, शरीर देखाजाय तो अत्यंत दुबला, परन्तु दानके विषयमें जो कल्पतरुसे स्पर्धा रखता है, ॥ ११ ॥ तात्पर्य जो अपने धर्मकृत्योंमें श्रेष्ठ है, यथासमय उदार है, अध्यात्म-विद्याकी चर्चामें निपुण, अन्यथा पागलसा दिखाई देता है; ॥ १२ ॥ कदलीका वृक्ष देखनेमें पोलासा जान पडता है, परन्तु उसीको जैसे रसभरे और गाढे मधुर फल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आते हैं; ॥ १३ ॥ अथवा मेघोंका शरीर इतना हलका और पतला रहता है कि वायु उसे लीलासे ही उडा दे सकेगी, परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि, उसमेंसे ही मूशलधार जलवृष्टि या कठिन ओलोंकी भी वृष्टि होती है ॥ १४ ॥ उसीप्रकार हे पार्थ ! यदि पूर्णताकी दृष्टिसे उसे देखा जाय, तो देखते ही अन्तःकरणका समाधान होजाता है,कारण वह पूर्णताको प्राप्त किया ही रहता है, परन्तु लौकिकदृष्टिसे देखनेपर उसके विचित्र आचरणका वर्णन वाणीसे भी होना कठिन है ॥ १५ ॥ हे पार्थ ! बहुत क्या कहें ? जिसमें ऐसे ये उपयुक्त सच्चे लक्षण दिखायी देते हैं, उसके हाथ ज्ञान आगया, यह तुम निश्चित समझो ॥ १६ ॥ अदम्भित्वका यह वर्णन हुआ, अब 'अहिंसा' के लक्षणोंका वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥ सर्व-प्रथम तुम यह बात ध्यानमें रखो कि, इस अहिंसाकी व्याख्या अनेकोंने अपने अपने मतानुसार अनेक तरहसे कर रखी है ॥ १८ ॥ परन्तु उनका किया हुआ वर्णन ऐसा विलक्षण है कि जैसे वृक्षकी शाखायें तोडकर उनके छोटे छोटे भागोंसे उसीको बन्धनरूप बागुर बना दी गयी हो ! ॥ १९ ॥ किंवा अपना हाथ तोडकर पकाया जाय और क्षुधाकी शांति कर दी जाय । अथवा मन्दिर तोडकर देवकी शोभार्थ पौरी या बाडी बना दी जाय, ॥ २२० ॥ कारण पूर्वमीमांसामें ऐसा विलक्षण निर्णय कर रखा है कि, 'हिंसासे ही अहिंसा प्राप्त होती है' ॥ २१ ॥ देखो, उसमें कहा है कि, अनावृष्टिका संकट प्राप्त होकर संपूर्ण विश्व पीडित होता है, तब पर्जन्यवृष्टिकी प्राप्तिके लिये पर्जन्येष्टि-यज्ञ करने चाहिये; ॥ २२ ॥ परन्तु इन यज्ञ-कर्मोंके मूलमें स्पष्ट पशुहिंसा ही रहती है । फिर वहां अहिंसाका पैलतीर कैसे दिखाई दे सकेगा ? ॥ २३ ॥ केवल हिंसाका बीज बोदेना और अहिंसाका फल चाहना, वह कैसे प्राप्त होसकेगा ? परन्तु इन याज्ञिकोंका धैर्य बडा अपूर्व है ! ॥ २४ ॥ हे पार्थ ! आयुर्वेद भी इसीका अनुगामी है । देखो एक जीवके रक्षणार्थ दूसरे अनेक जीवोंका घात करना अपना तत्त्व बता रहा है ! ॥ २५ ॥ भूत-प्राणियोंको नाना-प्रकारके रोगोंसे पीडित देख, वैद्यलोग उनकी हिंसा निवारण करनेके लिये चिकित्सा करते हैं; ॥ २६ ॥ परन्तु उनकी चिकित्सा होते ही किसी वनस्पतिका कंद खुदवाना, किसी वनस्पतिको जड-पत्तोंसहित उखाडना, ॥ २७ ॥ किसीको बीचमें ही तुडाना, किसी वृक्षकी छाल निकालना और कोई-कोई वनस्पतियोंको तो उनके गर्भोंसहित कषाय बनानेमें बर्तनमें डालकर उन्हें पका देना ही करदेते हैं, ॥ २८ ॥ देखो अर्जुन ! आजन्म जिन्होंने किसीसे वैर नहीं किया ऐसे वृक्षोंके अंगमें तीक्ष्णशस्त्रोंसे आघात

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर उनको चीर-फाड कर उनकी नसें निकालते हैं ! इस प्रकार उनके प्राणोंका संहार कर उन्हें सुखादेते हैं ! जिससे कि रोगियोंकी हिंसा बचे ! ॥ २९ ॥ इतना ही नहीं, बरन् जंगम यानी सजीव प्राणियोंपर भी हाथ चलाते हुए उनके देहको चीर फाड करते हुए उनका पित्त निकालते हैं और उन दवाइयोंसे पीडित-जीवोंको, रोगोंसे बचाते हैं ॥ २३० ॥ अजी ! वस्तीके सुंदर घरोंको तोडकर मंदिर बनाना, अथवा व्यापारमें गरीबोंको ठगाकर व्यापार बंद करके अन्नच्छत्र खोलना, ॥३१॥ अथवा माथेमें वस्त्र बाँधकर अधोभागको खुला छोडदेना, किंवा अपना घर तोडकर उसका मंडप बना देना; ॥३२॥ अथवा शीत-निवारणार्थ कपडोंको जलाकर तापते बैठना, या हाथीको नहाना, ॥ ३३ ॥ अथवा बैल बेंचकर गौ-कोठा बनाना किंवा तोतेको छोड देकर उसके बदले पींजरा बनाना, ये क्या कोई काम हैं या दिल्लगी ! ऐसे कृत्योंपर हँसी कैसी न आवे ? ॥ ३४ ॥ कोई-कोई धर्मकी बडाई दिखाते हुए पानीको कपडेसे छानकर पीते हैं, परन्तु छाननेके कष्टसे उस समय कई जीवोंकी हत्या होती है ! ॥ ३५ ॥ और कोई-कोई तो हिंसाके डरके मारे पका हुआ अन्न भक्षण नहीं करते, कच्चाही खाते हैं, परन्तु उससे जो प्राणोंको कष्ट होते हैं, वह भी एक हिंसा ही है ! ॥ ३६ ॥ इस प्रकार हे सुमनस् अर्जुन ! तुम यह समझ लो कि, कर्मकाण्डका जो सिद्धान्त है कि, हिंसाही अहिंसा है, सो इसप्रकारका है ॥ ३७ ॥ हमने अपने मनमें जब अहिंसाका नाम उच्चारण किया, तो उसीसमय हमारे मनमें इसका स्वरूप स्पष्ट करदेनेकी स्फूर्ति हुई ॥ ३८ ॥ फिर इसको बिना स्पष्ट किये कैसा छोडना, कारण ऐसी अहिंसाका त्याग कैसे होसके ? इस इच्छासें हमने इसका स्पष्टीकरण किया, मनमें यह भी इच्छा हुई कि, तुम भी इसको अपनी दृष्टिसे निश्चित करोगे ॥ ३९ ॥ हे पाण्डव ! इसके अतिरिक्त अपने चले हुए अहिंसा विषयमें इसका संबंध भी आता है, इसलिये इसका स्वरूप बताना ही पडा, अन्यथा ऐसे आडे-टेढे मार्गमें जानेका प्रयोजन ही क्या था ? ॥ २४० ॥ और हे धनुर्धर ! यह भी एक आवश्यकीय बात रहती है कि, अपना मत सिद्ध करनेके लिये, सामने आये हुए मतोंका भी विचार करना अपना कर्तव्य रहता है, ॥ ४१ ॥ इसकारण अबतक जो हमने निरूपण किया वह इसप्रकारकी रीतिसे करना ही पडता है, परन्तु इसपर हमारा जो स्वयंका मत है, उसका अब हम प्रतिपादन करते हैं, तुम सुनो । जिस अहिंसाके दिखाई देनेसे आन्तरिक ज्ञान पहिचाना जाता है, उसका स्वरूप हम स्पष्ट किये देते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे पार्थ ! अहिंसा शरीरमें स्थिर होगयी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



या नहीं, उसकी पहँचान मनुष्यके आचरणसे ही जानी जाती है, जैसे सच्चे सोनेकी परीक्षा बाहरी कसौटीसे हो सकती है, ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार ज्ञानकी और मनकी भेंट होतेही, अहिंसाका रूप प्रकट होता है। यह कैसा होता है ? वह कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ४५ ॥ देखो पार्थ ! तरंगोंको न लाँघते, लहरोंको पाँओंसे न तोडते तथा पानीकी स्थिरताको न मिटाते हुए, ॥ ४६ ॥ वेगके साथ परन्तु मृदु और धीरेसे, आमिष ( मछली ) पर दृष्टि रखते हुए, बगला जैसे झपटकर जलमें सँभालता हुआ पैर रखता है; ॥ ४७ ॥ अथवा भ्रमर जैसे कमल-परागके टूटनेके डरसे अपना शरीर सँभालता हुआ धीरेसे पाँव रखता है, ॥ ४८ ॥ तद्वत्, इस बातको मनमें जानता हुआ, कि प्रत्येक परमाणुओंमें छोटे-छोटे जीव भरे रहते हैं, इस निश्चित-बुद्धिसे जो पुरुष अपना पाँव करुणासे लपेटता हुआ, उन परमाणुओंपरसे चलता है, ॥ ४९ ॥ वह जिस मार्गसे चलना चाहता है, पहले उस मार्गको कृपासे भर देता है, जिस दिशाकी ओर देखता है, उसे प्रेमपरिपूरित कर देता है और दूसरे जीवोंके रक्षणार्थ अपना जी उनके तले बिछा देता है; ॥ २५० ॥ इस-प्रकार हे धनुर्धर ! उसका जो सदयहृदयका यत्नपूर्वक चलना है, उसका वर्णन शब्दोंसे नहीं होसकता, वह नापके बाहरका ही तुम समझो ॥ ५१ ॥ प्रेममें आकर बिल्ली अपने छोटे बच्चोंको मुँहमें पकडती है, परन्तु उसके दाँतोंकी तीक्ष्णअनियोंकी उन बच्चोंको जैसी बाधा नहीं होती, ॥५२॥ अथवा दयावती माता अपने नन्हे बालककी जब बाट जोहती है, तब उसकी दृष्टिमें जैसी कोमलता भरी रहती है, ॥५३॥ अथवा कमलके पत्तेको धीरेसे हिलाते रहनेपर, उसकी वायु जैसे नेत्रोंको मृदु प्रतीत होती है ॥ ५४ ॥ इसप्रकारकी मृदुतासे जो भूमिपर पाँव रखता हुआ चलता है उसके पैरोंसे दुःखकी अपेक्षा जीवोंको सुख ही होता है ॥ ५५ ॥ इस प्रकार बहुत साव-धानीके साथ धीरेसे चलतेमें, यदि कृमि-कीटक देख ल तो हे अर्जुन ! वह ऐसे विचारसे पीछे हटजाता है, ॥ ५६ ॥ कि हमारा पाँव यदि जोरसे पडजाय तो इस स्वामीकी नींदमें विघ्न होगा और आत्मसमाधि टूट जानेसे स्वस्थप्रकृतिको धक्का पहुँचेगा ॥ ५७ ॥ इस दयाभरी चिंतासे उस पैरमार्गको छोडता हुआ पीछे पलट जाता है, परन्तु वह किसी भी जीवपर पाँव रखकर नहीं चलता ! ॥ ५८ ॥ हे पार्थ ! तृणमें भी जीव हो, इस दृष्टिसे उसे भी नहीं लाँघता, ऐसी जिसकी मानसिक भावना हो रही है, क्या वह किसी जीवपर पैर रखे या उसकी अवगणना करे, यह कभी संभवता है ? ॥ ५९ ॥ चिउँटी जैसे मेरुपर्व-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तको उल्लँघन नहीं कर सकती, मशक जैसे समुद्रके पार नहीं जा सकता, उसी प्रकार रास्तेमें मिले हुए जीवको देख उसका अतिक्रमण उससे नहीं हो सकता ॥ २६० ॥ इस प्रकार जिसकी चालमें कृपारूपी फूल और फल भरे रहते हैं, उसकी वाणीमें मूर्तिमंत दया जीवन धारण कर रही है, यह तो उसके वाचिक-कर्मसे स्पष्ट ही अनुभूत होगा ॥ ६१ ॥ जिसका श्वास लेना भी अत्यंत मृदु और सुकुमार रहता है, जिसकी मुखमुद्रा मानो प्रेमका नैहर या भाण्डार ही है, और दाँत तो माधुर्यको उत्पन्न करनेवाले अंकुर ही फूटे हुए हो समझो; ॥ ६२ ॥ इसके वाणीके आगे-आगे तो प्रेम पसीजता जाता है, और उसके पीछे-पीछे उसके उच्चारित अक्षर चलते हैं, इसका मतलब यह है कि, पहले कृपा और पीछे शब्दोच्चार ऐसी रीति रहती है; ॥ ६३ ॥ जो विशेषकर बोलता ही नहीं, और यदि बोलनेकी इच्छा करे, तो पहले यह शोचता है कि, मेरे शब्द किसीको लग तो न जायँ ! इस डरसे मृदुलताभरे ही शब्द उच्चारता है ॥ ६४ ॥ किसी समय यदि बोलता भी है, तो बहुत भी बोलने लगता है, परन्तु उसके मनमें ऐसा आता है कि, किसीका मर्मभेद तो न होता हो अथवा किसीको दुःख तो न होता हो, उसको यह संदेह उत्पन्न होता है ॥ ६५ ॥ कदाचित् अपनी प्रचलित बातसे बनी बनायी कोई बात बिगड न जाय अथवा कोई सुनकर डर न जाय अथवा कोई घबरा न उठे, या तिरस्कार न करे, ॥ ६६ ॥ इसी प्रकार अपनी बातसे कोई क्लेश न पावे, किंवा क्रोधसे किसीकी भ्रूलता टेढी न होजाय, इत्यादि बातोंका विचार कर बहुशः बोलना ही नहीं चाहता ॥६७॥ परन्तु किसीकी प्रेमभरी प्रार्थनासे बोलनेमें उद्यत हो, तो श्रोता-लोगोंको ऐसा जान पडता है कि, अपने माता-पिताका ही प्रेमभरा भाषण हम सुन रहे हैं ॥ ६८ ॥ मानो प्रत्यक्ष नाद-ब्रह्मही अवतीर्ण हो आया हो ! या गंगाजलही शांतता धारण कर रहा हो, अथवा पतिव्रता स्त्री ही आयुष्मती हो रही हो, इस प्रकारका शुद्ध और मृदु-भाषण केवल अमृत-तरंगसा भासमान होता है, कारण वह भाषण परिमित और रसभरा रहता है ॥ ६९ ॥ २७० ॥ जिसकी वाणीमें विपरीत-वाद, किसीको व्याकुलता उत्पन्न करना, किसीका उपहास, छल-कपट, मर्मस्पर्श होजाय, अभिमानपूर्वक प्रतिज्ञा करना, चिडना, दूसरेका अपमान, किसी वस्तुकी प्राप्तिमें इच्छा, कुत्सित शंका, झूठा बोलना, प्रतारणा करना इत्यादि दुर्गुणोंका नामतक नहीं दिखाई देता ॥ ७१ ॥७२॥ और हे पार्थ ! उसकी दृष्टि भी ऐसी दिखायी देती है कि, जिसकी भ्रूलताएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जैसी खुली रखी हों ऐसी सरल जान पडती हैं ॥ ७३ ॥ इसका कारण यह कि वह समझता है कि, वस्तुमात्रमें परब्रह्म भरा हुआ है, कदाचित् मेरी टेढी दृष्टिसे वह दुःखी होगा, इसलिये वह किसीकी ओर बहुशः उठी हुई दृष्टिसे देखना ही नहीं चाहता ! ॥ ७४ ॥ और यदि कदाचित् हृदयकी कृपासे किसी समय किसीकी ओर आँखें खोलकर देखे भी ॥ ७५ ॥ तो जैसे चंद्रबिंबसे निकलनेवालीं अमृत-धारायें यद्यपि दृष्टिगोचर नहीं होतीं, तथापि उनसे चकोरोंके पेट भरकर वे समाधान पाते हैं, ॥ ७६ ॥ वैसे ही उसकी दृष्टिसे जीवोंको आनंद होता है । संसारमें कच्छपकी दृष्टि प्रेमविषयमें प्रसिद्ध है, परन्तु इस सत्पुरुषकी दृष्टिकी योग्यताको वह प्राप्त नहीं कर सकती, कारण यह दृष्टि सर्वत्र व्यापक रहती है ॥ ७७ ॥ बहुत क्या कहें, जिसकी दृष्टि भूतमात्रोंविषे ऐसी रहती है; तथा उसके हाथ भी उसीप्रकरके ही रहते हैं ॥ ७८ ॥ कृतार्थ होजानके कारण, जैसे सिद्ध-पुरुषोंके मनोरथ जहांके तहां स्थिर होजाते हैं, तद्वत् जिसके हाथ क्रियारहित शांत रहते हैं ॥ ७९ ॥ जैसे कि कोई पुरुष कार्य करनेमें तो असमर्थ है, फिर भी लिया संन्यास (कर्म-त्याग), अथवा ईंधनका तो नामतक नहीं, फिर बुझीहुई अग्नि हो, किंवा जन्मप्रभृति गूँगा है और मौन धारणकी इच्छा करे ॥२८०॥ तद्वत् जिसके हाथोंको कुछ कर्तव्य तो रहा ही नहीं, फिर वे अकर्ता हो, परब्रह्म ( जो अकर्ता है ) उसके पदपर आ बैठते हैं ॥ ८१ ॥ वायुको धक्का लगजाय, आकाशको नख-बाधा हो, इस डरसे जो अपने हाथोंको हिला नहीं सकता ॥ ८२ ॥ फिर अंगपर बैठी हुई मक्खियें चुटकीसे उडाना, अथवा आँखोंमें घुसनेवाले मच्छरादि कीडोंको रोक-देना, या किसी पशु-पक्षियोंको भय दिखानेकी मुद्रा दिखाना ॥ ८३ ॥ इत्यादि बातें वह करे, यह कभी संभव भी है ? जिसको हाथमें डण्डा या लकडी लेना भी पसंद नहीं, तो फिर हे पार्थ ! वह शस्त्र धारण नहीं करता, यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥ ८४ ॥ कमलका चौफेर फेरना या पुष्पमालाको उडाना ऐसी लीलायें भी, वह इस डरसे नहीं करता कि, कदा-चित् उसकी गोफियागुण्डी बनकर किसीको लगजाय ! ॥ ८५ ॥ शरीरके रोम हिलेंगे इसलिये वह उनपरसे हाथ नहीं फेरता और अंगुलियोंपर नाखून चाहे जैसे बढकर उनकी गिण्डुरियां बन जाँय, परन्तु उन्हें काटता नहीं ॥ ८६ ॥ इसप्रकार उस पुरुषमें कार्यका तो अभाव ही रहता है, परन्तु यदा-कदाचित् कोई कार्य करनेका प्रसंग उपस्थित हो, तो जिसके हाथोंको उपका-रार्थ जुडजानेके अभ्यासका ही काम प्राप्त होजाता है ॥ ८७ ॥ जैसे कि किसीको अभय देनेके लिये ऊपर उठ जायँ, कोई गिरगाया हो तो उसको



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उठानेके लिये फैल जाएँ और कोई दुःखी हो उसको दुःखसे छुडानेके लिये कोमलतासे स्पर्श करें ॥ ८८ ॥ ये बातें भी जिसके हाथोंको बडे संकटसे करनी पडती हैं, परन्तु दुःखियोंका भय दूर करनेमें: उसके हाथकी शीतलता ऐसी जान पडती है, कि जो शीतचन्द्रकिरणोंमें भी वह न होगी ॥ ८९ ॥ वे हाथ पशुओंपर भी ऐसे प्रेमसे फिराये जाते हैं कि, वह स्पर्श मानो सुगंध-शीतल मलयाचलके वायुका ही हो ! ॥ २९० ॥ वे हाथ सदैव निर्मल तथा खाली ( मुक्त ) रहते हैं और जस चंदन-वृक्षमें फूल फल न आनेपर भी वह निष्फल नहीं गिना जाता, कारण उसमें शीतलता, प्रेम, गंध आदि बहुमोल गुण वास करते रहते हैं ॥ ९१ ॥ अब यह शब्दविस्तार समाप्त करते हैं । हे पार्थ ! तुम इतना ही समझो कि, उसके हाथका तलुआ संत-महात्माओंके शुद्ध शीतल स्वभाव-जैसा रहता है ॥ ९२ ॥ हे अर्जुन ! अब हम ऐसे पुरुषके मनका वर्णन करते हैं । परन्तु अभीतक जिन आचार-विलासोंका वर्णन किया वे किसके विलास हैं ? क्या मनके ही नहीं हैं ? ९३ ॥ क्या शाखाही वृक्ष नहीं होता ? क्या जलके बिना सागर कहा जाता है ? तेज और तेजस्वी वस्तुएँ क्या जुदी-जुदी होती हैं ? ॥ ९४ ॥ अवयव और शरीर किंवा रस और जल ये कभी पृथक्-पृथक् रह सकते हैं ? ॥ ९५ ॥ अतएव अभीतक जो हमने बाह्य-भाव कहे, वे सब अवयवयुक्त मूर्तिमान् मन ही समझो ॥ ९६ ॥ देखो अर्जुन ! जो बीज भूमिमें बोया जाता है, वही वृक्षरूप हो बाहर प्रकट होगा, उसीप्रकार जिसका इन्द्रियोंद्वारा विकास होता है, वह मन ही है, ऐसा समझना ही पडेगा ॥ ९७ ॥ कारण, यदि मनमें ही अहिंसाकी न्यूनता हो, तो वह बाहर भी कहांसे प्रकट होगी ? ॥ ९८ ॥ हे पार्थ ! यह तुम खूब समझ रखो कि, चाहे जो वृत्ति हो, वह पहले मनमें ही उत्पन्न होती है, और फिर कार्यानुसार वाणी, दृष्टि और हाथोंमें प्रकट होती है ॥ ९९ ॥ यदि ऐसा न हो, तो जो वस्तु मनमेंही नहीं वह वाचामें कहांसे आवेगी ? क्या बीजके बिना भूमिमेंसे कभी अंकुर उत्पन्न हो सकते हैं ? ॥ ३०० ॥ अतएव जब मनका मनत्व नष्ट होजाता है, तब इन्द्रियां उसके पहले ही उलट-पलट गिरती हुई दुबली बनजाती हैं, कारण सूत्रधारके विना कठपुतलियां क्या कर सकती हैं ? वे वृथा ही हैं ॥ १ ॥ जहांसे जलोद्गम होता है, यदि वह निर्झर ही सूख-गया हो, तो प्रवाहमें वह ( नदी ) कहांसे बहेगा ? जीव निकल जानेपर, शरीरके व्यापार कहांसे होंगे ? ॥ २ ॥ वैसे ही, हे बुद्धिमान् पार्थ ! मनही सब इन्द्रियोंके व्यापारका मूल-कारण है, और वही इन इन्द्रियोंद्वारा सर्व व्यापार करता रहता है ॥ ३ ॥ परन्तु वह मन जिस समय जिसप्रकारसे भीतर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


रहता है, उस समय वह उसी स्थितिमें इन्द्रियद्वारा क्रियारूपसे बाहर प्रगट हो जाता है ॥ ४ ॥ जिसप्रकार पके हुए फलकी सुगंध अंदरमें न समाजानेके कारण जोरसे बाहर निकलआती है, उसीप्रकार मनमें जब अहिंसा खूब दबी जाती है, तो वह आवेशके साथ बाहर प्रकट होती है ॥ ५ ॥ फिर उस मनकी ही अहिंसारूपी संपदा लेकर, इन्द्रियां लेन-देनका व्यापार करती हैं ॥ ६ ॥ जब सागरमें आह्लादसे बाढ आती है, तब उसका जल क्षारनदियोंको भर देता ( पूर्णकरता ) है उसी प्रकार मन अपनीही संपत्तिसे इन्द्रियोंको संपन्न करता है ॥ ७ ॥ अब इस विषयको यहांही रहने देते हैं। जिस प्रकार पढानेवाला पण्डितजी बालकका हाथ पकड अक्षरोंको आपही स्पष्ट लिखता है, ॥ ८ ॥ उसीप्रकार, यह मन अपनी दयालुता हाथ-पांव इत्यादिमें पहुँचाता हुआ, उनसे आपही अहिंसाको प्रकट कराता है ॥ ९ ॥ अतएव हे पार्थ ! मैंने जो इन्द्रिय क्रियाओंका वर्णन पहले करदिया है, वास्तवमें वह मनके व्यवहारका ही तुम समझो, अर्थात् मनके व्यापार इन्द्रिय-क्रियाओंसे प्रकट होते हैं ॥ ३१० ॥ अब तुम ठीक समझ गये होंगे कि, इस तरह जिस पुरुषमें मनसे, शरीरसे और वाचासे किया हुआ हिंसाका पूर्ण संन्यास ( त्याग ) तुम्हें दिखाई दे, ॥ ११ ॥ उस आनन्दी पुरुषको तुम सच्चा ज्ञानविलासी या ज्ञानका मंदिर समझो, इतना ही नहीं, किन्तु उसे मूर्तिमान् ज्ञान ही तुम जानो ॥ १२ ॥ जिस अहिंसाकी महिमा कानोंसे सुनी जाती है या ग्रंथोंमें निरूपण की हुई पढी जाती है, उसे यदि प्रत्यक्ष देखनेकी किसीको उत्कट इच्छा हो, तो हे पार्थ ! ऐसे पुरुषका दर्शन करना चाहिये ॥ १३ ॥ ज्ञानदेवजी कहते हैं इसप्रकार दयाघन भगवान्ने जो कहा, वह वास्तवमें एक-शब्दमें ही मुझे भी कहना चाहिये था, परन्तु निरूपणके बहारमें जो बहुत विस्तार होगया, उसके लिये आप सन्तोंका मैं क्षमाप्रार्थी हूँ ॥ १४ ॥ आप सन्त महात्मा यों भी कह सकते हैं कि, जैसे पशु हरा-हरा चारा देखकर अपना पहला ( पीछेका ) मार्ग भूल जाता है अथवा वायुके वेगके साथ पक्षी जैसे आकाशमें फर्राटे मारता आगेआगे ही जाता है, ॥ १५ ॥ उसी प्रकार इस ( ज्ञानदेव ) का मन एकबार प्रेमस्फूर्तिसे रसवृत्तिकी भावनाओंके प्रवाहमें पडजानेपर इसके वश नहीं रहता ! ॥ १६ ॥ परन्तु हे रसिक-श्रोतृगणो ! वैसी बात नहीं; इस विस्तारका एक अलग ही कारण है । वास्तविक देखा जाय तो यह 'अहिंसा' शब्द तीन ही अक्षरोंका है, ॥ १७ ॥ यह अहिंसा-शब्द उच्चारणमें अल्प है, परन्तु इसका अर्थ इतना कठिन और गंभीर है कि, जब अनेक भिन्न-भिन्न मतवादियोंके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मतोंका खंडन किया जाय, तभी वह स्पष्ट और निःसंदिग्धतासे समझमें आ सकेगा ॥१८॥ अन्यथा, अनेक मत अपने आगे विरोध करनेमें खडे हैं, उन्हें अपनी घमंडसे या अभिमानसे छोडकर मैं अपना ही मत प्रतिपादन करता रहूँगा, तो मेरी शक्तिभरमें भी वह पूरा न पडेगा और आपको भी वैसा न जँचेगा ॥ १९ ॥ कोई रत्नपारखियोंके ग्राममें विक्रयार्थ जाय, तो रत्नपरीक्षाके लिये उसे शालग्राम-शिलाका निकालना ही उचित है, वहां स्फटिकशिलाकी बडाईसे क्या काम ? ॥३२०॥ और इसके विपरीतमें, जहां कपूरकी बिक्री आटेके बराबर गिरे हुए भावमें हो रही है,वहां कपूरकी सुगंधिसे ही उसे कौन पूछेगा ? ॥ २१ ॥ एवंच, आप ज्ञाताओंकी इस सभामें बोलते-बोलते यदि वक्तृत्वका आधिक्य होगया हो, तो हे प्रभुओ ! आप मुझे दोषी नहीं समझेंगे ॥ २२ ॥ तथा सामान्य और कठिन ( विशेष ) सब बातोंको एकसरीखी समझकर वर्णन करूं तो आप लोग मेरी बातोंको अपने कानके मुखतक भी आना नहीं चाहोगे ॥२३॥ कारण, शुद्धसिद्धान्तके निरूपणमें शंकानिरसन ( समाधान ) न होनेसे जो मालिन्य उत्पन्न होता है, उससे प्राप्त हुआ अवधान पिछले पाँव भाग जाना चाहता है ॥ २४ ॥ सेवारसे ढके हुए जलको क्या हंस कभी टेढी नजरसे भी देखना चाहते हैं ? ॥ २५ ॥ उसी प्रकार, चांदनी जब अभ्रोंसे ढकी हुई रहती है, तब क्या चकोर भी अपनी चोंचें उठाकर कभी आनन्दसे ऊपर देखते हैं ? ॥ २६ ॥ इसी न्यायसे मेरा निरूपण यदि निर्विवाद और निःशंक न हो, तो आपकी भी श्रवणमें अभिरुचि न होगी, आप आदर न दिखावेंगे, ग्रन्थका स्वीकार नहीं करेंगे, इतना ही क्या ? कदाचित् क्रुद्ध भी होजायँगे ॥ २७ ॥ इस कारण यदि मैं दूसरे मतोंको न समझाता हुआ, या उनका निरसन न करके, उनके आक्षेपोंको वैसे ही छोडता हुआ निरूपण करता रहूँ तो मुझे आपके समागमका लाभ न होगा अर्थात् आप यहां न बैठेंगे ॥२८॥ और मेरा ग्रन्थ-रचनेका मुख्य उद्देश तो यही है, कि आप सन्त सदा-सर्वदा मेरे सामने रहकर मुझे कृपा-दृष्टिसे देखते रहें ॥२९॥ सचमुच देखा जाय तो आप गीतार्थके अत्यन्त प्रेमी हैं, यह समझकर ही मैंने इस गीताको हृदयमें लगालिया है ॥ ३३० ॥ परन्तु यदि आप अपना ज्ञान-सर्वस्व मुझे दें तभी आप इस गीताको छुडा ले जा सकेंगे, ऐसा मैं समझ रहा हूँ। कारण यह ग्रन्थ नहीं, किंतु आपलोगोंकी गिरवी रखी हुई एक अमूल्य वस्तु है ॥३१॥ अतएव आपलोग लोभवश अपना ज्ञान-सर्वस्व देनेमें यदि हिचकेंगे, और अपनी गीता–वस्तु छुडानेमें धीरज नहीं करेंगे तो गीताका तो अपमान होगा ही, परन्तु साथ-साथ गीताका और मेरा भी एकही परिणाम होगा !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


॥ ३२ ॥ बहुत क्या कहा जाय ? जिस-तिस रीतिसे आप मुझपर कृपा करते रहें यही मेरा हेतु है, और एतदर्थ मेरा यह ग्रन्थ-रचनेका केवल बहाना ही समझिये ॥ ३३ ॥ अतएव आप रसिकोंके मनमाना ही शुद्ध, निर्दोष और मधुर निरूपण करना चाहिये और इसी कारण मुझे अन्य-मतोंका भी स्पष्टीकरण करना आवश्यक हुआ ॥ ३४ ॥ परन्तु ऐसा विस्तार करनेमें मूल-कथाका श्लोकार्थ जो दूर रहगया है, इसके लिये आप दया-घन सन्त मुझ बालकको क्षमा करेंगे, यह सन्तहृदयके स्वभावका महिमा ही है ॥ ३५ ॥ भोजन करते समय ग्रासके कंकरको निकालनेमें जो थोडा समय जाता है, उसे वृथा नहीं मानना चाहिये, कारण उसे तो निकालना ही चाहिये ॥ ३६ ॥ रास्तेमें कोई ठगसे भेंट हो और उससे छुटकारा पानेमें यदि अपने लडकेको घर आनेमें अधिक समय हो, तो माताको उसपर क्या गुस्सा करना चाहिये कि, उसके जीवनपरसे राई-नोन उतारना चाहिये ? ॥ ३७ ॥ परन्तु यह विस्तार बढानेकी कोई आवश्यकता नहीं, आपलोगोंने मुझे क्षमा की इसमें सब भरपाई हो चुकी । अब श्रीकृष्णदेवने अर्जुनसे जो कहा, उसे सुनिये ॥ ३८ ॥ भगवान् बोले—हे पार्थ ! ज्ञानाञ्जनसे तुम्हारी दृष्टि पवित्र हो रही है, इसकारण सावधानतापूर्वक सुनो, हम तुम्हें सच्चे ज्ञानकी पहँचान करा देते हैं ॥ ३९ ॥ अजी, पार्थ ! जिसमें दुःखका नामतक नहीं रहता, ऐसी जो क्षमा वह जिसमें रहती है, उसी जगह स्पष्ट ज्ञान रहता है ऐसा तुम निश्चित समझो ॥ ३४० ॥ अगाध सरोवरोंमें जैसी कमलिनीयें अथवा भाग्यवान्के घर जैसी संपत्ति, ॥४१॥ हे पार्थ ! उसी प्रकार उस पुरुषमें क्षमा वृद्धिंगत होती रहती है । अब क्षमाशीलके पहँचाननेके लक्षण तुम्हें सुनाते हैं सो सुन ॥ ४२ ॥ प्रिय अलंकार जिस प्रेमसे अपने अंगपर पहने जाते हैं, तद्वत् जो सब कुछ सहन करता है, ॥ ४३ ॥ त्रयतापों ( आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक ) के दुःख-समुदायके पहाड यदि अंगपर पडजाँय, तो भी जो यत्किंचित् भी विचलित नहीं होता, ॥ ४४ ॥ जिस प्रेमसे इष्ट-वस्तुके लाभका स्वीकार करता है, उसी प्रेमसे अनिष्ट-वस्तुका भी आदरके साथ सम्मान करता है; ॥ ४५ ॥ जो मानाऽपमान सहन करता है, सुख-दुःखोंको समान जानता है और निंदा-स्तुतिसे जिसका मन विचलित नहीं होता; ॥ ४६ ॥ जो सूर्यकी गरमीसे तपता नहीं या शीतसे काँपता नहीं, और कैसा भी संकट-समय प्राप्त होनेपर भागता नहीं या डरता नहीं; ॥ ४७ ॥ मेरु-पर्वतको जैसे अपने शिखरोंका भार ज्ञात नहीं होता, अथवा श्रीविष्णुका तृतीय अवतार जो वाराह भगवान् वे जैसे पृथ्वीको बोझा नहीं समझते;

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ४८ ॥ किंवा असंख्य चराचर-भूतमात्रोंके भारसे पृथ्वी जैसी नहीं दबती, तद्वत् ही सुख-दुःखरूपी अनेक द्वन्द्वोंसे जो किसी प्रकार घबराता नहीं ॥४९॥ नद, नदी, नालोंके समुदाय अपार-जलोंको ले उपस्थित होनेपर, समुद्र जैसा उनको समानेके लिये अपना पेट बढाता है; ॥ ३५० ॥ तद्वत्, जिसमें न तो न सहनकरनेकी वार्ताही है और जिसे यह स्मरण भी नहीं है कि, मैं कुछ सहन कर रहा हूँ ! ॥ ५१ ॥ जो-जो प्राप्त हो, उसे अपना शरीरका ही समझता हुआ सहता रहता है । और ऐसी अवस्थामें सहनशीलताका उसे थोडा भी अभिमान नहीं होता; ॥ ५२ ॥ इस प्रकारकी दुःखरहित क्षमा जिसमें वास करती है, हे प्यारे अर्जुन ! उस पुरुषसे ही ज्ञानका महत्त्व बढता है ॥ ५३ ॥ हे पार्थ ! वह पुरुष ज्ञानका जीवन-स्थान है । अब हम आर्जव यानी ऋजुताका निरूपण करते हैं, उसे अवधानके साथ सुनो ॥ ५४ ॥ किसी भी प्राणीके विषयमें, जिस प्रकार प्राणका सौजन्य समानभावसे ही रहता है, आर्जव भी वैसा ही भेदभावरहित रहता है ॥ ५५ ॥ जिसप्रकार सूर्य मुँह देखा प्रकाश नहीं करता, आकाशतत्त्व जैसे सबको समान ही अवकाश देता है; ॥ ५६ ॥ उसीप्रकार जिसका मन हरेक मनुष्यके प्रति भिन्न-भिन्न न होकर सबमें एकतरहकासा रहता है, ॥ ५७ ॥ कारण, वह ऐसा जानता रहता है कि, सब संसार अपना पहँचाना हुआ है, इतनाही नहीं, वरन् इस संसारका और हमारा आत्मैक्यसे बहुत पुराना निकट संबंध है, इसलिये जिसे अपने पराये भावकी वार्ताका स्पर्शतक नहीं होता; ॥ ५८ ॥ प्रत्येकके साथ उसका सख्य या प्रेम रहता है, जलके समान जो नम्र रहता है और जिसका चित्त, किसीके साथ किसी विषयमें भी टेढा नहीं रहता; ॥ ५९ ॥ जिसके विचार-विकार वायुके प्रवाहसे सरल रहते हैं और संदेह या किसी प्रकारकी उत्कट इच्छा जिसे स्पर्श भी नहीं करती ॥ ३६० ॥ माताके सामने आनेमें बालकको जैसी कोई शंका नहीं रहती, उसी प्रकार अपनी मनोवृत्ति लोगोंमें प्रकट करते समय जिसे किसी प्रकारके विचारकी आवश्यकता नहीं जँचती; ॥ ६१ ॥ हे धनुर्धर पार्थ ! एकवार कमलके विकसित होनेपर, जैसा उसका कोई भी अवयव विकसित होनेमें बाकी नहीं रहता, तद्वत् जिसका मन एकबार प्रकट होनेपर उसके विकारोंको इधर-उधर छिपाना वह नहीं जानता, ॥ ६२ ॥ रत्न स्वयं सुन्दर रहता ही है, परन्तु उसकी सुन्दरता उसके किरणोंसे पहले ही प्रतीत होती है, तद्वत् जिसका निर्मल मन तो आगे दौडता जाता है और क्रिया पश्चात् होती है,॥६३॥ साशंक होकर किसी विचारमें पडना जिसको मालूम ही नहीं, अनुभवसे ही जो तृप्त रहता है, उसीप्रकार जिसके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


मनमें कोई छोडने या लानेकी अर्थात् अधूरी बातें आती ही नहीं; ॥ ६४ ॥ जिसकी दृष्टिमें कपट नहीं रहता, जिसकी वाणीमें अनिश्चित अथवा अस्पष्ट बात कभी नहीं रहती और किसीसे भी वह बुरी-बुद्धिसे व्यवहार करना नहीं जानता ॥ ६५ ॥ तथा जिसकी दशों इन्द्रियें सीधी, निष्कपट और पवित्र रहती हैं और जिसके पांचों प्राण आठों प्रहर अनर्गल मुक्त रहते हैं ॥ ६६ ॥ जिसका अन्तःकरण अमृतधारा जैसा शुद्ध और सरल रहता है। तात्पर्य, ये पूर्वोक्त लक्षण जिस पुरुषमें स्वाभाविक निवास करते हैं, ॥६७॥ हे वीरवर अर्जुन! वह पुरुष आर्जवकी प्रत्यक्ष मूर्ति ही है और उसीमें ज्ञान अपना घर बनाकर रहता है ॥ ६८ ॥ अब, हे चतुर सुजान पार्थ! हम तुम्हें गुरु-भक्तिकी प्रीतिका वर्णन कर सुनाते हैं; तुम सावधानचित्तसे श्रवण करते जाओ ॥ ६९ ॥ हे पार्थ! यह गुरु-भक्ति सम्पूर्ण भाग्योंकी जननी है, कारण यह गुरु-सेवा शोकग्रस्त मनुष्यको भी ब्रह्मस्वरूप कर देती है ॥ ३७० ॥ अतएव ऐसी जो अनुपमेय गुरु-भक्ति है, उसका अब मैं वर्णन करता हूँ, तुम एकाग्रचित्त हो लक्षपूर्वक सुनो ॥ ७१ ॥ संपूर्ण जल-सम्पत्तिको साथमें लेकर जैसी गंगानदी समुद्रको मिलने जाती है, अथवा सर्व-सिद्धान्तों समेत जैसी वेदविद्या ( श्रुति ) ब्रह्मपदमें प्रविष्ट होती है; ॥ ७२ ॥ किंवा सती स्त्री जैसे पंचप्राणोंके साथ अपने गुणावगुणोंको लेकर अपना जीवन प्रियपतिको समर्पण करती है; ॥ ७३ ॥ उसीप्रकार अपना सर्वस्व ( शरीर और अन्तःकरण ) जो गुरु-कुलको समर्पित करता है, और जो स्वयं गुरु-भक्तिका घर बनजाता है; ॥ ७४ ॥ जैसी विरहिणी स्त्री अपने प्रियवल्लभका चिन्तन करती रहती है, तद्वत् गुरु जिस देशमें वास करते हैं, उसी देशका जिसके मनमें सदा ध्यास लगा रहता है; ॥ ७५ ॥ उस देशसे आई हुई वायुके सम्मानार्थ जो दौडता जाकर दंडप्रणाम करता हुआ, हाथ जोडकर कहता है कि 'मेरे घर पधारिये' ॥ ७६ ॥ जो प्रेममें आकर भूलता हुआ उस गुरु-दिशाके साथ ही बात-चीत करता है, और जो अपने हृदयको गुरुगृहका हकदार ( ऋणी ) बना देता है, ॥ ७७ ॥ परन्तु जिसप्रकार बछडेको गोगृहमें दामनसे बँधा रखा जाता है, तद्वत् वह केवल गुरु-आज्ञारूपी दामनसे बँधा हुआ होनेसे, गुरुसे दूर अपने गांवमें ही रहता है ॥ ७८ ॥ परन्तु उस बछडेकी तरह मनमें कहता है, कि इस दामनकी ग्रंथि कब छूटेगी और मेरे गुरु-माताका दर्शन-लाभ कब होगा? इस प्रकारकी विवंचनामें गुरु-विरहका एक-एक पल, उसे युगसे भी बडा जान पडता है ॥ ७९ ॥ और, ऐसे विरहमें यदि गुरुके गाममेंसे अकस्मात् कोई मनुष्य आजाय अथवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्वयं गुरुने ही किसीको भेजा हो, तो जैसे मरणोन्मुखको आयुष्य प्राप्त हो, ऐसाही वह मानता है ॥ ३८० ॥ अथवा उसे ऐसा प्रतीत होता है, कि जसे सूखे हुए अंकुरपर अमृत–वर्षा हुई हो, अथवा अल्प-जलवाले पल्वलकी मछलीको अगाध सागरकी ही प्राप्ति हुई हो, ॥ ८१ ॥ अथवा दरिद्री (रंक) को भूमिगत गुप्त–द्रव्यसंचय दृष्टिगत हो गया हो, किंवा किसी भणंग (भिखारी) को इन्द्रपदकी प्राप्ति हुई हो, ॥ ८२ ॥ इसप्रकारके आनंदसे, वह गुरुकुलके नामको सुनते ही फूलजाता है, मानो उस सुखानंदमें आकाशको भी वह सहज लपेट देगा, ऐसा जान पडता है ॥ ८३ ॥ इस प्रकारका गुरुकुलका अहेतुक प्रेम जिस किसीमें तुम्हें दृष्टिगोचर हो, हे अर्जुन ! तुम जान लो कि, ज्ञान उसकी निरंतर सेवा करता रहता है ॥ ८४ ॥ और वह अपने अंतःकरणमें, आत्यंतिक प्रेमके सामर्थ्यसे श्रीगुरुकी मूर्तिको धारण करता हुआ ध्यानपूर्वक उपासना करता है ॥ ८५ ॥ अपने शुद्धहृदयके किलेमें आराध्य श्रीगुरुमूर्तिको निश्चल बिठाता हुआ, उसे अपना धनी समझता है और भक्तिभावसहित आपही उसका सब परिवार बनता है ॥ ८६ ॥ अथवा ज्ञान–बगीचाके भीतर आत्मानंदके मंदिरमें श्रीगुरुरूपी शिवलिंगपर ध्यानरूपी अमृत–धाराका अभिषेक करता रहता है ॥८७॥ और ज्ञान–सूर्यके उदय होते ही बुद्धिरूपी टोकरीको सात्त्विक-भावोंसे भरता हुआ, गुरुरूपी शिवलिङ्गपर लाखों पुष्प चढा देता है ॥ ८८ ॥ दिनकी तीनों संध्याओंको शिवपूजामें शुद्ध-काल समझता हुआ, जीवभावका धूप जलाकर ज्ञान-दीपकसे त्रिकाल गुरुदेवकी आरती करता है ॥ ८९ ॥ फिर अखंड ब्रह्मैक्यरूपी रसोई बनाकर उसका गुरुको नैवेद्य अर्पण करता है । इसप्रकार वह स्वयं पुजारी बनता है और गुरुको आराध्य-देवताकी मूर्ति शिवलिङ्ग बनाता है ॥ ३९० ॥ किसी समय वह अन्तःकरणकी शय्यापर गुरुराजको पति समझता हुआ उसकी संगतिका सुख भोगता है । इस प्रकार जिसकी बुद्धिमें प्रेम उमडता है और उसका ही वह कुतूहल करता है ॥ ९१ ॥ किसी समय उसका अन्तःकरण प्रेमसे ऐसा उल्लसित होता है कि, उस समय उसे वह प्रेमका क्षीर-सागर ही समझता है ॥ ९२ ॥ और उस प्रेमसमुद्रमें गुरु-ध्यानके सुखको शेष-मंचक और उसपर शयन करनेकी बुद्धिसे गुरुको विष्णु बनाता है ॥९३॥ फिर गुरुनारायणकी पाद-सेवा करनेवाली लक्ष्मी वह स्वयं बनता है तथा आज्ञाधारी, हाथ जोडकर सदा खडा रहनेवाला गरुड भी आप ही बनता है ॥ ९४ ॥ गुरु-नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न होनेवाला ब्रह्मदेव ही अपनेको कल्पता है । इस प्रकार गुरुमूर्तिके प्रेमसे मानसिक ध्यानके सुखका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


अनुभव लेता है ॥ ९५ ॥ किसी समय भावनावश हो, गुरु-मूर्तिको माता समझता हुआ उसकी गोदमें लेटता है, और स्तन-पान करनेके सुखका आनंद उपभोगता है ॥ ९६ ॥ अथवा हे अर्जुन ! किसी समय उसकी बुद्धिकी ऐसी भावना होती है, कि गुरुको वह चैतन्यरूपी वृक्षकी शीतल-छायामें बँधी गौ समझता है, और अपनेको उससे उत्पन्न हुआ बछडा मानता है ॥ ९७ ॥ और किस समय तो उसकी ऐसी भावना होती है कि, श्रीगुरु-कृपामृत और स्नेह-जल है और उसमें सुखानुभववाला मैं मत्स्य हूँ ॥ ९८ ॥ अथवा किसी समय ऐसी कल्पना करता है कि, मैं भक्तिरूपी वृक्ष हूँ और उसको जीवन देकर बढानेवाली गुरुकृपा पर्जन्यवृष्टि है, इस प्रकार समझता हुआ सुखी होता है ॥ ९९ ॥ हे पार्थ ! इस प्रेमका पार कहां समाप्त हो सकता है ? देखो उसका मन किसी समय ऐसी कल्पना कल्पता है, कि मैं एक पंखहीन और नेत्रहीन पक्षीका बच्चा हूँ, ॥ ४०० ॥ और गुरुमूर्ति मेरी माता पक्षिणी है, और उसकी चोंचसे मैं अपनी चोंचमें चारा लेता हूँ । अथवा कभी गुरुको सागरसे पार करानेवाली नौका समझता है और अपनेको वह उसका सहारा लेनेवाला मानता है ॥ १ ॥ इस प्रकार उसके प्रेमकी ध्यान-परम्परा ऐसी चली रहती है, कि जैसे पूर्णसिंधुके उत्फुल्ल तरंगोंमेंसे ही तरंग-परंपरा उत्पन्न हो ॥ २ ॥ बहुत क्या कहें पार्थ ! इस प्रकार वह श्रीगुरु-मूर्तिका आन्तरिक सुखानुभव लेता है, अब वह गुरुकी बाह्यसेवा कैसी करता है, उसे भी सुनो ॥ ३ ॥ उसके मनकी निरन्तर ऐसी इच्छा रहती है, कि मैं श्रीगुरुमूर्तिकी ऐसी उत्कृष्ट सेवा करूंगा कि, गुरुमूर्ति प्रसन्न होकर कह दे कि, 'हे शिष्य ! मैं प्रसन्न हूँ, मनमाना वर माँग' ॥ ४ ॥ और इस प्रकारकी उपासनासे जब गुरुमूर्ति आपही प्रसन्न हो जायगी, तो मैं विनीतभावसे प्रार्थना करूंगा कि, हे स्वामीमहाराज ! आपका जो कोई परिवार हो वह सब मैं अकेलाही हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है ॥ ५ ॥ ६ ॥ और आपकी पूजाके काममें आनेवाले जो-जो पूजापात्र हैं, उनका भी रूप मैं ही होजाऊँ ॥ ७ ॥ इस प्रकार स्वामीके पास वर माँगूंगा, तब स्वामीजी 'तथास्तु' कहेंगे और मैं अकेला ही सब परिवार बन जाऊँगा ॥ ८ ॥ और उनकी जो पूजा-सामग्री है, वह जब एक-एक मैं बन जाऊँगा तभी गुरु-भक्तिका सच्चा कुतूहल और प्रेम दिखायी देगा ॥ ९ ॥ गुरुराज सबकी माता है, परन्तु वह फिर मेरे अकेलेकी ही हो, इस प्रकारका हठ करके मैं उसे अपनालूंगा ॥ ४१० ॥ और उस अपने प्रेमका मोह ऐसा लगा दूँगा कि, वे एकपत्नीव्रतके अनुसार मेरे साथ ही प्रेम करें, और लोभसे अन्य-क्षेत्रोंमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जानेसे रोक रखूँगा या क्षेत्रोंमें जानेका उनसे संन्यास ही कराऊँगा ॥ ११ ॥ मैं गुरु-कृपाका ऐसा पिंजरा बन-जाऊँगा, कि जिसमेंसे वे कहीं बाहर न जाँय, या गुरुमाताको चारों ओरकी बाहरी हवा ही न लगजाय ॥ १२ ॥ और गुरु-सेवारूपी स्वामिनीको मैं अपने सद्गुणरूपी अलंकारोंसे भूषित करूँगा । इतना ही नहीं बरन् गुरु-भक्तिका आच्छादन ( वेष्टन ) मैं अकेला ही होजाऊँगा, अर्थात् दूसरे किसीको यह प्राप्त न हो ॥ १३ ॥ गुरुकृपारूपी प्रसादकी वर्षा होतेही उसके लिये पृथ्वी मैं ही बन जाऊँगा । इसप्रकारके मनोरथोंके अनंत मनोरे बनानेकी जो पुरुष कल्पना करता है, ॥ १४ ॥ और कहता है कि, मैं स्वयं ही श्रीगुरुका घर बनजाकर, स्वयं आपही सेवक बन, दासवत् सेवा करता रहूँगा ॥ १५ ॥ उदारान्तःकरण गुरु-माता जब आवा-गमनमें देहली नाँघते रहेंगे, तब वह देहली भी मैं ही हूँगा और द्वार तथा द्वारका रक्षपाल भी मैं ही बनारहूँगा ॥ १६ ॥ मैं उनके पादत्राण ( खडाऊ ) बनकर उन्हें उनके पैरोंमें भी मैं ही चढाऊँगा । उनका छाता मैं बनूंगा और उनके लिये छत्रधारी भी मैं ही होजाऊँगा ॥ १७ ॥ रास्तेमें चलते समय ऊँची-नीची धरतीकी सूचना देनेवाला डंडा मैं होऊँगा । उनपर चँवर ढुलानेवाला, हाथका सहाय देनेवाला और प्रकाश दिखानेके लिये मशालची भी मैं ही बनूँगा ॥ १८ ॥ मैं ही झारी ( सुराही ) पकडनेवाला बनकर मैं ही कुल्ला कर-वानेवाला होकर उनका कुल्ला डालनेका पात्र भी मैं ही बनूँगा ॥ १९ ॥ पानदान मैं ही बनूँगा और पीक झेलनेका पीकदान भी मैं ही हूँगा, तथा स्नान करानेका संपूर्ण कार्य भी मैं ही करूँगा ॥४२०॥ श्रीगुरुमूर्तिके आसन, अलंकार, वस्त्र, चंदनादि सब उपचार मैं ही बनूंगा, ॥ २१ ॥ मैं ही गुरुके लिये रसोइया बनकर मैं ही थाली परोसता जाऊँगा और मैं अपने आत्मासे ही गुरुमूर्तिकी आरती करूँगा ॥ २२ ॥ जब गुरुमहाराज भोजन जीमेंगे, तब उनकी पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवाला मैं ही हूँगा और भोजनोत्तर गुरु-मूर्तिको तांबूल देनेवाला भी मैं ही हूँगा ॥ २३ ॥ जूठन उनका मैं निकालूँगा, उनकी शय्या मैं बिछाऊँगा और श्रीगुरुमूर्तिके चरण दबानेका काम मैं ही करूँगा ॥ २४ ॥ श्रीगुरुमहाराजके बैठनेके लिये सिंहासन मैं ही बनूँगा और कृपानाथ गुरुमहाराज जब उस ( मुझ ) पर चढकर विराजमान होंगे, तब मैं कृतकृत्य हो सेवाकी पूर्णता या सफलता मानूँगा ॥ २५ ॥ गुरुके मनको रमानेके लिये उनकी बाट जोहता हुआ, मनकी इच्छाको सुख देनेवाला विनोद-चमत्कार भी मैं होऊँगा ॥ २६ ॥ उनके श्रवणरूपी रणांगणमें ( ग्रन्थश्रवणमें ) शब्दरूपी अक्षौहिणी मैं ही बनूँगा और किसी समय अंग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



खुजाना आदिमें स्पर्शका रूप भी मैं ही बनूँगा ॥२७॥ श्रीगुरु जिस-जिस वस्तुको स्नेहदृष्टिसे देखना चाहें वह सब रूप मैं ही बनूँगा ॥२८॥ उनकी जिह्वा जिसजिस रसकी चाहना करेगी, वह रस मैं ही बन जाऊँगा तथा उनके घ्राणेन्द्रियको जिस सुवासमें अभिरुचि हो, वह सुवास भी मैं ही बनूँगा ॥ २९ ॥ इस प्रकार गुरुकी बाह्य तथा आभ्यंतरिक सब वस्तुएँ स्वयं मैं ही बनकर, श्रीगुरुसेवामें दूसरी किसी वस्तुकी त्रुटि न रखता हुआ मैं अकेला ही सब कुछ हो, सेवाको पूर्ण करूँगा। इसप्रकार वह मनमें कहता रहता है ॥ ४३० ॥ जबतक देह है, तबतक इस प्रकारकी गुरु-सेवा की जाती है, और देहपातके समय भी सुबुद्धिसे ऐसी उत्कट इच्छा रहती है, ॥३१॥ कि देहपातके पश्चात्, मेरे इस शरीरकी मिट्टी उस जमीनमें मैं मिला देऊँगा, जिस पृथ्वीके भागपर श्रीगुरुके चरणकमल खडे हों ॥ ३२ ॥ मेरे गुरुमहाराज जिस जलका कुतूहलसे स्पर्श करते रहेंगे, मैं अपने जलभागको उसीमें प्रवेशित कराऊँगा ॥ ३३ ॥ गुरुराजके घरमें जिस दीपकसे काम चलता है या जिस दीपकसे श्रीगुरु आरती करते हैं, उस दीपकके तेजमें मैं अपने शरीरके तेजोंशको प्रविष्ट कराँदूँगा ॥ ३४ ॥ मेरे गुरुनाथका जो चँवर या हवाका पंखा हो उसके वायुतत्त्वमें मैं अपने प्राणोंको समर्पित कराँदूँगा, जिससे सेवा तथा स्पर्शका भी लाभ होगा ॥ ३५ ॥ जिस जिस अवकाशके स्थानमें गुरुमूर्ति परिवारके सहित वास करती रहेगी उस आकाशतत्त्वमें अपने आकाशतत्त्वको लीन करूँगा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार चाहे मैं जीवित रहूँ चाहे मरजाऊँ, परन्तु यह गुरुसेवाका व्रत कभी नहीं छोडूँगा। इतना ही नहीं किंतु एक क्षण यदि अन्य कोई सेवा करना चाहे तो उसे मौका नहीं दूँगा। और ऐसा करते-करते चाहे कल्पकोटि समय जाता रहे, तो भी मैं संतोषसे उस सेवाकोही करता रहूँगा ॥ ३७ ॥ इसप्रकारका गंभीर धैर्य जिसके हृदयमें नित्य वास करता है, और गुरुसेवामें स्थलकाल आदिका विचार जिसके मनको स्पर्श भी नहीं करता, ऐसा जो अनुपम पुरुष बनजाता है; ॥ ३८ ॥ तथा सेवा-समयमें जो रात-दिनका भी ध्यान नहीं रखता, अल्प-बहुत कहता नहीं, इतना ही नहीं बरन्, गुरुकी कठिन आज्ञाको ही अपने जीवनका साधन मानकर जो हृष्ट-पुष्ट रहता है; ॥ ३९ ॥ वह पुरुष गगनके बराबरका बडा व्यापार (कार्य) करनेमें समर्थ होता है और वह सब कुछ आप एकदम अकेला ही करता है ॥४४०॥ गुरुकी आज्ञा होतेही उस कार्यको करनेके लिये मनके पहले उसका शरीर ही दौडने लगता है और चंचल मनके साथ कार्य करनेमें वह शरीर अहमहमिकाकी शर्यत लगाता हुआ काम कर देता है ॥ ४१ ॥ किसी समय यदि गुरु-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मूर्तिके मुँहसे विनोदमें ठट्ठाका शब्द निकल पडे, तो उसे भी पूर्ण करनेमें अपने जीको उसपरसे निछावर कर डालना चाहता है ॥ ४२ ॥ जो गुरु-सेवा करते-करते दुबला होजाता है, जो गुरुप्रेमसे पुष्ट होता है और जो गुरु-आज्ञाका केवल अकेला ही आधार होजाता है; ॥ ४३ ॥ जो गुरुकुलसे अपनेको कुलीन समझता है, गुरु-बंधुओंकी सुजनतासे सुजन होता है और निरन्तर गुरुसेवाके व्यसनसे व्यसनी बनता है ॥ ४४ ॥ गुरु-संप्रदायके नियम ही जिसके वर्णाश्रम-धर्म हैं और गुरुपरिचर्या ही जिसका नित्यकर्म है, ॥ ४५ ॥ गुरु ही जिसके क्षेत्र, गुरुही देवता, गुरु ही माता-पिता हैं, जिसको गुरुसेवाके अतिरिक्त दूसरे मार्गका अज्ञान ही रहता है ॥ ४६ ॥ श्रीगुरुका द्वार जिसका सार-सर्वस्व है-सच्चा सत्यतत्त्व है, तथा गुरुके सेवकोंको जो सहोदर समझता हुआ उनके साथ प्रेमसे बर्ताव करता है, ॥ ४७ ॥ जिसके मुखमें निरंतर गुरुनामका मंत्र वास करता रहता है और गुरुवाक्यके अतिरिक्त किसी भी शास्त्रग्रंथको हाथमें पकडतातक नहीं; ॥४८॥ गुरुचरणका स्पर्श किया हुआ जल चाहे जैसा क्यों न हो, उसे तीर्थ समझता हुआ त्रैलोक्यके तीर्थोंको उसकी मात्रार्थ ले जाना श्रेष्ठ समझता है ॥ ४९ ॥ यदाकदाचित् गुरुका उच्छिष्ट प्राप्त हो तो, उसके सामने आत्मसमाधिके सुखको भी तुच्छ समझता है ॥ ४५० ॥ हे पार्थ ! श्रीगुरुके चलते समय पीछे जो चरणकी धूलि उडती है, उसके एक परमाणुकी प्राप्तिमें जो कैवल्यसुखकी प्राप्तिका आनंद मानता है वह मोक्षपदको क्यों न प्राप्त करे ? ॥ ५१ ॥ हे पार्थ ! अब इस विषयको यहां ही रहने दो, कारण इसका विस्तार जितना किया जाय, वह थोडा ही है, क्योंकि गुरु-भक्तिको सीमा ही नहीं है । परन्तु प्रेमातिरेकके कारण यह विषयान्तर हुआ है, तथापि इसका तात्पर्य तुम यही समझो ॥ ५२ ॥ कि, जो इसप्रकारकी अनुपम भक्ति करनेकी इच्छा करता है, जो इस विषयमें शुद्ध प्रेम रखता है, जो ऐसी सेवाके सिवाय कुछ भी मधुर नहीं जानता, ॥ ५३ ॥ हे पार्थ ! उसीको तत्त्वज्ञानका आश्रय समझना चाहिये, उसके कारण ही ज्ञानको शोभा प्राप्त होती है, इतना ही क्या ? बरन् वह भक्त प्रत्यक्ष देव और ज्ञानकी मूर्ति है, यही कहना पडेगा ॥ ५४ ॥ सचमुच ऐसे पुरुषमें ज्ञान पूर्णताको प्राप्त हुआ रहनेसे संसारके लिये वह मुक्तद्वार ही बना रहता है ॥ ५५ ॥ ज्ञानदेव कहते हैं-श्रोताओ ! इस प्रकारकी सेवामें मेरा मन बडा उत्कण्ठायुक्त रहता है, इस कारण मैंने थोडेमें होनेवाले वर्णनको बढाकर उसका स्पष्टीकरण लम्बे-मार्गसे करदिया, ॥ ५६ ॥ यों देखा जाय तो हाथसे मैं लूला हूँ,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भजनमें अंधा ही समझो और गुरुसेवामें तो पंगुसे भी पंगु हूँ ॥ ५७ ॥ गुरुवर्णनमें तो वाचाहीन जैसा गूँगा हूँ, इतना ही क्या ? वृथा खा पीकर मोटा ताजा बना हूँ, परन्तु बडा मंद हूँ । ऐसा हूँ तथापि मेरे मनमें गुरुविषे उत्तम और सच्चा प्रेम भरा हुआ है, ॥ ५८ ॥ जिसके कारण ही, मुझे इस जड-शरीरको पुष्ट रखना आवश्यक होता है। इस प्रकार श्रीज्ञानदेवने श्रोताओंसे कहा ॥ ५९ ॥ और फिर बोले, अभीतक जो मैंने कहा, आप लोग उसे क्षमा कीजिये और आपकी सेवा करनेमें मुझे उत्तेजित करिये, अब मैं गीता-ग्रन्थार्थको विशद करता हूँ ॥ ४६० ॥ सुनिये, श्रोताओ ! सुनिये; श्रीकृष्ण परमात्मा, जो संपूर्ण प्राणियोंके साथ पृथ्वीका भार सहनेवाले श्रीविष्णुभगवान्के पूर्णांश हैं, वे कह रहे हैं और अर्जुन सुन रहा है ॥ ६१ ॥ भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन ! अब शुचित्वको सुनो । शुचित्व ऐसा हो, कि जिसके पास वह हो उसका मन और शरीर एकसा ही कपूर-जैसा शुद्ध बना प्रतीत हो, ॥ ६२ ॥ अथवा रत्नका गोला जैसा बाह्यान्तर निर्मल स्वच्छ रहता है, किंवा सूर्य जैसा बाहर भीतर एकसा ही प्रकाशमान् रहता है, ॥ ६३ ॥ तद्वत् वह बाह्यतः तो कर्माचरणसे निर्मल बनता है, और अन्तःकरणमें ज्ञानसे प्रकाशमान् बनता है अर्थात् दोनों प्रकारसे समान ही शुद्धता उसे प्राप्त होती है ॥ ६४ ॥ वह बाह्यतः वेदमंत्रोच्चारणपूर्वक मृत्तिका और जलसे शुद्ध होता है ॥ ६५ ॥ प्रत्येक काममें बुद्धि ही बलवती होती है, देखनेमें जैसी अस्वच्छ बालू दर्पणको स्वच्छ करती है, किंवा कपडेके दागोंको अस्वच्छ धोबीकी नाँद ( पात्र ) ही सफा कर देती है ॥ ६६ ॥ एवंच बहुत कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं, कारण इस प्रकारसे जो बाह्य-शरीरसे शुद्ध रहता है, उसी प्रकार उसके अन्तःकरणमें ज्ञानदीप प्रकाशमान् होते रहनेसे उसे शुद्ध ही कहना चाहिये ॥६७॥ अन्यथा अर्थात् ऐसा न हो तो, हे पार्थ ! यदि अन्तःकरण शुद्ध न हुआ हो और बाहर कर्मकी शुद्धताका बहुत विस्तार हो, या दीखे, तो वह कर्मकी विडम्बना ही समझो ॥ ६८ ॥ जैसे किसी प्रेतको शृंगारसे सजवाया हो अथवा गर्दभको तीर्थमें नहाया हो, किंवा कडुए तूँबीको गुडसे लपेट दिया हो, ॥ ६९ ॥ किंवा उजाड घरमें कर्दलीका तोरन बँधवार किया हो, अथवा किसी उपवासीके अंगमें बहुत अन्न लगा दिया हो, विधवाके माथेमें कुंकुम ( सिंदूर ) तिलक लगा दिया हो, ॥ ४७० ॥ किंवा पोले कलशमें सुवर्णका मुलम्मा दिया हो, जो कि ऊपर ही दिखावटी है अंदर तो जैसाका वैसा, किंवा किसी फलको-जो खेलमें हो-रंगबिरंगा खूब चित्रित बना दिया हो, परन्तु जिसके अन्दर तो गोवर ही भरा है ॥ ७१ ॥ इसी प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



केवल ऊपरी कर्मसे शुद्धता नहीं प्राप्त होती, वह योग्यताहीन ही: समझा जाता है, ऊपरी दिखावटसे बडी कीमत नहीं आती जैसे गंगाजलमें डुबानस भी मदिराका घडा शुद्ध नहीं हो सकता ॥ ७२ ॥ अत एव हे पार्थ ! अन्तःकरणमें ज्ञान होना आवश्यक है । और अन्तःकरणमें ज्ञान उत्पन्न होनेपर बाह्य शुद्धि आपही आप प्राप्त होती है । परन्तु ऊपरके शुद्ध कर्मोंद्वारा ही ज्ञान प्राप्त हो, ऐसा कभी हो सकता है ? नहीं कभी नहीं ॥ ७३ ॥ इस लिये पहले बाह्यतः शुद्ध कर्मोंसे जिसका शरीर शुद्ध होगया हो, और ज्ञानसे अन्तःकारणका मल धोजानेपर वह निष्कलंक बनगया हो ॥ ७४ ॥ उस पुरुषमें अन्तर-बाह्य भेद ही नहीं रहता, जिससे एकजात शुद्ध निर्मलता ही वास करती है । तात्पर्य उसमें केवल: शुचित्व ही रहजाता है ॥ ७५ ॥ इसकारण स्फटिकके मंदिरमें प्रकाशमान दीपक जैसे बाहरमें भी प्रकाशमाय दिखाई देते हैं, उसी प्रकार उसक अन्तःकरणके सब भाव बाहर प्रकट दिखाई दत हैं ॥ ७६ ॥ जिससे संशय वा विकल्प उत्पन्न होता है, मिथ्या विचार मनमें आते हैं, और कुकर्मोंके बीज अंकुरान्वित होजाते हैं ॥ ७७ ॥ ऐसे विषयोंको वह शुद्ध पुरुष चाहे सुन ले, चाहे देख ले अथवा वे विषय जबर्दस्ती आकर उसके अंगमें भिड जाँय तो भी जैसे मेघोंके नीले रंगोंसे आकाश मलिनत्वको नहीं प्राप्त होता, तद्वत् उसके मनपर ये विषय अपना अधिकार नहीं जमा सकते, अथवा उससे वे स्वयं पराजित ही होजाते हैं ॥ ७८ ॥ सच देखा जाय, तो वह इन्द्रियसमूहके कारण उन विषयोंमें लोटपोट होता रहता है, परन्तु विकारका दोष उसे किंचित् भी नहीं लगता ॥ ७९ ॥ रास्तेसे चलते समय कोई स्त्री दृष्टिगोचर हो तो वह उत्तमवर्णवाली हो, या नीच-वर्णवाली, इस विषयमें जैसे उस शुद्ध-पुरुषमें विकार उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार वह शुद्ध पुरुष विषयोंसे अलिप्त रहता हुआ सब व्यवहार शुद्ध रखता है ॥४८०॥ अथवा एक ही स्त्री पतिको तथा पुत्रको आलिंगन देती है, परन्तु पुत्रालिंगनमें जैसा उसके मनका भाव कामवश नहीं हो सकता, ॥ ८१ ॥ उसी प्रकार उस शुद्ध-पुरुषका हृदय शुद्ध रहता है, उसे संकल्प-विकल्पोंकी बाधा नहीं हो सकती, परंतु कर्तव्य क्या और अकर्तव्य क्या है इसका उसे पूरा ज्ञान होनेके कारण स्पष्ट परिचय रहता है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार हीरा जलसे भीगता नहीं, अथवा उबलते जलमें कंकड छोडनेसे वे पकते नहीं, उसी प्रकार विकल्पोंके द्वारा उसके मनके भाव दूषित नहीं होते ॥ ८३ ॥ हे पार्थ ! ऐसी स्थितिको ' शुचित्व ' कहना चाहिये, और ऐसा शुचित्व जहां तुम्हें दिखाई दे, वहां ज्ञानका वास्तव्य है, ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निश्चित समझो ॥ ८४ ॥ इसी प्रकार जिस पुरुषमें 'स्थिरता' अपना घर बनाये रहती है, उस पुरुषको भी तुम ज्ञानका जीवदाता ही जानो ॥ ८५ ॥ देह यद्यपि अपनी रीतिसे बाह्य आचार करता रहता है, तथापि उसके मनकी स्थिरता जरा भी हिलचलको नहीं प्राप्त होती ॥८६॥ जैसे गौका प्रेमवात्सल्य बँधे हुए बछडेको छोड उसके साथ वनमें नहीं जाता, अथवा सती (पतिव्रता) के विलास जैसे प्रेमभोग नहीं रहते, ॥ ८७ ॥ अथवा लोभी पुरुष दूर देशमें चला जाय तो भी उसका जीव जैसे गढे हुए धनमें ही गुथा हुआ रहता है, तद्वत् देहके चलनवलनादि व्यापारोंसे उस पुरुष का मन चल-विचल नहीं होता, किन्तु एकसाथ स्थिर ही रहता है ॥ ८८ ॥ दौडनेवाले मेघोंके साथ जैसा आकाश नहीं दौडता अथवा ताराग्रहोंके संग जैसा ध्रुवतारा घूमता नहीं; ॥ ८९ ॥ अथवा हे अर्जुन ! पथिकोंके आवागमनके साथ मार्ग जैसा नहीं चलता । अथवा पासके वृक्ष जैसे आना-जाना नहीं जानते; ॥ ४९० ॥ उसीप्रकार इस पञ्चभूतात्मक और चलायमान शरीरमें रहता हुआ भी, वह स्थिर-पुरुष किसी एक भी भूतकरके विकारवान् नहीं होता, या उसके अन्तरंगमें चंचलता नहीं उत्पन्न होती ॥ ९१ ॥ झंझावातकी तीव्रतासे जैसी पृथ्वी हिलती नहीं वैसे ही सुखदुःखादि उपाधियोंके क्षोभसे वह स्थिर-पुरुष चलायमान नहीं होता ॥ ९२ ॥ दारिद्र्य-दुःखसे वह पुरुष संतप्त नहा होता, भय और शोकसे काँपता नहीं और देह यदि पञ्चत्वको प्राप्त होजाय तो घबराता नहीं ॥ ९३ ॥ पीडा और इच्छाके आवेशसे तथा आयुष्य और विविध-रोंगोकी उपद्रवगर्जनासे, जिसका सरल-मार्गसे जाता हुआ चित्त अपना मार्ग छोडकर पीछे देखता भी नहीं ॥ ९४ ॥ यद्यपि उसकी निंदा हो, अपमान सहना पडे अथवा काम-क्रोधके अधीन होना पडे, तथापि उसके अन्तःकरणका रोम भी टेढा नहीं होता ॥ ९५ ॥ आकाश टूट-पडे, अथवा पृथ्वी फटजाय, परन्तु उस स्थिर-पुरुषकी चित्तवृत्ति पीछे फिरकर देखना नहीं चाहती ॥ ९६ ॥ फूलोंसे ताडित हुआ हाथी जैसे पीछे नहीं देखसकता, तद्वत् दुर्वचनरूपी शल्यसे ताडित हुआ वह पीछे नहीं लौटता ॥ ९७ ॥ समुद्रमंथनमें, क्षीरसागरकी लहरोंसे जैसे मंदराचलमें कंप नहीं उत्पन्न होता अथवा दावाग्निकी ज्वालाओंसे जैसे आकाशको जलनेका भय नहीं उत्पन्न होता; ॥ ९८ ॥ तद्वत् किसी प्रकारकी सुखदुःखकी वृत्तियोंके आवागमनसे उसका मन प्रक्षुब्ध नहीं होता, इतना ही नहीं, बरन् कल्पान्त-समय प्राप्त होनेपर भी उसका धैर्य सामर्थ्यसंपन्न रहता है ॥ ९९ ॥ हे बुद्धि-ज्ञान-संपन्न पार्थ ! 'स्थैर्य' जिस दशाको कहाजाता है, उस दशाका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सविस्तर वर्णन हमने किया है, तुम उसे अच्छीतरह ध्यानमें रखो ॥ ५०० ॥ इस प्रकारका अखंडस्थैर्य जिस पुरुषके शरीरको और मनको प्राप्त हुआ है, हे पार्थ ! वह स्थैर्यशाली पुरुष ज्ञान-धनका खुला भाण्डार ही है ॥ १ ॥ पिशाच जैसे पकडे हुए मनुष्यको नहीं छोडता, योद्धा जैसे अपने हथियारको नहीं त्यागता अथवा लोभी जैसे अपने धनसंचयके लोभको नहीं भूलता; ॥ २ ॥ किंवा माता जैसी अपने इकलौते बालकके मोहको नहीं छोडती अथवा मधुमक्खी जैसी मधुकी लोभिन बनी रहती है; ॥ ३३ ॥ उसीप्रकार हे पार्थ ! जो अपने अन्तःकरणको संभालता हुआ इन्द्रियोंके दरवाजेतक जाने नहीं देता; ॥ ४ ॥ और इस डरसे, कि कामनामक डरानेवाला हउवा मेरे इस बालकका नाम सुनले, अथवा आशानामक डाकिनी इसे देख ले, तो उनकी नजर इसपर पडजाय तो कष्ट होगा ॥५॥ दुष्टाचरणवाली स्त्रीको जैसे जबर्दस्त पति बंधनमें रखता है, वैसे ही जो अपनी प्रवृत्तिको रोक रखता है ॥५॥ यह सजीव देहकृश होकर, प्राण जानेका समय आ जाय, तो भी विवेकसे इंद्रियोंका निग्रह करता ही रहता है, ॥ ७ ॥ शरीरका मुखद्वार जो मन उसपर तथा निवृत्तिके मार्गकी चौकीपर यम-दमोंसे खडा जागता पहरा कराता है ॥ ८ ॥ और मूलाधारमें, नाभिस्थानमें तथा कण्ठ-स्थानमें वज्रासन, उड्डियान और जालंधर इन तीन बन्धोंकी गस्त लगाता हुआ इडा तथा पिंगला इन दो नाडियोंके संधिमें अपने चित्तको सुला देता है ॥ ९ ॥ और ध्यानको समाधिकी शय्यामें जबर्दस्ती बाँधता हुआ सुला रखता है, ऐसे पुरुषका चित्त चैतन्यके साथ एकरूप होकर रममाण होजाता है ॥ ५१० ॥ इस प्रकारके निग्रहसे जो चलता है, उसने अन्तःकरण-निग्रहको वश करलिया हो, ऐसा समझो । और यह अन्तःकरण-निग्रह ही ज्ञानका विजय है ॥ ११ ॥ जिस पुरुषकी आज्ञा, उसका अन्तःकरण शिरोधार्यकर चलता है, उस पुरुषको तुम प्रत्यक्ष मूर्तिमन्त मनुष्याकार ज्ञान ही जानो ॥ १२ ॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

जिसके मनमें विषयोंविषे पूर्णरीतिसे विरक्ति जागृत रहती है, ॥ १३ ॥ वात ( कै ) को देखनेपर जैसी उस अन्नमें जिह्वाकी लार नहीं टपकती अथवा प्रेतको आलिंगन देनेके लिये जैसे किसीको प्रेम नहीं उभडता; ॥१४॥ किंवा विषको खानेके लिये जैसे कोई भी उद्यत नहीं होता अथवा जलते हुए घरमें कोई प्रवेश करना नहीं चाहता, किंवा व्याघ्रकी गुफामें जैसे कोई वस्ती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं कर सकता, ॥ १५ ॥ लोहेके तप्त-रसमें जैसे कोई कूदना नहीं चाहता, किंवा अजगरपर जैसे कोई तकिया समझकर सोना नहीं चाहता, ॥१६॥ उसी प्रकार हे पार्थ! विषयकी कोई भी कथा जिसे प्रिय नहीं लगती। तथा इंद्रियोंद्वारा जो किसी विषयको ग्रहण नहीं करता; ॥१७॥ जिसका मन विषयोंविषे उदासीन रहता है, शरीर कृश हो रहता है और शम-दममें जिसको अत्यन्त प्रेम रहता है; ॥ १८ ॥ हे पार्थ! जिसके समीपमें सर्व तपो-व्रतोंके समुदाय इकट्ठे हो रहते हैं और ग्राममें आना-जाना या वस्ती करना जिसे कल्पान्तसम दुःखदायी मालूम होता है, ॥ १९ ॥ योगाभ्यासमें जिसे बडी लालसा उत्पन्न होती है, निर्जन-एकान्तस्थानकी ओर जो दौडता रहता है और मनुष्यसमाजका स्पर्श भी जिसे सहन नहीं होता, ॥ ५२० ॥ इस मनुष्य-लोकके भोगोंको वह ऐसा घृणित मानता है, जैसा कि, बाणके नोकोंकी शय्यापर सोना अथवा पीबके कीचडमें लोट-पोट होते रहना ही है ॥ २१ ॥ स्वर्गसुखको श्रवण करनेपर उसके मनमें ऐसा आता है कि, वह सुख सडे हुए कुत्तेके माँसके ही बराबरीका है ॥ २२ ॥ उस पुरुषका जो इस प्रकारका आचरण है, वही विषय-वैराग्य है,और वही आत्मलाभ (ब्रह्मप्राप्ति) का वैभव है। हे पाण्डव! इसीसे जीव, ब्रह्मानन्दभोगनेमें योग्यता प्राप्त करते हैं ॥२३॥ इस प्रकार ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों लोकोंके भोगोंविषे जिस पुरुषमें विरक्ति या उदासीनता दिखाई दे, उस पुरुषमें विपुल-ज्ञानका निवास रहता है, यह तुम निश्चित जानो ॥ २४ ॥ जो सकाम-पुरुषकी तरह इष्टापूर्ति आदि (यज्ञयागादि) कर्मोंको करता रहता है, मानवोपयोगी कार्य भी करता है, परन्तु कर्तृत्वका यत्किंचित् भी अंगमें स्पर्श होने नहीं देता ॥ २५ ॥ तथा वर्णाश्रम-धर्मानुकूल नित्य और नैमित्तिक कर्मोंके करनेमें भी कभी आलस्य या न्यूनता नहीं रखता; ॥ २६ ॥ परन्तु 'मैंने ही यह कार्य पूर्ण किया' इस प्रकारकी भावनाको उसके अन्तःकरणमें तिलभर भी जगह नहीं रहती; ॥ २७ ॥ जिस प्रकार वायु स्वभावगुणानुसार सर्वत्र घूमती है, अथवा जैसे सूर्य निरहंकार-बुद्धिसे उदित होता है, ॥ २८ ॥ अथवा श्रुति जैसी सहजरीतिसे ज्ञान कथन करती है, किंवा गंगा जैसी निर्हेतुक बहती रहती है, उसी प्रकार जो निरहंकारी होता हुआ सब आचरण करता रहता है ॥२९॥ जिसकी निरभिमानी बुद्धि ऐसी रहती है, जैसी कि वृक्षोंकी, अर्थात् वृक्ष ऋतुकालमें फलते तो हैं, परंतु वे यह अभिमान नहीं रखते कि, हम फलान्वित हों, लोगोंको फल देते हैं ॥५३०॥ इसप्रकार जिसके मनसे, कर्मसे और वाणीसे अभिमान ऐसा निकल गया है, मानो किसी इकट्ठे किये हुए


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



डोरको पृथक् पृथक् करदिया हो ॥ ३१ ॥ अथवा कारणके बिनाही आकाशमें मेघ संचार करते रहते हैं, परन्तु उनसे जैसे आकाशको उपाधि नहीं होती तद्वत् जिसके देहसे यद्यपि कर्माचरण किये जाते हैं, तथापि वह ऐसा उदासीन रहता है, ॥ ३२ ॥ कि मद्यपीको अपने अंगपरके वस्त्रकी, या चित्रको अपने हाथके शस्त्रकी अथवा बैलको अपने पीठपर रखे हुए शास्त्रग्रंथोंके बोझाकी जैसी सुधि नहीं रहती, ॥ ३३ ॥ तद्वत् जिसका देहमें रहते हुए भी अस्तित्व अहं-स्फुरण व्यर्थ रहता है, कारण उसे उसका स्मरण ही नहीं रहता। हे पार्थ ! उस पुरुषकी ऐसी स्थितिको ' निरहंकारता ' कहना चाहिये ॥ ३४ ॥ और ऐसी निरहंकारता जिसमें पूर्णतासे दिखाई देती है, उस पुरुषमें ज्ञानका निरंतर वास रहता है, इसमें यत्किंचित् भी संशय मत करो ॥ ३५ ॥ जन्म और मृत्यु, जरा और दुःख तथा रोग और वार्धक्य इन संकटोंको जो पहले ही, यानी प्राप्त होनेके पूर्वही, अपनी दूरदृष्टिसे देखलेता है, ॥ ३६ ॥ जैसे कि साधक ( मंत्री ) पिशाचको दूरहीसे पहँचानता है, अथवा योगी आगामी उपद्रवोंको पहलेसे जान लेता है, किंवा कारीगर ( बढई आदि ) गुनियासे वस्तुका टेढाबेढापन या उसका न्यूनाधिकत्व पहलेसे ही जान सकता है ॥ ३७ ॥ जैसे सर्प पहले जन्मका भी वैर भूलता नहीं, तद्वत् वह पिछले जन्मके भी दोषोंको न भूलता हुआ स्मरता ही रहता है ॥ ३८ ॥ आँखोंमें घुसा हुआ बारीक कंकड जैसे सहा नहीं जाता, किंवा लगे हुए घावमें फिर शल्य लगनेसे सहा नहीं जाता, वैसेही उससे पिछले जन्मोंके भी दुःख सहे नहीं जाते, ॥ ३९ ॥ जो सदैव कहा करता है, कि " हाय रे जन्म ! मैंने पीबकी नदीमें प्रवेश किया था, मैं मूत्रद्वारमेंसे बाहर निकल आया ! और उसपर भी हाय ! हाय ! ! मैं स्तनोंके स्वेदको ही चाट रहा था ! " ॥ ५४० ॥ इसप्रकारके विचारोंसे जो निरंतर घृणान्वित होता हुआ पश्चात्ताप करता है, और प्रतिज्ञा करता है कि, अब मैं ऐसा कर्म कभी नहीं करूंगा, कि जिससे फिर जन्म लेना पडे ॥ ४१ ॥ हारे हुए धनको फिरसे प्राप्त करनेकी इच्छासे, जैसे जुगारी फिर दाँव लगा देता है, अथवा पिताके वैरका बदला लेनेमें पुत्र जैसा शत्रुके दोषमें ध्यान रख लेता है; ॥४२॥ किंवा किसीके मारनेपर उस मारनेवालेका पक्षपाती जैसा बदला लेनेमें बाट जोहता है, उसीप्रकारकी सावधानतासे मनःक्षोभके साथ जन्मके पीछे लगा रहता है ॥ ४३ ॥ परन्तु जिस प्रकार संभावित मनुष्य अपमान नहीं सह सकता, उसी प्रकार जिसे जन्म प्राप्त होनेकी शरम निरंतर टोकती रहती है ॥ ४४ ॥ इस कारण भविष्यकालमें होनेवाली मृत्यु चाहे कल्पान्तसमयमें हो, चाहे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आजही हो, कारण वह होगी तो अवश्य इसलिये उस विषे जो प्रतिक्षण सावधान रहता है ॥ ४५ ॥ हे पाण्डव ! 'बीचमें अथाह पानीका ह्रद है,' ऐसा किसीने कह दिया हो, तब तैरनेवाला जैसे तीरपर ही धोती कसकर बाँध लेता है, ॥ ४६ ॥ अथवा रणांगणमें जानेके पहले ही दूरदृष्टि पुरुष जैसा अपना अवसान सँभालता है, किंवा घावके लगनेके पूर्वही जैसी ढाल आगे की जाती है, ॥ ४७ ॥ अथवा कलके मुकाममें शायद घात होनेका संभव है, ऐसा जाननेपर आजही जैसे सावधान होना आवश्यक होता है किंवा प्राण निकल जानेके पहले ही जैसे औषधीके लिये दौडना उचित है, ॥ ४८ ॥ नहीं तो घर जलने लगे तो फिर कूँआ नहीं खोदा जाता, कारण वह खोदना हास्यास्पद ही होता है ॥ ४९ ॥ गहरे पानीके दहमें फेंके हुए पत्थरके समान, जलमें डूबे हुए मनुष्यको उसके कईबार चिल्लानेपर भी क्या उसे कोई निकाल सकता है? अथवा किसीको उसकी खबर भी नहीं होती ! ॥५५०॥ इस लिये जिसका किसी बलवान्के साथ कडा वैर होरहा है, वह जैसा आठोंप्रहर शस्त्र लिये हुए सावधान रहता है, ॥ ५१ ॥ किंवा विवाहके योग्य हो रही हुई कन्या जैसे निरन्तर विवाहका ही विचार करती रहती है, अथवा संन्यासी जैसे संसारके त्यागमें पहलेसे ही सिद्ध रहता है, तद्वत् जो पुरुष न मरते ही. यानी मृत्युके पहले ही सदैव मृत्युका ही विचार करता रहता है, ॥५२॥ और इस प्रकार जन्म लेकर जो इस जन्मका निवारण करता है तथा मृत्युसे मृत्युको मारता हुआ आगेके जन्म-मृत्युओंके द्वार बंद कर देता है और केवल आत्मस्वरूप ही बना रहता है, ॥ ५३ ॥ हे पार्थ ! उसके घर ज्ञानकी कुछ न्यूनता नहीं रहती । जिसका जन्म-मृत्युरूपी शल्य निकल गया है, ॥ ५४ ॥ जो वृद्धापकाल आनेके पहले ( तारुण्यमें ) ही अपने शरीरको हृष्टपुष्ट तारुण्यकी बहारका देखकर, अपने मनमें कहता है, कि आज यह शरीर जो बडा हृष्ट-पुष्ट दिखाई देता है, वह सूखी हुई काचरीके समान हो जायगा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तथा ये मेरे हाथ-पाँव भी ऐसे निकम्मे होजायँगे, जैसे दुर्दैवी पुरुषके व्यवसाय होते हैं। और विना मंत्रीके राजाके बल ( सैन्य ) की जो दुःस्थिति होती है, वही स्थिति मेरे इस बलकी भी होगी ॥५७॥ जिस मेरे मस्तकको अब फूलोंका बडा शौक रहता है, वह ऊँटके घुटनोंके समान खडबडा और बेढब हो जावेगा, ॥ ५८ ॥ और किसी मनमाने घूमनेवाले पशुके पैरमें जस आषाढमहीनेमें वायुसे एक प्रकारका बुरा रोग होता है वही दशा मेरे इस मस्तककी होगी; ॥५९॥ ये मेरे नेत्र जो आज कमलपत्रोंसे स्पर्धा कर रहे हैं, वे कल पके हुए चचेंडेके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



समान निस्तेज हो जावेंगे; ॥ ५६० ॥ इन भौहोंके परदे पुरानी छालके समान लटकने लगेंगे और यह मेरा वक्षःस्थल आँसुवोंके जलसे भीग-भीगकर सडजावेगा, ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार बबूलके पेडपरसे गिरगट आते जाते उसके गोंदसे लिथडे जाते हैं वैसेही यह मेरा मुख लारसे लिथडा भरा होजावेगा; ॥ ६२ ॥ रसोई-घरके चूल्होंके सामनेकी मोरियां गंदे पानीसे और राखसे जैसी बुरीतरह भरी रहती हैं, तद्वत् यह मेरे घ्राण-रंध्र जुखामसे भरे रहेंगे; ॥ ६३ ॥ जिस मुखसे पान खाकर मैं अपने होठोंको रँगाता हूँ, हँसते हँसते जिससे दाँतोंको दिखाता हूँ और जिससे सुंदर वाङ्मय करता हूँ; ॥ ६४ ॥ उस मुँहमें कफके साथ लारका प्रवाह बहेगा और दाँतोंसमेत उसकी डाढें गिरपडेंगी, ॥ ६५ ॥ और ऋणके भारसे जैसी खेतीवाडी डूब जाते ही किसी आसामीकी स्थिति होती है या शीतमें बैठे हुए पशुकी जैसी दुर्बलावस्था होती है, तद्वत् यह मेरी जिह्वा ऐसी गिर जावेगी, कि कुछ भी करो जो फिर कभी ऊपर नहीं उठ सकेगी ॥ ६६ ॥ सूखे हुए घासके घसुए जैसे वायुसे इधर-उधर उडते हैं, उसी प्रकारकी दशा मुँह और दाढीकी हो जावेगी; ॥ ६७ ॥ आषाढमासकी वर्षासे जैसे पर्वतके शिखरमेंसे प्रवाह बहते दिखाई देते हैं, तद्वत् मुँहके दातोंकी खिडकियोंमेंसे लारके प्रवाह बहने लगेंगे; ॥ ६८ ॥ जीभ दुबली होकर वाचा बंद हो जावेगी, कान बहरे होजावेंगे और संपूर्ण देह एक बडे मर्कटके समान दीखने लगेगा, ॥ ६९ ॥ वायुके जोरसे खेतका रक्षक घासका पुतला ( चिडियोंके डरानेवला ) जस आग पीछे होता रहता है, वैसेही सब शरीर काँपने लगेगा; ॥ ५७० ॥ चलते समय पैरमें पैर अडने लगेंगे, हाथ टेढे होजावेंगे, फिर जो मेरा स्वाँग दिखाई देगा उसका भला कौन वर्णन कर सकता है ? ॥ ७१ ॥ मल-मूत्र-द्वार अशक्त होनेसे आपही उत्सर्ग करने लगेंगे, ऐसी स्थितिमें लोग मेरी मृत्युके लिये ही मानता करेंगे; ॥ ७२ ॥ मुझे देखकर जगत् थूकेगा और मृत्यु कब आवेगी ? यही मुझे याचना करनी पडेगी तथा मेरे सगे सम्बन्धी सब मेरेसे ऊब जायँगे, ॥७३॥ स्त्रियें मुझे पिशाच समझेंगीं और लडके-बाले मुझे देखकर डर जायँगे। तात्पर्य, मैं केवल दुनियाके लिये नालायक घृणित-विषय बन जाऊँगा ॥ ७४ ॥ खाँसीके ठसकेसे मेरा खो, खो, सुनकर पडोसवाले जागृत हाकर कहेंगे कि, यह बूढा और कितने दिन हमें क्लेश देगा, जाना नहीं जाता ? ॥ ७५ ॥ अस्तु, इस प्रकार वार्धक्यके भावी-लक्षण जो तरुणावस्थामें ही देख लेता है और उन सबका मनमें तिरस्कार करता है, ॥ ७६ ॥ और मनमें यह कहता है कि, कल मुझे ऐसी दैन्यावस्था अवश्य प्राप्त होगी, तो हाल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



(आज) का समय यदि मैं शरीर-भोगमें ही खर्च कर डालूँगा, तो मेरे कल्याणके लिये मेरे पास क्या बचेगा? ॥ ७७ ॥ अतएव जबतक वधिरता नहीं आई हो, तबतक सब श्रवण करना, पैरमें पंगुत्व नहीं आया हो, तबतक तीर्थ-यात्रा करना; ॥ ७८ ॥ जबतक दृष्टि ठीक है, तबतक जिनका दर्शन करना है, करलेना; वाणी बंद नहीं हुई हो, तबतक ही सुभाषित-वार्ता कहना; ॥ ७९ ॥ आगे हाथ लूले पडजायँगे इस भविष्यका यत्किंचित् ज्ञान होनेके पहले ही जो द्रव्य दान करना है, सो सब करलेना; ऐसा सोचकर जो सावधानीसे सब करता है, ॥ ५८० ॥ तथा ऐसी दशा प्राप्त होने, और मनके भ्रमिष्ट होनेके पूर्वही जो शुद्ध आत्मज्ञानका संग्रह कर चिन्तन कर रखता है, ॥ ८१ ॥ कल चोर अपनी संपत्तिको लूटेंगे तो जैसा आजही सब संपत्तिकी यथायोग्य व्यवस्था करनी चाहिये अथवा दिवा–बत्तीके बुझ जानेके पहले ही जैसी ढाँक-मूँद-व्यवस्था कर देना उचित होता है, ॥ ८२ ॥ तद्वत् ही ऐसा शोचकर कि, आगे वार्धक्य प्राप्त होगा और यह सब वृथा जायगा, इससे अभीसे सब कर, इस शरीरसे जो निर्लेप रहता है; ॥ ८३ ॥ किले-कोट अथवा घर टूटनेको हुए हैं, किंवा आकाशमें मेघ आ रहे हैं, या पक्षी घरमें प्रवेश कर रहे हैं, ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर उसकी उपेक्षा कर जो बाहर प्रवासको निकलता है, वह जैसा अवश्य घातको पाता है, ॥ ८४ ॥ उसीप्रकार वृद्धावस्था आनेपर प्राप्त हुआ शरीर वृथा जायगा; फिर उसे शतायुषी कहनेमें क्या स्वारस्य है? यह कहनेवाले अज्ञानीही समझने चाहिये ॥ ८५ ॥ एकबार झाड देनेपर तिलके पेड जैसे दुबारा झाडनेसे उनमेंसें फिर तिल नहीं निकलते, किंवा अग्नि भी हो तो जसा वह राखको जला नहीं सकती, उसी प्रकार एकबार वार्धक्य आनेपर फिर सौ वर्षका या उससे भी अधिक आयु हो, तो उस शरीरसे कुछ नहीं बनेगा ॥ ८६ ॥ अतएव 'वृद्धावस्था आवेगी,' यह स्मरण रखता हुआ जो उसके वश न होकर तारुण्यमें ही सब कर्तव्य कर रखता है, उस पुरुषमें सच्चा ज्ञान है यह निश्चित समझना चाहिये ॥८७॥ उसीप्रकार जबतक नानाप्रकारके रोगोंने शरीरको ग्रसा नहीं हो, तबतक जो आरोग्यका साधन करलेता है, ॥ ८८ ॥ जैसे सर्पका मुँह लगा हुआ अन्नका ग्रास ज्ञाता-पुरुष फेंक देता है, ॥ ८९ ॥ तद्वत् जिनका वियोग होतेही संताप, संकट, शोक आदिका पोषण होता है अर्थात् ये बढ जाते हैं, ऐसा जो ममत्व (स्नेह) उसे छोड, जो निःस्पृह हो, आत्मसुखमें रममाण होता है, ॥ ५९० ॥ और जिन-जिन द्वारोंसे पाप अपना मस्तक ऊपर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उठावेंगे, उन कर्मेंद्रियोंके छिद्रोंमें यमनियमरूपी पत्थरोंको भरकर उन्हें बंद कर देता है, ॥ ९१ ॥ इस प्रकार बड़ी सावधानीके साथ युक्तिपूर्वक जो अपना आचरण पहलेसेही शुद्ध रखता है, वह अकेला ही ज्ञानसंपत्तिवान् पुरुष समझना चाहिये ॥ ९२ ॥ हे पार्थ ! इस विषयमें और एक अपूर्व लक्षण बता देते हैं, तुम लक्षपूर्वक सुनो ॥ ९३ ॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

इस देहसे जो इस प्रकार उदासीन रहता है कि, जैसे कोई प्रवासी चलते-चलते थोडी देर विश्रामके लिये धर्मशालामें आ बैठा हो ॥ ९४ ॥ अथवा रास्तेसे चलते समय वृक्षकी छायाका जितना ममत्व समझता है, इतना भी जो अपने घरका मानता नहीं, ॥ ९५ ॥ अपनी छाया अपने साथ हीं रहती है, परन्तु उसका कोई जैसे स्मरण भी नहीं रखता, वैसे ही जिसे स्त्रीके विषे लोलुपता नहीं रहती, ॥९६॥ और उसे जो लडके-बाले ( सन्तान ) उत्पन्न होते हैं, वे केवल यहां प्रवासी हो बस्तीके लिये आ रहे हैं, किंवा वे वृक्षकी छायामें बैठनेवाले पशुओंके समूह हों, ऐसा समझता है, ॥ ९७ ॥ हे पार्थ ! जो संपत्तिकी राशिपर बैठता हुआ भी ऐसा प्रतीत होता है कि, जैसा कोई रास्ता चलनेवाला प्रवासी साक्षीरूप हो ॥९८॥ बहुत क्या कहा जाय ? जैसे पींजरेमें बन्द भया हुआ तोता अपने पालनेवालेकी आज्ञा मानता है, तद्वत् जो वेदाज्ञाको मानता हुआ नीतिसे चलता है, ॥ ९९ ॥ तथापि स्त्री, पुत्र, गृहादिके ममत्वमें जिसे आसक्ति नहीं है, उस पुरुषको तुम पृथ्वीके समान ज्ञानका अधिष्ठान ही समझो ॥ ६०० ॥ गरमी ( ग्रीष्मऋतु ) या वर्षा ( वर्षाऋतु ) में जैसे महासागर अपने जलसंपत्तिसे समान ही भरे रहते हैं, उसी तरह जिसे इष्ट वा अनिष्टमें कोई विकार नहीं होता, अर्थात् जो समान ही रहता है, ॥ १ ॥ अथवा दिनके तीनों कालोंमें सूर्य जैसा त्रिधा न होकर एकही रूप रहता है, तद्वत् जिसके चित्तमें सुख और भिन्नत्व उत्पन्न नहीं होता ॥ २ ॥ आकाशके समान जिसमें समभाव पूर्णतासे भरा रहता है, हे पार्थ ! उस पुरुषमें शुद्धज्ञान आपही आ रहा है, समझो ॥ ३ ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जिसके काया, वाचा और मनका इस प्रकारका निश्चित निश्चय होगया है, कि इस संसारमें मेरे (ब्रह्मके) अतिरिक्त दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं है, ॥४॥ और जिसके शरीर, वाणी और मन ये सब दृढ-निश्चयका तत्त्व पी चुकनेसे दूसरे किसीकी वे बाट नहीं देखते ॥ ५ ॥ सारांश, जिसका अन्तःकरण मेरे संनिधिमें आपहुँचा है, ऐसी योग्यतावाले पुरुषने अपने और हमारे पहुडनेके लिये मानो एकशय्यात्व ही सिद्ध कर रखा है, ॥ ६ ॥ जिसप्रकार धर्मपत्नी पतिके पास जानेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं रखती, कारण जिसका शरीर और अन्तःकरण पतिको समर्पित ही रहता है, उसी प्रकार जो मुझप्रत आकर मुझे भजता है, ॥ ७ ॥ जिसप्रकार गंगाजल समुद्रको जा पहुँचनेपर समुद्ररूप हो मिला रहता है, तद्वत् जो मेरे स्वरूपमें मिलनेसे मद्रूप होनेपर भी, सब मनोभावसे मेरा भजन करता है, ॥ ८ ॥ सूर्यके साथ उदय होना और सूर्यके साथ ही अस्त होना, यह क्रिया जैसी सूर्यांकित प्रभाको ही शोभा देती है, ॥ ९ ॥ अथवा जलके पृष्ठभागपर जो जलकी लहरें उत्पन्न होती हैं, उन्हें 'तरंग' कहा जाता है, परन्तु वास्तवमें वह भी जल ही रहता है, ॥ ६१० ॥ उसी प्रकार जो एकनिष्ठ भक्त मद्रूप होकर भी मेरा भजन करता है, हे पार्थ! वह केवल मूर्तिमंत ज्ञानका पुतला ही समझो ॥ ११ ॥ और जिस पुरुषको तीर्थों, पवित्र-नदियोंके तीरों, निर्मल तपोवनों और गुफाओंमें बसना प्रिय भाता है, ॥ १२ ॥ पर्वत-श्रेणियोंकी गुफाओंमें तथा सरोवरोंके समीपके स्थानोंमें जो प्रेमसे रहना पसंद करता है और जो शहर-ग्रामोंकी वस्तीमें आना नहीं चाहता, ॥ १३ ॥ एकान्तवासमें रहना ही जिसे अत्यन्त प्रिय लगता है और मनुष्यवस्तीकी जिसे मनसे घृणा रहती है, वह पुरुष मानो देहधारी प्रत्यक्ष ज्ञानकी मूर्ति ही समझो ॥ १४ ॥ हे बुद्धिमान् पार्थ! ज्ञानका तत्त्व समझमें आजानेके लिये हम और प्रकारसे भी उसके लक्षणोंका स्पष्टीकरण करते हैं ॥ १५ ॥

**अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।**
**एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥**

परमात्मानामक जो एकमेवाद्वितीय एक वस्तु है, वह जिसे ज्ञानद्वारा दिखाई देती है, ॥१६॥ वह एकही सच्चा ज्ञान है, और इसके अतिरिक्त संसार, स्वर्ग इत्यादि जो जो ज्ञान हैं वे वस्तुतः अज्ञानही हैं, इस प्रकारका जिसके मनने निश्चित निर्णय कर रखा है, ॥१७॥ और हे पार्थ! स्वर्गको जाना जिसका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मन नहीं चाहता, संसारके विषयोंको सुनना भी जिसका मन नहीं चाहता और जो केवल निर्मल अध्यात्ममें ही सद्भावसे निमग्न रहता है, ॥ १८ ॥ रास्तेसे चलते समय जहां रास्ता टूटता हो तो, इधर उधरके आडे-मार्गोंको छोडकर जैसे राजमार्गको ही पकडना उचित है, ॥ १९ ॥ उसी प्रकारकी भावनासे जो सब दूसरे ज्ञान-मार्गोंको दूर करता है, अर्थात् इतर ज्ञानमार्गोंकी तरफ न देखता हुआ, अपनी बुद्धि और मनको सीधे अध्यात्मज्ञानमेंसे ही चलाना चाहता है, ॥ ६२० ॥ और जो मनमें कहता है कि, यह आत्मज्ञान ही एक सत्य वस्तु है और दूसेर विषयोंके जो ज्ञान हैं, वे केवल भ्रमकारक हैं, ऐसा समझ, दृढ निश्चयके साथ अपने मनको जो मेरुपर्वतके समान उसमें स्थिर करता है; ॥ २१ ॥ इस प्रकार जिसका निश्चय आकाशके ध्रुवतारेके समान अध्यात्मज्ञानके द्वारमें अचल हो रहा है, ॥ २२ ॥ उस पुरुषमें ज्ञान निश्चित-रूपसे रहता है, इस वचनमें मिथ्यात्व कभी प्राप्त नहीं होगा, यह वचन सत्य-सत्य ही समझो; कारण उसका मन जब ज्ञानमें स्थिर होगया तभी वह ज्ञानस्वरूप वा मद्रूप हो चुका है ॥ २३ ॥ जो बात थोडी देरसे होनेवाली होती है, वह उसी क्षण कैसी होगी ? जैसे भोजनका सुख बैठते ही नहीं होता, किन्तु भोजन करने-पर ही वह होता है, वैसेही पुरुषकी मति एकबार ज्ञानमें स्थिर होनेसे वह पुरुष बहुशः ज्ञानवानोंसा ही ज्ञानी होजाता है ॥२४॥ और शुद्धज्ञान-प्राप्तिसे जो एक निर्मल फल मिलनेका होता है, उस ज्ञेय-वस्तुरूपी फलपर उसकी दृष्टि सरलताके साथ लगी रहती है ॥ २५ ॥ अन्यथा—यदि ऐसा न हो—तो ज्ञानबोध होनेपर भी, यदि अन्तःकरणमें ज्ञेय—वस्तु दिखाई न दे, तो ज्ञान-बोध होनेसे भी ज्ञान-लाभ प्राप्त हुआ हो, ऐसा नहीं समझा जाता ॥ २६ ॥ क्योंकि अंधेके हाथमें दीपक है, पर उससे उस अंधेको क्या लाभ हुआ ? उसीप्रकार जब ज्ञेय—वस्तु दिखाई न दे, तो सब ज्ञान-निश्चय वृथा ही समझना पडेगा ॥ २७ ॥ तथा यदि ज्ञानप्रकाशसे परमात्मतत्त्व दृष्टिगोचर न हो, तो वह ज्ञानही अंधा समझना पडेगा ॥ २८ ॥ इस कारण बुद्धि ऐसी निर्मल होनी चाहिये कि, ज्ञान जो-जो ज्ञेय—वस्तु उसे (बुद्धिको) दिखावे, वह सब परमात्मवस्तुस्वरूप ही उसे दिखाई दे दे ॥२९॥ अतः हे पार्थ ! जो पुरुष इस प्रकारसे बुद्धिको तैयार कर देता है कि; वह बुद्धि निर्दोष-ज्ञानके बताए हुए परतत्त्वको देख सकती हो, ॥ ६३० ॥ और परमात्मतत्त्वको देख सके, इस प्रकारका जिसके ज्ञानका विस्तार होगया है, उसकी बुद्धि भी वैसी ही विस्तारको प्राप्त हुई रहती है; फिर वह पुरुष ज्ञान-स्वरूप हो, यह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बात शब्दोंसे कहनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ३१ ॥ यह बात तो स्पष्ट ही है, कि ज्ञानका प्रकाश होते ही जिसकी बुद्धि ज्ञेयमें प्रविष्ट होजाती है, वह आत्मतत्त्वको प्रत्यक्षमें हस्त-स्पर्श ही करता है ॥ ३२ ॥ फिर हे बुद्धिमान् पार्थ ! उस पुरुषको प्रत्यक्ष ज्ञान ही कहा जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? क्या सूर्यको सूर्य कहनेमें और कोई स्पष्टीकारण करना आवश्यक रहता है ? वा सूर्य कहना कोई आश्चर्य हो ? ॥ ३३ ॥ उस समय श्रोताओंने कहा 'अब इसका विस्तार मत बढाओ, ग्रंथ-निरूपणमें ऐसा विस्तार करनेसे प्रस्तुत विषयमें प्रतिबंध होजाता है ॥ ३४ ॥ तुमने ज्ञानविषयको बडे विस्तारके साथ और रसपूर्ण वाग्विलाससे समझा दिया, इससे हमारे लोगोंका बहुत आदर-सत्कार होचुका ॥ ३५ ॥ रसिकतामें तुम अन्यकवियोंसे भी बढकर हो, परन्तु हमें निमंत्रण देकर अनावश्यक रसिकताबढानेवाले सामान्यकवियोंके समान तुम्हें हमारा अप्रिय करना, इस सुप्रसंगमें उचित नहीं है ॥ ३६ ॥ भोजनको बैठनेपर थालीमें परोसे हुए पकान्नोंको यदि कोई उठा लेजाय और फिर कितना ही आदरातिथ्य करे तो उसका किया हुआ आदर किस कामका ? ॥ ३७ ॥ जैसी गौ अन्य सब बातोंमें तो बडी अच्छी है, परन्तु दूध दुहते समय जो पास बिठाने भी नहीं देती, लत्ताप्रहार करती है, ऐसी केवल लतियल गौको कौन पालेगा ? ॥ ३८ ॥ उसीप्रकार जिनकी बुद्धिका ज्ञानमें विकास नहीं होता है, ऐसे जो अन्यान्य कवि हैं, वे अपने निरूपणमें न जाने कितने और कैसे कैसे प्रलाप करते होंगे; परन्तु अस्तु । वह बात जाने दो, तुमने इस विषयमें बहुत ही उत्तम निरूपण किया ॥ ३९ ॥ जिस ज्ञानके लेशका लाभ हो, इस आशासे जो लोग योगसाधनों-सरीखे कठिन कष्ट करते हैं, वह ज्ञान ही स्वयं समाधानकारक है, फिर तुम्हारे सरीखे रसिकके मुखसे उसका रसभरित निरूपण हुआ ॥ ६४० ॥ जैसे अमृतकी वर्षाका एकसरीखा सप्ताह चालू रहगया हो, तो कौन बंद होनेकी या रोकनेकी इच्छा करेगा ? सुखके ही सब दिन जा रहे हों, तो कोई थोडे ही कहेगा, कि ये कब समाप्त होंगे ? ॥ ४१ ॥ पूर्णचन्द्रवती पूर्णिमाकी रात्रि यदि युगतक लंबी बढजाय तो क्या चकोरपक्षी उसकी तरफ देखनेमें कभी आलस्य करेंगे ? ॥ ४२ ॥ उसीप्रकार ज्ञानका निरूपण, और ऐसा रस-भरा व्याख्यान हो, तो सुननेमें कौन तृप्त होकर 'बस' कहेगा ? ॥४३॥ देखो, कोई श्रीमान् और भाग्यवान् पहुना आया हो, फिर परोसनेवाली भी उदार और प्रेमसे परोसती जाय तो, ऐसे सुअवसरमें भोजनमें कितनी ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



देरी हो, तो भी वह जैसी कमही मालूम होती है ॥ ४४ ॥ आजका प्रसंग भी उसी प्रकारका है । कारण हमलोगोंको ज्ञानकी अभिलाषा है और तुम्हें निरूपणमें प्रेम है ! ॥ ४५ ॥ अतएव इस निरूपणमें हमारा अवधान चौगुना बढ रहा है, इसलिये 'अब बस करो' कहा नहीं जाता, कारण तुम ज्ञानद्रष्टा हो, यह हमारा पूर्ण विश्वास हो रहा है ॥४६॥ अब अपनी बुद्धिके मध्य-घरमें प्रविष्ट होकर उसके प्रभावसे ' अज्ञानं यदतोऽन्यथा ' का यथासांग निरूपण करो " ॥ ४७ ॥ श्रोता-सन्तोंके ऐसे वचन सुनकर, निवृत्तिनाथ-शिष्य ज्ञानदेवने कहा—महाराज ! मेरी भी यही इच्छा है ॥ ४८ ॥ तिसपर आप सन्तोंने भी वैसीही आज्ञा की है, इसलिये अब वृथा वाग्जालको नहीं बढाता हूँ ॥४९॥ पूर्वोक्त प्रकारसे ज्ञानके अठारह लक्षणोंका निरूपण कर श्रीकृष्णने अर्जुनको ज्ञानोपदेश किया ॥ ६५० ॥ और फिर देवने कहा—हे पार्थ ! इन लक्षणोंसे ज्ञानको पहिचानना चाहिये ऐसा हमारा मत है, और सब ज्ञानीजन भी हमारे मतमें अनुकूल-मतवाले ही देखे गये हैं ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार हथेलीपर रखा हुआ आँवला डोलता हुआ रहनेसे स्पष्ट दिखाई देता है, उसी प्रकार तुम्हारे आँखोंसे ज्ञान स्पष्ट दिखाई देगा, इस प्रकार उसे हमने तुम्हें दिखा दिया है ॥ ५२ ॥ अब हे बुद्धिमान् पार्थ ! जिसे ' अज्ञान ' कहा जाता है, उसका भी हम लक्षणों-सहित वर्णन करते हैं, तुम सुनो ॥ ५३ ॥ वास्तवमें ज्ञानका सच्चा स्वरूप ज्ञात होनेपर, अज्ञान सहजहीमें पहँचाना जा सकता है, कारण जो ज्ञान नहीं वह अज्ञान यह बात सिद्ध ही है ॥ ५४ ॥ देखो अर्जुन ! दिनका अस्त होनेसे, फिर आपही आप रातकी बारी आती ही है, वहां कुछ दूसरे तीसरेका थोडा काम है ? ॥ ५५ ॥ तद्वत् जहां ज्ञान नहीं वहां अज्ञान ही होगा, तथापि अज्ञानके पहँचाननेके भी कुछ विशेष लक्षण तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य केवल अपनी प्रतिष्ठा ( बडप्पन ) के लिये ही जीवन धारण करता है, जो सम्मानके लिये नित्य बाट जोहता रहता है तथा आदरातिथ्यसे जिसे सन्तोष होता है, ॥ ५७ ॥ अभिमानसे पर्वतके शिखरके समान, जो ऊँचे आसनसे नीचे उतरना नहीं चाहता है, उस पुरुषमें अज्ञानकी परिपूर्ण समृद्धि है, ऐसा तुम निश्चित समझो ॥५८॥ जो अपने दानादि स्वधर्मरूपी तोरणको अपने वाचारूपी पीपलके पत्तों ( हिलते रहते ) से चौराहेपर बाँधता है, जो जानता हुआ भी मंदिरमें चँवर या झाडूके डंडे-सरीखा खडा ही रहता है; ॥ ५९ ॥ जो अपनी विद्याका लोगोंमें विस्तार दिखाता है, अपने पुण्यकृत्योंकी प्रसिद्धिमें डौंडी पीटता है, तथा हरेक बात

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जिसकी केवल अपनी महिमा बढानेके लिये ही रहती है; ॥ ६६० ॥ बाह्यतः लोगोंको ठगानेकी इच्छासे ही जो अपने देहको खूब सजाता है, और जब अपने स्वांगसे भूले हुए देखता है तो उन्हें फँसाता है, हे पार्थ ! ऐसे मनुष्यको तुम अज्ञानकी खानि ही समझो ॥ ६१ ॥ अरण्यमें अग्निके प्रज्वलित होनेसे जैसे स्थावर-जंगम सबको दुःख होता है, या वे जलजाते हैं, उसी प्रकार जिसके आचरणसे सब संसारको दुःख सहना पडता है ॥ ६२ ॥ कुतूहलसे जो सहजमें ही भाषण करता है, वह भी ऐसा कठोर रहता है कि, सव्वल ( शल्य ) से भी जो अधिक चुभता है और उसका आन्तरिक दुष्ट हेतु ऐसा रहता है, जो परिणाममें विषको भी मारसके ॥६३॥ उस पुरुषमें अत्यन्त अज्ञान भरा रहता है अथवा उसे अज्ञानका घरही समझना; कारण उसका जीना केवल हिंसार्थ ही रहता है ॥ ६४ ॥ और जिसप्रकार हवा भरनेसे धौंकनी फूलती है, और छोडनेसे दब जाती है, वैसे ही जो लाभ और हानिके संयोगसे सुखी और दुःखी होता है ॥ ६५ ॥ वायुके जोरमें मिलनेपर जैसी धूलि आकाशमें चढजाती है, वैसे ही किसीके स्तुति करनेपर वह चढजाता है ॥६६॥ परन्तु यत्किंचित् निंदा सुनते ही जो मस्तकमें हाथ मारता हुआ दीन होकर बैठता है, जैसे कीचड एक जलबिंदुसे भीगता है और जरासी हवा लगते ही सूख जाता है, उस तरहकी स्थिति जिसके मानापमानसे होती है, जो किसीका भी क्षोभ सह नहीं सकता, हे पार्थ ! उस पुरुषमें पूरा अज्ञान भरा हुआ है ऐसा निश्चित समझना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ और जिसके मनमें गाँठ ( कपट ) रहती है, परन्तु बाह्यतः जो सीधा बोलता है और सरल दिखाई देता है, परन्तु जो एकसे आलिंगन देता है तो दूसरेको अन्तःकरणमें विरोध करता है ॥ ६९ ॥ जिसप्रकार मृगादि पशुओंको मारनेकी इच्छासे ही व्याधा चारा पसार रखता है, तद्वत् ही भले आदमियोंके अन्तःकरणको वश करनेके लिये उन्हें हित दिखाता हुआ विपरीततामें फँसा देता है ॥ ६७० ॥ सेवारसे लपेटा हुआ जैसा सपेद पत्थर होता है या पकी हुई निमकौडी जैसी बाह्यतः बडी सुन्दर दिखाई देती है, वैसी जिसकी आन्तरिक वृत्ति देखनेमें बहुत सरल और भली दिखाई देती है, हे पार्थ ! उसमें अज्ञान बहुतायतसे भरा रहता है, इसमें लेशमात्र संशय मत रखो, यह सत्य है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ और जो गुरुकुलसे लज्जित रहता है, गुरुभक्तिकी जिसे घृणा होती है और गुरुसे विद्या प्राप्त कर उन्हींसे उलटी रीतिसे चलनेमें जो अभिमानी बनता है, ॥७३॥ ऐसे मनुष्यका नामोच्चार करना, मानो जिह्वासे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शूद्रान्न खाना ही समझो, परन्तु हे पार्थ ! अब उनके लक्षण कहनेमें वह नाम उच्चारना अपरिहार्य ही हुआ ॥ ७४ ॥ इसलिये अब गुरुभक्तोंका नाम लेकर दूषित जिह्वाको प्रायश्चित्त देते हुए शुद्ध करता हूँ; कारण गुरुभक्तोंका नाम सूर्यके समान शुद्ध प्रकाश करनेवाला होता है ॥ ७५ ॥ गुरुस्त्रीगमन करनेवालोंके नामसे जो पाप होता है उस पापको भी यदि गुरुभक्तोंका नाम नाश करनेमें समर्थ है, तो गुरुद्रोहियोंके नामोच्चारणके दोषोंको वह भस्म कर दे, इसमें संदेह ही क्या है ? इसलिये गुरुभक्तोंका नाम लेकर हमने सब पाप धो डाला । अब अज्ञानके दूसरे प्रकारके लक्षण भी सुनाता हूँ, तुम श्रवण करो ॥७६॥७७॥ जो आचरणमें दुबिधावृत्ति रहता हुआ शरीरसे कर्म करनेमें आलसी रहता है, जिसके मनमें अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं, जंगलके पुराने और अमंगल कुएँके समान ( जैसे उस कुएँमें अनेक तरहसे मुखपर कंटक रहते हैं और अन्दर सडी झडी हड्डियां भरी रहती हैं ) जो अन्तर्बाह्य सर्वांगमें अशुचि और पापोंसे चिथडा रहता है; ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जैसे कि कुत्ता इस बातका कभी विचार भी नहीं करता कि, यह अन्न अच्छा वा बुरा हो, ढँका वा खुला हो, एकदम उसे खा डालता है, वैसे ही जो द्रव्यप्राप्तिके विषे अपना या पराया इस बातका जरा भी विचार नहीं करता ॥ ६८० ॥ और इन कुत्तोंमें संयोग विषयमें भी स्थान-अस्थान या दिन-रातका जैसे कोई भी विचार नहीं रहता, उसी प्रकार जो स्त्रीविषयमें किसी बातका विचार नहीं रखता है, ॥ ८१ ॥ कर्तव्य-कर्मका समय निकल जाय अथवा नित्य-नैमित्तिक कर्म करनेमें बाकी रहें, तो जिसके मनपर लेशमात्र भी परिणाम नहीं होता या जो दुःखी नहीं होता, ॥ ८२ ॥ पापाचरणमें जिसे किसी प्रकारकी शंका ही नहीं होती तथा पुण्यकर्ममें कभी इच्छा ही नहीं रहती वा जो सुकृतमें भ्रष्ट ही हो रहा है और जिसके अन्तःकरणमें संशयका वेग तीव्रता पकडा रहता है; ॥ ८३ ॥ हे पार्थ ! ऐसे लक्षणवाले पुरुषको तुम मनुष्य न समझकर केवल अज्ञानका पुतला ही समझो तथा जो सदैव अपनी दृष्टि धनप्राप्तिपर ही रखता है, ॥ ८४ ॥ और जैसे चिउँटीके भी हिलानेपर तृण-बीज गिर-पडते हैं, तद्वत् जो स्वल्पमात्र स्वार्थके लिये भी अपने धैर्यसे च्युत होनेमें क्षति नहीं समझता, ॥ ८५ ॥ और पैरके पडते ही जैसे पल्वल ( गढे ) का पानी गँदला होता है, वैसे ही किसी भयका नाम सुनते ही जो घबडा जाता है; ॥ ८६ ॥ बाढमें गिरीहुई सपेद तूँबी जैसी निरर्गल बहती जाती है, तद्वत् जो मनोरथोंके प्रवाहमें पडा हुआ, मनकी इच्छानुसार बहता चला

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जा रहता है; ॥८७॥ जोरकी हवासे जैसी धूलि दूर दिशाओंमें उड जाती है, तद्वत् जो दुःखवार्ता सुनते ही भटकने लगता है, ॥ ८८ ॥ आकाशके मेघोंके समान जो कहीं भी स्थिर नहीं रहता, तथा क्षेत्र, तीर्थ और नगरमें रहना जिसे कदाच नहीं भाता; ॥ ८९ ॥ किंवा मदोन्मत्त और पागल बना हुआ गिरगट जैसे वृक्षके मूलसे ऊपरतक दौडना और वैसेही नीचे उतरना यह काम बार-बार करता रहता है, तद्वत् जो वृथाही इतस्ततः परिभ्रमण करता रहता है; ॥ ६९० ॥ बिना आधारका मिट्टीका घडा, जैसे उसे गाडे रखे बिना वह स्थिर नहीं रहसकता, तद्वत् जो लेटते समय ही स्थिर रहता है, अन्यथा—अस्थिरस्थितिमें—घूमता ही रहता है; ॥ ९१ ॥ हे पार्थ ! उस मनुष्यमें अज्ञान बहुतायतसे मजेमें वास करता रहता है। जो चंचलतामें बन्दरका पूरा भाई ही है; ॥९२॥ और हे धनुर्धर पार्थ ! जिसके अन्तःकरणको निग्रहका बंधन नहीं रहता; ॥ ९३ ॥ नालेमें आई हुई वर्षाकी बाढ जैसी बालूके बँधारेको उडादेनेमें दिक्कत नहीं मानती, वैसेही जो निषेधकी आज्ञासे कभी डरता नहीं; ॥ ९४ ॥ जो अपने आचरणसे व्रतोंका ही खंडन करता है, स्वधर्मको पाँवोंसे तुडा देता है और यम-नियमोंकी आशा उखाड डालता है; ॥ ९५ ॥ जो पापसे घृणा नहीं करता और पुण्यमें प्रीति या इच्छा नहीं रखता और लज्जाका पेड तो जडसे ऐसा उखाड देता है, जो फिरसे उत्पन्न ही न हो; ॥९६॥ जो अपनी कुलपरंपराकी चालि-रीतियोंको तुच्छ मानता है, वेदाज्ञाका श्रवण करना भी पसंद नहीं करता, और कर्तव्याकर्तव्य-विचारका निर्णय करना जिसे स्वप्नमें भी याद नहीं आता; ॥ ९७ ॥ जो बेछूट साँड-जैसा मनमाना मुक्त रहता है, वायुके समान अमर्याद विस्तारवाला होता है, और निर्जन-वनकी फूटी हुई नहर जैसी इधर उधर प्रवाहित होती है, ॥ ९८ ॥ अंधा हाथी जैसा पागल होजाय, अथवा पहाडमें जैसी दावाग्नि लगजावे, वैसा जिसका चित्त किसी प्रकारकी मर्यादा न रखता हुआ विषयोंमें स्वैर-संचार करता रहता है; ॥९९॥ कूडा-कचराके स्थानमें क्या नहीं फेंका जाता ? बेछूट पशुको कौन पकडना चाहता है ? शहरके द्वारकी देहरीको कौन नहीं नाँघता ? ॥७००॥ अन्नछत्रका अन्न कौन नहीं खाता ? अथवा जिसकी योग्यता नहीं, ऐसेको यदि अधिकारप्राप्ति हो, तो वह किसपर अधिकार चलाना छोडेगा ? किंवा बनियेंकी खुली दूकानमें कौन नहीं जा सकता ? ॥ १ ॥ इसी प्रकारकी जिसके अन्तःकरणकी वृत्ति बनगई है, हे पार्थ ! उसे अज्ञानका घर ही समझना चाहिये; फिर किस अज्ञानकी वहां कमी होगी ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ २ ॥ और जो चाहे जीवित हो या मरजाय, परन्तु विषयोंसे जिसका मन पराङ्मुख नहीं होता, इतना ही नहीं, किन्तु स्वर्गमें भोगनेके लिये यहींसे कुछ बाँध लेता है या यहां ही उसकी सिद्धता कर रखता है, ॥ ३ ॥ जो सदैव जीवभावसे विषयोंके लिये श्रम करता है, सकाम-कर्मों ( कामक्रीडा ) विषे ही जिसे निरंतर प्रेम रहता है, और यदि किसी समय वैराग्यशाली पुरुषका दर्शन हो तो, सचैल ( वस्त्रसहित ) स्नान करनेपर ही अपनेको शुद्ध मानता है ! ॥ ४ ॥ कोई समय स्वयं विषय ही उसका त्याग करें, परन्तु वह उनका वैसे त्याग नहीं करता, जैसे महारोगी अपने सडेहुए हाथोंसे अन्न खानेमें नहीं उकताता ! अथवा जो अपने कल्याणमें कभी सावधान नहीं होता; ॥ ५ ॥ जैसी गर्दभी अपना स्पर्श भी करने नहीं देती, बारबार लत्ताप्रहार करती हुई नासिका फोड डालती है, तथापि गधा जरा भी पीछे नहीं हटजाता, ॥ ६ ॥ उसीप्रकार जो विषयलाभकी प्राप्तिमें वलती हुई अग्निमें भी कूदता है, और नानाप्रकारके व्यसनोंके अलंकार शरीरमें पहनता है, ॥ ७ ॥ छाती फूटनेतक परिश्रम करता हुआ मृग जैसे जलकी इच्छासे दौडता है, परन्तु वह यह नहीं समझता कि, यह जल नहीं किन्तु मृगजलकी माया है ! ॥ ८ ॥ वैसेही जन्मसे मृत्युतक विषयोंकरके हरतरहसे पीडित हुआ भी जो उनसे घृणा तो करता नहीं, किन्तु उनपर अधिकाधिक प्रेम करता हुआ उन्हें आलिंगन देता रहता है ! ॥ ९ ॥ जिसे प्रथम बाल्यावस्थामें कहीं माता-पिताका मोह रहता है, फिर उसके समाप्त होते ही स्त्रीका मोह उत्पन्न होकर उसीमें भूला रहता है; ॥७१०॥ स्त्रीके साथ विषयोपभोग करते-करते जब वृद्धावस्था प्राप्त होती है, तब वही मोह-भ्रम पुत्र-पुत्रीमें उत्पन्न होता है; ॥ ११ ॥ जैसे कोई अन्धी स्त्री या कुत्ती आदि प्रसूत होनेपर अपने पुत्रको आलिंगन करती रहती है, वैसे ही जो अपने पुत्रोंको आलिंगन देता उन्हींमें अन्धों जैसा प्रेम करता रहता है, परन्तु मृत्युतक भी विषयोंसे नहीं उकताता ! ॥१२॥ हे पार्थ ! उस पुरुषके अज्ञानका पार ही नहीं समझो । अब अज्ञानके और भी कुछ लक्षण बताते हैं, सुनो ॥ १३ ॥ देहकोही आत्मा समझकर जो कर्मका आरंभ करता है, ॥ १४ ॥ और जो कुछ न्यून वा अधिक आचरण करता है, उसके आविर्भावसे हर्षामर्षपूर्वक चिल्लाने लगता है, ॥ १५ ॥ सिरपर देवकी प्रतिमा या पुष्पोंका प्रसाद रखनेसे जैसे भगत ( पुजारी ) गर्वसे फूलता है, वैसे ही जो विद्या और तारुण्यके मदसे फूलता हुआ आँखें उठाये चलता है, ॥ १६ ॥ और मुँहसे कहता है कि,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



" मेरे समान संसारमें कोई नहीं है, संपत्तिवान् केवल एकेला मैं ही हूँ, मेरे समान कोई आचरण कर सकता है ? ॥ १७ ॥ मेरे समान बडा कौन है ? मैं सर्वज्ञ हूँ, जो कुछ मैं कहूँ सबको वह मानना ही पडता है" इस प्रकार जो सबके सामने अपनी घमेंडकी बातें कहता रहता है, ॥ १८ ॥ व्याधिग्रस्त पुरुष जैसे किसी भोगको सह नहीं सकता, तद्वत् जो दूसरेका कभी भला देख नहीं सकता, ॥ १९ ॥ जैसे दीपक गुण अर्थात् बत्तीको खाजाता है और स्नेह यानी तैलको जला देता है और जिस जगहमें रखा जाता है वहां कज्जल अर्थात् काला बना देता है, तद्वत् जो पुरुष गुण, स्नेह और दुःखही उत्पन्न करता है, ॥ ७२० ॥ और उसी दीपकपर थोडा जल सींचा जाय तो वह तडतडाता है, वायु लगनेपर मरजाता है और यदि कहीं झुलगजाय तो सबकी राख बनाता हुआ तिनका तक नहीं बचाता है, तद्वत् जो पुरुष कुछ करनेपर समझ नहीं सकता, किन्तु समयको देख घात करना ही चाहता है, ॥ २१ ॥ फिर भी दीपक प्रकाश तो थोडा ही देता है, परन्तु उतनेमें उष्णताको प्राप्त होता है, उसी प्रकार जो पुरुष अल्पसी विद्यासे लोगोंके लिये असह्य होता है, ऐसा वह गुणी है, ॥२२॥ औषध समझकर यदि दूधको प्राशन किया जाय तो जैसे नवज्वर कुपित होजाता है, अथवा सर्पको दूध पिलानेसे जैसे वह विष बन जाता है, ॥ २३ ॥ इस प्रकार जिसे सद्गुणोंसे मत्सर, विद्वत्तासे अहंकार और जिसे अपने तपसे और ज्ञानसे अमर्याद गर्व हो रहा है, ॥२४॥ जैसे अन्त्यजको राजसिंहासनपर बिठा दिया हो अथवा अजगरने खम्भा लील लिया हो तो वे जैसे फूलते जाते हैं, तद्वत् जो गर्वसे फूलता हुआ दिखाई देता है, ॥२५॥ जैसे रोटी, पूरी आदि बनानेका बेलन नवता नहीं, पत्थर जैसे द्रवता नहीं और फूत्कार छोडनेवाला साँप जैसे बाजीगर या मांत्रिकके वश आता नहीं, तद्वत् जो मनुष्य कैसे भी गुणवानके वश नहीं आता, ॥ २६ ॥ हे पार्थ ! कहांतक कहा जाय ? थोडेमें तुम यही समझो, कि एसे पुरुषमें 'अज्ञान' निन्तर चढता बढता ही रहता है, यह बात निश्चित ही है ॥ २७ ॥ और भी हे बुद्धिमान् पार्थ ! जो पुरुष इस गृहकी तथा शरीरकी नित्य सेवा करनेमें ही अपना समय बिता देता है, परन्तु पिछले जन्मका कभी स्मरणतक नहीं करता, ॥ २८ ॥ कृतघ्न मनुष्य जैसे किये हुए उपकारको भूल जाता है, अथवा चोर जैसे उसके पास रखनेको दिये हुए धनको दबा देता है, किंवा बेशरम मनुष्य जैसे पूर्वस्तुतिको भूल जाता है, ॥ २९ ॥ जबर्दस्ती अपनी ही इच्छासे घरमें आनेवाले कुत्तेको कान-पूँछ काटकर निकाला जाय तथापि वह जैसे लोहूके सूखनेके पूर्व ही गीलेकान और पूँछको लडखडाता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और कानको फटफटाता हुआ फिरसे गृहमें प्रविष्ट होजाता है, ॥ ७३० ॥ साँपके मुँहमें संपूर्णतासे जाता हुआ दादुर ( मेंडक ) जैसे अपने मरणको भूलकर बाहर उडनेवाले सैंकडों मच्छरोंको लीलनेमें तत्पर रहता है; ॥ ३१ ॥ वैसेही जिसके नवोंद्वार ( नव इंद्रिय ) बह रहे हैं, शरीरमें क्षयरोग लगा है, तथापि उनका कारण जिसके चित्तमें जरा भी खेद नहीं उत्पन्न करता, ॥ ३२ ॥ यद्यपि वह माताके गर्भमें यानी उदररूपी मलमूत्रकी गुफामें नव महीनोंतक उबाला गया था, तथापि उस गर्भव्यथाका अथवा जन्म लेते समयके अपार कष्टोंका जो यत्किंचित् भी स्मरण नहीं करता; ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ फिर भी मलमूत्रोंके कीचडमें चिथडे हुए बालकोंको देखकर जिसे हींक नहीं आती और जिसके मनको उकताहट अथवा घृणा उत्पन्न नहीं होती, ॥ ३५ ॥ और जिसके मनमें यह कभी विचार नहीं आता कि, कलही ( पिछला ) जन्म हो चुका और फिर कलही ( आगेका ) जन्म प्राप्त होनेवाला है, ॥ ३६ ॥ तथैव जो इस जीवनकी चंचलता या क्षणभंगुरताको देखता हुआ भी मृत्युकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता; ॥ ३७ ॥ जीवनका विश्वास रखता हुआ मनमें समझता है कि, " हम जीवित हैं और हमेशः ऐसे ही रहेंगे " इस भरोसेपर रहता हुआ, यह सच ही नहीं मानता कि, इस संसारमें ' मृत्यु ' नामक कोई वस्तु होती है ! ॥ ३८ ॥ छोटेसे पल्वल या गढेके पानीमें रहनेवाली मछली जैसी ' यह कभी सूखेगा नहीं ' समझती हुई गहरे दहमें जाना नहीं चाहती; ॥ ३९ ॥ अथवा व्याधेके गानेको भूलकर मृग जैसे व्याधेको भूल जाते हैं, किंवा मछली जैसी बन्सीके काँटेको न देखकर बाडिश ( माँस ) को निगल जाती है; ॥ ७४० ॥ दीपककी जगमगाहटको देखकर पतंग जैसे अपनेको यह जलावेगी इसका कभी ध्यान नहीं रखता, ॥ ४१ ॥ अथवा घर जल रहा है, ऐसी स्थितिमें भी मूर्ख मनुष्य जैसे निद्रासुखको नहीं त्यागता, किंवा विषके साथ राँधाहुआ अन्न जैसे कोई अजान खाजाता है, ॥ ४२ ॥ उसी प्रकार रजोगुण-सुखमें भूला हुआ मनुष्य यह नहीं जानता कि, जीवनके मिससे यह मृत्यु ही मेरेपर चक्र फिरा रही है ! ॥ ४३ ॥ और जो हमेशः शरीरकी पुष्टि, दिनरात्रिकी शाश्वता, और विषयसुखकी श्रेष्ठताको ही सत्य मानता रहता है; ॥ ४४ ॥ परन्तु वह बेचारा विचारशून्य यह नहीं जानता कि, वेश्याका सर्वस्व यानी तन-मन-धन देना, अपनेको सर्वस्व लूटना ही है ! ॥ ४५ ॥ ठगके साथ मित्रता होना जैसे प्राण-लेना ही है, किंवा दीवालके रंगीन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चित्रको धोकर सफा करना, उसका नाश करना ही होता है, ॥ ४६ ॥ तथा पांडुरोगसे शरीरका मोटा होना ( फूलना ), मानो उसका क्षय होना ही है, तद्वत् अज्ञानसे जो आहार-निद्रासे भूलता हुआ निर्बुद्ध बनजाता है; ॥ ४७ ॥ जैसे कि सम्मुख रखी हुई शूलीपर शीघ्रताके साथ चढनेमें दौडते समय मृत्यु पगपगपर पास आती रहती है, ॥ ४८ ॥ तद्वत् इस शरीरकी ज्यों-ज्यों बाढ होती जाती है, ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, ज्यों-ज्यों विषयसुखका सुकाल होता जाता है, ॥ ४९ ॥ त्यों-त्यों मृत्युकी छाया अधिकाधिक आयुष्यपर पडती रहती है, जैसे कि नमक पानीमें पडते ही गल जाता है ॥ ७५० ॥ उसी तरह यह जीवन नष्ट हो रहा है, और मृत्यु समीप आ रही है, यह बात जानकर जो काल ( मृत्यु ) की तरफ दृष्टि नहीं रखता; ॥ ५१ ॥ हे पाण्डव ! बहुत क्या कहें ? जो विषयोंमें निमग्न रहनेके कारण, अपने अंगमें नित्य नयी मृत्यु चिपक जाती है, उसको भी देख नहीं सकता, ॥ ५२ ॥ वह पुरुष हे महाबाहो अर्जुन ! अज्ञानियोंके देशोंका राजा है, इसमें किसीका भिन्न मत नहीं होगा, यह निश्चित जानो ॥ ५३ ॥ जीवनके सुखसंतोषकी बहारमें वह पुरुष जैसे मृत्युका स्मरण भी नहीं रखता, वैसे ही तारुण्यके सुखसंतोषकी बहारमें वृद्धावस्थाकी ओर भी ध्यान नहीं देता; ॥ ५४ ॥ जैसे पहाडकी कगारपरसे उलटी हुई गाडी, किंवा पर्वतके शिखरसे गिरा हुआ पत्थर आगेकी वस्तुको न देखता हुआ जैसे गडगडाता जाता रहता है, तद्वत् जो आगे आनेवाली वृद्धावस्थाका कुछ भी विचार नहीं करता, ॥ ५५ ॥ अथवा जंगलके नालेको जैसी खूब बाढ आजाती है, किंवा टक्कर लगनेपर जैसे भैंसे मस्त होजाते हैं, उसी प्रकार जो तारुण्यावस्थामें किसीकी पर्वा न करता हुआ मदांध होजाता है; ॥ ५६ ॥ शरीर कृश होता जा रहा है, तेज दिनोंदिन नष्ट हो रहता है, मस्तकमें कंप आने लगता है; ॥ ५७ ॥ डाढी पक जाती है, गर्दन हिलती हुई कह रहती है कि, अब मेरा टिकना कठिन हो रहा है, ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर भी जो मायाका विस्तार बढाता ही रहता है, ॥ ५८ ॥ सामनेकी वस्तु छातीपर आ गिरे तबतक जैसे अंधेको उसका भान नहीं होता, अथवा घरमें लगी हुई आग अंगपर गिरने तक जैसे आलसी मनुष्य सुखसे सोता ही रहता है, ॥ ५९ ॥ उसीतरह आजका तारुण्य भोगते हुए जो मनुष्य कलके आनेवाले वार्धक्यका स्मरण नहीं करता, हे पार्थ ! वह मनुष्य यथार्थमें आज्ञानी ही समझो ॥ ७६० ॥ हे पार्थ ! कोई अशक्त हो अथवा कुबडा हो, उसे देखकर जो गर्वसे हँसता है,


CC0. Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



या उसी-जैसा अनुकरण कर उसे चिढाता है, परन्तु वह यह नहीं जानता कि कल मेरी भी यही अवस्था होगी, ॥ ६१ ॥ और वृद्धावस्थारूपी मरणके सूचक चिह्न शरीरपर स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं, तो भी जिसका तारुण्यका भ्रम दूर नहीं होता, ॥ ६२ ॥ वह पुरुष अज्ञानका घरही समझना चाहिये । इसे सत्य मानो । हे पार्थ ! और भी अज्ञानके कुछ लक्षण सुनाता हूँ जिन्हें ध्यानमें रखना उचित है ॥६३॥ वाघके वनमें कोई पशु भाग्यवशात् एकवार सुरक्षिततासे चर आवे, तो उस विश्वासके वलपर जैसे वह फिर उस वनमें जानेको तैयार होजाता है ॥ ६४ ॥ अथवा साँपके विलमें स्थित द्रव्य-संचय एकवार विना अपायके कोई ले आवे, तो इतने ही कारणसे वह ऐसा समझता है कि, ' इस विलमें सर्प नहीं है' और ' यदि हो भी तो दंश नहीं करता ' ॥ ६५ ॥ उसी तरह एक दो वार कुपथ्य करनेपर शरीरमें कुछ विकार न हुआ देख जो समझता है कि मेरा शरीर निरोग है, अर्थात् रोगका अस्तित्व मानता नहीं; ॥ ६६ ॥ वैरी सो रहा है, इसलिये आजसे मेरा वैर अथवा तज्जन्य संकटपरंपरा समाप्त हुई, ऐसा जो कोई सोचता है, वह अपने लडकों-वालों सहित जैसे प्राणोंसे वंचित होजाता है, ॥ ६७ ॥ तद्वत् आहार और निद्राकी अधिकतासे जवतक रोगका प्रादुर्भाव नहीं हुआ रहता, तवतक जो रोगके विषयमें निश्चिन्त रहता है; ॥ ६८ ॥ और स्त्री-पुत्र आदिकोंके परिवारसे ज्यों-ज्यों संपत्तिसे विषय अधिकाधिक बढ-जाते हैं त्यों-त्यों जिसके नेत्र धुंधसे अंधे होजाते हैं, ॥६९॥ परन्तु इन सबका शीघ्रही वियोग होकर मुझे एकसाथ विपत्ति आ घेरेगी, अथवा दिन डूवते ही विपत्तिमें डूवना पडेगा, इस प्रकार जो आगामी दुःखका कुछ भी विचार नहीं करता, ॥७७०॥ हे पार्थ ! वह पुरुष प्रत्यक्ष अज्ञान ही है, और हे पाण्डव ! वह भी अज्ञानी समझना चाहिये जिसने कि, अपने इंद्रियोंको मनमाने विषयसेवनमें वेछूट छोड रखा है ॥ ७१ ॥ जो तारुण्यके सुख-भरमें और संपत्तिके समागममें रहकर यह सेव्य है, यह असेव्य है, इस वातका विचार न करता हुआ दोनों पदार्थ खाजाता है; ॥ ७२ ॥ तथा जिसका मन जो न करना चाहिये सो करता है, जो असंभवनीय है उसकी आशा करता है और जो सोचना ही न चाहिये उसका चिन्तन करता रहता है; ॥ ७३ ॥ वैसेही जहां न घुसना चाहिये वहां शरीर और मनसे प्रविष्ट होजाता है, जो लेना न चाहिये सो माँगता है, और भूलसे भी जिनका स्पर्श न करना चाहिये उसे जानबूझके छूता है; ॥ ७४ ॥ जहां जाना उचित नहीं वहां विना बुलाये जाता है, जो देखना नहीं चाहिये सो देखता है और जो खाना नहीं चाहिये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उसे प्रेमसे खाकर बडा संतोष मानता है; ॥ ७५ ॥ जिसका संग करना न चाहिये उसका संग करता है, जहां संबंध न रखना चाहिये वहां जा चिपकता है और जिस मार्गसे न चलना चाहिये उस मार्गसे ही चलता है; ॥ ७६ ॥ जिस बातको सुनना उचित नहीं उसे श्रवण करता है, जो अवाच्य यानी बोलनेमें अनुचित है, उसे बोलता रहता है, परन्तु उनके दोषोंको जरा भी जानता नहीं और पापको भी समझता नहीं; ॥७७॥ हे पार्थ ! अपने मन और शरीरको पसंद है, केवल इसीपर निर्भर रहता हुआ वह कृत्याकृत्यका यत्किंचित् भी विचार न कर, उसे 'कर्तव्य' नाम रखता हुआ विपरीत ही करता है; ॥७८॥ परन्तु मुझे पाप होगा अथवा आगे नरक-यातना भोगनी पडेंगी इन बातोंका जो स्वप्नमें भी विचार नहीं करता; ॥ ७९ ॥ ऐसे पुरुषकी संगतिसे अज्ञान इस संसारमें ऐसा प्रबल होजाता है, कि किसी समय ज्ञानियोंसे भी झगडनेमें वह आगा-पीछा नहीं देखता ॥ ७८० ॥ परन्तु अब यह यहां ही समाप्त करते हैं। अब तुम जिन्हें ठीक-ठीक पहँचानोगे या मानोगे ऐसे अज्ञानके लक्षणोंको तुम्हें सुनाते हैं, श्रवण करो ॥ ८१ ॥ नये निकले हुए सुगंधित केसरमें जैसी भ्रमरी आसक्त रहती है, उसी तरह जिस मनुष्यकी प्रीति गृहसंसारमें पूरी लगी रहती है, ॥ ८२ ॥ खाँडकी राशिपर बैठी हुई मक्खी उडानेपर भी जैसी उठती नहीं, उसी प्रकार जिसका मन स्त्रीकी इच्छा सँभालनेमें व्याप्त रहता है, ॥ ८३ ॥ दादुर जैसे जलके कुंडमें पडा रहता है, मशक जैसे नाकके जुखाममें गुथा रहता है, किंवा ढोर जैसे गंदे कीचडमें फँसा रहता है; ॥ ८४ ॥ तद्वत् जो अन्तःकरण, मन और जीवसमेत घरमें लिपटा हुआसा होकर बाहर नहीं निकलता, तथा जिस प्रकार साँप बंजर-भूमिमेंसे निकलना नहीं चाहता वैसा जो घरमें ही बैठा रहता है; ॥ ८५ ॥ कोई प्रेमी-स्त्री जैसी प्राणप्यारे पतिके कंठमें आलिंगन देती रहती है, वैसे ही जो अपने घरको अन्तःकरणपूर्वक जीवभावमें लगा रखता है; ॥ ८६ ॥ मधुकी इच्छासे जैसा भ्रमर नित्य श्रम करता हुआ उसका रक्षण करता है, उसी प्रकार अपना घर सँभालनेमें और उसका रक्षण करनेमें जो रात-दिन परिश्रम करता है, ॥ ८७ ॥ वृद्धापकालमें सुदैवसे यदि पुत्र पैदा हो तो जैसे उसके माता-पिता उसपर असीम प्रेम करते हैं; ॥८८॥ उसी प्रकारका प्रेम जिसे घरके बारेमें रहता है, और जो स्त्रीके सिवाय दूसरा कुछ विषय जानता ही नहीं, ॥ ८९ ॥ तथा अन्तःकरणसे और सर्व-जीवभावोंसे स्त्रीके शरीरमें रहता हुआ 'मैं कौन हूँ' और 'मेरा कर्तव्य क्या है' इस बातका जिसे तिलमात्र ज्ञान नहीं है; ॥ ७९० ॥ आत्मरूपमें रममाण हो ब्रह्मरूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होनेपर जैसे ज्ञानी पुरुषके मनके सब व्यवहार आपही आप लीन होजाते हैं; ॥९१॥ तद्वत् सर्व इंद्रियोंसमेत स्त्रीमें एकाग्रचित्त हो जानेसे, जिसे हानि अथवा लज्जा दिखाई नहीं देती, जो लोगोंकी निंदाकी ओर भी ध्यान नहीं देता; ॥९२॥ केवल स्त्रीकी इच्छापूर्ति करना ही जो अपना कतव्य समझता हुआ उसकी आराधना करता रहता है और उसके नाद ( शब्द ) से जो बाजीगरके बंदर जैसा नाचता रहता है, ॥ ९३ ॥ जिसप्रकार लोभी मनुष्य स्वयं कष्ट भोगता है, स्नेहीजनोंके चित्तको बिगाडता है, परन्तु जैसे तैसे धनको इकट्ठा करता है; ॥ ९४ ॥ तद्वत् जो दान-पुण्यमें तो कंजूष बनता है, आप्तेष्टोंकी वंचना करता है, परन्तु अपनी स्त्रीके मांगे हुए विषयोंमें रतिभर भी कमी नहीं पडने देता; ॥ ९५ ॥ आराध्य-देवतोंको समझाता बुझाता उनकी टालमटोल करता है, गुरुनाथोंको भी शब्दोंसे ही समझाता हुआ वंचित कर देता है, और माता-पिताको संपत्तिके विषयमें सदा नकारका घंटा ही बजा देता है; ॥९६॥ परन्तु स्त्रीके लिये अनेक उपभोग्य चीजें और जो-जो वस्तु कहीं उत्तम दिखाई दे उसे लानेमें श्रम और द्रव्यकी कुछ पर्वा नहीं करता हुआ उसे अवश्य लाता है; ॥९७॥ जिसप्रकार प्रेमी भक्त अपने कुलदेवताको तन-मनसे भजता है, उस प्रकार जो स्त्रीकी सेवामें सदैव तत्पर रहता है, ॥ ९८ ॥ अस्सल और सर्वोत्कृष्ट जो-जो कुछ हो, वह सब अपनी स्त्रीक लिये देता है, परन्तु दूसरोंको केवल निर्वाहकी चीजें भी नहीं देता; ॥ ९९ ॥ और जो मनमें यह समझता है कि, मेरी स्त्रीको यदि कोई आँख उठाकर देख लेवे अगर उसके साथ कोई विरोध करे तो युग ही डूब जायगा; ॥ ८०० ॥ चकत्ते हो जायँगे, इस डरसे जैसी पूर्व की हुई देवताकी ( नागोंकी ) मनौती लोग पूरी करते हैं, वैसेही जो स्त्रीकी क्षुल्लक सूचनाको भी पूरी किये देता है; ॥ १ ॥ बहुत क्या कहा जाय, अर्जुन ! स्त्री ही जिसका सर्वस्व है, और उससे हुई संतति ही जिसका प्रेमागार बनता है; ॥ २ ॥ और उसका जो वैभव हो, उसे प्राणोंसे भी प्यारा समझता है; ॥ ३ ॥ ऐसा पुरुष अज्ञानका मूल है । उसीसे अज्ञान प्रभावशाली बनता है और वह स्वयं मूर्त्तिमंत अज्ञान होता है यह बात प्रत्यक्षमें देखी जा सकती है ॥ ४ ॥ और प्रक्षुब्ध हुए समुद्रमें छूटी हुई नावें जैसी लहरोंके आंदोलनसे इधर उधर हिलोरें लेती हैं; ॥ ५ ॥ उसी प्रकार प्रिय वस्तुको देखतेही जिसका आनंद गगनमें भी समा नहीं सकता, परन्तु अप्रिय वस्तुको देखते ही जिसको ऐसा दुःख होता है, मानो गिरता हुआ वह रसातलको जा रहा हो; ॥ ६ ॥ इस प्रकार जिसके चित्तमें भेदभावकी विषमता दिखाई देती है, हे मतिमान् पार्थ ! यद्यपि वह कैसा भी बुद्धिमान् हो तथापि अज्ञानी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


है, यह तुम समझ रखो ॥ ७ ॥ और मनमें कोई भी फलकी इच्छा रखता हुआ जो मेरी भक्ति करता है, जैसे कि धनकी आशासे कोई वैराग्यवान् ढोंगी बन जाते हैं; ॥ ८ ॥ अथवा जारकर्मका हेतु मनमें रखती हुई व्यभिचारिणी स्त्री जैसी ऊपर ऊपर पतिकी सेवामें निमग्न रहकर, उसकी इच्छानुसार चलती हुई अपना शुद्ध वर्तन दिखाती है; ॥ ९ ॥ तद्वत् हे पार्थ ! मेरी भक्ति तो करता है, परन्तु जिसकी दृष्टि विषयोंमें ही गढी हुई रहती है; ॥ ८१० ॥ और ऐसी भक्ति करते-करते यदि ऐच्छिक विषयकी प्राप्ति न होजाय, तो भक्तिको दोष देता हुआ कहता है कि, 'यह सारी भक्ति निरर्थक है' अर्थात् ऐसी झूठी भक्ति कभी न करना चाहिये, ऐसा कहता हुआ भक्तिको छोड देता है ॥ ११ ॥ और जैसे कोई गँवार किसान पहली जमीनमें लाभ न देख नयी नयी जमीन जोतता है, वैसे ही जो नये-नये देवोंकी आराधना करता है और पहले देवोंसरीखा ही दूसरे देवोंका भी भजन करता है; ॥ १२ ॥ और किसी गुरुके यहां ठाठ-बाट देखता है, तो उसी गुरुसंप्रदायका अवलंबन करने लगता है, और उसीकी मंत्र-दीक्षा स्वीकारता हुआ औरोंको क्षुद्र समझ उनका स्वीकार नहीं करता; ॥ १३ ॥ सजीव प्राणियोंपर निर्दयता रखता है, परन्तु वृक्षपाषाणादिपर निष्ठा रखता हुआ उनकी पूजा करता है। और जिसकी एकनिष्ठ श्रद्धा कहीं भी स्थिर नहीं रहती; ॥ १४ ॥ जो मेरी मूर्ति बनाकर घरके कोनेमें बिठाता है और स्वयं दूसरे देवतोंकी यात्रा करता हुआ घूमता रहता है; ॥ १५ ॥ जो नित्य तो मेरी पूजा करता है, परन्तु किसी मंगल-कार्यविशेषमें कुलदेवताको भजता है और कुछ विशेष पर्वणी आजाय तो दूसरे ही देवतोंकी आराधना करता है; ॥१६॥ घरमें तो मेरी स्थापना कर रखता है, परन्तु मानता दूसरेही देवतोंकी करता है और श्राद्धसमयमें तो पितरोंका ही भक्त बनजाता है; ॥ १७ ॥ देखो पार्थ ! एकादशीके दिन जितना आदर हमारा करता है, श्रावणकी नागपंचमीमें उतना ही आदर वह नागोंका करता है; ॥ १८ ॥ और भाद्रपदकी शुद्ध चतुर्थीको गणेशका भक्त बनता है और चतुर्दशीके दिन दुर्गाका भक्त बनता हुआ कहता है—हे माता ! मैं तेरा ही भक्त हूँ; ॥ १९ ॥ जो नित्य-नैमित्तिक कर्ममें अनादर करता हुआ नवरात्रमें चण्डीपाठ इत्यादि अनुष्ठानमें बैठता है और रविवारके दिन कालभैरवके नामकी थाली परोसता है ! या खिचडी बाँटता है; ॥ ८२० ॥ फिर सोमवार आतेही बेलका पत्ता लेकर शिवलिंगपर चढानेके लिये दौडता है। इसप्रकार आप स्वयं तो एक है, परन्तु नाना देवताओंकी आराधनामें व्यग्र रहता है ! ॥२१॥ जैसे कि गाँवकी वेश्या सबपर प्रीति करती है, परन्तु किसीपर भी निश्चित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रेम नहीं रखती, तद्वत् जो अनेकोंका भजन करता हुआ इधर-उधर नित्य दौडता है, परन्तु जो क्षणभर भी स्वस्थ नहीं रहता ॥२२॥ ऐसा जो चहुँ ओर दौडनेवाला भक्त है, हे पार्थ ! वह मूर्तिमंत अज्ञानका अवतार ही तुम समझो ॥ २३ ॥ और एकान्त, निर्मल तपोवन, तीर्थ, नदियोंके तीर इत्यादि स्थानोंको देख जिसका मन संतुष्ट नहीं होता या जिसके मनमें तिरस्कार उत्पन्न होता है, हे पार्थ ! वह पुरुष भी अज्ञानी ही है ॥ २४ ॥ जिसे जनसमाजमें सुख होता है, जो सांसारिक गडबडीको देख आनंदित होता है, तथा लौकिक-विषयोंविषे स्तुति करना जिसे प्रिय लगता है, हे पार्थ ! वह भी अज्ञानी ही है ॥ २५ ॥ और जिस विद्यासे प्रत्यक्ष आत्मदर्शन होता है, ऐसी विद्याको सुन-करही जो विद्वान् बनता हुआ उसका उपहास करने लगता है; ॥ २६ ॥ जो उपनिषदोंको कदाच पढता भी नहीं, योग-शास्त्र जिसे पसंद नहीं होता, और आध्यात्मिक ज्ञानकी तरफ देखनेकी भी जिसे इच्छा नहीं होती ॥ २७ ॥ आत्मानात्म-विचार कोई वस्तु हो, इस बुद्धिरूपी दीवारको तोडता हुआ जो अपने बुद्धिको मनमाने आचरणमें प्रवृत्त करता है; ॥ २८ ॥ जो कर्मकाण्डमें निपुण हो श्रद्धा रखता है, जिसे पुराणग्रंथ कण्ठगत हैं, और ज्योतिष-विद्यामें पारंगत है—जो भविष्य कहे वह होता है—; ॥२९॥ उसी प्रकार जो शिल्पकलामें प्रवीण है, पाक-कलामें- सूपशास्त्रमें-निष्णात है, और अथर्वण वेद-प्रतिपादक-अघोरी मंत्रतंत्रोंमें जिसका कोई हाथ नहीं पकड सकता; ॥ ८३० ॥ काम-शास्त्रमें ऐसा जानकार है, कि जिसे कुछ सीखना बाकी नहीं रहा हो, संपूर्ण महाभारत पढचुका है, और धर्म-शास्त्र तथा वेद तो वह स्वयं मूर्तिमान् आपही बन रहा है; ॥ ३१ ॥ जो सब नीतिशास्त्रको जानता है, वैद्यकमें भी उत्तम योग्यता प्राप्त करचुका है, और काव्य-नाटकोंमें तो जिसकी बराबरी करे ऐसा कोई देखनेमें नहीं आसकता; ॥ ३२ ॥ जो स्मृतियोंकी चर्चा करता है, गारुडी-विद्या अर्थात् बाजीगरीका मर्मज्ञ है, और वेद-शब्दकोश ( निघंटु ) तो जिसके घरका बंदा बना हुआ हाथ जोडे खडा रहता है; ॥ ३३ ॥ व्याकरणशास्त्रमें जिसका अथाह ज्ञान है, न्याय-शास्त्रमें जो अत्यंत निपुण है, परन्तु जो एक अध्यात्मविद्या ( आत्मज्ञान ) में निःसंशय जन्मान्ध है, ॥ ३४ ॥ ऐसे पुरुषका मुख भी न देखना चाहिये । जैसे कि माता-पिताको मारनेवाले मूलनक्षत्रमें जन्मे हुए लडकोंका मुख नहीं देखा जाता है । एक अध्यात्मशास्त्रके अतिरिक्त संपूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका यद्यपि वह आधारभूत हो, तथापि जल जाय उसका वह ज्ञान ! [ युक्त ही कहा है कि—" पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः । आत्मानं नैव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा।" षड्रसोंमें घूमनेवाली लोहेकी दर्वीके समान ही वे अज्ञानी हैं, जिन्होंने संपूर्ण वेदशास्त्रोंका पठन कर आत्मज्ञान नहीं प्राप्त किया हो ! ! ] ॥ ३५ ॥ मयूरके अंगमें बहुतेरे पंखोंमें आँखें रहती हैं, परन्तु उनमें जैसी दृष्टि नहीं रहती, वैसाही उसका वह ज्ञान है ॥ ३६ ॥ अजी ! अमृत-संजीवनी वल्लीकी यदि परमाणुके बरावर भी जड मिल जाय, तो गाडी-भर दूसरी वनस्पतियोंकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ३७ ॥ एक आयुष्य न हो तो सौंदर्यके बत्तीसलक्षणोंसे क्या काम ? तथा मस्तक विना अलंकार किस कामके ? किंवा वधू-वरके विना बाजा जैसे विडंबनामात्र है ॥३८॥ तद्वत् हे पार्थ ! एक अध्यात्म-ज्ञानशास्त्रके विना संपूर्ण शास्त्र-अपूर्णता-से सर्वथैव निष्फल, अप्रमाण या भ्रामक हैं ॥ ३९ ॥ अतएव हे बुद्धिमान् पार्थ ! जिस पढे-मूर्खको अध्यात्मज्ञानका नित्य-बोध नहीं रहता, ॥८४०॥ उसका शरीर मानो अज्ञानका बीज है और उसकी विद्वत्ता अज्ञानको विस्तारनेवाली वल्ली है ॥ ४१ ॥ उसका प्रत्येक भाषण मानो अज्ञानके फूल हैं, और उसका किया हुआ सुकृत भी अज्ञानके फल ही हैं ॥ ४२ ॥ तथा जो अध्यात्मज्ञानपर श्रद्धा नहीं रखता, उसे ज्ञानवस्तु कभी भी प्राप्त नहीं हो सकेगी, हे पार्थ ! यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥ ४३ ॥ इस पार आनेमें हिम्मत न होनेसे जो पीछे लौटकर ही भाग जाता है, उसे पैल-पारकी खबर कैसी हो सकती है ? ॥ ४४ ॥ अथवा द्वारकी देहरीमें ही जिसका मस्तक दब रहा है, वह घरके अन्दर रखा हुआ धन कैसे देख सकेगा ? ॥ ४५ ॥ उसी प्रकार हे पार्थ ! अध्यात्म-ज्ञानके साथ जिसकी पहँचान भी नहीं है, उसे तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेमें विषय ही कहां रहा ? ॥४६॥ इसलिये अब तुम समझ सकोगे ही,कि अब इस बातका और स्पष्टीकरण करने-की कुछ आवश्यकता नहीं, कि वह पुरुष ज्ञानका तत्त्व कभी नहीं समझ सकता हो ॥ ४७ ॥ गर्भिणी स्त्रीको जो अन्न परोस दिया जाता है, साथमें उसके पेटके बालकको भी वह दिया गया समझना चाहिये, उसी प्रकार पीछे जो ज्ञानका निरूपण कर दिया था, उसीमें अज्ञानका भी विवरण आप ही आप आया था, ॥ ४८ ॥ फिर उसका अलग निरूपण करनेकी कोई आवश्य-कता नहीं थी, जैसे कि अंधेको निमन्त्रण देनेपर उसके साथ आँखवाला भी एक आता ही है ॥ ४९ ॥ तथापि प्रस्तुत प्रकरणमें हमने अमानित्व इत्यादि ज्ञान-लक्षणोंका ही फिरसे उलटी रीतिसे यहां वर्णन किया है ॥ ८५० ॥ यह तुम भी सहज समझ सकते हो कि, ज्ञानके जो अठारह लक्षण पीछे कह दिये, उन्हें उलटे मार्गमें चलानेसे वे आपही अज्ञानके आकारको प्राप्त हो जाते हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

 Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS 

॥ ५१ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्‌ने पीछेके ग्यारहवें श्लोकके चौथे चरणमें ऐसा कहा है कि ज्ञानलक्षणोंको उलटा करनेसे वे अज्ञानके लक्षण बनते हैं ॥ ५२ ॥ इसलिये मैंने भी उसी पद्धतिके अनुसार इस विषयका यहां विस्तार किया है । यदि मूलमें ऐसी सूचना न होती, तो दूधमें बहुतसा पानी डालकर व्यर्थ बढाकर अरुचि उत्पन्न करनेकी आवश्यकता क्या है ? ॥ ५३ ॥ मैं अपने पल्लवकी बकवक करना नहीं चाहता, अथवा मूल-पदकी मर्यादा छोडना नहीं चाहता, केवल मूलमें ध्वनित किये अर्थका स्पष्टीकरण करनेमें मैं एक निमित्तमात्र बनता हूँ ॥ ५४ ॥ तब श्रोतालोगोंने कहा—हे कविपोषक ! तुम्हारा विवरण-विस्तार बढगया हो और श्रोताओंको उसविषे अनादर हो गया हो, ऐसा भय तुम मनमें क्यों रखते हो ? इसका कुछ कारण नहीं ॥ ५५ ॥ तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णने ही आज्ञा की है कि, हमने गीतामें जो गर्भित अर्थ रखे हैं, उन्हें तुम स्पष्ट कर लोगोंको समझा दो ॥५६॥ यह देवका मनोगत ही तुम स्पष्ट करके पूर्ण कर रहे हो, परन्तु यह बात यदि हम स्पष्टतासे कहें तो भी तुम्हारा हृदय प्रेमसे भर आवेगा ! ॥ ५७ ॥ इसालिये हम अपना अभिप्राय स्पष्ट कहनेमें संकोच करते हैं, तथापि इतना कहे बिना हमें भी समाधान नहीं होता कि, इस श्रवणसुखसे हमलोग ज्ञाननौकामें बैठे निश्चिन्त हो रहे हैं ॥५८॥ परन्तु इसके अनंतर श्रीमुकुन्दने अर्जुनको जो कहा, सो त्वरित कथन करो ॥ ५९ ॥ उक्त सन्तवचनको सुनते ही निवृत्तिनाथदास-ज्ञानदेवने कहा जी हां, सुनिये, देवने जो कहा-॥ ८६० ॥ हे पाण्डव ! अब आखिरीमें जो हमने लक्षण सुनाये वे सब अज्ञानके हैं, ॥ ६१ ॥ अतएव इन अज्ञानोंसे मुख फेरकर, ज्ञानके विषयमें तुम्हें भली भाँति दृढनिश्चयवान् बनना चाहिये ॥ ६२ ॥ तदनंतर, शुद्धज्ञानके द्वारा अन्तःकरणमें ज्ञेय वस्तुकी भेंट होगी, इस बातको मनमें रखकर अर्जुनने उस ज्ञेयवस्तु जाननेकी आशा प्रकट की, ॥ ६३ ॥ तब सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णने उसका मनोगत जान, अर्जुनसे कहा हे पार्थ ! सुनो, अब हम ज्ञेय-वस्तुका अभिप्राय तुम्हें वर्णन कर बता देते हैं ॥ ६४ ॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

ब्रह्मवस्तुको 'ज्ञेय' कहा जाता है, इसका कारण यही है कि, वह ज्ञानके अतिरिक्त और किसी भी उपायसे प्राप्त नहीं होता ॥ ६५ ॥ और जिसका ज्ञान होनेपर कोई कर्तव्य बाकी नहीं रहता, जिसे जानते ही, वह तद्रू-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पताको प्राप्त करा देता है ॥ ६६ ॥ जिसके जानते ही संसारको तीरपर रख, ज्ञानवान् नित्यानंदके पेटमें डूबता हुआ उसीमें मिल जा सकता है ॥ ६७ ॥ वह ज्ञेयवस्तु ऐसी है कि, जिसे आदि-(मूलकारण) नहीं है, जो सहज स्वयं ही है । जिसे कुछ भी नाम दिया जाय इस हेतु ही 'परब्रह्म' कहते हैं ॥ ६८ ॥ जो 'नहीं' ऐसा माना जाय तो विश्वरूपाकारमें प्रकट हो रहा है, और यदि उसे 'विश्वही' कहा जाय तो भी वह सत्य नहीं, कारण यह सब विश्व अशाश्वत और मायास्वरूप है ॥ ६९ ॥ उस ज्ञेयवस्तुको आकार, रंग इत्यादि भेद तथा दृश्यत्व और द्रष्टृत्व नहीं हैं, फिर यह कैसे कहा जाय कि वह कैसा है और कौन है ? अथवा है ऐसा भी कौन कहे ? ॥ ८७० ॥ और यदि ऐसा निश्चित माना जाय कि, वह नहीं है, तो महत्तत्त्व इत्यादि किस आधारसे स्फुरण पाते हैं ? अथवा उसके न होनेपर कुछ भी दृश्यमान हो सकता है ? ऐसी शंका उपस्थित होती है ॥७१॥ अतएव जिसके ज्ञान होते ही 'है' और 'नहीं' इसप्रकारसे बोलनेवाली वाचा ही गूँगी होजाती है, और जहां विचार-शक्तिका मार्ग बंद होजाता है; ॥ ७२ ॥ जैसे हाँडी (मिट्टीका बर्तन), मटका, घडा इत्यादिकोंमें पृथ्वी-तत्त्व ही उस उस आकारसे रहता है, तद्वत् जो वस्तु सबमें सब आकारोंसे निरंतर भरी रहती है, ॥ ७३ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

सब स्थलों और सब कालोंमें, स्थल-कालसे भिन्न न होते हुए जो क्रियाएँ स्थूल-सूक्ष्म भूतमात्रोंसे उत्पन्न होती हैं; वे क्रियाएँ ही जिसके हाथ हैं, ॥७४॥ अतएव जिसे 'विश्वबाहु' कहा जाता है, जो सर्वरूप होकर सर्वदा सर्व क्रिया करता रहता है, ॥७५॥ और हे धनंजय ! जो वस्तु एकही समयमें सब स्थानोंमें जा पहुँचती है, इस हेतु जिसे 'विश्वांघ्रि' कहा जाता है, ॥ ७६ ॥ जैसे सूर्यके बिम्बमें अलग अलग नेत्र न रहनेपर भी, वह स्वभावसे ही प्रकाशमान् रहता है, उसी प्रकार जो वस्तु अपने सर्वस्वरूपसे ही सर्वद्रष्टा है, ॥ ७७ ॥ अतएव जिस 'विश्वचक्षु' कहते हैं, और इस कारण ही वेदोंने जिसका 'विश्वतश्चक्षु' इस प्रकार संबोधन करते हुए आदर किया है, ॥ ७८ ॥ जो ब्रह्म नित्य संपूर्ण विश्वके मस्तकपर आत्मसत्तासे सर्व प्रकार अधिकार चलाता रहता है, इसकारण जिसे 'विश्वमूर्धा' कहते हैं, ॥ ७९ ॥ तथा अग्निकी संपूर्णमूर्ति ही जिसका मुख है, जो अग्निके समान सब प्रकारसे अखिलका भोक्ता है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


॥ ८८० ॥ अतएव जिसे हे पार्थ, श्रुतिने ' विश्वतोमुख ' नाम देकर जिसका योग्य वर्णन किया है, ॥८१॥ और जिसप्रकार आकाश समस्त-वस्तुमात्रको व्याप रहा है, उसी प्रकार जिसे सर्वत्र कर्ण होनेसे संपूर्ण शब्द-समूह सुनाई देते हैं, या शब्दमात्रको जो व्यापता रहता है, ॥८२॥ इस कारण हम उस ब्रह्मवस्तुको 'सर्वत्र सुननेवाला' ऐसा कहते हैं । इसी प्रकार जो वस्तु संपूर्ण विश्वमें व्याप्त है, ॥ ८३ ॥ और हे बुद्धिमान् पार्थ ! ' विश्वतश्चक्षु ' इत्यादि प्रकारसे श्रुतिने जो वर्णन किया है, वह प्रायः जिसकी व्याप्तिका ही वर्णन है, अर्थात् अमूर्तका मूर्तत्वसे आलंकारिक वर्णन है,॥८४॥ नहीं तो वास्तवमें जिसमें हाथ, पाँव,या आँखकी वार्ता ही नहीं, वहां इसप्रकारकी भाषाका संबंध ही कहां आता है ? इतना ही क्या ? वरन् जिसका शून्यत्वसे भी यथार्थ वर्णन नहीं हो सकता ! ॥८५॥ प्रत्यक्ष देखनेमें तो यों दिखाई देता है कि, जलकी एक लहर दूसरीको निगल डालती है, परन्तु क्या निगलनेवाली लहर निगलजानेवालीसे कोई भिन्न है ? ॥ ८६ ॥ उसी प्रकार जो एक ब्रह्म-वस्तु ही यथार्थमें सत्य है, वहां व्याप्य और व्यापक इसप्रकारका भेद कहां रह सकता है ? परन्तु बोलनेमें समझके लिये ही क्षणभर ऐसा कहना पडता है ॥८७॥ देखो पार्थ ! किसीको शून्य दिखाना हो, तो वर्तुलाकार एक आकृति बनानी पडती है । उसी प्रकार शब्दसे अद्वैतका वर्णन करनेमें द्वैतकी भाषाका स्वीकार करना ही पडता है ॥ ८८ ॥ यदि ऐसा न किया जाय तो हे पार्थ ! गुरु-शिष्य-संप्रदायका सर्वथा लोप हो जावेगा और सर्व वर्णन करना ही बंद करना पडेगा या अशक्य ही होगा ॥ ८९ ॥ इसी लिये वेदोंने भी अद्वैतका वर्णन आलंकारिकभाषासे द्वैतकी रीतिपर करनेकी परिपाठी शुरू करदी है ॥ ८९० ॥ अब वही ज्ञेयवस्तु इन्द्रियोंसे दिखाई देनेवाले आकारोंमें कैसी भरी रहती है, वह स्पष्ट कर देता हूँ, तुम सुनो ॥ ९१ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

हे किरीटी ! वह ज्ञेय ऐसा व्यापक रहता है जैसे अवकाशको आकाश व्याप रहता है, अथवा जैसे पटमें तंतु पटरूप हो व्याप रहता है ॥ ९२ ॥ किंवा जलरूपसे जैसे रसतत्त्व जलमें रहता है, तेजतत्त्व जैसा प्रकाशरूपसे दीपकमें रहता है, ॥ ९३ ॥ कपूरमें जैसे गन्धतत्त्व कपूररूपसे रहता है और कर्म जैसा शरीररूप हो शरीरमें वास करता है, ॥ ९४ ॥ बहुत कहांतक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कहना ? हे पार्थ ! इसका सारांश यही समझो, कि जिस प्रकार सुवर्णका कण भी सुवर्ण ही है, तद्वत् वह ब्रह्म सर्वस्वरूप हो, सबको बाह्याभ्यन्तरमें व्याप्त रहा है, ॥ ९५ ॥ सुवर्ण जब सूक्ष्म-कणमें रहता है, तब उसे सुवर्णका कण कहा जाता है, परन्तु जब कणका रूपान्तर किया जाता है, तब भी वह कण सुवर्णही कहा जाता है ॥ ९६ ॥ अथवा हे पार्थ ! प्रवाह यदि टेढा बहता हो, तथापि उसका जल सीधा ही रहता है। किंवा तपा हुआ लोहा अग्निसे व्याप्त होनेसे लालवर्ण होता है, तो क्या उसमें लोहा नहीं रहता है ? ॥ ९७ ॥ घटके गोल आकारमें रहनेवाला आकाश गोल दिखाई देता है, परन्तु वही आकाश जब मठमें व्याप्त होता है, तो चौकोन आकारका बन जाता है,॥९८॥ परन्तु वह गोल या चौकोनवाला आकार जैसा आकाशका नहीं होता, वैसेही ब्रह्मवस्तुमें यदि विकार भासमान हों, तथापि वह अविकारी होनेसे विकार-युक्त कभी नहीं हो सकता ॥ ९९ ॥ हे पार्थ ! वह ब्रह्म मन आदि इंद्रियों और सत्त्व आदि गुणोंके समान दिखाई देता है, ॥ ९०० ॥ परन्तु जैसा गुडका माधुर्य उसकी भेलीके आकारमें नहीं रहता, तद्वत् ही गुण और इन्द्रियें उस सत्य-ब्रह्मतत्त्वमें नहीं रहतीं अथवा वे ब्रह्म नहीं हो सकतीं, ॥ १ ॥ देखो पार्थ ! अनुभवकी बात है कि, दुग्धका स्वरूप घृत होकर दुग्धके आकारमें दुग्धमें ही रहता है, परन्तु घृत जैसे दुग्ध नहीं है, ॥ २ ॥ तद्वत्, जो गुणेन्द्रियादि विकारोंमें तो रहता है, परन्तु वह विकार नहीं है, हे पार्थ ! वही 'ज्ञेय' समझो। हे कपिध्वज ! व्यवहारमें सोनेके आकारोंको हम फूल, कंकण इत्यादि जो नाम रखते हैं, सो आकारके हैं, परन्तु मूल सुवर्ण तो किसी भी आकारमें सोना ही है ॥ ३ ॥ सबका मतलब या स्पष्टार्थ हे पार्थ ! यही है कि, ब्रह्मवस्तु ( ज्ञेय ) का गुण और सर्वेंद्रियोंसे संबंध नहीं, किन्तु वह उनसे भिन्न है ॥ ४ ॥ नामरूपका सम्बन्ध और जाति-क्रियादि भेद ये सब आकारकी संज्ञाएँ हैं, उनकी ब्रह्मवस्तुमें कोई वार्ता नहीं ॥ ५ ॥ ब्रह्म गुण-रूप नहीं होता, गुणोंका उसमें गंधतक नहीं रहता, परन्तु केवल गुणोंका आभास उसीमें होता है, ऐसा दीखता है ॥ ६ ॥ इसलिये अज्ञानियोंके मनमें मोहसे ऐसा भ्रम पैदा होता है कि, ये विकार ब्रह्ममें होते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु ये गुण ब्रह्ममें ऐसे रहते हैं, जैसे आकाश मेघोंको धारण करता है, अथवा दर्पण प्रतिबिम्बको धारण करता है, ॥ ८ ॥ अथवा जल जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब धारण करता है, किंवा सूर्यकी किरणें जैसी मृगजलको धारण करती हैं, ॥९॥ उसीप्रकार यह निर्गुण ब्रह्म किसी प्रकारके संबंध विना, सर्व विकारोंको धारण करता है, परन्तु यह बात केवल वृथा ही भ्रमकी दृष्टिके कारण दिखाई देती है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


वास्तवमें वह असत्य ही है ॥ ९१० ॥ और इसप्रकार निर्गुण गुणोंको भोगता है, यह कहना भी रंकका स्वप्नमें राज्य करनेके समान ही समझना होगा ॥११॥ अतएव निर्गुणके विषयमें, गुणोंका सम्बन्ध अथवा गुणोंका उपभोग इत्यादि प्रकारकी बातोंका उच्चारण करना उचित नहीं है ॥ १२ ॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ १५ ॥

हे पाण्डुपुत्र अर्जुन ! जो स्थावर-जंगम भूतमात्रोंमें रहता है, अथवा उष्णता जैसी अनेक अग्नियोंमें व्याप्त हो अभिन्न रहती है, ॥ १३ ॥ उसी प्रकार जो स्वयं अविनाशी रहता हुआ शाश्वत और सूक्ष्मतासे संपूर्ण जगत्में व्याप्त है, हे पार्थ ! इस प्रकरणमें उसे 'ज्ञेय' समझो ॥ १४ ॥ जो अन्तर्बाहर एक है, जो समीप और दूर एक है और जिसके स्वरूपमें एकके बिना दूसरी बात ही नहीं है, ॥ १५ ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

—जैसी क्षीरसागरकी मधुरता बीचमें बहुत और तीरपर कम नहीं होती, उसीप्रकार जो सर्वत्र सरीखा ही परिपूर्ण रहता है, ॥ १६ ॥ स्वेदज आदि भिन्न-भिन्न योनियोंमें जिसकी व्याप्ति नित्य और अखण्डित रहती है; ॥ १७ ॥ हे श्रोतृशिरोमणि पार्थ ! हजारों घटोंके जलमें प्रतिबिम्बित हुआ चंद्रबिम्ब जैसे भिन्न नहीं रहता, ॥ १८ ॥ अथवा नमककी राशिके कणोंमें हरेक कणकी क्षारता जैसी एक ही रहती है, अथवा करोडों इक्षुओंके टुकडोंमें जैसी प्रतिकाण्डमें मधुरता एक ही रहती है, ॥ १९ ॥ उसी प्रकार जो अनेक प्राणिसमुदायोंमें एकहा व्याप्त रहता है, और हे सुमति पार्थ ! जो इस विश्वकार्यका आदिकारण है, ॥ ९२० ॥ इसलिये, जिसप्रकार तरंगोंके उत्पत्तिका सागरही आधार रहता है, तद्वत् यह नामरूपात्मक भूताकार जहांसे उत्पन्न होता है, उसको भी यह ब्रह्मवस्तु ही आधार रहती है ॥ २१ ॥ बाल्य, तारुण्य और वृद्धत्व इन तीनों अवस्थाओंमें जैसे देह एकही रहता है, वैसेही उत्पत्ति, स्थिति और संहारमें जो एक अखंडरूपसे रहता है, ॥२२॥ और जैसे कि प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल इत्यादि क्रम-क्रमसे दिनमान चलाते रहनेपर भी आकाशमें कुछ भेद नहीं होता, ॥ २३ ॥ हे प्रियसखा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्जुन ! सृष्टिकी उत्पत्ति-समयमें जिसे 'ब्रह्मदेव' नाम प्राप्त हुआ, विश्वकी स्थिति ( रक्षण ) में जिसे 'विष्णु' नाम दिया गया, ॥ २४ ॥ और जब इस नामरूपात्मक आकारका लोप हो जाता है, उस समय जिसे 'रुद्र' कहा जाता है, तथा इन तीनों गुणोंका लोप होनेपर जो शून्यरूपसे रहता है,॥२५॥ और गगनके शून्यत्वका लय करके, सत्त्वादि तीनों गुणोंका नाश कर, जो शून्यरूप रहजाता है, वही श्रुतिवचनोंद्वारा प्रतिपादित किया हुआ 'महाशून्य' अर्थात् 'ब्रह्म' है ॥ २६ ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७ ॥

जो ब्रह्म अग्निका तेज है, चन्द्रमाका जीवन है, जिससे कि सूर्यके नेत्र देखनेवाले होते हैं, ॥ २७ ॥ जिस तेजके सामर्थ्यसे तारागण प्रकट दीखते हैं और जिसके आधारसे महातेज प्रकाशित होता हुआ सुखी रहता है; ॥२८॥ जो सब मूलपदार्थोंका आदि, जो बढनेवाले पदार्थोंको वृद्धत्व देनेवाला, बुद्धिका प्रकाशक और अन्तःकरणको चेतना देनेवाला है, ॥ २९ ॥ तथा जो मनको मनत्व, नेत्रोंको दृष्टि देनेवाला तथा कानोंको श्रवणत्व देनेवाला और वाणीको वाचा शक्ति देनेवाला है, ॥ ९३० ॥ जो प्राणोंका प्राण, जिससे कि गतिको चलनेकी शक्ति और क्रियाको कर्तृत्वशक्ति प्राप्त होती है; ॥ ३१ ॥ जिससे आकारको आकारत्व और विस्तारको विस्तारत्व प्राप्त होजाता है, हे पाण्डव ! संहारको जिससे मारकशक्ति प्राप्त होती है, ॥ ३२ ॥ जो पृथ्वीको पृथ्वीत्व ( धारणकरनेकी शक्ति ) देता है, जो जलको जीवनत्व देता है, जलके पीनेसे ही जो जलका आधार होता है, जिसके तेजसे तेजरूपी दीपक लगाया जाता है, ॥३३॥ जो वायुके लिये श्वासोच्छ्वास होजाता है, जो आकाशके लिये अवकाश बनता है, हे पार्थ ! बहुत कहांतक कहा जाय ? तुम यह समझो कि, जिससे ये सब स्फुरण पाते हैं, उन सबका यह चैतन्यबीज ही है ॥३४॥ किंबहुना, तुम यही समझो कि, जो संपूर्णरूपसे अकेलाही सर्वत्र भरा हुआ है और जिसमें द्वैतभावका प्रवेश भी नहीं हो सकता ॥३५॥ जिसका दर्शन होते ही दृश्य और द्रष्टा आदि सब एकत्र हो समरसत्वको प्राप्त हुए मिल जाते हैं;॥३६॥फिर वही ज्ञान होजाता है,वही ज्ञान और ज्ञेय होजाता है,और ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय इस त्रिपुटीके ऐक्यसे जिस निदानके स्थानका ज्ञान प्राप्त होता है वह भी वही हो जाता है; ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार किसी हिसाबका मेल ठीक जमजानेपर, और अंकोंका भिन्नत्व उसीमें समा जाता है, तद्वत् ब्रह्मवस्तु प्राप्त होतेही साध्य और साधन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


एक हो उसीमें समाविष्ट होजाते हैं, ॥ ३८ ॥ हे पार्थ ! जिसके विषयमें द्वैतका उच्चार करना ही नहीं बनता, बहुत क्या कहें, वही सबोंके हृदयोंमें बसा रहता है ॥ ३९ ॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

हे मेरे सुहृद पार्थ ! इस प्रकार हमने प्रथम तुम्हें 'क्षेत्र' का विवरण कर कह दिया ॥९४०॥ उसी प्रकार क्षेत्रके विवरणानन्तर तुम्हें जिस रीतिसे स्पष्ट ज्ञान होवे इस प्रकार ज्ञानके लक्षण समझा दिये ॥४१॥ फिर अज्ञानके लक्षण भी इस रीतिसे कहदिये कि, जिन्हें सुनते-सुनते तुम थकगये और तुम्हारी इच्छा-तृप्ति हुई हो, ॥४२॥ और अब बडी युक्तिके साथ ज्ञेयका भी विस्तारसहित स्पष्ट स्वरूप तुम्हें समझा दिया है ॥ ४३ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारका यह सब विवेचन बुद्धिमें दृढतर कर रखनेसे मेरे भक्तोंको मेरी प्राप्तिमें उत्कंठा प्राप्त होती है और वे शीघ्रही मद्रूपताको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४४ ॥ देह आदि सब परिवारका त्याग कर, जिन्होंने अपना अन्तःकरण मुझमें समर्पित कर रखा है, ॥ ४५ ॥ वे पुरुष हे पार्थ ! मुझे ब्रह्मरूप समझते हुए अन्तमें अपने व्यक्तित्वको भी भूलकर मुझमें समरस हो, मद्रूप होजाते हैं ॥ ४६ ॥ हे पार्थ ! यह बात तुम विशेषतासे ध्यानमें रखो कि, मद्रूप होजानेका सब प्रकारसे यही सुलभ उपाय हमने शोच कर बना रखा है ॥ ४७ ॥ पर्वतपर चढनेके लिये जैसी पैंडियाँ बना दीजाती हैं, आकाशमें ऊँचे होनेके लिये जैसे मंचान बाँधते हैं अथवा अथाह जलसे पार होनेमें जैसी नौका बनायी जाती है तद्वत् ही यह उपाय है ॥ ४८ ॥ और यदि ऐसा न कर, केवल 'सब कुछ परमात्मा है' इसप्रकार हम भी कह देते तो हे पार्थ ! तुम्हारे अन्तःकरणमें वह बात न जँचती, ॥ ४९ ॥ इस कारण, तुम्हारी बुद्धिकी मंदता देख, हमने एक ही ब्रह्मवस्तुके चार विभाग कर, उसका स्पष्टीकरण करदिया ॥ ९५० ॥ देखो पार्थ ! अनुभवकी बात है कि, बालकको भोजन कराना हो तो एक बडा ग्रास देनेमें उसका मन हिचकता है, तब उसी कौरके छोटे-छोटे बीस कौर कर उसको भोजन कराते हैं, तद्वत् ही हमने एकही वस्तुका चार प्रकारसे वर्णन किया है ॥ ५१ ॥ तुम्हारी ग्रहण-शक्तिका आकलन कर, हमने एकही ब्रह्मके प्रथम क्षेत्र, दूसरा ज्ञान, तीसरा ज्ञेय और चौथा अज्ञान, इसप्रकार चार भाग बनादिये हैं ॥ ५२ ॥ परन्तु हे पार्थ ! ऐसा करनेपर भी यदि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हमारा यह अभिप्राय तुम्हारे ध्यानमें ठीक-ठीक नहीं आगया हो, तो एकबार हम उस व्यवस्थाका फिरसे वर्णन करदेते हैं ॥ ५३ ॥ अब हम चार विभाग भी नहीं करेंगे, अथवा सब कुछ एकही है, ऐसा भी नहीं प्रतिपादन करेंगे, किन्तु आत्मा और अनात्मा ( प्रकृति तथा पुरुष ) की एकसी तुलना करनेका विचार करते हैं ॥५४॥ परन्तु इस विषयमें तुम्हारे पास एक माँगना पडता है और वह तुम्हें अवश्य देना पडेगा ! वह यही कि तुम्हें मनोभावके कानसे पूर्ण-ध्यानके साथ सुनना चाहिये ॥ ५५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके अमृत-वचनको सुनते ही पार्थका सर्व-शरीर रोमांचित होगया, तब श्रीकृष्ण उसे कहने लगे, हे प्यारे पार्थ ! शांत रहो, उच्छृंखलता मत आने दो ! ॥ ५६ ॥ अस्तु, इस प्रकार अर्जुन प्रेमसे गद्गदकण्ठ हो रहा है, ऐसा देख, उसे शान्त कर, फिर देवने कहा—अब हम प्रकृति—पुरुषके विभागका वर्णन कर तुम्हें सुनाते हैं, हे पार्थ ! सावधानतासे सुनो ॥ ५७ ॥ जिस तत्त्वज्ञानके संप्रदाय ( मार्ग ) को योगीजन संसारमें 'सांख्ययोग' कहते हैं, और जिस तत्त्वका महत्त्व प्रकट करनेके लिये मैंने कपिलावतार धारण किया था, ॥ ५८ ॥ वह निर्मल प्रकृति-पुरुषका विचार तुम श्रवण करो । इसप्रकार भगवान्ने अर्जुनसे कहा ॥५९॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

दिवस और रात्रिकी जोडीके समान ही पुरुष और प्रकृति ये दोनों अनादि हैं, ॥ ९६० ॥ अथवा हे पाण्डव ! छाया कुछ रूप नहीं है, परन्तु रूपके संग वृथा लगी रहती ही है, किंवा धान्य-कणोंके संग उसका कणरहित भूसा भी बढता ही रहता है; ॥ ६१ ॥ उसी प्रकार हे धनंजय ! ये पुरुष और प्रकृति अनादिकालसे रहत परस्परमें एकत्र जुडे हुए प्रकट हैं; ॥ ६२ ॥ तथा 'क्षेत्र' नामसे जिसका हमने पहले वर्णन करदिया है, वह भी 'प्रकृति' ही समझो ॥ ६३ ॥ और जिसे हमने 'क्षेत्रज्ञ' कहा है, वह 'पुरुष' है यह हमारा कथन सत्य समझो ॥ ६४ ॥ अब तुम यह बात ध्यानमें रखो कि, यद्यपि ये नाम अलग-अलग हैं, तथापि जिसका निरूपण करना है, सो वस्तु इनसे भिन्न नहीं है ॥ ६५ ॥ हे पार्थ ! इसमें जो सत्ता या अस्तित्व है, उसे तुम पुरुष समझो, और उसके आधारपर जो समस्त क्रियाएं चलती हैं, उसे तुम प्रकृति जानो ॥ ६६ ॥ बुद्धि, इन्द्रिय, अन्तःकरण इत्यादि विकारोंको उत्पन्न करनेवाली शक्ति और सत्त्वादि तीन गुण, ॥ ६७ ॥ इनका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


समुदाय एकत्र मिलनेसे प्रकृति होती है, और वही संपूर्ण क्रियाओंका आदि-कारण है ॥ ६८ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

इसमें प्रथमतः प्रकृति अहंकारके साथ, इच्छा और बुद्धिको उत्पन्न करती है, और फिर उन्हें कारणकी धुनमें लगा देती है ॥ ६९ ॥ उसी कारण, अथवा आरंभकार्यकी पूर्तता करनेके लिये, जो भिन्न-भिन्न उपाय सोचे जाते हैं, हे धनञ्जय उसका नाम 'कार्य' है ॥ ९७० ॥ पश्चात् वही प्रकृति इच्छाकी प्रबलतासे, उसके सहायद्वारा मनको चेतार्ती है, तब सचेत हुआ मन इंद्रियोंद्वारा जो व्यापार करता रहता है, वही प्रकृतिका 'कर्तृत्व' है ॥ ७१ ॥ अतएव सिद्धलोगोंके शिरोमणि श्रीकृष्ण कहते हैं—कार्य, कर्तृत्व और कारण इन तीनोंका आदिकारण यह प्रकृति ही है ॥ ७२ ॥ इस प्रकार इन तीनोंका संयोग होते ही प्रकृति कर्मरूप हो जाती है, परन्तु सत्त्वादि तीन गुणोंमेंसे जिसका प्राबल्य हो, उसीके समान वह आचरती रहती है ॥ ७३ ॥ सत्त्वगुणसे जो कर्म उपजता है, वह सत्कर्म कहा जाता है, रजोगुणके आश्रयसे जो कर्म उत्पन्न होता है, उसे मध्यम कर्म कहा जाता है॥७४॥ और जो केवल तमोगुणस ही कर्म उत्पन्न होते हैं वे सब निषिद्ध और निंद्य कहे जाते हैं ॥ ७५ ॥ इसप्रकार भले और बुरे कर्म प्रकृतिसे ही उत्पन्न होते हैं और उन कर्मोंसे सुख-दुःखका सभव होजाता है ॥ ७६ ॥ दुष्ट-कर्मोंसे दुःख उत्पन्न होजाता है और सत्कर्मोंसे सुख उत्पन्न होता है, और यह पुरुष उन दोनोंका उपभोग लेता है या उसे लेना ही पडता है ॥ ७७ ॥ जबतक ये सुख-दुःख सत्य भासमान होते हैं, तबतक वास्तवमें प्रकृति ही इनके उत्पादनका व्यापार करती रहती है और पुरुष उनका उपभोग लेता रहता है ॥ ७८ ॥ इन प्रकृति-पुरुषका व्यापार यदि वर्णा जाय तो बडा विचित्र ही जान पडेगा, कारण उसमें ऐसी विपरीतता है, कि प्रकृति ( स्त्री ) जो कमाती है, उसे पुरुष ( पति ) खाजाता है ! ॥ ७९ ॥ परन्तु इन पति-पत्नियोंका ( पुरुष-प्रकृतिका ) कभी भी एकत्र संगम या संबंध नहीं होता, तथापि उस स्त्रीके पेटसे यह सब जगत् उत्पन्न होता है । देखो, यह कैसा विलक्षण चमत्कार है ! ॥ ९८० ॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कारण, उसका यह पति निराकार, निष्क्रिय, अशक्त और दरिद्री ही नहीं, बरन् पुराणोंसे भी पुराणा और वृद्धोंसे भी वृद्ध है ॥८१॥ वास्तवमें उसे 'पुरुष' यह नामधारी व्यर्थ उपाधि है, सच देखा जाय तो वह न स्त्री है न नपुंसक ही है, किंबहुना वह क्या है, इसका यथार्थ निश्चय ही नहीं होता ! ॥ ८२ ॥ वह नेत्रहीन है, कर्णरहित है, और कर-चरणोंसे भी विहीन है । इतना ही नहीं बरन्, उसका न रूप है, न वर्ण है, न नाम है ॥ ८३ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार जिसे कुछ भी है, ऐसा कहा ही नहीं जाता, वह पुरुष इस प्रकृतिका पति है, और उसीसे उसको सुख-दुःखका भोग भोगना पडता है ! ॥८४॥ और हे अर्जुन ! वह स्वयं तो कुछ भी करता नहीं, उदासीन ही रहता है, भोगकी कभी इच्छा भी नहीं करता, परन्तु यह पतिव्रता प्रकृति उससे जबर्दस्ती भोग करालेती है ॥ ८५ ॥ वह प्रकृति अपने रूप-गुणोंकी थोडीसी चमक दिखाती हुई, मनमाना अपूर्व नाटक रचती है, ॥ ८६ ॥ इसी कारण उसे 'गुणमयी' नाम दियागया है ! और वास्तवमें उसे वह योग्य भी है, कारण वह गुणोंकी प्रत्यक्ष मूर्ति ही है ॥ ८७ ॥ यह प्रकृति क्षण-क्षणमें नित्य नये-नये रूपगुणोंके ढंग बना देती है, और इसी प्रकृतिकी उन्मत्तताके कारण जड-वस्तुओंको भी उन्माद चढजाता है ॥ ८८ ॥ और यही नामोंकी प्रसिद्धी करती है, इसीके कारण प्रेम भी प्रेमल बन जाता है और इन्द्रियोंको भी यही जागृत करा देती है ॥ ८९ ॥ मन वास्तवमें नपुंसक है, परन्तु यह प्रकृति उससे तीनों लोकोंके भोग भुगा लेती है । इस प्रकार अलौकिक कर्तृत्ववाली इस प्रकृति-बाईका बडा विलक्षण चरित्र है ! ॥ ९९० ॥ यह प्रकृति मानो भ्रमका एक अमर्याद विस्तीर्ण प्रदेश है, व्याप्तिकी केवल मूर्ति है, और यही सब प्रकारके विकार उत्पन्न करती है ॥ ९१ ॥ यही वासनावल्ली ( काम ) की मंडपी है, भ्रान्तिवनकी वसन्तलक्ष्मी है, और इसी कारण इसे 'दैवी माया' यह नाम दिया जाता है ॥ ९२ ॥ शब्दसृष्टिका विस्तार यही करती है, नामरूपात्मक जगत् यही बनाती है: और प्रपंचरूपी राक्षसी बनकर यही उसका नाच नचाती है ॥ ९३ ॥ संपूर्ण कलाएँ उसीसे उत्पन्न हुई हैं, विद्याएँ उसीकी बनी हुई हैं, तथा इच्छा, ज्ञान और क्रियाओंको उसीने जन्म दिया है ॥ ९४ ॥ ध्वनिके शिक्के पाडनेवाली टकसाल वही है, चमत्कारोंका मंदिर वही है, बहुत कहांतक कहा जाय ? हे पार्थ ! यह सब जगत् उसीका बनाया हुआ एक नाटक है ॥९५॥ विश्वकी उत्पत्ति और लय ये इस प्रकृतिके सुबह-शाम हैं । सारांश, यह प्रकृति मानो एक अद्भुत मोहिनी ही है ॥९६॥ यह अद्वयताकी दूसरी मूर्ति है, निःसंगताकी गोत्रज है और स्वयं शून्यमें घर बना-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर उसमें वास करती है ! ॥ ९७ ॥ इस प्रकार इसके सामर्थ्यका ऐसा बडा विस्तार है, और इसी लिये तो उस आकलन करनेमें अशक्य पुरुषको भी वह अपने अधिकारमें रख लेती है ! ॥ ९८ ॥ वास्तविक विचारसे देखा जाय, तो उस पुरुषमें कुछ भी नहीं है, वह सर्वथा उदासीन रहता है, परन्तु उसका सब कुछ यही स्वयं बनजाती है, ॥ ९९ ॥ उस स्वयंभूकी उत्पत्ति यही स्वयं होती है, उस निराकारकी मूर्ति भी यही आप बनती है, और उसकी प्रतिष्ठाका स्थान भी यही प्रकृति आप होजाती है, ॥१०००॥ जिसे कुछ भी इच्छा नहीं अर्थात् उस निरिच्छकी इच्छा, स्वयं-पूर्णकी तृप्ति, और उस कुलरहितकी जाति और गोत्र यही होजाती है ॥१॥ उस अवर्णनीयका लक्षण, उस अपारका आकार-प्रमाण, उस मनोहीनका मन और बुद्धि, ॥२॥ उस निराकारका आकार, व्यापार-रहितका कर्तृत्व-व्यापार, अहंकार-रहितका अहंकार स्वयं ही हो बैठती है॥३॥उसी प्रकार उस नामरहितका नाम, अजन्माका जन्म-ग्रहण, और उस नैष्कर्म्यका कर्म तथा क्रिया वही प्रकृति बनजाती है ॥४॥ वह आप ही उस निर्गुणके गुण, चरणहीनके चरण, कर्णरहितके कर्ण, और नयनरहितके नेत्र हो जाती है; ॥ ५ ॥ उस भावातीतके भाव, निरवयवीके अवयव इतना ही क्या ? उस पुरुषका सब कुछ यही स्वयं बन बैठती है ॥६॥ हे पार्थ ! इस प्रकार यह प्रकृति अपने व्यापक-विस्तारसे उस विकाररहित पुरुषको विकारवान् बनाती हुई अपने वश कर रखती है ॥ ७ ॥ इस पुरुषमें जो पुरुषत्व रहता है, वह भी इस प्रकृतिकी स्थितिके कारण ऐसा निस्तेज रहता है, जैसे कि अमावस्याके घर चन्द्रमा रहनेपर वह निस्तेज हो जाता है ॥ ८ ॥ अथवा उत्तम शुद्ध सुवर्णमें एक रत्तीभर भी हलका सोना डालनेसे जैसे उसका कस कम-दर्जेका लगता है, ॥ ९ ॥ किंवा सज्जन पुरुष भी पिशाचोंके संचार होनेपर जैसे बुरे व्यवहार करने लगता है, अथवा प्रकाश रहते हुए भी जैसे आकाश मेघोंसे ढकजानेपर सुदिनका दुर्दिन हो जाता है, ॥ १०१० ॥ अथवा पशुके पेटमें जैसा दूध ढँका रहता है, किंवा लकडीमें जैसी अग्नि गुप्त रहती है, अथवा रत्न-दीपक जैसा वस्त्रमें ढँका रखा हो, ॥ ११ ॥ अथवा राजा जैसे पराधीन हो गया हो, किंवा सिंह जसा रोगसे रोक रखा हो, उसी प्रकार यह पुरुष प्रकृतिकी संगतिके कारण अपने तेजसे वञ्चित होजाता है ! ॥ १२ ॥ जागृतावस्थामें स्थित पुरुष जिस प्रकार एकाएक निद्रावश हो, स्वप्नक सुखदुःख-रूपी भोगके जालमें आ फँसजाता है, ॥ १३ ॥ तद्वत् ही इस प्रकृतिकी संगति होनेसे पुरुषको गुण भोगने पडते हैं । जैसे कोई विरक्त-पुरुष भी स्त्रीके द्वारा फँसा हुआ उसके अधीन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हो जाता है; ॥ १४ ॥ वही प्रकार उस जन्मरहित, शाश्वत पुरुषका भी हो जाता है। और प्रकृतिके कारण जब उसे गुणोंका संग हो जाता है, तो उसपर जन्म-मृत्युके घाव पडने लगते हैं ॥ १५ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! वे घाव इस प्रकार होते हैं जैसे तपे हुए लोहेको पीटनेसे मानो अग्निका ही घात किया जाता हो, ऐसा समझा जाता है, ॥ १६ ॥ अथवा जलके हिलनेपर जलस्थ चन्द्रबिम्ब जैसे इधर-उधर हिलते हुए अनेक दिखाई देते हैं, तब अज्ञानी जीव जिस प्रकार एक चन्द्रमें अनेकत्व मानते हैं, ॥ १७ ॥ अथवा दर्पणके समीप रहनेसे जिस प्रकार एक मुखके दो मुख दिखाई देते हैं, किंवा कुंकुमके कारण जैसे स्वच्छ स्फटिक भी लाल दिखाई देता है; ॥१८॥ उसी प्रकार गुणोंके संगसे यह अजन्मा पुरुष अनेक जन्म लेतासा भासमान हो जाता है, परन्तु यदि गुणसंग न हो, तो वह भास भी नहीं हो सकता ! ॥ १९ ॥ संन्यासीको तो कोई जाति नहीं है, परन्तु स्वप्नमें 'मैं अंत्यज जाति हूँ' इस प्रकारका भास जैसे उसे होता है, तद्वत् ही इस पुरुषका भलीबुरी-योनियोंमें जाना केवल भासमान ही समझना चाहिये, वास्तवमें नहीं ॥ १०२० ॥ अत एव तुम यही निश्चित समझो कि, केवल-स्वरूपी निःसंग-पुरुषको जन्म अथवा भोग नहीं प्राप्त होते। इन सबका आदिबीज गुणसंग ही है ॥ २१ ॥

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ॥ २२ ॥

जुहीकी बेलको सँभालनेके लिये जैसा एक खम्भा खडा रहता है, उसी प्रकार यह पुरुष प्रकृति-मायामें खडा रहता है। परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो पुरुष और प्रकृतिमें इतना अंतर रहता है, जितना कि पृथ्वी और आकाशमें हो ॥२२॥ हे पार्थ ! यह पुरुष प्रकृति-नदीके तटपर एक मेरु सरीखा रहता है, उसका प्रतिबिम्ब उस नदीमें तो पडता है, परन्तु उसके प्रवाहके साथ वह बहता नहीं ॥ २३ ॥ प्रकृति-माया उत्पन्न होती है, लय होती है, परन्तु वह पुरुष शाश्वत बनाही रहता है, और इसी कारण ब्रह्मदेवसे लेकर चिउँटीतक सब विश्वका वह शास्ता-नियंता रहता है ॥ २४ ॥ प्रकृतिको उससे जीवनलाभ प्राप्त होता है और वह उसीके सामर्थ्यसे सृष्टिरचना करती है, एवंच वह प्रकृतिका भर्ता है ॥ २५ ॥ हे पार्थ ! अखंड-प्रवाहसे यह प्रकृति जो सृष्टि-रचना करती रहती है, वह सब एकत्र मिलकर कल्पान्तसमयमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उस पुरुषके पेटमें ही प्रविष्ट हो जाती है ॥ २६ ॥ यह पुरुष, महद्ब्रह्म-प्रकृतिका स्वामी है, इस ब्रह्माण्डगोलका चालक है और इसकी व्यापकता इतनी अमर्याद है, कि अपने सामर्थ्यसे वह इस प्रपंचकी सहजहीमें गिनती कर सकता है ॥ २७ ॥ इस शरीरके बीच जिसे 'परमात्मा' नाम दिया जाता है, हे पाण्डव ! वह यही पुरुष है ॥ २८ ॥ हे पार्थ ! ऐसा जो कहा जाता है, कि इस प्रकृतिके परे भी कोई वस्तु है, वह यथार्थमें यही पुरुष रहता है, यह बात तुम निश्चित सत्य समझो ॥ २९ ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

जो मनुष्य इस पुरुषको स्पष्टतया जानता है, तथा गुणोंके कर्म (त्रिगुणात्मक सृष्टि) प्रकृति-मूलक हैं, हे पार्थ जो इसप्रकार समझता है, ॥१०३०॥ और 'यह मूल है, यह उसका प्रतिबिम्ब है, 'यह जल है और यह मृगजल है' इसप्रकार जैसा हम निर्णय कर रखते हैं, ॥ ३१ ॥ उसीप्रकार प्रकृति-पुरुषका विवेचन जिस पुरुषके मनमें सिद्ध हो चुका है, ॥ ३२ ॥ वह पुरुष इस शरीरद्वारा चाहे संपूर्ण कर्म करता रहे, परन्तु जैसे आकाश भूमिसे मलिन नहीं होता, वैसे ही वह कर्म-संगसे मलिन न होकर निर्मल ही रहता है ॥ ३३ ॥ शरीर प्राप्त होनेपर जो शरीरके मोहमें नहीं फँसता, वह शरीरके पात होनेपर फिर जन्म ही नहीं लेता ॥ ३४ ॥ इस कारण, हे पार्थ ! इतना यह अलौकिक सुखलाभ प्राप्त करानेवाला प्रकृति-पुरुषका निर्णय तुम्हें अवश्य निरंतर करते रहना चाहिये ॥३५॥ अब यह अत्यन्त उपकारक और अनन्त-सुखदायी विवेक अन्तःकरणमें सूर्यप्रकाशके समान कैसा उदय हो, इसके जो उपाय हैं, वे तुम्हें सुनाता हूँ तुम श्रवण करो ॥ ३६ ॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥

हे वीर अर्जुन ! कुछ लोक ऐसे हैं जो कि, विचारकी अँगीठी बनाकर आत्माके अनात्मरूपी हलके सोनेकी पुट दे, ॥ ३७ ॥ छत्तीस प्रकारके जो सुवर्णके कस हैं, उनके भेदोंका नाश करके, उनमेंसे शुद्ध-आत्मारूपी ब्रह्मतत्त्वका निर्मल सोना निश्चित कर निकालते हैं, ॥ ३८ ॥ कोई तो ऐसे हैं, जो स्वयं आत्मरूप हो, उस आत्माको आत्मध्यानकी दृष्टिसेही देखते हैं, ॥ ३९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और कोई दैववशात् सांख्ययोगकी रीतिसे परमात्मामें चित्त लगाते हैं । और दूसरे जो कोई हैं, वे तो केवल कर्मपर निर्भर रहकर कर्मके आश्रयसे ही आत्मामें रममाण होते हैं ॥ १०४० ॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

इसप्रकार नाना उपायोंद्वारा मुझमें मिलजाते हुए वे इस संपूर्ण भ्रान्तिमय संसारके पार हो जाते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं, ॥ ४१ ॥ परन्तु कोई-कोई तो ऐसा भी करते हैं, कि अपना सर्व प्रकारका अभिमान छोड, श्रद्धाके साथ एकके ही वचनोंका आश्रय लेकर उसीपरसे चलते हैं ॥ ४२ ॥ जो उनका हिताहित देखते हैं, जो अत्यंत दयाशील हैं और दुःखितोंका दुःख देख उनके क्लेशोंका हरण करते हुए उन्हें सुखी करते हैं, ॥ ४३ ॥ ऐसे सत्पुरुषोंके मुखसे जो जो कुछ निकले उसेही उपदेशसा मानते हुए आदर सत्कारके साथ सुनकर, शरीर और मनसे तदनुसार आचरण करनेमें तद्रूप हो जाते हैं; ॥ ४४ ॥ और इस उपदेशके श्रवणमें ही सब कुछ है, इस श्रद्धासे अपने सब व्यवहार दूर हटाते हुए उस उपदेशके अक्षरों-परसे अपने जीवभावोंकी निछावर कर देते हैं, ॥ ४५ ॥ हे पार्थ ! वे भी श्रद्धावान् और श्रवणमार्गी भक्त इस जन्म-मरणरूपी संसार-सागरसे भलीभाँति सुरक्षिततासे पार होजाते हैं ॥ ४६ ॥ कहनेका आशय यह है कि, एकही ब्रह्मवस्तु प्राप्त करनेके ऐसे अनेक मार्ग हैं ॥ ४७ ॥ अस्तु, यह विस्तार बहुत हुआ । अब सर्व प्रकारोंके मन्थन करनेसे निकलनेवाला महासिद्धान्तका सारभूत मक्खन तुम्हारे हाथमें रख देते हैं, तुम सावधानतासे ग्रहण करो ॥ ४८ ॥ हे अर्जुन ! इतना करनेसे तुम्हें ब्रह्मानुभव भी सहजहीमें प्राप्त होगा और कष्ट भी बहुत न होंगे तथा दूसरे प्रयास करनेका कोई कारण भी न रहेगा ॥ ४९ ॥ अतएव अब हम ऐसे ज्ञानका विचार करना चाहते हैं, जिससे अन्य सब मतवादोंका खण्डन होकर केवल निर्मल गर्भगत सत्य-सिद्धान्तके फलितार्थका वर्णन सुननेका ही तुम्हें लाभ प्राप्त हो ॥ १०५० ॥

यावत्संजायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

अब 'क्षेत्रज्ञ' नामसे जो हमने तुम्हें आत्मतत्त्वके स्वरूपका वर्णन सुनाया, तथा 'क्षेत्र' शब्दसे जो जो कुछ कहा है, ॥ ५१ ॥ उन दोनोंके संयोगसे ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यह भूतमात्र उत्पन्न हुआ है, वायुके संगसे जैसी जलमें तरंगें उत्पन्न होती हैं, ॥५२॥ अथवा सूर्यकिरणोंकी तीव्रताका और वज्र-भूमिका संयोग होते ही जैसी मृगजलकी बाढ बढती हुई दिखायी देती है, ॥ ५३ ॥ किंवा मेघोंकी जलधारायें पृथ्वीपर गिरते ही उसके भीगनेसे जैसे नानाप्रकारकी वनस्पतियोंके अंकुर प्रगट होते दिखाई देते हैं, ॥ ५४ ॥ तद्वत् ही, इस संपूर्ण स्थावर-जंगममें जो कुछ 'जीव' नामसे प्रसिद्ध है, वह सब क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ( प्रकृति और पुरुष ) इन दोनोंके संयोगसे ही उत्पन्न होता है ऐसा तुम समझो ॥५५॥ अतएव हे मध्यमपाण्डव पार्थ ! प्रधानतत्त्व जो क्षेत्रज्ञ उससे यह नामरूपात्मक भूतसृष्टि भिन्न नहीं है ॥ ५६ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

देखो पार्थ ! जैसे वस्त्र कुछ तंतु नहीं है तथापि तंतुओंसे व्याप्त होनेसे वह तंतुमय ही भासमान होता है, तद्वत् क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ( ईश्वर और सृष्टि ) का जो ऐक्य है, उसे सूक्ष्मदृष्टिसे देखकर ही समझना चाहिये ॥ ५७ ॥ भूतप्राणी बहुत हैं, एकसे एक उत्पन्न होते हैं, परन्तु उनका अनुभव अलग-अलग है, यह बात प्रतीतिमें लानी चाहिये ॥ ५८ ॥ कारण इनके नाम भिन्न-भिन्न हैं, इनके व्यापार तथा सबके रूप-रंग और वेष भी भिन्न-भिन्न हैं ॥ ५९ ॥ ऐसी इनकी स्थिति देखकर, हे पार्थ ! यदि तुम अपने अन्तःकरणमें भेदभावको स्थान दोगे, तो करोडों जन्मतक भी इस संसारसे बाहर न निकल सकोगे ! ॥ ॥ १०६० ॥ देखो पार्थ ! एक ही तूंबीके जैसे लम्बे, टेढे तथा गोल आकारवाले फल अनेक कामोंमें उपयोगी होते हैं, ॥६१॥ और वे चाहे सरल हों या टेढे अथवा गोल हों, परन्तु वे जैसे बेरके नहीं कहे जाते हैं, तद्वत् भूत कैसे ही भिन्न-भिन्न आकारके हों, परन्तु उनका मूलकारण या आधार जो ब्रह्मवस्तु वह सीधी और सरल ही है ॥ ६२ ॥ अंगारोंके तप्त-कण यदि अनेक हों, तथापि उन सबोंमें उष्णता एकसी ही रहती है, तद्वत् ये जीवसंघ यदि अनेक हों, तथापि उनमें परमेश्वर एक ही है ॥ ६३ ॥ वर्षाकी अनेक धारायें यदि संपूर्ण आकाशभरमें भरी हुई दिखायी दे रहती हों, तथापि हे वीरवर अर्जुन ! उनमें पानी जैसे एक ही रहता है, तद्वत् भूतोंके आकार यदि अनेक हों, तथापि उन सबोंके अंगोंमें परमेश्वर एक ही रहता है ॥ ६४ ॥ ये प्राणिसमुदाय यद्यपि भिन्न-भिन्न रूप-रंगके हों, तथापि घट-मठादिमें जैसे आकाश एक ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


रहता है, तद्वत् ब्रह्म संपूर्णमें समानतासे ही रहता है ॥ ६५ ॥ जिस प्रकार केयूर आदि अलंकार भिन्न-भिन्न आकारके और बदलनेवाले भी होते हैं, परन्तु उनके सोनेका कस वैसा ही रहता है, तद्वत् इस भूताभासका तो नाश अवश्य होता है, परन्तु उनमें रहनेवाला अविनाशी आत्मा शाश्वत बनाही रहता है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार जीवधर्मरहित ब्रह्मको, जो जीवोंसे अभिन्न जानता है, हे पार्थ ! वही ज्ञानिजनोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी, अथवा सच्चा देखनेवाला समझना चाहिये ॥ ६७ ॥ हे वीरवर पार्थ ! वह पुरुष ज्ञानकी दृष्टि है, और नेत्रवानोंमें नेत्रवान् वही है। यह स्तुति अगर अतिशयोक्ति नहीं, किन्तु वह पुरुष अत्यन्त भाग्यवान है, ऐसा ही समझना चाहिये ॥ ६८ ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥

यह शरीर गुण और इंद्रियोंकी एक कंथा है, वात, पित्त और कफ इन धातुओंके संचयकी त्रिपुटी है और इसमें पंच महाभूतोंका मिश्रण हुआ है, जो कि बहुत ही भयंकर है, ॥ ६९ ॥ स्पष्ट कहना हो तो, यह एक पांच डंकोंवाला बिच्छु ही समझना होगा, अथवा शरीरमें पांचों जगहोंमें लगी हुई यह एक अग्नि ही है, जीवरूपी सिंहको मानो गरीब मृगोंके रहनेकी यह जगह ही मिल रही है ॥ १०७० ॥ ऐसा है, तो भी इस शरीरके अनित्यभावरूपी पेटमें नित्यज्ञानकी छुरी कोई नहीं मारता ! ॥ ७१ ॥ परन्तु हे पार्थ ! जो ज्ञानी है, वह जबतक इस देहमें रहता है, तबतक कभी भी आत्मघात नहीं करता और देहपातके अनंतर उसी तत्त्वमें मिलजाता है; ॥७२॥ जहां कि योगीजन अपने योग और ज्ञानके सामर्थ्यसे कोटि-जन्मका उल्लंघन कर, ऐसी प्रतिज्ञाके साथ निमग्न होजाते हैं, कि अब यहांसे निकलकर कभी वापस नहीं जायँगे ! ॥ ७३ ॥ जो आकार ( भूतसृष्टि ) का परतीर है, जो ध्वनिके परतीरकी सीमा है, और जो परब्रह्म तुर्यावस्थाका मध्यगृह है, ॥ ७४ ॥ जिसप्रकार गंगादि सब नदियां सागरमें लीन होजाती हैं, तद्वत् मोक्षादि सब परम गतियां जहां विश्राम पाती हैं, ॥ ७५ ॥ ऐसा जो परब्रह्मप्राप्तिका आनंदस्थान है, वह वहीं प्राप्त कर लेता है, जो इसी देहमें रहकर सद्गुरुकी पूजाके द्वारा प्राणियोंकी विषमताके कारण अपनी बुद्धिका भेद अन्तःकरणमें नहीं होने देता हुआ, सबमें समत्वकी भावनासे वर्तता है ॥ ७६ ॥ जैसे करोडों दीपोंमें तेज समभावसे एकरूप रहता है, तद्वत् ही अनादि परमात्मा सर्वत्र समभावसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


नित्य बना रहता है, ॥ ७७ ॥ इस प्रकारकी समताका अनुभव लेता हुआ, जो मनुष्य जीवन धारण करता रहता है, हे पार्थ ! निश्चयसे वह जन्म-मृत्युके अधीन नहीं होसकता ! ॥७८॥ इस कारण ही उस भाग्यशाली पुरुषकी हम बार बार स्तुति करते हैं, कारण उस पुरुषकी दृष्टि समभावपर स्थिर होजानेसे वह समतारूपी शय्यापर ही शयन किये रहता है ॥ ७९ ॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

जो मनुष्य सर्वप्रकारसे निश्चयपूर्वक ऐसा जानता है कि, मन, बुद्धि और सर्व कर्मेंद्रियों तथा ज्ञानेंद्रियोंद्वारा प्रकृति ही कर्म करती है, ॥ १०८० ॥ जैसे घरके लोग घरमें काम-काज करते हैं, परन्तु घर कुछ काम नहीं करता, मेघ आकाशमें इतस्ततः संचार करते हैं, परन्तु आकाश कुछ इधर उधर हिलता नहीं, ॥ ८१ ॥ उसी प्रकार यह प्रकृति-माया आत्माके तेजसे अनेक कार्य करनेके हेतु त्रिगुणोंका अंगीकार कर खेल खेलती है, परन्तु उसके इन कार्योंमें आत्मा स्तम्भके समान उदासीन वा साक्षी ही रहता है, इतना ही नहीं, वरन् उसके उन कार्योंको वह पहचानता भी नहीं ॥८२॥ इस प्रकारके निश्चित-ज्ञान-प्रकाशसे जिसका अन्तःकरण प्रकाशित हो रहा है, हे पार्थ ! वह पुरुष अकर्ता ( कर्तृत्वहीन ) आत्माको निश्चयसे देख चुका है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ८३ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

हे पार्थ ! वास्तविक विचारनेपर मनुष्य तभी ब्रह्मसंपन्न हुआ समझना चाहिये, जब भूत-संघकी आकृतियोंके नानात्वका निरसन हो उनके एकरूप दिखायी देनेका अनुभव उसे प्रतीत हो ॥ ८४ ॥ जलमें जैसी लहरें, स्थलमें जैसे परमाणुओंके कण किंवा सूर्यमण्डलमें जैसी किरणें, ॥ ८५ ॥ अथवा शरीरमें जैसे अवयव, मनमें जैसे भिन्न-भिन्न भाव और एकही अग्निमें जैसी साकार चिनगारियें वा स्फुलिंग, ॥ ८६ ॥ तद्वत् ये सब भूताकार एक ही आत्माके हैं, इसप्रकार जब ज्ञानदृष्टिसे यथार्थमें दिखाई देता है, तभी ब्रह्म-सम्पत्तिरूपी जहाज पुरुषके हाथ आता है समझना ॥ ८७ ॥ फिर उस पुरुषको जहां-तहां ब्रह्मस्वरूप ही दृष्टिमें दिखाई देता है, किंबहुना अपार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सुखका लाभ उसे प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ हे पार्थ ! इसप्रकार स्पष्ट विवेचन कर, प्रकृति पुरुषकी व्यवस्था हमने तुम्हें समझा दी और उसके हरेक दिशाका मार्ग सूचित कर दिया है ॥ ८९ ॥ जैसा अमृतको चुल्लूमें लिया जाय अथवा गुप्त धनसञ्चय आंखोंसे देखा जाय, तद्वत् ही अपनेकेः यह परम लाभ प्राप्त हो गया हो, ऐसा तुम्हें समझना होगा ॥१०९०॥ हे पार्थ ! अब तुम्हें बिना प्रतीतिसे मनका निश्चय करना उचित नहीं मालूम पडेगा, अतएव यदि मनमें कुछ विचार आया हो, तो उसे भी तुम मत करो ॥९१॥ कारण अभी तुम्हें एक-दो दूसरे गहन विचार हम बता देते हैं, परन्तु तुम अपना मन मेरेमें समर्पित कर दो और मुझसे वे विचारके शब्द ध्यानसे सुनते रहो ॥ ९२ ॥ इसप्रकार दयाघन भगवान् बोले और आगेके निरूपणका उन्होंने आरम्भ किया । उस समय अर्जुन भी सर्वेन्द्रियोंसमेत एकाग्रचित्तसे उसे श्रवण करने लगा ॥ ९३ ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

हे पार्थ ! जिसे परमात्मा कहा जाता है, वह ऐसा है, जैसे सूर्य जलमें प्रतिबिम्बित होनेपर, जलमें ही दीखता है, परन्तु वह जलमें लिप्त नहीं होता ॥ ९४ ॥ कारण, सूर्य जलके पूर्वमें था, और जलके पश्चात् भी बना रहता है, परन्तु बीचके समयमें प्रतिबिम्बरूपसे जो जलमें दिखाई देता है, वह दूसरोंकी दृष्टिसे है, वास्तवमें वह तो जैसाका तैसा और जहांका तहां ही रहता है ॥९५॥ तद्वत् आत्मा देहमें है, यह कहना सत्य नहीं, कारण आत्मा जहांका तहां अपनेमें ही स्थित है, ॥ ९६ ॥ दर्पणमें अपना मुख देखनेपर जैसे दर्पणमें मुख है, इस प्रकार कहा जाता है, उसी प्रकार आत्मा शरीरमें रहता हुआ दिखाई देता है, परन्तु वास्तवमें वैसा नहीं, ॥ ९७ ॥ आत्माका और देहका संबंध है, यह कहना सर्वथा निर्मूल है । वायुका और वालु ( रेत ) का क्या कभी संयोग हो सकता है ? ॥९८॥ अग्नि और कपासकी डोरी कभी एकत्र हो सकती है ? आकाश और पृथ्वीके पाषाणको एकमें कैसे जोडा जायगा ? ॥९९॥ देखो, एक पूर्वकी ओर जा रहा है और दूसरा पश्चिमकी ओर, उन दोनोंकी भेंट होनेका जैसा असंभव संबंध है, वैसा ही देह और आत्माका संबंध है ॥ ११०० ॥ प्रकाश और अँधेरा, मृत और जीवित इनमें जितनी सादृश्यता है, आत्मा और देहमें उतनी ही है ॥ १ ॥ जैसे रात्रि और दिवस,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सुवर्ण और कपास, इनमें जितना हेरफेर रहता है अर्थात् कुछ भी साम्य नहीं, वैसे ही आत्मा और देहका कुछ भी साम्य नहीं है ॥ २ ॥ यह देह पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न हुआ है, कर्म-बन्धनकी डोरीसे बँधा हुआ है और जन्म-मृत्यु-रूपी चक्रमें चढा हुआ निरंतर घूमता रहता है ॥ ३ ॥ कालरूपी अग्निके मुखमें डाली हुई यह एक मक्खनकी छोटीसी गोली है और मक्खीको अपने पंख झाडनेमें जितना समय लगता है, बस उतने ही समयमें वह नष्ट होजाती है ॥ ॥ ४ ॥ यह देह यदि दैववशात् अग्निमें पडे तो भस्म होकर नाश पाता है, परन्तु यदि कुत्तोंके हाथ आजाय तो उसकी विष्ठा ही बनेगी, ॥ ५ ॥ और यदाकदाचित् ये दोनों बातें न हों, तो वह कीडोंकी राशिही बनेगा । तात्पर्य, हे पार्थ ! इसका कोई भी परिणाम हो, तो बुरा और निंद्य ही होगा ॥ ६ ॥ ऐसी इस देहकी दुर्दशा होती है । परन्तु आत्मा तो अनादि, सहज, शुद्ध और नित्य होनेसे स्वयंपूर्ण है ॥ ७ ॥ वह निर्गुण होनेसे न पूर्ण है न अपूर्ण है, न क्रियावान् है न क्रियारहित है, तथा न सूक्ष्म है न स्थूल है ॥ ८ ॥ वह निराकार होनेके कारण न भासमान होता है न भासरीहत, न प्रकाशवान् है न प्रकाशरीहत है, तथा अल्प किंवा विस्तृत इस प्रकार उसे कुछ भी कहा नहीं जाता ॥ ९ ॥ वह सर्व तरहसे शून्यस्वरूप ही है, तथापि पोला ( रीता ) है न भरा है, किसीसे वह युक्त नहीं, किंवा किसीसे सहित भी नहीं, और न व्यक्त ( प्रकट ) है, न अव्यक्त है ॥ १११० ॥ वह आत्मस्वरूप होनेके कारण उसमें न आनन्द है वा न आनन्दाभाव भी है तथा उसमें न एकत्व है न अनेकत्व है, वह न मुक्त है अथवा न बद्ध है ॥११॥ अलक्ष्य होनेसे वह न इतना है वा उतना है, वह न बना बनाया है, वा किसीसे न बनाया जाता है, और न वाग्मी है, न मौनी है ॥ १२ ॥ सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ न वह उत्पन्न होता है और न उसके संहारके साथ उसका नाश भी होता है, कारण वह 'उत्पत्ति और नाश' इनका स्वयं लयस्थान हा है ॥ १३ ॥ वह अव्यय होनेसे उसको न परिमाणसे मापा जा सकता है न उसका वर्णन किया जा सकता है, वह न बढता है न घटता है, न कृश होता है न खर्च होता है ॥ १४ ॥ हे प्यारे पार्थ ! इस प्रकारका आत्मा रहते हुए उसे देही ( देहमें रहनेवाला ) समझना, मानो आकाशको मठाकारका नाम देना ही है ॥ १५ ॥ उसीप्रकार वह सर्वव्यापक होनेसे उसके देहाकार उत्पन्न होते हैं और विलीन हो जाते हैं, परन्तु विकाररहित वह आत्मा ये आकार न धारण करता है न उनका त्याग करता है, किन्तु वह जैसाका तैसा ही बना रहता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


है ॥१६॥ आकाशमें जैसे दिन और रात होते और जाते हैं, उसी प्रकार आत्माकी सत्तासे ये शरीर उदय होते हैं और अस्त हो जाते हैं ॥ १७ ॥ अतएव आत्मा इस शरीरमें होते हुए भी स्वयं न कुछ करता है और न कुछ कराता है और किसीके बने बनाये कार्यमें भी प्रवृत्त होना चाहता है ॥ १८ ॥ इस कारण उसके स्वरूपमें न्यूनता या पूर्णताका नाम नहीं दिया जा सकता। तात्पर्य आत्माके देहमें रहते हुए भी वह देहभावोंसे कभी लिप्त नहीं होता, ऐसा ही निश्चित समझो ॥ १९ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

देखो पार्थ ! आकाश किसी जगह नहीं हो, ऐसा कभी हो सकता है ? अथवा वह कौनसी जगहमें प्रवेश नहीं कर सकता ? परन्तु ऐसा है तो भी किसीसे वह लिप्त नहीं होता ॥ ११२० ॥ तद्वत् यह आत्मा सब काल सब देहोंमें ओत-प्रोत भरा हुआ रहता है, परन्तु वह किसीके सङ्गदोषसे कभी लिप्त नहीं होता ॥२१॥ इसका भावार्थ इस विषयमें तुम निश्चयसे यही समझो कि, क्षेत्रज्ञको क्षेत्रविहीन समझनेकी दृढबुद्धि होनी चाहिये ॥ २२ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

लोहचुम्बकमणिके आकर्षणसे लोहा चलायमान होता है, परन्तु लोहा कुछ चुम्बक नहीं हो सकता, वही हाल क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका रहता है ॥ २३ ॥ दीपकके प्रकाशसे घरके व्यवहार होते हैं, परन्तु दीपकमें और घरमें करोड़ोंका अन्तर है ॥ २४ ॥ हे पाण्डव ! काष्ठके गर्भमें अग्नि रहती है, परन्तु काष्ठको कुछ अग्नि नहीं समझी जाती, इसी दृष्टिसे इस क्षेत्रज्ञ ( आत्मा ) का विचार करना चाहिये ॥ २५ ॥ आकाश और सजलमेघाकाशमें, सूर्य और मृगजलमें जो भेद या अन्तर है, हे पार्थ ! वही अन्तर इस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञमें है, यह बात विचार करनेपर ही सिद्ध हो सकती है ॥ २६ ॥ बस, अब और कहनेकी आवश्यकता नहीं। इतना ही समझो कि आकाशस्थ सूर्य जिस प्रकार पृथ्वी आदि अलग-अलग अनेक लोगोंको प्रकाशित करता है, ॥ २७ ॥ उसी प्रकार यह क्षेत्रज्ञ ( आत्मा ) भासमान होनेवाले संपूर्ण क्षेत्रोंका प्रकाशक है, यही तुम निश्चित समझ रखो । अब इसपर कोई प्रश्न वा शंका उपस्थित करनेका काम ही नहीं रहा ॥ २८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

हे शब्दतत्त्वसारज्ञ अर्जुन ! ज्ञानदृष्टिवाली बुद्धि वही है, जिस बुद्धिको क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका यथार्थ ज्ञान होगया है ॥ २९ ॥ यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका भेद जाननेके लिये सयाने और चतुरलोग ज्ञानी-जनोंके द्वारमें जा, उनकी आराधना किया करते हैं ॥ ११३० ॥ और इसीके प्राप्त्यर्थ संतजन शान्तिरूपी संपत्ति इकट्ठी करते हैं और शास्त्ररूपी दुग्धवती गौओंकी उपासना करते हैं ॥ ३१ ॥ तथा इसी ज्ञानके लाभार्थ कोई पुरुष योगरूपी आकाशको घूँघट डालनेकासा अत्यंत कठिन साहस करते हैं, ॥ ३२ ॥ कोई कोई तो इस ज्ञान प्राप्तिके हेतु शरीर है आदि जिसमें, ऐसे सर्व-परिवारको तृणके समान समझते हुए अन्तःकरणसे संतजनोंकी पादुकाएँ सिरपर धारण कर अखंड सेवा करते रहते हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अनेक मार्गोंसे ज्ञानलालसाकी अत्युत्कट इच्छासे अन्तःकरणमें ज्ञान-सामग्री इकट्ठा करनेके हेतु अनेक प्रयत्न करते रहते हैं ॥ ३४ ॥ तब कहीं हे पार्थ ! इस प्रकारके प्रयत्नोंसे जिन्हें क्षेत्रक्षेत्रज्ञका यथार्थ भेद जाननेका सच्चा ज्ञान प्राप्त होगया है, अतः उन ज्ञानियोंकी हम बडे प्रेमसे आरती करते हैं ! ॥ ३५ ॥ और महाभूतादि अनेक वस्तुओंमें भेदभावोंसे जो यह मिथ्या माया-प्रकृति विस्तृत हुई है, ॥ ३६ ॥ जो शुक-नलिकान्यायसे सचमुच बंधनकारक न होती हुई भी, जिस तिसकी भावनासे, जिस तिसको बंधनकारक प्रतीत होती है, अर्थात् जैसी वह दीखती है, वैसी ही उसे जो मानता है, ॥ ३७ ॥ जैसे कोई हारको मिथ्या सर्पाभासके ज्ञान होनेपर सच्ची ज्ञान-दृष्टिसे हारको हार ही पहँचानता है, ॥ ३८ ॥ किंवा रूपेका भ्रम-निरास होनेपर, जैसी सत्य ज्ञानकी यह प्रतीति होती है कि, सीप सीप ही है ॥ ३९ ॥ तद्वत् ही जो अपने अन्तःकरणमें प्रकृतिको पुरुषसे भिन्न और पृथग् देखते हैं, हे पार्थ ! मेरे मतमें वे पुरुष ब्रह्मरूप होजाते हैं ॥ ११४० ॥ जो आकाशसे भी बडा है, जो अव्यक्तसे भी परतीर है, और जिसकी प्राप्ति होते ही सम-विषम-भेदभाव नहीं रहते, ॥ ॥ ४१ ॥ जिसमें आकार नहीं रहता तथा जीवभाव और द्वैतका जिसमें लोप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हो जाता है और जो केवल अद्वितीय है, ॥ ४२ ॥ ऐसा जो परमतत्त्व है, उसे हे पार्थ ! आत्मानात्मव्यवस्थाके जाननेवाले, और असारसे सार वस्तुको निकालनेवाले केवल राजहंससरीखे चतुर पुरुष ही प्राप्त कर सकते हैं ॥ ॥ ४३ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माने अपने हृदयके प्रेमी अर्जुनको आत्मानात्मतत्त्वका सर्व प्रकारसे स्पष्ट निर्णय करके समझा दिया ॥ ॥ ४४ ॥ एक कलशका जल जैसे दूसरे कलशमें डाल दिया जाता है, तद्वत् भगवान् श्रीकृष्णजीने अपने अन्तःकरणस्थ ज्ञानका अनुभव जैसाका तैसाही अर्जुनके अन्तःकरणमें भर दिया ॥ ४५ ॥ पर, वास्तवमें यहां देनेवाला कौन, आर लेनेवाला कान है ? कारण जो नर अर्थात् अर्जुन वही नारायण है, उनमें भेद कहांसे हो ? और भगवान्ने भी अर्जुनको आत्मविभूति ' पाण्डवानां धनंजयः ' ही कहा है ॥ ४६ ॥ परन्तु अस्तु, यह वृथा विषयांतर क्यों बढाया जाय ? कारण यह बात तो बिना पूँछेही मैं कह रहा हूँ । परन्तु कहनेका तात्पर्य इतना तो अवश्य है कि, इस प्रसंगमें भगवान्ने अपना ज्ञान-सर्वस्व अर्जुनको दे ही दिया ॥४७॥ परन्तु इसका परिणाम तो ऐसा हुआ, कि अर्जुनके मनमें इच्छातृप्ति होनेकी अपेक्षा उसकी ज्ञानश्रवण-लालसा अधिकाधिक ही बढने लगी ! ॥ ४८ ॥ दीपकमें अधिक तेल डालनेसे जैसे वह अधिक प्रकाश देता है, तद्वत् श्रीकृष्णके मुखसे ज्ञाननिरूपण श्रवण कर, अर्जुनका अन्तःकरण श्रवणेच्छाकी उत्सुकतामें अधिक ही बढने लगा ॥ ४९ ॥ ठीक ही है, जैसे उत्तम बनाई हुई रसोईको कोई सुघड स्त्री अपने उदार और ढाल हाथोंसे परोसती हो और उसे भोक्ता भी रसज्ञ यथारुचि सावकाश भोजन करनेवाला प्राप्त हो गया हो, तो उदारता और मंदताके कारण उन दोनोंके हाथ जैसे अविश्रांत चलते ही रहते हैं, ॥ ११५० ॥ वही प्रकार प्रस्तुत-प्रसंगमें श्रीकृष्णका भा हुआ ! अर्जुनकी श्रवणोत्सुकता देख, भगवान्को भी ऐसा आनंद होगया कि, निरूपण करनेमें उनका स्फुरण चौगुना बढ गया ! ॥ ५१ ॥ अनुकूल वायुसे जैसे मेघ शीघ्रताके साथ इकट्ठे होते हैं, अथवा चन्द्रदर्शनसे जैसे समुद्र भर जाता है, तद्वत् ही श्रोताओंके आदर दिखानेपर वक्ताको वक्तृत्व करनेमें स्फूर्ति उत्पन्न होती है ॥ ५२ ॥ तब संजयने कहा—हे राजन् धृतराष्ट्र ! अब परमात्मा श्रीकृष्ण सम्पूर्ण विश्वको आनन्दमय बनावेंगे, इसलिये सावधान रहकर उस वृत्तान्तको श्रवण करो ॥ ५३ ॥ इस प्रकार महाभारतमें अगाध बुद्धिमान् श्रीव्यास महाराजने भीष्मपर्वमें जो कथा वर्णन की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है ॥ ५४ ॥ उसी श्रीकृष्णार्जुन-संवादको मैं प्राकृत-भाषामें ( ओवीछन्दमें ) सुन्दर और स्पष्ट शब्दोंसे यथामति वर्णन कर रहा हूँ ॥ ५५ ॥ मैं जो आगे कहनेवाला हूँ वह केवल शान्तरसमय ही कथा है, परन्तु वह शृंगाररसके माथेपर पैर रखनेमें भी कम नहीं करेगी ॥ ५६ ॥ यह मेरी देशी मराठी ( प्राकृत ) ही भाषा है, परन्तु उसकी नियोजकता ऐसे कौशल्यसे करूँगा कि, जो साहित्यके लिये भी गुरु होगी और मधुरतामें तो अमृतको भी फीका बनावेगी ॥ ५७ ॥ ये मेरे छन्द-प्रबन्ध अपनी रसार्द्र-शीतलतासे चन्द्रमाकी समानता प्राप्त करेंगे तथा रस और रंगको भुला-वेंगे और नादब्रह्म तो ऐसे निमग्न होगा, जैसे कि उसे समाधि लगी हो ॥५८॥ यह मेरी शब्द-रचना पिशाचके अन्तःकरणको भी सात्त्विकवृत्तिका बनावेगी और इसके सुनते ही देवोंके अन्तःकरणमें भी आत्मसमाधिलाभ प्राप्त होगा ॥ ॥ ५९ ॥ अब मैं ऐसा वाग्विलास करूंगा, कि जिससे यह संपूर्ण विश्व गीता-र्थसे परिपूर्ण भर जायगा और इस संपूर्ण विश्वके लिये एक आनन्द-मंदिर ही बन जायगा ॥ ११६० ॥ इस मेरे व्याख्यानको सुनकर विवेककी दीनता नष्ट हो जाय, कान और मनको अपने जीनेकी सार्थकता मालूम होगी, और चाहे जैसे मनुष्यको आत्मविद्याका लाभ प्राप्त होजावे, ॥ ६१ ॥ परमात्मतत्त्वका दर्शन सबको आंखोंसे दिखाई दे, सबके लिये सुखका पर्व हो और इस संपूर्ण विश्वको सुखका सुकाल हो जावे ॥ ६२ ॥ अब मुझे विश्वास है कि, ये सब बातें अवश्य प्राप्त होंगी, ऐसा ही मेरा विवरण होगा, कारण परमश्रेष्ठ श्रीनिवृ-त्तिनाथजीके कृपाप्रसादका मुझे आश्रय-लाभ प्राप्त होगया है ॥ ६३ ॥ इस लिये श्लोकोंके अक्षरोंमें उपमा, श्लेष इत्यादिकोंकी जो भीड हो, जिससे गुप्तता स्पष्ट मालूम पडे, ऐसे स्पष्ट कर, ग्रंथके हरेक पदका अर्थ सुगमतासे ज्ञात हो जाय ऐसा विशद और स्पष्ट विवरण करूँगा ॥ ६४ ॥ यह मेरी इच्छा पूर्ण होनेतककी प्रगल्भविद्या और अर्थज्ञान देकर श्रीगुरुमहाराजने मुझे परिपूर्ण कर दिया है ॥ ६५ ॥ अजी, संतजनो ! उसी श्रीगुरुमहाराजकी कृपाके सहायसे आज मैं आपकी सभामें बोल रहा हूँ और जो बोलता हूँ, उसका आपलोग आदरके साथ उत्तम गौरव करते हैं, अतएव आपससरीखे अधिकारी श्रोतृ-समुदायमें मेरा प्रवेश होकर गीतार्थवर्णन करनेका मुझे लाभ प्राप्त हुअ है ॥ ६६ ॥ और आप लोगोंने कृपाकर जो अपने चरणका आश्रय दिया है, उससे तो मुझे इस कठिनमार्गमें भी कोई चिन्ता नहीं विदित होती ॥ ६७ ॥ हे प्रभुओ ! ऐसा कभी संभवनीय भी है, कि सरस्वतीके पेटसे भूलकर भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



गूँगा बालक उत्पन्न हो जाय ? अथवा लक्ष्मीजीको भी सामुद्रिक लक्षणोंमें कभी न्यूनता हो सकती है ? ॥६८॥ उसी प्रकार आप संतोंके आश्रयमें आने-पर अज्ञानके नामकी वार्ता भी कहां हो सकती है ? इस लिये मुझे विश्वास है कि, मैं अपने निरूपणमें नवरसोंकी संतत वर्षा ही करता रहूँगा ॥ ६९ ॥ ज्ञानदेव कहते हैं, मैं अब बहुत नहीं कहता, आपलोग कृपा कर, मुझे अवसर दीजिये कि, मैं गीताग्रंथका भलीभाँति स्पष्टतया विवरण करना शुरू कर दूँगा ॥ ११७० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः
भाषानुवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## चतुर्दशोऽध्यायः १४.

हे आचार्यदेव, हे सकल-देवोंमें श्रेष्ठ, हे बुद्धिरूपी प्रभातके सूर्य, हे सुखोदयोत्पादक ! आपका जयजयकार हो ॥ १ ॥ संपूर्णोंके विश्रान्तिस्थान आप हैं, सोहंऽभाव–आत्मभावनाका साक्षात्कार आपही कर देते हैं और नानालोकरूपी लहरियोंके समुद्र आप ही हैं, आपका जयजयकार हो ॥ २ ॥ हे दुःखितोंके बांधव, हे शाश्वतदयाके सागर, हे शुद्ध-आत्मविद्याके प्रियपति, हे श्रीगुरुमहाराज ! सुनिये ॥ ३ ॥ आप जिन्हें दृष्टिगोचर नहीं होते, उन्हें यह विश्व दिखा देते हैं और जिन्हें प्रकट दिखाई देते हैं, उन्हें तो यह नामरूपात्मक वस्तुजात आपरूप (स्वस्वरूप) ही कर देते हैं ! ॥ ४ ॥ अजी दूसरोंकी नजर बन्द कर चुरानेका नाम नजरबन्दी है, परन्तु आपकी चतुराई तो दुनियासे निराली ही प्रतीत होती है, कारण आप तो अपनेको ही चुराते हुए अप्रकट रहते हैं ! ॥ ५ ॥ हे गुरुराज ! आपही इस विश्वमें सर्वत्र भरे हैं और आपही इसके सर्वस्व हैं, ऐसा है तो भी, आप किसीको तो आत्मज्ञानका बोध देते हो और किसीको मायामें ही फँसा रखते हो ! इस प्रकार अपनी इच्छासे जो लीला-नाटक कर रहे हैं, उन सद्गुरुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ हमारी बुद्धिमें यह जँच रहा है कि, विश्वमें जिसे आप ( जल ) कहते हैं, उसमें जो मधुरता है वह आपके ही कारण उसे प्राप्त हुई है। और पृथ्वीमें जो सहनशीलता ( क्षमा ) है, वह भी आपके कारण ही उसे प्राप्त हुई है ॥७॥ सूर्य, चन्द्रमा आदि शुक्तियां जो त्रिभुवनोंमें प्रकाशित हो रही हैं, वे आपकी प्रभाक तेजसे ही द्युतिमान् हैं ॥ ८ ॥ वायुकी जो चंचलता है, हे देव ! वह भी आपके ही दिव्य सामर्थ्यसे उसे प्राप्त हुई है, और आकाश भी आपहीमें रहा हुआ लुकालुकी ( छिपाछिपी ) का खेल करता रहता है ॥ ९ ॥ किंबहुना, इस संपूर्ण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मायाका ज्ञान आपहीके कारण होता है. और आपका वर्णन करनेमें वेद भी थक रहे हैं ॥ १० ॥ वेद तो आपका वर्णन करते हैं, परन्तु कबतक ? जबतक कि आपके स्वरूपका दर्शन न हुआ हो ! और जब वे आपके स्वरूपको प्राप्त होते हैं ( दर्शन होता है ) तो, वे और हम दोनों मौनव्रतधारी बनकर एक ही पंक्तिमें बैठजाते हैं ! ॥ ११ ॥ महाप्रलयकालीन सागरोंसे सर्वत्र जलमय होनेपर जहां मेघोंका भी पता नहीं लगता, फिर महानदियोंकी वहां वार्ता भी कहांसे हो ? ॥ १२ ॥ अथवा सूर्यके उदय होनेपर जैसे चन्द्रमा खद्योतसा दिखाई देता है, वही स्थिति—गति वेदोंकी और हमारी आपके स्वरूपप्राप्तिमें हो जाती है ॥ १३ ॥ फिर जहां द्वैतका ठाँव ही मिटजाता है और परा-वाणीके साथ वैखरीका भी जहाँ लोप हो जाता है, वहां आपके स्वरूपका वर्णन हम किस मुखसे कर सकते हैं ? ॥ १४ ॥ अत एव आपकी स्तुतिका मार्ग छोड, निःशब्दताका स्वीकार करके, आपके चरणोंमें मस्तक नवाना, यही भला है ! ॥ १५ ॥ इस लिये, हे गुरुराज ! आप जिस स्वरूपके हों उसी स्वरूपको मैं नमस्कार करता हूँ और ऐसी प्रार्थना करता हूँ कि, मेरा ग्रन्थ-रचनेका व्यापार सफल होनेके कार्यमें आप मेरे साहूकार बनें ॥ १६ ॥ और अब आप अपनी कृपारूपी पूँजी खोलकर, मेरी बुद्धिरूपी थैलीमें उसे भर दें और मेरा काव्य ज्ञानसे भरा हुआ हो जाय, इस प्रकारका बडा लाभ मुझे प्राप्त करा दें ॥१७॥ इस प्रकारकी आपकी कृपा होनपर, मेरा व्यापार ठीक रीतिसे चल जायगा, जिससे मैं सन्तजनोंके कानोंमें विवेकरूपी उत्तम लक्षणान्वित कर्णभूषण पहनाऊँगा ॥ १८ ॥ हे श्रोताओ ! गीतार्थरूपी गुप्तनिधिको दृष्टिगोचर करनेके लिये, आप कृपारूपी दिव्याञ्जन मेरे नेत्रोंमें डालनेकी दया करिये ॥ १९ ॥ और अपने दयारूपी देदीप्यमान सूर्यमण्डलका ऐसा उदय कीजिये, कि मेरे बुद्धि-रूपी-नेत्र संपूर्ण वाङ्मयसंपत्तिको एकसाथही देख सकें ॥ २० ॥ हे स्नेही-जनोंके शिरोमणिओ ! मेरी बुद्धिरूपी विशाल बेलोंके लिये आप ऐसे वसंत-ऋतु बन जायें, जिससे कि वे काव्यरूपी फलोंसे सदा झुकती रहें ॥ २१ ॥ हे उदाराग्रणियो ! आप अपनी उदारतारूपी दृष्टिकी ऐसी वर्षा करिये, जिससे कि, मेरी बुद्धिरूपी गंगानदीमें तत्त्वसिद्धान्तोंकी बाढसे उफान आजाय ॥२२॥ हे विश्वैकधाम श्रीगुरुराज ! आपका अनुग्रहरूपी चंद्रमा मेरी काव्यस्फूर्तिमें पूर्णमासीका लाभ करदे, ॥ २३ ॥ जिस पूर्णमासीको देखतेही मेरे ज्ञान-सागरमें नवरसोंकी ऐसी उच्छृंखलता उत्पन्न होजाय जो कि स्फूर्तिमेंसे भी बाहर बहने लगे ॥ २४ ॥ इसपर श्रीगुरुराजने संतुष्ट होकर कहा—तुम स्तुति



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तथा विनतीके मिससे एकप्रकार द्वैतकी रचना ही कर रहे हो, पर हमें संतोष है ॥ २५ ॥ अब यह वृथा स्तुति यहां ही समाप्त कर दो, तथा ज्ञान-सुगंधसे भरा हुआ ग्रंथार्थ-निरूपण प्रकट करनेमें अब विलंब मत करो, जिससे कि हमारी उत्कण्ठा अखण्डित बनी बनायी ही रहजाय ॥२६॥ ( इस सद्गुरुवचनको सुनकर ) ज्ञानदेवने कहा, अच्छा, महाराज ! मैं तो इस वचनकीही प्रतीक्षा कर रहा था, कि 'तुम ग्रंथार्थका आरंभ करो' इसप्रकारका वचनामृत आपके श्रीमुखसे कब सुनूँगा ॥ २७ ॥ दूबका अंकुर तो स्वभावतः ही अमर रहता है, तिसपर भी अमृतकी वर्षा हो, वैसा ही यह प्रकार है ॥ २८ ॥ अतएव आपके कृपाप्रसादसे ही अब विस्तारके साथ और स्पष्टतया गीताशास्त्रके मूलपदोंका विवेचन कर देता हूँ ॥ २९ ॥ परन्तु, जिससे मेरे अन्तःकरणमें संदेहरूपी नौका डूब जाय और सुननेपर अधिक श्रवण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हो, ॥ ३० ॥ इस प्रकारकी मधुरता गुरुकृपाके घरकी भिक्षासे मेरी वाणीमें उत्पन्न होजावे यही मेरी इच्छा है ॥ ३१ ॥ अस्तु, पिछले तेरहवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे यह बात कही थी कि, ॥३२॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञसे यह जगत् उत्पन्न होता है और गुणोंका संग प्राप्त होनेसे आत्मा संसारी बनजाता है ॥३३॥ और प्रकृतिके पकडमें आजानेसे मायोपाधिके कारण ही सुख-दुःख भोगता है, अन्यथा गुणातीत होनेसे वह केवल कैवल्यस्वरूप हो रहता है ॥ ३४ ॥ तब, उस असङ्ग आत्माको सङ्ग कैसे लगजाता है ? क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्रकृति और पुरुषका मेल कैसे हो जाता है, और उस क्षेत्रज्ञको सुख-दुःखादि भोग कैसे होते हैं ? ॥ ३५ ॥ गुणोंका स्वरूप क्या है और वे कितने हैं, तथा वे बन्धनकारक कैसे होजाते हैं ? और गुणातीतोंके लक्षण क्या हैं ? ॥ ३६ ॥ इन सब प्रश्नोंका निर्णय करना, इस चौदहवें अध्यायका विषय है ॥ ३७ ॥ अतः इस विषयमें श्रीवैकुण्ठपति श्रीकृष्णका अभिप्राय क्या है; उसका उपक्रम करते हैं, आप ध्यान-पूर्वक सुनिये ॥३८॥ भगवान् कहते हैं, हे महामति पार्थ ! इस ज्ञानके विजय पानेमें अवधानरूपी सब सेना इकट्ठी करके लडना होगा ॥ ३९ ॥ इस ज्ञानका बोध, हमने तुम्हें पीछे अनेक युक्ति-वादोंसे करादिया है, तथापि अभीतक तुम्हारे अन्तःकरणमें चाहे जैसा अनुभव प्रकट नहीं होता ॥ ४० ॥

**श्रीभगवानुवाच।**

**परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।**
**यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अतएव वही ज्ञान, जिसका कि, वेद सबके 'परे' कहते हुए डंका बजा रहे हैं, हम तुम्हें फिरसे बता देते हैं ॥४१॥ विचारकर देखाजाय तो यह सब ज्ञान अपना ही है, परन्तु हमने अपनी ही इच्छासे भव (संसार) तथा स्वर्गादि लोकोंविषे जो जान बूझकर प्रीतिकी भावना कर रखी, इसीलिये वह 'परे' है मानना पडता है ॥४२॥ और इसी कारण हम भी इसे 'परे' अर्थात् सब ज्ञानोंमें उत्तम कहते हैं, कारण दूसरे-दूसरे ज्ञान तृणके समान हैं और यह ज्ञान उन तृणोंको जलानेवाली अग्नि है ॥ ४३ ॥ जिन ज्ञानोंसे संसार ( मृत्युलोक ) और स्वर्ग सत्य माने जाते हैं, जिनसे यज्ञकर्मकी ही बडाई की जाती है और भेदभावोंके कारण जिनकी परखाईमें द्वैत ही सत्य सिद्ध हो जाता है ॥४४॥ हे पार्थ ! वे सब ज्ञान इस ज्ञानके सामने स्वप्नवत् मिथ्या हो जाते हैं। जिस प्रकार वायुकी लहरें आखिर आकाशमें लीन हो जाती हैं, ॥ ४५ ॥ अथवा सूर्योदय होते ही चन्द्र इत्यादि तारे जैसे निस्तेज होजाते हैं, किंवा प्रलयकालके जलका विस्तार होनेपर जैसे नद-नदियां उसमें लुप्त हो जाती हैं, ॥ ४६ ॥ उसी प्रकार इस ज्ञानका उदय होते ही इतर सब ज्ञान विलीन हो जाते हैं । इसी कारण हे धनञ्जय ! यह ज्ञान सब ज्ञानोंमें उत्तम है, ऐसा निश्चित समझो ॥ ४७ ॥ हे पाण्डुपुत्र अर्जुन ! अपनी जो अनादि और स्वयंसिद्ध मुक्तिस्थिति ( मोक्ष ) है, वह मोक्ष अपने हाथ आ जाता है, ॥ ४८ ॥ ऐसे ज्ञानका अनुभव प्राप्त होनेपर विचारवान् शूर-पुरुष इस जन्म-मृत्युरूपी संसारको सिर ऊपर उठाने नहीं देते ॥ ४९ ॥ विवेकसे मनके द्वारा ही मनका नियमन कर जिन्होंने स्वाभाविक विश्रान्ति प्राप्त की है, ऐसे पुरुष यद्यपि देहधारी हों तथापि वास्तवमें वे देहाभिमानी नहीं रहते ॥ ५० ॥ फिर वे देहरूपी अर्गलापरसे कूदते हुए समानताकी योग्यतामें एकदम मेरी बराबरीके ही होते हैं ॥ ५१ ॥

इदं ज्ञानमुपश्रुत्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! वे पुरुष मेरी नित्यतासे नित्य होते हैं और मेरी परिपूर्णतासे पूर्णत्वको पाते हैं ॥ ५२ ॥ और मैं जैसा अनन्त और नित्यानन्दरूप हूँ, और म जैसा सत्यसिद्ध हूँ, वैस ही वे भी हो रहते हैं । मेरेमें और उन पुरुषोंमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं रहता ॥ ॥ ५३ ॥ मैं जितना और जैसा होता हूँ, वे भी उतने और वैसे ही हो रहते हैं । घटके फूटनेपर जैसे उसका आकाश आकाश ही हो जाता है ( आकाशतत्त्वमें लीन होता है ) अथवा दीपककी अनेक ज्योतियें मूल-दीपकमें मिल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जानेसे जैसी लीन होजाती हैं, ॥५४॥५५॥ तद्वत् ही हे पार्थ ! उन पुरुषोंका द्वैतका आवागमनमार्ग बंद होजाता है और ' हम-तुम ' इत्यादि भेदभाव नष्ट होनेसे उनके लिये नाम और अर्थ मिले हुए वे एकही पंक्तिमें आ बैठते हैं ॥५६॥ इसी कारण, जब मूलसृष्टिकी उत्पत्ति होती है, तब भी उन्हें उसमें उत्पन्न होना नहीं पडता ॥ ५७ ॥ फिर, जब आदिसृष्टिकी रचनामें ही जिन्हें देहबद्ध होना नहीं पडता, तो प्रलयकालमें नाश होनेकी संभावना ही कैसे हो सकती है ? ॥५८॥ अत एव हे पार्थ ! इस ज्ञानका जो लोग अनुसरण करते हैं, वे जन्म-मृत्युरूपी परंपराके पार होते हुए मद्रूप हो जाते हैं ॥ ५९ ॥ इस प्रकार अर्जुनकी ज्ञानमें प्रीति बढानेके लिये श्रीकृष्णने उस ज्ञानकी महिमाका बहुत ही प्रेमसे वर्णन किया ॥६०॥ परन्तु, इधर अर्जुनकी स्थिति कोई और प्रकारकी ही हुई, उसके रोम-राममें मानो अवधानके कान उत्पन्न होगये और एकाग्रतासे उसका अन्तःकरण ज्ञानमय ही होगया ॥६१॥ अतएव भगवान् भी प्रेमसे ऐसे गद्गद होगये कि, जिनका निरूपण करनेका आनंद आकाशमें भी न समासका ॥ ६२ ॥ तब देवने अर्जुनसे कहा—हे प्रज्ञानन्दमूर्ति अर्जुन ! मेरा वक्तृत्व आज सफल होगया, कारण मेरी वाणीको सँभालसके, इस प्रकारका श्रोता आज मुझे तुमही मिले ! ॥ ६३ ॥ हे पार्थ ! तुम जान सकते हो कि, मैं निःसंग एक हूँ, परन्तु ये त्रिगुणरूपी शिकारिये मुझे अनेक देहरूपी पाशोंमें कैसे बाँधते हैं, ॥ ६४ ॥ और क्षेत्र-मायाके संगसे मैं ये अनेक जगत् कैसे निर्माण करता हूँ, इस विषयका निरूपण करता हूँ, तुम ध्यानके साथ सुनो ॥ ६५ ॥ प्रकृति-मायाको क्षेत्र नाम इस कारण दिया जाता है कि, वह मेरे संग-रूपी-बीजसे प्राणिमात्ररूपी खेत पकाती है ॥ ६६ ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

इस प्रकृति-मायाका और एक ' महद्ब्रह्म ' यह भी नाम है । इसका कारण यह है कि, ' महत् ' आदि जो जो तत्त्व हैं, उन सबका यह प्रकृति विश्रान्ति-स्थान है ॥६७॥ और हे पार्थ ! इस प्रकृतिके कारण विकारोंको बडा सामर्थ्य चढता है, इस लिये भी इसे महद्ब्रह्म कहा जाता है ॥ ६८ ॥ अव्यक्तमतानुयायी इसीको ' अव्यक्त ' कहते हैं और सांख्यमतानुवादियोंकी जो ' प्रकृति ' है वह भी यही है ॥ ६९ ॥ हे प्राज्ञ ! वेदान्ती लोग इसको ' माया ' कहते हैं, हे बुद्धिमान् पार्थ ! ऐसे इसके नामाभिधान व्यर्थ कहांतक कहें ? यही अज्ञान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


है, ऐसा तुम निश्चित जानो ॥ ७० ॥ हे पार्थ ! निजको निजस्वरूपकी जो विस्मृति हुई है, वही इस 'अज्ञानका' स्वरूप समझो ॥७१॥ एक बात इसके अतिरिक्त यह भी है कि, जैसे दीपकके लगानेपर अँधेरा दीखता नहीं, तद्वत् आत्मज्ञानका विचार स्फुरण होने लगते ही यह 'अज्ञान' दिखाई नहीं देता ॥ ७२ ॥ दूध की जमी हुई मलाई जैसे दूधके हिलनेपर नष्ट होती है, परन्तु उसको स्थिर रखनेपर फिर जमती है ॥ ७३ ॥ अथवा जिसमें जागृति नहीं, स्वप्न नहीं, अगर आत्मस्वरूपसमाधि भी नहीं, ऐसी जो गाढ-निद्राकी अवस्था रहती है ॥ ७४ ॥ किंवा वायुकी सञ्चरणस्थिति बन्द रहनेपर आकाश जैसा अकेला ही रीता रहता दीखता है, उसी प्रकारकी अवस्था निश्चयसे इस अज्ञानकी होती है ॥ ७५ ॥ किसी समय तो ऐसी अवस्था होती है कि, आगे कुछ दीखता है, परन्तु क्या वह खम्भा है या मनुष्य है, इस बातका सच्चा निश्चय ही नहीं होता, तथापि कुछ भी है, ऐसी भावना तो जरूर होती है ॥७६॥ उसीप्रकार ब्रह्मवस्तुका यथार्थ ज्ञान तो होता ही नहीं, परन्तु जो दूसरी वस्तु दिखाई देती है, उसका भी सच्चा स्वरूप निश्चित विदित नहीं होता ॥ ७७ ॥ अथवा न ठीक रात है न दिन है, ऐसे बीचके कालको जैसे सन्ध्या कहा जाता है, उसी प्रकार जब न विपरीतज्ञान होता है और न आत्मज्ञान होता है ॥ ७८ ॥ ऐसी जो विपरीतज्ञान और सत्यज्ञानके बीचवाली एक-दशा है, उसे ही 'अज्ञान' कहा जाता है और वह अज्ञान जिस चैतन्यवस्तु ( आत्म-तत्त्व ) को आवरण होता रहता है, उसीको 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है ॥७९॥ अज्ञानकी प्रतिष्ठा बढाते जाना और आत्मस्वरूपको भूलते रहना ही क्षेत्रज्ञका विशिष्ट लक्षण है ॥ ८० ॥ हे पार्थ ! प्रकृति-पुरुष किंवा क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका जो योग कहा जाता है वह यही है । अतः उसे अच्छी तरह समझ रखो । यह योग मायाका स्वाभाविक धर्म है ॥ ८१ ॥ इस अज्ञानका अनुसरण करता हुआ आत्मा भूलसे आत्मस्वरूपको देखनेमें अज्ञानी जैसे बना हुआ न जाने कौन-कौनसे अनेक रूप धारण करने लगा हो ॥८२॥ जैसे कोई भिखारी पागल बन-कर कहने लगता है, 'अरे जा, मैं ही राजा हूँ' । अथवा कोई मूर्च्छित हुआ मनुष्य सावधान होकर 'मैं स्वर्गलोकको जा आया' कहता है ॥ ८३ ॥ उसी प्रकार आत्मदृष्टि भ्रमित हो जानेसे जो-जो कुछ दिखाई दे, वह सब सृष्टि ही कहलाती है, और उसे मैं ( आत्मतत्त्व) ही उत्पन्न करता हूँ ॥ ८४॥ जैसे स्वप्नमें मोहवश-मनुष्य अकेला रहनेपर, अपनेको ही 'मैं बहुतेरों समेत हूँ' समझता है, वही हाल जीवात्माका आत्मस्वरूपकी विस्मृति होजानेसे होता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


है ॥ ८५ ॥ अब यही निश्चित और निःशंक सिद्धान्त हम आगे स्पष्टतया और विस्तारसे वर्णन करेंगे । तथापि तुम अपनी जागृति रखता हुआ अनुभव लेते रहो ॥८६॥ अरे! यह मेरी 'अविद्या' नाम कान्ता गृहिणी है, अनादि है, सदैव तारुण्यवती और अवर्णनीयगुणवाली है ॥ ८७ ॥ इसका 'नहीं' अर्थात् अभाव ही रूप है, इसका आकार अनुपम बडा है और सोये ( अज्ञानियों ) के पास यह रहती है और जाग्रतों ( ज्ञानियों ) से भागजाती है अथवा दूर रहती है ॥ ८८ ॥ स्वयं मेरे सोनेपर यह जागती रहती है और मेरी आत्म-सत्ताके साथ सम्भोग करती हुई गर्भिणी होजाती है ॥ ८९ ॥ फिर यह प्रकृति अपने महद्ब्रह्मरूपी पेटमें आठों विकारोंद्वारा गर्भकी वृद्धि करती है ॥ ९० ॥ इस प्रकृति-पुरुषके संयोगसे प्रथम बुद्धितत्त्व उत्पन्न होता है और बुद्धितत्त्वसे परिपूर्ण भरा हुआ मन जन्म धारण करता है ॥ ९१ ॥ मनकी स्त्री जो ममता वह अहंकार-तत्त्व उत्पन्न करती है, और अहंकारसे ये महाभूत उत्पन्न होते हैं ॥ ९२ ॥ और भूतोंका यह स्वभावही बना रहता है कि, इन्द्रियें और विषयोंसे अपना परस्पर सम्बन्ध बना रखना । अतएव उन भूतोंके साथ ही विषय और इन्द्रियें भी उत्पन्न होती हैं ॥ ९३ ॥ इसप्रकार विकारोंका क्षोभ होतेही उसी क्षण गुणत्रय प्रकट होता है और वासनारूपी-गर्भसे हिलचल करने लगता है ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार जलका संयोग होनेपर भावी वृक्षके आकारको बीजकणिका अपने मनमें नियत करती है, ॥९५॥ तद्वत् ही, यह अविद्या—मूलमाया—मेरा संग होते ही, स्वयं आपही नानारूपात्मक जगत्के अंकुर धारण करने लगती है ॥ ९६ ॥ फिर हे सुजनश्रेष्ठ पार्थ! उस गर्भगोलकको आकार कैसा आता है, उसका वर्णन करता हूँ, तुम श्रवण करो ॥ ९७ ॥ उसमें अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज इस प्रकारके चार अवयव फूटते हैं ॥ ९८ ॥ आकाश और वायुके योगसे गर्भरसकी वृद्धि होनेपर अण्डज-अवयव उत्पन्न होता है ॥९९॥ पेट (अन्तःकरण) में रजोगुण तथा तमोगुण होनेसे जल और अग्निकी अधिकतासे तेजके साथ जलतत्त्व उछलता है और उससे स्वेदज-अवयव उत्पन्न होता है ॥ १०० ॥ फिर आप(जल) और पृथ्वीतत्त्वके अधिकांशसे और निकृष्टदर्जेके केवल तमोगुणसे स्थावर-वर्ग उत्पन्न होता है, उसीको उद्भिज्ज अवयव समझा जाता है ॥ १ ॥ और पाँच ज्ञानेन्द्रियोंको जब पाँच कर्मेन्द्रियोंकी सहायता और मन बुद्धिकी सिद्धता प्राप्त होजाती है, तब जरायुज अवयव उत्पन्न होता है ॥ २ ॥ इस प्रकारके ये चारों विभाग जिसके कर और चरण हैं और स्थूल अष्टधा-प्रकृति जिसका मस्तक है, ॥ ३ ॥ प्रवृत्ति जिसका बडा भारी तुंदिल पेट है तथा निवृत्ति जिसकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सरलतामें पीठ है और जिसके नाभिके ऊपरी भागमें आठ प्रकारके देवसर्ग हैं, ॥४॥ आह्लादकारक स्वर्ग जिसका कण्ठप्रदेश है, मृत्युलोक जिसका मध्य-भाग है और अधोदेश ( पाताल ) जिसका सुन्दर नितम्बभाग है, ॥ ५ ॥ इस प्रकारका एक सुन्दर और अनोखा पुत्र इस माथासे उत्पन्न हुआ। जिसके बाल्यत्वकी पुष्टिमें इन तीनों लोकोंका विस्तार ही आवश्यकीय वस्तु कारण होती है ॥ ६ ॥ चौरासी लक्ष योनियें इस बालककी अंगुलियोंकी गाँठें ( संधियें ) हैं। इस प्रकारका यह बालक दिनोंदिन शीघ्रतासे बढता जाता है ॥ ७ ॥ तब यह माया उसके अंग और अवयवोंमें नानाप्रकारके नामरूपात्मक अलंकार पहनाती हुई उसे नित्य नया अज्ञानरूपी दूध पिलाकर बढा देती है ॥ ८ ॥ उस बालकके हाथकी जो अँगुलियां हैं, वे ही भिन्न-भिन्न सृष्टियां समझो और भिन्न-भिन्न देहोंके जो अभिमान हैं, वे उसकी अँगुलियोंमें पहिनी हुई अँगुठियां हैं ॥ ९ ॥ इस प्रकार एकही एक सब चराचररूपी सुन्दर और अनुपम बालकको उत्पन्न कर वह प्रकृति-माया अपनेको कृतकृत्य समझती हुई प्रतिष्ठित बन रही है ॥ ११० ॥ इस बालकका प्रभातकाल ब्रह्मा है, माध्याह्न-काल विष्णु और सायंकाल शंकर है ॥ ११ ॥ यह बालक अपना खेल खेलते-खेलते महाप्रलयरूपी शय्यापर स्वस्थतासे सोजाता है, और फिर नये कल्पके उदयारंभमें विपरीतज्ञान ( अज्ञानमोह ) के कारण जागृत होजाता है ॥१२॥ हे पार्थ ! इस प्रकार यह बालक मिथ्यादृष्टिसे एकके पीछे एक, इस क्रमसे युगपरंपराके पग डालता हुआ क्रीडा करता रहता है ॥ १३ ॥ संकल्प जिसका इष्ट मित्र है, अहंकार इसका खेलका साथी है और सत्यज्ञानसेही इस बालकका अन्त होता है ॥१४॥ अस्तु, बहुत वर्णन करना ठीक नहीं। इस प्रकार माया इस विश्वको उत्पन्न करती है और मेरी सत्ताही उसके कार्यमें सहकारिणी होती है ॥ १५ ॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्ममहद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

इस कारण, हे पाण्डव पार्थ ! मैं पिता हूँ और माया माता है और यह भासमान सब जगत् हमारा पुत्र है ॥ १६ ॥ अब इस जगत्में जो भिन्न-भिन्न अनेक देह हैं, उन्हें देखकर तुम अपने चित्तमें भेदभाव मत रखो, कारण जगत्में मन, बुद्धि इत्यादि सब प्राणिगण एकरूप ही हैं ॥१७॥ देखो अर्जुन ! एकही देहमें क्या अवयव जुदे-जुदे नहीं होते हैं ? उसी प्रकार नानारूपाकार विचित्र विश्व होनेसे भी मूलतः वह एकही है ॥ १८ ॥ अर्जी !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


छोटी-बडी या ऊँची-नीची अथवा सरल-टेढी डालियें भिन्न-भिन्न होनेपर भी वे जैसी एक ही बीजकी रहती हैं, ॥ १९ ॥ और हमारा संबंध तो यहां ऐसा है कि, जिसप्रकार मिट्टीसे बना हुआ घट, मिट्टीका पुत्र हो, अथवा तंतुओंसे बना हुआ पट ( वस्त्र ) कपासका नाती हो, ॥ १२० ॥ अथवा तरंगोंकी परम्परा ही समुद्रकी संतति होती है, तद्वत् ही हमारा और इस चराचर विश्वका सम्बन्ध है ऐसा समझो ॥ २१ ॥ अत एव अग्नि और ज्योति ये दोनों जैसे केवल अग्नि ही हैं, तद्वत् यह सब मैं ही हूँ और मेरेसे भिन्न जगत्की मिथ्या कल्पना करना ही अज्ञान है ॥ २२ ॥ परन्तु यदि ऐसी शंका उपस्थित की जाय, कि जगत्की उत्पत्ति होनेपर मेरे स्वरूपका लोप होता होगा, तो फिर जगत्को प्रकाशित कौन करता होगा ? तो क्या प्रकाशित होनेसे स्वयं माणिक नष्ट होजाता है ? ॥ २३ ॥ सुवर्णका अलंकार बनगया हो, तो क्या उसका मूलसुवर्णत्व नष्ट हो जाता है ? अथवा कमल विकसित होनेपर क्या उसे कुछ दूसरा पुष्प कहा जायगा ? अथवा क्या उसका कमलत्व नष्ट हो जाता है ? ॥ २४ ॥ हे धनञ्जय ! तुम ही कहो भला, कि अवयवी—अवयवधारणकरनेवाला—मनुष्य क्या अवयवोंसे आच्छादित होता है ? किंवा क्या उसका स्वरूप ही अवयव हैं ? ॥२५॥ यह देखो, ज्वार जोरसे ऊगनेपर जो उसमें भुट्टे आते हैं, क्या उनस बीजोंकी न्यूनता होता है या वृद्धि ? ॥ २६ ॥ अत एव जगत्को जुदा करक यदि कोई मुझे देखनेकी इच्छा करे, तो उसे मैं नहीं दिखाई दूँगा; क्योंकि, यह संपूर्ण जगत् ही मैं हूँ, अथवा मेरा रूप है ॥ २७ ॥ हे वीर पार्थ ! तुम इस सत्य और निश्चित सिद्धान्तकी अपने अन्तःकरणमें गाँठ बाँध रखो ॥ २८ ॥ अब मैंने ही निजको भिन्न—भिन्न शरीरोंमें प्रकट किया है, ऐसा जो भासमान होता है, इसका कारण मैंने ही गुणत्रय निर्माण किया और मैं ही उनके बन्धनमें आ रहा हूँ ॥ २९ ॥ हे कपिध्वज ! जैसे कोई स्वप्नमें स्वयं उठकर अपना मरण-दुःख भोगता है, ॥ १३० ॥ अथवा पीलिया-रोगसे पीडित-मनुष्यकी आँखें जैसी पीली होती हैं और दूसरी वस्तुएँ भी उन आँखोंसे पीली ही दिखाई देती हैं, ॥३१॥ किंवा सूर्यप्रकाश होते ही मेघ दृश्यमान हो जाता है, और सूर्यका मेघाच्छन्नसे जो लोप हो रहता है वह भी सूर्यप्रकाशसे ही ज्ञात हो जाता है, ॥ ३२ ॥ अथवा अपने शरीरसे उत्पन्न हुई अपनी ही छायाको देखकर यदि कोई भयभीत हो जाय, तो क्या उस छायासे वह भिन्न रहता है ? ॥ ३३ ॥ उसी प्रकार मैं इन अनेक शरीरोंको प्रकट कर भेदभावको प्राप्त हो जाता हूँ और वहां जो एक सम्बंध है, उसे भी मैं ही देखता हूँ ॥ ३४ ॥ अतः संबंध

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



रहनेपर भी उसके बंधनमें न आना यही मेरा ज्ञान-होना समझना चाहिये। वह बन्ध वास्तवमें मेरा ज्ञान न होनेसे ही उत्पन्न हो जाता है ॥ ३५ ॥ अतएव हे अर्जुनदेव! मैं किस गुणसे, किस प्रकारसे निजको बद्ध समझता हुआ भासमान हो जाता हूँ, उसे श्रवण करो ॥ ३६ ॥ तथा गुण कितने हैं, उनके लक्षण क्या हैं, उनके नाम-रूप कैसे हैं और वे कब उत्पन्न होते हैं, यह सर्व रहस्य तुम्हें कथन करता हूँ, सावधानतासे सुनो ॥ ३७ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

ये गुण सत्त्व, रज, तम इन नामोंसे तीन हैं और प्रकृति-माया उनकी जन्मभूमि है ॥ ३८ ॥ इनमें सत्त्वगुण उत्तम है, रजोगुण मध्यम और तमोगुण स्वभावसे ही तीनोंमें कनिष्ठ वा अधम है ॥ ३९ ॥ ये तीनों गुण एक ही वृत्तिमें दिखाई दे सकते हैं। जैसे एकही देहमें बालत्व, तारुण्य और वार्धक्य ये तीनों अवस्थायें देखी जाती हैं ॥ १४० ॥ अथवा उत्तम-सुवर्णमें हीन-सुवर्ण ज्यों-ज्यों अधिकाधिक मिलाया जाय त्यों-त्यों जैसी उसकी तौल अधिक बढ जाती है, वैसे ही उसका कस भी उतरते-उतरते पन्द्रहका पांचपर आ जाता है ॥ ४१ ॥ किंवा आलसी बन जागृति ( ज्ञान ) से वञ्चित होनेपर जैसी निद्रा घर कर बैठती है, ॥ ४२ ॥ उसी प्रकार अज्ञानको दृढालिंगन देती हुई जो कोई भी वृत्ति विस्तरित हो उठती है वह सत्त्व और रजके साथ साथ मिलती है और फिर तमोरूप हो जाती है ॥ ४३ ॥ हे पार्थ! इन्हें गुण कहा जाता है। अब ये बन्धक कैसे होते हैं उनके लक्षण कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ४४ ॥ यह आत्मा क्षेत्रज्ञ-दशामें ( जीवात्मस्वरूपसे शरीरमें ) थोडा सा ही प्रवेश करता है कि उसी क्षण 'यह शरीरही मैं हूँ' इसप्रकार कहने का मुहूर्त्त करने लगता है ॥ ४५ ॥ फिर जन्मसे लेकर मरणतकके सर्व देहाभिमानको अपनेमें लपेटता हुआ जबतक देहधर्मके उपभोग भी न ले लिये हों, तबतक यही कल्पना करता है कि 'मैं देहरूप ही हूँ' और मछलीके मुँहमें बन्सीका आमिष पडता ही हो, कि इतनेमें जैसे जलपारधी बन्सीको खींच लेता है, ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ ६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


—उसी प्रकार यह सत्त्वरूपी व्याधा सुख और ज्ञानके पाशोंसे इस जीवात्माको खींचता है । फिर वह जीवात्मा जालमें पडे हुए हरिण जैसा तडफडाता रहता है ॥ ४८ ॥ ज्ञानाभिमानसे बक-बक करता हुआ, ज्ञातृत्वरूपी लात मारकर हाथमें आया हुआ आत्मसुख मानो जानबूझकर अजानकी नाईं गुमा देता है ! ॥ ४९॥ ऐसी स्थितिमें यदि कोई उसकी विद्वत्ताका सम्मान करे, तो वह बडा सुखी होता है, तथा यत्किंचित् लाभ होनेपर उसे बडा आनंद होता है, और वह अपनेको यह जानकर कि 'मैं सर्वोत्कृष्ट सुखसे परिपूर्ण हूँ' समझता हुआ, घमंडी बनता है ॥ १५० ॥ वह कहता है "यह मेरा कैसा बडा भाग्य है, आज मेरे समान दूसरा कौन सुखी है ?" ऐसा कहते-कहते वह अष्टसात्त्विक भावोंके गर्वसे फूलजाता है ॥ ५१ ॥ यह गाडी यहां ही थम्भती नहीं, किन्तु उसको और एक दूसराही बंधन आ घेरता है । उसके शरीरमें विद्वत्तारूपी भूतका संचार होजाता है ॥ ५२ ॥ और वह इस बातका तनिक भी स्मरण नहीं करता कि, मैं मूलका ज्ञानस्वरूप हूँ, वह मेरा स्वरूप कहां नष्ट होगया हो, इसका उसे किंचित् भी दुःख नहीं होता, कारण वह विषय-ज्ञानगर्वसे फूला हुआ ऐसा बढजाता है जो आकाशमें समा नहीं जाता ! ॥ ५३ ॥ जसे कोई राजा स्वप्नमें दरिद्री बनकर भीख माँगे और दो दाने मिलते ही गर्वसे कहदेवे कि 'क्या मैं इन्द्रके समान भाग्यवान् नहीं ?' ॥ ५४ ॥ वही प्रकार हे पाण्डुसुत, अर्जुन ! निराकार केवलात्माका देहवान् जीवात्मा होतेही बाह्य-ज्ञानके कारण होने लगता है ॥ ५५ ॥ प्रवृत्तिशास्त्र ( व्यवहार मार्ग ) में वह निपुण रहता है, यज्ञविद्या अच्छी तरह जानता है, इतना ही नहीं, बरन् उसे स्वर्गका भी ज्ञान रहता है, ॥ ५६ ॥ और अभिमानपूर्वक कहता है कि, 'मेरी बराबरी करे, ऐसा कोई भी ज्ञानी नहीं है,' जैसे चंद्रमा आकाशमें विलसित होता है, वैसे ही मेरे चित्तमें चातुर्य विलसित होता है, ॥ ५७ ॥ इसप्रकार सत्त्वगुण जीवको सुख और ज्ञानकी नाथें ( डोरियें ) लगाकर, खेंचता हुआ लूले नंदी बैलके समान उसकी दुर्दशा बना देता है ॥ ५८ ॥ अब यही आत्मा रजोगुणसे शरीरधारी होनेपर कैसा बाँधा जाता है, उसका वर्णन तुम सुनो ॥ ५९ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७ ॥

इसे 'रज' कहनेका कारण यही है कि, वह जीवात्माका रंजन करता है । वह अभिलाषा ( विषयवासना ) से सदैव तरुण रहता है ॥ १६० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


यह रजोगुण ज्योंही जीवात्मामें थोडासा प्रवेश प्राप्त करलेता है, त्योंही उसे विषयेच्छा उत्पन्न होती है। और वह तृष्णारूपी वायुपर आरूढ होजाता है ॥ ६१ ॥ फिर उसकी इच्छा ऐसी अमर्याद बढ जाती है कि, घीसे सींचा हुआ प्रखर अग्निका प्रज्वलित कुण्ड भी उसके सामने अल्पसा ही दिखायी देगा ॥ ६२ ॥ इसप्रकारकी उसकी विषयेच्छा निरंतर बढती ही रहती है। दुःखमिश्रित विषय ही उसे मधुर लगते हैं और यदि इन्द्रपद का वैभव प्राप्त होजाय तो भी उसकी इच्छा-तृप्ति नहीं होती! किन्तु उसे वह थोडा ही मालूम होता है ॥ ६३ ॥ और जब वह तृष्णा अत्यंत ही प्रबल होती है, तब मेरु पर्वत भी हाथ आजाय, तो भी उससे कोई अधिक दारुण वस्तु प्राप्त होनेकी इच्छासे वह साहसी बन जाता है ॥ ६४ ॥ वह कौडी कौडीके प्राप्त करनेमें अपने जीवनको भी कौडी-समान समझता हुआ एक तृणके तिनकाके लाभसे भी अपनेको कृतकृत्य मानता है ॥ ६५ ॥ वह इस विचारमें चिन्तामग्न होजाता है कि, आज जो पास द्रव्य है, उसे यदि खर्च करलूं तो कल कैसा होगा ? इस आशासे बडे बडे उद्यम करनेमें कम्मर कस तैयार होजाता है ॥ ६६ ॥ वह कहता है, स्वर्गको जाना उचित है, परन्तु वहां जानेपर खानेको क्या मिलेगा ? अतएव उसकी भावी व्यवस्थार्थ यज्ञकर्म करनेकी इच्छा करता है ॥ ६७ ॥ फिर व्रतकरनेका मार्ग स्वीकारता हुआ, एकसे एक बढकर व्रत करता है, और लोकोपयोगी कार्य भी करने लगता है, परन्तु यज्ञ आदि कार्य करते समय मनमें कामनाका संकल्प रखेबिना वह किसी काममें हाथ नहीं लगाता! ॥ ६८ ॥ हे अर्जुन! जैसी ग्रीष्म ऋतुकी वायु विश्रान्ति लेना नहीं जानती, वैसे ही यह रजोगुणी जीवात्मा दिन-रातको न जानता हुआ विषय-व्यापारमें निमग्न हो रहता है ॥ ६९ ॥ उसके व्यवसायके सामने जलकी मछलियोंकी चंचलता या कामियोंके चंचल कटाक्ष भी फीके पडते हैं! और तो क्या ? परन्तु विद्युत्की चपलता भी वासनासे व्याप्त हुए उस जीवात्माके व्यवसायकी अस्थिरतामें हार मानती है ॥ १७० ॥ इसप्रकार अविश्रान्त उद्योग करता हुआ स्वर्ग और मृत्युलोकके विषयसुखोंकी आशासे क्रियारूपी अग्निमें वह प्रवेश करता रहता है ॥ ७१ ॥ इसप्रकार यह देहधारी जीवात्मा वास्तवमें देहातीत होनेपर भी, देहमें प्रवेश कर तृष्णारूपी शृंखलाओंसे अपना ही गला बाँधता हुआ, अनेक कष्टदायक व्यवसायोंका बोझा अपने पीछे लगा लेता है! ॥ ७२ ॥ हे पार्थ! इसप्रकार देहधारी जीवात्माको इस देहमें रजोगुणका भयंकर बंधन प्राप्त होता है। अब तमोगुणका बंधन-सामर्थ्य श्रवण करो ॥ ७३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

जिसका परदा आँखमें आजानेके कारण व्यवहारकी दृष्टि भी मन्द हो जाती है, मोहरूपी अंधेरी रात्रिको जो काले मेघके समान है, ॥ ७४ ॥ जिसपर अज्ञानके जीवनकी निर्भरता लगी रहती है, और जिसके भुलानेपर सब जगत् उन्मत्त हो नाचने लगता है ॥ ७५ ॥ जो अविचार-मन्त्रका मूलस्थान है, मूर्खतारूपी मदिराका प्याला है, हे पार्थ ! अधिक कहांतक कहा जाय, जीवोंके लिये जो मोहनास्त्र बन रहा है ॥ ७६ ॥ हे अर्जुन ! वही तम है । यह अपने चातुर्यसे देहको ही आत्मा माननेवालोंको उपर्युक्त लक्षणों द्वारा चारों तरफसे कसकर बाँध लेता है ॥ ७७ ॥ यद्यपि यह अकेला ही है तथापि सारे संसारमें ऐसा भरा रहता है कि, जिसके अतिरिक्त चराचरमें कोई वस्तु नहीं रहती ॥ ७८ ॥ इसका प्रभाव ऐसा है कि मनुष्यकी सब इन्द्रियें इसके कारण जडत्वको प्राप्त होती हैं, मनमें मूढता आती है और आलसको पुष्टता प्राप्त होती है ॥ ७९ ॥ फिर वह जीव अंगको मरोडता रहता है, उसे काम करनेकी इच्छा नहीं रहती और केवल जमुहाइयोंका ही वह वासस्थान हो जाता है ॥ १८० ॥ हे पार्थ ! उस मनुष्यकी आँखें खुली रहनेपर भी वह कुछ देख नहीं सकता ! और किसीके न पुकारने पर भी भ्रमिष्ठवत् 'हाँ' कहकर उठता है ॥ ८१ ॥ बडा भारी पत्थर गिरनेपर जैसे वह इधर-उधर हिलना नहीं जानता स्थिर रहता है, वैसे ही एकबार तंद्राका आगमन होते ही यह मनुष्य जो गिरता है सो करवट बदलना भी नहीं जानता ॥ ८२ ॥ चाहे पृथ्वी गिरकर नीचे पातालमें चली जाय अथवा आकाश ऊपरमें आ गिरे, परन्तु यह सोया हुआ जीव उठनेकी इच्छातक नहीं करता ॥ ८३ ॥ मनमाना आरामसे एकबार सो जानेपर उसके मनमें उचित क्या और अनुचित क्या ? इसका स्मरण भी नहीं होता, जहाँ लेट रहता है, वहां लेट रहना ही आनन्दकी बात उसकी बुद्धिमें आती है ॥ ८४ ॥ किसी समय हाथ उठाकर उसपर गालको रख देता है अथवा पैरोंमें ही मस्तक घुसडकर बैठ जाता है ! ॥ ८५ ॥ और निद्राका ऐसा अभिलाषी बनता ह, कि, जहां कहीं सोता है, तो वहां स्वर्गसुखको ही प्राप्त हुआ समझता है ॥ ८६ ॥ अपनेको ब्रह्मदेवकेसा आयुष्यलाभ हो, और वह सब निद्रामें ही जाय ! इसके अतिरिक्त उसे कुछ इच्छा ही नहीं रहती ॥ ८७ ॥ किसी समय रास्ता चलते-चलते यदि विश्रांति लेनेके लिये कहीं थम जाय, तो ऊँघने लगता है और उसे ऐसी नींद आजाती है कि, उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



समय यदि कोई अमृत ला दे, तो निंदकके सामने उसे तुच्छ मानता हुआ उसका तिरस्कार करता है ॥ ८८ ॥ यदि जबर्दस्ती कोई काम करना अवश्य ही होय तो क्रोधसे किया हुआ वह काम अन्धके किये हुए कामसरीखा ज्ञान-शून्य अर्थात् निकम्मा ही होता है ॥ ८९ ॥ फिर किस समय कैसा वर्ताव करना चाहिये, किसके साथ कैसी बात-चीत करनी चाहिये, तथा यह बात साध्य है वा असाध्य; इत्यादि व्यवहार तो वह जानता ही नहीं ॥ १९० ॥ जिस प्रकार पतंग अपने पंखोंसे संपूर्ण प्रज्वलित दावाग्निको बुझानेकी इच्छासे उसमें जा गिरता है, ॥ ९१ ॥ तद्वत् वह साहसमें प्रवृत्त होता हुआ निषद्ध-कर्म करनेकाही ढाढस करता है । उसका अधिक क्या वर्णन किया जाय ? वह प्रमादी होनेसे अविचारके कार्योंमें ही सदैव उसकी अभिरुचि रहती है ॥ ९२ ॥ तात्पर्य, यह तमोगुण मूलतः शुद्ध और निरुपाधि, निराकार आत्माको निद्रा, आलस्य और प्रमाद ( अविचार ) रूपी तीन बन्धनोंसे बाँधता है ॥ ९३ ॥ जिस प्रकार अग्नि काष्ठमें प्रविष्ट होते ही वह काष्ठाकार दिखाई देती है, अथवा घटमें स्थित आकाश घटसे परिच्छिन्न होनेसे जैसे घटा-काश कहा जाता है, ॥ ९४ ॥ किंवा भरे हुए सरोवरमें जैसे चंद्रबिंब प्रति-बिम्बित हुआ दिखाई देता है, तद्वत् इन गुणोंके आभाससे आत्मा बँधा हुआसा दिखाई देता है ॥ ९५ ॥

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्त्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥
रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

जिस समय कफ और वातको दुर्बल कर शरीरमें पित्त प्रबल हो जाता है, और तब जैसे वह शरीरको सन्तप्त कर देता है, ॥९६॥ किंवा वर्षाकाल और ग्रीष्मकालको पराजित कर, शीतकाल आजानेपर जैसे संपूर्ण आकाशमें शीतका संचार हो रहता है, ॥ ९७ ॥ अथवा स्वप्न और जागृतावस्थाका लोप होकर केवल सुषुप्ति ही बाकी रहती है, तब जैसे क्षणभर चित्तवृत्ति सुषुप्तिमय ही होजाती है, ॥ ९८ ॥ उसी प्रकार जब सत्त्वगुण प्रबल होकर रज और तमको पराजित करता हुआ अपनी प्रतिष्ठा बढाता है, तब जीवसे कहता है कि, ' मैं कैसा सुखी हूँ ' ॥ ९९ ॥ उसी प्रकार सत्त्व और रजको जीतकर जब तम अपना महत्त्व बढाता है, तब उसके स्वभावानुसार असावधानताके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कारण जीवसे प्रमादके ही कार्य होते हैं ॥२००॥ इसी रीतिसे जब सत्त्व और तमको गिलंकृत करता हुआ रजोगुण बढजाता है, ॥ १ ॥ तब देहका स्वामी जीवात्मा कर्मसे अतिरिक्त अन्य कुछ भी सुखदायक नहीं मानता ॥ २ ॥ इस प्रकार गुणत्रयोंका विषय इन तीन श्लोकोंमें वर्णन किया गया है । अब सत्त्वादि तीन गुणोंकी वृद्धि कैसी होजाती है, उसके लक्षणोंका निरूपण करता हूँ, तुम सुनो ॥ ३ ॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥
यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदाँल्लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

रज और तमको जीतनेपर बढे हुए सत्त्वगुणकी अबाधित सत्ता जब शरीर-पर चलती है, तब ये लक्षण प्रकट होते हैं,– ॥ ४ ॥ वसंतऋतुमें जैसे कमलों-की सुगंध उसमें न समा सकनेके कारण बाहर चहुँ ओर फैलजाती है, तद्वत् सत्त्वगुणाश्रित मनुष्यका ज्ञान अन्तःकरणमें न समासकनेसे बाहर फैल जाता है ॥ ५ ॥ संपूर्ण इन्द्रियोंके घरमें उसका विवेक पहरा देता रहता है और उसके हाथ-पावोंमें भी आंखें ( ज्ञान ) होती हैं, यह भी सत्य समझनेमें दोष नहीं होगा ॥ ६ ॥ राजहंसकी चोंच लगते ही जैसे दूध कौनसा और पानी कौनसा, इस बातका झगडा मिटजाता है, ॥ ७ ॥ उसी प्रकार उसकी इन्द्रियें ही योग्या-योग्य, पापपुण्य आदिकी पारख कर निर्णय करती हैं । और सियम ( इन्द्रिय-निग्रह ) तो, उसकी सेवाके मिससे उसक आश्रित बन जाते हैं ॥ ८ ॥ जो सुननेके योग्य न हो, उसपर उसके श्रवणेन्द्रिय बहिष्कार डालते हैं, जो देखने योग्य न हो, उसे उसकी दृष्टि छोड देती है और जो उच्चारने योग्य न हो, उसके लिये उसकी जिह्वा मूक बनती हुई बोलना टालती है ॥ ९ ॥ दीपज्यो-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तिके आगेसे जैसा अँधेरा भाग जाता है, उसी प्रकार निषिद्ध-कर्म उसकी इन्द्रियोंके सामने खडे ही नहीं हो सकते ॥ २१० ॥ वर्षाऋतुमें जैसी महानदी बाढ आनेपर इधर-उधर प्रसृत होती है, तद्वत् उसकी बुद्धि सपूर्ण शास्त्रोंमें पारगामी हुई संचार करती है ॥ ११ ॥ पौर्णमासीके दिन चंद्रप्रभा जैसी आकाशमें जोरसे फैलती रहती है, उसी प्रकार उसकी वृत्ति ज्ञान-मार्गोंमें सर्वत्र विकसित होती रहती है ॥ १२ ॥ उसकी वासनायें एकत्र संकुचित होजाती हैं, प्रवृतियें पीछे लौटने लगती हैं और मनको विषयोंसे घृणा आती है ॥ १३ ॥ तात्पर्य, सत्त्वगुणकी वृद्धि होनेपर उपर्युक्त सब लक्षण दिखायी देते हैं। और ऐसी स्थितिमें यदि देहपात होजाय, ॥ १४ ॥ तो धन-धान्यका सुकाल हो और घरमें उत्तम पकान्न बनगये हों, ऐसे समयमें स्वर्गसुखभोगी कोई प्रेमपात्र पाहुना आजाय तो जैसा आनंद होता है, वैसा ही आनंद उसे होजाता है ॥ १५ ॥ जैसी घरमें सम्पत्ति है वैसी ही अन्तः-करणमें उदारता और धर्मश्रद्धा हो, तो ऐहिक कीर्ति और परलोक-प्राप्ति ये दोनों लाभ क्यों न प्राप्त होंगे ? ॥ १६ ॥ हे पार्थ ! उस सत्त्वगुणी अनुपम पुरुषकी सर्वोत्तम योग्यता होनेके कारण, उसका सत्त्वसम्पन्न शुद्ध देह, दूसरी गतिको क्यों जायगा ? ॥१७॥ कारण, इस भोग भोगनेमें समर्थ शरीरका त्याग कर, सत्त्वगुणसे सात्त्विकभाव-सम्पन्न हो जो जीवात्मा शुद्ध सत्त्वको साथमें ले, बाहर निकलता है, ॥ १८ ॥ वह ऐसी सत्त्वसंपन्नस्थितिमेंसे देहको छोड जो एकदम जाता है, सो फिर केवल सत्त्वकी मूर्ति ही बनजाता है, किंबहुना वह ज्ञानिजनोंमें ही जन्म पाता है ॥ १९ ॥ हे धनुर्धर ! तुम कहो, कि राजा यदि ऐश्वर्यके साथ कहीं पर्वतपर भी जा खडा हो, तो क्या उसमें कोई न्यूनता आसकती है ? ॥२२०॥ अथवा हे अर्जुन ! ऐसा भी कहीं सम्भवता है कि, इस गाँवके दीपकको कारणवश यदि कोई पडोसके गाँवमें ले जाय, तो क्या वहां वह दीपक नहीं कहावेगा ? ॥ २१ ॥ उसीप्रकार वह शुद्ध-सत्त्ववृद्धि अपने ज्ञानकी अपार-वृद्धि करती हुई बुद्धिको विचार-समुद्रमें तैराने लगती है, ॥ २२ ॥ फिर महदादि संपूर्ण तत्त्वोंकी परिपाटीका यथायोग्य विचार कर, अन्तमें विवेकके साथ वह आत्मस्वरूपमें लीन होती हुई, समरस होजाती है ॥ २३ ॥ जो छत्तीस तत्त्वोंके परेका सैंतीसवाँ तत्त्व है, ( पिछले अ० १३, श्लो० ५।६ ) किंवा सांख्यमतानुसार चौवीस तत्त्वोंके परेका पचीसवाँ तत्त्व है, और जो गुणत्रय, देहत्रय, अवस्थात्रयके परेका स्वभावतःही चौथा है, ॥ २४ ॥ ऐसा शुद्ध-तत्त्व अर्थात् सर्वरूपब्रह्म वह जिसे प्राप्त हो रहा है, उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सर्वोत्तमके सामर्थ्यपर ज्ञानके द्वारा ऐसा देह प्राप्त होजाता है कि, जिसे दुनियामें कोई उपमा ही नहीं ॥ २५ ॥ इसी प्रकार, जब तम और सत्त्वगुणको अधोमुख करता हुआ रजोगुण स्वयं प्रभावशाली बनता है, ॥२६॥ और शरीररूपी-ग्राममें अपने कार्योंकी धूम मचा देता है, उस समय उसके जो लक्षण रहते हैं, वे इसप्रकारके हैं, ॥ २७ ॥ झंझावातकी आंधी आनेपर जैसी वह अनेक वस्तुएँ एकत्र करती हुई ऊपर उडती है, उसी प्रकार रजका आवेश, इन्द्रियोंको विषयोंमें प्रवृत्त करनेमें मुक्तद्वार होजाता है ॥ २८ ॥ परस्त्रीमें कामेच्छाकी दृष्टि रखना वह नीतिके विरुद्ध हो,ऐसा नहीं मानता, किंतु बकरीके मुँहकी तरह इन्द्रियोंको चाहे जहां अनिर्बन्ध चरने देता है ॥ २९ ॥ उसकी विषयलालसा ऐसी प्रबलतर बढजाती है कि, जो वस्तु उससे नहीं उठायी जाती स्यायद वही उससे बचती हो ॥ २३० ॥ और उसके सामने कैसा भी टेढा-बेढा कार्य आजाय तो उसमें प्रवृत्त होता हुआ हे पार्थ ! उसे किये बिना वह अपना हाथ उससे नहीं निकालना चाहता ॥ ३१ ॥ वह किसी किसी समय तो ऐसी दुर्घट घटनायें करनेका विलक्षण विचार करता है कि,मैं राजप्रासाद बनवाऊँ या अश्वमेध करूं ॥३२॥ तथा कोई नगर बसाना, तालाब खोदना और अनेक प्रकारके सुंदर-सुंदर बडे बगीचे लगाना, ॥ ३३ ॥ इत्यादि प्रकारके महान् कार्योंका वह आरंभ करता है, परन्तु इह-लोककी तथा परलोककी उसकी सुखलालसा कभी भी पूरी नहीं होती ॥ ३४ ॥ वह ऐसा प्रचंड लोभी और सुखाभिलाषी बनता है कि, सागरकी विस्तीर्णता या अगाधता उसके सामने हार खाती स्तब्ध होजाती है और अग्निकी दाहक-शक्ति उसके आगे तीन कौडीकी भी प्रतिष्ठा नहीं पा सकती ॥ ३५ ॥ उसकी भोगलालसा मनके आगे आशारूपी दौड दौडती है और वह संपूर्ण विश्वको इच्छाकी तृप्तिके हेतु पावोंतले लाता हुआ घूमता रहता है ॥ ३६ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार रजोगुणकी वृद्धि होनेसे ये लक्षण प्रकट दिखाई देते हैं । और ऐसे लक्षणयुक्त समाजकी व्यवस्थामें यदि प्राणोत्क्रमण हो जाय, ॥ ३७ ॥ तो वह मनुष्य इस लक्षणपरिवार समेत ही अन्य देहमें प्रविष्ट हो जाता है, परन्तु उसे मनुष्य-योनि ही प्राप्त होजाती है ॥ ३८ ॥ तथापि, यदि कोई भिखारी किसी सर्व सुखसम्पन्न राजमंदिरमें जा बैठे, तो क्या वह राजा बन जायगा ? ॥ ३९ ॥ जैसे बैलको चाहे जैसे श्रीमानकी बरातमें लेजाने-पर भी, खानेके लिये सूखी घास ही मिलती है, ॥ ४० ॥ तद्वत् उस रजो-गुणी मनुष्यको उन्हींके सहवासका लाभ हो जाता है कि, जिन्हें व्यापार करते

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



करते रात-दिन क्षणभरकी भी विश्रान्ति नहीं प्राप्त होती ! ॥ ४१ ॥ सारांश, जो मनुष्य रजोगुणीवृत्तिमें डूबा हुआ रहते ही मृत्युको प्राप्त होता है, वह जड-कर्मोंमें श्रद्धावानोंके कुलमें ही जन्म धारण करता है ॥ ४२ ॥ अब, रज और सत्त्वको पराजित कर, जब सत्तमोगुण बढा-चढा उन्नत हो जाता है, ॥ ४३ ॥ तब उस अवस्थामें देहके जो अन्तर्बाह्य लक्षण प्रकट होते हैं उन्हें निवेदन करता हूँ, हे पार्थ ! तुम अपने श्रवणेंद्रियोंको सचेत रखो ॥ ४४ ॥ उस तमोगुणकी वृद्धि होते ही मन ऐसा हो जाता है, जैसे अमावास्याकी रात्रिमें चंद्र और सूर्यसे विहीन आकाश होता है ॥ ४५ ॥ उसी प्रकार उसका अन्तःकरण भी मन्द, शून्य और सदैव उदासीनतासे भरा रहता है। उसके अन्तःकरणमें विचारके लिये जगह ही नहीं रहती ! ॥ ४६ ॥ बुद्धिकी मृदुता ऐसी नष्ट हो जाती है, जो पत्थरकी भी बराबरी नहीं कर सकती और स्मरण-शक्ति तो अन्तःकरण छोड देशान्तर ही करती है ॥ ४७ ॥ अविवेककी उन्मत्तताका सर्वशरीरभरमें साम्राज्य बढजाता है और केवल मूर्खता ही उसे आलिंगन देती हुई सहकारिणी बनती है ॥४८॥ सदाचारभङ्ग उसकी इन्द्रियोंके सामने हाथ-जोड खडा रहता है, जिससे उस यद्यपि मरण-प्राय यातनायें भोगनी पडती हैं, तथापि वह अनाचारकी क्रियाओंसे कभी पराङ्मुख नहीं होता ! ॥ ४९ ॥ उसपर भी उसकी बुद्धिका एक विलक्षण प्रकार ऐसा रहता है कि, जैसे घुग्घूको अंधेरेमें दिखाई देता है, तद्वत् उस तामसी जीवकी चित्त-दृष्टि दुष्कर्मोंमें ही विशेषतासे उल्लसित रहती है ॥ २५० ॥ उसमें दूसरी यह भी एक विलक्षणता रहती है कि, उसका चित्त यदि किसी भी निषिद्ध-वस्तुकी इच्छा करे, तो उसकी प्राप्तिमें इंद्रियें विना रोक टोकके दौडती हैं ॥५१॥ ऐसा यह तामसी जीव विना मदिरापान किये ही झोंके खाता रहता है, वह सन्निपात हुए विना ही बकबक करता है और प्रेमका संबंध न होते भी मोहसे प्रेममें भूला हुआ पागलसा बना रहता है ॥ ५२ ॥ इसका चित्त तो ठिकानेपर नहीं रहता, परन्तु वह उसकी उन्मनी अवस्था नहीं; वह केवल मोहकी उन्मत्ततासे पछाडागया होता है ॥ ५३ ॥ सारांश इसका यही समझो कि, पार्थ ! जब तमोगुण अपने परिवारके साथ प्रबल बनजाता है, तब ये सर्व लक्षण स्पष्टतया प्रकट दिखाई देते हैं ॥ ५४ ॥ और ऐसी स्थितिमें यदि वह तमोगुणप्रधान जीव मृत होजाय, तो वह अपने तमोगुणके परिवारका बोझा साथमें ले, उस देहसे निकलनेपर फिर तमोगुणमें ही प्रवेश पाता है ॥ ५५ ॥ देखो पार्थ ! राई अपना राइत्व बीजमें रखकर, सूखती हुई मरजाती है, परन्तु


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वह बीज जब ऊगता है, तो क्या सिवाय राईके वहां दूसरी कोई वस्तु उत्पन्न होसकती है ? ॥ ५६ ॥ जिस अग्निपर दीपककी ज्योति सुलगाई गयी है, शायद वह अग्नि बूझ जाय, तो जिससे वह ज्योति सुलगाई और वह जबतक प्रकाशती है, तबतक मूल-अग्निका स्वरूप उसमें रहता ही है ॥ ५७ ॥ इसी न्यायसे तमोगुणको संकल्पकी पोटलीमें बाँधकर जब देहका त्याग किया जाता है, तब वह जीव तामस-शरीरको ही प्राप्त होजाता है ॥ ५८ ॥ हे पार्थ ! अब और विस्तार बढानेमें क्या अर्थ है ? यह समझो कि जो कोई तमोगुणकी वृद्धिमें मृत्यु पाता है, वह पशुकी, पक्षीकी, अथवा वृक्ष या कीटककी योनिको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

इसी कारण, जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न होता है, वही पुण्य कहा जाता है। वेदोंका भी यही मत है ॥ २६० ॥ अतः उस निर्मल सत्त्वगुणमें स्वाभाविक ही सुख और ज्ञानके जो अपूर्व फल आते हैं वे सात्त्विक फल कहे जाते हैं ॥ ६१ ॥ रजोगुणकी क्रियायें कटु इन्द्रायणके फलकी तरह बाहरसे तो खूब सुन्दर सुखकारी दिखाई देती हैं, परन्तु परिणाममें उस फलकी तरह कटु, दुःखदायी ही प्रतीत होती हैं ॥ ६२ ॥ अथवा निमकौडियोंकी फसल जैसी ऊपरसे तो सुन्दर दिखाई देती है, परन्तु अन्दर विषके समानही रहती है, तद्वत् ही राजस क्रियाओंके सब फल कटुही रहते हैं ॥ ६३ ॥ और जैसे विषांकुरोंसे विष ही उत्पन्न होता है, उसी प्रकार जितने कुछ तमोगुणके कर्म हैं, उनसे केवल अज्ञान-रूपी दुःखद फल ही उत्पन्न होते हैं ॥ ६४ ॥

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

इसलिये हे अर्जुन ! दिनमानमें जैसा सूर्य कारण होजाता है, वैसा ज्ञान-प्राप्तिमें भी सत्त्वगुण ही हेतु है ॥ ६५ ॥ और अपना ( आत्माका ) विस्मरण जैसे द्वैतका हेतु है, उसीप्रकार रजोगुण लोभका कारण होता है ॥ ६६ ॥ उसीप्रकार हे प्राज्ञ अर्जुन ! मोह, अज्ञान और प्रमाद इन एकत्र हुए दोष-समूहोंका तमोगुण ही निरन्तर कारण होजाता है ॥ ६७ ॥ हाथके तलुएपर रखा हुआ आंवला जिसप्रकार स्पष्ट दिखाई देता है, तद्वत् इन तीन गुणोंके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भिन्न-भिन्न लक्षण तुम्हारी विवेक-दृष्टिमें स्पष्टतया दिखायी दें, ऐसा हमने स्पष्ट वर्णन किया ॥ ६८ ॥ अब तुम्हें ज्ञात होगया होगा कि, रज और तमकी वृद्धि होनेपर मनुष्यका अधःपात होता है और सत्त्वके आधिक्य बिना मनुष्य ज्ञानके पथपर नहीं जा सकता ॥ ६९ ॥ अतएव जैसे ज्ञानीलोग सर्वस्वका त्याग करते हुए चौथी भक्ति ( संन्यासभक्ति ) का स्वीकार करते हैं, तद्वत् कितनेही भक्त संपूर्ण जन्मभर सात्त्विकवृत्ति रखनेका ही व्रत आचरण करते हैं ॥ २७० ॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥

उसी प्रकार जो निरन्तर सात्त्विक वृत्तिसे ही सर्व व्यवहार करते रहते हैं, देहपातके अनंतर वे स्वर्ग लाभ प्राप्त करते हैं ॥ ७१ ॥ तथा जो रजोगुणमें जीवित रहकर उसीमें ही मृत्यु पाते हैं, वे मृत्युलोकमें मनुष्ययोनिमें जन्म धारण करते हैं ॥ ७२ ॥ वहां उन्हें एक ही देहरूपी थालीमें सुखदुःखरूपी मिश्रित खिचडी खानी आवश्यक होता है, और उनके मार्गमें टेढी पडी हुई मृत्यु कभी नहीं हटती अर्थात् निरंतर सुख दुःख मिश्रित रहते हैं और उन्हें मृत्यु कभी छोडती नहीं ॥ ७३ ॥ और जो केवल तममें ही बढते हैं तथा जो तममें ही भोग-क्षम देहको छोड जाते हैं, उन्हें नरक-भूमिकी सनद ( वृत्ति-पत्र ) मिलती है ॥ ७४ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार ब्रह्मवस्तुकी सत्तासे ये तीनों गुण संपूर्ण जगत्के लिये कैसे कारण होते हैं, यह स्पष्ट कर, तुम्हें बता दिया॥७५॥ विचार करनेपर यही प्रतीत होगा कि, ब्रह्म-वस्तुमें कुछ भी भेद नहीं होता किन्तु वह वस्तुही अपनेको गुणरूप समझती हुई उस-उस प्रसंगमें उन-उन गुणोंके कार्यका अनुसरण करती है॥७६॥ जैसे कोई पुरुष स्वप्नमें राजा बनता है, और शत्रुसे युद्ध कर, जय-पराजय भोगता है परन्तु ये सब क्रियायें जैसे वह अपना आप ही होता रहता है, ॥ ७७ ॥ उसी प्रकार उत्तम ( स्वर्ग ), मध्यम ( मृत्यु ) तथा अधम ( नरक ) ये जो गुणोंकी वृत्तिके भेद हैं वे केवल दिखावटी ही हैं। इस दृष्टिको छोडकर, वास्तविक विचारदृष्टिसे देखनेपर ज्ञात होगा कि केवल शुद्ध ब्रह्मवस्तु ही है ॥ ७८ ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



परन्तु यह विस्तार यहां ही रहने दो । तथापि हे पार्थ ! यह कभी भी मत भूलो कि, ब्रह्मके अतिरिक्त कोई भी दूसरी वस्तु नहीं । एकबार पीछे जो हमने एक बात कही थी, उसे फिर सुनाता हूँ, श्रवण करो ॥ ७९ ॥ तुम यह पक्का निश्चय कर, समझ रखो कि, ये तीनों गुण ब्रह्मसत्ता द्वारा देहके मिससे स्वाभाविक ही उत्पन्न होजाते हैं ॥ २८० ॥ अग्नि जैसी इंधनमें प्रविष्ट होतेही इंधनाकार दिखाई देती है अथवा संपूर्ण वृक्षोंके रूपसें जैसा पृथ्वीगत रस साकारताको प्राप्त होता दिखाई देता है ॥ ८१ ॥ किंवा दहीके रूपमें जैसा दूधका रूपान्तर हुआ देखा जाता है अथवा मधुरता जैसी इक्षुरूपसे मूर्तिमती होजाती है; ॥ ८२ ॥ उसी प्रकार ये तीनों गुण, अन्तःकरणसहित देहरूप होजाते हैं और इसी कारण वे बन्धनके हेतु होजाते हैं ॥ ८३ ॥ तथापि हे धनुर्धर ! इसमें एक यह बडा आश्चर्य है कि, यह जो देह और गुणत्रयका उलट-पलट हो, मिश्रण हो रहता है, वह जीवात्माके मोक्षमार्गकी स्वतंत्रतामें कोई विघ्न उपस्थित नहीं कर सकता ॥ ८४ ॥ ये तीनों गुण अपने अपने धर्मानुसार देहके संचित या क्रियमाणकर्म करते रहते हुए ज्ञानियोंकी गुणातीततामें किसीप्रकारकी कमीको नहीं होने देते ॥ ८५ ॥ एवंच इस रीतिसे भी जो सहज हीमें मुक्तिलाभ होजाता है, उस विषयका वर्णन अब हम तुम्हें सुनाना चाहते हैं । कारण, तुम ज्ञानरूपी कमलमें रममाण होनेवाले रसिक भ्रमर हो ॥ ८६ ॥ हे पार्थ ! पीछे ( अ. १३ श्लो. २४ में ) जो हमने तुम्हें एक सिद्धान्त-रहस्य कथन कर दिया है, कि गुणोंमें जो चैतन्य है, वह यद्यपि उनमें रहता है, तथापि वह गुणोंके समान नहीं होता है । यह बात भी उसी प्रकारकी है ॥ ८७ ॥ हे पार्थ ! जीवको आत्म-बोधका ज्ञान होनेपर यह गुणयुक्त संसार ऐसा निःसार दिखाई देता है, जैसे जागृत होनेपर स्वप्नका मिथ्यात्व प्रतीत हो जाता है ॥ ८८ ॥ अथवा तीरपर बैठनेसे हिलती हुई लहरोंके कारण उसमें जो बारबार शरीर हिलता हुआ दिखाई देता है, वास्तवमें वह शरीर न होकर केवल अपना प्रतिबिम्ब ही है, ऐसा ज्ञान होता है, ॥ ८९ ॥ किंवा नटने कैसी भी कुशलतासे अपना वेष बदल दिया हो, तथापि वह स्वयं जैसे उससे फँसता नहीं, तद्वत् ही ज्ञानीजन गुणत्रयमें संमिलित न होकर उदासीनवृत्तिसे केवल साक्षी-रूप हो रहते हैं ॥ २९० ॥ आकाश तीनों ऋतुओंका अंगीकार कर रहता है, परन्तु वह जैसा अपने स्वयंके रूपमें किसीतरहकी भिन्नतामें कुछ कमी नहीं होने देता, ॥ ९१ ॥ उसी प्रकार जो गुणोंमें रहकर भी उनसे परे है, ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जो स्वयं सिद्ध आत्मतत्त्व 'अहं ब्रह्मास्मि' उस, मूल-अहंकारमें जिसके आत्माका अहंकार जा बैठता है, ॥ ९२ ॥ और उस मूलपीठसे ही देखने पर जिसे स्पष्ट दिखाई देता है कि, मैं केवल साक्षी हूँ, मैं स्वयं कुछ भी करनेवाला नहीं हूँ, किन्तु ये गुण ही संपूर्ण कार्योंका विस्तार करते रहते हैं, ॥ ॥ ९३ ॥ सत्त्व, रज, तम इन भिन्न-भिन्न लक्षणोंसे जो यह कर्मका विस्तार हो रहा है, वह इन गुणोंका ही किया हुआ है ॥ ९४ ॥ और इन गुणकर्मोंमें मैं ऐसा हूँ जैसा कि वनकी वनशोभाके लिये वसन्तऋतु कारण हो रहता है, ॥ ॥ ९५ ॥ अथवा तारागणोंका निस्तेज हो, न दिखाई देना; सूर्यकान्तका सतेज हो, प्रकाशित होना; कमलोंका प्रफुल्लित होना, अंधकारका नष्ट हो जाना, ॥ ॥ ९६ ॥ आदि कार्य, जैसे सूर्यके उदयपर निर्भर रहते हुए भी, सूर्य स्वयं उनमेंसे कुछ भी नहीं करता, उसी प्रकार आत्मसत्तासे सब कर्मोंका हेतुभूत हुआ भी मैं सर्वथा अकर्ता ही हूँ, अतएव आत्मसत्तासे देहमें रहने पर भी मुझे कर्मोंसे लेप नहीं लगता ॥ ९७ ॥ मैं ही साक्षीरूप हो गुणोंको प्रकट करता हूँ तथा गुणधर्मोंकी पुष्टता भी मेरेसे ही होजाती है और इन गुणोंका निरास होनेपर, आखिरी जो निर्गुण, शाश्वततत्त्व शेष रहता है वह मैं हूँ ॥ ॥ ९८ ॥ हे बुद्धिमान् पार्थ ! इस प्रकारका विवेक-बुद्धिका जिसके अन्तःकरणमें उदय हो रहा है, उसे ऊर्ध्वमार्गद्वारा गुणातीतता ( गुणोंसे पार जाना ) प्राप्त होजाती है ॥ ९९ ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

फिर गुणातीत जो निर्गुण वस्तु है, उसे वह निश्चित जान लेता है; कारण, ज्ञान अपना वही ब्रह्मरूप होनेका तिलक उसमें लगाये रहता है ॥ ३०० ॥ हे पार्थ ! थोडेमें तुम यही समझो कि, जैसी नदी सागरमें पहुँचते ही सागररूप हो जाती है, वैसे ही वह गुणातीत हुआ ज्ञानी पुरुष उपरोक्त भावसे मेरी सत्ताको प्राप्त कर, मुझमें प्राप्त होजाता है ॥ १ ॥ नलिकायन्त्रके भ्रमणसे छूटा हुआ तोता जैसे स्वतंत्रतापूर्वक वृक्षकी शाखापर जा बैठता है, तद्वत् यह ज्ञानवान् जीव मायासे छूटकर मद्रूपताको प्राप्त हो, मूल-अहंतत्त्वमें जा बैठता हैं ॥ २ ॥ कारण, हे ज्ञानवान् पार्थ ! जो अज्ञानरूपी निद्रामें जोर-जोरसे खर्राटे ले सो रहा था, वह अब आत्मस्वरूपके बोधसे जागृत हो जाता हैं ॥ ३ ॥ किंवा हे वीरश्रेष्ठ अर्जुन ! बुद्धिभेदक मोहरूपी-दर्पण उसके हाथसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



गिर जानेके कारण, अब वह प्रकृतिके मुखका प्रतिविम्बाभास किसी तरह देख ही नहीं सकता ॥ ४ ॥ देहाभिमानरूपीके झंझावातकी चंचलता जब बन्द हो जाती है, तब तरंग और सागरकी एकतासे समान जीव और ईश्वरकी एकता हो जाती है ॥ ५ ॥ इस कारण, हे पार्थ ! वर्षाकालके समाप्त होनेपर सब मेघ जैसे आकाशमें लीन हो जाते हैं, उसीप्रकार वह गुणातीत हुआ मनुष्य ब्रह्मतत्त्व ( मुझ ) में मिला हुआ हो मद्रूप होजाता है ॥ ६ ॥ और मद्रूप होता हुआ वह यदि मृत्युतक देहमें ही वास करता रहता हो, तथापि देहसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंके वश नहीं होता ॥ ७ ॥ जैसा कि काँचके घरमें रख हुए दीपकका प्रकाश रोका नहीं जा सकता, किंवा सागरके जलसे वाडवाग्नि नहीं शान्त की जा सकती ॥ ८ ॥ वैसे ही इन आवागमनकारी गुणोंसे उसका ज्ञानबोध मलिन नहीं होता। आकाशका चन्द्रमा जैसे जलमें प्रतिविम्बित होनेपर भी निर्लेप ही रहता है, वैसाही देहमें रहता हुआ भी वह देहधर्मोंसे निर्लेप रहता है ॥ ९ ॥ तीनों गुण अपने-अपने सामर्थ्यसे देहको भिन्न-भिन्न वेश देते हुए नचाते रहते हैं, परन्तु वह ज्ञानसम्पन्न पुरुष 'अहं ब्रह्मास्मि' इस अहंकारको उनके खेल देखनेके लिये क्षणभरका भी अवसर नहीं देना चाहता ॥ ३१० ॥ उसके अन्तःकरणमें आत्मस्वरूपविषे ऐसा दृढ निश्चय हो रहता है, कि इस शरीरमें क्या क्या होरहा है, इस बातका उसे भान ही नहीं होता ॥ ११ ॥ जिसप्रकार सर्प अपने शरीरकी केंचुलीको छोडकर, एकबार बिलमें घुसजाता हुआ, उस केंचुलीकी रक्षाकी ओर ध्यान भी नहीं देता; तद्वत् ही उस गुणातीत पुरुषकी स्थितिका प्रकार रहता है ॥ १२ ॥ अथवा शुष्क हुए कमलका सब परिमल जैसे आकाशमें विलीन होजाता हुआ, फिर वापिस लौटकर उस कमल-कोशमें किसी प्रकार नहीं आता, ॥ १३ ॥ वही हाल, उस गुणातीत ज्ञानवान् पुरुषका आत्मस्वरूपमें मिलजानेपर होता रहता है; अर्थात् यह देह क्या है ? इसके गुण-धर्म कौनसे हैं ? इत्यादि बातोंका उसे स्मरण ही नहीं रहता ॥१४॥ अतएव जन्म, जरा, मरण आदि जो देहके छः गुण हैं, वे देहमें ही रहते हैं; ज्ञानी जीवको उनका कुछ भी संपर्क नहीं रहता ॥ १५ ॥ घट फूटनेपर उसकी खपरियाँ होतेही जैसे घटपरिच्छिन्न आकाश, स्वभावतः आपही आप महदाकाशही होजाता है; ॥ १६ ॥ उसी प्रकार देहाभिमानबुद्धिका लोप होकर आत्म-स्मृतिका स्मरण होते ही, फिर आत्मस्वरूपके अतिरिक्त क्या वहां कुछ भी रह जा सकता है ? ॥ १७ ॥ इस अत्यंत श्रेष्ठ ज्ञानसे युक्त होकरही वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मनुष्य इस देहमें रहता है, इसलिये हे पार्थ ! मैं उसे 'गुणातीत' कहता हूँ ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णके ऐसे रसभरे और ज्ञानप्रचुर वचनोंको सुनकर, अर्जुनको ऐसा संतोष हुआ, जैसा बिना बुलाये ही मेघोंके आगमनका शब्द सुनकर मयूरोंको होता है ! ॥ १९ ॥

अर्जुन उवाच।

कैर्लिंगैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते ॥ २१ ॥

उस संतोषसे अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे पूँछा—कि हे प्रभो ! जिसे इस प्रकारका ज्ञान हो रहा है, उस पुरुषमें कौनसे लक्षण दिखाई दे रहते हैं ? ॥ ३२० ॥ निर्गुण होकर वह अपने व्यवहार कैसे चलाता है ? वह गुणोंके जालसे कैसा बाहर हो सकता है ? सो हे कृपाके आदिस्थान भगवन् ! मुझे कथन करिये ॥ २१ ॥ तब षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनकी शंकाओंका निवारण हो, इसप्रकार उसके प्रश्नोंका जो उत्तर दिया उसे सुनिये ॥ २२ ॥ भगवान् बोले—हे पार्थ ! मुझे तेरे प्रश्नोंका बडा आश्चर्य विदित होता है, क्या तुम इतनी ही शंका कर रहे हो ? कि उस गुणातीतका आचार कैसा रहता है ? परन्तु वास्तवमें जो आचारवान् है उसे 'गुणातीत' नाम देना अर्थात् गुणोंसे पार गया हुआ कहनाही मिथ्या हो जायगा ? ॥ २३ ॥ कारण, जो गुणातीत होगया वह गुणोंके अधीन कभी नहीं रहता, किंवा यदि वह गुणोंमें व्यापार करता हुआ दिखाई दे, तथापि वह गुणोंके हाथोंमें कभी नहीं आ सकता ॥ २४ ॥ परन्तु गुणोंकी हलचल चालू रहनेपर जब उसमें यह कार्यकरता रहता है, तब उनके अधीन न होना या उनके हाथमें न आना, यह कैसे सम्भवनीय हो सकता है ? ॥ २५ ॥ इस-प्रकारकी शंका यदि तेरे मनमें उपस्थित हो रही हो, तो तुम खुशीसे पूछ सकते हो, और उसका ही हम उत्तर देना चाहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ २६ ॥

श्रीभगवानुवाच।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२ ॥

यद्यपि रजोगुणके सामर्थ्यसे देहमें कर्मके अंकुर उत्पन्न होकर जीवको प्रवृत्ति फँसाले, ॥ २७ ॥ तथापि कर्म सफलताको प्राप्त होनेपर भी जिसे, ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अभिमान नहीं होता कि 'मैं अकेला ही कर्म करनेवाला हूँ' अथवा कर्म यदि निष्फल होगया हो, तो भी जिसकी बुद्धिमें कुछ भी विकार या दुःख नहीं उत्पन्न होता; ॥ २८ ॥ तद्वत् ही जब सत्त्वगुणके सामर्थ्यसे सब इन्द्रियोंमें ज्ञानतेज प्रसरित होजाता है, तब वह ज्ञान विद्याभिमानसे अथवा संतोषसे नहीं फूलता ॥ २९ ॥ अथवा तमोगुणके बढजानेपर वह मोह या भ्रमके अधीन नहीं होता, किंवा न अज्ञानसे मनमें दुःखी होता है या न अज्ञानको वह स्वीकारता है ॥३३०॥ वह मोहप्रसंगमें ज्ञानप्राप्तिकी लालसा नहीं रखता, तथा ज्ञानप्रसंगमें कर्मका अनादर नहीं करता और कर्मके होनेपर भी दुःखी नहीं होता ॥३१॥ जैसे सूर्य प्रातःकाल माध्याह्नकाल या संध्याकाल इसप्रकार कालभेद नहीं करता, उसीप्रकार वह ( गुणातीत ) पुरुष किसी प्रकारका भेद नहीं रखता ॥ ३२ ॥ इस प्रकारके पुरुषको ज्ञानप्राप्तिके लिये क्या किसी दूसरे ज्ञानवान्‌की अपेक्षा करना पडती है ? क्या सागरकी परिपूर्णतामें वर्षाकी आवश्यकताका कारण है ? ॥ ३३ ॥ अथवा यदि वह कर्मका आचरण करे, तथापि क्या उसकी कर्मठता उसमें जान पडती है ? हे पार्थ ! तुमही कहो भला, क्या हिमालय पर्वत कभी शीतसे काँप उठता है ? ॥ ३४ ॥ अथवा मोहप्रसंग प्राप्त होनेपर भी, वह पुरुष क्या ज्ञानसे वंचित होसकेगा ? अजी ! ग्रीष्मकाल कैसा भी महातापदायक बन रहा हो, तो क्या वह कभी प्रज्वलित अग्निको जला सकता है ? ॥ ३५ ॥

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ॥ २३ ॥

अतएव यह गुणागुण-कार्य स्वयं आत्मसत्तात्मक आप ही आप हो रहता है, इस प्रकार समझता हुआ वह उसमें किसी प्रकार की भिन्नता करनेमें प्रवृत्त नहीं होता ॥ ३६ ॥ इस प्रकारका ज्ञानानुभव प्राप्त होनेके कारण वह देहमें इस तरहके आश्रयसे रहता है, जैसे कोई पथिक चलते समय किसी कारणवश बीच ( धर्मशालादि ) में ठहर जाता है ॥ ३७ ॥ जैसी युद्ध-भूमि हार-जीतमें अभिमान नहीं रखती, तद्वत् वह भी लाभ-हानिमें सुख-दुःखका भागीदार नहीं बनता; तथा वह गुणोंमें सम्मिलित नहीं होता या उनसे न कर्म भी करवाता है ॥ ३८ ॥ अथवा वह देहमें ऐसा उदासीन रहता है, जैसे देहमें स्थित प्राण, किंवा घर आया हुआ कोई अतिथि-ब्राह्मण, अगर चौराहेका बिठा हुआ स्तम्भ हो ॥ ३९ ॥ और हे पार्थ ! मृगजलकी हिलचलसे जैसे मेरुपर्वत डिगता नहीं, उसी प्रकार गुणोंके अस्ताव्यस्त आवागमनसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वह ज्ञानी पुरुष घबराकर हिलता नहीं ॥ ३४० ॥ अब अधिक विस्तारसे कहांतक कहा जाय ? देखो पार्थ ! आकाश जैसे वायुसे नहीं उडाया जाता, अथवा अन्धकारसे जैसे सूर्यका ग्रास नहीं किया जा सकता; ॥ ४१ ॥ किंवा जागृतावस्थामें स्थित मनुष्यको जैसे स्वप्न मोहमें नहीं ला सकता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुषको गुण बाँधनेमें नहीं समर्थ हो सकते ॥ ४२ ॥ वह पुरुष गुणोंके पञ्जेमें नहीं आ सकता परन्तु दूरसे उदासीनवत् जब उन्हें आश्चर्यके साथ देखता है, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे नाचनेवाली नाटककी पुतलियां हों और यह देखनेवाला प्रेक्षक हो ॥ ४३ ॥ वह पुरुष सत्त्वगुणसे सात्त्विक शुद्धकर्ममें, रजोगुणसे वैषयिक विषय कर्ममें और तमोगुणसे मोह, अज्ञान आदि कर्मोंमें व्यवहार करता है ॥ ४४ ॥ कारण, वह यह बात स्पष्टतया जानता है कि, इन गुणोंकी क्रियायें उस आत्म-सत्तासे ही चलती हैं, जैसे सूर्य लोगोंके व्यापार-व्यवहारोंको चालू कर देता है, परन्तु स्वयं केवल द्रष्टा साक्षी हो रहता है ॥४५॥ अथवा चंद्रमाके उदय होते ही समुद्र फूलजाता है, सोमकान्तमणि पसीजता है, कुमुदिनियें विकसित हो जाती हैं, परन्तु चंद्र जैसे इनमेंसे एक भी कार्य नहीं करता; ॥ ४६ ॥ किंवा आकाशमें वायु चाहे जोरसे बहती रहे या बन्द होकर स्थिर हो जाय, परन्तु आकाश जैसे निश्चल और अविकृत रहता है, तद्वत् वह ज्ञानी पुरुष इन गुणोंकी चाहे जैसी गडबडी होने पर भी अपनी स्थिरतासे कभी नहीं हटता ॥ ४७ ॥ हे पार्थ ! ऐसे लक्षणयुक्त पुरुषको ही 'गुणातीत' समझना चाहिये, अब, वह पुरुष जैसे आचरणोंको करता रहता है, उन्हें श्रवण करो ॥ ४८ ॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! जैसे वस्त्रमें अन्तर्बाह्य सर्वत्र तंतुओंके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं रहता, तद्वत् इस चराचर विश्वमें मेरे रूपके विना उस ज्ञानी पुरुषको दूसरा कुछ भी दिखाई नहीं देता ॥ ४९ ॥ एवं, जैसे परमेश्वर शत्रु और भक्तोंको एकही समान गति देता है, वैसे ही यह पुरुष सुख और दुःखको एक सरीखा समझता हुआ ही आचरण करता रहता है, ॥३५०॥ वास्तविक विचार करनेपर, सुखदुःखका अनुभव मनुष्यको तभी हो सकता है, जब देहरूपी जलमें जीव मछली बनकर रहता हो ॥ ५१ ॥ परन्तु वह मानी तथा ज्ञानी पुरुष देहाभिमानका त्याग करता हुआ बीजरूप-आत्मस्वरूपमें ही निमग्न रहता है, जैसे कि खेत पकनेपर उसके निःसार भूसेको उडाकरके बीजको ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निकाल लिया जाता है, ॥ ५२ ॥ अथवा प्रवाह छोडकर जैसे गंगानदीका जल समुद्रमें मिलते ही, उसका खलबलाना या टेढा-बेढा होना, एकसाथ बंद हो जाता है, ॥ ५३ ॥ उसी प्रकार हे पार्थ ! जो आत्मस्वरूपमें मिलगया हो, उसक देहमें रहते हुए भी सुख दुःख आपही आप न रहनेके समान ही उसे प्रतीत होते हैं ॥ ५४ ॥ जैसे खंभेके लिये रात्रि और प्रभात दोनों एकसरीखे ही हैं, वैसे ही आत्मस्वरूपमें निमग्न हुए पुरुषको देहमें प्राप्त हुए सुखदुःख, लाभ-हानि, आदि द्वन्द्व समान ही हैं ॥ ५५ ॥ गाढ नींदमें सोये हुए मनुष्यके देहको जैसे सर्पका स्पर्श और दिव्यांगना उर्वशी आदिका स्पर्श ( आलिंगन ) समान ही हैं, उसी प्रकार स्वरूपमें मग्न हुए पुरुषके देहमें सुखदुःखादि द्वन्द्व समत्वको ही प्राप्त हुए रहते हैं ॥ ५६ ॥ अतएव उस पुरुषकी दृष्टि सुवर्ण और गोवर, रत्न और पत्थर आदिमें किसी प्रकारका भेद नहीं जानती अर्थात् वह पुरुष समदृष्टि होता है ॥ ५७ ॥ चाहे स्वर्ग-सुख स्वयं चलकर घर आजाय अथवा चाहे प्रत्यक्ष वाघ आकर प्रहार करनेको तैयार हो, परन्तु उसकी ब्रह्मैक्य-स्थिति ( आत्मबुद्धि ) में जरा भी अन्तर नहीं पडता ॥ ५८ ॥ जैसे एकबार मरा हुआ प्राणी फिरसे नहीं उठसकता अथवा एकवार भुना हुआ बीज जैसे कभी ऊगता नहीं, वैसेही उसकी आत्म-वृत्तिकी समताका कदापि भंग नहीं होता ॥ ५९ ॥ उस पुरुषको चाहे कोई स्तुति रूपसे सृष्टिकर्ता 'ब्रह्मा' कह दे अथवा 'बडा नीच' है इसप्रकार चाहे कोई उसकी निंदा करे, परन्तु जैसी राख न जलती है न बूझती है, ॥ ३६० ॥ तद्वत् निंदा और स्तुतिको वह जानता ही नहीं । जैसे कि सूर्यके घर न अँधेरा रहता है न दिया-बत्ति भी होती है ॥ ६१ ॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

ईश्वर समझकर उसकी पूजा कीजाय, किंवा चोर समझकर उसे त्रास दियाजाय, अथवा बैल, हाथी आदिको करके वह घेर लिया जाय या उसे राजा बनादिया जाय, ॥ ६२ ॥ अथवा उसके पास चाहे मित्र आ बैठ जाँय, अथवा कोई वैरी आकर क्लेश देना चाहे, तथापि जैसे सूर्यके तेजको रात और दिन जाननेकी आवश्यकता ही नहीं रहती; ॥ ६३ ॥ अथवा छहों ऋतुओंके आनेजानेपर भी आकाश जैसे निर्लेप ही रहता है, तद्वत् ही उस पुरुषका मन किसी भी विषमतासे मलिन नहीं होता ॥ ६४ ॥ हे पार्थ !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और भी एक चिह्न उसके आचरणका दिखाई देता है। वह यह है कि वह यदि कोई भी आचरण करे, तथापि उसके आचरणसे कोई व्यापार उत्पन्न हुआ हो, ऐसा नहीं जान पडता ॥ ६५ ॥ कारण, उसने कर्मोंके आरंभका ही त्याग कर दिया है, जिससे प्रवृत्तिका मूलस्थान ही नष्ट हो रहता है, अतः उस ज्ञानाग्निरूपी पुरुषके सब कर्मोंके फल जलकर भस्म होजाते हैं ॥६६॥ ऐहिक अथवा पारलौकिक कामनाविषे उसके अन्तरंगमें कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती, इसलिये जो कुछ स्वाभाविक प्राप्त हो, उदासीनतासे उसका ही वह अंगीकार करता है ॥ ६७ ॥ वह पत्थरके समान किसी बातका न सुख मानता है न दुःख, कारण उसका मन सर्व संकल्प-विकल्पोंका त्याग किये रहता है ॥६८॥ अब, हे पार्थ ! तुम ठीक समझ रहे होंगे, अतः यह वर्णन यहां ही समाप्त किया जाय। तात्पर्य, इन उपरोक्त लक्षणोंसे युक्त जिसका आचरण रहता है, वही सचमुच 'गुणातीत' समझना चाहिये ॥ ६९ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने अर्जुनसे कहा, हे पार्थ ! जिस उपायसे यह जीव गुणातीत होता है अर्थात् गुणोंके पार जा सकता है, उसका कथन करता हूँ तुम श्रवण करो ॥३७०॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

हे पार्थ ! जो कोई पुरुष अव्यभिचारभाव ( एक मेरी निष्ठा ) से मुझ परमात्मा विषे दृढ-निश्चयी बनता हुआ भक्ति भावसे मेरी ही सेवा करता रहता है, वही गुणोंको जला सकता है ॥ ७१ ॥ अतएव 'मैं' कैसा हूँ, 'भक्ति' किसे कही जाती है, 'अव्यभिचार' ( एक निष्ठता )के क्या लक्षण हैं, इत्यादि बातोंका विवेचन करना आवश्यकीय है ॥ ७२ ॥ हे अर्जुन ! जैसे रत्न और रत्नकी प्रभा एक ही वस्तु है, संसारमें मैं भी वैसा ही हूँ ॥ ७३ ॥ किंवा द्रवत्वही जैसे जल है, अवकाश ही जैसे आकाश है, मधुरता ही जैसे शक्कर होती है, ज्वालायें ही जैसे अग्नि है, कमलका दल ही जैसे कमल तथा शाखा, पल्लव, फल ही जैसे वृक्ष है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ अथवा हिमका एकत्र किया हुआ संचय ही जैसे हिमालय कहा जाता है, किंवा जमा हुआ दूध ही दही हो जाता है, ॥ ७६ ॥ तद्वत्, यह सब चराचर विश्वनामसे जो प्रगट हो रहा है, वह विश्व ही 'मैं' हूँ, चंद्रबिम्ब देखनेके लिये जैसे चंद्रमाको निजकी कलाओंको छीलकर देखनेकी आवश्यकता नहीं रहती; ॥ ॥ ७७ ॥ अथवा घीको पिघलाया न जानेपर भी जैसे वह घी ही है, किंवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अलंकारको न गलानेपर भी जैसे वह सुवर्ण ही रहता है; ॥ ७८ ॥ वस्त्रको खोला न जाय तथापि जैसे वह तन्तु ही है, अथवा घटको फोडकर टुकडे न किये जांय तथापि जैसी वह मिट्टी ही है ॥ ७९ ॥ वैसे ही मैं भी ऐसा नहीं हूँ कि जब मेरा विश्वत्व दूर करके मुझे देखाजाय तभी ही दिखाई दूँ । सब विश्वसमेत ही मुझे देखना चाहिये, कारण सब विश्वही मैं हूँ ॥ ३८० ॥ इस रीतिसे मुझे जाननेका जो ज्ञान, वही ' अव्यभिचारिणी ' भक्ति कहाती है, और इस ज्ञानमें किसी प्रकारका यदि भेद हो या कुछ न्यूनता हो, तो वही व्यभिचार समझना ॥ ८१ ॥ अतएव सब प्रकारके भेदभावोंका त्यागकर शुद्ध अभेदान्तःकरण हो,एकाग्रचित्तसे यह सब अपने समेत मद्रूप ही जानना चाहिये ॥ ८२ ॥ देखो पार्थ ! सुवर्णके अलंकारको सुवर्णका ही जडाव (कुंदा) बना दिया जाय तो जैसे उसमें भिन्नता नहीं दीखती, वैसे ही इस विश्वको भी अपने समेत देखनेसे भिन्नता नहीं दिखा देगी ॥ ८३ ॥ जैसे सूर्यरूपी तेजका अंश उस तेजसे ही उत्पन्न होकर उसीमें ही लीन होता है परन्तु उसको रश्मि कहा जाता है, उसी प्रकार अपनेको समझना ॥ ८४ ॥ पृथ्वीमें जैसे सूक्ष्म परमाणु रहते हैं, किंवा हिमालयपर्वतमें जैसे हिमकण रहते हैं, उसी प्रकार ' अहं ' अपनेको भी मुझमें समझो ॥ ८५ ॥ तरंगें कितनी भी छोटी हों तो भी जैसी वे समुद्रसे भिन्न नहीं होतीं, तद्वत् मैं ईश्वरसे भिन्न नहीं, ॥ ८६ ॥ इस प्रकारकी ऐक्यभावनासे भरी हुई दृष्टि विकसित होती है और ईश्वरमें और मुझमें भेद नहीं किंतु मैं ईश्वरमें हूँ, इस निश्चयसे जो आनंदित वृत्ति बनती है, हे पार्थ ! उसे ही हम ' भक्ति ' कहते हैं ॥ ८७ ॥ ज्ञानका सार-सर्वस्व भी इसी दृष्टिको समझना चाहिये तथा योगका भी रहस्य इसी दृष्टिमें भरा हुआ है ॥ ८८ ॥ सागर और मेघ इन दोनोंके बीच अखंड जलधाराका वर्षाव होता हुआ देखनेपर जैसे दोनों एकरूप हुए दिखाई देते हैं, उसी प्रकार यह भक्तिकी आनन्दवृत्ति प्रवृत्त हो रहती है ॥ ८९ ॥ अजी ! कुएँका खुला मुँह और आकाशमें यद्यपि जोड न रहा हो तथापि जैसे वे बिना-जोडके भी एकत्र मिले रहते हैं, उसी प्रकार वह ज्ञानी भक्त परमपुरुषमें ( पृथक् रहनेपरभी ) मिला हुआ रहता है ॥ ३९० ॥ सूर्यबिंबसे लेकर उसके जलमें पडे हुए प्रतिबिम्बतक जैसे सूर्यका तेजही तना हुआ दिखाई देता है, उसी प्रकार यह ' सोऽहंवृत्ति' जीवात्मासे परमात्मातक अखंडरूपसे लगी रहती है ॥ ९१ ॥ इस रीतिसे जब उसकी सोऽहंवृत्ति उससे ईश्वरतक पहुँचती है, तब वह उस वृत्तिके साहित आपही आप परमात्मतत्त्वमें विलीन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होजाता हैं ॥ ९२ ॥ जैसे नमकका कंकर एकबार सागरमें पहुँचते ही उसका गलना बन्द होजाता है, ॥ ९३ ॥ अथवा घासको जलानेपर फिर अग्नि भी जैसी आपही आप बुझ जाती है, तद्वत् ही ज्ञानसे भेदबुद्धिका नाश होनेपर, फिर वह ज्ञान भी पीछे नहीं रहता ॥ ९४ ॥ हम दोनोंमें तब इस प्रकारका भेद नहीं रहता कि 'मैं' पैलपारका और भक्त यहींका है, किन्तु दोनोंका जो अनादिकालसे ऐक्य बना हुआ है, वही बाकी रहता है ॥ ९५ ॥ हे पार्थ! इस प्रकारकी जहां एकता हो रहती है, फिर गुणोंको जीतनेकी कुछ बात ही नहीं रहती ॥९६॥ हे मर्मज्ञ, पार्थ ! बहुत क्या कहें, इस स्थितिको प्राप्त होना, ब्रह्मत्वकोही प्राप्त होना है, और वह स्थिति मेरे एकनिष्ठ भक्तको ही प्राप्त होती है ॥ ९७ ॥ और मैं फिर कहता हूँ कि, हे पार्थ ! इन पूर्वोक्त-लक्षण-सम्पन्न जो मेरा भक्त हो, उसकी यह ब्राह्मी अवस्था पतिव्रता स्त्रीकी समान सेवा करती है ॥९८॥ जैसे गंगाका प्रवाह कैसे भी जोरसे बहता चलाजाय तो भी उसे सागरके अतिरिक्त दूसरा स्थान ही नहीं है, ॥९९॥ उसी प्रकार हे पार्थ ! जो पुरुष ज्ञानदृष्टिसे ही मेरी भक्ति करता रहता है, वह ब्रह्मताके मुकुटका चूडामणि रत्न बनजाता है ॥ ४०० ॥ इसी स्थिति ( ब्रह्मत्व ) को सायुज्य कहा जाता है। इसीको चतुर्थ पुरुषार्थ ( मोक्ष ) नाम है ॥ १ ॥ यदि तुम ऐसा समझोगे कि मेरी सेवा ब्रह्मत्वके साधनका मार्ग है, तो ऐसा मत समझो कि मैं 'साधन' हूँ ॥ २ ॥ कारण, मेरे अतिरिक्त और दूसरी कुछ ब्रह्मवस्तु नहीं है ॥ ३ ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ २७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

हे पाण्डव ! 'ब्रह्म' का अर्थ 'मैं' ही समझो और इन शब्दोंसे मैं ही वर्णा जाता हूँ ॥ ४ ॥ हे मर्मज्ञ अर्जुन ! चन्द्रमण्डल और चंद्रमा जैसे दो वस्तु नहीं हैं, तद्वत् ही ब्रह्ममें और मुझमें अणुमात्र भी भेद नहीं है ॥ ५ ॥ देखो अर्जुन ! जो वस्तु शाश्वत है, अचल है, स्पष्ट है, धर्मस्वरूप है, आनन्द-मय है, अपार है और एकमेवाद्वितीय है, ॥ ६ ॥ किंबहुना अपना ही नाश-कर विवेक ( ज्ञान ) जिस सिद्धान्तको प्राप्त होता है, जो ज्ञानकी परम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सीमा है, कि जहां जाते ही ज्ञान जिसमें लीन हो जाता है, वह भी मैं ही हूँ ॥ ७ ॥ इस प्रकार एकनिष्ठभक्तोंके प्रेमानन्दमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कह रहे थे ॥ ८ ॥ संजयकी यह बात सुनकर धृतराष्ट्र बोला—"हे संजय ! तुम्हें किसने यह बात पूँछी थी, बिना किसीके पूँछे ही तुम वृथा ऐसी बातें क्यों कह रहे हो ? ॥ ९ ॥ इस समय मैं जिस बातकी चिन्तामें पडा हूँ उसे दूर करो, मेरे दुर्योधनके विजयकी शुभ वार्ता पहले कहो" तब संजय मनमें कह रहा था, हां, विजयकी बातें तो अब छोड दो ॥ ४१० ॥ धृतराष्ट्रकी बात सुनकर संजयको बडा विस्मय हुआ, भगवान् कैसा निरूपण कर रहे हैं और हाय ! हाय ! धृतराष्ट्र उनका कैसा कट्टा द्वेषी बन रहा है ? जो उनकी वार्ता सुननेकी अपेक्षा युद्धकी वार्ताको ही चाहता है ! ॥ ११ ॥ तथापि वह कृपालु परमात्मा देव इसपर ऐसी कृपा करे कि, यह विवेकरूपी औषध वह (धृतराष्ट्र) प्राशन करे और इसका मोहरूपी महारोग नष्ट होजाय ॥ १२ ॥ संजय ऐसा विचार कर रहा था कि, उसके मनमें कृष्णार्जुन संवादका स्मरण होआया तो उससे जो हर्ष होगया वह उसके चित्तमें न समासका ॥ १३ ॥ अतएव संजय उस प्रेमातिशयसे हर्षित होता हुआ अब बडे उत्साहके साथ श्रीकृष्णार्जुन-संवादका वर्णन करेगा ॥ १४ ॥ श्रीनिवृत्तिनाथके शिष्य ज्ञानदेव कहते हैं, हे श्रोतागणो ! आप सावधान चित्तसे सुनिये, कि उन्हीं शब्दोंका भावार्थ मैं आपके हृदत करदूँगा, ऐसी मेरी उम्मेद है ॥ ४१५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः
हिन्दीभाषानुवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अब मैं अपने हृदयकी उत्तम प्रकारसे चौकी बनाकर, उसपर श्रीगुरुचरण-कमलोंकी स्थापना करता हूँ ॥ १ ॥ और उनपर सर्वेंद्रियरूपी किंचित् विकसित-पुष्पोंकी कलियां एकतारूपी अंजलिमें लेकर, वह पुष्पांजलि श्रीगुरुके लिये अर्घ्यरूपमें अर्पण करता हूँ ॥ २ ॥ तथा अनन्यभावरूपी जलसे शुद्ध की हुई गुरुनिष्ठाकी वासनारूपी चंदनका उन्हें उबटन ( लेप ) लगा लेता हूँ ॥ ३ ॥ निर्मल प्रेमरूपी शुद्ध सुवर्णके नूपुर बनाकर, श्रीगुरुके सुकुमार पदोंमें उन्हें पहिनाता हूँ ॥ ४ ॥ अव्यभिचार ( एकनिष्ठ ) भावसे-शुद्धप्रेमसे जगमगाते हुए आत्यंतिक अनुरागरूपी छल्ले उनके करांगुलियोंमें पहिनाता हूँ ॥ ५ ॥ आनंदरूपी सुवाससे भरा हुआ और अष्ट-सात्त्विक भावोंसे विकसित हुआ, ऐसा अष्टदलवाला कमल उनके मस्तकपर चढा देता हूँ ॥ ६ ॥ अब अहंकाररूपी धूपको उनके सामने जला देता हूँ, सोऽहंरूप निरभिमानके दीपकसे गुरुचरणोंकी आरती करता हूँ और उनमें समरस होता हुआ उन्हें नित्य आलिंगन देता हूँ ॥ ७ ॥ अब यह मेरा देह और प्राण इनकी खडाऊ बनाकर श्रीगुरुचरणोंमें पहनाता हूँ और गुरुचरणोंपरसे भोग तथा मोक्षरूपी निंब-नोन उतार देता हूँ ॥ ८ ॥ इस गुरुचरणसेवासे मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो, कि जिस सेवासे सकलपुरुषार्थोंके अधिकार उसमें समाविष्ट हो रहें ॥ ९ ॥ जिस सेवासे मुझे ऐसी ज्ञान-तेजज्योति प्राप्त होजावे कि, जिसका विश्राम-स्थान ब्रह्म ही हो । तथा जिस सेवासे मेरी वाणीको अमृतसागरकी मधुरता प्राप्त होजावे ॥ १० ॥ मेरे वक्तृत्वमें व्याख्यानके समय ऐसी मधुरता प्राप्त होजावे कि, जिसके हरेक अक्षरपरसे करोडों चंद्रोंकी निछावर करदीजाय ॥ ११ ॥ तथा वह मेरी वाणी श्रोतृसमुदायको ऐसे ज्ञानप्रकाशकी दीपावली बनजावे, कि पूर्वदिशामें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सूर्योदय होते ही जैसी वह दिशा संपूर्ण विश्वको अपने प्रकाशका साम्राज्य अर्पण करदेती है ॥ १२ ॥ जिस सौभाग्यकी प्राप्तिसे इस प्रकारके शब्द मुखसे निकलते हैं, जिनके सामने प्रत्यक्ष वेद भी अपनेमें कमीको देख सकेंगे । इतना ही क्या ? कैवल्यतत्त्व भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता, ॥ १३ ॥ जिस सौभाग्यसे वाणीकी वल्ली ऐसी हरीभरी और बहारवाली बनजाती है, कि श्रवणसुखरूपी मंडपमें बैठनेवाले विश्वको निरन्तर वसन्तऋतुकी शोभाका अनुभव प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥ और जिस सौभाग्यका एक ऐसा अनोखा आश्चर्य है कि, मनके साथ वाचाको जिसका पार न लगनेके कारण अपनी अयोग्यतासे जहांसे वापिस लौटना पडता है, वह परमात्मा शब्दगोचर हो जाता है ॥ १५ ॥ तथा जिस भाग्यसे जो वस्तु ज्ञानको अवगत नहीं होती, या ध्यानको भी असाध्य है, जो इन्द्रियातीत है वह अगोचर ब्रह्मवस्तु उन शब्दोंमें इकट्ठी हुई प्रतीत होती है ॥ १६ ॥ वह महाभाग्य श्रीगुरुचरणकमलोंके धूलिकणका लाभ हो तो उपरोक्त वर्णनानुसार अवश्य प्राप्त हो जाता है ॥ १७ ॥ श्रीज्ञानदेवजी कहते हैं, अब मैं किन शब्दोंसे वर्णन करूं ? मैं ऐसा स्पष्ट कह सकता हूँ कि, गुरुप्रेमकी कुछ भी बराबरी करे ऐसा प्रेम माताके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई दे सकता ॥ १८ ॥ कारण, मैं अज्ञान नन्हा बालक हूँ और जिसे केवल एकही बालक है, ऐसी मेरी माता गुरुराज ही हैं, अतः उनकी दयाका संपूर्ण प्रवाह एकमार्गी होता हुआ मेरी ओर ही बहता रहता है ॥ १९ ॥ श्रोतागणो ! जिस प्रकार मेघ अपनी सब जलसम्पत्ति अपनेपर निर्भर रहनेवाले चातकके लिये ही खर्च कर देता है, तद्वत् ही सद्गुरुने मुझपर करुणाकी वर्षा कर रखी है ॥ २० ॥ इसी कारण, वृथा बकवाद करनेवाले मेरे मुँहसे गीता-जैसे माधुर्य भरे हुए शब्दोंका लाभ होगया ॥ ॥ २१ ॥ ठीक ही है, कि जब प्रारब्ध अनुकूल रहता है, तब वालुकण भी रत्नरूप होजाते हैं और आयु बलवान् रहे तो मारनेवाला भी प्रेमी बनता है ( मारता नहीं ) ॥ २२ ॥ यदि जगन्नाथ भगवान् कृपा करना चाहें तो भूखके समय उबलते पानीमें कंकर छोडे हों, तो वे अमृततुल्य चावल बन जाते हैं ॥ २३ ॥ उसी प्रकार यदि श्रीगुरुराज महाराज कृपा कर, किसीका अंगीकार करें तो उसके लिये सब संसार भी मोक्षमय ही हो जाता है ॥ २४ ॥ आप जानकार श्रोतालोग ही देख रहे हैं कि, जगद्वंद्य, पुराणपुरुष नारायणावतार, भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माने उन पाण्डवोंके लिये कुछ भी न्यूनता होने दी ? ॥ २५ ॥ उसी प्रकार श्रीनिवृत्तिनाथ महाराजने मेरे अज्ञानको भी ज्ञानकी तौलमें ही बिठा दिया है ॥ २६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



परन्तु अब ये बातें यहां ही खतम कर देता हूँ, कारण बोलते-बोलते मेरा प्रेम अन्तःकरणको छोड बाहर गिरना चाहता है, तथापि मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि, गुरुमाताके महत्त्वका वर्णन करनेमें क्या किसीका ज्ञान समर्थ हो सकता है ? ॥ २७ ॥ अब मैं उसी गुरुमहाराजके प्रेमोल्लाससे गीतार्थाभिप्राय प्रकट करनेमें आप संतोंके चरणकृपाका आश्रय करता हूँ ॥ २८ ॥ अभी पिछले ( १४ वें ) अध्यायके अन्तमें कैवल्यधाम श्रीकृष्ण भगवान्ने यह सिद्धान्त स्पष्ट किया, ॥ २९ ॥ कि, जैसे सौ यज्ञ करनेवालेके हाथ स्वर्गकी सम्पत्ति है, ( इंद्र होता है ) उसी प्रकार जिसको ज्ञानप्राप्ति हुई है, वह ज्ञानी मोक्षसम्पत्तिका मालिक है ॥ ३० ॥ अथवा सैकडों जन्मपर्यन्त जो ब्रह्मकर्म ही करता है वही ब्रह्मदेव होता है, दूसरा नहीं होता, ॥ ३१ ॥ किंवा जो दृष्टियुक्त हो उसीको सूर्य प्रकाशका लाभ प्राप्त होता है, अन्यको नहीं होता; तद्वत् मोक्षका परमानन्द केवल ज्ञानवान्को ही प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञान ही मोक्षसाधनका जीवन है ॥ ३२ ॥ और इस बातका विचार करते करते कि, ज्ञानकी योग्यता किसे प्राप्त हो सकती है ? श्रीकृष्ण परमात्माको इस विषयमें एक ही पुरुष दिखायी दिया ॥ ३३ ॥ दिव्यांजन आँखोंमें लगालेनेसे पृथ्वीके गर्भांतरस्थ द्रव्य-संचय भी दिखाई देता है, परन्तु वह अंजन जब उलटे जन्मे हुए पुरुषके आँखोंमें लगाया जाय तब ॥ ३४ ॥ तथैव ज्ञानसे मोक्षप्राप्ति होती है निश्चित, परन्तु वह ज्ञान स्थिरता प्राप्त करनेमें मनःशुद्धिकी अत्यन्त आवश्यकता लगती है ॥ ३५ ॥ अतएव श्रीकृष्णने गम्भीर विचार कर, यह सिद्धान्त निश्चित कर रखा है कि, विरक्तिके बिना ज्ञानकी निश्चित स्थिरता कभी नहीं हो सकती ॥ ३६ ॥ साथमें यह भी पूर्ण विचार कर श्रीकृष्णने निर्णय कर-दिया है कि, विरक्तता प्राप्त होनेके लिये मन कैसा तैयार होना चाहिये ॥ ३७ ॥ जैस कोई भोजन करन बैठा हो, परन्तु उसे यदि यह बात जान पडे कि, यह रसोई अन्नमें विष मिलाकर बनायी है, तो जैसे वह उस थालीको दूर फेंकता हुआ चलाजाता है, ॥ ३८ ॥ उसी प्रकार यदि इस संपूर्ण संसारकी अशाश्वतताका ज्ञान अंतःकरणमें निश्चितरूपसे जँचजाय, तो उस विरक्तताको पीछे हटाते रहनेपर भी आपही आप वह आ भिडती है, अर्थात् वैराग्य अवश्य प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ अब उसी संसारकी अनित्यताका स्वरूप कैसा रहता है, वह इस पंदरहवें अध्यायमें, संसारको वृक्षका रूपक बनाते हुए श्रीकृष्णने वर्णन करदिया है ॥ ४० ॥ जैसे किसी पेडको



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उखाडो तो वह उलटा होकर हाथमें आता है, फिर उस स्थितिमें उसे टँगा रखा जाय तो वह जलदी ही सूखजाता है, परन्तु इस संसारवृक्षकी स्थिति ऐसी नहीं होती ॥ ४१ ॥ इसप्रकार एक वृक्षके रूपकद्वारा अपनी कुशलतासे संसारका आवागमन बंद करनेका निश्चय करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् निरूपण करते हैं ॥ ४२ ॥ इस पंदरहवें अध्यायका मुख्य उद्देश यहीं रहेगा कि, संसारकी निरर्थकता सिद्ध होकर 'अहं ब्रह्मास्मि' इसप्रकार अहंकार स्वस्वरूपमें जा टिके ॥ ४३ ॥ अब इस गूढरहस्यविषयभरे ग्रंथके स्वरूपको मैं मनोभावसे स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, अतएव आप श्रोता सन्तजन सावधान हूजिये ॥ ४४ ॥ परमानंदरूपी महासागरको उल्लसित करनेवाले पूर्णचंद्र-श्रीद्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्णने कहा ॥ ४५ ॥ कि, हे पांडुपुत्र अर्जुन ! स्वस्वरूपके स्थानमें पहुँचनेके मार्गमें जो विश्वाभास बीचमेंही आकर विघ्न करता है, ॥ ४६ ॥ वह इस विश्वका एक जगडंबर है, उसे संसार न समझकर, केवल एक प्रचंड फैला हुआ वृक्षही समझो ॥ ४७ ॥ परन्तु इसमें यह विलक्षणता रहती है कि, अन्यवृक्षोंकी नाईं इसमें नीचे जडें और ऊपर शाखायें नहीं रहतीं, इस कारण इस वृक्षका रूप सहसा किसीके ध्यानमें नहीं आता ॥ ४८ ॥ किसी वृक्षकी जडमें अग्नि लगा दीजाय अथवा उसे कुल्हाडीसे काटा जाय, तो वह साधारण वृक्ष, ऊपरी भागमें चाहे कितने भी विस्तारसे फैला हुआ हो, तथापि उसकी जडमें ही आघात होनेके कारण, वह संपूर्ण शाखादिकोंके साथ एकदम गिरपडता है; परन्तु हे पार्थ ! इस संसाररूपी वृक्षमें वैसा नहीं हो सकता, कारण वह टूटकर सहजमें ही गिरजाय ऐसी सुगमता उसमें नहीं है ! ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे पार्थ ! इसका यह वर्णन बडा अद्भुत प्रतीत होता है कि, इस वृक्षका सब विस्तार नीचेकी ओर ही फैला रहता है ॥ ५१ ॥ जैसे कि सूर्य ऊँचाईमें तो अनगिन्त ऊपर है, परन्तु उसके संपूर्ण किरण-समूह नीचेकी ओर ही फैलते हैं, तद्वत् ही, बडे विलक्षण आश्चर्यभरा नीचे विस्तारवाला यह संसार वृक्ष है ! ॥५२॥ और, जैसे प्रलयकालीन जल संपूर्ण आकाशको व्याप्त करदेता है, उसी प्रकार यह संसार-वृक्ष विश्वमें जितना कुछ स्थावर-जंगमात्मक है, वह संपूर्ण व्याप देता है ॥५३॥ अथवा सूर्यास्तके होनेपर रात्रि जैसी संपूर्ण अंधकारसे भरी रहती है, वैसेही सर्व आकाश इस वृक्षसे व्याप्त होजाता है ॥ ५४॥ इस वृक्षमें खानेके लिये न फल लगता है और सूँघनेके लिये न फूल आता है, यह केवल एक निरा वृक्ष ही है ॥ ५५ ॥ और इसकी जड यदि उलटी ऊपरको रहती है, तथापि यह वृक्ष किसीके उखाडनेसे उलटा नहीं हो रहा है; किन्तु ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्वाभाविकही है, अतः यह शाखापत्रादिकोंसे निरन्तर हराभरा नया ही रहता है ॥ ५६ ॥ और इसे यदि 'ऊर्ध्वमूल' अर्थात् ऊपरकी जडोंवाला हमने कहा है, यह यद्यपि सत्य है तथापि इसमें नीचेकी ओर भी असंख्य जडें हैं ॥ ५७ ॥ यह सब ओरसे बडे जोरके साथ तृणके समान ऊगता रहता है, जैसे कि अश्वत्थ ( पीपल ) या वट जिनके फल और अंगके अवयव-रूपी डोरोंसे ही मनमानी शाखायें उत्पन्न होती हैं ॥ ५८ ॥ तथैव, हे पार्थ ! इस वृक्षमें केवल नीचेकी ओर ही शाखायें रहती हों, यह भी नहीं; किन्तु ऊपरकी ओर भी इसमें कई शाखायें भरी रहती हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ इसे देखकर मनमें आता है कि, क्या ? यह आकाश ही पल्लव धारण कर रहा है, या वायु ही वृक्षरूप धारण कर रही है, अथवा क्या स्वयं उत्पत्ति, स्थिति और लय इस अवस्थात्रयीने ही यह अवतार धारण कर लिया है ! ॥६१॥ इस प्रकारका यह विश्वरूपी ऊर्ध्वमूल विशाल-वृक्ष अपना अस्तित्व धारण कर रहा है ॥ ६२ ॥ अब इसके ऊर्ध्वका अर्थ क्या है ? जडका लक्षण क्या है ? अथवा यह अधोमुख यानी उलटा क्यों है ? इसकी शाखायें कैसी हैं, ॥ ६३ ॥ अथवा इस वृक्षमें जो नीचे जडें रहती हैं वे कौनसी हैं तथा ऊपर जो शाखायें हैं, उनका स्वरूप कैसा रहता है ॥ ६४ ॥ और इसे 'अश्वत्थ' नाम किसलिये दिया गया है, तथा इन प्रश्नोंके विषयमें आत्म-ज्ञानियोंने कैसे कैसे निर्णय कर दिये हैं, इत्यादि बातोंको हम तुम्हें चुने हुए शब्दोंसे स्पष्ट समझा देते हैं कि, जिन्हें सुनकर तुम भी अच्छीतरह निःसंदेह समझ सकोगे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हे सौभाग्यवान् पार्थ ! यह विषय सुननेकी योग्यता तुमही रखते हो, अतएव चित्तको स्थिर रखकर हरेक अवयवको श्रवण-शक्ति-सपन्न बनाते हुए एकाग्रतापूर्वक सावधान हो, श्रवण करो ॥६७॥ इस प्रकार प्रेमरससे भरे अन्तःकरण यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंको सुनते ही, सावधानता ही मानो मूर्त्तिमंत अर्जुनरूप हो, वहां खडी रही ! ॥ ६८ ॥ और अर्जुनकी श्रवणोत्सुक-सावधानता ऐसी बढगयी, कि मानो देवका निरू-पण ही उसे स्वल्पसा दिखाई देने लगा; उस समय मानों दशों दिशायें ही स्वयं आकाशको दृढालिंगन दे रही हों ऐसा प्रतीत हो गया ! ॥६९॥ श्रीकृष्णके वचनोक्तिरूपी महासागरके लिये, वह अर्जुन एक नया अगस्ति ही उत्पन्न हुआ, जो कि उस वचनसागरको केवल एक घूँटमें ही प्राशन करनेकी इच्छा कर रहा था ! ॥ ७० ॥ फिर, अर्जुनके हृदयकी ऐसी अमर्याद श्रवणोत्सुकता देख, श्रीकृष्णको ऐसा हर्ष हो गया, जिसका वर्णन करना शक्तिके बाहर है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और उस आनंदातिशयमें भगवान्ने अर्जुनको प्रेमालिंगन दे कृतार्थ किया ॥ ७१ ॥

श्रीभगवानुवाच।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

फिर श्रीकृष्णने कहा—हे धनंजय! इस वृक्षका ऊर्ध्व ( ऊँचा ) वह अद्वय ब्रह्म ही है और इस वृक्षके कारण ही उसे ऊर्ध्वत्व प्राप्त हुआ है ॥ ७२ ॥ वास्तवमें विचार कर देखाजाय, तो जिसमें न मध्य है, न ऊर्ध्व है, न अध है; ऐसा जो एकरूप, अद्वय, कैवल्य तत्त्व उसमें ( मध्य, ऊपर, नीचे ) इस प्रकारका भेद होना संभव ही नहीं; ॥ ७३ ॥ जो कर्णको सुनाई न देनेवाला नाद ( शब्द ) है, घ्राणेंद्रियसे अगोचर मकरन्दकी सुगंध है, और विषयसेवन विना ही होनेवाला जो प्रत्यक्ष आनन्द है; ॥ ७४ ॥ जिसके इस पार वा उस पार जो स्वयं वही है, जिसके आगे पीछे भी वही है, जो अदृश्य रहता हुआ किंवा उसे कोई दूसरी दृष्टि न होते हुए भी जो देख सकता है; ॥ ॥ ७५ ॥ जो उपाधिरूपी द्वैतकी सहायतासे नाम-रूपात्मक विश्वरूप हो प्रकट होता है ॥ ७६ ॥ जो स्वयं ही अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेयवस्तुके बिना ही ज्ञान है और जो सर्वसुख-समृद्धिसे परिपूर्ण भरा होनेपर भी केवल शून्यगुण आकाश ही है ॥ ७७ ॥ जो न कार्य है न कारण है, जो न द्वैत है न अद्वैत है, जो स्वयं ही अपनेको जाननेवाला केवल आत्मरूप है ॥ ७८ ॥ हे पार्थ! ऐसा जो अद्वय वस्तु ( परब्रह्म ) वह इस संसार-वृक्षका 'ऊर्ध्व' है। अब इस ऊर्ध्वमूलको अंकुर किस रीतिसे उत्पन्न होते हैं, उनका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो। ॥ ७९ ॥ वास्तवमें जो कुछ भी नहीं है, उसे वन्ध्यास्त्रीकी संततिकी नाईं वृथा ही 'माया' नाम प्राप्त होगया है; ॥ ८० ॥ उसी प्रकार जो (माया) वास्तवमें न सत्य है और न असत्य भी है, परन्तु ऐसी होनेपर भी, जिसे विचारका नामतक सुनना नहीं सहा जाता; और यद्यपि वह ऐसी है तो भी, उसे 'अनादि' कहा जाता है ॥ ८१ ॥ जो अनेक प्रकारके भेदभावभरी संदूकसी है, जो जगदभ्ररूपी आकाशसी है और जो संपूर्ण साकार-वस्तुओंका तह ( घडी ) किया हुआ एक वस्त्र ही है; ॥ ८२ ॥ जो माया संसारवृक्षकी सूक्ष्म बीजकणिका है, जो प्रपंचकी जन्मभूमि और जो असत्यज्ञानकी ( विपरीत ज्ञानकी ) इकट्ठी की हुई दीपक-ज्योति है अर्थात् मोहमयी है; ॥ ८३ ॥ हे पार्थ! वह माया ब्रह्मके पास इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रकार रहती है, जो वहां है ही नहीं, परन्तु वह जो-जो व्यवहार करती है, वह सब ब्रह्मवस्तुके तेजका ही प्रभाव है ॥ ८४ ॥ जब अपनेको नींद आती है, तब जैसे हम अपनेको ही ज्ञानशून्य कर देते हैं, अथवा जैसे दीपक कज्जलको दिखाता हुआ अपने तेजको आपही मन्द करता है; ॥ ८५ ॥ किंवा स्वप्नमें जैसी अपने प्रिय-वल्लभके पास सोई हुई तरुणी पतिको जगाकर, वास्तवमें आलिंगन न करती हुई भी ( स्वप्नमें ) आलिंगन करती और उसको काम-विकारसे क्षुब्ध करती है ॥ ८६ ॥ उसी प्रकार, हे पार्थ ! निर्गुण-ब्रह्ममें मायाका प्रादुर्भाव है । अतएव जो अपने मूल-स्वरूपका विस्मरण हुआ है वही इस संसार-वृक्षकी पहली जड है ॥ ८७ ॥ मूलस्वरूपका—ब्रह्मस्वरूपका ( अपना ) अज्ञान ही इस वृक्षके ऊर्ध्वभागमें इकट्ठा घनीभूत हुआ एक कन्द बन जाता है । इसीको हे पार्थ ! वेदान्तमें ' बीजभाव ' कहा जाता है ॥ ८८ ॥ और अज्ञानातिशयता अथवा सुषुप्ति दशाको वेदान्तमें ' बीजांकुर भाव ' नाम दिया गया है; तथा अन्य जो स्वप्न और जागृति इन दोनोंको सुषुप्तिका ' फलभाव ' कहा जाता है ॥ ८९ ॥ इस प्रकार वेदान्तनिरूपणमें इसकी परिभाषा है । अस्तु, अब यह सिद्ध हो चुका कि, इस संसारवृक्षका मूल अज्ञान ही है ॥९०॥ उसका ऊर्ध्व निर्मल आत्मा है, और उसके ऊपर नीचे जो जडें रहती हैं, वे केवल मायायोगके दृढ आलवालमेंसे मायाकरके ही उत्पन्न हुई हैं ॥९१॥ और अनेक संदेहोंसे जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी आरम्भमें जडें उत्पन्न हो रही हैं, वे ही चारोंतरफसे अंकुरित होती हुई नीचेकी ओर जोरसे फैलती रहती हैं॥९२॥ इस प्रकार यह संसारवृक्षका मूल जब ऊर्ध्व-भागके अद्वय-ब्रह्मसे सामर्थ्य प्राप्त करता है, तब ही नीचेके भागमें उसके अनेक अंकुर-समूह उत्पन्न होते हैं ॥ ९३ ॥ फिर उन अंकुरोंमेंसे प्रथमतः चिद्वृत्ति अर्थात् महत्तत्त्वका कोमल, विकसित और सतेज एक पत्ता निकलता है ॥ ९४ ॥ पश्चात् उस पत्तेमेंसे सत्त्व, रज और तम इन तीन प्रकारके अहंकारयुक्त अधोमुख एक अंकुर उत्पन्न होता है, वह अहंकारही सत्त्व, रज और तम इन तीन पत्तोंवाला अधो-मुख अंकुर है ॥ ९५ ॥ फिर वह अहंकाररूपी अंकुर बुद्धिकी शाखाका आश्रय करता हुआ अनेक भिन्न-भिन्न भेदभावोंकी वृद्धि करता है, और उनके सामर्थ्य-वान् बन जानेपर उसमेंसे निकाली हुई मनरूपी शाखाको नित्य हरी-भरी बना रखता है ॥ ९६ ॥ इस प्रकार उस ऊर्ध्वमूलके सामर्थ्यसे ही विकल्प-रससे भरे हुए चित्त-चतुष्टयकी शाखाओंसे दृढ अंकुर उत्पन्न होते हैं ॥९७॥ तदनन्तर आकाश, वायु, तेज, आप और पृथ्वी ये पंचमहाभूतरूपी सीधी, सरल और सुंदर कोंपलें निकलती हैं ॥ ९८ ॥ उसी प्रकार उन कोपलोंसे ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर्णादि पंच इन्द्रियें और उनके विषयरूपी कोमल और चित्रविचित्र पत्ते उत्पन्न होते हैं ॥ ९९ ॥ उनमेंसे शब्दांकुर प्रकट होते ही कर्णेंद्रियोंकी दुगुणी वृद्धि होकर अनेक वासनारूपी पर्व ( ग्रंथियें ) दिखाई देने लगती हैं ॥ १०० ॥ स्पर्शांकुरोंमें शरीरकी त्वचारूपी वल्लियें और पल्लव आपही आप आ चिपकते हैं और उनसे भी एक विकारोंका नया ही समूह उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ पश्चात् जब रूप-रूपी पल्लव हरेभरे होते हैं, तब चक्षुइन्द्रियें दूरतक दौडजाती हैं, जिससे मोहभ्रान्तिको उच्छृंखलता आती है ॥ २ ॥ तदनंतर जब रसरूपी शाखा जोरके साथ अधिकतासे बढजाती है, तब जिह्वामें स्वादेच्छारूपी लालसाके अपार पल्लव उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥ उसी प्रकार गंधांकुरका उद्भव होते ही घ्राणेन्द्रियकी शाखा सीधी खंभेसरीखी बढती है और उसकी छायामें बडे आनंद के साथ लोभ निवास करता रहता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार महत्तत्त्व, अहंबुद्धि, मन और पंचमहाभूत ये सब इस संसारवृक्षके अन्ततक विस्तृत होते रहते हैं, या उसकी वृद्धि करते रहते हैं ॥ ५ ॥ किंबहुना, इन महत्तत्त्वादि आठों अंगोंमें यह संसार अधिकतर विस्तार पा रहा है । परन्तु सीपपर चाँदीका भास होनेसे जैसे चाँदी भी उस अधिष्ठान ( सीप ) के समान ही प्रतीत होती है, ॥ ॥ ६ ॥ किंवा सागरका विस्तार ही जैसे उसकी लहरोंका विस्तारसा प्रतीत होता है, तद्वत् ही यह अद्वय-ब्रह्म ही अज्ञानमूल संसारवृक्षका रूप धारण कर रहा है ॥ ७ ॥ जैसे कोई मनुष्य स्वप्नमें स्वयं अकेला रहते भी अपना सब परिवार आपही बनजाता है, उसी प्रकार यह संपूर्ण विस्तार उस ब्रह्मतत्त्वका ही है और वह ब्रह्मतत्त्वही इस विस्तारका भी कारण है ॥ ८ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! अब यह विषय यहां ही रहने दो । इसका सारांश यही है कि, इस उपरोक्त वर्णनानुसार आश्चर्यभरा एक वृक्ष उत्पन्न होता है और उसमें महत्तत्त्वादि अंकुर आते हैं और उसके अधोभागमें शाखायें बढती जाती हैं ॥ ॥ ९ ॥ अब इस वृक्षको ज्ञातालोग ' अश्वत्थ ' क्यों कहते हैं, इस विषयके कारणको भी हम तुम्हें कह देते हैं, सुनो ॥ ११० ॥ श्वः अर्थात् उषःकाल ( प्रभातकाल )–कलका दिन, तबतक भी जो अश्वत्थवृक्ष ( संसारवृक्ष ) एकसा नहीं रहता ॥ ११ ॥ एक क्षणमें ही जैसे मेघोंके अनेक रंग बदलते हैं, अथवा विद्युत् जैसी क्षणभर भी स्थिर नहीं रहती, ॥ १२ ॥ किंवा हिलनेवाले कमलपत्रोंपर पडे हुए जलको जैसे स्थिरासनका लाभ नहीं प्राप्त होता, अथवा व्याधिग्रस्त मनुष्यका चित्त जैसे कभी स्थिर नहीं रह सकता, ॥ १३ ॥ वही प्रकार इस संसारवृक्षका भी है; यह क्षण-क्षणमें नष्ट होता रहता है, इसी लिये हे पार्थ ! इसे 'अश्वत्थ' नाम दिया गया है ॥ १४ ॥ कोई कोई अश्वत्थनामसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सामान्य पीपल वृक्षकाही अर्थ करते हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णके कथनका यह अभिप्राय नहीं है ॥ १५ ॥ यदि इसे पीपल कहा जाय, तो भी इस विषयमें अन्यप्रकारसे ( विषयांतरसे ) सुसंगति प्राप्त होसकेगी, परन्तु हमें लौकिक-विषयोंसे वा विषयांतरसे क्या प्रयोजन ? ॥१६॥ अतएव हे श्रोताओ ! आप अपने अलौकिक ग्रंथकाही वर्णन सुनिये। अस्तु, अब यह निश्चित हुआ कि, इसकी क्षणभंगुरताके कारण ही, इस प्रपंच-वृक्षको अश्वत्थ कहा जाता है ॥ १७ ॥ इस संसारवृक्षकी 'अक्षय' नामसे भी एक बडी सुप्रसिद्ध-ख्याति है, परन्तु उसका गर्भान्तरका अर्थ और ही है, उसका हम वर्णन करते हैं, तुम सुनो ॥ १८ ॥ जैसे सागर एक ओरसे मेघोंद्वारा शोषा जाकर कम होता जाता है, और दूसरी ओरसे नदियोंद्वारा भरा जाकर, पूर्ण होता जाता है, ॥ १९ ॥ अतएव वह न कभी घटता है न कभी बढता है, जिससे यह निश्चित ज्ञात हो जाता है कि वह नित्यशः जैसाका वैसाही हो। परन्तु इस बातका भेद तबतक ही नहीं खुलता है, जब तक कि मेघों और नदियोंका क्रम-चक्र घूमता रहता है ॥ १२० ॥ उसी प्रकार इस प्रपंचवृक्षकी भी उत्पत्ति तथा लय शीघ्रतासे होते रहनेके कारण, उसके विषयमें निश्चित तर्क नहीं किया जाता, इसलिये ही लोक इसे 'अव्यय' कहते हैं ॥ २१ ॥ यह भी एक दृष्टान्त है कि, जैसे दानशील पुरुष धनसंचयका खर्च करके ही संचय ( पुण्य-संचय ) प्राप्त करता है, उसी प्रकार यह प्रपंच-वृक्ष भी नित्य व्यय होता रहनेसे ही 'अव्यय' हो भासता है ॥ २२ ॥ अथवा शीघ्रगतिसे घूमने-वाला रथचक्र जैसे भूमिमें लगा हुआ नहीं जान पडता, या अत्यंत वेगके कारण, वह घूमता ही न हो ऐसा भी प्रतीत होता है, ॥ २३ ॥ उसी प्रकार कालान्तरसे इस वृक्षकी कोई शाखा सूखकर जब टूटती हुई जहां गिर पडती है, उसी स्थानमें दूसरी अनेक शाखायें भी अंकुरित होजाती हैं, ॥२४॥ परन्तु आषाढ-मासमें आये हुए अभ्रपटलोंके समान, इसकी एक शाखा कब गिरगयी और ये करोडों शाखायें किस समय प्रादुर्भूत हो चुकी हों, इस बातका पता ही नहीं चलता ! ॥ २५ ॥ कारण महाकल्पान्तमें जब ये सब भूतसृष्टियें विलीन ( नष्ट ) होजाती हैं, तब उसी क्षण, दूसरी नव सृष्टियोंका विशाल वन भी, एकसाथ उत्पन्न होजाता है ॥ २६ ॥ जैसे संहारक-प्रचंड-वायुसे ज्यों ही प्रलयान्तरूपी छाल उडकर निकल जाती है, त्योंही ( उसीक्षण ) नये कल्पारम्भके पत्र-समुदाय उत्पन्न हो हरेभरे होने लगते हैं॥२७॥जैसे इक्षु( ईख) की वृद्धिके साथ हरेक पर्व (ग्रंथि)में दूसरा पर्व उत्पन्न होता है, एक मनुके बाद जैसा दूसरा मनु होता रहता है, एक वंशके बाद जैसा दूसरा वंश होता जाता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है, इसप्रकार जैसी मन्वन्तरोंकी तथा वंशान्तरोंकी परम्परा अव्याहत चलती रहती है ॥२८॥ और जैसे कलियुगकी समाप्तिपर जब कृतादि चारों युगोंकी चौकडीकी नीरस छाल गिरजाती है, त्यों ही फिर जैसे कृतयुगरूपी दुगुने बलवाली नयी छाल उसीक्षण उत्पन्न होती है, ॥२९॥ किंवा वर्तमान वर्षकी समाप्ति ही जैसे दूसरे वर्षका आरंभ हो रहती है, अथवा जैसे आजका दिन समाप्त हो रहा है या कलका आरम्भ होरहा है, इसपर जैसा ठीक ध्यान नहीं जाता ॥३०॥ किंवा जैसे वायुके तरंगोंकी संधियें नहीं दिखाई देतीं, हे पार्थ ! तद्वत् ही इस संसारवृक्षकी अनन्त शाखायें किस समय गिरती हैं और कब उत्पन्न होती हैं, यह नहीं जाना जाता ॥ ३१ ॥ एक देहकी फाँदी ( अल्पशाखा ) टूटनेके साथही अनेक शरीरांकुर फूटते हैं। इस कारण यह प्रपञ्चवृक्ष अव्यय-अक्षयसा भासमान होजाता है ॥ ३२ ॥ जैसे बहता हुआ जल वेगसे आगे-आगे जाता रहता है, परन्तु पीछेसे आनेवाला जलप्रवाह उसको निरन्तर मिलता रहनेसे वह खंडित नहीं दिखाई देता, वही प्रकार इस वृक्षका होता रहता है; इसी कारण, इस नश्वर संसारको भी, लोग शाश्वत मानते हैं ॥ ३३ ॥ अथवा आँखका पलक मीचता न मीचता हो, इतने अल्पावकाशमें सागरकी करोडों लहरें उठती और लीन होजाती हैं, परन्तु अज्ञानियोंको वे नित्यसी ही जान पडती हैं ॥ ३४ ॥ कौएको यद्यपि दो नेत्र हैं तथापि उनमें देखनेवाली पुतली एक ही रहती है, परन्तु उसे वह ऐसी चञ्चलताके साथ फिरा रहता है कि, देखनेवालोंको, उसके दोनों आँखोंमें पुतलियां हों, ऐसा ही भ्रम उत्पन्न करा देता है ॥३५॥ लट्टू ( खिलौना ) समभागभूमिमें अत्यंत वेगके साथ घूमता रहनेके कारण जैसे वह जमीनमें गडा हो या खडा हो, ऐसा भासमान होता है, उसी प्रकार इस संसारकी उत्पत्ति और लय ये दोनों अत्यंत वेगके साथ होते रहते हैं, इसीसे उसकी नश्वरता ज्ञात नहीं होती ॥ ३६ ॥ बहुत क्या कहूँ ? अँधेरेमें बनेटीको वेगके साथ घुमानेपर उसमें लगातार जैसी एकही चक्राकृति रेखा दिखाई देती है, ॥३७॥ उसीप्रकार इस संसारकी नित्य उत्पत्ति और नित्य नाशको न जाननेके कारण ही लोग उसे अव्यय मानते हैं ॥३८॥ परन्तु उसके वेगको जो जानते हैं, जो इसको पूर्णतासे समझ चुके हैं कि, यह क्षणभंगुर ही है, वे ज्ञातालोग यह निश्चित समझ जाते हैं कि, यह एक निमिषमात्रमें करोडोंबार उत्पन्न होता है और नाशको पाता है ॥ ३९ ॥ इसका सारांश यही निश्चित समझना चाहिये कि, इस संसारवृक्षका मूल अज्ञानके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। विचार करनेपर इसका अस्तित्व ही मिथ्या ज्ञात होगा। यह वृक्ष क्षणभंगुर है, इस प्रकार जिसने निश्चित जान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



लिया है, ॥ २४० ॥ हे पार्थ ! मैं उसे 'सर्वज्ञ-ज्ञानी' समझता हूँ, श्रुतियोंके सिद्धान्तोंका भी वही वन्द्य और ज्ञानविषय है ॥ ४१ ॥ संपूर्ण योगसाधन-समृद्धि अकेले उसी ज्ञानी पुरुषके काम आती है, किंबहुना वह ज्ञानी पुरुष ज्ञानका जीवनदाताही समझना चाहिये ॥ ४२॥ परन्तु हे पार्थ ! बहुत विस्तार नहीं करते। कारण, इस प्रकारसे इस संसारवृक्षकी अशाश्वततताको जो पुरुष जानता है, उस ज्ञानी पुरुषके वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ?॥४३॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

फिर इस संसाररूपी अधःशाखी वृक्षमें सरलतापूर्वक ऊपर जानेवाली शाखायें भी बहुतसी रहती हैं ॥ ४४ ॥ तथा जो शाखायें नीचेकी ओर फैलती रहती हैं, उनमें भी अनेक जडें फूटती हैं और उन जडोंके नीचे भी फिर वल्लियें तथा पल्लव फूटकर उनका विस्तृत विस्तार होजाता है, ॥४५॥ इस प्रकार जो हमने प्रस्तुतविषयविषे प्रस्तावनारूपसे आरंभमें कह दिया था, हे पार्थ ! उसीका अब सरलताके साथ स्पष्टशब्दोंसे विवेचन कर देते हैं तुम सुनो ॥ ४६ ॥ अब इस वृक्षका अज्ञानरूपी मूल दृढ होगया, यह बात तुम समझे उससे अष्टधामायाका प्रादुर्भाव होता है और वेदरूपी विस्तृत-वनोंके साथ महत्तत्त्वादिकोंको सामर्थ्यलाभ प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ और प्रथमारम्भमें इस वृक्षकी जडमेंसे स्वेदज, फिर जारज, फिर उद्भिज्ज और अण्डज इस प्रकारकी चार विस्तृत शाखायें उत्पन्न होती हैं ॥ ४८ ॥ फिर उनके एक-एकके अंगमेंसे चौरासी लाख अंकुर फूटते हैं और फिर उन अंकुरोंकी शाखाओंसे अपार जीव-रूपी शाखायें प्रादुर्भूत होती हुई अपनी भीड जमाती हैं ॥ ४९ ॥ इनमेंसे जो सीधी सरलतासे जानेवाली शाखायें हैं, उनसे जो आडी-आडी शाखायें उत्पन्न होती हैं, वे नाना-प्रकारकी सृष्टिरूपी मालाकार शाखायें जीवजातिकी नित्य-परंपराको चलानेवाली हैं ॥ १५० ॥ स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये व्यक्ति-भेदोंके सिक्के अपने स्वाभाविक विकाररूपी बोझोंसे आन्दोलित होते रहते हैं ॥ ५१ ॥ जैसे आकाशमें वर्षाकालके समय जलभरे काले मेघ आकर संपूर्ण आकाशको व्याप रखते हैं, उसी प्रकार ये सम्पूर्ण आकार अज्ञानके कारण विस्तार पाते हैं ॥ ५२ ॥ पश्चात् इस प्रपंच-वृक्षकी शाखायें अपने ही भारसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



झुकती हुई एक दूसरीमें मिलती हैं, जिससे गुणक्षुब्धरूपी वायु प्रकट होती है ॥ ५३ ॥ तब गुणोंके आत्यंतिक क्षोभसे यह ऊर्ध्वमूल वृक्ष तीन जगहमें फट जाता है ॥ ५४ ॥ उस समय जब रजोगुणके झोंके वेगके साथ जोर-जोरसे आते हैं, तब आन्दोलित होती हुई मनुष्यजातिरूपी शाखा जोशके साथ ऊपर उठती है ॥ ५५ ॥ परन्तु वह न ऊपर जा सकती है, न नीचे आ सकती है, किन्तु बीचमें ही उसे रुकना पडता है, तब उसमें चातुर्वर्ण्य-रूपी चार आडी शाखायें उत्पन्न होती हैं ॥ ५६ ॥ उनमें विधि और निषेधके वचनरूपी वेदवाक्योंके उत्कृष्ट पल्लव हरेभरे होते हुए अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार डोलते रहते हैं ॥ ५७ ॥ अर्थ और काम विस्तार पाते हैं, और फिर उनके विस्तारमें नये-नये अंकुर उत्पन्न होकर वे, ऐहिक विषयोपभोगके नये, किन्तु क्षणभंगुर स्थल निर्माण करते हैं ॥ ५८ ॥ तब प्रवृत्तिकी प्रबल वृद्धिकी इच्छासे जो शुभाशुभ ( भले-बुरे ) कर्मोंकी अनेक शाखायें उत्पन्न होती हैं, उनकी तो गिनती ही नहीं हो सकती ॥ ५९ ॥ उसी प्रकार पूर्व भोग भोगकर क्षीण होनेसे जब पुरानी शरीररूपी शाखायें सूखकर गिरजाती हैं, तब उसी क्षण नये शरीरोंकी वृद्धिके अंकुर फूटकर विस्तार पाने लगते हैं ॥ १६० ॥ और उनसे शब्दादि विषयोंके सुन्दर और स्वभावतः ही मोहक रंगोंके नित्य नये-नये पल्लव उत्पन्न होते हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार रजोगुणरूपी वायुकी भयंकर आँधीसे मानवशाखाओंकी जो भीड पैदा हो जाती है, उसे संसारमें मनुष्यलोक कहा जाता है ॥ ६२ ॥ फिर जब यह रजोगुण वायुकी आँधी किंचित् काल शांत हो जाती है, और जब तमोगुणरूपी घोर प्रभंजन वायु गर्जने लगती है ॥ ६३ ॥ तब इसी मानवशाखामें नीचेकी ओर अधम-वासनारूपी डालियें उत्पन्न होती हैं और उन डालियोंमें दुष्कर्मोंके पल्लव प्रकट होने लगते हैं ॥ ६४ ॥ फिर अप्रवृत्तिके अर्थात् कुमार्गरूपी उलटे मार्गके बिखरेसे, परन्तु दृढ और जोरदार अंकुर एकसाथ सीधे बाहर निकलने लगते हैं, और उन्हींसे प्रमादरूपी दुष्कर्मोंके पत्ते, अंकुर और डालियें हरीभरी होती हैं ॥ ६५ ॥ हे पार्थ ! ऋक्, यजुः और सामवेदमें जो निषेध-वचन कहे हैं, वे मानो उन शाखाओंमें झूलनेवाले पल्लव ही हैं ॥ ६६ ॥ और परपीडाकारक जारण-मारणकी बीजोपदेशक जो अथर्वणवेदकी वासनावली है, वह अपने पल्लवोंसे हरीभरी हो जाती है ॥६७॥ और ज्यों-ज्यों यह प्रकार जोरसे चलता है त्यों-त्यों कुकर्मरूपी जडें मजबूत होजाती हैं और जन्मरूपी शाखायें आगे-आगे बढने लगती हैं ॥ ६८ ॥ फिर कर्मभ्रष्टोंकी प्रमादतासे प्रचंड और विशाल दुष्कर्मी चांडालादि कनिष्ठजातियोंकी शाखाका एक जाल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बनता है, जिसमें वे कर्मभ्रष्ट भी बँधे जाते हैं ॥ ६९ ॥ तथा पशु, पक्षी, सूकर, बाघ, बिच्छू, सर्प इत्यादि आडी-टेढी शाखाओंके झुंडके झुंड पैदा होकर उनका विशाल विस्तार हो जाता है ॥ १७० ॥ परन्तु हे पार्थ ! ऐसी ये अनेक शाखायें नित्य नयीं और हरीभरी हो पल्लवित रहती हैं। और उन शाखाओंमें केवल नरकभोगके ही फल लगते हैं ॥ ७१ ॥ तथा कुकर्मसंगके कारण जिन्हें बडप्पन प्राप्त हो रहा है, ऐसे हिंसाविषयादि दुष्कर्मोंकी प्रवृत्तिको बढानेवाले अनेक जन्मरूपी अंकुर, नित्यशः उनमें ऊगते रहते हैं ॥ ॥ ७२ ॥ इस प्रकार वृक्ष, तृण, लोहा, मिट्टी, पत्थर आदि प्रकारकी शाखायें प्रकट होती हैं और उनमें भी उसी प्रकारके फल लगते रहते हैं ॥ ७३ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार मनुष्य-शाखासे लेकर स्थावरवर्गकी संपूर्ण वृद्धितक ये शाखायें प्रकट होती हैं ॥ ७४ ॥ अतएव मानवशाखाओंकी जो छोटी-छोटी डालियें हैं, वे नीचेकी शाखाओंकी जडें ही समझनी चाहिये, कारण यह प्रपंच-वृक्ष उन डालियोंमेंसे ही बढने लगता है ॥ ७५ ॥ और यदि इस प्रकार कल्पना न की जाय तो आरंभका जो ऊर्ध्वमूल है, उसकी ये अधोगामी शाखायें उसका मध्यही होंगी ! ॥ ७६ ॥ परन्तु सदसत्क्रियारूपी तमोगुणकी तथा सत्त्वगुणकी जो शाखायें इस वृक्षमें अधोर्ध्व विस्तरित हो रही हैं, उनमें भले-बुरे कर्मोंके अंकुर निर्माण होते हैं, ॥ ७७ ॥ और वेदत्रयी जो पत्तोंसे पल्लवित हो रही है, वह अन्यशाखाओंमें नहीं विकसित होती, कारण हे पार्थ ! वेदत्रयीके विषय (विधि) मनुष्योंके अतिरिक्त दूसरोंको अगम्य होनेसे उसका अस्तित्व मनुष्यशाखामें ही हो रहता है ॥७८॥ अतएव ये मनुष्यतनुरूपी शाखाएँ यद्यपि ऊर्ध्वमूलमेंसे ही निकलती हैं, तथापि कर्मवृद्धिका कारण होनेमें ये शाखायें ही जडें बनती हैं ॥ ७९ ॥ दूसरे सामान्य वृक्षोंमें भी जैसे शाखा-विस्तार होनेमें जडें ही कारण होती हैं, और ज्यों-ज्यों मूल दृढ होते जाते हैं, त्यों-त्यों विस्तार भी फैलता जाता है ॥ १८० ॥ यही प्रकार इस शरीरका भी है। कारण जबतक कर्म है, तबतक देहपरंपरा अव्याहत चालू है, और जबतक देहका आवागमन चलता है, तो उसे कर्म ( कोई व्यापार ) किये बिना छुटकारा ही नहीं ॥८१॥ इस कारण यह मानवशरीर ही अन्य-कर्मोंकी शाखाओंका मूल ( जड ) है, ऐसा तुम्हें समझना चाहिये। और हे पार्थ ! वह किसी तरह मिटाये मिटा नहीं जाता। इसप्रकार श्रीजगज्जनक भगवान् श्रीकृष्णने कहा ॥ ८२ ॥ फिर भगवान् कहते हैं—हे पार्थ ! जब तमोगुणरूपी दारुण प्रभंजन शांत होजाता है, तो उसीक्षण सत्त्वगुणरूपी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रचंड आँधी उठने लगती है, ॥ ८३ ॥ तब, उस समय इस मानवशरीररूपी मूलोंसे ही सुवासनारूपी अंकुर प्रकट होने लगते हैं और उनमें सत्कृत्यरूपी पल्लवोंका विस्तार होजाता है ॥ ८४ ॥ ज्ञानप्रकाशका उदय होनेके कारण उस समय बुद्धिके तीव्र सामर्थ्यकी डालें एक क्षणमें उत्पन्न हो, विस्तृत हो जाती हैं ॥ ८५ ॥ बुद्धिकी सरल और सीधी शाखायें स्फूर्तिके सामर्थ्यसे दृढ होती हुई, बुद्धिप्रकाशकी सहायतासे लम्बी बढकर विवेकतक जा पहुँचती हैं, और विचारका आश्रय प्राप्त करती हैं ॥ ८६ ॥ फिर बुद्धिके रसद्वारा पुष्ट हुए और भक्तिरससे भरे हुए श्रद्धारूपी सद्वृत्तिके सुंदर सुशोभित पत्तोंवाले अंकुर प्रकट होते हैं ॥ ८७ ॥ तब इन सद्वृत्तिरूपी विपुल अंकुरोंकी अग्रोंपर एकदम वेदवचनध्वनिकी मधुर घोषणा होने लगती है ॥ ८८ ॥ तथा उन वेदवाक्योंमेंसे शिष्टाचार, वेदोक्तविधि, यज्ञादिकर्म इत्यादिकोंके विस्तारकी असंख्य पत्तियें दूसरी पत्तिमें उत्पन्न होती रहती हैं ॥ ८९ ॥ फिर यमदमादि जिनमें लटक रहते हैं, ऐसी तपोंकी अनेक डालियें प्रकटती हैं, और वे यद्यपि कोमल रहती हैं, तथापि वे विशाल वैराग्यको जन्म देनेका सामर्थ्य रखती हैं ॥ १९० ॥ फिर विशिष्ट व्रतोंके अंकुर धैर्यरूपी तीक्ष्ण अग्रोंसे युक्त होते हुए, उसी क्षण सरलतापूर्वक ऊँचे जाते हैं ॥ ९१ ॥ इनमें जो वेदरूपी सघन पल्लव रहते हैं, वे सत्त्वगुणके प्रचंड प्रभंजनका जबतक प्रवाह-समय चलता है, तबतक अपनी सुविद्याका फडफडाहट करते रहते हैं ॥ ९२ ॥ इसके बाद धर्मशाखाकी वृद्धि होने लगती है और उसीमें सीधी और सरल जन्मशाखा उत्पन्न होती है, जो स्वर्गसुखादि फलोंसे हरीभरी शाखायें प्रकट करती है ॥ ९३ ॥ तथा उपरतिरूपी लालिमा लिये हुई धर्म-मोक्ष-शाखाओंकी नित्य नूतन पत्तियां बढने लगती हैं ॥ ९४ ॥ उसीप्रकार रवि-चंद्र इत्यादि श्रेष्ठ ग्रह, पितर, ऋषि, विद्याधर आदिकोंकी आडी शाखायें प्रकट होती हैं ॥ ९५ ॥ परन्तु इनके ऊपर भी अत्यंत उँचाईमें फलसमूहोंसे व्याप्त, इन्द्रादिक महाशाखाओंके झुंडके झुंड उत्पन्न हो रहते हैं ॥ ९६ ॥ और उनके भी ऊपर तपोराशि मरीचि, कश्यप आदिकोंने अपने तपःसामर्थ्यसे विशाल शाखायें निर्माण कर रखी हैं ॥ ९७ ॥ इस प्रकार एकसरीखी शाखापर शाखाएँ लगी रहती हैं। इन ऊँची शाखाओंका यह ऐसा विस्तार यद्यपि मूलमें अल्प है, तथापि पैंडी-पैंडीसे ऊपर बढता जाता हुआ बडा विस्तीर्ण होता है, और इसमें शाखाओंकी नोकोंमें फलोंकी विशाल बहार आती है ॥ ९८ ॥ हे पार्थ । इन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शाखाओंके भी ऊपर जो शाखायें हैं, उनके अग्रभागोंमेंसे ब्रह्मा, शंकर आदिकों पर्यंतके सब अंकुर बाहर निकलते हैं ॥ ९९ ॥ ऐसी स्थितिमें फलभारोंसे वे शाखायें नीचेको झुकती हुई यहांतक नीचे आजाती हैं कि, फिर वे जडमें आ मिलने पर ही उनका झुकना थम जाता है ॥ २०० ॥ हे पार्थ ! यह कुछ विशेष आश्चर्यकी बात नहीं, सामान्यवृक्षकी भी यही स्थिति रहती है कि, जब वह फलभारसे झुकने लगता है, तो उसकी शाखायें मूलमें ही विश्रांति पाती हैं ॥ १ ॥ हे पार्थ ! उसी प्रकार जिस मूलसे इस संसार-वृक्षकी उत्पत्ति होती है, ज्ञानवृद्धिकी अधिकतासे उसकी ये शाखायें उसी मूलमें आ भिडती हैं ॥ २ ॥ अतएव ब्रह्मलोक तथा शिवलोकके आगे जीवके बढनेकी गति नहीं होती । कारण इन लोकोंमें पहुँचनेपर जीव ब्रह्मस्वरूप ही होजाता है अर्थात् आगे परब्रह्मही रहता है ॥ ३ ॥ परन्तु अब यह रहने दो । ब्रह्मादिदेव भी अपने सामर्थ्यसे ऊर्ध्वमूलकी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ४ ॥ हे पार्थ ! इसके ऊपर भी सनकादि नामोंसे जो प्रसिद्ध शाखायें हैं, वे न फलोंके भारसे झुकती हैं न मूलमें आकर स्पर्श करती हैं, किंतु ऊपरके ऊपर ब्रह्ममें ही प्रविष्ट हो रहती हैं ॥ ५ ॥ इस प्रकार मनुष्यसे लेकर ऊपर ब्रह्मलोकतक दूसरी शाखाओंकी पल्लवों समेत अत्यंत ऊँचाईमें वृद्धि हो रही है ॥ ६ ॥ हे पार्थ ! ये जो ऊपरी ब्रह्मादि शाखायें हैं, उनका उगमस्थान मानवशाखायें ही हैं, अतएव हमने मानवशाखाको ही नीचेकी जडें कह दिया है ॥ ७ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार इस अलौकिक ऊर्ध्वमूल, अधःशाखी संसारवृक्षका वर्णन कर तुम्हें समझा दिया है ॥ ८ ॥ उसी प्रकार इस प्रपञ्चवृक्षमें नीचेकी ओर जडें उत्पन्न होती हैं ऐसा जो कहदिया था, उनका भी सविस्तर स्पष्टीकरण कर समझा दिया है । अब इस संसारवृक्षको कैसा उखाडा जाता है, उसका वर्णन करते हैं, तुम सुनो ॥ ९ ॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥

परन्तु हे किरीटी, पार्थ ! तुम्हारे मनमें कदाचित् ऐसी शंका उपस्थित होगी कि, यह इतना बडा प्रचंड वृक्ष उखाडनेमें कोई सामर्थ्यवान् साधन कहीं हो सकता है ? ॥ २१० ॥ कारण इस वृक्षकी ऊपरकी शाखायें देखी जाँय, तो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वे तो ब्रह्मलोकतक जा पहुँची हैं और मूलको ढूँढना चाहें तो वह निराकार निर्गुण ब्रह्ममें ही है ! ॥ ११ ॥ फिर यह वृक्ष अधःशाखाओंके विस्तारसे विस्तृत होता हुआ, स्थावरके तलको पहुँचा है और मध्य भागमें ( बीचवाली ) मानव शाखायें तो अलग ही हैं ! ॥ १२ ॥ ऐसे प्रचंड और विस्तृत तथा विलक्षण वृक्षको कौन उखाड सकेगा या नष्ट करेगा ? हे पार्थ ! ऐसा अवश्य संदेह होगा, परन्तु ऐसा दुबला और क्षुद्र विचार तुम अपने मनमें भी मत आने दो ॥ १३ ॥ देखो, पार्थ ! यद्यपि यह कार्य देखनेमें बडा कठिनसा ज्ञात होता है, तो भी इसे जडमूलोंसे उखाडनेमें विशेष श्रमकी आवश्यकता ही क्या है ? अजी, छोटे बच्चेको डरानेवाले हौवेको भगानेमें क्या कहीं देशान्तर जाना पडता है ? ॥ १४ ॥ आकाशके गंधर्वनगर ( अभ्रपटल ) क्या गिराने पडते हैं ? क्या शशशृंगोंको कभी तोडना भी पडता है ? अथवा आकाशपुष्प ( जिनका अस्तित्व ही नहीं ) तोडनेमें किसीको क्या श्रम करना पडता है ? ॥ १५ ॥ उसी प्रकार हे पार्थ ! यह वृक्ष जहां सचमुच सत्य ही नहीं, फिर इसे उखाडनेमें इतना कौनसा संकट हो ? किंवा श्रम ही किस लिये करना पडेंगे ? ॥ १६ ॥ हमने जो इसके मूलका तथा शाखाओंका सविस्तर वर्णन किया, उसे तुम वन्ध्याके लडका-लडकियोंसे भरे घरका ही समझो ! ॥ १७ ॥ देखो स्वप्नकी भली बुरी बातें क्या जागृतिमें कुछ कामकी हो सकती हैं ? यही प्रकार इस वृक्षकी कहानीका निरर्थक ही समझो ॥ ॥ १८ ॥ और यदि ऐसा न माना जाय, तथा हमने जो वर्णन कर दिया है, उसके समान यदि यह झाड और उसकी जडें ये सचमुच सत्य ही हों, ॥ ॥ १९ ॥ तो ऐसा किस माताको पुत्र पैदा होता कि जो अपने बलसे इसे उखाड सके ? क्या आकाश भी कभी फूँकसे उडा दिया जाता है ? ॥ २० ॥ अतएव हे अर्जुन ! हमने जो इस वृक्षके विषयमें वर्णन कर दिया है, वह केवल मायाका ही वर्णन तुम समझो । ऐसा भी कभी हो सकता है कि, जिस कच्छपीको दूधही नहीं, उसके दूधके मक्खनका घृत राजाको परोस दिया ! जैसे यह असंभव है, उसी प्रकार इस वृक्षमें भी असंभवता ही समझनी होगी । ॥ २१ ॥ मृग-जलोंके तालाव तो दूरसे ही भर हुए मालूम होते हैं, परन्तु यद्यपि वे भरे हुए दिखाई देते हैं, तो क्या तुम उनके जलसे धान, या केलेके वृक्ष आदि बना सकते हो ? ॥ २२ ॥ अरे ! मूल अज्ञान ही जहां निरर्थक वा मिथ्या है, तो फिर उससे होनेवाला कार्य सार्थक या सत्यताका कैसे होगा ? तात्पर्य, इस प्रकार संसार-वृक्षका विचार करनेपर, वह मिथ्या है यही सिद्ध होगा ॥ २३ ॥ परन्तु यदि ऐसा है, तो भी उसका अंत नहीं, ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो कहा जाता है, वह भी एक प्रकार सत्य ही जान पडता है ॥ २४ ॥ कारण, जबतक जागृतावस्था प्राप्त न हुई, तबतक कभी निद्राका अंत हो सकता है ? अथवा रात्रिका अंत होनेके पूर्व कहीं उषःकाल भी प्राप्त हो सकता है ? ॥ २५ ॥ तद्वत्, हे पार्थ ! जबतक विवेकद्वारा मायाको दूर नहीं हटाया जा सकता, तबतक इस संसार-वृक्षका कभी अन्त नहीं हो सकता ॥ २६ ॥ जबतक जोरदार वायुका जोर शांत नहीं होगा, तबतक समुद्रके तरङ्ग भी अनन्त ही दिखाई देंगे ॥ २७ ॥ अतएव जैसे मृगजलका भास भी सूर्यके अस्त होनेपर सहज ही लुप्त हो जाता है, या दीपकके बुझाने पर ही प्रभा नष्ट हो जाती है, ॥ २८ ॥ तद्वत् ही केवल मूल-मायाका लोप करनेवाला ज्ञान जब प्राप्त होता है, तभी इस संसार-वृक्षका अन्त हो जाता है, अन्यथा इसका अन्त कभी भी नहीं हो सकता ॥ २९ ॥ इसी प्रकार हे पार्थ ! इस वृक्षको जो अनादि कहा जाता है, वह भी असत्य नहीं वह भी उपरोक्त वर्णनानुसार ही सब है ॥३०॥ कारण यह संसार-वृक्ष स्वयं ही जब सत्य नहीं है, अर्थात् जो वस्तु है ही नहीं तो उसका आरम्भ कहांसे और कैसे हो सकता है ? जैसे कि ' मां ' ही नहीं, तो उस लडकेकी आदिता कहांसे सिद्ध होगी ? ॥ ३१ ॥ जो वस्तु किसी स्थलमें उत्पन्न होती है, उसका आदित्व कहना योग्य है, परन्तु जो मूलमें है ही नहीं, उसे आदि कहांसे हो ? ॥ ३२ ॥ अत एव जो जन्मता ही नहीं, या जिसका अस्तित्व भी नहीं, उसकी माँ कौन ? इस प्रकार पूँछनेपर क्या उत्तर दिया जा सकता है ? एवं च, इसका सारांश यही समझना चाहिये कि, यह संसार-वृक्ष मूलमें है ही नहीं, और इसी कारण उसे अनादि कहा जाता है ॥३३॥ किसी ज्योतिषिके पास कोई वन्ध्या-पुत्रकी जन्मपत्रिका बनानेको लावे तो क्या बन सकती है ? जहां पुत्रका अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता, वहां पत्रिका किसकी ? अथवा आकाशमें नीलवर्णकी जमीन होना कभी संभव हो सकता है ? ॥ ३४ ॥ हे पार्थ ! क्या ख-पुष्पका डठल कोई ताड सकता है ? तात्पर्य, जिस संसारवृक्षको अस्तित्व ही नहीं, फिर उसे आदि, आरम्भ और जन्म कहांसे प्राप्त होंगे ? ॥ ३५ ॥ जैसे घटका मिथ्यात्व अथवा प्राग्भाव स्वयं सिद्ध ही है, उसी प्रकार यह संसारवृक्ष भी जड-शाखोंसे सर्व प्रकार मिथ्या होनेके कारण, यह अनादि ही समझा जाता है ॥ ३६ ॥ हे पार्थ ! तुम यह बात समझ रखो कि, इसका न आदि है, न अन्त है; परन्तु मध्यमें जो कुछ यह भासमान हो जाता दिखाई देता है, वह भास भी मिथ्या ही समझो ॥ ३७ ॥ देखो, जो मृगजल किसी भी पर्वतसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



निकलता नहीं, न कहीं समुद्रमें भी जा पहुँचता है, परन्तु बीचमें ही मिथ्या भासमान होता है ॥ ३८ ॥ यही प्रकार इस संसार-वृक्षके विषयमें समझना होगा । कारण, यदि इसके विषयमें यथार्थ विचार किया जाय, तो यह भी मृगजलवत् आभास ही प्रतीत होगा; कारण, इसको भी न आदि है न अन्त है; अतः वह कभी सत्य नहीं है । तथापि इसकी मिथ्या आश्चर्यताकी नवलाई तो देखो कि, वह मध्यमें मात्र अवश्य भासमान होता है ! ॥३९॥ इंद्रधनुष जैसे अनेक चित्रविचित्र रंगोंसे सजा हुआ शोभायमान दिखाई देता है, उसी प्रकार यह संसार अज्ञानसे सत्यसा दिखाई देता है ॥ २४० ॥ जैसे कोई चतुर बहुरूपिया अपने वेषसे लोगोंको भुलाता है, उसी प्रकार यह संसार उस भासमान स्थितिके समय अज्ञानियोंकी दृष्टिको भुला देता है, या उसे देख वे भूलते हैं ॥ ४१ ॥ और यह भी विचारकी बात है कि, आकाशमें न होती हुई भी श्यामता प्रकट दिखाई देती है, और उसी क्षण वह नष्ट भी हो जाती है, ॥ ४२ ॥ स्वप्नकी मिथ्या बातें यदि सत्य भी मानी जाँय तो वे भी क्या एकसी प्रतीत होती रहती हैं ? वे तो क्षणमें ( जागृतावस्थामें ) विलीन होती हैं, वैसे ही स्वप्नवत् क्षणभर होनेवाला यह आभास मिथ्या ही है ॥ ४३ ॥ जलमें पडे हुए मर्कटके प्रतिबिम्बके समान, देखनेसे तो यह सत्यसा जान पडता है, परन्तु प्रतिबिम्बको देखनेवाला बन्दर, यदि उसे पकडने जाय तो जैसे उसके हाथ कुछ नहीं आता; उसी प्रकार इस भासमान आभासको, यदि सत्य भी माना जाय तो ठीक बन्दरके समान ही स्थिति होती है अर्थात् दिखाई देनेपर भी हाथ कुछ नहीं आता ! ॥ ४४ ॥ और इस आभासकी स्थिति तथा संहार इतनी शीघ्रतासे होते रहते हैं कि, महासागरके उत्पन्न और विलीन होनेवाले चंचल तरंग भी उसकी बराबरी करनेमें असमर्थ ही होंगे ! इतना ही नहीं, वरन् स्वभावतः ही चञ्चलवृत्ति जो विद्युत्, वह भी उसकी समानताको नहीं प्राप्त कर सकती ! ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार ग्रीष्मान्तकालकी वायुका आगा-पीछा नहीं देखाजाता अर्थात् कहांसे आई और कहां जायगी यह बात उसकी अस्थिरतासे नहीं जानी जाती, उसी प्रकार संसार-वृक्षकी अस्थिर स्थितिका भी ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता ॥४६॥ तात्पर्य, इस वृक्षको न आदि है न अन्त है, तथा न स्थिति है न रूप है; फिर उसके उन्मूलनमें हे पार्थ ! क्या श्रम होंगे ? वा सामर्थ्यका भी क्या काम है ? ॥४७॥ जो स्वयं न होता हुआ भी अपने अज्ञानके कारण ही बढा हुआ है, हे अर्जुन ! उसपर आत्मज्ञानकी कुल्हाडीसे प्रहार करता हुआ तुम उसे तोड डालो ॥४८॥ इसके अतिरिक्त ( आत्मज्ञानके विना ) जो जो कुछ उपाय तुम इस विषय-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( वृक्षके तोडने ) में करोगे, वे सब तुम्हें इस संसारवृक्षमें अधिकाधिक बंधन-कारक ही होंगे ॥४९॥ और इस प्रकारकी स्थिति ( ऊपर-नीचेकी शाखाओंमें घूमना) प्राप्त होनेपर तुम कहांतक घूमते रहोगे अतएव इसका मूलरूप जो अज्ञान उसेही तुम सत्यज्ञानरूपी साधनसे तोड डालो; जिससे वह स्वयं ही गिर जायगा ॥२५०॥ देखो अर्जुन ! केवल रस्सीको अज्ञानसे ' सर्प सर्प ' कहकर, उसे मारनेके लिये लकडियें इकट्ठी करना, क्या यह काम वृथाश्रम या हास्यास्पद नहीं है ? ॥ ५१ ॥ मृगजलकी नदी तैर जानेके लिये नौकाको ढूँढनेवाला जैसे अरण्यके नालेमें सचमुच ही डूब जाता है, ॥ ५२ ॥ उसी प्रकार इस असत्य ( मिथ्या ) संसारके नष्ट करनेवाले उपायोंको ढूँढता हुआ मनुष्य, ढूँढते ढूँढते स्वयं अपना नाश कर लेगा और आत्मज्ञानसे वंचित रहनेके कारण, उसका संसार-भ्रम अधिकाधिक बढता ही रहेगा ॥५३॥ अतएव हे पार्थ ! जैसे स्वप्नमें लगे हुए प्रहारको दूर करनेमें सच्चा उपाय जागृति ही औषधि होती है, तद्वत् इस अज्ञानमूल-संसारको छाँट डालनेके लिये केवल एक ज्ञान-कुठार शस्त्र ही सच्चा उपाय होता है ॥ ५४ ॥ परन्तु इस ज्ञानकुठारको चलानेके लिये बुद्धिमें ऐसा वैराग्यरूपी अखण्ड और निरर्गल नया सामर्थ्य होना आवश्यकीय है कि, इस शस्त्रको वह सहजहीमें चलाते जाय ॥५५॥ और नूतन वैराग्यकी प्राप्ति होतेही धर्म, अर्थ तथा काम यह त्रिपुटी आपही आप ऐसी भाग जानी चाहिये जैसे कि, खाये हुए नये, परन्तु दोषी अन्नको खानेवाला कुत्ता वमन कर उसी क्षण भाग जाता है ॥ ५६ ॥ हे मध्यमपाण्डव अर्जुन ! यह वैराग्य ऐसा दृढतर प्रबल होजावे कि, पदार्थमात्रकी इसे घृणा उत्पन्न हो ॥ ५७ ॥ ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर, फिर इस देहाभिमानरूपी आच्छादनको एकसाथ उडादेना और प्रत्यग्बुद्धिरूपी अर्थात् आत्मभावना-रूपी बुद्धिके हाथमें इस ज्ञानशस्त्रको दृढतासे पकडना चाहिये ॥ ५८ ॥ फिर इस शस्त्रको विवेकरूपी सिलापर घिसकर ' अहंब्रह्मास्मि ' ज्ञानकी तीव्र-धारासे युक्त करना और आत्मबोधरूपी चूर्णसे ऐसे घिसते रहना कि जिसमें ज्ञानकी शुद्ध एकताका उबटन लगा हुआ दिखाई दे ॥ ५९ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारका यह शस्त्र यद्यपि ठीक है ऐसा ज्ञात हो, तथापि अपनी निश्चयरूपी मुट्ठीमें कितना सामर्थ्य है, इस बातका अनुभव करनेके लिये एक दो बार इसे चलाकर भी देखना चाहिये । फिर इस शस्त्रको मननके द्वारा भी ठीक-ठीक सँभालते रखना चाहिये ॥ २६० ॥ इसके बाद यह ज्ञानरूपी शस्त्र और स्वयं ( तुम ) निदिध्यासनद्वारा जब एकताको प्राप्त होगे तब प्रहार करनेके लिये दूसरी वस्तु ही कहां रहेगी ?


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्थात् अद्वैतता ही होगयी ॥ ६१ ॥ इसलिये ऐसा अद्वैततेजके निर्णयसे युक्त हुआ यह ज्ञानशस्त्र प्राप्त होनेपर, उसके प्रहारके सामने यह संसारवृक्ष कैसे बच सकेगा ? ॥ ६२ ॥ जैसे शरदृतुकी प्रथम वायु आकाशके साधारण मेघरूपी कचराको उडा देती है, अथवा सूर्योदयका प्रकाश जैसे संपूर्ण अंधकारका एक ग्रास करता है, ॥ ६३ ॥ अथवा जागृतावस्था जैसी स्वप्नरूपी नाटककी समाप्ति करदेती है, वही अवस्था आत्मज्ञानरूपी शस्त्रकी पैनी धार चलानेपर इस वृक्षकी भी होजायगी ॥ ६४ ॥ फिर जैसे चांदनीमें मृगजलका भास भी दिखाई नहीं देता, तद्वत् इस संसारतरुका वह ऊर्ध्वाधो-मूल, नीचेकी शाखोपशाखाओंका विस्तृत विस्तार आदि कुछ भी दिखाई न देगा ॥ ६५ ॥ हे वीरवर पार्थ ! इसप्रकार आत्मज्ञानरूपी कठोर कुठार-शस्त्रसे इस संसारतरुरूपी संपूर्ण ऊर्ध्वमूल-वृक्षको तुम तोड डालो ॥ ६६ ॥

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

इस प्रकार करनेसे फिर, 'इदं तत्' इत्यादि प्रकारका निर्देश करना बाकी नहीं रहता, अपनेसे जो स्वयंसिद्ध है, वह आत्मस्वरूप स्वयं आप बन अनुभव किया जाता है अर्थात् अहंतारहित आप अपना रूप हूँ ऐसा देखा जाता है ॥ ६७ ॥ परन्तु दर्पणमें देखकर उसके आधारसे जैसे मूर्खजन एकही मुखको भिन्न मानते हुए दो मुख देखते हैं, तद्वत् जो दूसरा है ही नहीं, ऐसे आत्मस्वरूपको मत देखो अर्थात् द्वैतका तुम अंगीकार मत करो ॥ ६८ ॥ हे वीरवर पार्थ ! इस आत्मस्वरूपको ऐसा देखना चाहिये जैसे भूमिगत जल निर्झर कुँआ खोदनेके पूर्व अपने स्थानमें संचित हुआ रहता है, ॥ ६९ ॥ अथवा जलस्थ-प्रतिबिम्ब जलके शुष्क होनेपर जैसे सूर्यबिम्बमें लीन होजाता है, किंवा घट फूटनेपर जैसे घटाकाश मूल-आकाशमें विलीन होता रहता है, ॥ २७० ॥ अथवा अग्निमें डाली हुई लकडियें जलकर भस्म होनेके बाद, जैसे अग्नि स्वस्वरूपमें लीन होती है, हे पार्थ ! इसरीतिसे ही इस आत्मस्वरूपका देखना होता है ॥ ७१ ॥ जिह्वासे जैसे जिह्वाका ही स्वाद लिया जाय अथवा आँखें अपनीही नेत्रगत पुतलियें देखें हे पार्थ ! ऐसाही आत्मस्वरूपको देखनेका प्रकार है ॥ ७२ ॥ अथवा प्रकाशको प्रकाशमेंही मिलाया

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जाय, आकाशको आकाशमेंही घुसेडा जाय अथवा जलको जलाशयमें भरा-दिया जाय, ॥ ७३ ॥ इसप्रकारके सरीखा स्वयं ही अपनेको अद्वैतदृष्टिसे देखनेका यह प्रकार है । यह बात तुम दृढनिश्चयसे समझ रखो, यह मैं विचारके साथ कह रहा हूँ ॥ ७४ ॥ जिसका द्रष्टा न होते भी उसे देखना चाहिये, जिसके जाननेकी इच्छा न रखकर (ज्ञाता न होकर) भी उसे जानना चाहिये, जिस स्थानको "आद्यपुरुष" कहा जाता है,॥७५॥उस वस्तुके विषयमें भी श्रुतियें उपाधिका आश्रय लेकर, वृथा वाचालता करती हुई अपनी जिह्वायें ऊपर उठाती हैं और नाम-रूपोंकी चर्पटपंजरी शुरूकर वर्णन करती रहती हैं । ॥ ७६ ॥ मुमुक्षुजन ऐहिक तथा स्वर्गादि पारलौकिक सुखसे ऊबकर ( तिरस्कार कर ) योग और ज्ञानका आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं कि " जिस स्थानकी एकवार प्राप्ति होनेपर, फिर कभी वापिस नहीं आ सकेंगे " ॥ ७७ ॥ इस निश्चयसे वे मुमुक्षुजन वैराग्यके बलपर संसारके आगे निकलते हुए प्रतिज्ञाके साथ उसे जीतकर, ऐसे दौडते हैं कि ब्रह्मलोकरूपी कर्मपहाडका भी उल्लंघन कर वे एकदम उसके पार हो जाते हैं ॥ ७८ ॥ और वे ज्ञानी जब अहंकारादि भावनाओंको जडमूलोंसे साफ निकालकर, जिस घर जानेका अनुज्ञापत्र प्राप्त करते हैं, ॥ ७९ ॥ जिस मूलस्थानसे इतनी बडी भारी विश्वपरंपरा, दुर्दैवी मनुष्यकी सूखी ( व्यर्थ ) आशावृद्धिकी समान बाहर निकलती रहती है, ॥ २८० ॥ तथा जिस वस्तुके अज्ञानके कारण ही यह अपरंपार विश्वका व्याप प्रतीत हो जाता है तथा जो मूलमें ही मिथ्या हो, उस ' अहं त्वं ' द्वैतके अवास्तवत्वका प्रतिपालन हो रहा है, ॥ ८१ ॥ हे पार्थ ! वह आद्य वस्तु, वह आत्मस्वरूप स्वयं आपरूप हो, ऐसा देखना चाहिये, जैसे हिम ( वर्फ ) हिमको ही जोडता ( जमाता ) हो ॥ ८२ ॥ हे धनंजय ! उस वस्तुके स्वरूपको पहँचाननेका और एक लक्षण ऐसा है कि, जिसकी भेंट होनेपर, उस स्थानसे लौटकर फिर कोई वापिस आता ही नहीं ॥ ८३ ॥ परन्तु हे पार्थ ! उस वस्तुकी भेंट उन्हींको हो सकती है, जिन पुरुषोंका ज्ञान सर्वत्र समभावसे एकरूप हो, प्रलयकालीन जलके समान सर्वत्र परिपूर्णतया भर रहा हो ॥ ८४ ॥

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे पार्थ ! वर्षाकालके समाप्त होनेपर, मेघ जैसे आकाशमेंसे आपही आप चले जाते हैं, उसी प्रकार जिन पुरुषोंके मनोंमेंसे मान और मोह निकल गये हैं, ॥ ८५ ॥ अथवा किसी अत्यंत दरिद्री और निष्ठुर मनुष्यको जैसे उसके नातेदार लोग त्याग अथवा तिरस्कार कर, उसे छोड देते हैं, तद्वत् ही जिन पुरुषोंके पास कोई विकार रहना ही नहीं चाहते अथवा वे पुरुष उन विकारोंके पंजेमें आकर फँसते ही नहीं ॥८६॥ किंवा जैसे केलेका वृक्ष फलने पर उसकी बाढ परिसमाप्त होनेके कारण वह धीरे धीरे गिरपडता है, तद्वत् प्रबल आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेके कारण जिनकी सब क्रियायें गिर गयी हैं ॥ ८७ ॥ किंवा जलते हुए वृक्षको देख, जैसे पक्षी इधर-उधर अस्ताव्यस्त भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिन पुरुषोंको देखकर संकल्प-विकल्प आपही भाग जाते हैं ॥ ८८ ॥ जिस भेदबुद्धिरूपी भूमिमें दोषोंके तृणसमूह उत्पन्न हो जोर पकडते रहते हैं, उस भेदबुद्धिका जिनमें नाम निशान ही नहीं रहता, ॥ ८९ ॥ सूर्योदय होते ही जैसी रात्रिकी समाप्ति होती है, उसी प्रकार अविद्याके साथ ही जिनका देहाभिमान नष्ट हो चुका है, ॥२९०॥ जिसकी आयु समाप्त हो गयी है, ऐसे मनुष्यको जैसे उसका शरीर अकस्मात् एकसाथ छोड जाता है, तद्वत् जिन्हें अज्ञानमय द्वैतने छोड दिया है॥९१॥ पारसमणिको जैसे लोहेका दुकाल रहता है, अथवा सूर्यको जैसे अंधेरा दृष्टिगत होता ही नहीं, तद्वत् जिन्हें द्वैतभावका सदैव दुकाल (अभाव) ही रहता है ॥९२॥ हे पार्थ ! देहमें जो सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंके समूह रहते हैं, वे जिनके सामने क्षणभर भी ठहर नहीं सकते, ॥ ९३ ॥ स्वप्नमें प्राप्त हुआ राज्य अथवा मृत्यु, जैसे जागृतावस्थामें हर्ष या शोकका कारण नहीं होता, किंवा सर्पोंके समूहसे जैसे गरुड घबरा नहीं जाता, उसीप्रकार जो पुरुष सुखदुःखादि द्वंद्वोंसे अथवा पाप-पुण्योंके समूहोंसे कभी विचलित नहीं होते, ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ और जो अनात्मरूपी जलको छाँट आत्मानंदरसरूपी दुग्धको ले, सुविचाररूपी राजहंस होरहे हैं, ॥ ९६ ॥ जैसे कि, सूर्य पृथ्वीतलपर जलकी वर्षा करता हुआ फिर अपनी ही किरणोंद्वारा उस जलको खींचकर अपने बिम्बमें प्राप्त कर ले रखता है, उसीप्रकार अज्ञानके कारण जो आत्म-वस्तु इधर-उधर अनेकरूपोंमें दिखाई देती है, उस ब्रह्मवस्तुको जो पुरुष अपनी ज्ञानदृष्टिसे अखंडाकार एकरूप कर लेते हैं, ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ किंबहुना, गंगाका प्रवाह जैसे सागरमें जा समरसताको प्राप्त होता है, तद्वत् ही जिनका विवेकरूपी निश्चय आत्मनिर्णयमें एकताको प्राप्त होता है ॥ ९९ ॥ जिसप्रकार आकाश यहांसे दूसरी जगह जाना कभी जानता नहीं, तद्वत् जो आकाशके समान सर्वत्र आत्म-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्वरूपसे भरे रहनेके कारण, किसी वासनाकी इच्छा करना, उन्हें संभवता ही नहीं ॥ ३०० ॥ जैसे ज्वालामुखी पर्वतपर कोई बीज अंकुरित नहीं हो सकता, तद्वत् जिनके अन्तःकरणमें कोई विकार उदय नहीं पासकता, ॥ १ ॥ क्षीरसागरमें घूमनेवाले मन्थारूपी मन्दराचलको निकालनेसे वह ( सागर ) जैसे निश्चल शांत होगया, उसी प्रकार जिनके चित्तमें कामादि विकारोंको उच्छृंखल लहरें न उठनेके कारण वे शांतही रहते हैं ॥ २ ॥ सोलहों कलाओंसे युक्त हुआ चन्द्रमा जैसे किसी एक अंगमें वह न्यून हो, यह बात उसमें नहीं दिखाई देती, उसी प्रकार सर्वतः तृप्त हुए उन पुरुषोंमें कोई दोष या किसी कामनाकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ ३ ॥ हे पार्थ ! अब बस, यह अवर्णनीय वर्णन कितना लम्बा बढाया जाय ? सारांश इतना ही तुम समझो कि, जैसे परमाणुसरीखे अल्पकण वायुके सामने नहीं रह सकते, विषयोंका भी उन पुरुषोंके सामने वही हाल होजाता है, अर्थात् विषयोंका स्पर्शतक उन्हें नहीं होता ॥ ४ ॥ हे पार्थ ! इसप्रकार ज्ञानाग्निसे तप्त हुए वे उपरोक्त गुणयुक्त, उस परम-पदमें ऐसे जा मिलते हैं, जैसे सदोष सुवर्ण अपने दोषोंको अग्निमें जलाकर शुद्ध होनेबाद, शुद्ध-सुवर्णमें जा मिलता है ॥ ५ ॥ अब, यदि तुम्हें यह शंका हो कि ' तत् पदं' उस पदमें मिलजाते हैं ऐसा कहनेसे किस स्थानका निर्देश किया ? तो ' वह पद ' ऐसा है कि जिसे अव्यय ( नाशरहित ) कहा जाता है, उस नाशरहित-पदमें ही वे जाते हैं तुम समझो ॥ ६ ॥ हे पांडव ! वह पद ऐसा नहीं है कि जो रूपविषय हो नेत्रोंसे दिखाई दे, अथवा जो ज्ञेय विषय हो, ज्ञानसे जाना जाय, वा ' अमुक एक है ' ऐसा पहँचाना जा सके ! ॥ ७ ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

जो दीपकके प्रकाशसे दिखाई देता है, जिसे चन्द्रमा प्रकाशित करता है, किंबहुना सूर्यके तीव्रतेजसे जो चमकता हुआ भासमान होता है, ॥ ८ ॥ इन सब दृश्योंका दिखा देना जिसका न देखना ही है, जो स्वयं अगोचर रहता हुआ भी, इस विश्वके आभासको प्रकट करता है ॥ ९ ॥ जैसे सींपके ज्ञानका अस्तित्व ज्यों-ज्यों मंद होता जाता है, त्यों-त्यों रूपेका सत्यरूप जाना जाता है, किंवा ज्यों-ज्यों रस्सीके ज्ञानका लोप होता जाता है, त्यों-त्यों सत्य-सर्पकी प्रतीति होने लगती है ॥३१०॥उसी प्रकार जिस वस्तुके अधिष्ठानपर ये चंद्रसूर्यादि प्रचंड गोलाकार प्रकाशमान हो दिखाई देते हैं, ॥ ११ ॥ वह वस्तु केवल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एक तेजोराशि ही है, जो सर्व भूतमात्रोंमें व्याप रही है और चन्द्र-सूर्यादिकोंको भी प्रकाश देती है ॥ १२ ॥ अतएव जो चंद्र-सूर्य बडे प्रकाशमान दिखाई देते हैं, उस ब्रह्म वस्तुकी तेजमें वे केवल परछांई ही हैं । सारांश, जितने कोई तेजस्वी पदार्थ हैं, उनका जो तेज है, वह इस ब्रह्मवस्तुका ही प्रभाव है अर्थात् उस ब्रह्मवस्तुतेजसे ही वे प्रकाशित होते हैं ॥ १३ ॥ और सूर्योदय होते ही जैसे चंद्रमा सहित सब तारागणोंका लोप होजाता है, उसी प्रकार इस वस्तुके उदयका प्रकाश होते ही सूर्य-चंद्रके साथ संपूर्ण विश्वका लोप हो जाता है ॥ १४ ॥ अथवा जागृतावस्थामें जैसे स्वप्नका नगारा बन्द हो जाता है, किंवा संध्याकाल होते ही जैसे मृगजल कहीं भी दिखाई नहीं देता, ॥ १५ ॥ तद्वत् जिस वस्तुमें किसी प्रकारके आभासका भी स्थान नहीं रहता, हे पार्थ ! वही मेरा मुख्य स्थान ( निजधाम ) समझो ॥ १६ ॥ आगे बढते-बढते जो पुरुष उस स्थानको जा पहुँचते हैं, वे पुरुष महासागरमें पहुँचकर लीन हुए जलप्रवाहोंके समान वहांसे फिर वापस नहीं लौटते ॥ १७ ॥ अथवा नमककी बनाई हुई हाथिनी जैसे क्षारसमुद्रमें छोडनेपर फिर बाहर वापिस नहीं आती, ॥ ॥ १८ ॥ किंवा अग्निकी ज्वालायें एकवार आकाशमें जानेपर फिर पीछे लौट नहीं आतीं, अथवा तपे हुए लोहेपर डाला हुआ जल जैसे फिर काम नहीं दे सकता, ॥ १९ ॥ तद्वत् ही जो पुरुष शुद्ध-ज्ञानसे मुझमें प्राप्त होकर मेरी एकताको प्राप्त होते हैं, उनका वापिस आना अर्थात् जन्म-मरणका आवागमन एक साथ ही समाप्त हो गया समझो ॥ ३२० ॥ इस प्रकारका श्रीभगवन्निरूपण श्रवण कर, वह बुद्धिवान् पार्थ बोला—" हे दयाघन भगवन् ! आपने मुझपर बडा प्रसाद किया, परन्तु हे देव ! मेरी एक प्रार्थना है, आप उसपर ध्यान देनेकी कृपा करें ॥ २१ ॥ हे नाथ ! हे प्रभु ! जो पुरुष स्वयं आपमें एकरूप हो जाते हैं और फिर वापस नहीं लौटते, वे पुरुष आपसे भिन्न रहते हैं या अभिन्न ? ॥ २२ ॥ और अनादिपरंपरापूर्वक यदि वे भिन्न रहते हों, तो ' वे वापस नहीं लौटते ' यह कहना प्रमाणसिद्ध नहीं बनता, कारण जो भ्रमर कमलफूलके पास गये, क्या वे फूलही बनजाते हैं ? ॥ २३ ॥ ऐसा तो नहीं होता होगा । कारण आपही देखिये कि, जिस लक्ष्यका सन्धान कर बाण छोडे जाते हैं, वे बाण लक्ष्यसे भिन्न होनेके कारण केवल स्पर्श करते ही पलटकर गिर पडते हैं; उसी प्रकार आपको स्पर्श कर उन जीवोंको भी वापस आनाही पडता होगा ! ॥ २४ ॥ अथवा आप और वे यदि स्वभावतः एकरूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही हों, ( वे आपके ही रूप हों ) तो फिर कौन किसमें जा मिलता है ? शस्त्र क्या आप ही अपनेमें घुस सकता है ? ॥ २५ ॥ अतएव हे भगवन् ! जैसे शरीरका और उससे अभिन्न अवयवोंका संयोग-वियोग होना कहा नहीं जा सकता, उसी प्रकार जो जीव आपसे अभिन्न हैं, उनका और आपका संयोग-वियोग होना भी बुद्धिमें असंभवनीयसा ही प्रतीत होता है ! ॥ २६ ॥ और जो सर्वतः आपसे भिन्न ही हैं, वे तो आपके साथ एकरूप हो ही नहीं सकते! फिर उनके विषे तो, वे फिर वापिस आते हों या नहीं, इस वृथा कल्पनाका विचार करनेकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥ २७ ॥ अतएव हे देव ! आपसे समरस ( एकरूप ) होकर जो वापस नहीं आते, वे कौन हैं ? इस प्रश्नको स्पष्ट करके समझाइये " ॥ २८ ॥ इस प्रकारका आक्षेप करनेवाले अर्जुनके प्रश्नको सुनकर, सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्णको सन्तोष भया और अपने शिष्य अर्जुनकी बुद्धि-मत्ताको देख, उसके चातुर्यसे देव आनंदित हृदय होगये ॥ २९ ॥ फिर श्रीकृष्णने कहा—हे महामतिमान् पार्थ ! मुझमें प्राप्त होकर जो फिर लौटकर नहीं आते, वे मुझसे भिन्न भी हैं और मुझसे अभिन्न भी हैं ॥ ३० ॥ यदि गंभीरता भरे विवेकसे पूर्ण विचार किया जाय, तो मैं और वे स्वभावतः एकही अर्थात् अभिन्न ही हैं; परन्तु केवल ऊपरी विचारसे ही देखा जाय तो वे मुझसे भिन्न हैं यह भी प्रतीत होगा ॥ ३१ ॥ देखो पार्थ ! जैसे जलपर तरंग हिलते रहनेके समय भिन्न दिखाई देते हैं, परन्तु वास्तविक विचारकर देखनेसे वे जलही सिद्ध होंगे, ॥ ३२ ॥ अथवा सुवर्णके अलंकार सुवर्णसे भिन्न दिखाई देते हैं, परन्तु पूर्ण विचारसे देखनेपर, वे केवल सुवर्ण ही होंगे, यही मानना होता है ॥ ३३ ॥ उसी प्रकार हे पार्थ ! ज्ञानकी दृष्टिसे वे पुरुष मुझसे अभिन्न ही हैं, परन्तु जो भिन्नता दिखाई देती है, हे पार्थ ! वही अज्ञान समझना चाहिये ॥ ३४ ॥ तथा ब्रह्मवस्तुका सच्चा विचार कर देखा जाय, तो एकमेवाद्वितीय जो मैं उसके संग भिन्नाभिन्न विचारका निर्णय करनेके लिये दूसरी वस्तुही कहां प्राप्त होगी ? ॥ ३५ ॥ देखो, सूर्यबिम्ब यदि संपूर्ण आकाशको व्याप्त करनेका वर्तुल बनजावे, तो फिर उसका प्रतिबिम्ब कहां जाकर पडेगा ? और उसके किरण भी कहां प्रविष्ट होंगे ? ॥ ३६ ॥ अजी ! ऐसा देखो, कि प्रलय-कालीन सर्वव्यापी जलको छोटे मोटे जलप्रवाहोंके मिलनेका कोई काम पडता है ? तद्वत् ही अद्वय और विकारहीन मुझमें अंश कैसे होसकते हैं ? ॥ ३७ ॥ ऐसा है तो भी, हे पार्थ ! जैसे सीधा बहता हुआ जल भी दूसरे प्रवाहके मिलनेपर टेढा बन उसके सरीखा ही बहने लगता है, अथवा पानीकी उपाधिके कारण ही प्रतिबिम्ब-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



रूपसे दूसरा सूर्य दिखाई देता है, ॥ ३८ ॥ हे पार्थ ! आकाश चौकोन है या गोलाकार, यह बात कैसी कही जा सकती है ? परन्तु हां, वह जिस उपाधिका आवरण करे, उसके अनुसार देखनेसे घटाकार या मठाकार उसी वक्त कहा जा सकता है, ॥ ३९ ॥ और देखो पार्थ ! किसी समय कोई मनुष्य जब स्वप्नमें राजा होता है, तब स्वस्थ निद्राके सामर्थ्यपर वह सब मंत्री आदि अधिकारी तथा सब वस्तु क्या स्वयं अकेला ही नहीं बनता है ? ॥ ३४० ॥ अथवा उत्तम शुद्ध सोनेके कस अशुद्ध सोनेके कसके साथ मिलानेसे जैसे वे भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं, उसीप्रकार मेरा शुद्ध स्वरूप जब मायासे वेष्टित होजाता है, तब एक अज्ञान प्रकट होता है, और वह अज्ञान ही कोऽहं ( मैं कौन हूँ ) इस प्रकारके विकल्पमें जा चिपकता है, फिर उसीमें प्रविष्ट होकर सोचता हुआ स्वयं ही निर्णय कर लेता है कि 'मैं देह हूँ' ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।**
**मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥**

इसप्रकार जब आत्मज्ञान शरीरसे मर्यादित होता हुआ प्रतीत होता है, तब उसकी अल्पतासे मेरा अंश भासमान होता है ॥ ४३ ॥ वायुके चलनेसे जब सागरका जल तरंगाकार हो उछलता है, तब संकुचित विचारवालेको जैसे वह सागरका अल्प अंश ही दिखाई देता है, ॥ ४४ ॥ उसीप्रकार, हे पाण्डुपुत्र अर्जुन ! इस जीवलोकमें जडको चैतन्य देनेवाला तथा देहमें अहंकार उत्पन्न करनेवाला मैं जीव जान पडता हूँ ॥ ४५ ॥ जीवकी मर्यादित बुद्धिमें जो यह दृष्टिगोचर सब व्यापार दिखाई देता है, हे पार्थ ! उसीको 'जीवलोक' शब्दप्रयोग किया जाता है ॥ ४६ ॥ हे अर्जुन ! उत्पन्न होना तथा मरना यही सत्य है, ऐसा जो मानना उसीको मैं जीवलोक या संसार कहता हूँ ॥ ॥ ४७ ॥ अतः, इस प्रकारके जीवलोकमें मुझे कैसा देखना चाहिये वह सुन । देखो पार्थ ! जलमें प्रतिबिम्बित हुआ चंद्रमा जलसे बाहर रहता है, परन्तु वह जैसे जलमें ही दिखाई देता है, ॥ ४८ ॥ अथवा स्फटिकमणिका टुकडा कुंकुमपर रखा जाय, तो साधारणबुद्धिवाले मनुष्यको वह लालवर्ण दिखा देगा, परन्तु वास्तवमें वह लालवर्ण नहीं रहता है, ॥ ४९ ॥ तद्वत् ही मेरे अनादित्वका तथा क्रियाहीनत्वका भंग न होते हुए भी, मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ इस प्रकार मेरा दिखाई देना, केवल भ्रान्ति ही समझना चाहिये ॥ ३५० ॥ सारांश यही समझो कि, यह शुद्ध आत्मा ही प्रकृतिमायासे संमिलित हो, स्वयं आप अपनेपर प्रकृति धर्मके कर्मोंका आरोपण करता हुआ यह माया-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रवाहरूपी संसार चलाता रहता है ॥ ५१ ॥ फिर मन समेत श्रोत्र इत्यादि छहों इन्द्रियें, तथा मायाजनित जो अवयव उत्पन्न हुए हैं, उन सबको अपने ही समझकर, वह आत्मा व्यापारमें प्रवृत्त होता है, ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार स्वप्नमें कोई संन्यासी आपही अपना कुटुम्ब बनजाता है, और अपने स्वरूपको भूलता हुआ उस कुटुम्बकी विवंचना और लोभमें आकर वह मोहसे इधर-उधर दौडता रहता है, ॥ ५३ ॥ उसी प्रकार यह आत्मा स्वयं अपनी विस्मृतिको प्राप्त होता हुआ, आप प्रकृतिरूप होकर उसीके भजनमें निमग्न हो जाता है ॥ ५४ ॥ फिर वह मनरूपी रथपर आरूढ होता है, श्रवण-रंध्रसे बाहर जाता है और शब्दरूपी अरण्यमें जाकर चिन्तातुर होता है ॥ ५५ ॥ तथा वही जीवात्मा प्रकृति मायाकी त्वचारूपी रस्सीको जोरके साथ खींचता हुआ, स्पर्शरूपी घोर अरण्यमें जा घुसता है ॥ ५६ ॥ अथवा किसी समय वह नेत्रेंद्रियसे नेत्रमें प्रविष्ट होता हुआ, रूप-रूपी पर्वतपर जा मनमाना इधर उधर भटकता रहता है ॥ ५७ ॥ किंवा किसी समय, हे पार्थ ! वह रसनेंद्रियद्वारा रसकी गुहामें प्रविष्ट होकर अपनेको रोक लेता है ॥ ५८ ॥ अथवा यह देहाभिमानवान् जीवात्मरूपी मेरा अंश जब घ्राणेंद्रियमें प्रविष्ट हो जाता है, तब नासिकेन्द्रियद्वारा निकलकर गंधविषयरूपी प्रचंड अरण्योंके पार चला जाता है ॥ ५९ ॥ इस प्रकार देह और इन्द्रियोंका स्वामी यह जीवात्मा मनको दृढालिंगन देता हुआ उसके साथ शब्दादि विषय-भोगोंके समुदायका उपभोग लेता है ॥ ३६० ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानिवाशयात् ॥ ८ ॥

परन्तु जीवात्माका कर्तृत्व और भोक्तृत्व उसे तभी जान पडता है, जब वह एकसे अधिक शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥ हे पार्थ ! जैसे कोई संपत्तिवान् और विलासी पुरुष तभी जाना जाता है, जब कि वह किसी सुंदर राजविलासी-स्थानमें जा बसता है ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार इस जीवात्माकी अहंकारवृद्धि तथा विषयोंकी और इंद्रियोंकी धींगा धींगी देखनेवालोंको तभी जान पडती है, जब वह किसी देहका आश्रय कर अहंभावना युक्त होता है ॥ ६३ ॥ किंवा जब वह किसी शरीरका त्याग करता है, तब संपूर्ण इंद्रियरूपी संपत्तिको अपने साथ लेकर ही चलाजाता है ॥ ६४ ॥ किसी अतिथिका अपमान करनेपर, वह जैसे यजमानके सुकृतको भी अपने साथ खींच ले चलाजाता है, अथवा कठपुतलियोंको हिलानेवाली डोरी जैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उन्हें इधर उधर ले जाती है, ॥ ६५ ॥ अथवा अस्त होनेवाला सूर्य जैसे अपने अस्तके साथ देखनेवालोंकी प्रकाशदृष्टिको भी खींच ले जाता है, किंबहुना पार्थ ! वायु जैसे फलपुष्पोंकी सुगंध अपने साथ उडा ले जाती है, ॥ ६६ ॥ उसी प्रकार हे अर्जुन ! यह देहका स्वामी जीवात्मा जब देहको छोड चलने लगता है, तब मन है मुख्य जिनमें ऐसे इन छह इन्द्रियोंको साथ लेकर वह बाहर निकल जाता है ॥ ६७ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

पश्चात् इस मृत्युलोकमें या स्वर्गमें जहां-जहां जिस-जिस देहको वह धारण करता है, वहां-वहां उस-उस देहमें उन्हीं पहलेही मन इत्यादि इन्द्रियोंको फिरसे प्रवृत्त-करता हुआ उनका विस्तार बढाता है ॥ ६८ ॥ हे पार्थ ! दीपकको बुझानेसे जैसे वह अपनी प्रभाको साथ ले चला जाता है, परन्तु यदि उसे फिरसे लगाया जाय, तो उसी प्रभाको साथ ले फिर वैसा ही प्रकट होजाता है, यही प्रकार उपरोक्त जीवात्माविषे समझो ॥ ६९ ॥ तथापि हे पार्थ ! यह प्रकार केवल सामान्य दृष्टिसे देखनेवालों या अविवेकियोंके लिये ही ठीक है, ॥ ३७० ॥ कारण उनकी सत्यता इसीमें सत्य रहती है कि, आत्मा देहको प्राप्त करता है, वह विषयभोग भोगता है तथा वही (आत्मा ही) देहको छोड चला जाता है ॥ ७१ ॥ परन्तु वास्तविक विचार कर देखाजाय तो ये बातें कि, जन्म या मृत्यु होना, कर्मका करना या भोगना, इत्यादि सब मायाप्रकृतिके ही स्वाभाविक धर्म हैं,जिन्हें आत्मा अपने ही समझता है॥७२॥

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ ११ ॥

परन्तु, देहका एक आकार खडा हो रहा है, और उसमें चेतना-शक्ति उत्पन्न हो रही है । और उस चलनवलनको देख ' देहमें आत्मा आया' इस प्रकार लोग कहते हैं ॥ ७३ ॥ तथा हे पार्थ ! उस देहके संगतिसे इंद्रियें अपने-अपने विषयोंमें संचार करने लगती हैं, लोग उसीको ' भोगना ' कहते हैं ॥ ७४ ॥ इसके अनंतर भोग भोगनेके कारण जब क्षीणता आती है और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ऐसी स्थितिमें यह देह निश्चेष्ट होता हुआ आपही आप छूट जाता है अर्थात् चेतनाशक्ति दिखाई नहीं देती, तो कहते हैं कि, ' जीव चलागया ' अर्थात् मृत्यु होगयी ! ॥७५॥ परन्तु हे पाण्डव ! क्या वृक्ष हिलता हुआ दिखाई दे, तभी वायु चलती हो माना जाय ? और यदि वृक्ष हिलता हुआ न देखनेपर अर्थात् वृक्षके स्थिरत्वसे वायु नहीं चलती, ऐसा मानना क्या कभी विचार-शुद्ध होसकता है ? ॥ ७६ ॥ अथवा दर्पणको सामने रखा हो और उसमें अपना रूप देखाजाय, तो क्या वह स्वरूप उस समय ही अपनेको प्राप्त हुआ है ? क्या दर्पणके पूर्वमें वह स्वरूप अपनेको नहीं प्राप्त था ? हे पार्थ ! क्या यह मानना उचित है ? ॥ ७७ ॥ किंवा उस दर्पणको दूर हटानेसे रूपके प्रतिविम्बका आभास भी नष्ट हो जाता है, परन्तु तब क्या ऐसा समझा जाता है कि, अब हमारा रूप या हम नहीं हैं ? क्या यह कहना कभी बन सकता है ? ॥ ७८ ॥ ' शब्द ' गुण वास्तवमें आकाशका है, अर्थात् आकाशसे ही शब्द उत्पन्न होता है, परन्तु जब मेघगर्जना होती है, तब उस शब्दका आरोप जैसे मेघोंपर किया जाता है, अथवा आकाशमें चन्द्रमाके सामनेसे दौडनेवाले अभ्रोंको देख, सामान्य लोग जैसे चंद्रमा दौडता है, कहा करते हैं, ॥७९॥ उसी प्रकार मोहसे अन्धे बने हुए वे अज्ञानी जन ही, देहका उत्पन्न होना तथा उसका लय होना, अविकारी आत्मसत्तापर, केवल अपने भ्रमके कारण ही व्यर्थ आरोपित करते हैं ॥३८०॥ परन्तु इस प्रस्तुत प्रकरणमें विचारसे देखनेवाले आत्माको तो आत्माकी जगहमें देखते हैं और देहके धर्मोंको देहमें ही देखते हैं। हे पार्थ ! वे जानकार विवेकी पुरुष भिन्न-दृष्टिवाले ही हैं ॥ ८१ ॥ ज्ञानलाभके कारण जिनके नेत्र, इस देह-रूपी आच्छादनके गढेको देखकर ही नहीं रुके रहते; किन्तु ग्रीष्मऋतुकी तीव्र सूर्यकिरणें जैसी विस्तारके साथ चहुँ ओर फैलती हैं, तद्वत् उन ज्ञानी-पुरुषोंकी वह नेत्रस्फूर्ति विवेकसे विस्तृत होनेके कारण, शुद्ध आत्मस्वरूपमें जा बैठनेसे, केवल वे ज्ञानी पुरुष ही आत्माको ऐसा देख सकते हैं ॥ ८२ ॥ ॥ ८३ ॥ नक्षत्र समूहोंसे परिपूर्ण भरा हुआ आकाश, समुद्रमें जो प्रतिबिम्बित होता है, तथापि जो टूटकर अपनी जगहसे नहीं गिरता है, यह स्पष्ट मालूम है ॥ ८४ ॥ आकाश आकाशकी ही जगहमें रहता है, और नीचे समुद्रके जलमें जो आभास प्रतीत होता है, सो मिथ्याभास है। उसी प्रकार, आत्मा यद्यपि देहसे आच्छादित हुआसा प्रतीत हो रहता है, तथापि वह केवल आभास ही है, वे ज्ञानी ऐसा ही देखते हैं ॥ ८५ ॥ जलके प्रवाहकी हलचल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



केवल जलके प्रवाहसे ही होती है, और उस हलचलमें पडी हुई चंद्रकी चंद्रिका जो आँदोलित हुई सी दिखाई देती है, यदि विचारकी दृष्टिसे उसे देखाजाय तो यही निश्चित जान पडेगा कि, चंद्रिका चंद्रमें ही निश्चल स्थित है ॥ ८६ ॥ अथवा जैसे कोई गड्ढा जलसे ही भरता है या सूख जाता है और उसके अनुसार ही, उसमें प्रतिबिम्बित हुआ सूर्य दिखाई देता है या लुप्त होता है; परन्तु जैसे सत्य सूर्य जहांका तहां जैसाका वैसा ही बना रहता है, उसी प्रकार देहकी उत्पत्ति हो या मृत्यु, परन्तु वे ज्ञानी जन उसे देखकर भी मुझ ( आत्मा ) को जैसाका तैसा अविकारवान् ही जानते हैं ॥ ८७ ॥ घट अथवा मठकी रचना की जाती है, तथा उसका भंग भी किया जाता है, परन्तु उनमें स्थित आकाश जैसाका वैसा स्वयं सिद्ध रहता है, ॥ ८८ ॥ तद्वत् ही ज्ञानी-जन निश्चयरूपसे ऐसा जानते हैं कि, आत्मसत्ता अखण्ड तथा अव्यय बनी रहती है, और देहका आवागमन जो उसमें कल्पित किया जाता है वह केवल अज्ञानकी दृष्टिसे ही है ॥ ८९ ॥ वे शुद्ध आत्मज्ञानवान् ज्ञानी-लोग ज्ञानसे ऐसा जानते हैं कि, वह चैतन्य ( परब्रह्म ) न भरता है, न रीता हो जाता है, अर्थात् उसमें न्यूनाधिकता असंभव ही रहती है, तथा वह न कर्म करता है न कराता है, यही उनका सिद्धान्त है ॥ ३९० ॥ अब ऐसी स्थिति प्राप्त हुई हो कि, ज्ञानकी प्राप्ति हुई, परमाणुका भी प्रमाण पा सका जाय, इस प्रकारकी सूक्ष्मता बुद्धिमें आई और संपूर्ण शास्त्रोंमें पारंगतता भी प्राप्त हुई, ॥ ९१ ॥ परन्तु इतनी योग्यता वा विद्वत्ताकी जोडके अनुसार यदि अन्तःकरणमें वैराग्यरूपी संपत्तिको निश्चल स्थान प्राप्त न हुआ हो, तो हे पार्थ ! मेरे सर्वव्यापक स्वरूपके साथ उसकी कभी भेंट नहीं हो सकती ॥ ९२ ॥ हे पार्थ ! मुखसे विवेककी मनमानी बातें चल रही हैं, परन्तु अन्तःकरणमें यदि विषय ही घर बना बैठे हों, तो उस पुरुषको मेरे स्वरूपका लाभ कदापि नहीं हो सकता, यह सत्य समझो ॥ ९३ ॥ अजी, पार्थ ! तुमही देखो कि स्वप्नमें बकबक करनेवालोंके ग्रन्थोंसे क्या कभी व्यवहारके संदेहोंका निर्णय हो सकता है ? अथवा पोथीको स्पर्श करनेसे क्या उसके पढनेका फल प्राप्त हो सकेगा ? ॥ ९४ ॥ किंवा आँखें बाँधकर मोतियोंको नासिकामें लगानेपर उनका मोल किया जा सकता है ? ॥ ९५ ॥ तद्वत् अन्तःकरण तो अहंकारसे परिपूर्ण भर रहा है, परन्तु सब शास्त्रविवेचन अस्खलितरीतिसे जिह्वाद्वारा हो रहा है, तो क्या ऐसी स्थितिमें करोड जन्म लेनेपर भी मेरे स्वरूपकी प्राप्ति हो सकती है ? ॥ ९६ ॥ जो मैं केवल अकेला हूँ, जो अकेला ही संपूर्ण भूतमा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



त्रोंको व्याप रहा हूँ, उस मेरी सर्वत्र व्याप्तिका अब निरूपण कर, तुम्हें स्पष्ट रीतिसे समझाता हूँ ॥ ९७ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

सूर्यके समेत यह संपूर्ण विश्व जिस तेजसे प्रकाशित होजाता है वह सर्वत्र आदिसे अन्ततक भरा हुआ प्रकाश मेरे तेजका ही है ॥ ९८ ॥ हे पाण्डुपुत्र अर्जुन ! सर्व जलांशको सुखाकार जब सूर्य अस्त होजाता है, और उस तप्त हुए जगत्को जो फिरसे आर्द्रता प्राप्त होती है, वह चंद्रमामें रहनेवाली चंद्रिका मेरेही तेजकी प्रभा है ॥ ९९ ॥ तथा अग्निका जो निरंतर बढनेवाला तेज, जो कि जलाना, पकाना आदि अनेक क्रियाओंको नित्य करता रहता है, हे पार्थ ! वह अग्निमें रहनेवाला मेरा ही तेज है ॥ ४०० ॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥

मैंने ही भूतलमें प्रवेश किया है, इसलिये ही यह मिट्टीके ढेलेसरीखी पृथ्वी महासागरके विस्तीर्ण जलमें नहीं गलजाती ॥ १ ॥ और यह पृथ्वी जो असंख्य चराचर भूतोंका भार सहन कर उन्हें धारण करती है, सो मैं ही उसमें प्रवेश कर, अपना सामर्थ्य दे उससे धारण करता हूँ ॥ २ ॥ हे पार्थ ! आकाशमें भी एक हिलता चलता चंद्रमारूपी अमृत-सरोवर मैं ही भररहा हूँ, ॥ ३ ॥ उस सरोवरमेंसे जो अमृतकिरण नीचे गिराये जाते हैं, उनसे मैं ही अमृतरस या अनंत प्रकारके रसोंसे संपूर्ण वनस्पतियोंका नित्य पोषण करता रहता हूँ ॥ ४ ॥ इसप्रकार सब धान इत्यादि धान्यमात्रका सुकाल करता हुआ, अन्नद्वारा संपूर्ण चराचर भूतमात्रोंका जीवन-निर्वाह चलाता हूँ ॥ ५ ॥ परन्तु हे पार्थ ! इसप्रकार यदि भूतमात्रके जीवनसाधनकी अन्नसामग्री तयार हो पकायी गयी, तथापि उसे पचाकर जीव समाधानको प्राप्त हो, ऐसी दीपनशक्ति वह कहांसे प्राप्त करे ? ॥ ६ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

अतः हे पार्थ ! संपूर्ण प्राणिमात्रोंके शरीरस्थ नाभिकंदस्थानकी जगहमें मैं एक अँगीठी बनकर, उसमें प्रज्वलित होनेवाली अग्नि ( जठराग्नि )

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी मैं ही होता हूँ ॥ ७ ॥ और वहां ( पेटमें ) प्राण तथा अपान-वायु-रूपी संयुक्त धौंकनीसे, रात-दिन धोंकता धोंकता प्राणियोंके जठरका कितना अन्न पचाता हूँ हे पार्थ ! इसकी गिनती ही नहीं होसकती ॥ ८ ॥ फिर वे पदार्थ चाहे शुष्क हों चाहे स्निग्ध, चाहे अच्छे पके हों या साधारण भूने या जले हुए हों, इस प्रकारके चारों तरहके सब अन्न या पदार्थ मैं ही पचाता हूँ ॥ ९ ॥ एवंच, कहनेका सार यही है कि, सर्व प्राणिगण मैं हूँ तथा उनके जीवन-निर्वाहका सम्पूर्ण साधन भी मैं ही हूँ और उस जीवन-साधनको पचानेवाला मुख्य साधन जो अग्नि, वह जठराग्नि भी मैं ही हूँ ॥ ४१० ॥ फिर, इससे अधिक मेरी व्यापकताकी अपूर्वताका कहांतक वर्णन किया जाय ? हे पार्थ ! इस विश्वमें मेरे अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं, अर्थात् मैं अकेला ही सर्वत्र भरा हुआ हूँ ॥ ११ ॥ यदि ऐसा है, तो कोई प्राणी सदा सुखी और कोई तो निरंतर अत्यंत दुःखसे व्याप्त हुए क्यों दिखाई देते हैं, इसका क्या कारण है ? ॥ १२ ॥ संपूर्ण नगरभरमें यदि एकही दीपसे सब दीपक लगाये गये हैं, तो उनमें कोई एक अप्रकाशित क्यों रहजाय ? ॥ १३ ॥ हे पार्थ ! तुम्हारे मनमें इस प्रकारके तर्क-वितर्कके तरंग यदि उछलते हों, और मन द्विधा होगया हो, तो इस शंकाका भी हम निराकरण करदेते हैं, तुम ध्यानके साथ सुनो ॥ १४ ॥ वास्तविक विचारके साथ देखनेपर मैं ही सर्वत्र भरा हूँ, मेरे अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं, यह बात तो कभी भी मिथ्या नहीं है, परन्तु मैं प्राणियोंको उनकी कल्पनानुसार अर्थात् जैसी जिसकी बुद्धि हो, उसीके अनुसार उन्हें दिखाई देता हूँ ॥ १५ ॥ देखो, आकाशका गुण जो ध्वनि, सो एकही है; परन्तु भिन्न-भिन्न वाद्योंमें वाद्यभेदोंके कारण, वे ध्वनि आपही आप भिन्न-भिन्नरूपसे प्रकट होते हैं ॥ १६ ॥ अथवा सूर्य तो एक ही है, लोकव्यवहारोंसे वह अलिप्त रहता है, परन्तु उसका उदय जुदे-जुदे लोकव्यवहारोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे काम देता है ॥ १७ ॥ किंवा जैसे जल बीजधर्मानुसार ही, वृक्षोंको उत्पन्न करता या रूपान्तरित हो जाता है, उसी प्रकार मेरा स्वरूपभी संपूर्ण जीवोंमें परिणत हुआ रहता है ॥ १८ ॥ रास्तेसे चलनेवाले दो पुरुष, जिनमें एक अज्ञानी ( मूर्ख ) और दूसरा ज्ञानी है, एक नीलमणिका दुलडा हार उन दोनोंके दृष्टिगोचर हुआ, तब उसे सर्प जानकर डरसे मूर्ख भाग गया ! परन्तु ज्ञानी तो उसके सत्यस्वरूपको जानकर, उसकी प्राप्तिसे सुखी होगया ! ॥ १९ ॥ हे पार्थ ! कितने दृष्टान्तोंसे कहा जाय ? परन्तु तुम देखो कि, एक ही स्वाती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नक्षत्रका जल, जब सींपमें गिरता है, तो वह मोतीरूप होजाता है, और वही जल सर्पमें गिरनेपर विष बनजाता है ! उसी प्रकार ज्ञानियोंको मैं सुखरूप हूँ और अज्ञानियोंको मैं दुःखरूप होता हूँ ! ॥ ४२० ॥

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

अन्यथा, 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार जो स्फुरण मनुष्यमात्रके अंतःकरणमें रातदिन होता है, वास्तविक वह वस्तु मैं ही हूँ ॥२१॥ परन्तु सत्संगतिकी साथ हुई योग और ज्ञानका अभ्यासलाभ प्राप्त होगया, वैराग्यसंपन्नतासे गुरुचरणोंकी सेवा की गयी, ॥२२॥ इस प्रकारके सत्कर्माचरणोंसे जिनके अशेष अज्ञानका समूल नाश होजाता है और जिनका अहंभाव आत्मस्वरूपमें ही विश्रान्ति पाता है, ॥२३॥ वे स्वयं आपही अपना स्वरूप पहँचानकर मुझ आत्मस्वरूपके दर्शनसे सर्वदा परमसुखी होते हैं । ऐसी सुखसंपन्न स्थिति प्राप्त होनेमें, क्या मेरे अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु कारण हो सकती है ? ॥ २४ ॥ हे वीरवर पार्थ ! सूर्यके उदय होनेपर उस सूर्यके प्रकाशसे ही जैसे हम सूर्यको देखते हैं, वैसे ही मेरे स्वरूपको जाननेके लिये मैं ही साधन होता हूँ ॥ २५ ॥ इसके विपरीत अर्थात् केवल शरीराभिमानियोंकी सेवामें ही जो रत हुए हैं और निरन्तर इस संसारकी वडाई सुननेमें ही जिनकी अहंभावना देहमें डूब रही है, ॥ २६ ॥ वे ऐहिक तथा पारलौकिक सुखलाभार्थ कर्मकाण्डमार्गमें धावमान होते रहते हैं, परन्तु उनके हिस्सेमें केवल चुना हुआ दुःखका भाग ही आता है ॥ २७ ॥ परन्तु हे पार्थ ! उनके अज्ञानजनित इस कर्मप्राप्तिमें भी मैं ही आधार(कारण) होता हूँ । जैसे कि जागृतावस्थाही स्वप्न या निद्राका कारण होती है ॥ २८ ॥ अथवा अभ्रसे दिवस ( सूर्य ) छिपजाता है, परन्तु वह अभ्र भी जैसे सूर्यके कारण ही जाना जाता है, उसी प्रकार मेरे स्वरूपको छिपानेवाला प्राणियोंको जो संसारविषय दिखाई देता है, अर्थात् जो मुझे न जानकर विषयोंका ही सेवन करते हैं, वह भी मेरी सत्ताके कारण ही होता है ॥ २९ ॥ सारांश, इसका यही समझो पार्थ ! निद्रा या जागृतिका कारण जैसे बोध ही हो जाता है, तद्वत् प्राणियोंके ज्ञान वा अज्ञानका भी मूल-कारण मैं ही हूँ ॥ ४३० ॥ जैसे सर्पाभास या रस्सीका ज्ञान होनेमें मूल-कारण रस्सी ही है, उसी प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ज्ञान वा अज्ञान किंवा अज्ञानजनित विस्तारके लिये भी मैं ही कारण होता हूँ, यह निश्चित सिद्धान्त है ॥ ३१ ॥ अतएव, हे धनंजय ! मैं जिस स्वरूपका हूँ, उस मेरे स्वरूपको वैसा न जानकर मुझे जाननेकी जब वेदने कल्पना की, और वह आगे आया, तब उसकी अनेक शाखायें हुई ॥ ३२ ॥ तथापि, पूर्ववाहिनी नदी या पश्चिमवाहिनी नदीको जैसी आखिरी सीमा महासागर ही निश्चित होती है, तद्वत् वे भिन्न-भिन्न शाखायें भी मेरे स्वरूपको जाननेका ही ज्ञान करदेती हैं ॥ ३३ ॥ जैसी सुगंधयुक्त वायुकी लहरें आकाशमें लय होनेपर, खोजनेसे भी फिर नहीं मिल सकतीं, उसी प्रकार " अहं ब्रह्मास्मि " इस महासिद्धान्तके पास पहुँचने पर श्रुतिका भी शब्दके साथ लोप हो जाता है ॥ ३४ ॥ तथा, सर्व श्रुतियें इस प्रकारसे लज्जित हो, जहां स्तब्ध होजातीं हैं, ऐसा जो एकान्तिक स्थान है, वह भी मेरे प्रकाशसे ही प्रकाशित होता रहता है ॥ ३५ ॥ अतः, शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति हो, श्रुति समेत संपूर्ण जगत् जहां विलीन हो जाता है, उस आत्मज्ञानको जाननेवाला भी मैं ही हूँ ॥ ॥ ३६ ॥ जैसे कोई निद्रासे चेत हो जागृतावस्थाको प्राप्त होने पर, उसे स्वप्नगत द्वैतका कोई संबंध नहीं रहता और वह निश्चित जानता है कि, मैं अकेला एक ही हूँ, इस तरहका स्वयं अनुभव प्राप्त करता है, ॥ ३७ ॥ उसी प्रकार मैं भी, किसी प्रकारके द्वैतके युक्त न रहनेके कारण, अपने स्वयंके अद्वैतत्वको जानता हूँ, और ऐसे जाननेके आत्मबोधका कारण भी मैं ही हूँ ॥ ३८ ॥ इस प्रकारका ज्ञान होनेपर हे पार्थ ! कपूरको जलानेपर जसे न कज्जल रहता है न अग्नि भी बचती है, ॥३९॥ तद्वत् ही जो ज्ञान सर्व अविद्याओंको भस्म कर देता है, वह ज्ञान जब स्वयं ही लुप्त होजाता है, तब ये दोनों अर्थात् न अभाव रहता है और न भाव ही रहता है ॥ ४४० ॥ अर्जी ! जो चोर, अशेष विश्वको यानी उसके नामनिशानोंतक सबको चोरी कर लेगया, उस चोरको कहां और कैसे ढूँढा जाय ? उसीप्रकार ऐसी जो अवर्णनीय और शुद्ध स्थिति होती है, हे पार्थ ! वह शुद्ध दशा मैं ही हूँ ॥४१॥ इसप्रकार कैवल्यधाम परिपूर्ण स्वयं ब्रह्मानन्द परमात्मा श्रीकृष्णने जड और अजड की व्याप्तिका स्पष्ट निरूपण कर, अपने अनुपाधिक, निरंजन, आत्मस्वरूपमें ही उसका विराम किया ॥ ४२ ॥ परब्रह्म परमात्माका किया हुआ वह बोध अर्जुनके हृदयान्तरमें ऐसा प्रतिबिम्बित होगया, जैसे आकाशका चंद्रमा दुग्ध सागरमें शुद्धतासे प्रतिबिम्बित हो, अथवा किसी चमकती हुई दीवालपर सामनेका चित्रित हुआ चित्र प्रतिबिंबित हुआ दिखाई देता है, ऐसी ही स्थिति उस समय श्रीकृष्णार्जुन-संवादसे ज्ञानकी हुई ! ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ परन्तु ज्ञान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वस्तुका स्वभाव ऐसा है कि, ज्यों-ज्यों उसके विषे प्रीति होती है, त्यों-त्यों उसका माधुर्य भी बढता ही जाता है, अतएव अनुभवसिद्धान्तियोंके शिरोमणि मध्यम पाण्डव अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा– ॥ ४५ ॥ "हे ज्ञानमूर्ति प्रभो ! आपने अपनी व्यापकताका निरूपण करते समय, प्रसंगानुसार बोलते बोलते जिस निरुपाधिक स्वरूपका उल्लेख किया, ॥४६॥ उस स्वरूपका और एकबार वर्णन कर, मुझे स्पष्टतया समझा देनेकी कृपा करिये" तब द्वारकाधीश श्रीकृष्णने परमसंतोषित हो कहा, हे अर्जुन ! तुमने बडा अच्छा विषय उपस्थित किया ॥ ४७ ॥ सच कहो तो हे पार्थ ! हमें भी प्रेमसे निरंतर बोलनेकी बहुत इच्छा रहती है, परन्तु क्या किया जाय ? कारण तुम्हारे सरीखा प्रश्न करनेवाला कोई प्रेमी मिलताही नहीं ॥ ४८ ॥ मैं समझता हूँ, आज मेरे मनोरथ सफल हुए, जो कि तुमसे प्रेमी-भक्तका मुझे लाभ होगया ! हे पार्थ ! तुम निःसंदेहान्तःकरणसे प्रश्न पूछकर जो अपना समाधान करलेते हो, उससे मैं परम-संतोषित होता हूँ, कारण इस प्रकारके प्रश्न पूँछनेमें मुझे तुमही एक भक्त मिलगये हो ॥४९॥ जो अद्वैतको प्राप्त करनेपर ही प्रतीत होता है, हे पार्थ ! उस निर्मल निरुपाधिक स्वरूपके विषयमें अनुभवसूचक प्रश्न पूँछकर, मेरा निजसुखही तुमने आज मुझे प्राप्त करदिया है ॥ ४५० ॥ जैसे दर्पण सामने रखनेपर अपनेको ही अपने नेत्र दिखाई देते हैं, तद्वत् निर्मल संवादियोंमें अग्रणी और प्रश्नकुशलोंमें-श्रेष्ठ, आज तुम मेरे सामने संवाद करनेमें प्राप्त हुए हो ॥ ५१ ॥ हे मेरे सखा पार्थ ! तुम्हारा हमारा संबंध ऐसा नहीं है कि, तुम अज्ञानतासे प्रश्न करो और हम अपने ज्ञानका ठाठ-माठ दिखाते हुए तुम्हारे प्रश्नपर व्याख्यान करते रहें ॥५२॥ इस प्रकार कहकर, भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमसे अर्जुनको आलिंगन दिया और कृपाकटाक्षकी दृष्टिसे उसकी ओर निहारकर, फिर देवने जो कहा, उसे सुनिये ॥ ५३ ॥ भगवान्ने कहा–हे पार्थ ! वास्तवमें बोलनेके लिये दो होंठ रहते हैं तथापि वाणी तो एकही है, चलनेके लिये दो पैर हैं, तथापि जैसी गति एक ही रहती है, उसी प्रकार तुम्हारे-हमारेमें तुम्हारा प्रश्न पूँछना और हमारा उसका समाधान करना एकही है ॥ ५४ ॥ तात्पर्य यह कि, तुम्हें और हमें संसार एकही दृष्टिसे देखे, अर्थात् यहां इस प्रसंगमें प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनों एकही हैं ॥ ५५ ॥ ऐसा बोलते बोलते प्रेमसे गद्गदकण्ठ हो भगवान् अर्जुनसे आलिंगन कर स्तब्ध रहे । फिर देवने विचार किया कि, इस समय ऐसा मोह करते रहना योग्य



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नहीं ॥ ५६ ॥ इक्षुरसके गुडकी भेली बनाते समय वह खराब न हो, इसलिये उसमें जैसा थोडा नमक डालना पडता है, तद्वत् यह जो सरस संवाद चलरहा है, उसमें यदि प्रेमातिरेकसे हम दोनों मिल-जायेंगे तो संवाद कैसे चलेगा ? इस हेतु थोडा द्वैतरूपी नमक डालना ही चाहिये ॥ ५७ ॥ कारण यह पार्थ नरावतार और हम नारायणावतार हैं, फिर हमारेमें द्वैतके लिये स्थान ही कहां है ? अतः यह प्रेमका वेग यदि मैं स्वयं शान्त न करूं तो कामही नहीं चलेगा, इसलिये उसे शान्त करना ही चाहिये ॥ ५८ ॥ ऐसा मनमें विचार कर, भगवान् एकसाथ बोले–हे सखा पार्थ ! तुमने मुझे क्या प्रश्न किया था ? ॥ ५९॥ इधर अर्जुन अद्वैतप्रेमसे श्रीकृष्णके स्वरूपमें मिलरहनेके विचारमें ही था कि देवका वाक्य सुनकर एकदम सचेत हो, देहस्मृतिपर आया और प्रश्नकी वार्ताका स्मरण करने लगा ॥४६०॥ और प्रेमसे गद्गदकण्ठ हो वह अर्जुन कहने लगा–"हां महाराज ! मैंने कहा था कि आप अपने निरुपाधिक स्वरूपका और एकबार स्पष्टीकरण कर मुझे बता-इये" ॥ ६१ ॥ यह सुनकर शार्ङ्गधर उस स्वरूपका स्पष्टीकरण करनेके हेतु प्रथमतः उपाधिके दो भाग कर उनका निरूपण करते हैं ॥ ६२ ॥ अब कोई ऐसी शंका उपस्थित करसकते हैं कि, प्रश्न तो निरुपाधिक स्वरूपके विषयका है, फिर भगवान्ने उपाधिका वर्णन किसलिये करना चाहा ? ॥ ६३ ॥ तो इसपर उत्तर यही है कि, छाँछका सारांश निकालना ही मक्खन निकालना होता है। अथवा अशुद्ध सुवर्णको जलाकर अलग करनाही उत्तम शुद्ध सुवर्ण निकालना है ॥ ६४ ॥ जब सेवारको हाथसे हटाया जाता है, तभी तो जल हाथमें आता है; जब अभ्रपटल निकल जाते हैं, तबही जैसाका वैसा स्वच्छ आकाश बना रहता है, ॥ ६५ ॥ जैसे धानके ऊपरी तुषोंको झटकाकर उडा-देनेसे, भीतरी धानकण प्राप्त होनेमें विलम्ब नहीं लगता, ॥ ६६ ॥ उसी प्रकार विचारके द्वारा उपाधि और उपहित वस्तुका जब अन्त किया जाता है तब जो अवशेषवस्तु बची रहती है वह निरुपाधिक ही है। यह बात तो स्पष्ट ही विदित होगी, फिर इसमें पूँछनेकी आवश्यकता ही क्या रहेगी ? ॥६७॥ और जैसे कुलस्त्री पतिका नाम न लेकर औरोंके नामोच्चार करती हुई पतिके नामके समय लज्जायुक्त हो, उसके नामका निर्देश करती है, वैसेही वाणीकी जहां स्तब्धता होजाती है, वह स्तब्धता ही निर्गुण, निराकार, निरुपाधिक, आत्मस्वरूपका निर्देश होजाती है ॥६८॥ कहनेका तात्पर्य यही है कि जिस अकथनीय निर्गुण-वस्तुका वर्णन किया नहीं जाता, उसका वर्णन करना है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अतः प्रभुने उक्त-रीतिसे प्रथमतः उपाधिके विवेचनका ही आरंभ किया॥६९॥ प्रतिपदाकी सूक्ष्मचन्द्ररेखा स्पष्ट देखनेके लिये जैसे किसी वृक्षकी शाखाका आश्रय लेना पडता है; अर्थात् पहले शाखा दिखाई जाती है, उसी प्रकारसे प्रस्तुत-प्रकरणमें उपाधिकी चर्चा ही काम दे सकेगी ॥ ४७० ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥

अतएव श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—हे सव्यसाची ! इस संसाररूपी नगरकी वस्ती बहुत ही थोडी है अर्थात् केवल दो पुरुषोंकी ही है ॥ ७१ ॥ जैसे इतने बडे भारी आकाशमें केवल दिन और रात ये दो ही रहते हैं, उसी प्रकार इस संसार-राजधानीमें केवल दो ही पुरुष रहते हैं ॥ ७२ ॥ इस नगरीमें तीसरा भी एक पुरुष रहता है, परन्तु उसे इन दोनोंका नाम लेना भी असह्य होता है, और जब उसका उदय होता है, तब वह इन दोनोंके साथ संपूर्ण नगरीको भी खाजाता है ॥ ७३ ॥ परन्तु अब उसका कथानक इस समय यहां ही छोडकर, उन दोनोंकी ही कथाका मैं वर्णन करता हूँ, । ये दोनों इस संसार-नगरीमें रहनेकी इच्छासे यहां आये हैं ॥७४॥ हे पार्थ ! इन दोनोंमें एक तो अन्धा, पंगु और पागलसा है । और जो दूसरा है वह सर्वांग-परिपूर्ण धट्टाकट्टा और चतुर है। परन्तु ये दोनों एकही ग्राममें बस्ती करते हैं,इस कारण उन दोनोंमें स्नेहभाव उत्पन्न हो गया ॥ ७५ ॥ इनमेंसे जो पहला है उसका नाम 'क्षर' है और दूसरेको 'अक्षर' कहते हैं । इन दोनोंसे ही यह संसार सर्वत्र भररहा है ॥ ७६ ॥ अब हम 'क्षर' कौन है ? 'अक्षर' के लक्षण क्या होते हैं, इत्यादिके अभिप्रायका स्पष्टतया विवेचन करते हैं, तुम सुनो ॥ ७७ ॥ हे धनुर्धर पार्थ ! महत्तत्त्वसे लेकर तृणाग्रतक जो कुछ छोटी या बडी, स्थावर अथवा जंगम जो जो कुछ वस्तु है, किंबहुना जो जो मनका वा बुद्धिका विषय हो सकती है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो जो पंचमहाभूतोंसे निर्मित हो चुकी है, जो सब नाम-रूपात्मक है, जो-जो गुणत्रयोंके पंजेमें आकर उसकी टकसालमें ढाली जाती है, ॥ ४८० ॥ जिस सुवर्णके भूतमात्ररूपी सिक्के बनाये जाते हैं, जिन कौडियोंसे काल जुगार खेलता रहता है, ॥ ८१ ॥ विपरीत-ज्ञानसे अर्थात् भ्रममोहसे ही जो वस्तु जानी जाती है, तथा जो वस्तु क्षण-प्रतिक्षणमें उत्पन्न होकर विलीन हो जाती है, ॥ ८२ ॥ जिस भ्रांति-रूपी बनकी लकडीसे अवास्तव सृष्टिकी रचना की जाती है, सारांश जिसे 'जगत्' नाम दिया जाता है, ॥ ८३ ॥ जो माया-प्रकृतिके कारण आठ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भेदोंसे उत्पन्न होता रहता है, इस प्रकार हमने पहले वर्णन कर दिया है, तथा जिसे 'क्षेत्र' नाम रखकर वह छत्तीस तत्त्वोंसे बनाया गया, कह रखा है, ॥ ॥८४॥ हे पार्थ ! कहांतक पिछली बातें भी फिर कही जायेंगी ? अभी इसी अध्यायमें वृक्षके रूपकद्वारा इस संसारका वर्णन किया है, ॥८५॥ वह संपूर्ण साकार वस्तु ही अपने रहनेका नगर समझकर, तदनुसार ही चैतन्य तदात्मक हो गया है, तुम समझो ॥ ८६ ॥ जैसे सिंह अपना प्रतिबिम्ब कुएँमें पडा देख, दूसरे सिंहकी कल्पना करता हुआ वह क्षोभयुक्त होता है और उस आवेशको न सँभालता हुआ कूएँमें कूदता है, ॥ ८७ ॥ अथवा पानीमें भरे हुए आकाशतत्त्वपर जैसे ऊपरी आकाशका भी प्रतिबिम्ब पडता है, उसी प्रकार स्वयं अद्वैत रहनेपर भी, चैतन्य द्वैतका आश्रय करता है, ॥ ८८ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार साकार नगरीकी कल्पना करता हुआ आत्मा, अपने मूल स्वरूपको भूलकर, इस नगरीमें विस्मृतिरूपी निद्रा लेता है ॥ ८९ ॥ परन्तु आत्माका इस नगरीमें शयन करना ऐसा रहता है, जैसे कोई स्वप्नमें शय्यागृहको देख, उसमें निद्रा लेनेके लिये प्रवृत्त होता हुआ शयन करे ॥ ४९० ॥ इसके बाद, निद्राभरमें वह आत्मा 'मैं सुखी, मैं दुःखी' इसप्रकार कहता हुआ खर्राटे लेने लगता है। और अहंता, ममतादिसूचक शब्दोंसे स्वप्नमें ही जोरसे बडबडाने लगता है कि, ॥ ९१ ॥ यह मेरा पिता, यह मेरी माता, यह मैं गौरवर्ण अथवा अङ्गहीन हूँ, यह पुत्र, यह धन, यह स्त्री आदि क्या मेरी ही नहीं हैं ? ॥ ९२ ॥ इत्यादि प्रकारके स्वप्नोंमें आकर, वह इहलोक और परलोकरूपी वनोंमें इधर-उधर दौडने लगता है। हे पार्थ ! उस चैतन्यकाही नाम 'क्षरपुरुष' समझो ॥ ९३ ॥ अब जिसे 'क्षेत्रज्ञ' नाम दिया जाता है, अथवा जिस दशाको जगत् 'जीव' कहता है, ॥ ९४ ॥ जो स्वयं अपनी विस्मृतिको प्राप्त हो, भूतमात्रोंके गुणधर्मानुसार वर्तने लगता है, उस आत्माको 'क्षरपुरुष' संज्ञा दी जाती है ॥ ९५ ॥ जिस कारण वह स्वयं पूर्ण होनेसे ब्रह्म ही है, अतः उसे 'पुरुष' यह नाम अन्वर्थक ही है, और वह इस देहरूपी पुरमें सोता रहता है, इस कारणसे भी वह पुरुषसंज्ञाकी योग्यता रखता है ॥ ९६ ॥ और उसमें जो क्षरता ( व्ययता ) का या नश्वरताका मिथ्या कलंक लगाया जाता है, उसका कारण केवल यही है कि, वह उपाधिरूप बनगया ! ॥९७॥ जैसे हिलहिलकर चलनेवाले नालेके जलके संग, चन्द्रबिम्ब भी उसीप्रकार हिलता हुआ आगे-पीछे होता दिखाई देता है, उसीप्रकार यह आत्मा भी उपाधिके विकारोंद्वारा चंचलताको प्राप्त भयासा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भासमान होता है ॥ ९८ ॥ परन्तु जब नालेका जल सूख जाता है, तब उसमें प्रतिबिम्बित हुई चंद्रिका भी जैसी शुष्क जलके साथही लुप्त होजाती है, तद्वत् उपाधिका लोप होतेही, इस आत्माके उपाधिजन्य सब विकार भी नष्ट होजाते हैं ॥ ९९ ॥ इस प्रकार केवल उपाधिके कारण ही उसे क्षण-भंगुरता प्राप्त होती है, और उस विनाशित्वके कारण ही उसे 'क्षर' यह नाम प्राप्त होगया है ॥ ५०० ॥ अतः इस सब जीवचैतन्यको 'क्षर पुरुष' समझना चाहिये। अब 'अक्षर पुरुष' के लक्षण कहते हैं, तुम ध्यानके साथ सुनो ॥ १ ॥ हे वीरवर पार्थ! 'अक्षर' नामका जो यह दूसरा पुरुष है, वह पर्वतोंमें जैसा मेरु तद्वत् केवल मध्यस्थ यानी तटस्थ-वृत्तिसे साक्षीरूप रहनेवाला है ॥ २ ॥ कारण जैसे मेरुपर्वत पृथ्वी, पाताल अथवा स्वर्ग इन तीन स्थलोंसे त्रिधा भिन्न नहीं होता, उसी प्रकार वह पुरुष ज्ञान या अज्ञानसे भिन्न नहीं होता ॥ ३ ॥ अथवा वह पुरुष न यथार्थज्ञानसे एकत्वको प्राप्त होता है और न अनेकता ( अज्ञान ) के कारण द्वैतरूपको ही प्राप्त करता रहता है। इस प्रकार नितान्त जो अज्ञान है, वही इस अक्षरका स्वरूप है ॥ ४ ॥ मिट्टीका मिट्टित्व अर्थात् रजःकणत्व नष्ट होनेपर, जैसे उसके घडा वगैरह बासन नहीं बनेंगे, उस मिट्टीके पिण्डके समान ही यह मध्यस्थ पुरुष है ॥ ५ ॥ सागर या सरोवर सूख जानेपर न उसमें तरंग रहते हैं या जल, उसी सूखे सरोवरके समान इस मध्यस्थकी निराकार स्थिति रहती है ॥ ६ ॥ हे पार्थ! जागृतावस्था तो निकल जाय, परन्तु स्वप्नावस्थाका कुछ भी व्यापार न हो रहा हो, ऐसी निद्रावस्थाके समान जिसका स्वरूप है, ॥ ७ ॥ संपूर्ण विश्वाभास विलीन होजाय, परन्तु आत्मज्ञानोदय न हो, इसप्रकारकी जो केवल अज्ञान दशाकी स्थिति, उसमें जो रहता है, हे पार्थ! उसका नाम 'अक्षर' है ॥ ८ ॥ सोलहों कलाओंसे विरहित अमावास्याके दिन जैसे चंद्रमाका केवल चन्द्रत्व ही रहजाता है, उस रूपके सरीखा ही इस अक्षरका लक्षण या स्वरूप रहता है समझो ॥ ९ ॥ अजी! संपूर्ण उपाधियोंका नाश होनेपर, यह जीवदशा जहां विलीन होजाती है, फलरूपसे परिपक्व होनेपर वृक्ष जैसे बीजमें ही स्थित हो रहजाता है, ॥ ५१० ॥ उसीप्रकार उपाधिगत चैतन्य उपाधिके साथ जहां लीन होता रहता है, उसे 'अव्यक्त' कहा जाता है ॥ ११ ॥ घन ( गाढ ) अज्ञानको सुषुप्ति अर्थात् बीजभाव कहाजाता है और स्वप्न तथा जागृतिको फल-भाव कहा जाता है ॥ १२ ॥ वेदान्तमें जिसे बीजस्थिति कहते हैं, वही इस अक्षर पुरुषका स्थान है ॥ १३ ॥ जहांसे विपरीत-ज्ञानका उदय हो, वह जागृति, स्वप्न तथा बुद्धिके द्वारा अपार-त्व प्रकट कर देता है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ १४ ॥ हे पार्थ ! जहांसे जीवत्व संसारको उत्पन्न कर, वह स्वयं भी उदित होता है और जहां अव्यक्त तथा व्यक्तकी भेंट होती है, वह अवस्था अर्थात् दोनोंकी जो अभेदस्थिति, वही अक्षर पुरुष है ॥ १५ ॥ और दूसरा जो ' क्षर पुरुष ' नामसे प्रसिद्ध है, वह इस विश्वमें जागृतिमें या स्वप्नमें शरीरमें क्रीडा करता रहता है, वे दोनों अवस्थायें जहांसे उत्पन्न होती हैं, ॥ १६ ॥ तथा अज्ञान, घनसुषुप्ति इत्यादि नामोंसे जिसकी ख्याति है, जो केवल इस बातके अतिरिक्त ब्रह्मप्राप्तिसी ही है, ॥ १७ ॥ और हे वीरवर पार्थ ! जिसके अनंतर यदि उसे स्वप्न या जागृति उत्पन्न न होती, तो वास्तवमें सचमुच उस अवस्थाको " ब्राह्मीस्थिति " ही यथार्थ नाम दिया जाता ॥ १८ ॥ परन्तु जिस आकाश-स्थितिसे प्रकृति और पुरुष ये दो अभ्र उत्पन्न होते हैं, तथा जिस अवस्थामें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञरूपी स्वप्नोंका भास होता है ॥ १९ ॥ सारांश, हे पार्थ ! इस अधःशाखी संसारवृक्षका जो मूल है, वही इस अक्षरपुरुषका स्वरूप तुम समझो ॥५२०॥ फिर इसे,—जो कि पूर्णतया आत्मस्वरूप ही है—पुरुष क्यों कहा करते हैं ? तो इसका कारण यही है कि, यह पूर्णरूपसे सोता रहता है, अथवा मायारूपी पुरमें सोता है, इस कारण भी इसे पुरुष कहा करते हैं ॥ २१ ॥ तथा विकारोंका आवागमन अर्थात् विपरीत ज्ञानका जो स्वरूप है, वह जिस अवस्थामें अनुभूत नहीं होता, वह सुषुप्ति ही इस पुरुषका रूप होता है ॥ २२ ॥ अतएव यह स्वयं कभी भी नष्ट नहीं होता, तथा ज्ञानके अतिरिक्त दूसरे किसी भी वस्तुसे इसका अंत नहीं होता है ॥ २३ ॥ अतः वेदान्तमें महा-सिद्धान्तके प्रदेशमें इसे ' अक्षर ' नाम दे प्रसिद्ध कर रखा है ॥ २४ ॥ तात्पर्य इसका यही समझो कि, जीवरूपी कार्यका जो कारण है, और मायाकी संगति जिसका लक्षण है, उस चैतन्यको ही "अक्षर पुरुष" समझना चाहिये ॥ २५ ॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

अब संसारमें इस विपरीत-ज्ञानसे जो दो अवस्थायें अर्थात् जागृति और स्वप्न उत्पन्न होती हैं, वे मूल गाढ-अज्ञानमें लय होती हैं ॥ २६ ॥ और उस मूल-अज्ञानका जब ज्ञानमें लय होता है, और केवलज्ञान ही जब सम्मुख रहता है, तब जैसी अग्नि काष्ठको जलाकर स्वयं भी जलती है, ॥ २७ ॥ उसी प्रकार ज्ञान अज्ञानका नाश करता हुआ स्वयं ब्रह्मवस्तुका परिचय कर, स्वतः भी नष्ट होजाता है ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तब ज्ञातृत्वसे अतिरिक्त जो केवल जाननेवाला ही शेष रहता है, ॥ २८ ॥ हे पार्थ ! वही 'उत्तम पुरुष' समझा जाता है। और पहले जो क्षर और अक्षर दो पुरुष तुम्हें समझा दिये, उनसे अतिरिक्त यह अलगही तीसरा या अन्तिम पुरुष है समझना चाहिये, यह निश्चित सिद्धान्त होता है ॥ २९ ॥ हे पार्थ ! जैसे सुषुप्ति और स्वप्नावस्थासे कुछ भी संबंध न रखनेवाली जागृतावस्था इन दोनों अवस्थाओंसे एकदम भिन्न रहती है, ॥५३०॥ अथवा जैसे रश्मि और मृगजलसे कुछ भी संबंध न रखनेवाला सूर्य-मण्डलका विस्तीर्ण विस्तार इन दोनोंसे भिन्न ही रहता है, उसीप्रकार यह उत्तम पुरुष उन दोनोंसे भिन्न ही है ॥ ३१ ॥ इतना ही नहीं, वरन् काष्ठमेंही रहनेवाली अग्नि जैसी काष्ठसे भिन्न रहती है, तद्वत् ही यह उत्तम पुरुष क्षर और अक्षर-पुरुषोंसे भिन्न ही है ॥ ३२ ॥ और महाप्रलयकालमें जैसे संपूर्ण जलोंका समुदाय एकरूप हो सीमाका उल्लंघन कर, नदनदियोंको एकाकारता देता हुआ चलता है, ॥ ३३ ॥ और प्रलय कालके सर्व-संहारक तेजसे जसे दिन और रातका भी अन्त होजाता है, तद्वत् उस उत्तम पुरुषके सामने स्वप्न, सुषुप्ति अथवा जागृति इन तीनों अवस्थाओंका नामतक शेष नहीं रहता। तथा जहां न एकत्व है, न द्वैत ही है, अथवा जहां यह भी निश्चित नहीं जानपडता कि, कुछ है या नहीं भी है, ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस प्रकारकी जो कोई एक स्थिति है, हे पार्थ ! उस स्थितिको ही तुम उत्तम पुरुष समझो। वह परमात्मा-नामसें प्रसिद्ध है, परन्तु परमात्माको वह नाम देते समय यह भी ज्ञान अवश्य रखना चाहिये कि, उसमें सम्मिलित न होकर जीवदशाका आश्रय करते रहकर हीं ऐसा वर्णन करना। जैसे कि जलमें डूबे हुएका वर्णन करना हो तो जलमें डूबकर न करके तीरपर खडा रहकर ही करना पडता है॥३६॥३७॥और इसी न्यायसे हे पार्थ ! वेद भी विवेकरूपी तीरपर खडे होकर ही, परावर ( परतीरस्थ ) परमात्माका वर्णन करते हैं ॥ ३८ ॥ और वे वेद भी क्षर तथा अक्षर दोनों पुरुषोंको इस पारके या कम दर्जेके समझकर, उत्तम पुरुषको परतीरस्थ परमात्मा कहते हैं ॥ ३९ ॥ हे अर्जुन ! इस प्रकार परमात्मशब्दसे पुरुषोत्तम सूचित किया जाता है, यह बात तुम ध्यानमें रखो ॥ ५४० ॥ और वास्तविक यदि उसका वर्णन किया जाय तो, मौन ही जिसका शब्द है, कुछ भी न जानना ही जिसका ज्ञान है, किसी वस्तुके स्वरूपका न होना ही जिसका अस्तित्व है, हे पार्थ ! ऐसी जो वस्तु है, ॥ ४१ ॥ 'सोऽहं' भावनाका भी जहां अस्तित्व नहीं रहता, जहां वक्ता वक्तव्यरूपही होजाता है, जहां दृश्य भी द्रष्टाके साथ विलीन होजाता है, ॥ ४२ ॥ परन्तु बिम्ब और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रतिबिम्बके बीचमें रहनेवाली प्रभा, यद्यपि अपने हाथ न आती हो, तथापि वह है ही नहीं, ऐसा कभी कहा नहीं जा सकता, ॥ ४३ ॥ अथवा घ्राणेंद्रिय ( नासिका ) और पुष्प इन दोनोंके बीचमें रहनेवाली सुगंधि, यदि दिखाई न देती हो, तथापि वह उसमें है ही नहीं, यह कहना जैसा उचित न होगा ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार द्रष्टा और दृश्यका लोप होनेपर, अब कुछ नहीं रहा यह कहना भी प्रमाणसिद्ध नहीं बनेगा, परन्तु ऐसी स्थितिमें जो प्रतीत हो जाता है, वा ऐसी स्थिति ही जिसका अनुभवसाधन है, वही उत्तम पुरुषका रूप समझना चाहिये ॥ ४५ ॥ जो प्रकाश्यके बिना ही प्रकाशित होजाता है, जो शासितव्य वस्तुके बिना ही शासनकर्ता बनता है और जो स्वयं ही अवकाश बनकर स्वयंही आकाशवत् व्यापता है, ॥ ४६ ॥ जो ध्वनि सुननेके लिये स्वयं नाद है, स्वादके चखनेमें स्वयं ही स्वाद होता है और जो आनंदके लिये स्वयं आनंद बनता है ॥ ४७ ॥ जो पूर्णताके लिये परिपूर्ण है, जो सब श्रेष्ठ पुरुषोंमें उत्तम है और जिसमें विश्रान्तिको ही विश्रामस्थान प्राप्त होता है, ॥ ४८ ॥ जो सुखके लिये उपभोग्य सुख है, जो तेजको तेजस्विता देनेवाला तेज है, और जिसमें सब विलीन होजानेपर जब शून्य बचता है, उसके लिये भी जो शून्य है ॥ ४९ ॥ जितने कुछ विकास हैं उनसे भी परःपारका विकास होनेसे जो शेष रहता है, तथा संहारकोंका संहार करके भी जो बाकी रहता है, जो बहुतोंसे बहुत और बडे प्रमाणोंकी वस्तुओंसे भी जो बहुत बडा है ॥ ५५० ॥ इसके अतिरिक्त जैसे सींप चाँदी न होनेपर भी, अज्ञानियोंके लिये रूपेकासा प्रत्यय कर देती है, ॥५१॥ अथवा सुवर्ण जैसे स्वयं अपने रूपको गुप्त न रखकर, अलंकारोंमें छिपा हुआ रहता है, उसी प्रकार अपना रूप न छिपाकर तथा विश्वमें संमिलित हुए विना ही जो विश्वाधार वा विश्वको धारण करनेवाला भासमान होता है ॥ ५२ ॥ अथवा इस बातको छोडदो, जैसे जल और तरंगोंमें भिन्नता नहीं है, तद्वत् ही जो इस भासमान होनेवाले विश्वके लिये आधाररूप और प्रकाशरूप हो रहा है, ॥ ५३ ॥ हे वीरेश पार्थ ! जलमें पडे हुए प्रतिबिम्बके संकोचविकासके लिये जैसा पूर्णचंद्रमा ही कारण होता है, उसी प्रकार जो अपने उदय और अस्तके लिये वह स्वयं ही कारण होता है ॥ ५४ ॥ तथा विश्वके प्रकट होनेसे जो न कुछ होता है और उसके लय होनेसे न कहीं जाता है, जैसे कि रात और दिनकी भिन्नता रहनेसे भी, सूर्यमें कभी द्विधाभाव उत्पन्न नहीं होता, ॥ ५५ ॥ तद्वत् ही, जिसका किसी भी स्थानमें, किसीके साथ, कसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी कारणसे व्यय ( खर्च ) नहीं होता और जिसकी तुलना करनेमें उसके स्वयंके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपमेय है नहीं, ॥ ५६ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

हे पार्थ ! जो स्वतः ही अपनेको प्रकाशित करता है, अधिक क्या कहूँ ? जिसे दूसरा अर्थात् द्वैतका संबंध ही नहीं, ॥ ५७ ॥ वही उपाधिरहित और क्षर-अक्षरोंसे श्रेष्ठ मैं ही हूँ । अतः वेद और लोक ( शास्त्र ) मुझे पुरुषोत्तम कहते हैं ॥ ५८ ॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

परन्तु अब यह विस्तार यहां ही रहने दो । हे धनंजय ! ज्ञान-रूपी सूर्यप्रकाशसे जो पुरुष इस प्रकार मुझ पुरुषोत्तमको जानता है, ॥ ५९ ॥ और जिसको यह दिखाई देनेवाला संपूर्ण त्रिभुवन ज्ञानके उदय होनेसे ऐसा मिथ्या प्रतीत होता है, जैसे कि जागृतावस्था प्राप्त होनेपर, अपना स्वयंका ज्ञान हो स्वप्नावस्था नहीं रहता, ॥ ५६० ॥ अथवा मालाको हाथमें लेतेही जैसे सर्पाभासका भय तत्काल नष्ट होजाता है, उसी प्रकार मेरा सच्चा ज्ञान होनेपर वह मिथ्या-ज्ञानके या प्रपंचके हाथमें पकडा नहीं रहता ॥६१॥ अलंकारको जो निश्चयसे सुवर्ण ही जानता है, वह जैसे अलंकारताको मिथ्या समझता है, तद्वत् जिस पुरुषने मेरे सच्चे रूपको जानकर भेदभावका त्याग कर दिया है, ॥ ६२ ॥ और जो कहता है कि, "मैं ही सर्वव्यापक, अद्वितीय और स्वयंसिद्ध सच्चिदानन्द हूँ" और जो अपनेको भी मुझसे अभिन्न समझता हुआ मेरे आत्मस्वरूपको पहँचानता है, ॥ ६३ ॥ उसीने सब कुछ जाना है । परन्तु हे पार्थ ! उसके लिये यह बात कहना भी उसकी न्यूनताहीका वर्णन होगा, कारण शब्दको विषय होनेवाला जो द्वैत, वह उसके लिये नाममात्रका भी बचा नहीं रहता ॥६४॥ अतएव हे पार्थ ! मेरी भक्ति करनेके लिये ऐसा ही पुरुष योग्य होता है, जस कि आकाशको आलिंगन देनेके लिये या उसमें मिलनेके लिये एक आकाश ही योग्य होता है ॥ ६५ ॥ क्षीरसागरकी पहुनाई करना हो, तो जैसे क्षीरसागरही बनना पडेगा, अथवा स्वयं अमृतत्वको प्राप्त होकर ही अमृतमें समा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सका जा सकता है, ॥ ६६ ॥ किंवा शुद्ध सुवर्ण ही शुद्धसुवर्णमें मिला दिया जा सकता है, उसी प्रकार जो मद्रूपताको प्राप्त होता है वही मेरी भक्ति करनेके लिये योग्यता प्राप्त करसकता है ॥ ६७ ॥ देखिये पार्थ ! यदि गंगानदी सागरसे एकरूप न होती, तो सागरमें कैसी समाविष्ट होजाती ? उसी प्रकार यदि मेरे रूपमें एकता प्राप्त न हो, तो मेरी भक्तिका संबंध कैसे जोडा जा सकता है ? ॥ ६८ ॥ अतः, तरंग जैसे सागरमें सर्वतोपरि सागररूप हो रहते हैं, तद्वत् हे पार्थ ! अनन्यरूप होकर जो मेरा भजन करता है, ॥ ६९ ॥ उसका भजन और मैं इन दोनोंमें जो संबंध रहता है, उसके लिये यदि कोई उपमा दी जाय तो सूर्य और प्रभाकी जिस प्रेमके संबंधसे एकता रहती है, वही उपमा भक्ति और मुझमें दी जासकती है॥५७०॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुराणपुरुषोत्तमयोगोनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

इस प्रकार इस अध्यायके आरंभसे यहांतक किया हुआ संपूर्ण विवेचन, सब शास्त्रोंकी संमतिकी एकवाक्यतारूप ही है । तथा उपनिषदोंके लिये यह कमलदलसरीखा सुगंधित करनेवाला है ॥ ७१ ॥ और जो श्रीमहर्षिव्यासजीकी बुद्धिसामर्थ्यसे शब्दब्रह्मका मन्थन कर, निकाला हुआ सारसर्वस्व अर्थात् बना-बनाया माखन वही हम आपलोगोंको सादर समर्पित कर रहे हैं ॥ ७२ ॥ यह गीता ज्ञानामृतभरी गंगा ही है, अथवा आनंदचंद्रमाकी सतरहवीं अमृतकला है, किंवा विचाररूपी क्षीरसागरमें प्रादुर्भूत हुई मानो नूतन लक्ष्मी ही है, ॥७३॥अतएव यह ( गीतालक्ष्मी ) अपने पदोंसे (शब्दोंसे), वर्णोंसे (अक्षरोंसे), तथा अर्थसे, जीवसे वा प्राणोंसे मेरे अतिरिक्त दूसरी कुछ भी वस्तु हो, इस बातको स्वप्नमें भी जानती नहीं, ॥ ७४ ॥ इस लक्ष्मीके सामने जब क्षर और अक्षर पुरुष खडे होगये तो उनका पुरुषत्व ही नष्ट होगया, तब फिर उस लक्ष्मीने अपना सर्वस्व सर्वभावसे मुझ पुरुषोत्तमको ही समर्पण करदिया है ॥ ७५ ॥ अतएव हे पार्थ ! यह गीता जो अभी तुम्हें मैंने सुनायी है, इस जगत्में मुझ आत्माकी एकनिष्ठ-पतिव्रता ही कहलाती है ॥ ७६ ॥ यह गीताशास्त्र वास्तवमें मुँहसे कहने योग्य नहीं है । परन्तु सच देखा जाय तो संसारको जीतनेवाला एक अमोघ शस्त्र है । इसके मंत्राक्षर ऐसे हैं, जिनका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्फुरण होतेही आत्माका प्रकटीकरण हो सकता है ॥ ७७ ॥ परन्तु हे पार्थ ! हमने जो तुम्हें यह गीताशास्त्र प्रकट कर बता दिया, इसका अर्थ यही हो रहा है कि, तुमने हमारा गुप्त-धन उखाडकर प्रकट कर दिया, अथवा हमही अपना गुप्त धन तुम्हारे अर्थ प्रकट कर बैठे हैं ! ॥ ७८ ॥ चैतन्य-शंकररूपी मेरे मस्तकमें गीतारूपी गंगाधन जो मैंने गुप्त रखा था, हे पार्थ ! उसे आज बाहर निकालनेमें, तुम श्रद्धारूपी दूसरे गौतम ही बनगये ॥७९॥ हे धनंजय ! अपने शुद्ध स्वरूपको देखनेके लिये जैसा सामने शुद्ध-दर्पण रखा जाता है, वैसा ही काम तुमने हमारे संग रहकर आज करदिया है ॥ ५८० ॥ अथवा चंद्रमा और तारागणोंसे युक्त आकाशको जैसे सागर प्रतिविम्बरूपसे अपनेमें समा रखता है, तद्वत्ही तुमने गीता-सहित मुझको अपने अन्तःकरणमें प्रतिविम्बित कर रखा है ॥८१॥ हे पार्थ ! त्रिविध-पापोंने तुम्हारे अन्तःकरणको छोड दिया है, इसकारण गीता-सहित तुम मेरे वसति-स्थान बनगये हो॥८२॥ परन्तु हे पार्थ ! इस गीताका मैं क्या वर्णन करूँ ? यह केवल ज्ञानवल्ली है, इस मेरी ज्ञानलताको जो पुरुष जानता है, वह सम्पूर्ण तरहके अज्ञानोंसे मुक्त होजाता है ॥ ८३ ॥ हे पार्थ ! यह अमृतनदी है, इसके जलका जो सेवन करता है, वह सर्व रोगोंका परिहार कर, सुजनोंको अमृतत्व प्राप्त करा देता है ॥ ८४ ॥ इस प्रकार यदि इस गीताका यथार्थ ज्ञान होजाय, तो मोहका नाश हो, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? इतना ही नहीं पार्थ ! वरन् उसके सहायसे आत्मज्ञान होनेपर निःसंदिग्ध आत्मस्थिति भी प्राप्त हो सकती है ॥ ८५ ॥ और उस आत्मज्ञानकी प्राप्ति होनेपर, कर्म भी अपने आयुकी समाप्ति हुई समझता हुआ, उसमें विलीन हो जाता है ॥ ८६ ॥ जैसे किसी खोई हुई चीजकी प्राप्ति होनेपर, खोजनेका कार्य समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार कर्ममंदिरपर ज्ञान कलशरूप हो चढ रहता है अर्थात् कर्म स्वयं ही लुप्त हो जाता है ॥ ८७ ॥ अतः कहनेका सारांश यही है कि, ज्ञानी मनुष्यके कर्मकी क्रिया आपही आप समाप्त होती है, यह बात तुम निश्चयसे समझो । इस प्रकार अनाथोंके नाथ दयासागर भगवान् श्रीकृष्णने पार्थसे कहा ॥ ८८ ॥ वह श्रीकृष्णका ज्ञानामृत जब अर्जुनके अन्तःकरणमें भरकर समा न सका और बाहर बहने लगा, तब वही वचनामृत श्रीव्यासजीकी कृपासे संजयने प्राप्त किया ॥८९॥ और उसीको संजयने धृतराष्ट्रके प्राशनार्थ उसके आगे धरदिया, जिसका परिणाम अन्तसमयमें धृतराष्ट्रको भी सुखकर होगया ॥ ५९० ॥ साधारणतः वह धृतराष्ट्र गीतार्थश्रवणमें यद्यपि अनधिकारी था, तथापि संजयकी कही गीतासे ही उसे अन्तसमय वही गति प्राप्त हुई जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कि गीतार्थज्ञ अधिकारियोंको मिलती है ॥ ९१ ॥ द्राक्षा (अंगुर) वल्लीकी जडमें दूध डालते समय वह व्यर्थ जातासा समझा जाता है, परन्तु जब उनकी बहार आनेपर फल पकजाते हैं, तब वह दूध दुगुना हुआसा प्रतीत होता है, ॥ ९२ ॥ इसी न्यायसे श्रीकृष्णमुखसे निकले हुए वचनामृतोंको जो संजयने बडे प्रेमके साथ धृतराष्ट्रसे कह रखे थे, इसी कारण उस अन्धे धृतराष्ट्रको भी वे अन्तसमय सुखावह होगये ॥ ९३ ॥ वही श्रीकृष्णवचनामृत-भरी कथा मैंने प्राकृत भाषामें मेरी अप्रबुद्धिके अनुसार जैसी मेरे समझमें आयी वैसी कह रखी है ॥ ९४ ॥ सेवतीके पुष्पोंको देखकर, अरसिक-जनोंको उनमें कुछ विशेषता नहीं जान पडती सही, परन्तु उनके सुगंधोंको जाननेवाले रसिक-भ्रमर उनकी विशेषताको जानते ही हैं, और वे अपने मनमाने रसास्वाद भी लूट लेते हैं ॥ ९५ ॥ अतः मेरे कहनेका मतलब यह कि, जो मैंने कहा, उनमें जो आपके सिद्धान्तप्रमाणमें ठीक मालूम पडे उसीको लेना, बाकी जिनमें न्यूनता दिखाई दे वह सब मेरा मेरे ही पास छोडिये, कारण संपूर्ण ज्ञानका अभाव होना यह बालस्वभाव ही है ॥९६॥ परन्तु बालक यद्यपि अज्ञानी हो, तथापि उसे देखते ही जैसे माता-पिताका आनंद हृदयमें नहीं समाता, तथा वे उस बालकका कौतुक ही करते हैं ॥ ९७ ॥ उसी प्रकार आप सन्तलोग भी मेरे माता-पिता ही हैं, और आपकी भेंट होनेपर मुझे भी बडे लाडसे बोलनेका जोर आता है, ग्रन्थका तो केवल बहाना ही समझिये, सब कुछ आपकी कृपाहीका फल है ॥ ९८ ॥ ज्ञानदेव कहते हैं कि यह मेरी सेवा विश्वरूप मेरे परम गुरु श्रीनिवृत्तिनाथजी प्रेमसे ग्रहण करें, यही मेरी विनीत प्रार्थना है ॥ ५९९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः
हिन्दीभाषानुवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

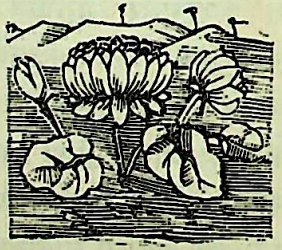

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

# ज्ञानेश्वरी ।

## षोडशोऽध्यायः १६.

अब मैं जगद्रूपी भासको अस्त कर, उदयोन्मुख और अद्वैतरूपी कमलिनीको विकसित करनेवाले ( श्रीसद्गुरुरूपी ) अनुपम नये सूर्यको वंदन करता हूँ ॥ १ ॥ जो सूर्य अविद्यारूपी रात्रिका निरास कर, ज्ञानाज्ञानरूपी चाँदनियोंको लुप्त कर देता है, और जो ज्ञानी पुरुषोंके लिये आत्मबोधरूपी निरभ्र सुदिन प्रकाशित करता है, ॥ २ ॥ जिस सूर्यका प्रातःकाल होते ही, उसके प्रकाशसे जीवरूपी पक्षियोंकी आत्मज्ञानरूपी आँखें खुलती हैं, और वे देहाभिमानरूपी घोंसलोंमेंसे निकलकर, बाहर चले जाते हैं, ॥ ३ ॥ जिस ज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेसे, वासनात्मक लिंगदेहरूपी कमलकोशमें रुका रहनेके कारण क्षीणदशाको प्राप्त हुआ, चैतन्य-रूपी भ्रमर एक साथ बन्धमुक्त हो जाता है, ॥ ४ ॥ भेदभावनात्मक नदीके दोनों तीरोंपर शास्त्र-इत्यादिरूपी विकटशब्दस्थलोंमें जो बुद्धि और ज्ञान परस्परके वियोगसे व्याकुल हो, आक्रोश कर रहे हैं, ॥ ५ ॥ उन चक्रवाक पक्षियोंकी जोडीको जो सूर्य घरके दीपकके समान, चिदाकाशरूपी भुवनको प्रकाशित करता हुआ समाधानरूपी पूर्ण ऐक्यताका लाभ करादेता है, ॥ ६ ॥ जिस सूर्यके प्रातःकालीन उदयका प्रकाश होते ही, भेदबुद्धिरूपी चोरीका समय निकल जाता है, और योगमार्गानुगामी प्रवासी, सुखपूर्वक आत्मप्रत्ययमार्गाक्रमण करने लगते हैं, ॥ ७ ॥ जिस सूर्यके विवेकरूपी किरणोंका स्पर्श होते ही, ज्ञानरूपी सूर्यकान्तमणिमेंसे जो चिनगारियां निकलती हैं, और जिनसे संसाररूपी वन जलकर भस्मसात् होजाते हैं, ॥ ८ ॥ जिस सूर्यका किरणजाल तीव्रतर होकर, आत्मस्वरूपके विस्तीर्ण मैदा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नमें स्थिर होते ही, महासिद्धिरूपी मृगजलकी बाढ आती है, ॥ ९ ॥ परन्तु वही सूर्य जब सोऽहंरूपी माध्याह्नकालमें आत्मबोधके शिखरपर चढजाता है, तब आत्मभ्रमरूपी परछाँई उसीके पैर-तलमें दबकर छिपजाती है, ॥१०॥ और ऐसी अवस्थामें जब मायारूपी रात्रि स्वयं ही नष्ट होजाती है, तब विश्वाभास-रूपी स्वप्न, या विपरीतज्ञानरूपी निद्राको वहां कौन आश्रय दे सकता है ? ॥ ॥ ११ ॥ अतः, अद्वैतज्ञानरूपी नगरीमें जहां-तहां आनन्द ही आनन्द भरा रहनेके कारण, सुखानुभवके लेन-देनकी भी मंदी ही रहती है ॥१२॥ सारांश, इस प्रकार जिस सूर्यप्रकाशसे कैवल्यमुक्तिके शुभ दिनका निरंतर लाभ प्राप्त हो जाता है, ॥ १३ ॥ जो निजधाम-आकाशका स्वामी है, और जिसका उदय होते ही पूर्वादि दश दिशाओंसहित उदय और अस्तका स्थान नष्ट कर देता है, ॥ १४ ॥ तथा जिसका उदय ज्ञान और अज्ञानका अन्त करता हुआ, उन ज्ञान और अज्ञानसे छिपी हुई जो आत्मतत्त्व वस्तु उसे अत्यंत स्पष्टतया प्रकट कर देता है । बहुत क्या कहा जाय ? वह एक अनोखा विलक्षण ही उषःकाल है ॥१५॥ वह ज्ञान-सूर्य रात और दिनके भी परतीरका होनेसे, उसे देखनेके लिये कौन समर्थ हो सकता है ? जो प्रकाशितव्य-पदा-र्थोंके विना ही, केवल स्वयं प्रकाशका गोल है, ॥१६॥ उन ज्ञानमार्तण्ड निवृ-त्तिनाथजीको मैं बारबार चुपचाप केवल वंदन ही करता हूँ । कारण शब्दोंसे उनकी स्तुति करना मानो शब्दोंका दौर्बल्य प्रकट करना ही होगा ॥१७॥ देवकी महिमाकी स्तुति तभी ठीक रीतिसे हो सकती है, जब स्तव्यवस्तु तथा बुद्धि एक संग मिलकर दोनों एकताको प्राप्त होजाँय ॥ १८ ॥ जो नामरूपात्मक संपूर्ण विषयोंके न जाननेसे ही जाना जाता है, जो मौनके गलेमें आलिंगित हो रहनेसे ( मौनसे ) ही वर्णा जाता है और जो स्वतः विलीन हुए जीवको ही प्रतीत होता है अर्थात् एकरसतासे ही अनुभूत होता है, ॥ १९ ॥ जिसकी ( गुरुमहाराजकी ) स्तुति करनेके लिये वैखरी वाणी पश्यन्ती और मध्यमाके गर्भान्तर होती हुई, फिर वहीं परासहित विलीन हो जाती है, ॥ २० ॥ ऐसे आप गुरुराजको मैं अपनेको मनमें सेवकभावकी कल्पना करता हुआ, शाब्दिक-स्तोत्रोंके अलंकार पहनाता हूँ । हे अद्वयानन्द गुरो ! आपसे इन अलंकारोंकी स्वीकृतिमें विनती करना भी, अद्वैतकी न्यू-नता ही है ! ॥ २१ ॥ परन्तु जैसे किसी दरिद्रीको अमृत-सागरका दर्शन हो, और उसके आदरातिथ्यके लिये योग्यायोग्यकी विस्मृति होती है, और उसकी पहुनाई करनेके लिये केवल साग-भाजीकी प्राप्तिमें ही वह इधर उधर दौडता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है, ॥ २२ ॥ परन्तु ऐसे समय उसकी साग-भाजीका ही बहुमान कर, उसका आनंदोत्सव माना जाना जैसा उचित है, उसीप्रकार आप अपने दिव्यतेजके प्रकाशसे मेरी भक्तिकी छोटीसी वर्त्तिकाकी आरतीसे आप-सूर्यको प्रकाशित करनेकी मेरी भक्तिपर ही आपको ध्यान देना चाहिये ॥ २३ ॥ बालकको यदि योग्यायोग्यका विचार रहे, तो फिर वह बालक ही कैसा कहा जाय? परन्तु उसके अजानबोलसे भी क्या उसकी माता सचमुच सन्तुष्ट नहीं होती है ? ॥२४॥ देखिये, छोटेछोटे नालोंका जल जब गंगाजीके पीछेसे आ उसमें मिलता है, तो क्या ' चलो, पीछे हटो' इसप्रकार कहकर गंगाजी उसे वापिस लौटाती हैं? ॥ २५ ॥ महाराज ! आप जानते ही हैं, कि भृगुऋषिजीने लत्ताप्रहार करनेका कैसा घोर अत्याचार किया था, परन्तु सत्त्वमूर्ति नारायणने उसको प्रेमका उपचार समझकर, उस पद-चिह्नको भूषण समझते हुए शार्ङ्गधरने उनके गुरुत्वसे क्या सन्तोष नहीं प्रकट किया ? ॥ २६ ॥ अथवा अन्धकारसे भरा हुआ आकाश जब दिनपतिके सामने आता है, तो क्या वह सूर्यदेव उसे ' चलो हटो यहांसे' ऐसा कभी कह सकता है ? ॥२७॥ उसी प्रकार मैंने यदि आपको भेदबुद्धिकी तराजूमें रख, सूर्योपमाके मापसे आप गुरुराजको तोला हो, तो भी एकबार आप उसे बहुमानसे ही सहन करोगे ॥ २८ ॥ जिन्होंने ध्यान-समाधिके नेत्रोंसे आपका दर्शन किया, और वेदवाक्योंसे जिन्होंने आपका स्तवन किया, उनका वह करना जैसे आपने सह लिया, उसी न्यायका अनुसरण मेरेमें भी करके मुझे क्षमा कीजिये ॥२९॥ मैं तो आपके गुणवर्णनमें लुब्ध हुआ एक सामान्य मनुष्य हूँ, पर इस बातको आप अपराध न समझिये, और आप कुछ भी करिये, परन्तु मेरी गुणवर्णनकी इच्छातृप्ति पूर्ण हुए बिना अर्थात् अतृप्त होता हुआ मैं कभी न उठूँगा ॥३०॥ अजी, महाराज ! गीतारूपी इस आपके प्रसादामृतका जब मैं वर्णन करने लगता हूँ, तब आपकी कृपासे और मेरे भाग्यसे मुझे इस कार्यमें दुगुना बल प्राप्त हो जाता है, ॥३१॥ मैं समझता हूँ, मेरी वाणी अनेक कल्पतक सत्यका तपाचरण कर रही होगी, और उसीका ही हे गुरुराज ! इस गीतारूपी महाद्वीपकी फलप्राप्तिका मुझे परमलाभ प्राप्त हो रहा है ॥ ३२ ॥ मैंने आजतक कोई भी अलौकिक सुकृत सम्पादन किया ही होगा, जिससे कि आप गुरुराजके गुण गानेकी बुद्धि देकर मुझे अल्पसा उऋण किया है॥३३॥ अजी ! क्या कहूँ, मैं उस जीवावस्थाके अरण्यमें प्रविष्ट हो, मृत्युके गांवमें आ पडा था, परन्तु वह दुर्दशाकी अवस्था आज बिलकुल साफ नष्ट हो चुकी है ॥ ३४ ॥ कारण जो ' गीता ' नामसे प्रसिद्ध है, जो इस अखिल विश्वकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अविद्याका निर्दलन कर, बलको प्राप्त हो रही है, ऐसी जो आपकी स्तुत्य कीर्ति उसका वर्णन करनेका मुझमें सामर्थ्य आ रहा है ॥ ३५ ॥ देखिये यदि किसी दरिद्रीके घर महालक्ष्मीजी अपनी इच्छासे कुतूहलके साथ आ बैठे, तो फिर उस मनुष्यको क्या निर्धन कहा जा सकता है ? ॥ ३६ ॥ अथवा दैववशात् यदि अन्धेरेके घर सूर्य ही पहुना आजाय, तो फिर वह अंधकार ही इस विश्वके लिये प्रकाशरूप नहीं होसकेगा ? ॥ ३७ ॥ जिस देवकी महिमाके तोलमें यह संपूर्ण विश्व उसके परमाणुकी भी बराबरी नहीं कर सकता, वह देव भी भाववलसे भक्तके लिये कौनसा रूप नहीं धारण करता ? ॥ ३८ ॥ तद्वत् ही गीताशास्त्रका मेरे जैसेने निरूपण करना आकाश-पुष्पको सूँघने सरीखा ही असंभवनीय है, परन्तु आप समर्थोंने वह भी मेरी इच्छा पूर्ण कर रखी है ॥ ३९ ॥ अतः यह शिष्य ( मैं-ज्ञानदेव ) कहता है कि, हे गुरुराज ! मैं आपकी कृपासे गीताके गम्भीरार्थभरे श्लोकोंका सुगमतासे स्पष्टतया और विस्तारके साथ विशद वर्णन कर दूँगा ॥४०॥ इसके पीछे ( पन्द्रहवें अध्यायमें ) ही श्रीकृष्णने अर्जुनसे संपूर्ण शास्त्र-सिद्धातोंका मेलके साथ वर्णन कर निर्णय कर दिया है, ॥ ४१ ॥ अंगमें बहुत दिनसे घर कर बैठे हुए रोगका जैसे चतुर वैद्य बराबर निदान कर देता है, उसी प्रकार सर्वज्ञ श्रीकृष्णने संपूर्ण उपाधियोंके साथ वृक्षके रूपकद्वारा आलंकारिक परिभाषासे विश्वका विवेचन कर दिया ॥ ४२ ॥ और कूटस्थ अर्थात् अविनाशी आत्माका जो पुरुषरूपसे वर्णन करदिया, उससे उपाधिगत चैतन्यका स्वरूप अर्थात् वह साकारताको कैसा प्राप्त हुआ, यह बात भी स्पष्ट कर दी है ॥ ४३ ॥ और आखिरमें 'उत्तमपुरुष' के निमित्तसे जो वर्णन कर दिया है, उससे शुद्ध आत्मतत्त्व ही प्रकट कर दिया है ॥ ४४ ॥ इसके अनंतर आत्मप्राप्तिका आन्तरिक और सामर्थ्यवान् साधन जो ज्ञान उसका रूप भी स्पष्टतया प्रकट करदिया है ॥४५॥ अतः इस अध्यायमें प्रतिपादन करने योग्य ऐसा विषय कुछ बाकी नहीं रहा । अब केवल गुरु-शिष्यका प्रेमसंबंध ही दिखानेका बाकी रहा है, और उसीको यह अध्याय स्पष्ट करेगा ॥ ४६ ॥ तात्पर्य, ज्ञानी जन तो इस विषयको पूर्णतया समझ चुके हैं, परन्तु अन्य जो आत्मप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षु जन हैं, वे इसे गूढसा मानते हुए शंकित हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ हे मर्मज्ञ पार्थ ! जो भाग्यवान् पुरुष ज्ञानद्वारा मुझ पुरुषोत्तमको प्राप्त करलेता है, वही सर्वज्ञ है और वही भक्तिके शिखरपर जा पहुँचा है समझो ॥ ४८ ॥ इसप्रकार पंद्रहवें अध्यायके आखिरी श्लोकमें त्रैलोक्यनाथ भगवान्ने जो वर्णन किया है, वह ज्ञानकी स्तुतिका ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वर्णन है। जिस ज्ञानका वर्णन करते समय आनंदसागर भगवान् स्वयं भी परम संतोषित होगये ॥ ४९ ॥ जिससे देखनेवाला प्रपंचको गिलंकृत(नाशकर) दृष्टवस्तुके साथ एकरूप हो, लीन होजाय और जीव आनन्द-साम्राज्यरूढ होजाय, ॥ ५० ॥ इस प्रकारका प्रभावी और बलवत्तर कोई उपाय हो तो वह केवल ज्ञान ही है, ऐसी योग्यता प्राप्त करनेमें ज्ञानके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं है। इसप्रकार शुद्ध ज्ञानके अधिपति श्रीकृष्णने कहकर, फिर अर्जुनसे देव बोले कि, हे पार्थ ! यथार्थ ज्ञान ही सर्व उपायोंमें श्रेष्ठ है ॥५१॥ ऐसे भगवद्वचनोंको सुनते ही आत्मज्ञानजिज्ञासुओंके चित्तमें बडा संतोष हुआ और उन्होंने बहुमानपुरःसर उस ज्ञानपरसे अपने जीवभावकी निछावर करडाली ॥ ५२ ॥ जिस वस्तुविषे मनमें प्रीति उत्पन्न होती है तब उस विषयका संचार अन्तरंगमें जो अधिकाधिक बढता जाता है, उसीको 'प्रेम' कहा जाता है, ॥ ५३ ॥ अतएव जिज्ञासुओंमेंसे जिनको उत्तमप्रकारसे ज्ञानका प्रेमानुभव प्राप्त नहीं हुआ हो, उन्हें अप्राप्तज्ञानकी प्राप्ति और प्राप्त हुए ज्ञानकी रक्षा करनेकी अत्युकट इच्छा अवश्य लगी रहती है ॥ ५४ ॥ इस कारण वह शुद्धज्ञान कैसा प्राप्त हो, और यदि प्राप्त भी हो तो उसकी वृद्धि कैसी होगी ? ॥ ५५ ॥ अथवा वह ज्ञान प्राप्त क्यों नहीं होता ? ऐसी कौनसी प्रबल वस्तु है, जो ज्ञानके उपजनेमें विरोध ही करती रहती है ? और यदि वह ज्ञान उपजा भी हो, तो उसे आडे-टेढे मार्गमें ले जानेके लिये ही जो प्रवृत्त करती है ? इत्यादि प्रश्नोंका प्रथम विचार करना चाहिये ॥ ५६ ॥ फिर ज्ञानको जो विरोधक हो, उस रास्तेसे लगाकर, जिस रीतिसे ज्ञानकी वृद्धि हो अथवा जो ज्ञानका हितकारी हो, उसीका सब भावोंसे विचार करना अपना कर्तव्य है ॥ ५७ ॥ इस प्रकारकी जो इच्छा आप सब श्रोताओं और जिज्ञासुओंके मनमें उत्पन्न हो रही है, उसीको पूर्ण करनेके हेतु, अब भगवान् श्रीकृष्ण अधिकतासे निरूपण करेंगे ॥ ५८ ॥ अब भगवान् उस दैवी-संपत्तिका ही वर्णन करेंगे, जिससे कि ज्ञानियोंको उत्तम जन्मका लाभ प्राप्त होकर, उन्हें शान्तिसुखकी भी वृद्धि प्राप्त होती रहेगी ॥ ५९ ॥ उसी प्रकार, जिससे विषय-ज्ञानके कारण रागद्वेषादि दुर्विकारोंको आश्रय प्राप्त होता है, ऐसी जो आसुरी सम्पत्ति है, उसके भयंकर स्वरूपका भी भगवान् वर्णन करेंगे ॥ ६० ॥ पीछे नववें अध्यायमें प्रसंगानुसार सहज लीलासे ही आश्चर्यकारक करतूत करनेवाली इन दोनों इष्ट और अनिष्टकारिणी संपत्तियोंके वर्णनका उपक्रम हो ही चुका है, ॥ ६१ ॥ और वहां ही उस विषयका पूरा विचार भी करना था, परन्तु इतनेमें ही वहां दूसरा प्रस्ताव उपस्थित



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हो गया, इस कारण उसे वैसा ही छोडना पडा; परन्तु अब भगवान् उस विषयका प्रसंगानुसार स्पष्टीकरण कर देते हैं ॥ ६२ ॥ अतः यह सोलहवां अध्याय पिछले नववें अध्यायकी पूर्तिका संबंध जोडता हुआ ही, निरूपित किया जायगा ॥ ६३ ॥ अब यह प्रस्तावना यहां ही समाप्त हो । प्रस्तुत विषय ऐसा है कि, ज्ञानके हित या अहितके लिये ये दोनों सम्पत्तियां ही कारणीभूत सामर्थ्य रखती हैं ॥ ६४ ॥ हे पार्थ ! अब प्रथम उस दैवीसम्पत्तिका वर्णन किया जाता है, उसे सुनो । जो दैवीसम्पत्ति मुमुक्षु-जनोंको मार्गदर्शक है तथा जो मोहरूपी रात्रिमें धर्मदीपकरूपी प्रज्वलित मशाल बनती है ॥ ६५ ॥ संसारमें संपत्ति उसे कहा जाता है कि, जो पदार्थ परस्परके सम्बन्धसे परस्परको वृद्धिंगत करते हुए इकट्ठे हो, अनेक पदार्थोंको प्राप्त कराते हैं ॥ ॥ ६६ ॥ इस दैवीसम्पत्तिसे सुखकी प्राप्ति होती रहती है, और वह दैवगुणके कारण ही किसीको प्राप्त होती है, अतः उसका आश्रय करना भी योग्य होता है, इसी लिये उसे 'दैवी सम्पत्ति' कहा जाता है ॥ ६७ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं—हे पार्थ ! इस दैवीसम्पत्तिके गुणोंमें जिसे सर्वोच्च तथा अग्रगण्य माना जाता है, उसे 'अभय' कहते हैं ॥ ६८ ॥ जलकी बाढमें न कूदनेवालेको जैसे डूबनेका भय नहीं रहता, अथवा पथ्यसे चलनेवालेपर जैसे रोगका आक्रमण होना प्रायः असंभव रहता है, ॥६९॥ उसी प्रकार कर्माकर्मके मार्गकी अहंकारवृत्तिको रोककर, संसारका भय छोड देना, ॥ ७० ॥ अथवा अद्वैतभावना ( ऐक्य ) का विस्तार होनेके कारण, संपूर्ण जगत्को आत्मभावकी भावनासे देखते हुए भयकी वार्ताको अन्तःकरणसे निकालकर उसका देशान्तर कराना, ॥ ७१ ॥ किंवा जल यदि नमकको डुबानेकी इच्छासे आजाय, तो जैसे नमक ही जलरूप होजाता हो, उसी प्रकार स्वयं अद्वैत होजानेपर; सब कुछ आत्ममयही होजाता है, और तब जो भयका नाश हो जाता है, ॥ ७२ ॥ हे पार्थ ! उसीको 'अभय' कहा जाता है । और इसीको सच्ची और सम्यग्ज्ञानमार्गकी सीमा समझना चाहिये ॥ ७३ ॥ अब जिसे सत्त्वशुद्धि कहा जाता है, उसे इन लक्षणोंसे पहँचानना चाहिये । देखो, राखकी पूंजी जैसे न जलती है और न बूझती भी है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ७४ ॥ अथवा जिसे शुक्ल पक्षके पडवा पीछेकी वृद्धिकी स्थिति भी प्राप्त न हुई है, और अमावास्याकी क्षयकी अवस्था भी न प्राप्त हो रही है, ऐसी बीच-वाली मध्यमावस्थामें जैसे चन्द्रमा सूक्ष्मरूपसे अविकृत रहता है, ॥७५॥ किंवा जैसी गंगानदी न वर्षाकालसे बाढयुक्त हो रहती है, या ग्रीष्मकालसे न सूख जाती है अर्थात् अपने मध्यम स्वरूपसे वहती रहती है, ॥७६॥ उसी प्रकार, संकल्प-विकल्पोंके मोहमें न पडकर और रजोगुण तथा तमोगुणसे भरी हुई नानामनोरथोंकी प्रवृत्तियोंका त्याग कर, जो बुद्धि केवल स्वधर्मविषय-विषे अभिरुचि रखती है, ॥ ७७ ॥ तथा इन्द्रियें यदि अनुकूल या प्रतिकूल विषय दिखाती रहें, तथापि मनकी स्थिरतामें यत्किंचित् भी विस्मय या हेरफेर नहीं होता, ॥ ७८ ॥ जैसे प्रियपतिके बाहरगाँव जानेपर, पतिव्रता स्त्रीका मन उस विरहदुःखके सामने किसी भी हानि-लाभको न गिनता हुआ केवल उदासीन बना रहता है, ॥ ७९ ॥ उसीप्रकार आत्मस्वरूपमें एकनिष्ठ प्रीति होनेके कारण, बुद्धिका जो अनन्यरूप होजाना है, केशिमर्दन श्रीकृष्ण उसीको 'सत्त्वशुद्धि' कहते हैं ॥ ८० ॥ अब आत्मप्राप्तिके हेतु ज्ञान तथा योग इन दोनोंमेंसे जिसकी अपने अन्तःकरणमें अत्युत्कट इच्छा भरी रहे, ॥ ८१ ॥ और उस स्थितिमें संपूर्ण चित्तवृत्तियोंका ऐसा जो त्याग करना है कि, जैसे कोई याज्ञिक किसी प्रकारकी कामना मनमें न रखकर यज्ञाग्निमें पूर्णाहुतिको समर्पण करता है, ॥ ८२ ॥ अथवा जैसे कोई सत्कुल-वान् मनुष्य अपनी कन्याको उत्तम कुलवान्को ही देता है, किंवा जैसी लक्ष्मी श्रीमुकुन्दमें ही निश्चलतासे रममाण हो रही है, ॥ ८३ ॥ उसीप्रकार संपूर्ण विकल्पोंका त्याग कर, केवल योग और ज्ञानमें ही जीवनवृत्तिको जो स्थिरत्व प्राप्त करदेना है, कृष्णनाथ भगवान् उसीको तीसरा गुण अर्थात् "ज्ञानयोगव्यवस्थिति" कहते हैं ॥ ८४ ॥ यदि अपना शत्रु भी सकटग्रस्त हो, तो भी देह, वाचा, मन या यथाप्राप्त धनसे उस आपद्ग्रस्तको जो वञ्चित न रखना, ॥ ८५ ॥ जैसे कि, हे पार्थ ! रास्तेपर रहा वृक्ष पान्थिकके लिये फूल, फल, छाया या मूल अथवा पत्तोंसे आदर करनेमें हिचकता नहीं, ॥ ८६ ॥ तद्वत् ही प्रसंग आनेपर आर्तजनोंका धनसे, धान्यसे या मनसे उनकी इच्छानुसार आदरातिथ्य करनेमें सदिच्छासे अपनी संपत्तिका जो उपयोग करना है, ॥ ८७ ॥ हे पार्थ ! उसे 'दान' कहा जाता है। यह दान मानो मोक्षरूपी संपत्तिको दिखानेवाला दिव्याञ्जन ही समझना चाहिये। अस्तु, अब हम दमका लक्षण कहते हैं, तुम सावधानतासे सुनो ॥ ८८ ॥ जैसे कोई तलवारवान् वीर अपने शत्रुको एकसाथ काट डालना चाहता है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उसीप्रकार विषय तथा इन्द्रियोंका जो मेल बना रहता है, उसको जो अपने पराक्रमसे उखाड डालना चाहता है, उसीको 'दम' कहा जाता है ॥ ८९ ॥ तथा जो विषयरूपी बादली हवासे इन्द्रियोंको बचा रखनेके हेतु, उन्हें बाँधता हुआ प्रत्याहारके हाथ सौंप देता है ॥९०॥ तब चित्तके आन्तरिक सामर्थ्यसे पराभूत हुई जो प्रवृत्ति, उसको पीछे हटाता हुआ, दश इन्द्रिय-द्वारोंमें वैराग्यकी अग्नि सुलगा देता है ॥ ९१ ॥ जो श्वासोच्छ्वासोंसे भी अखंड और कठिनतर व्रताचरणोंको करता रहता है. जिस व्रताचरणके करते रहते समय अल्पसा भी जिसे विश्राम नहीं प्राप्त होता, ॥९२॥ हे पार्थ ! इसप्रकार लक्षणोंवाला जो होता है उसीका नाम 'दम' है, यह बात स्पष्टतया समझ रखो । अब हम यागार्थका संक्षेपसे वर्णन करते हैं, तुम सुनो ॥ ९३ ॥ पहली कक्षामें बैठे हुए ब्राह्मणोंसे लेकर आखिरी कक्षामें स्थित स्त्री आदितक जो जो अपन अपने अधिकारके अनुसार बैठे हों, ॥ ९४ ॥ उनमेंसे जिसके लिये जो आचरण यथायोग्य हो, जो देवता और धर्ममें प्रीतिवाला हो, उस आचरणसे उस प्रत्येकको यथाशास्त्र और विधिके अनुसार यजन करना चाहिये ॥ ९५ ॥ वेदशास्त्रोक्त रीतिसे षट्कर्माचरण करनेवाला ब्राह्मण और उस ब्राह्मणको नीतियुक्त वन्दन करनेवाला शूद्र ये दोनों भी अपने-अपने आचारसे वर्तने रहनेपर समान ही यागकार्य संपादन करनेवाले समझे जाते हैं ॥९६॥ अतएव सबको अपने अपने अधिकारानुसार यज्ञ कर्म करना हरेकका कर्तव्य ही है । परन्तु यह ध्यान अवश्य रहे कि, किसी भी कामनारूपी फलके विषका उसमें जरा भी संबंध न रहना चाहिये ॥९७॥ तथा 'मैं यज्ञकर्ता हूँ' इस प्रकारकी देहाभिमानभरी भावना मनमें भी प्रकट न होने देना चाहिये, तथापि वेदाज्ञा पालनकर्मके लिये सदैव वेदका आश्रयस्थान बना रहना ही चाहिये ॥९८॥ हे धनंजय ! इस प्रकार 'यज्ञ' शब्दका संक्षेपसे शास्त्रोक्त वर्णन किया जाता है । यह यज्ञ मोक्षमार्गके लिये जानेमें एक ज्ञानवान् संगाती समझना चाहिये ॥९९॥ देखो जैसे गेंदको भूमिपर पटका जाता है, तो उस भूमिको मारनेकी क्रिया करनेके लिये नहीं, किन्तु फिर वह अपने हाथ आजाय यही भावना रखकर चेष्टा की जाती है, अथवा खेतमें जो बीज फेंका जाता है, उसका अर्थ यह नहीं, कि उसे फेंक दिया जाय, किन्तु उससे फसलमें वृद्धि हो, यही दूरदृष्टि रखकर वह बोया जाता है ॥ १०० ॥ अथवा अंधेरेमें गुप्त रखीहुई वस्तु ढूँढनेके लिये जैसे दीपकका आश्रय लेना पडता है, किंवा वृक्षकी शाखाओंमें फल आनेके हेतु जैसे उसकी जडमें पानी सींचना होता है, ॥ १ ॥ अथवा थोडेमें कहा जाय, तो यही समझो कि, अपना ही मुख देखना हो तो जैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दर्पणको बारबार पोंछताछ कर स्वच्छ रखना आवश्यक होता है, ॥ २ ॥ उसी प्रकार वेदप्रतिपाद्य-विषय जो ईश्वर, उसके स्वरूपका ज्ञान होनेके हेतु, श्रुतिग्रंथोंका अभ्यास करना आवश्यकीय और अनिवार्य है ॥ ३ ॥ ब्राह्मणोंको 'ब्रह्मसूत्र' पढना चाहिये और दूसरे वर्णोंको शुद्ध-चैतन्यतत्त्व-प्राप्त्यर्थ अधिकारानुसार स्तोत्र अथवा केवल नाममंत्रका बारबार पठन करना ही उचित है ॥ ॥ ४ ॥ हे पार्थ ! जिसे 'स्वाध्याय' कहा जाता है, वह यही है । अब, तपशब्दका मर्म प्रकट करता हूँ तुम सुनो ॥ ५ ॥ अपने पास जो कुछ द्रव्य वा देनेलायक वस्तु हो उसका दान करना, अर्थात् जो कुछ हो उसको वृथा खर्च न कर उसको सार्थक बनाना, जैसे कि बीज ( फल ) प्राप्तिके अनंतर वनस्पतियें स्वयं सूखजाती हैं, ॥ ६ ॥ किंवा जैसे धूप अग्निमें प्रविष्ट हो, स्वयं जलकर सुगंधिको फैलाती है, अथवा अशुद्ध सुवर्ण अपनेको अग्निमें जलाकर, शुद्ध हो वजनमें कम हो जाता है, किंवा पितृपक्षमें पितरोंको अमृतका आहार देते देते जैसे चंद्रमा स्वयं क्षयको प्राप्त हो जाता है, ॥ ७ ॥ तद्वत् ही हे पार्थ ! आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका अनुभव प्राप्त करनेके लिये प्राण, इन्द्रियें तथा शरीरका जो ह्रास करना है, उसीका नाम 'तप' है ॥ ८ ॥ अथवा तपके अनेक भिन्न प्रकार भी माने जाते हैं, परन्तु जैसे राजहंस पानीको अलग छाँटकर अपनी चंचु केवल दूधमें ही लगा रखता है, ॥ ९ ॥ तद्वत् ही जिसके अन्तःकरणमें ऐसा विवेक उत्पन्न होता है कि, जिसका उदय होते ही देह और जीवभावका जो मिश्रण हो रहा है, उसमेंसे जीवको अलग निकाल दे ॥ ११० ॥ तथा जागृतावस्थाप्राप्तिमें जैसे स्वप्नसहित निद्राका लोप हो जाता है, तद्वत् आत्मविचारमें दृष्टि लगनेपर बुद्धिकी गति कुण्ठित हो जावे, ॥ ॥ ११ ॥ अतः उस आत्मावलोकनमें जो प्रवृत्त हो रहना है, हे पार्थ ! उसीका नाम 'तप' है । यह तपका निर्णय तुम्हें समझा दिया ॥ १२ ॥ अब, माताका दूध जैसे केवल बालकके हितार्थ ही रहता है, किंवा नानाविध भूतप्राणियोंमें चैतन्य जैसे समान ही रहता है, तद्वत् संपूर्ण प्राणिमात्रोंमें जो सुजनतासें वर्ताव रखना होता है, हे पार्थ ! उसीको तुम 'आर्जव' समझो ॥ १३ ॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

उसीप्रकार संपूर्ण विश्वको सुखी बनानेकी इच्छासे ही शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक जो व्यवहार करना होता है, उसे तुम 'अहिंसा' जानो ॥१४॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अब, जैसी कि चमेलीकी अल्प खिली हुई कली तीक्ष्ण हो, परन्तु स्वाभावतः मृदु रहती है, अथवा चन्द्रमाका प्रकाश तेजस्वी हो, परन्तु स्वाभाविक ही शीतल रहता है, ॥ १५ ॥ दिखाते ही जो रोगको हटाती है और जिह्वाको भी जो कडुवी नहीं मालूम होती, यदि वह औषधी ही नहीं, तो उसे फिर उपमा भी किसकी दी जा सकेगी ? ॥ १६ ॥ जो जल, नेत्रोंमें माराजानेपर भी अपने मृदुपनसे नेत्रान्तर्गत किसी भी अवयवको पीडा नहीं पहुँचा देता, परन्तु वही जल जैसे कडे पहाडको भी फोड डालता है, ॥ १७ ॥ तद्वत् जो भ्रम-मोहादि संदेहोंका नाश करनेमें तो लोहके समान अत्यन्त तीक्ष्ण रहता है, परन्तु श्रवणेंद्रियोंको सुख देनेमें जो माधुर्यको भी लजाता है, ॥ १८ ॥ जिसे सुननेके लिये मानो कर्णेंद्रिय अनेक मुखयुक्त हो कौतूहलसे उसका प्राशन ही करना चाहते हों, परन्तु अपनी यथार्थताके सामर्थ्यसे जो ब्रह्मतत्त्वका भी भेद करदेता है, ॥ १९ ॥ किंबहुना, जो प्रिय ( मधुर ) होनेसे भी किसीकी प्रतारणा नहीं करता, तथा यथार्थ होकर भी किसीका मर्मभेदक शल्यसा नहीं बनता, ॥१२०॥ नहीं तो, शिकारियोंका गाना भी कर्णमधुरही रहता है, परन्तु परिणाम देखाजाय तो [ हरिणादिकोंके लिये ] वह घातक ही होजाता है, अथवा अग्नि भी अपना शुद्धिकरण-कार्य ठीक सत्यतासे ही करती है, [ जो जलकर भस्म होता है ] परन्तु जो कुछ बचता ही नहीं, ॥२१॥ तद्वत् जो वाणी कर्णको तो मधुर और प्रिय भाती हो, परन्तु जिसका अर्थ या परिणाम हृदयको भेदकर टुकडे कर डालता है, उसे वाणी कहनेकी अपेक्षा हृदयद्राविणी राक्षसी ही कहना युक्त होगा ॥२२॥ परन्तु जैसे पुत्रके अपराध या दुराचरणको देख, माता ऊपरसे तो क्रोधयुक्तसी दीखती है, परन्तु वही माता जब उसका लालन करती है, तो पुष्पसे भी मृदुहृदयवाली प्रतीत होती है । उस माताके स्वरूपके समान जो वाणी कानको सुखावह होकर, परिणाममें भी यथार्थ होती हुई दुष्ट-विकारोंसे अलिप्त रहती है, उस वाणीको अथवा ऐसे भाषणको ही हे पार्थ ! तुम ' सत्य ' समझो ॥ २३ ॥ २४ ॥ अब, पत्थरपर चाहे कितना भी जल सींचते रहो तथापि जैसे उसमेंसे अंकुर नहीं ऊगता, अथवा काँजीको चाहे कितनी देरतक मन्थन करते रहो तो भी जैसे उसमेंसे माखन नहीं निकलता, ॥ २५ ॥ अथवा साँपकी केंचुलीके माथेपर चाहे लत्ताप्रहार करो तो भी जैसे वह सिर उठाकर फणा नहीं कर सकती, किंवा वसंतऋतु रहनेपर भी जैसे आकाशमें फूलोंकी बहार नहीं आती, ॥ २६ ॥ अथवा रम्भाके स्वरूपलावण्यको देखकर भी जैसे शुकमुनीके शुद्ध अन्तःकरणमें कामविकारका संचार नहीं होगया, किंवा जो अग्नि नितरां शांत हो चुकी है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उसपर चाहे घृतका कितना भी सिंचन किया जाय तथापि वह जैसी प्रदीप्त नहीं हो सकती, ॥२७॥ तद्वत्, जिन शब्दोंसे कोई अज्ञान बालक भी क्रोधयुक्त होजाय, इस प्रकारके बीज जिन शब्दोंमें भरे रहे हैं, ऐसे शब्दसमूहोंसे ताडना करनेपर, ॥२८॥ जैसे ब्रह्मदेवके पांव पकडकर प्रार्थना करनेसे भी मृत मनुष्य फिरसे जीवित नहीं होता, तद्वत् ही जिसके मनमें यत्न करनेपर भी क्रोधका उदय नहीं होता ॥ २९ ॥ इस प्रकारकी जो मनःस्थितिकी शान्तावस्था, हे पार्थ ! उसीको तुम ' अक्रोधत्व ' समझो । इस प्रकार ज्ञानशिरोमणि लक्ष्मीपति भगवान् अर्जुनसे वर्णन करते भये ॥ १३० ॥ अब, हे पार्थ ! देखो, मृत्तिकाका त्याग करनेसे जैसे घटका भी त्याग होही जाता है, अथवा तन्तुका त्याग करनेपर जैसे वस्त्रका त्याग साथ ही होजाता है, किंवा बीजका त्याग करना ही जैसे वटवृक्षका त्याग है, ॥ ३१ ॥ अथवा दिवालका त्याग करनेसे जैसे उसपर लिखे हुए संपूर्ण चित्रोंका ही त्याग होगा, किंवा निद्राका त्याग ही जैसे अनेक प्रकारके स्वप्नोंका त्याग होजाता है, ॥ ३२ ॥ किंवा जलका त्याग करना जैसे उसके सब तरंगोंका ही त्याग है, अथवा वर्षाकालके त्याग करनेपर जैसे मेघोंका ही त्याग होगा, किंवा धनका त्याग करनेसे जैसे संपूर्णविषयोपभोगोंका त्याग आपही आप होजाता है, ॥ ३३ ॥ उसीप्रकार, बुद्धिमानोंको देहाभिमानका त्याग कर, संपूर्ण प्रापंचिक-विषयोंका जो त्याग करना होता है, हे पार्थ ! उसीको ' त्याग ' कहा जाता है । इस प्रकार यज्ञभोक्ता श्रीकृष्ण भगवान् कह रहे थे, कि वह भाग्यवान् अर्जुन बोला, बहुत अच्छा मुझे बडा हर्ष होरहा है ॥३४॥३५॥ हे देव ! अब मुझे शान्तिका लक्षण स्पष्ट करके कहिये, उसपर देवने कहा ठीक है, अब मैं कहता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो ॥ ३६ ॥ देखो पार्थ ! ज्ञेयको गिलंकृत कर, जब ज्ञाता और ज्ञान भी विलीन होजाते हैं, और तब जो स्थिति रहती है, उस स्थितिको ' शांति ' कहना चाहिये ॥३७॥ प्रलयकालका जलप्रवाह जैसे संपूर्ण विश्वको अपने जलसे डुबाता हुआ, केवल अकेला आपही सर्वत्र भरापूरा रहजाता है, ॥३८॥ फिर जैसे यह व्यावहारिक भेद प्रतीत नहीं होता कि, यह ( नदी आदिका वा उसका ) उगमस्थान, यह प्रवाह या यह समुद्र हो । इतना ही नहीं, वरन् जहां-तहां जलही जल रहनेके कारण, पूर्वोक्त प्रकारका भेददर्शक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वहां जलके अतिरिक्त दूसरा है ही कौन ? ॥३९॥ तद्वत् ही ज्ञेयको आलिंगन देनेपर, जब एकरूपता होती है, तब ज्ञातृत्व पेटमें ही समाजाता है, फिर जो कुछ बचता है, हे पार्थ ! वही शान्तिका लक्षण समझना होगा ॥ १४० ॥ अब पैशून्य किसे कहते हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उसका भी वर्णन सुनो । उत्तम ज्ञानी वैद्य रोगीको रोगपीडासे छुटानेके पूर्व ( निदानके समय ) यह नहीं सोचता रहता है कि, यह मनुष्य आत्मीय है वा परकीय, ॥ ४१ ॥ अथवा कोई गौ कीचडमें फँस रही हो, तो उसे देखकर उसके दुःखसे दुःखा हुआ मनुष्य जैसे इस बातका विचार नहीं करता रहता है कि, यह दुग्धवती है या वन्ध्या, ॥४२॥ किंवा कोई अकस्मात् जलमें डूब रहा हो, तो उसे देख करुणार्द्रहृदयवाला मनुष्य यह विचार नहीं करता रहता है कि, यह ब्राह्मण है या शूद्र ! किन्तु वह यही सोचता है कि, प्रथम इसके प्राण बचानेका उपाय करनेका जो अपना कर्तव्य है, उसीको करना चाहिये ॥ ४३ ॥ अथवा किसी दुष्ट चाण्डालके हाथ दुर्दैवसे कोई स्त्री मिली हो और उस दुष्टने अरण्यमें उसे विवस्त्र कर रखा हो, तो सज्जन मनुष्य जैसे वस्त्र पहनाये बिना उसकी तरफ देखना शिष्टाचारके विरुद्ध समझकर नहीं देखता है, ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार अज्ञान, भ्रम, प्रमाद इत्यादि दोषोंसे अथवा पूर्व-जन्मके कठिनतर कर्मदोषोंके कारण जो सब तरहसे निंद्यमार्गोंमें डूब हुए दुःखित हो रहे हैं, ॥ ४५ ॥ उन्हें अपने अंगसामर्थ्यसे सहाय करते हुए उन दुःखोंके शल्यकी विस्मृति हो, यही करना ॥ ४६ ॥ देखो पार्थ ! दूसरोंके दोषोंको अपनी शुद्ध-दृष्टिसे निरीक्षण कर, फिर उनपर कृपादृष्टि करना, ॥ ४७ ॥ जैसे कि देवकी पूजा करके ही तब दर्शन ध्यान करना होता है, किंवा प्रथमतः खेत बोकर ही फिर उसकी देख-भाल करनेके लिये जाना चाहिये, किंवा अतिथिको प्रथम आदरातिथ्यसे संतुष्ट करनेपर ही उसका आशीर्वाद लेना होता है, ॥ ४८ ॥ तद्वत् ही प्रथमतः अपन गुणोंसे दूसरोंकी न्यूनताको दूर करके ही उनकी तरफ देखना चाहिये ॥ ४९ ॥ हे पार्थ ! इतना ही नहीं, बरन् किसीका भी मर्मभेद न करना चाहिय, किसीको भी कुकर्म-मार्गमें प्रवृत्त न करना, या किसीका दुष्कर्म प्रगट न करना, अथवा किसीको दोषी न बनाना चाहिये ॥ १५० ॥ हे पार्थ ! यह तो होना ही चाहिये, परन्तु जिस रीतिसे वा उपायसे पतितका उद्धार हो या उसे सँभालाजाय अर्थात् फिरसे वह उठ अपने कार्यके योग्य हो, यह करना भी अपना कर्तव्य समझना चाहिये । तथा किसी प्रकार दूसरेके मर्मपर घाव हो, ऐसी बात कभी मनमें भी न लाना चाहिये ॥ ५१ ॥ हे पार्थ ! जो दृष्टि नीचोंको भी श्रेष्ठोंकी बराबरीके समझनेमें अनिश्चितता न रखती हो, इतना ही नहीं बरन् उनके दोषोंको भा देखना न चाहती हो, ऐसी ही बननी चाहिये ॥ ५२ ॥ हे पार्थ ! इसप्रकारकी दृष्टिसे देखनेके व्यवहारको ही तुम 'अपैशून्य' समझो, जो कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मोक्षमार्गमें जानेके लिये वह एक विश्रान्तिस्थान वा सुखासन ही होता रहेगा ॥ ५३ ॥ अब, दयाका भी वर्णन करता हूँ । जैसी पूर्ण-चंद्रमाकी शीतल प्रभा विश्वको अपनी शीतलता देते समय, यह बात नहीं देखती रहती कि, यह छोटा है अथवा यह बडा है, ॥ ५४ ॥ उसीप्रकार महायतासे दुःखितोंके कष्टोंको दूर करते समय जो इस विषयका विचार मनमें भी नहीं लाता कि, यह मनुष्य उत्तम है या अधम, ॥ ५५ ॥ जगत्में यह बात प्रगट ही देखी जाती है कि, जल स्वयं शरीरसे नष्ट होता है, परन्तु तृण-जैसे अल्प वस्तुके भी जानेवाले प्राणोंको बचाता है, ॥५६॥ तद्वत्, जो दयाशील पुरुष है, वह दूसरोंके दुःखसे व्याकुल हो, उनके दुःखशमनार्थ अपने सर्वस्वका भी त्याग करनेमें समर्थ होता है, किंबहुना उनके लिये अपने प्राणतक देना भी कमही समझता है ॥ ५७ ॥ तथाहि, नीचे बहनेवाला जल जैसे गड्ढेको पूरे भरे बिना एक कदम भी आगे बढना नहीं चाहता, उसी प्रकार यह दयावान् मनुष्य आगे आये हुए श्रांतमनुष्यको संतुष्ट किये बिना आगे चलना उचित नहीं समझता ॥ ५८ ॥ देखिये पार्थ ! पैरमें काँटा चुभजाय तो उसकी व्यथा जैसी मस्तकमें जा पहुँचती है, उसी प्रकार दूसरोंके दुःखसे जो अन्तःकरणमें अत्यंत दुःखी होता है, ॥५९॥ अथवा किसी शीतलपदार्थको पैरमें लगानेपर जैसी नेत्रोंमें शीतलता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जो दूसरोंके सुखसे परम सुखी हो जाता है ॥१६०॥ बहुत क्या कहें पार्थ ! तृषितोंकी प्यास शमनार्थ ही जैसे संसारमें जल निर्माण कर रखा है, तद्वत् ही दुःखितोंके क्लेश निवारणार्थ अर्थात् कल्याणार्थ ही जिसका जीवन है, ॥ ६१ ॥ हे वीरवर पार्थ ! वह पुरुष मूर्तिमान् 'दया' ही तुम समझो । और उसका जन्म होते ही, उसका ऋणी जो मैं सो उसे प्राप्त होता हूँ ॥ ६२ ॥ अब 'भूतेष्वलोलुप्त्वं' का भी स्पष्टीकरण करते हैं, तुम सुनो । देखो पार्थ ! कमलपुष्प यद्यपि मनोभावसे सूर्यका अनुसरण करता रहता है, तथापि सूर्य जैसे उसके सुगंधिको स्पर्श नहीं करता, ॥ ६३ ॥ अथवा वसंत ऋतुके मार्गमें यदि पीछेसे वनश्रियोंकी अक्षौहिणियें भी आकर भीड करदें, तथापि वह जैसा उसका स्वीकार न करता हुआ आगे चला ही जाता है, ॥ ६४ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु, सर्व महासिद्धियोंके साथ लक्ष्मी भी आजाय तो महाविष्णुके पास जैसी उसकी गिनती ही नहीं होती, ॥ ६५ ॥ उसी प्रकार इह लोकिक वा स्वर्गीय-पारलौकिक विषयसुखोपभोग अपनी इच्छाके स्यायद दास बनजाँय, तथापि उनके भोगनेका मनमें भी न आना, ॥ ६६ ॥ बहुत कहांतक कहें, जीवको कुतूहलसे भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विषयकी इच्छाका अन्तःकरणमें यत्किंचित् अभिलाष न होनेवाली जो स्थिति हो, उसे ही तुम अलोलुप्त्वका लक्षण समझो ॥ ६७ ॥ अब मार्दवका भी लक्षण सुनाते हैं—मधुमक्खियोंको जैसे उनका छत्ता किंवा जलचरोंको जैसे जल और पक्षियोंको जैसे अनिर्बंध आकाश, ॥ ६८ ॥ अथवा बालकके लिये जैसे निर्हेतुक प्रेम, किंवा वसंतऋतुके स्पर्शसे युक्त हुई जैसी मलयागिरिकी वायु, ॥ ६९ ॥ अथवा नेत्रोंके लिये जैसे प्रियजनोंका दर्शन, किंवा अपने बच्चोंके लिये जैसी कच्छपिकी दृष्टि, उसी प्रकार संपूर्णः भूतमात्रोंमें प्रेमयुक्त और मृदु आचरण करना, ॥ १७० ॥ जैसे कि स्पर्शसमय अत्यंत सुगंधित और देखनेमें अर्थात् शरीरसे अत्यंत निर्मल, ॥ ७१ ॥ ऐसा जो कपूर, वह यदि चाहे जितना खानेसे नुकसान नहीं पहुँचा देता, तो उसे उक्त मृदुता या मधुरताकी उपमा दी जा सकती, ॥ ७२ ॥ परन्तु जैसे आकाश महाभूतोंको भी अपने पेटमें समा ले सकता है और परमाणुओंमें भी प्रविष्ट हो रहता है, किंबहुना विश्वकासा ही रूप हो बना रहता है, ॥ ७३ ॥ हे पार्थ! बहुत क्या कहूँ, उसीप्रकार जो विश्वके जीवन और प्राणोंके अनुसार अपना जीवन-रक्षण करना होता है, उसे ही 'मार्दव' कहना चाहिये ॥७४॥ अब ह्री (लज्जा) का भी वर्णन सुनाता हूँ। जैसे पराजित हुआ राजा लज्जासे दुःखित हो अदृश्य रहता है, अथवा हीनावस्थाको प्राप्त हुआ मानी पुरुष जैसे निस्तेज होजाता है, ॥ ७५ ॥ किंवा भूलसे, कोई संन्यासी अकस्मात् चाण्डालके घर जानेपर जैसे वह लज्जायुक्त होता है, ॥ ७६ ॥ समरांगणसे क्षत्रियका भागजाना कैसा लज्जास्पद होगा और ऐसी बात कौन सहेगा? किंवा महापतिव्रताको यदि वैधव्य निमंत्रण दे, तो उसका तिरस्कार क्यों न किया जायगा? ॥ ७७ ॥ सुंदर, सुडौल पुरुषके अंगपर यदि कुष्ठ उत्पन्न हो, किंवा किसी सज्जन पुरुषको कोई बुरी बातका अपमानकारक दोष लगाया जाय, तो जैसे उन्हें वे प्राणसंकट ही प्रतीत होते हैं, ॥ ७८ ॥ तद्वत् ही इस साढे तीन हाथवाले शरीरमें शवके समान रुक रहकर जीवित रहना और पुनःपुनः उत्पन्न होकर बारबार मरना ॥ ७९ ॥ तथा गर्भाशयमें वहांके रक्त और मूत्र-रसोंकी ढाली हुई मूर्ति बनकर रहना कैसा दुःखद और लज्जास्पद है? ॥ १८० ॥ सारांश, देहबंधनमें आकर नामरूपात्मक होजाना, इत्यादि बातोंकी अपेक्षा और अधिक लज्जास्पद कुछ नहीं है ॥ ८१ ॥ अतः इसप्रकारके अनेक दोषोंसे युक्त देहकी जो घृणा करना है, उसीका नाम ही (लज्जा) है। परन्तु यह सन्त-साधुओंको ही हुआ करती है, दूसरे जो स्वयं निर्लज्ज ही हैं, उन्हें तो यह शरीर तथा उपरोक्त बातें प्रिय ही जान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पडती हैं ! ॥ ८२ ॥ अब अचापल किसे कहाजाता है, वह सुनो । कठ-पुतलियोंके नाचनेका आधार जो रस्सी, उसके टूटते ही जैसे उनका नाचना बंद होजाता है, उसीप्रकार प्राणायामादि योग-द्वारा प्राणोंको जीत रखनेपर, कर्मेंद्रियोंकी गति कुंठित होजाती है, ॥ ८३ ॥ अथवा सूर्यास्त होतेही जैसे किरणसमूहोंका विस्तार भी बंद होजाता है, वही प्रकार मनके जीतनेपर ज्ञानेन्द्रियोंका होजाता है ॥ ८४ ॥ अतः, इसप्रकारसे मन तथा प्राणोंका संयमन करनेपर जो दशों इन्द्रियोंका पंगु ( दुर्बल ) होजाना है, उस अव-स्थाको ही 'अचापल' कहा जाता है ॥ ८५ ॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ २ ॥

अब, ईश्वरप्राप्तिकी इच्छासे ज्ञान-मार्गमें प्रवृत्त होनेपर जैसी धैर्यकी न्यूनता नहीं रहती, ॥ ८६ ॥ मरण तो स्वयं ही भयंकर है, फिर भी जीतेजी अग्निमें प्रविष्ट होकर मरना तो कैसा दुःखकर होता हो, तथापि अपने प्रिय प्राणेश्वरके लिये जैसी पतिव्रता स्त्री उस दुःखकी पर्वा नहीं करती, ॥ ८७ ॥ तद्वत् ही विषरूपी विषयोंको आत्मनाथकी प्राप्तिमें नियोजित करता हुआ जीव जब शून्यमार्गमें जानेवाले आकुंचित मार्गमेंसे दौडने लगता है, ॥८८॥ तब, जैसे वहां कोई निषेध उसे रोक नहीं सकता, विधिकी मर्यादाका कोई बंधन वह प्रतिबंधक नहीं मानता, महासिद्धिकी इच्छाका मोह भी उसके अन्तःकरणमें नहीं प्रविष्ट हो सकता, ॥ ८९ ॥ इस तरहसे स्वयं प्रेरित मनका जो ईश्वरकी तरफ स्वाभाविक दौडना होता है, उसे ' आध्यात्मिकतेज ' नाम दिया जाता है ॥ १९० ॥ अब, सब सहनशीलोंमें मैं ही अत्यंत सहनशील हूँ, इस प्रकारका अभिमान न होनेका नाम ' क्षमा ' है । जैसे कि शरीरपर अनगिन्त रोम हैं, परन्तु उनका भार सहन करते रहनेका उसे स्मरण भी नहीं रहता तद्वत् ॥९१॥ ( अब धृति ) इन्द्रियें मस्त होती हुई बिना रोक-टोकगतिसे चलने लगी हों, तथा शरीरस्थ पुराने रोग एकसाथ प्रक्षुब्ध होगये हों, अथवा प्रियजनोंका अकस्मात् वियोग हो रहा हो, किंवा अहितोंकी ही संगति कर-नेका योग प्राप्त हो रहा हो, ॥ ९२ ॥ इस प्रकार सभी अनिष्टबातोंका जाल बनकर वह एकसाथ अपनेमें पकड दे, तथापि धैर्यमेरु अगस्तिके समान धैर्यवान् बनाकर मनुष्यको स्थिर रहनेका जो सामर्थ्य देती है, ॥ ९३ ॥ और आका-शमें एकाएक उठी हुई प्रचंड धूम्रकी पंक्तिको वायु जैसे एक झोंकेके साथ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही उडा देती है, ॥ ९४ ॥ उसी प्रकार हे अर्जुन ! आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक त्रयतापोंसे तप्त होनेपर, उनसे भी जो शान्त करती है, ॥ ९५ ॥ इस प्रकारके चित्तक्षोभ करानेवाले प्रसंगोंमें भी मनको धैर्य देकर, जो उसे स्थिरता प्राप्त करा देती है, उसका नाम 'धृति' है । इस बातको तुम विचारके साथ ध्यानमें रखो ॥ ९६ ॥ अब शुचिता जिसे कहा जाता है, उसके भी हम लक्षण कहते हैं । हे पार्थ ! शुचिता ऐसी होती है, जैसे कि शुद्ध सुवर्णका स्वच्छ कलश पवित्र-गंगाजलसे भरा हो, ॥ ९७ ॥ कारण, शरीरसे सब बाह्य कर्म निष्कामताके साथ होते रहना और अन्तःकरण शुद्ध विवेकसे भरा रहना अर्थात् बाह्यान्तरमें जो पूर्ण शुद्धता प्रकट हो रहती है, वे ही 'शुचित्व' के लक्षण हैं ॥ ९८ ॥ और जैसे गंगाका जल प्राणिमात्रोंके पाप-तापोंको शान्त करता हुआ तथा तीरस्थ वृक्षोंका पोषण करता हुआ सागरको पहुँच जाता है, ॥ ९९ ॥ अथवा सूर्य जैसे संसारके अंधकारको दूर करता है तथा संपत्तिके प्रासादोंको प्रकट करता हुआ गगनकी प्रदक्षिणा करनेमें निकलता है, ॥ २०० ॥ तद्वत् बद्धोंको मुक्त करना, डूबते हुओंको बाहर निकालना, और संकटग्रस्तोंको संकटोंसे छुडाना, ॥ १ ॥ इतना ही क्या ? वरन् रात-दिन दूसरोंके सुखोंको बढाते रहते रहते ही अपना स्वार्थ साध्य करना, ॥ २ ॥ किंबहुना अपने कार्यसाधनके हेतु प्राणिमात्रोंका बुरा करनेकी मनमें भी कल्पना न करना, ॥ ३ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारके जो लक्षण रहते हैं, वे सब 'अद्रोह' के ही लक्षण तुम समझो । और जैसा मैंने इनका स्वरूप वर्णन किया है, इनके विषे तुम्हें भी वैसा ही अनुभव आजायगा ॥ ४ ॥ और हे पार्थ ! गंगा जैसी शंकरके मस्तकमें स्थान प्राप्त कर संकुचित ( कृश ) होगई, उसी प्रकार सम्मान प्राप्त होनेपर जो लजाना है, ॥ ५ ॥ हे मतिमान् पार्थ ! वही 'अमानित्व' समझो । पीछे प्रसंगानुसार हमने बहुतबार इसका वर्णन कर दिया है, अतः वही वही बात फिर फिर कहना उचित नहीं ॥ ६ ॥ हे पार्थ ! इस वर्णनानुसार यह ब्रह्मसंपदा ( दैवी-सम्पत् ) छब्बीस गुणोंसे सम्पन्न रहती है । ये गुण मानो मोक्षसाम्राज्य-चक्रवर्ती राजाके दिये हुए अग्रहार ( प्रशस्तिपत्र या ताम्रपट ) ही हैं, ॥ ७ ॥ अथवा, यह दैवी-सम्पत्ति मानो वैराग्यरूपी सगरपुत्रोंके दैवपर, गुणरूपी तीर्थजलसे परिपूर्ण भरी हुई नित्य-नयी गंगा ही आ रही हो ॥ ॥ ८ ॥ किंवा यह दैवी-सम्पत्ति अर्थात् मुक्तिरूपी नवयौवना बाला सद्गुणरूपी पुष्पोंकी माला हाथमें लेकर निरपेक्ष वैराग्यवान् पुरुषके कण्ठमें डालनेका विचार कर रही पतिव्रता ही हो, ॥ ९ ॥ अथवा इन छब्बीस गुणरूपी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वर्त्तिकाओंको प्रज्वलित करती हुई, स्वयं गीता ही अपने आत्मारूपी पतिकी नीराजनोंसे आरती कर रही हो ॥२१०॥ अथवा यह गीता ही एक समुद्र है और दैवी-सम्पत्ति मानो उसमेंसे निकाली हुइ शुक्ति ( सींप ) है, और उसमें जो ये छब्बीस गुण दिखाई दे रहे हैं, वे केवल सतेज और सुंदर मोतीके दाने ही हैं ॥ ११ ॥ फिर इसका यथार्थ वर्णन कौन कर सकता है ? जो स्वभावतः इसप्रकार अपने गुणोंसे आप ही प्रकट हो सकती है। इस प्रकार इन गुणोंसे भरी सुख-भाण्डाररूपी जो दैवी-सम्पदा उसका विवेचन तो तुम्हें सुनाया ॥ १२ ॥ अब 'आसुरी-सम्पत्ति' जो दोषरूपी कण्टकोंसे सजी हुई है तथा आन्तरिक दुःखोंको चुभनेवाली विषवल्ली सरीखी है, तथापि प्रसंगानुसार उसका भी वर्णन करना योग्य समझकर, हम तुम्हें उसका रूप स्पष्ट कर देते हैं ॥ १३ ॥ अजी ! किसी निंद्यवस्तुका त्याग किया जानेके लिये भी जैसे उस वस्तुके स्वरूपका ज्ञान होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार यह आसुरी सम्पत्ति यद्यपि त्याज्य है तथापि उसके भी स्वरूपका ज्ञान तुम्हें अवश्य हो, इस लिये तुम सावधानीके साथ उसका वर्णन सुनो ॥ १४ ॥ हे पार्थ ! भयंकर अधोगति ( नरक ) का दुःख जिनसे प्राप्त होता है, ऐसे जो दुष्ट पाप-समूह हैं, उन्होंने अपनी ( दुःखकी ) महिमा बढानेके लिये जो एक संगठन कर रखा हो, वही आसुरी-सम्पत्ति है ॥ १५ ॥ अथवा सब प्रकारके विषसमूहको एकत्र कर, बनाये हुए मिश्रणको ही जैसे कालकूट कहा जाता है, तद्वत् सम्पूर्ण पापसमुदायक दोषसंग्रहको ही 'आसुरी सम्पत्ति' यह नाम है ॥१६॥

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ ४ ॥

और इन आसुरीदोषोंमें जिसके सामर्थ्यका विशेष बडप्पन वर्णा जाता है, वह दम्भ है। अब मैं उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥१७॥ देखो पार्थ ! अपनी माता यद्यपि तीर्थरूपीणी है, तथापि यदि उसे नग्नस्थितिमें संसारके सामने दिखा दिया जाय, तो जैसे वह कार्य अपनी अधोगतिके लिये ही कारण होता है, ॥ १८ ॥ अथवा गुरूपदिष्ट-विद्या यद्यपि इष्टफल प्राप्त कर देनेवाली होती है, तथापि यदि चौरास्तेपर खडा रह, चिल्लाकर उसकी गर्जना की जाय, तो जैसी वह अपने अनिष्टके लिये ही कारण होती है, ॥ १९ ॥ किंवा स्वयं जलकी बाढमें डूबते हैं परन्तु परतीरको पहुँचानेवाली साधनरूप नौका प्राप्त होनेपर यदि उसे सिरमें बाँध दी जाय ( उसके नीचे सिर रखा जाय ) तो जैसे वह नौकाही अपनेको डुबानेके लिये कारण होसकती है, ॥२२०॥ किंवा जीवन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



( उपजीविका ) का कारण जो अन्न, उसका सेवन करते समय यदि उसकी उत्तमताका वर्णन होरहा हो, तथापि यदि उसे आहारसे अधिक सेवन किया जाय, तो हे पार्थ ! वह जैसे विषरूप हो मरणका हेतु होजाता है, ॥२१॥ उसी प्रकार इह-परलोकका कल्याणकर्ता स्वेही जो धर्म,उस धर्मकी (धर्माचरण-कर्मकी) यदि घमण्डमें आकर घोषणा की जाय, तो वह तारक होनेपर भी दोषोंके लियेही कारण होजाता है ॥ २२ ॥ अतः, हे पार्थ ! अपने धर्माचरण-कृत्यको वाणीद्वारा विस्तार कर, उसका अवडम्बर दिशाओंमें प्रकट कर दिखाया जाय तो यद्यपि वह धर्म हो, तथापि अधर्म ही हो जाता है और ऐसी करतूताका नाम ही ' दम्भ ' है ॥ २३ ॥ ( अब दर्पका लक्षण सुनो ) मूर्खकी जिह्वामें चार अक्षरोंका संस्कार होते ही, वह जैसे ब्रह्मज्ञानियोंकी सभाको भी कुछ नहीं समझता या तुच्छ मानता है, ॥ २४ ॥ अथवा चाबुकस्वारोंका उन्मत्त घोडा जैसे ऐरावतको भी क्षुद्र गिनता है, किंवा काँटोंकी बाडीपर चढा हुआ गिरगट जैसे ऊँचतामें स्वर्गको भी अपनेसे नीचे दर्जेका मानता है, ॥ २५ ॥ किंवा तृणसमूहोंका पोलाइन्धन प्राप्त होनेपर जैसी अग्निज्वालायें आकाशको व्याप्त करने जाती हैं, अथवा क्षुद्र-सरोवरमें रहनेवाली मछली जैसी महासागरको भी तुच्छ जानती है, ॥ २६ ॥ तद्वत् ही स्त्री, धन, विद्या, स्तुति, मान-सम्मान आदिसे ऐसा मत्त होजाना कि, जैसे कोई दरिद्री भिखमँगा एक-दिनके परान्नसे पुष्ट होता हुआ उन्मत्त होजाता है ॥ २७ ॥ अथवा अभ्रोंकी छाया प्राप्त होरही है समझकर, जैसे कोई भाग्यहीन अपना बनावनाया घर तोड डालता हो, किंवा मृगजलकी बाढ देखकर जैसे कोई मूर्ख बने हुए जलाशयको फोड डालता हो, ॥२८॥ हे पार्थ ! तात्पर्य इतना ही तुम समझो कि प्राप्त हुई संपत्तिसे इस प्रकार जो उन्मत्तता उत्पन्न होती है, उसीको तुम 'दर्प' समझो; यही हमारा निश्चित मत है ॥२९॥ ( अब अभिमानका भी वर्णन सुनो ) संसार वेदोंपर विश्वास और श्रद्धा रखता है, तथा इस श्रद्धासे ही ईश्वर पूज्य माना जाता है, और संपूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाला सूर्य ही ईश्वर है ॥ २३० ॥ तथा संपूर्ण विश्वमें स्पृहणीय वस्तु एक सार्वभौम पद है और उसीकी अभिलाषा विश्वको रहती है, तथा सदैव जीवित रहना ( कभी मृत्यु न आजाय ) ही सबको प्रिय लगता है, ॥३१॥ और एतदर्थ ही यदि उस ईश्वरकी स्तुति की जाय तो इसमें आश्चर्य हा क्या है ? परन्तु उसे सुनकर जो आसुर-मनुष्यमें मत्सर उत्पन्न होता है और वह मत्सर बढताही जाता है, ॥ ३२ ॥ जिससे वह कहता है कि, "ऐसे तुम्हारे ईश्वरको खा डालो, वेदोंको विष पिलाओ जो मेरी महिमाका भंग करता है" ॥ ३३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पतंगको जैसी दीपज्योतिसे विषमता उत्पन्न होती है, जुगनूको जैसे सूर्यका तिरस्कार उत्पन्न होता है, टिटहरी ( पक्षिणी ) ने भी जैसी समुद्रके साथ स्पर्धा की थी, ॥ ३४ ॥ उसी प्रकार जो अभिमानके भ्रमसे ईश्वरका नामतक सुनना नहीं सहता, इतना ही नहीं, वरन् जन्मदाता पिताको भी कहता है कि, तुम मुझे सौत-जैसा वैरी भाता है ! कारण संपत्तिका हिस्सेदार होगा ॥ ३५ ॥ ऐसी अहंमन्यतासे उन्मत्त, अभिमानसे फूला हुआ जो मदोन्मत्त मनुष्य उसे अधोगति ( नरक ) का बनावनाया रूढ-मार्ग ही समझना चाहिये ॥ ३६ ॥ ( क्रोधके ये लक्षण रहते हैं ) दूसरोंका सुख देखनेका निमित्त होते ही, जिस ( आसुरी मनुष्य ) की मनोवृत्तिमें क्रोधाग्निरूपी विष चढ जाता है ॥ ३७ ॥ तपे हुए तैलमें यदि ठण्ढे जलका एक बिन्दु गिरजाय तो जैसे वह अग्निज्वालासे भडकने लगता है, अथवा चंद्रमाके उदयसे जैसे सियार मनमें जलता रहता है, ॥ ३८ ॥ किंवा विश्वके जीवितको प्रकाशित करनेवाले सूर्यका उदय होनेपर प्रातःकालमें ही जैसे पापी घुग्घूकी आँखें फूटने लगती हैं, ॥ ३९ ॥ अथवा संसारको आनंद देनेवाला जो प्रातःकाल, वह चोरोंके लिये जैसे मृत्युतुल्य दुःखद प्रतीत होजाता है, किंवा साँपके पेटमें गया हुआ दूध भी जैसे कालकूट विष बन जाता है, ॥ २४० ॥ अथवा समुद्रके अगाध-जलका प्राशन करते रहनेपर भी जैसी वडवाग्नि अधिकाधिक ही जलती रहती है, इतना ही नहीं, वरन् कुछ भी उपाय करनेपर जो शान्त भी नहीं होती, ॥४१॥ तद्वत् ही जैसे जैसे दूसरोंके विद्या, विनोद, ऐश्वर्य आदि बढे हुए दिखाई दें, तैसे तैसे जिसकी मनोवृत्तिका रोष दुगुना बढजाता है, हे पार्थ ! उस वृत्तिको 'क्रोध' जानो ॥ ४२ ॥ ( अब पारुष्य किसे कहते हैं, सुनो ) जिसका मन केवल साँपकी बाँबी ( घर ) हो, आँखें तो छूटे हुए तीक्ष्ण बाण ही हों और भाषण मानो जलती हुई अग्निकी वर्षा ही हो, ॥ ४३ ॥ इसके अतिरिक्त और क्रियायें तो फौलादकी आरा ( करवतें ) ही समझनी चाहिये । इस प्रकारका जिसका वाहिरन्तर स्वरूप प्रखर रहता है, ॥ ४४ ॥ उसे मनुष्य-जातिमें अधम समझना चाहिये, अथवा उसे 'पारुष्य' का अवतार ही जानो ॥ ४५ ॥ अब अज्ञानके लक्षण भी सुनाता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो । शीतता या उष्णताका स्पर्श होनेपर जैसे पत्थर दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं जानता, किंवा जन्मान्धको जैसे दिन और रातमें कुछ भेद प्रतीत नहा हाता ॥ ४६ ॥ अथवा पेटमें अग्नि भडकनेपर जैसे मनुष्य खानेके समय खाद्या-खाद्यका विचार या विधिनिषेध नहीं रखता, किंवा पारस मणि जैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सुवर्ण और लोहेमें भेदभाव नहीं करता, ॥ ४७ ॥ अथवा दर्वी जैसी अनेक रसोंमें प्रविष्ट होती हुई भी उनके रसास्वादकी रुचि नहीं जानसकती, ॥ ४८॥ किंवा वायु जैसी रूढमार्ग या टेढे मार्गके अन्तरको नहीं जानती,तद्वत् ही कर्तव्य क्या है और अकर्तव्य किसे कहते हैं, इस विषयमें जिसको अन्धत्व है, ॥४९॥ तथा जैसे बालक स्वच्छ या मलिन इस बातको न जानता हुआ हाथमें मिले हुए पदार्थको मुँहमें डालता है, ॥२५०॥ उसी प्रकार पाप-पुण्यकी खिचडी बनाकर खाते रहते समय बुद्धिको कडुवी या मधुर मालूम न होना, इस प्रकारकी जो निर्घृण अवस्था, ॥ ५१ ॥ उसका नाम 'अज्ञान' है। इस वचनको अन्यथा मत मानो। अस्तु, इसप्रकार इन पूर्वोक्त छः दोषोंका वर्णन हो चुका ॥ ५२ ॥ सर्पका शरीर यद्यपि छोटा रहता है, तथापि वह भयंकर विषमय होनेसे जैसा बडा ही मानना पडता है, अथवा प्रलयाग्नि, विद्युदग्नि और वडवाग्नि इन तीन अग्नियोंकी पंक्ति देखनेमें यद्यपि छोटीसी जान पडती है, तथापि उसकी प्राणाहुतिके लिये यह संपूर्ण विश्व भी जैसे अल्पही होगा, तद्वत् ये दोष केवल छः ही हैं सही, परन्तु इनके आश्रयसे आसुरी सम्पत्ति वडी बलवती बनती है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ व्यवहारमें अनुभव है कि जैसे त्रिदोष ( वात-कप-पित्तरूप-त्रिदोष ) होनेपर ब्रह्माको शरण जानेपर भी मृत्यु नहीं टलती है। और ये तो अतिभयंकर होकर संख्यामें भी उनसे दुगुने अर्थात् छः हैं ! ॥ ५५ ॥ अतः इन संपूर्ण छहों दोषोंपर आसुरी संपत्तिकी निर्भरता रहनेके कारण, उसमें किसी प्रकारके सामर्थ्यकी न्यूनता नहीं है ॥ ५६ ॥ परन्तु, जिसप्रकार पापग्रहोंकी एक राशिमें युति हो, अथवा निंदकके पास जैसे पाप-समूह आपही पहुँच जाते हैं, ॥ ५७ ॥ अथवा जिसकी मृत्यु समीप आ रही है, उसे घेरनेमें जैसे सब रोग इकट्ठे हो उद्यत होते हैं, किंवा अशुभ दिनमें जैसे सब कुयोग एकत्र जमा होते हैं, ॥ ५८ ॥ अथवा किसी विश्वस्तको जैसे चोरके हवाले कर दिया जाय, किंवा थक जानेपर विश्रांति ले रहनेवालेको जैसे कोई महाबाढमें ढकेल दे, तद्वत् ही इन छः दोषोंकी अनिष्ट करतूत रहती है ॥ ५९ ॥ अथवा बकरीकी आयु समाप्त होनेपर जैसे सात दंशवाला बिच्छू एकसाथ उसको दंश करता है, तद्वत् ये छहों दोष मनुष्यको एकसाथ आ भिडते हैं ॥ २६० ॥ मोक्षमार्गकी ओर जो जानाही नहीं चाहता, जो कहता है कि 'मुझे यह मार्ग नहीं भाता' अतः जो संसारसे निकलना नहीं चाहता, अर्थात् उसमें डुबा ही रहता है, ॥ ६१ ॥ और हीन-हीन योनियोंमें जाता हुआ आखिर, हे पार्थ ! स्थावरोंके भी नीचेकी पैंडीपर जा बैठता है, ॥ ६२ ॥ बहुत क्या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कहें पार्थ ! उस मनुष्यमें ये छहों दोष एकत्र होते हुए आसुरी-सम्पत्तिको ही बढाते रहते हैं, यह बात ध्यानमें रखो ॥ ६३ ॥ इस प्रकार इन दोनों ( दैवी-आसुरी ) संपदाओंके गुण-दोषके लक्षण हमने तुम्हें पृथक् पृथक् निवेदन कर दिये हैं ॥ ६४ ॥

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ ५ ॥

इन दो सम्पदाओंमें जो पहली दैवी सम्पत् है, हे पार्थ ! वह मोक्षरूपी सूर्यसे प्रकाशित हुआ कोई अरुणोदय ही है ॥ ६५ ॥ और जो दूसरी आसुरी सम्पत् है, वह मानो जीवको कसकर बांध खैंचनेवाली मोहरूपी लोहशृंखला ही समझो ॥ ६६ ॥ परन्तु हे धनंजय ! इस बातको सुनकर तुम मनमें घबरो मत । कारण, क्या कभी ऐसा भी हो सकता है, कि दिनको भी रात्रिका डर लग जाय ? ॥ ६७ ॥ देखो पार्थ ! ये दोष वा यह आसुरी सम्पत्ति उसको ही बाधक हो सकती है, जिसने इन्हें आश्रय दे अपनाया हो ॥ ६८ ॥ परन्तु, हे पार्थ ! तुम तो अभी वर्णन की हुई दैवीसम्पत्तिके गुणरूपी सागरसे ही उत्पन्न हो रहे हो ॥ ६९ ॥ अतः हे पार्थ ! तुम इस दैवी सम्पत्तिका मालिक बनकर कैवल्यसुखरूपी परमानंदको भोगते रहो ॥ २७० ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

इन दैवी और आसुरी सम्पत्तिवान् पुरुषोंके व्यवहारका प्रवाह मार्ग अनादिकालसे प्रचलित है ॥ ७१ ॥ जैसे कि निशाचर तो रात्रिके समय अपने व्यापार करते रहते हैं और मनुष्यप्राणी दिनमें अपने व्यापारमें रत रहते हैं, ॥ ॥ ७२ ॥ उसी प्रकार हे अर्जुन ! ये दैवी और आसुरी ( राक्षसी ) सृष्टियें अपने अपने रीतरिवाजके अनुसार व्यापार-व्यवहार करती रहती हैं ॥ ७३ ॥ इन दैवी और आसुरी-सम्पत्तियोंमेंसे दैवी सम्पत्तिका वर्णन हमने इस ग्रंथमें पहले ज्ञान-प्रकरणमें और प्रसंगानुसार इतर प्रस्तावोंमें भी विस्तारसहित स्पष्ट कर दिया है ॥ ७४ ॥ अब जो आसुरी सृष्टि है, वहांका वर्णन करना चाहते हैं, अतः तुम ध्यानके साथ सुनो ॥ ७५ ॥ हे पार्थ ! जैसे वाद्यके बिना किसीको भी नाद सुननेको नहीं आता, किंवा पुष्पके विना जैसा मकरन्द ( शहद ) नहीं प्राप्त होता, ॥ ७६ ॥ उसी



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



प्रकार यह आसुरी प्रकृति भी, जबतक उसके पंजेमें एक-आध शरीर नहीं आया, तबतक वह अकेली कभी दृष्टिगोचर नहीं होती ॥ ७७ ॥ परन्तु जब इसप्रकारका कोई देह उसके हाथ लग जाता है, तब जैसे अग्नि ईंधनको प्राप्त करते ही उसको सब तरहसे व्याप देती है, वैसे ही यह प्राप्तदेहको व्यापती हुई उसपर अपनी सत्ता चलाती है ॥ ७८ ॥ उस समयकी प्राणियोंकी स्थिति ऐसी होती है, जैसी कि ईखकी । जैसी ईखकी बाढ, अर्थात् आन्तरिक रसकी ही बाढ है, उसी प्रकार प्राणिदेहकी जो बाढ होती है वह आसुरीकी ही बाढ समझनी चाहिये ॥ ७९ ॥ अब हे धनंजय ! हम उन प्राणियोंका वर्णन करना चाहते हैं जो आसुरीदोषोंके समुदायसे बने हों, अथवा उनके हाथमें आ रहे हों ॥ २८० ॥

**प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।**
**न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥**

सुकृत-कृत्योंमें प्रवृत्ति और पाप-कृत्योंसे वास्तवमें निवृत्ति होनी चाहिये, परन्तु इस विषयके विचारमें उनके अन्तःकरणमें निरा अंधकार ही भरा रहता है ॥ ८१ ॥ कोसे ( टसर ) का कीडा जैसे बाहर निकलने या प्रवेश करनेके द्वारके मार्गकी तरफ भी ध्यान न देकर केवल अन्दरही रहकर संकटको प्राप्त होता है, ॥ ८२ ॥ किंवा कोई मूर्ख जैसे अपना दिया हुआ द्रव्य-संचय वापिस आवेगा या नहीं इस बातका विचार न कर, उसे चोरोंके हाथ सौंप देता है, ॥८३॥ तद्वत् आसुर-जन प्रवृत्ति-निवृत्तिके विषयमें लवमात्र भी विचार नहीं करते और शुचित्व ( शुद्धत्व ) तो उनके स्वप्नमें भी नहीं रहता ॥८४॥ कदाचित् कोयला अपना कालापन छोड सके, चाहे किसी समय कौआ भी अपने कृष्णत्वको छोड शुक्लत्व प्राप्त करे, अथवा कदाचित् राक्षस भी मांस खानेसे हट जाय, ॥ ८५ ॥ परन्तु हे पार्थ ! ये आसुरी प्राणी शुचित्वका कभी विचार भी न करेंगे, जैसे कि मद्यका पात्र कभी भी पवित्र नहीं हो सकता है, तद्वत् ॥ ८६ ॥ शास्त्रोक्त विधिविधानकी इच्छा, अथवा अपने पूर्वजोंके आचारानुसार चलनेकी भावना किंवा शुद्ध-शास्त्रोक्त आचारकी भाषा तो उनके गाँवमें भी नहीं रहती अर्थात् इन बातोंपर वे कभी ध्यान नहीं देना चाहते ॥ ८७ ॥ जैसे बकरीका चरना, कि, जिसको कुछ मर्यादा ही नहीं रहती, अथवा जैसे वायुका इधर उधर मनमाना घूमना किंवा अग्निका मनसोक्त जलाना जिसकी कभी तृप्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही नहीं होती, ॥ ८८ ॥ तद्वत् ये आसुर जन स्वेच्छाचारी बनते हुए अपनी इच्छाको आगे कर मनमाना आचरण करते रहते हैं, फिर सत्यके साथ तो इनका हमेशः कडा वैर ही रहता है ॥ ८९ ॥ उनके सत्यको ऐसा ही समझना होता है कि, यदि बिच्छू अपनी तीक्ष्ण नाँगीके डंकसे गुदगुदी पैदा करे, तभी समझना होगा कि इनमें सत्यबातकी संभावना होगी ॥ २९० ॥ अथवा यदि अपान ( गुद ) द्वारसे सुगंधवायु निकल पडे, तभी समझना संभव होसकता है कि, इन आसुरीजनोंमें सत्य बात पायी जा सकेगी ॥९१॥ और यदि वे इसप्रकार कुछ भी न करें, तथापि वे स्वभावसे ही ऐसे नष्ट बने रहते हैं, कि जो कुछ न कुछ बुरा ही करें। हे पार्थ ! अब उनके भाषणचातुर्यका भी एक अपूर्व नमूना तुम्हें सुनता हूँ ॥९२॥ वास्तविक रीतिसे देखनेपर ऊँटका ऐसा कौनसा अवयव सुन्दर या सरल दिखाई देगा ? कि, जिसका सौंदर्यविषयमें वर्णन किया जा सके ? वही प्रकार इनके वर्णन-विषयका भी है, परन्तु प्रसंगानुसार अल्प-स्वल्प वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥९३॥ स्पष्ट कहना हो तो हे पार्थ ! ऐसा ही कहना पडेगा कि जैसे धुँआरेके मुँहसे केवल धूम्रके ही भभके निकलते हैं, तद्वत् ही उनके मुँहसे तीक्ष्णशब्द निकलते हैं ॥९४॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

अब ध्यान दो । यह विश्व अनादि है, और इसका नियन्ता ( शासक ) ईश्वर है । इस सिद्धान्तके न्यायान्यायका निर्णय वेदोंने अपनी कचहरीमें स्पष्ट कर दिया है ॥ ९५ ॥ वेदोंने जिसे अन्यायी ( दोषी ) कहा है, उसे नरकभोगका दंड भोगना पडता है, और वेद जिसे न्यायी कहते हैं, वह स्वर्गमें सुखोपभोग भोगता रहता है ॥९६॥ हे पार्थ ! इस प्रकारकी जो अनादिसिद्ध विश्वकी व्यवस्था चल रही है, ये आसुरजन उसे बिलकुल नहीं मानते, वे कहते हैं यह सब कुछ झूठ और वृथा है ॥९७॥ उनका कहना है कि "मूर्ख याज्ञिक लोग यज्ञके पीछे पडकर वृथा फँसगये, अथवा यज्ञोंने ही उन्हें ठगलिया है, प्रतिमा ( मूर्ति ) पूजा और लिंगपूजाने देवोंपर विश्वास कराकर भाविक-लोगोंको पागल बना दिया और गेरुएँ कपडे पहननेवाले योगी योगकी आशा कर, समाधिके मिससे मोह-भ्रमके गर्तमें फँस गये हैं ॥ ९८ ॥ इस विश्वमें अपनी शक्तिसे या पराक्रमसे जो जो कुछ मिल सके, उसका उपभोग लेनेकी हिम्मत रखनेके अतिरिक्त क्या और कोई पुण्य है ? ॥ ९९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथवा अपनी अशक्तताके कारण यदि पृथक्-पथक् विषय एकत्र किये न जाएँ तो विषयसुखार्थ उनके वियोगसे व्यर्थ कष्टी हो रहना ही सचमुच पाप है ! ॥ ३०० ॥ धनवानोंको प्राणसमेत मारना यह तो पाप है सही, परन्तु वैसा करके उनका सर्वस्व अपने हाथ लाना क्या पुण्यफल नहीं है ? ॥ १ ॥ बलवान्का निर्बलको खाना यदि निषिद्ध-कर्म माना जाय, तो बडी मछलियें जब छोटी मछलियोंका संहार करती हैं, तो उनका निर्वंश क्यों नहीं होता ? ॥ २ ॥ फिर भी देखिये, यदि विवाहका हेतु प्रजोत्पत्त्यर्थ ही है, और इसी कारण यदि उत्तम कुलगोत्रका सूक्ष्म विचार कर, उत्तम मुहूर्तपर कुमार-कुमारिका-विवाह किया जाता है, ॥ ३ ॥ तो पशु, पक्षी इत्यादि प्राणियोंके विवाह जिनकी प्रजोत्पत्तिकी गणना भी नहीं की जासकती—वे किस विधिविधानसे किये गये थे ? ॥ ४ ॥ कहो तो सही कि, केवल चोरी करके ही धन प्राप्त किया हो, तो क्या वह किसे विषरूप हो सकता है ? यदि प्रीतिपूर्वक परदाराभिगमन किया तो क्या उससे कुष्ठरोग होता है ? ॥ ५ ॥ अतः ईश्वर हम सबका नियन्ता—स्वामी है, वही धर्माधर्मका भोग जीवसे भुगवाता है तथा इह लोकमें जैसा आचारविचार किया जाता है, उसीका सुखदुःखरूपी फल परलोकमें भोगना पडता है, इत्यादि सिद्धान्त यदि सत्य माने जायँ, ॥६॥ तो परलोक वा दवै कहीं दिखाई ही नहीं देता है ? अतः ये सब बातें झूँठी हैं । और जहां करनेवालेका ही अस्तित्व न रहा (मरगया ) तब भोग्य जो कर्मफल उसके लिये स्थान ही कहां रहा ? ॥ ७ ॥ जैसे स्वर्ग-लोकमें उर्वशीके साथ रहनेसे इन्द्र अपनेको सुखी मानता है, यहां नरकमें पडा हुआ कीटक भी अपनेको वैसा ही संतोषवान् समझता है ! ॥ ८ ॥ अतः स्वर्ग और नरक ये पुण्य और पापके भोग्य-स्थल हों, यह कथन युक्तियुक्त प्रमाण मानना चाहिये, कारण दोनों स्थानोंमें कामवासना ही तृप्त करना सिद्ध होता है ॥ ९ ॥ मतितार्थ इसका यही निकलता है, कि कामवासनायुक्त स्त्री-पुरुषोंके युग्मकी संगतिसे ही यह संपूर्ण विश्व उत्पन्न होता है ॥ ३१० ॥ और पारस्परिक प्रेमसे वह कामवासना स्वार्थबुद्धिसे जिन जिन वस्तुओंका पोषण करती है, आखिर परस्पर द्वेषके साथ वह स्वार्थी कामवासना ही उनका नाश भी करती है ॥ ११ ॥ एवंच, कामके अतिरिक्त इस जगत्के लिये कोई मूल आधार ही नहीं " इस प्रकारका वितंडावाद वे आसुरजन करते रहते हैं ॥ १२ ॥ अस्तु, अब यह निंद्य और कर्णकटु वर्णन यहां ही समाप्त करते है, कारण इसका विस्तार करते रहना, केवल वाणीको दूषित करना ही होगा ॥ १३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

वे आसुरजन केवल ईश्वरके विरुद्ध मत्सरी बनते हुए मुँहकी वाचालता चलाते हैं, परन्तु अन्तःकरणमें कोई निश्चित सिद्धान्त हो रहा हो, यह भी अनुभव नहीं दीखता, ॥ १४ ॥ तात्पर्य, खुल्लम-खुल्ला पाखंडका पुरस्कार करते हुए वे अपने जीवमें एक नास्तिकताकी हड्डी खडी कर, अपना आसुरत्व प्रकट कर देते हैं ॥ १५ ॥ परन्तु ऐसी स्थितिमें स्वर्गके विषयका आदर और नरकसंबंधी डर इस मनोवृत्तिका अंकुर जलकर भस्म हो जाता है ॥ १६ ॥ फिर वे आसुरजन हे पार्थ ! इस देहरूपी दहके विषयरूपी खड्डेमें अपवित्र जलके बुलबुलोंके समान डूबे हुए दिखाई देते हैं ॥ १७ ॥ जलके शुष्क होनेपर जब जलचरोंकी मृत्यु समीप आती है, तब जैसे धीमर आदि दहको शोधनेमें उपस्थित होते हैं, अथवा देहपात होनेका समय आनेपर जैसे रोग घेरनेमें एक साथ तैयार होजाते हैं, ॥ १८ ॥ किंवा धूमकेतुका उदय जैसे विश्वके अहितके लिये ही हो जाता है, तद्वत् ये आसुर जन केवल लोगोंके विनाशार्थ ही जन्म धारण करते हैं ॥ १९ ॥ अमंगलरूपी वृक्ष उत्पन्न होनेपर उनके जैसे अमंगलरूपी ही अंकुर प्रकट होते हैं, तद्वत् ये कोई आसुरी अंकुर ही उत्पन्न होते हैं । अथवा ये कोई मानो हिलते चलते पापके कीर्तिस्तम्भ ही हैं ॥ ३२० ॥ और अग्नि जैसी एकबार जलानेको सिद्ध होनेपर आगे-पीछेकी कोई वार्ता नहीं जानती, उसी प्रकार ये भी नीतिविरुद्धाचरण करते समय किसीके भलेबुरेका यत्किंचित् भी विचार न करते हुए, विशेषकरके विपरीत करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं ॥२१॥ परन्तु हे पार्थ ! ऐसे विपरीत कार्यका भी वे कैसे बहुमानके साथ किसके बलसे आदर करते हैं, सो तुम्हें सुनाता हूँ । ऐसा कहकर लक्ष्मीपति बोले– ॥ २२ ॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥

हे पार्थ ! जैसे जाल जलसे नहीं भरजाता, किंवा अग्निमें चाहे जितना ईंधन डालो, परन्तु उसकी शान्ति नहीं होती, तद्वत् कभी तृप्त न होनेवालोंमें अर्थात् दुष्पूरोंमें अग्रगण्य जो भूँखा काम है, ॥ २३ ॥ उस कामका प्रेम अन्तःकरणमें रखकर वे आसुरजन दंभ, मान इत्यादिकोंके समुदायको अपने पास इकट्ठा कर देते हैं ॥२४॥ फिर उन्मत्त हुए हाथीको मदिरा पिलानेसे जैसे वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मदान्ध हो जाता है, उसी प्रकार शरीर वृद्ध होनेपर इनकी उन्मत्तता भी उसके साथ बढती ही जाती है ॥ २५ ॥ दुराग्रहके तो ये मूर्तिमंत स्थान ही हैं, इसपर मूर्खता इन्हें साथ देती है, ऐसी स्थितिमें इनके किसी निश्चयकी वार्ताका क्या वर्णन किया जाय ? ॥ २६ ॥ जिन कर्मोंसे दूसरोंको पीडा हो जाय, जिनसे दूसरोंके अन्तःकरण दुःखसे छिन्न भिन्न हो जाँय ऐसे कर्म करनेमें ये जन्मप्रभति ही बडे निपुण रहते हैं, या ऐसे कर्म ही वे अपने सुखके कार्य समझते हैं ! ॥ २७ ॥ फिर वे इस प्रकारके अपने कर्मोंकी स्वयं ही प्रसिद्धि करते हैं और अपने आगे विश्वको कुछ नहीं समझते हुए केवल तुच्छताकी दृष्टिसे देखते हैं । सारांश, दशों दिशाओंमें वे अपनी वासनाओंका जाल विस्तीर्णताके साथ फैलाते रहते हैं ॥ २८ ॥ एवंच, वे आसुरजन अपने पराक्रमसे, जैसी कोई धर्मार्थ छोडी हुई गौ अनिर्बंधतापूर्वक चाहे जिस खेतमें अपना मुँह डालती हुई उसको सफा कर देती रहती है, तद्वत् ये अपनी स्वैर-गतिसे केवल निरंतर पापोंकी वृद्धि करनेका ही घमंड रखते हैं ॥ २९ ॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

उनके सब व्यवहार उपरोक्त सामग्रीकी सहायतासे ही चलते रहते हैं तथा देहान्तके बादकी चिन्ता भी उन्हें लगी रहती है ॥३३०॥ जो चिन्ता पातालसे भी गहरी और आकाशसे भी ऊँची और विशाल है, जिसकी तुलनामें यह संपूर्ण विश्व भी एक परमाणुके समान गिना जाता है, ॥३१॥ जो भोगरूपी वस्त्रका माप करती हुई इस जीवको अपरिमित व्यथा उत्पन्न करती है, और जैसे रमणी अपने प्रिय वल्लभको छोडना नहीं चाहती, वैसी यह भी हृदयमें निरंतर चिन्तन करती रहती है, ॥ ३२ ॥ ऐसी जो यह अघोर चिन्ता, उसको ये आसुर जन हमेशः अपनी वासनासे बढाते रहते हैं, जिससे कि वृथा ही अन्तःकरणमें विषयभोगोंका ध्यास लगा रखते हैं ॥ ३३ ॥ तथा स्त्रियोंका गीत सुनना, उनका रूप-लावण्य आँखोंसे देखते रहना, उन्हें सब इंद्रियोंसे दृढालिंगन देते रहनेकी इच्छा करना, ॥ ३४ ॥ इतना ही नहीं, जिनकी बुद्धिभावना अमृतको भी उनपरसे निछावर कर देने योग्य हो, ऐसी रहती है । तात्पर्य, स्त्रियोंके अतिरिक्त सुखका कोई भी दूसरा विषय नहीं, यही निश्चित सिद्धान्त जिनके अन्तःकरणमें सदैव बना रहता है, ॥ ३५ ॥ और उसी स्त्रीभोगके लिये वे आसुर जन स्वर्ग, पाताल या दिगन्तरोंके पार भी दौडते फिरते हैं ! ॥ ३६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

परन्तु, मछली जैसी विचारमूढ होती हुई, केवल आशावती हो उस आमिषके ग्रासको निगल डालती है, और तब उस आमिषसे जो उसकी दुर्दशा होती है, इन आसुरजनोंकी भी विषय-लालसासे वैसी ही दुर्घट दुःस्थिति होती है ॥ ३७ ॥ यदि इच्छित-विषय प्राप्त न होजाय तो जैसे कोश (कोष्ठ) का कीडा वृथा ही विचारविहीन हो दुःखी होता है, तद्वत् बिना विचारे ये भी सूखी आशाके ताने लगाते हुए कष्टी होते हैं, ॥ ३८ ॥ और फैलाई हुई आशाकी तृप्ति न होनाही, द्वेषका रूप बनना है, अर्थात् कामकी तृप्ति न होते ही क्रोध उत्पन्न होता है, अतः काम और क्रोधके अतिरिक्त इनका कोई पुरुषार्थ ही नहीं ॥ ३९ ॥ हे पार्थ ! जैसे कोई पहरा करनेवाला सिपाही दिनमें तो चलता रहा हुआ काम देता है और रातको जागनेका काम करता है अर्थात् रात-दिन जिसको कभी विश्रामका नामतक नहीं प्राप्त होता, ॥ ३४० ॥ तद्वत् ये आसुरजन कामवासना करके ऊँचे स्थानसे ढकेले जाने-पर, क्रोधरूपी टेकडीपर गिरते हैं, फिर उनका राग-द्वेषादिकोंके विषयका प्रेम इतना बढता है, जो कि विश्वमें भी समा नहीं सकता ॥४१॥ तथा यदि मनकी प्रबलवासनानुसार विषय-वासनाका समुदाय एकत्र किया जाय तथापि विषयोंका प्रत्यक्ष भोग उपभोगनेमें द्रव्यकी आवश्यकता रहती है कि नहीं ? ॥ ४२ ॥ अतएव विषयोपभोग भोगनेके लिये आवश्यक द्रव्यसंपादनार्थ ये आसुरजन संसारके साथ अनेक उपद्व्याप (छल) करते हैं ॥ ४३ ॥ प्रसंगानुसार अपनी इच्छा तृप्त्यर्थ किसीको जीजानसे मारते हैं, तो किसीका सर्वस्व लूट लेते हैं और किसीको अपाय ही हो, इस हेतुसे अनेक प्रकारके यंत्र-तंत्रके साधन बनाते हैं ॥ ४४ ॥ जंगलमें शिकारको जानेवाले बहेलिये (शिकारी) जैसे जीवघातके लिये अपने साथ जाल, फाँस, बोरे, कुत्ते, बाज-पक्षी, चिमटियां, भाले इत्यादि सामग्री ले जाते हैं, ॥ ४५ ॥ और केवल अपना पेट जलाने (भरने) के लिये अनेक जीवोंका संहार कर, उनके झुण्डके झुण्ड इकट्ठा कर लाते हैं, उसी प्रकार ये आसुरजन भी अघोर और भयंकर पापकृत्योंको करते हैं ॥ ४६ ॥ ये लोग दूसरोंके प्राणोंका घात कर द्रव्य कमाते हैं, और इस तरहसे प्राप्त किये हुए द्रव्यसे उन्हें जो संतोष होता है, उसका वर्णन क्या किया जाय ? ॥ ४७ ॥ वे कहते हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

कि, आज हमने अनेकोंकी सम्पत्ति अपने हाथ कर ली है, इस लिये हम धन्य हुए कि नहीं ? ॥ ४८ ॥ इस प्रकार ज्यों-ज्यों वे आत्मप्रशंसाकी डींग मारते रहते हैं, त्यों-त्यों उनका मन उसी मार्गपर दृढ अभिलाषी बनता है, और साथही वे कहने लगते हैं कि, अब देखेंगे कि कल किसका द्रव्य हजम किया जायेगा ? इस शोचमें ही वे निरन्तर रहा करते हैं ! ॥ ४९ ॥ कुछ भी हो, आजतक जो प्राप्त किया है, वह तो हमारा हो ही चुका, बाकी जो रहा सो इस पूँजीके प्रभावसे ही चराचरक धनका नफा प्राप्त करेंगे ! ॥३५०॥ इस प्रकार करते करते सब विश्वके धनके हम ही मालिक बन जायँगे, फिर जो जो कुछ देखा जायगा उसे हस्तगत किये बिना कभी स्वस्थ नहीं रहेंगे ॥५१॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥ १४ ॥

आजतक जिन शत्रुओंको हमने मारा है वे तो कुछ नहीं, जिनको मारना है वे तो इनसे सवाया हैं और उन्हें हम अवश्य ही मारेंगे, और तब इस दुनियामें केवल हमारी ही कीर्ति भरी रहेगी और हम ही केवल एक प्रतिष्ठाके साथ मालिक बने रहेंगे ॥ ५२ ॥ फिर जो हमारे अधिकारमें हमारे सेवक बनेंगे उनके अतिरिक्त जो कोई हमारे विरुद्ध हो, उनका हम नाश कर डालेंगे । तात्पर्य इस चराचरका ईश्वर जिसे कहते हैं, वह हम ही बनेंगे ॥ ५३ ॥ इस सुखोपभोगरूपी पृथ्वीका चक्रवर्ती राजा हम ही हैं तथा संपूर्ण सुखोंका भाण्डार हम ही हैं अत एव त्रिभुवनपति इन्द्र हमारे आगे तुच्छ है ॥ ५४ ॥ हम काया-वाचा-मनसे जिस बातको करना चाहेंगे, उसके लिये यह संदेह करना व्यर्थ है, कि वह सिद्ध कैसी हो ? किन्तु वह अवश्य सफल होगी ही । कारण हमारी आज्ञा ही ऐसी है जिसका पालन करना ही होगा, उसको तोडनेवाला कौन होसकता है ? ॥ ५५ ॥ कालको भी तभीतक बलवान् समझना होगा, जबतक कि हमारे साथ उसका मुकाबला नहीं हुआ हो । सुखका सच्चा राशि यदि कोई हो, तो केवल हम अकेले ही हैं ॥ ५६ ॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोन्योस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कुबेर अपनेको धनवान् कहलाता है, परन्तु वह मेरी बराबरी नहीं कर सकता ! इतना ही नहीं बरन् श्रीनाथ जो लक्ष्मीपति उसकी भी सम्पत्ति हमारे समान नहीं है ॥ ५७ ॥ हमारे कुलका महत्त्व और हमारी जाति या गोत्रसमुदायके विस्तारको देखाजाय तो प्रजापति ब्रह्मदेव भी छोटा ही जान पडेगा ॥ ५८ ॥ अतः ईश्वर आदि नामोंकी वे वृथा ही बडाई मारते हैं, वास्तवमें मेरी समानतामें उनमेंसे एक भी योग्यता प्राप्त नहीं कर सकता ॥५९॥ जारण-मारण ( जादू-टोना ) इत्यादि घातक-मंत्रोंका जो आजकल लोप होगया है, उसका हम उद्धार करेंगे तथा शत्रुओंको पीडाकारक यज्ञोंका भी हम संपादन करेंगे ॥ ३६० ॥ और जो लोग मेरे स्तुति-स्तोत्र गाया करेंगे, हमारी कीर्तिका वर्णन करेंगे तथा नाच नचाकर मेरा मनरंजन कर मुझे रिझावेंगे, वे जो जो कुछ याचना करेंगे, उनकी सब इच्छायें हम पूर्ण करेंगे ॥ ६१ ॥ नाना प्रकारके मादक खाद्य-पेयोंका सेवन कर तथा स्त्रियोंके गाढ आलिंगनमें निमग्न हो, हम त्रिभुवनमें आनन्दरूप हो रहेंगे ॥६२॥ हे पार्थ ! उनका यह आत्म-प्रौढीका वर्णन कहांतक वर्णा जाय ? आसुरी-प्रकृतिसे उन्मत्त हुए वे विचारशून्य जन, अपरिमित मनोरथोंको करते हुए केवल काल्पनिक आकाशपुष्पको सूँघनेकी ही चेष्टा करते हैं, समझना चाहिये ॥ ६३ ॥

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

ज्वरके जोशमें आकर रोगी जैसे मनमाना बकवाद करता है, तद्वत् ही वे आसुरजन संकल्पके आधीन होते हुए अवास्तव और बेहद वाचालता चलाते रहते हैं ॥ ६४ ॥ इनमें अज्ञानरूपी धूलि बहुत जमा होनेके कारण वे आशारूपी आँधीके संग वासनारूपी मनोरथोंके आकाशमें नीचे ऊपर हो घूमते रहते हैं ॥ ६५ ॥ फिर आषाढमासके अनगिन्त मेघ जैसे आकाशमें निरंतर भरे रहते हैं, अथवा समुद्रकी लहरें जैसी अखंड चलती रहती हैं तद्वत् ही वे आसुर-पुरुष नित्यशः मनमें असंख्य कामनाओंके मनोरथ रचते रहते हैं ॥ ६६ ॥ एवंच उनके अन्तःकरणमें वासनारूपी वल्लियोंकी अनेक बडी विशाल जालें बनती हैं, मानो कमलफूलोंको काँटोंपरसे घसीट रखा हो ॥ ६७ ॥ अथवा हे पार्थ ! जैसे कोई पत्थरपर जोरसे घडा फोड डाले और उसके फूटते ही टुकडे टुकडे होजाँय, तद्वत् कामनाओंके जालसे फँसा हुआ उनका जीव अन्तःकरणमें छिन्न भिन्न हो रहता है ॥ ६८ ॥ ऐसी दशामें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



रात्रिके उत्तरोत्तर कालमें जैसे अंधेरा अधिकाधिक बढता हुआ कालेपनको ही बढाता रहता है, तद्वत् इन आसुरोंके अन्तःकरणमें मोहका जोर अधिकाधिक बढता ही जाता है ॥ ६९ ॥ और उस मोहके बढनेके साथ साथ विषय-वासना भी वैसी ही बढती जाती है, फिर क्या ? जहां विषयोंका प्राबल्य हुआ तहां पापोंको बनाबनाया स्थान सहजहीमें प्राप्त होता है ! ॥ ३७० ॥ और जहां पातकोंका निवासस्थान एकत्र हुआ और वे बलशाली होगये, तो जीतेजी प्रत्यक्ष नरकवास ही उपस्थित होगया हो, ऐसा अनुभव प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ अतएव हे बुद्धिमान् पार्थ ! जो लोग दुष्टवासनाओंके जालमें फँसकर मनोरथोंके लाड लडानेके लालची बनते हैं, वे आसुर पुरुष उस नरक बसतीके वसतिस्थान ही बनजाते हैं, ॥ ७२ ॥ फिर जहां तीक्ष्ण तरवारकी धारके समान तीक्ष्ण-पत्तोंवाले वृक्ष हैं, खैर वृक्षके तीव्र अंगारोंके जहां बडे पर्वत हैं और जहां तपे हुए तैलके उफनते हुए सागर हैं, ॥ ७३ ॥ तथा जहां सदैव यातनाओंकी ही पंक्तियां लगी रहती हैं और जहां यमराज नित्य नया छल करनेके लिये हाथमें दंड धारण कर आता है, उस भयंकर और कष्टप्रद नरकमें वे आसुरजन जा गिरते हैं, ॥ ७४ ॥ परन्तु हे पार्थ ! ऐसे नरकके चुने हुए असली प्रान्तोंमें भी जो जन्म धारण करते हैं, वे भी अपनी अज्ञान-स्थितिमें या मोहभ्रममें आकर यज्ञ-यागादि करनेमें प्रवृत्त हुए दिखाई देते हैं ॥ ७५ ॥ वास्तविक विचार कर देखा जाय, तो उनके वे यज्ञके विधिविधान तो जैसे औरोंके हों, वैसे ही रहते हैं, परन्तु हे पार्थ ! उनका आचरण देखाजाय, तो जैसे कोई बनावटी नाटकी नट बनता है, तद्वत् रहता है; अतः वे उनकी क्रियायें ढोंगी होनेके कारण विफल ही होजाती हैं ॥ ७६ ॥

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

जैसे वेश्यायें अपने वल्लभोंकी प्रीति संपादन कर केवल सुहागिनी बननेमें ही संतोष मानती हैं, ॥ ७७ ॥ उसी प्रकार ये आसुरजन अपनेको स्वयं ही श्रेष्ठ मानते हुए अपरिमित गर्वसे फूलते हैं ॥ ७८ ॥ और फिर ऐसे कडे बन-जाते हैं जैसे गलाये हुए लोहेके स्तम्भ वा आकाशमें ऊँचे उठे हुए पर्वत-शिखर, जो कि नम्र होना जानते ही नहीं; तद्वत् ये भी ऊँचे बनजाते हैं ॥ ७९ ॥ तथा अपनी प्रतिष्ठाका उन्हें अन्तःकरणमें इतना बडप्पन प्रतीत होता है, कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो संपूर्ण विश्वको अपने सामने तृणसे भी तुच्छ गिनते हैं ॥ ३८० ॥ हे धनुर्धर पार्थ ! यह तो सब है हि, किन्तु इसके अतिरिक्त उन्हें धनरूपी मदिरांका ऐसा मद चढजाता है कि, योग्यायोग्य-विचारकी तरफ वे टेढी दृष्टिसे देखना भी नहीं चाहते ॥ ८१ ॥ हे पार्थ ! इस सामग्रीसे युक्त हुए विचार-शून्य वे यज्ञको किस तरह करेंगे, यह कुछ पूँछना चाहिये ? तथापि ये पागल क्या करेंगे और क्या न करेंगे इसका कोई ठिकाना नहीं ॥ ८२ ॥ अतः क्वचित् कोई प्रसंगमें मूर्खतारूपी मदिराकी धुनमें ये लोग यज्ञकी अवहेलना करनेका भी संकल्प करते हैं ॥ ८३ ॥ देखो पार्थ ! इनके यज्ञमें न कुण्ड रहता है न वेदी, तथा न मण्डपकी आवश्यकता है ! उन्हें योग्य सामग्री भी इकट्ठी करनी नहीं पडती । और शास्त्रोक्त-विधिका और इनका तो सदासे ही वैर चला आ रहा है ! ॥ ८४ ॥ देव तथा ब्राह्मणोंके नामका जिसे स्पर्श हुआ हो ऐसी वायु भी इनके बीचमेंसे नहीं जानी चाहिये, कहो पार्थ ! ऐसी जहां सर्व व्यवस्था है, वहां कोई देव-ब्राह्मण उस यज्ञमें कभी जा सकते हैं ? ॥८५॥ यदि ऐसा है, तो भी चतुर लोग जैसे मरे हुए गौके बछडेकी जगह कृत्रिम बछडा बनाकर गौके सामने रखते हुए उसका दूध पा लेते हैं, ॥ ८६ ॥ तद्वत् वे आसुरजन अन्तःकरणमें महत्वाकांक्षी बनते हुए यज्ञके नामसे विश्वको निमंत्रित कर, इच्छा न होनेपर भी आग्रह और आदरसे बुला लाते हैं और यज्ञके मिषसे उन्हें अनेक तरहसे लूट लेते हैं ॥ ८७ ॥ इस प्रकार अपने उत्कर्षके लिये भी जब कभी वे आसुर ऐसा यज्ञ करते हैं, तब केवल सर्व-प्राणियोंका नाश करनेकी ही मनमें इच्छा रखते हैं ॥ ८८ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

फिर वे आसुरजन 'अब हम दीक्षित बन गये' ऐसा दिखानेके हेतु बडे बडे वाद्योंसे डंका बजाते हुए अपने बडप्पनकी वृथा ही डौंडी पीटते हैं ॥ ८९ ॥ तब इस महत्वसे उन अधमोंका अभिमान शिखरतक पहुँचता है । जैसे अन्धकारको कज्जलके ही पुट चढाये जाँय, ॥ ३९० ॥ उसी प्रकार उनका मूर्खत्व घनीभूत होजाता है । उनकी उद्धतता अधिक बढती है, अहंकार दुगुना होता है और अविवेकके लिये तो ठिकाना ही नहीं रहता ॥९१॥ किसी बलवानोंका नाम भी न रहजाय इस तरहका घमंड उपजानेवाला उनमें नयाही बल चढ जाता है ॥ ९२ ॥ इस रीतिसे अहंकार और बलके ऐक्यसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उनके दर्पका सागर मर्यादाकी रेषाका उल्लंघन करता हुआ उफनता रहता है ॥ ९३ ॥ उस दर्पके उछलनेसे कामका भी पित्त चढ जाता है और उसके आत्यंतिक कोपसे क्रोधाग्नि एकसाथ भभक उठती है ॥ ९४ ॥ फिर क्या ? ग्रीष्म ऋतुकी प्रखर उष्णतासे जैसी तैल या घीके कोठेमें आग लगजावे और साथमें अग्निसखा पवन भी उसी समय आकर साथ दे, ॥ ९५ ॥ इस प्रकार जहां अहंकार बलवान् बनजाय और दर्प काम-क्रोधोंमें मिलगया हो, ऐसे संयोगका अपूर्व योग जहां प्राप्त होगया है, ॥ ९६ ॥ हे पार्थ ! ऐसे अवसरमें आसुरजन मनमानी किसकी हिंसा करनेमें कभी आगा-पीछा देखेंगे ? ॥ ९७ ॥ हे वीरवर पार्थ ! वे यज्ञकर्ता लोग जारण-मारणादि क्रियासिद्धिकी इच्छासे, प्रथम अपना निजका ही रक्त-मांस खर्च कर देते हैं या बेंच देते हैं ॥९८॥ और अपने कार्योंमें जिन देहोंको वे जला देते हैं, उनमें रहनेवाला जो मैं ( आत्मा ) उस आत्माको भी बडी पीडा देते हैं ॥ ९९ ॥ इस प्रकार जारण-मारण क्रिया करते समय जिन जिन प्राणियोंको वे पीडित करते हैं, उनमें चैतन्यरूपसे मैं रहता हूँ, अतः वे सब उपद्रव या आघात मुझे ही सहने पडते हैं ॥ ४०० ॥ फिर भी यदि उनके उस अभिचारसे दैववशात् कोई बचे भी, तो उनके दुष्टतारूपी निंदात्मकपत्थरोंसे वह नष्टप्राय ही होता है ॥ १ ॥ सती पतिव्रता, साधु-सन्त, दातालोग, याज्ञिक, लोकोत्तर तपस्वी अथवा महान् संन्यासी, ॥ २ ॥ तथा परमप्रिय भक्त या महात्माआदि जिनपर मेरा आत्यंतिक शुद्ध प्रेम रहता है, जिनके वेदविहित आचरणसे श्रौत, स्मार्त क्रियानुष्ठानादि पवित्र होते हैं, ॥ ३ ॥ उन सज्जन पुरुषों और मेरे भक्तोंपर भी वे आसुर दुर्जन, अपने दुष्टताभरे और कालकूटसे दारुण विषयुक्त तीखे धारवाले शब्दबाणोंद्वारा भयंकर प्रहार करते हैं ! ॥ ४ ॥

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥

इस प्रकारकी कार्यवाही द्वारा सब तरहसे जो मेरे साथ ही वैर करते हैं, उन पापी आसुरोंकी मैं कैसी व्यवस्था लगा देता हूँ सो सुन ॥ ५ ॥ हे पार्थ ! ये लोग केवल मनुष्यदेहरूपी वस्त्रका आच्छादन लेकर संपूर्ण विश्वके साथ द्रोह करते हुए घमंडी बर्ताव रखते हैं, अतः उन लोगोंको मैं ऐसे रखता हूँ, ॥ ६ ॥ कि, जहां क्लेशरूपी गाँवकी कीचड जमा रहती है और संसारसमुद्ररूपी क्लेशदायक पनघट ( जन्म-मरण ) का जमाव जहां निरंतर रहता है, ऐसी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तमोयोनिमें ही उन मूढोंको सदैव दुःखित रख देता हूँ ॥ ७ ॥ फिर उन्हें ऐसा कर देता हूँ कि, जहां आहारके लिये तृण भी नहीं ऊगता हो, ऐसे ऊषर अरण्यमें हिंस्रक बाघ, बिच्छू आदिकी योनि योमें ही जन्म देता हूँ ॥ ८ ॥ फिर भूँखसे व्याकुल होते हुए आहारको कुछ भी न मिलनेपर वे स्वशरीरके ही टुकडे निकालकर खाने लगते हैं और ऐसी स्थितिमें ही वे बारबार मरकर, बारबार जन्म धारण करते रहते हैं ॥ ९ ॥ अथवा उन्हें सर्पकी योनिमें जन्म देता हूँ, जहां वे अपने रहनेके बिलमें अपनीही गोलाकार गिंडियां बनाते हुए अपने तीक्ष्णविषकी अग्निसे अपनेको जलाकर वहांही मरजाते हैं ॥ ४१० ॥ इतना ही क्या ? वरन् अंदर लिया हुआ श्वास बाहर छोडनेमें जितना अवसर लगता है, उतना भी विश्राम लेनेका समय उन दुष्टोंको मैं नहीं देता ॥ ११ ॥ और ऐसी अवस्थामें रखकर कोटिकल्पोंकी भी संख्या जहां पूरी न हो, इतने अनंत कालतक उन्हें उस क्लेशद-स्थितिमेंसे बाहर नहीं निकालता ॥ १२ ॥ इतना ही नहीं पार्थ ! किन्तु आखिर जहां उन्हें जानेका है, उस स्थितिका यह पहला ही मुकाम समझो । फिर इस मुकामसे निकलकर जहां आखिरी स्थितिमें पहुँचना है, वहांके दुःख कैसे होंगे उनका वर्णन तो स्वयं दुःखही करें ! क्योंकि जिनके बराबर कोई दुःखही नहीं है ॥ १३ ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २० ॥

इस गतिको पहुँचानेवाली वह आसुरी सम्पत्ति ऐसी दारुण घोर रहती है, अतः उसे सम्पत्ति कहनेकी अपेक्षा उन आसुरोंने मानो वह अधोर्गातिको पहुँचानेवाला एक घोर साधन प्राप्त किया हो यही समझना होगा ॥१४॥ परन्तु, इसके अनंतर व्याघ्रादि तामस योनियोंमें जो अल्प-स्वल्प देहधाणररूप स्वास्थ उन्हें रहता है, ॥ १५ ॥ वह भी मैं उनकी इच्छाके साथ निकाल लेताहूँ । फिर क्या ? फिर वे केवल तमोरूप ही बने रहते हैं, जिनका संग करनेसे अंधकार भी अधिक काला बनजायगा ॥ १६ ॥ ऐसी स्थितिमें पाप भी जिनसे घृणा करते हैं, नरक भी जिनका दर्शन होनेमें घबरा रहते हैं, जिनके कष्ट मूर्तिमान् कष्टोंको भी मूर्छित करते हैं ॥१७॥ जिनके सम्बन्धसे मल भी मलिनताको प्राप्त होता है, तापको भी महासंताप उत्पन्न होता है, महाभय भी जिन्हें देख थरथर काँपता रहता है, ॥१८॥ पापोंको तो उनसे तिरस्कार ही रहता है, अमंगलको भी वे लोग अमंगलसे ही ज्ञात होते हैं और स्वयं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्पर्शको भी उनके संसर्ग-स्पर्शसे डर लगता है, ॥ १९ ॥ इस प्रकारके सब दुनियामें अधमाधम ये आसुर भिन्न-भिन्न तामस योनियोंमें जन्म धारण कर, आखिरी निकृष्ट तामसीयोनिमें तमोरूप ही हो रहते हैं ॥ ४२० ॥ हाय ! हाय ! जिनके वर्णनमें वाचाको भी रुदन आजाता है, और इन मूर्खोंके किये हुए नरकसाधन अर्थात् पापोंका स्मरण होते ही डरकर मन भी पीछे हटजाता है ॥ २१ ॥ जिस आसुरी सम्पत्तिके कारण उनकी ऐसी अधोगति होती है, न जाने ऐसी सम्पत्तिको जोडनेमें वा उसका रक्षण करनेमें वे मूर्ख क्यों इतने परिश्रम करते हैं ? ॥२२॥ अतः हे पार्थ ! तुम उन आसुरी-सम्पत्तिवालोंके रास्तेसे भी कभी मत चलो ॥२३॥ तथा जहां ये आसुरी-सम्पत्तिके मालिक और पीछे वर्णन किये हुए दम्भ इत्यादि छः दोष बडी अच्छीतरह आसन लगाये हुए रहते हों, उस जगहमें तुम्हें एक कदम भी न रखना चाहिये, और यह बात तो तुम स्वयं भी अच्छीतरह जानते हो, फिर उसे कहनेकी भी क्या आवश्यकता है ? ॥ २४ ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥

हे पार्थ ! जहां काम, क्रोध और लोभ इन तीनोंका सामर्थ्य बलवत्तर हो रहता है, वहां अमंगलका ही सुकाल होजाता है समझना होगा ॥ २५ ॥ हे धनञ्जय ! हरेकको अपना दर्शन होजावे, इस हेतुसे ही सब दुःखोंने इन तीनोंको अपनी बाट दिखानेवाले बटमार बना रखा है ॥ २६ ॥ अथवा पापियोंको नरकमें ढकेलनेके लिये, संसारमें उनका एकत्रित होजाना, मानो पापोंकी एक बडी भारी सभाही बना देना है ॥२७॥ जबतक इन तीनोंका संचार अन्तःकरणमें न हुआ हो, रौरवादि नरकोंका पुराणादिमें सुनना तभी-तक होता है ॥२८॥ कारण ये तीन दोष जहां आ भिडे, वहां अपायोंके मार्ग सुलभ होजाते हैं । और यातनायें इनके आगमनके कारण सस्ती हो जाती हैं, संसारमें जिसे 'हानि' कहा करते हैं, वह हानि नहीं, किन्तु ये तीनों जहां प्राप्त हुए वही प्रत्यक्ष हानि है ॥ २९ ॥ हे वीरवर पार्थ ! बहुत कहांतक वर्णन करें ? अभीतक जिन भयंकर नरकोंका वर्णन किया गया, उनका मुख्यद्वार ही इन तीनोंका संचार अंतःकरणमें त्रिशूलवत् हो रहता है ॥४३०॥ अतः इन काम, क्रोध, लोभके बीचमें जो जीव सुखसे रहना चाहता है, उसे नरकपुरीकी मुख्य सभाका सम्मान प्राप्त होता है ! ॥ ३१ ॥ इस कारण हे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पार्थ ! हम तुम्हें बारबार चेतना देते हुए कह रखते हैं कि, इस निकृष्ट और पापी त्रिपुटीका सर्वथैव त्याग करो। कारण इसे क्षणमात्र भी अपने पास आने न देना चाहिये ॥ ३२ ॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥

यदि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंमेंसे एक भी पुरुषार्थ प्राप्त करना हो, तो पहले जब इस दोषसमुदायका त्याग किया जाय, तब ही उस विषयकी वार्ता करनी ॥३३॥ जबतक ये तीनों दोष जीवात्मामें जागृत हैं, तबतक हे पार्थ ! मेरे कान इनके कल्याणकी वार्ता नहीं सुन सकते, इसप्रकार देवने कहा ॥३४॥ फिर देव बोले—जिसे आत्माविषे प्रीति हो, जो आत्मनशका भय मानता हो, उसे इस मार्गका कभी अवलम्बन न करना चाहिये, किन्तु निरन्तर जागृत ( सावधान ) रहना चाहिये ॥३५॥ देखिये पार्थ ! जैसे कोई समुद्रमें तैरनेके समय पेटपर पत्थर बाँधकर बाहुबलसे तैरना चाहे, अथवा जीवित रहनेके हेतु जैसे कोई यथेष्ट कालकूट-विषका सेवन करे, ॥ ३६ ॥ तो जैसी सिद्धि प्राप्त होगी उसी प्रकारकी सिद्धि काम-क्रोध-लोभोंकी संगतिसे होती है। अतः इनके नाम-गामका निशाना भी साफ उडा देना चाहिये ॥ ३७ ॥ जब इन दोषत्रयरूपी कडियोंकी साँकल टूट जाती है, तभी जीवको आत्मसुखके मार्गसे जानेका मौका प्राप्त होजाता है ॥ ३८ ॥ कफ, पित्त, वात इन दोषोंसे रहित हुआ शरीर, चुगली, चोरी, छिनाली इन तीन दुर्गुणोंसे अलिप्त रहा हुआ नगर; किंवा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन तापोंसे मुक्त हुआ अन्तःकरण ये जैसे सुखी हो जाते हैं, ॥ ३९ ॥ उसी प्रकार कामादि तीन विकारोंसे जब जीव मुक्त होजाता है तभी वह संसारमें सुखी होसकता है, फिर विकार रहित होनेपर मोक्षमार्गरूपी साधु-संतोंकी संगतिका उसे लाभ प्राप्त होता है ॥ ४४० ॥ और, फिर वह सत्संगतिके सामर्थ्यसे तथा सच्छास्त्रके प्रबल-सहायसे जन्म-मृत्युरूपी पथरीले और कंटकमय अरण्यमेंसे पार निकल जाता है ॥ ४१ ॥ तदनंतर, उसे श्रीगुरुकृपासे उसी नगरीका लाभ प्राप्त होजाता है, कि जहां निरंतर आत्मानंदकी चर्चा करनेवाले सत्पुरुष वास करते रहते हैं ॥ ४२ ॥ उस स्थानको पहुँचनेपर सब प्रेमियोंकी आखिरी प्रेमसीमा जो आत्मारूपी प्रेमी माता उसके साथ भेंट होजाती है, और जब उस आनन्दरूपी माताको हृदयमें लगानेका सुयोग प्राप्त होता है, तब इस सांसारिक नगारेकी गर्जना आपही आप बन्द होजाती है ॥ ४३ ॥ तात्पर्य,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे पार्थ ! जो इस प्रकार काम-क्रोध-लोभोंका निःपात करके, उनकी हवासे भी दूर खडा हो रहता है, वही पूर्वोक्त उत्तम लाभको प्राप्त करनेवाला वा मालिक हो सकता है ॥ ४४ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥

परन्तु, इन बातोंपर ध्यान न देकर जो आत्मचोर ( आत्मघाती ) पुरुष केवल कामादि दोषोंमें स्वयं ही अपना सिर छिपा रखता है, ॥४५॥ संसारमें सबोंपर समान दृष्टि रखकर, सर्वत्र सबका समान हिताहित दिखानेवाले दीपक सरीखे जो श्रेष्ठ वेद, उनका जो अपमान करता है, ॥ ४६ ॥ जो विधि-निषेध की कुछ भी पर्वा नहीं करता, आत्मप्राप्तिकी जिसे इच्छा भी नहीं रहती और जो केवल इन्द्रियोंकी इच्छातृप्तिका ही लालची बना रहता है, ॥ ४७ ॥ तथा जो काम, क्रोध और लोभका ऐसा दास बना रहता है कि, जो उनके विरहको कभी भूलना नहीं सह सकता और जो स्वेच्छाचारी बनकर दुर्वर्तनरूपी अरण्यमें मनमाना भटकना चाहता है, ॥ ४८ ॥ हे पार्थ ! उस पुरुषको मुक्तितारूपी नदीका जल पीनेका मौका कभी प्राप्त नहीं हो सकता । इतना ही नहीं वरन् सर्वश्रमपरिहारक नदी उसे स्वप्नमें भी दृष्टिगत नहीं होसकेगी ॥४९॥ जहां इहलोककी स्थिति ऐसी हो, वहां उसे पारलौकिक सुखकी वार्ताका क्या नाम भी प्राप्त हो सकेगा ? कभी नहीं, यह तो छोड दो, परन्तु हे पार्थ ! उसको यहांके लौकिक भोग भी ठीक रीतिसे भोगनेका लाभ नहीं प्राप्त होता ! ॥ ४५० ॥ जैसे कोई ब्राह्मण मछलीके लोभमें आकर धीमरोंमें मिलगया और मछली पकडनेके समय जब पानीमें उतरा, तो वहां भी प्राणसंकट देख नास्तिक वाद करने लगता हो, ॥ ५१ ॥ उसी प्रकार जो केवल विषयोंकी इच्छासे परलोकसाधनका खटाटोप करता है, वह अपना परलोक तो खो देताही है, परन्तु उसकी मृत्यु उसे दूसरी जगहही खैंच ले जाती है ॥ ५२ ॥ एवंच उसे परलोकके स्वर्गसुखका लाभ होता है तथा न यहांके विषयोपभोगका भी सुख प्राप्त होता है फिर वह मोक्षप्राप्तिकी योग्यताको कैसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥ ५३ ॥ ॥ अतः, कामके वश होकर वासनाकी इच्छातृप्तिके हेतु जो बलात् विषयोंका सेवन करना चाहता है, हे पार्थ ! उसे न स्वर्गसुख मिलता है, न लौकिक विषय भी मिलसकते हैं, इस तरह दोनों तरफसे फँसजाता है, उसका उद्धार कदापि नहीं होसकता ॥ ५४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

अत एव हे तात अर्जुन ! जिसको स्वयं निजपर करुणा हो रही हो, उसे वेदोंकी आज्ञाका कभी अनादर न करना चाहिये ॥ ५५ ॥ पतिव्रता स्त्री पतिकी आज्ञाका पालन कर, अथवा उसकी इच्छानुसार चलकर जैसे अनायास ही अपना कल्याण प्राप्त कर लेती है, ॥ ५६ ॥ अथवा सच्छिष्य जैसे श्रीगुरुवचनोंकी ओर ध्यान देकर, प्रयत्नपूर्वक आत्मस्वरूपी गृहमें स्थान प्राप्त करता है, ॥ ५७ ॥ किंवा अपना गुप्त धन प्राप्त करना हो तो, जैसे अंधेरी रातमें दीपककोही आगे कर देखना आवश्यक होता है, ॥ ५८ ॥ उसी प्रकार, हे पार्थ ! जिसे चारों पुरुषार्थोंका स्वामी होनेकी उत्कंठा रहती है, उसे श्रुति-स्मृतिके वचनोंको सादर सिरपर धारण करना ही चाहिये ॥ ५९ ॥ शास्त्र जिसका त्याग करना कहता है, यदि वह बडा भारी राज्य क्यों न हो, उसे तृणवत् हलका मानकर फेंक देना चाहियें, तथा शास्त्र जिसका विचार कर, ग्रहण करनेका उपदेश करता है, वह यदि विषवत् या विष भी हो, तो उसे विरुद्ध या घात करनेवाला न समझना चाहिये ॥ ४६० ॥ हे वीरवर पार्थ ! यदि इस तरहकी अनिश्चल-अव्यभिचारिणी निष्ठा वेद-शास्त्रोंपर हो, तो किस अनिष्टकी हिम्मत उसके साथ मुकाबला करनेमें सामर्थ्य रखसकती है ? ॥ ६१ ॥ देखिये पार्थ ! अकल्याणसे बचानेवाली, और हितोपदेश देकर, कल्याणको प्राप्त करा दे, उसे बढानेवाली, इस संसारमें श्रुतिमाताके बिना दूसरी कोई भी सामर्थ्यवती वस्तु नहीं है, ॥ ६२ ॥ इस लिये, जीवका जबतक ब्रह्मके साथ मेल न हुआ हो, तबतक इस दयावती श्रुतिमाताका आश्रय किसीको छोडना न चाहिये । अतः, हे तात पार्थ ! तुम्हें भी विशेषतः इसीकी सेवामें ध्यान रखना चाहिये ॥ ६३ ॥ कारण, हे पार्थ ! सांप्रत-कालमें तुमने भी धर्मनिष्ठाके सामर्थ्यसे सच्छास्त्रोंको यथार्थ करनेमें और नैष्ठिकोंको उनपर निष्ठावान् बनानेमें ही जन्म धारण किया है ॥ ६४ ॥ फिर, धर्मानुज अर्थात् साक्षात् धर्मराजके भ्राता यह नाम भी तुम्हें अनायास ही प्राप्त होगया है, अतः हे पार्थ ! तुम्हें


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



किसी प्रसंगमें भी वेद-विरुद्ध चलना न चाहिये ॥ ६५ ॥ कार्याकार्यका विचार करनेका जब समय उपस्थित होता है, तब शास्त्राधारके निर्णयानुसार ही अपना मत सिद्ध करना चाहिये, और शास्त्रने जिसको अकृत्य मानकर स्वीकार न किया हो, उसको बिलकुल त्याग देना चाहिये ॥ ६६ ॥ और फिर ( निर्णयके बाद ) जब सत्य कर्तव्य निश्चित होजाय, तब उसे अपने संपूर्ण सामर्थ्यसे तथा प्रेमके साथ मनोभावसे आचरण करके उससे अवश्य पार होजाना चाहिये अर्थात् उसे पूर्ण करना ही चाहिये ॥ ६७ ॥ कारण, हे बुद्धिमान् पार्थ ! संपूर्ण चराचर-विश्वको विश्वास या आधारभूत सिक्केकी मुद्रा आज तुम्हारे हाथमें प्रतिष्ठित है, और लोकसंग्रहके कार्यमें तुम निश्चयी तथा निःसंदेह सामर्थ्यवान् और योग्य हो ॥६८॥ इसप्रकार कृपालु भगवान् श्रीकृष्णने आसुरी-सम्पत्तिके लक्षणोंका स्पष्टतया वर्णन कर, उनसे निष्पन्न होनेवाले निष्कर्षके साथ, उनसे मुक्त होनेके मार्गका भी विस्तृत वर्णन कर, अर्जुनके प्रति समझा दिया ॥ ६९ ॥ अस्तु, इसके उपरांत वह पांडुराजाका पुत्र अर्जुन अपने अन्तःकरणके सद्भावविषयमें श्रीकृष्णके प्रति प्रश्न पूँछेगा; आप लोग उसे चैतन्यके कानोंसे यानी सावधानताके साथ श्रवण करियेगा ॥ ४७० ॥ संजयने श्रीव्यासऋषिके प्रसादसे तथा उनकी आज्ञानुसार राजा धृतराष्ट्रसे वह प्रसंग निवेदन कर जैसा उसका समय व्यतीत किया, मैं ( ज्ञानदेव ) भी श्रीगुरु निवृत्तिनाथ महाराजकी कृपासे आप लोगोंके सामने वह प्रसंग वैसा ही निवेदन करूँगा ॥ ७१ ॥ आप सन्तलोग यदि मुझ पर्वत-पर अपनी कृपादृष्टिकी वर्षा करते रहें, तो हे सन्त महाराजाओ ! मैं भी हरा भरा हो, आपकी इच्छानुसार वर्णन करनेमें योग्यता प्राप्त करूंगा ॥७२॥ अतः, मैं ज्ञानदेव प्रार्थना करता हूँ कि आप अपना अवधानरूपी दान मुझे देनेमें कृपा रखिये, आपके प्रसादसे मैं कृतकार्य और सनाथ हो जाऊँगा ॥ ४७३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः
हिन्दीभाषानुवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

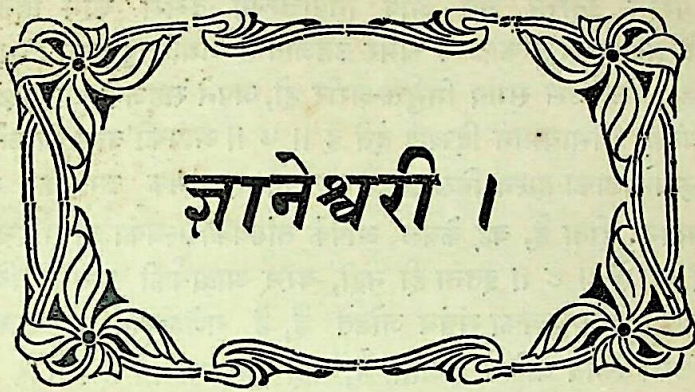


## सप्तदशोऽध्यायः १७.

हे गुरुराज ! इस विश्वके विकसित स्वरूपकी मुद्रा नाम ग्रंथि, जिस आपकी योगसमाधिद्वारा छूट जाती है, यानी जिसके बन्धन ढीले होजाते हैं उन आप गणेशको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ त्रिगुणोंसे वेष्टित हुआ यह जगत्, त्रिपुरोंसे वेष्टित दुर्गमें रुके हुए शंकरके समान रुका हुआ है, परन्तु रामनाम स्मरण करते ही जैसे शंकर उस दुर्गको तोड मुक्त हुए, तद्वत् जीव-दशारूपी किलेमें रुका हुआ आत्मा आपका स्मरण करते ही तत्काल मुक्त होजाता है ॥ २ ॥ अतएव गुरुत्वकी तुलनामें शंकरसे आपही अधिक गुरु-( वजनदार ) हैं तथापि आप लघु भी हैं, कारण इस मायासागरसे मुमुक्षुओंको पार जानेमें जलपर तैरकर पार लगा देनेवाली लघु ( हलकी ) नौका आप ही हैं ॥ ३ ॥ आपके विषयमें जो मूढबुद्धि हैं, उन्हें आप वक्रतुंड ज्ञात होते हैं, परन्तु जो ज्ञानसम्पन्न हैं, जो आपको जाननेका सामर्थ्य रखते हैं, उन्हें तो आप सदैव सरल ही ज्ञात होते हैं ॥ ४ ॥ आपकी दिव्य-दृष्टि देखनेमें तो सूक्ष्मही दिखाई देती है, परन्तु जब आप उस दृष्टिको खोलते या बंद करते हो, तो उन दोनों क्रियाओंके साथ आप इस विश्वकी उत्पत्ति और प्रलयको सहजहीमें करा देते हैं ॥ ५ ॥ आप जब प्रवृत्तिरूपी अपने कानको हिलाते हैं, तब मदगंधरससे सुगंधित हुई वायुके कारण, आकर्षित हुए जीवरूपी काले भ्रमर आपके गंडस्थलपर आ विराजमान हो, ऐसी शोभाको प्राप्त कर देते हैं, मानो सुन्दर नीलकमलोंसे आपकी पूजा ही की गई हो !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ६ ॥ परन्तु इतोत्तर, जब आप निवृत्तिरूपी दूसरा कान हिलाते हैं, तब उसके झटकारसे तत्काल वे भ्रमर उडजाते हैं अर्थात् पूजाका विसर्जन ही होजाता है । फिर उस समय निर्मुक्त-शरीर हो, अपने सहजके आत्म-लावण्यसे आप अत्यंतही शोभायमान दिखाई देते हैं ॥ ७ ॥ आपकी वामाङ्गी जो माया, उसकी नृत्यक्रीडाका हास्य विलासरूप यह नामरूपात्मक जगत्का आभास जो भासमान होता है, वह केवल आपके तांडवकौशल्यका ही परिचय देता दिखाई दे रहा है ॥ ८ ॥ इतना ही नहीं, बरन् आश्चर्यकी बात है कि, आप जिसके साथ सगे-बन्धुत्वका संबंध जोडते हैं, हे गणेशमूर्ति गुरुराज ! वह बन्धुत्वसे उसी समय वंचित होजाता है, यही बडा आश्चर्य है ! ॥ ९ ॥परन्तु जब आप उसके सब बन्धनोंका नाश कर देते हैं, तो आपकी जगद्बन्धुकी भावना उसके अन्तःकरणमें प्रकट होनेसे उस ( भक्त ) की आनन्दवृत्ति आपमें ही निमग्न हो रहती है ॥ १० ॥ तब हे देवराज ! द्वैतका भाव ही मिट जाता है और ऐसा अद्वैतत्व प्राप्त होनेपर आप यदि दूसरे रूपसे दिखाई दें, ऐसी भावना होनेमें उसका शरीर भी शेष नहीं रहता, फिर द्वैत कहां रहेगा ?॥११॥ परन्तु जो आपको अपनेसे भिन्न समझते हैं, और आपको दृष्टिगोचर रखते हुए आपकी प्राप्तिके लिये नानाप्रकारके योगादिसाधनोंद्वारा दौडते रहते हैं, उनके लिये तो प्रायः आप पीछेही रहते हैं ॥ १२ ॥ यह आपका कैसा अनोखा आश्चर्य है कि, जो आपको ध्यानके साथ मनमें रखनेकी इच्छा करता है, उसके लिये तो आप उसके गांवमें भी नहीं रहते, परन्तु आत्मैक्यभावसे ध्यान करना भी जो भूल जाता है, उसपर आप अत्यंत प्रेम करते हैं ! ॥१३॥ जो सिद्ध बन रहा है, जो सर्वज्ञत्वका अभिमान रखता है वह भी सचमुच आपको नहीं जानता, कारण श्रुतियोंकी सर्वश्रेष्ठ वाणी आपके कानोंतक भी नहीं पहुँच सकती ॥ १४ ॥ 'मौन' मानो आपके राशिपरसे ही आपका नाम निकाला गया हो ! फिर मैं भी आपकी स्तुति करनेका कहांसे ढाढस रख सकता हूँ ? कारण जो जो कुछ दृष्टिगत होता है, वह सब तो मायाजनित है, फिर भक्ति करनेके लिये साधन कहांसे पाऊँ ? ॥ १५ ॥ यदि आपको देव, और स्वयं ( निज ) को सेवककी कल्पना करके भक्ति करना चाहूँ तो आपके और हमारेमें भेदभाव सिद्ध होनेसे ( द्वैतके कारण ) आपके साथ मैं द्रोह करनेवाला हो जाऊँगा ? अतः हे सर्वज्ञ महाराज ! मैं आपका कुछ भी संबंधी नहीं होता यही कहना उचित है ॥ १६ ॥ हे अद्वय ! हे आराध्य देव ! जब संपूर्ण भेदभाव मिटजाँय और जब कोई आपका सर्वथा कुछ भी संबंध न रखता हो तभी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आप ( अद्वय ) को वह प्राप्त कर सकता हो ! हे गुरुमहाराज ! यह आपका गूढतत्त्व अब मैं समझ चुका हूँ ॥ १७ ॥ अतएव भिन्नभाव न रखकर लवण जैसे रस ( जल ) में मिल जानेसे जलसे स्वीकृत होता है, उसी प्रकार मैं भी नम्रतासे आपको नमन करता हूँ, आप भी मेरा स्वीकार करेंगे ! अब अधिक क्या कहूँ ? ॥१८॥ रीता घडा समुद्रमें छोडा जाय तो जैसे वह उभराता हुआ भरकर बाहर आता है, अथवा दीपकके संसर्गसे वत्ती जैसी दीपकके रूपत्वको प्राप्त कर सकती है, ॥ १९ ॥ तद्वत् हे श्रीनिवृत्तिनाथ महाराज ! मैं आपको नमन करनेसेही परिपूर्णताको प्राप्त हो रहा हूँ । अतः, अब मैं गीतार्थ प्रकट करनेके कामका प्रारम्भ करता हूँ ॥ २० ॥ सोलहवें अध्यायके आखिरी श्लोकमें श्रीकृष्णने इस प्रकार निःसंशय निर्णय कर दिया है, ॥ २१ ॥ कि हे पार्थ ! कर्तव्य क्या और अकर्तव्य क्या है, इस बातका जब निश्चित निर्णय करना हो, तब सर्वथैव तुम्हें शास्त्रका ही प्रमाण मानना चाहिये ॥ २२ ॥ तब इस बातपर अर्जुन मनमें विचारने लगा कि, ऐसा क्यों होना चाहिये कि शास्त्रके बिना कर्मकी गतिका प्रश्न छूट ही न सके ? ॥ २३ ॥ कहिये, कि प्रथम तक्षक सर्पके मस्तकपर पैर रखकर, मनुष्य उसका मणि कैसे निकाल सकता है ? और सिंहके नाकमेंसे उसके बाल कैसे तोडे जा सकते हैं ?॥२४॥ इतना करके भी फिर उसी बालमें वह मणि डालकर उसका अलंकार गलेमें पहरनेका ! और ये अशक्य बातें यदि न बनजायँ तो क्या वह रिक्त-कंठसे रहसकेगा ? ॥ २५ ॥ तद्वत् ये शास्त्र तो अपरिच्छिन्न हैं, उनके मत भी भिन्न भिन्न हैं, फिर उनकी एकवाक्यता कौन और कैसे कर सकता है ? और उनका मतैक्य न हो, तो फलप्राप्ति भी कैसे हो सकेगी ? ॥२६॥ और यदि एकवाक्यता भी किसी तरहसे करके कार्यनिर्णय कर लिया जाय, तो उसके अनुसार चलनेमें ( अनुष्ठानके लिये ) समय कहां है ? और इस जीवको इतना विस्तार करनेके लिये जो दीर्घ आयुष्यकी आवश्यकता हो वह आयु भी मनुष्यको कहां है ? ॥ २७ ॥ इसके अतिरिक्त शास्त्रकी मान्यता, द्रव्य, देश, काल इन सबका सुयोग एक ही कार्यमें प्राप्त हो, इस प्रकारका योग सबके लिये कैसे साध्य हो सकेगा ? ॥ २८ ॥ अतः, यह शास्त्रोक्त-प्रकरण साध्य होना प्रायः असंभव ही है । ऐसी स्थितिमें अज्ञान मुमुक्षुजनोंके लिये मार्ग-दर्शक कौनसी गति होगी ? ॥ २९ ॥ इस प्रश्नका निर्णय करनेके लिये अर्जुनने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है, वही इस सत्रहवें अध्यायका विषय होनेसे, उसीको प्रस्तावनारूप समझना चाहिये ॥ ३० ॥ जो सब विषयोंसे निरिच्छ होगया है, जो सकल कलाओंमें पूर्णतया प्रवीण है, जो प्रत्यक्ष

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रीकृष्णके चित्तको भी अर्जुनरूपसे आकर्षण करनेवाला एक अद्भुत दूसरा कृष्ण ही है ॥ ३१ ॥ जो शौर्यका आधारस्तम्भ है, जो चंद्रवंशकी शोभा-रूपी अलंकार है, सुखोपभोगादि उपचार जिसका छोटी लडकियोंका खेलसा है ॥ ३२ ॥ जो बुद्धिरूपी स्त्रीका प्रियवल्लभ है, जो ब्रह्मविद्या ( आत्मज्ञान ) का विश्रान्तिस्थान और श्रीकृष्णका सदैवका सहचारी मनोधर्म ही है, ॥३३॥

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

—ऐसा जो अर्जुन वह बोला कि, हे तमालपत्रके समान नीलवर्ण-शरीर श्रीकृष्ण ! हे इन्द्रियोंके दृष्टिगोचर होनेवाले परब्रह्म ! आपका भाषण हमें संशयान्वित जान पडता है ॥ ३४ ॥ कारण, आपने जो अभी कह दिया कि, प्राणियोंको शास्त्रके बिना मोक्षप्राप्तिका साधन नहीं प्राप्त हो सकता । तो ऐसा आपने क्यों कहा है ? ॥ ३५ ॥ कारण यदि ऐसा ही होना चाहिये, तो योग्यस्थल, अभ्यासके लिये अवकाश, तथा अध्यापक ये शास्त्रविधिके साधन जिन्हें प्राप्त नहीं हो सकते, ॥ ३६ ॥ तथा अभ्यासके लिये जिस आवश्यक साधन-सामग्रीकी आवश्यकता हो, उसकी भी न्यूनता होगी, ॥ ३७ ॥ तथा पूर्वजन्मके सुकृतका अर्थात् प्रारब्धका आनुकूल्य न होगा, बुद्धिकी भी सहायता न होती होगी तो शास्त्राध्ययन जहांका तहां ही रहा, ॥ ३८ ॥ इतना ही नहीं बरन्, शास्त्राभ्यास-विषयमें एक नखमात्रकी भी जिन्हें प्राप्ति नहीं हुई, और ऐसी अवस्थामें जिन्होंने शास्त्रमार्गके विचारका मार्गही छोड रखा हो, ॥ ३९ ॥ तथापि शास्त्रोंके निर्णयानुसार शास्त्रोक्त-विधि-विधानसे अनुष्ठान करके जो परलोकको प्राप्त कर चुके हैं, ॥ ४० ॥ उन पुरुषोंकी योग्यता अपनेको भी प्राप्त होजावे, ऐसी इच्छासे जो उनके आचरित-मार्गका अनुकरण कर चलना चाहते हैं, ॥ ४१ ॥ हे उदार ! हे भगवन् ! किसी पाठकके सुंदर लिखे हुए अक्षरोंको देख देखकर जैसे छोटा बालक उन्हीं अक्षरोंके समान उनके नीचे अक्षर लिख देता है, किंवा आधार-भूत दृष्टिवालेके पीछे जैसे अन्धा चलता रहता है, ॥ ४२ ॥ उसी प्रकार संपूर्ण शास्त्रोंमें निपुण-लोगोंका आचरण प्रमाण मानकर, श्रद्धा रखते हुए उनके मार्गका जो अनुकरण करते हैं, ॥ ४३ ॥ और भावभक्तिसे शिवआदिकोंकी पूजा, भूमि आदिकोंका महादान, आग्निहोत्रादि यजन-विधि इत्यादि कर्म

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आचरते हैं, ॥ ४४ ॥ इस प्रकारके पुरुषोंको, हे पुरुषोत्तम भगवन्! सत्त्व, रज, तम इनमेंसे कौनसी गतिका लाभ प्राप्त होता है? हे देव! इस बातका निर्णयकर मुझे बताइये ॥ ४५ ॥ तब वैकुण्ठपीठक स्वामी, वेदरूपी कमलके पराग, जिनकी अंगछायासे संपूर्ण विश्वका जीवन चलता रहता है, ॥४६॥ यह काल जो स्वयं ही स्वभावसिद्ध बलाढ्य है तथा अलौकिक-रूपसे जो विस्तृत और भव्य है तथा अद्वय तत्त्व जो गूढ और आनन्दरूपी मेघसदृश है, ॥४७॥ परन्तु ये जिसके सामर्थ्यके बलपर ही अपनी श्राध्यता प्राप्त करते हैं, उस सामर्थ्यसे परिपूर्ण भरे हुए सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णने अपने मुखकमलसे कहा– ॥ ४८ ॥

श्रीभगवानुवाच।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

कि, हे पार्थ! तुम्हारे अन्तःकरणका अभिप्राय हमने पहिचाना। पार्थ! तुम शास्त्राभ्यासको एक बंधन मानते हो यही तुम्हारा मानस है न? ॥४९॥ तुम समझते हो कि, केवल श्रद्धासे ही परमपदकी प्राप्ति होजावे। परन्तु हे बुद्धिमान् पार्थ! यह बात इतनी सीधी नहीं है जितनी कि तुम समझते हो ॥ ५० ॥ हे पार्थ! कोई कहे कि 'हमारी पूरी श्रद्धा है' तो ऐसा कहकर यदि वह कार्यमें विश्वस्त हो रहे, तो उसका वह कहना सर्वथा उचित नहीं बनेगा। देखो पार्थ! क्या ब्राह्मण अन्त्यजके साथ संसर्ग रखे तो अन्त्यज नहीं होगा? ॥ ५१ ॥ गंगाजल यद्यपि पवित्र है, तथापि यदि वह मद्यके पात्रोंमें रखा हो, तो किसी समय भी उसका पान न करना चाहिये, यह बात तुम भी विचार सकते हो ॥ ५२ ॥ चन्दन तो स्वाभाविक शीतल रहता है, परन्तु यदि उसका अग्निके साथ मेल होजाय तो क्या वह दाहक नहीं होगा? ॥ ५३ ॥ हीन-सुवर्णको गलाते समय, यदि शुद्ध सोना उस गले हुए रसमें छोडा जाय और शुद्ध सुवर्णके भावसे वह खरीदा जाय तो हे पार्थ! क्या हानि नहीं होगी? ॥ ५४ ॥ तद्वत् श्रद्धाका स्वाभाविक स्वरूप तो सत्य और शुद्ध है, परन्तु वह जिन प्राणियोंके हिस्सेमें आता है, वे प्राणी तो स्वभावतः अनादि-मायासे उत्पन्न हुए त्रिगुणोंके संयोगसे बने हुए ही होते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ और इन तीन गुणोंमेंसे जब दो गुण दबजाते हैं और एक प्रभाववान् होता है, तब जो प्रभाववान् होता है, प्राणियोंकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


वृत्तियें उसी प्रभावशालीके अनुरोधसे ही चलती हैं ॥ ५७ ॥ फिर उन वृत्तियोंके अनुसार उनका मन बनजाता है, मनकी इच्छानुसार उनको क्रियायें हो जाती हैं, और जैसे कर्माचार उनके होते रहते हैं, मरणोत्तर उन कर्माचरणानुसार ही उन्हें नूतन देह धारण करना पडता है ॥ ५८ ॥ बीज नष्ट होता है, परन्तु उसका वृक्ष बनता है, और वृक्ष नष्ट होनेपर वह उसी बीजमें समाविष्ट हो रहता है, यह क्रम तो करोडों कल्पोंसे चल रहा है, परन्तु वस्तुकी जातिका कभी नाश नहीं होता ॥ ५९ ॥ उसी प्रकार अनेक जन्मान्तर होते जाते हैं, परन्तु प्राणियोंके पीछे पडा हुआ त्रिगुणोंका शुष्ककाष्ठ कभी नहीं छूट सकता ॥ ६० ॥ अतः प्राणियोंके हिस्सेमें जो श्रद्धा आती है, वह भी इन तीन गुणोंके अनुसार ही रहती है, यह बात निश्चित समझना चाहिये ॥ ६१ ॥ कदाचित् किसी समय शुद्ध सत्त्वगुणकी वृद्धि होजाय तो श्रद्धा ज्ञानको पुकारती है, और यदि ज्ञान भी प्राप्त हो जाय तो उसके घातक विरोधी दो गुण उसे दबानेमें तैयार रहते हैं ॥ ६२ ॥ सत्त्वगुणके सम्बन्धसे श्रद्धा मोक्षफलकी ओर जानेमें प्रवृत्त होती है सही, परन्तु ऐसे समय ये रज और तमोगुण चुपचाप क्यों बैठेंगे ? ॥ ६३ ॥ अतः अपने स्वभावानुसार सत्त्वके सामर्थ्यको नष्ट कर, जब रजोगुण प्रभावशाली हो उच्चताको प्राप्त होजाता है, तब वही—पूर्वोक्त श्रद्धा कर्मका कूडा कचरा निकानेवाली कर्मकी दासी बनजाती है ॥ ६४ ॥ और जब तमरूपी वृत्ति ऊँची हो उसकी अग्नि भभक उठती है, तब तो वही श्रद्धा निंद्य विषयभोग भोगनेमें प्रवृत्त होजाती है ॥ ६५ ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

तात्पर्य, हे सुज्ञ पार्थ ! इस जीवसंघमें सत्त्व, रज, तमको छोडकर निर्दोष श्रद्धा कहीं नहीं रह सकती ॥ ६६ ॥ अतः श्रद्धा यह जो तत्त्व है वह स्वाभाविक ही है, परन्तु इन सत्त्व, रज और तमोगुणसे व्याप्त होनेके कारण वह श्रद्धा त्रिगुणात्मक भेदवाली होती है ॥ ६७ ॥ जैसे जल जीवन ही है, परन्तु यदि उसका विषके साथ संसर्ग होजाय, तो मारक बनजाता है; किंवा कालीमिर्चके सम्बन्धसे वह जल तीखा होजाता है और इक्षुरसके संसर्गसे मधुर होता है, ॥ ६८ ॥ उसीप्रकार जो तमके घनिष्ट सम्बन्धयुक्त हो बारबार जन्म धारण करता है और मरता है, उसकी श्रद्धा भी उसीके सदृश यानी तमोरूप हो प्रकट हो रहती है ॥ ६९ ॥ फिर, जैसे कज्जल और काली स्याहीमें कुछ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भेद नहीं प्रतीत होता, तद्वत् वह श्रद्धा तामसीवृत्ति ही होजाती है, उसमें तमसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहता ॥ ७० ॥ उसी प्रकार रजोगुणयुक्त जीवकी श्रद्धा राजसी होती है और सात्त्विक जीवकी श्रद्धा सवतरहसे सात्त्विक ही बनी रहती है, समझना चाहिये ॥ ७१ ॥ सारांश, इसप्रकार यह संपूर्ण विश्वजाल केवल श्रद्धासे ही भरा हुआ है ॥ ७२ ॥ परन्तु, इन तीन गुणोंके सामर्थ्यसे श्रद्धामें जो त्रिविधताका सिक्का उठा हुआ दिखाई देता है, उसे तुम्हें पहँचानना होगा ॥ ७३ ॥ देखो पार्थ ! जैसे पुष्पको देखतेही उसके वृक्षकी पहँचान मनमें आती है, किंवा थोडीसी बात करनेपर जैसे मनुष्यका मनोगत जाना जाता है, अथवा वर्तमान जन्मके भोगोंसे जैसे पूर्वजन्मके कर्म जाने जा सकते हैं, ॥ ७४ ॥ तद्वत् ही जिन जिन लक्षणोंसे श्रद्धाके ये तीनों रूप पहँचाने जाते हैं, उन लक्षणोंका प्रकार कैसा रहता है, उसका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥ ७५ ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

अजी ! जिन मनुष्योंकी देहरचना सात्त्विक श्रद्धाकी बनी रहती है, बहुत करके उनकी बुद्धि भी स्वर्ग-सुखेच्छावाली ही रहती है ॥ ७६ ॥ वे लोग सकल-विद्याओंमें निपुण होते हैं, विधिविधानसे उत्तम यज्ञ करते हैं, किंबहुना वे देवलोकमें भी स्थान प्राप्त करसकते हैं ॥ ७७ ॥ तथा हे पार्थ ! जो राजसी श्रद्धाके बने हुए रहते हैं, वे राक्षसों और पिशाचोंकी पूजा-भक्ति करते हैं ॥ ७८ ॥ अब जो तामसी श्रद्धा है उसका भी हम वर्णन करते हैं । जो जीव केवल पापोंकी राशि हैं, जो अत्यंत कठोर तथा निर्दय स्वभावके होते हैं, ॥ ७९ ॥ जो प्राणियोंको मारकर उनका बलिदान करते हैं तथा संध्यासमय स्मशानमें जाकर घृणित और निंद्य भूत-प्रेत-मण्डलोंकी पूजा करते हैं ॥ ८० ॥ वे नराधम तो तमोगुणके शरीरका सत्त्व निकालकर ही बनाये गये हों समझना चाहिये । उन पुरुषोंको तुम तामसी-श्रद्धाका निवासस्थान समझो ॥ ८१ ॥ इस प्रकार इन तीन चिह्नोंसे यह श्रद्धा जगत्में त्रिविध-तीन प्रकारकी—हो गई है । परन्तु हे पार्थ ! हमने यह स्पष्टीकरण इसकारण कर रखा है, ॥ ८२ ॥ कि, हे बुद्धिमान् पार्थ ! तुम इस सात्त्विकश्रद्धाको हरतरहसे रक्षण कर इसे ठीक रखोगे । और दूसरी दो श्रद्धायें जो घातक हैं, उनका सर्वथैव त्याग करोगे ॥ ८३ ॥ हे पार्थ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यह सात्त्विकमतिवाली श्रद्धा जिसकी सहायक होजाती है, उसे कैवल्य-प्राप्तिमें किसी प्रकारका डर नहीं रहता ॥ ८४ ॥ फिर वह चाहे ब्रह्मसूत्र न पढा हो, चाहे सर्वशास्त्रपारंगत न हुआ हो अथवा महासिद्धान्त स्वतंत्रता-पूर्वक उसे प्राप्त न हुए हों, ॥ ८५ ॥ तथापि जो पूर्वज वा सत्पुरुष केवल श्रुति-स्मृतियोंके अर्थके मूर्तिमंत पुतले हो चुके हैं, जो तदनुसार आचरण कर अपने सदाचारसे संसारको आदर्शभूत होगये हैं, उनके आचरणके रूढ मार्गसे चलकर जो सात्त्विक पुरुष श्रद्धापूर्वक वर्तता है, उसे भी वही फल (जो शास्त्रादिकोंके अध्ययनसे जिन पुरुषोंको मिलता है) अनायास ऐसा प्राप्त होता है, कि जो निश्चयसे बना रखा हुआ ही था ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ देखो पार्थ ! कोई एक बडे प्रयत्नसे दीपक प्रज्वालित करता है और दूसरा कोई सहजमें बिना प्रयत्न उसपरसे अपना दीपक लगा लेता है, तो क्या उसका दीपक प्रकाशके बारेमें उसे वंचित करेगा ? ॥ ८८ ॥ किंवा ऐसा समझो कि किसीने ईंटें चूना वगैरह लगाकर तथा अपार द्रव्य खर्च करके अपने सुखके लिये एक उत्तम प्रासाद बना दिया, और यदि उसमें कोई दूसरा ही मनुष्य निवास करने लगा, तो क्या उसे वह सुख नहीं प्राप्त होगा ? जो बनानेवालेको होता है ? ॥ ८९ ॥ अथवा जैसे कोई बडे प्रयत्नसे तालाब बन-वाता है, तो क्या उसका जल केवल बनवानेवालेकी ही प्यासको बुझाता है ? दूसरोंकी तृषाशान्ति नहीं कर सकता ? किंवा घरमें जो रसोइया अन्न पकाता है, तो क्या वह उसीके लिये है, दूसरोंको वह प्राप्त नहीं हो सकता ? क्या इस प्रकारकी बातें संभवनीय हैं ? ॥ ९० ॥ हे पार्थ ! अब बहुत नहीं कहता हूँ, देखो गौतम महर्षिजीने बड़े प्रयत्नपूर्वक गंगा ( गोदावरी ) नदी लाई, तो क्या केवल गौतमके लिये ही गंगा पवित्र है, और दूसरोंको क्या वह अपवित्र नालीसी होजाती है ? क्या ऐसा भी किसीको अनुभव आजाता है ? ॥ ९१ ॥ अतएव इसका सारांश यही है कि, जो शास्त्रमें निपुण होकर श्रद्धासे अनुष्ठान करते हैं, उनके आचरणपर श्रद्धा रखकर जो उनके मार्गका अनुकरण करता है, वह चाहे अज्ञान वा मूर्ख हो तो भी श्रद्धासे तर जाता है ॥ ९२ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

और ऐसा न कर जो शास्त्रका नाम लेनेके लिये जन्मभरमें कभी खखार-कर कण्ठको सफा करना भी नहीं जानते, इतना ही नहीं, बरन् जिन्हें शास्त्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



या शास्त्रज्ञोंका स्पर्श भी असह्य होता है, ॥ ९३ ॥ जो अपने पूर्वजोंकी सत्क्रियायें देखकर उन्हें मर्कट सरीखी चेष्टासे चिढाते हैं, जो पण्डितोंको चुटकियोंसे उडाना चाहते हैं, ॥ ९४ ॥ और जो अपनेही माहात्म्यके तथा द्रव्याभिमानके घमंडी बनकर सचमुच पाखण्डरूपी तपोंका ( धर्मभ्रष्ट क्रियाओंका ) आदर करते हैं, ॥ ९५ ॥ जो अपने तथा दूसरोंके शरीरमें याज्ञिकोंके ( कृत्रिम ) वस्त्र पहनकर, यज्ञपात्रोंको रक्त-मांससे पूरेपूर भरते हुए, ॥ ९६ ॥ उन प्रज्वलित कुण्डोंमें डालते हैं, अथवा जादूगार या पिशाचादिकोंके मुंहमें उसे लगा देते हैं, तथा जिस देवताकी मानता की हो, उसे तृप्त करनेके हेतु बालकोंकी बलि देते हैं ॥ ९७ ॥ जो अपना हठ पूरा करनेकी प्रतिज्ञा करते हुए क्षुद्रदेवताओंसे वरप्राप्तिकी इच्छा करके, सात-सात दिन उपोषण ( अन्नत्याग ) भी करते हैं, ॥ ९८ ॥ इसप्रकार, हे सुहृदोत्तम पार्थ ! जो तमोगुणरूपी क्षेत्र ( शरीर ) में आत्मक्लेश और परपीडारूपी बीजको बोते हैं, जिससे कि उसमें फिर वैसाही अर्थात् क्लेशदायक ही फल उत्पन्न होता है ॥ ९९ ॥ हे धनंजय ! फिर भी देखो कि, जिसें सहायार्थ स्वयंके बाहु नहीं हैं, और जो नौकाका भी आश्रय लेना नहीं चाहता, ऐसे मनुष्यकी सागरमें डूबते समय जो अवस्था होती है, ॥ १०० ॥ अथवा जो वैद्यके साथ द्वेष करता है और औषधिको लातोंसे उडाता हुआ उलटडालता है, वह रोगी जैसे स्वतःही रोगसे पीडित रहता हुआ व्याकुल होजाता है, ॥ १ ॥ किंवा किसी जानकारके साथ झगडकर, या उसका विचार न लेकर कोई मनुष्य जैसे अपने हाथसे ही अपनी आंखें निकालकर अन्धा बन जानेसे अपनी गति रोक लेता है, ॥ २ ॥ वही गति उन आसुरोंकी होती है, जो कि शास्त्राधारका अथवा उसके प्रबंधका तिरस्कार कर, मोहभ्रमके जालमें फँसे हुए इधर-उधर अरण्यमें भटकते रहते हैं ॥ ३ ॥ और केवल कामके वश हो विषयवासना जो हुक्म फरमावे उसे ही वे करते हैं, क्रोध जिसे मारनेकी आज्ञा करे उसे बिना विचारे वे मारते हैं, इतना ही नहीं पार्थ ! बरन् सर्वान्तर्यामी जो मैं, उस मुझे भी वे दुःखरूपी पत्थरोंकी राशिमें पूर देते हैं ॥ ४ ॥

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

वे अपने स्वयंके शरीरको तथा दूसरोंके शरीरको जो जो दुःख देते हैं, वे सब क्लेश मुझ आत्माको ही होते हैं ॥ ५ ॥ वास्तविक विचार किया जाय,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


तो उन पापियोंका वाणीके पल्लवसे भी स्पर्श करना उचित नहीं है, परन्तु उनका किसी प्रकार तुम्हें संसर्ग न पहुँचे, इसीलिये ही हमें यह वर्णन करना पडता है, नहीं तो उनका नाम लेना भी पापही है ॥ ६ ॥ प्रेतको हाथोंसे बाहर निकालते हैं, अथवा अंत्यजको हटानेके लिये संभाषण करना पडता है, किंवा हाथमें लगा हुआ मल धोडालना पडता है, ॥ ७ ॥ परन्तु इन कार्योंमें फिर शुद्धताकी आशा रहती है, इसलिये जैसे उन संसर्गोंका दोष या उनकी अमंगलता नहीं मानी जाती, उसी प्रकारकी भावनासे ही अर्थात् उन आसुरीलोगोंके त्यागका हेतु मनमें रखकर ही यह वर्णन किया गया है ॥ ८ ॥ अतः हे पार्थ ! यदि उन आसुरोंका कभी तुम्हें दर्शन: हो जाय, तो तुम उसीक्षण मेरा स्मरण किया करो, कारण यह पाप दूसरे किसी प्रायश्चित्तसे हटनेवाला नहीं है ॥ ९ ॥ तात्पर्य, जो सात्त्विकी श्रद्धा है, उसीको हरवक्त सामने रखकर, सर्वतोपरि उसीका उपासक बनके हे पार्थ ! उसीके रक्षणमें तुम ध्यान रखो ॥ ११० ॥ और जिस तरहसे उसकी पुष्टि हो, यह करना अपना कर्तव्य समझकर, उसके संवर्धनार्थ सात्त्विक पुरुषोंसे ही तुम्हें सम्बन्ध जोडना चाहिये । तथा सत्त्ववृत्तिकी वृद्धि होनेके लिये सात्त्विकपदार्थोंका ही आहार करना चाहिये ॥ ११ ॥ सर्व साधारणतः यह अनुभव प्रकट है, कि स्वभाववृद्धिके लिये आहार ( अन्न ) के अतिरिक्त दूसरा कोई बलवान साधन नहीं है ॥ १२ ॥ हे वीरवर पार्थ ! यह तो जगह जगह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि, कोई मनुष्य ठीक सावधान स्थितिमें भी मदिरापान करे, तो उसकी नशासे वह तत्काल बेहोश होता हुआ उन्मत्तसा बनजाता है ॥ १३ ॥ अथवा जो मनुष्य सदा समाधान्यके अन्नरसका सेवन करता है, उसकी प्रकृतिमें वात और कफके दोषोंके विकार सहजहीमें बढते रहते हैं । किसीको ज्वर आजाय तो क्या दूध वगैरह पीनेसे वह थोडा जा सकता है ? ॥ १४ ॥ देखो पार्थ ! जैसे अमृतका सेवन करनेपर मृत्यु नहीं आती या विषके प्राशनसे जैसे सर्वांगमें विकार उत्पन्न हो अपने गुणानुसार वह कार्य करताही है, ॥ १५ ॥ उसी प्रकार जिस तरहके आहारका सेवन किया जाय, तदनुसार ही देहगत धातुरस बनते हैं और जैसे धातुरस हों, उन्हींके अनुसार मनुष्यके अन्तःकरणकी भावनाओंका पोषण हो, उनके भाव प्रकट होते हैं ॥ १६ ॥ जैसे बर्तनको उष्णता पहुँचनेपर उसमें रखा हुआ जल भी उष्ण होजाता है, उसीप्रकार धातुरसोंका संस्कार अपने स्वभावानुसार ही चित्तवृत्तिपर परिणामकारक होता है ॥ १७ ॥ अतएव जब सात्त्विक अन्नका ही सेवन किया जाय, तबही सत्त्वगुण वृत्तिकी वृद्धि होसकती है । और अन्यप्रकारके अन्नका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सेवन करनेपर उसी प्रकारकी राजसी या तामसी चित्तवृत्ति बनती है ॥ १८ ॥ इसलिये अब सात्त्विक आहार कौनसा है तथा राजस और तामस आहारोंके लक्षण कैसे रहते हैं, उनका वर्णन करताहूँ, तुम ध्यानके साथ सुनो ॥ १९ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

हे वीर पार्थ ! आहार एकही होनेपर भी वह तीन प्रकारका क्यों होता है, यह भी मैं तुम्हें ठीकतरहसे समझा देता हूँ ॥ १२० ॥ कोई भी अन्न, सेवन करनेवालेकी अभिरुचिके अनुसार ही बनाया जाता है और खानेवाला तो गुणोंका दास बना रहता है ॥ २१ ॥ कर्ता तथा भोक्ता जो जीव वह तो स्वाभाविक त्रिगुणोंके कारण त्रिविधताको प्राप्त होनेसे तीन प्रकारके व्यापार करता है ॥ २२ ॥ अतएव आहार भी तीन प्रकारका होता है । तथा यज्ञ भी तीन प्रकारका होता है और तप तथा दानके भी व्यवहार तीन प्रकारके होते हैं ॥ २३ ॥ अभी हमने जो तुम्हें आहारके वर्णन करनेका सूचित किया था, उसे ही हम प्रथम स्पष्ट करते हैं । तुम सावधानचित्त हो सुनो ॥ २४ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

यदि भोक्ताकी इच्छा सुदैवसे सत्त्वगुणकी ओर झुकी हुई रहजाय, तो उसकी रुचि मधुररसोंमेंही बढी हुई रहती है ॥ २५ ॥ जो पदार्थ जन्मजात अर्थात् स्वाभाविक ही सुरस रहते हैं, जो स्वभावतः ही माधुर्यभरे होते हैं, तथा जो स्वाभाविक ही रस-सम्पन्न और पक्व होते हैं, ॥ २६ ॥ जो आकारमें भी सुडौल होते हैं, स्पर्शमें बहुत मृदु मालूम होते हैं और जो जिह्वाको भी नरम और स्वादिष्ट भाते हैं, ॥२७॥ जिन पदार्थोंमें रस विपुलतासे भरा हुआ और मृदु रहता है और जिनका द्रवभाव विपुल रहनेपर भी; कदाचित् कहीं अग्निकी उष्णताके कारण उन्हींमें औटा हुआ रहता है ॥ २८ ॥ जैसे गुरुमुखके अक्षर अल्प होनेपर भी परिणाममें बडे हितकारी और समाधानोत्पादक होते हैं उसी प्रकार वे पदार्थ यद्यपि आकारमें अल्पसे दिखाई देते हैं, तथापि परिणाम और तृप्तिमें बडे ही होते रहते हैं, ॥ २९ ॥ और जो पदार्थ खाते समय मुखको तो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


मधुर लगते ही हैं, परन्तु अन्दर पेटमें जानेपर भी वैसेही सुखकर होते हैं, इसप्रकार सर्व प्रकारसे मधुरताभरे खाद्यपदार्थोंपर ही सात्त्विक मनुष्योंकी रुचि बढती रहती है ॥ १३० ॥ अतः एवंगुणलक्षणयुक्त जो अन्न उसीको सात्त्विक समझना चाहिये । यह सात्त्विक आहार मनुष्यके आयुका निरन्तर संरक्षण करता रहता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकारका सात्त्विक रसरूपी मेघ जब शरीररूपी नदीमें वर्षा करता है, तब दिनोंदिन आयुष्यरूपी नदी पुष्ट होती हुई बढती रहती है ॥३२॥ हे बुद्धिमान् पार्थ ! दिनके बढानेमें जैसे सूर्य हेतु होता है, उसीप्रकार सत्त्वकी रक्षा या वृद्धिके लिये इसप्रकार ( सात्त्विक ) का आहार ही कारण होता है ॥ ३३ ॥ और शरीर तथा मनके सामर्थ्यको इसी आहारका आश्रय आवश्यकीय हो रहता है । इस प्रकारका नित्य आहार रहनेपर, रोगको भी वहां कैसे स्थान प्राप्त होसकता है ? ॥ ३४ ॥ एवंच, इस प्रकारके सात्त्विक आहारके सेवन करनेका जब मनुष्यको सौभाग्य प्राप्त होता है, तभी सच्चा आरोग्य भोगनेका उदयकाल उसे प्राप्त हुआ समझना चाहिये ॥ ३५ ॥ तथा ऐसे आहारसे ही सब प्रकारके व्यापार सफलीभूत हो, स्वयं आनन्दपूर्वक सुखी होजानेके तथा दूसरों ( मित्रोंआदिकों ) को सुखी करनेके कार्य भी सार्थक होजाते हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकारका यह सात्त्विक आहार जब नित्यकासा होजाता है,तब इससे ऐसा अच्छा परिणाम होता है कि,उसके कारण जैसे बाह्यशरीरको उपकार होता है, उसी प्रकार आंतरिक इंद्रियोंपर भी उसका बडा उपकार होता है ॥ ३७ ॥ अब रजोगुणप्रकृतिवाले मनुष्यकी कैसे अन्न-पर रुचि रहती है, प्रसंगानुसार उसका भी मैं वर्णन करता हूँ, श्रवण करो ॥ ३८ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

हे पार्थ ! एक मारकगुणके अतिरिक्त जो कालकूट विषसे भी बढकर कडुआ हो, जो चूनाको भी दाहकतामें पराजित करसकता हो, तथा अम्ल-तासे भी ऊँचे दर्जेको पहुँचा हुआ हो, ॥ ३९ ॥ आटाका गोला बनानेमें जैसे उसमें पानी डाला जाता है, वैसा ही जिस अन्नमें नमक डालकर एक प्रकार नमकका गोला ही बना दिया हो, तथा जिसमें अन्य भी क्षाररस मिला दिये गये हों, ॥ १४० ॥ इस प्रकारका जो असीम क्षारयुक्त अन्न उसीपर राजस मनुष्यकी प्रीति रहती है । वह राजसी मनुष्य उष्णतायुक्त अन्न खानेकी अभि-रुचिके मिससे अग्निवत् उष्ण या अग्निको ही निगलता है ॥ ४१ ॥ फिर वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



राजसी मनुष्य ऐसे उष्ण पदार्थ खानेका साहस करता है कि, जिस अन्नकी भाफके अग्रपर यदि कोई दीपक लगाना चाहे तो भी लगा सकता है, और इस प्रकारका अन्न बडे प्रेमसे और आग्रहपूर्वकही मांगता है॥ ४२ ॥ पत्थर आदि कठिन पदार्थोंको फोडनेमें प्रसिद्ध जो अति कठिन लोहेकी पहार रहती है, उससे भी जो तीव्र (कडा) अन्न हो उसे भी वह राजसी मनुष्य भक्षण करता है, परन्तु उससे भी उसे कोई घाव या जख्म नहीं होती, तथापि वे पदार्थ जीवको चुभते हैं तो अवश्य ॥ ४३ ॥ उसकी जिह्वा भी ऐसी तैयार बनी रहती है, कि चटनी आदि तीखे पदार्थ जो बाह्य-अंतर केवल राख सरीखे शुष्क बने हों, उन्हें चाटते चाटते यदि आंखसे पानी निकल पडे तथापि उन्हींको खाना वह पसन्द करता हुआ बारबार खाता है ॥४४॥ तथा जिन कडे पदार्थोंके खाते समय दातोंकी परस्पर टक्कर हो ध्वनि निकलती है, ऐसे पदार्थ खानेमें तो वह राजसी मनुष्य बहुत ही परम सन्तोषित हो जाता है ॥ ४५ ॥ जो पदार्थ स्वयं ही चरपरे हों, और उसपर भी उनमें राई अधिकताके साथ डाली गयी हो, ऐसे पदार्थ खानपर नाक और मुँहसे उष्णोदककी धारें निकल रही हों, ॥४६॥ इतना ही नहीं, बरन् प्रत्यक्ष अग्निको भी पीछे हटा देवे ऐसे रायता, अचार आदि तीक्ष्ण पदार्थ तो राजसी मनुष्यको प्राणोंसे भी प्यारे लगते हैं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार मुँहको बेछूट छोड देनेसे जो राजसी मनुष्य जिह्वाके आधीन हो पागल बन जाता है, अतृप्तिके कारण अन्नके रूपसे मानो वह बलती हुई अग्नि ही अपने पेटमें भर लेता है॥ ४८ ॥ और ऐस दाहक पदार्थ भक्षणसे जब शरीरमें दाह होने लगता है, तब उसके शान्त्यर्थ वह पलँगसे जमीनपर और जमीनसे पलँगपर लोट-पोट होता रहता है। और प्यासके कारण मुँहमें लगाया हुआ लोटा नीचे रखनेको भी उसे समय नहीं मिलता ॥ ४९ ॥ क्या अर्जुन ! ये कोई राजस आहार हैं ? नहीं, इन्हें तो व्याधिरूपी सर्प जो उसके पेटमें सोया हुआ था, उसको जगानेके निमित्त मानो उस पुरुषने आहारके रूपसे नशा ही किया समझना चाहिये ॥ ५० ॥ एसे आहारोंसे उसके पेटमें जो रोग रहते हैं, वे परस्परकी स्पर्धा करते हुए एकसाथ प्रबल हो उठते हैं। इस प्रकार यह राजस आहार उस मनुष्यको दुःखरूपी फल देनेवाला ही होता है ॥५१॥ हे धनुर्धर पार्थ ! इस प्रकार राजस आहारके तुम्हें लक्षण कहकर, उनके परिणामका भी हमने स्पष्ट विवेचन कर दिया है ॥ ५२ ॥ अब तामस प्रकृतिवाले मनुष्यकी जिन आहारोंपर अभिरुचि रहती है, उनके लक्षणोंका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी मैं वर्णन कर तुम्हें सुना देता हूँ, परन्तु हे पार्थ ! उनके श्रवण करनेपर तुम अपने चित्तमें घृणा न आने दो ॥ ५३ ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

जिस प्रकार भैंस जूठन खाती है, सडा हुआ वा पहले दिनका पका हुआ बासी अन्न खाती है, तद्वत् वह आत्मघाती तामसी पुरुष जूठा या सडा हुआ अन्न खाना पसन्द करता है । वह यह नहीं समझता कि इससे कुछ अपाय होगा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अथवा जो अन्न पूर्ण पका भी न हो ( अधकच्चा हो ) किंवा जलकर जो रांखकी तरह बन गया हो, किंवा जिसका रस निकल गया हो, इस प्रकारका अन्न भी वह बडी चावके साथ खाता है ॥ ५६ ॥ और उसका यह भी एक विशेष रहता है कि जो अन्न ठीक रीतिसे पका हो, तथा जिसमें रस पूर्णरूपसे भरा हुआ हो, अर्थात् जो सच्चा और योग्य अन्न हो, उस अन्नका उस तामसी पुरुषको कभी अनुभव ही नहीं रहता ॥ ५७ ॥ और यदा कदाचित् सुदैवसे उसे कभी अच्छा अन्न खानेका योग भी आजाय, तो उस अन्नको वह तबतक स्पर्श भी नहीं करता, जबतक कि उसमेंसे दुर्गंधि न छूटी हुई हो । इसप्रकार व्याघ्रसरीखा उसे वैसा ही रखता है ॥ ५८ ॥ कारण, उसे ऐसे ही अन्नपर अभिरुचि रहती है कि, जो बासी, बहुत दिनोंका रखा हो, स्वादहीन, शुष्क, नीरस, अथवा सडा हो, किंबहुना दुर्गंधिसे भरा या फूला ही हो ॥५९॥ उसपर भी जो अन्न खाता है वह बालककी तरह कीचडके सरीखा हाथोंसे बुरा बनाकर सान ले, खाता है । अथवा ऐसे निःस्वाद और बासी अन्नको अपने साथ स्त्रीको भी बैठाकर गौके समान एक थालीमें ही खाना चाहता है ॥१६०॥ इसप्रकार अनेक दुर्गुणोंसे युक्त और गँदेलाभरा अन्न जब वह तमोगुणी पुरुष खाता है, तभी उसे सच्चे भोजनका समाधान प्राप्त होता है । परन्तु ऐसे अन्नसे भी उस पापीकी पूर्ण तृप्ति नहीं होती है ॥ ६१ ॥ हे पार्थ ! उस तामसी पुरुषका और जो एक अपूर्व चमत्कार रहता है, उसे भी मैं सुनाता हूँ, तुम ध्यान दो । जो जो वस्तुएँ स्वाभाविक दुष्ट हैं और जो शास्त्रोंने निषिद्ध मानकर त्याज्य ठहरायी हैं, ऐसी जो बुरी वस्तुएँ हैं, उन अपेय वस्तुओंको पीनेमें तथा अभक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करनेमें ही उस तामसी मनुष्यकी इच्छा निरंतर बढती रहती है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इसका तात्पर्य यही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



समझो कि तामस आहार करनेवालेकी अभिरुचि इसी प्रकारकी रहती है। फिर उसका फल प्राप्त होनेमें उसे दूसरे क्षणका भी विलंब नहीं लगता, ॥ ६४ ॥ कारण, उसका मुख ज्योंही ऐसे अपवित्र और सदोष खाद्य-पेय पदार्थोंका स्पर्श करता है, त्योंही ( उसीक्षण ) वह पापका धनी होजाता है ॥ ६५ ॥ उसपर भी वह तामसी जो खाता है, उसे खाना न समझकर, केवल पेटभरनेकी यातना ही समझना योग्य होगा ॥ ६६ ॥ शिरच्छेद होते समय कैसी वेदनायें होती हैं, किंवा अग्निमें प्रविष्ट होते समय कैसा दाह होजाता है, इन बातोंका भी उसे थोडा बहुत अनुभव आता है, तथापि उन्हें वह बड़े मजेके साथ सहलेता है ॥ ६७ ॥ भगवान् कहते हैं, हे पार्थ ! अब तुम समझ गये ही होंगे कि, तामस अन्नके परिणाम सात्त्विक या राजस अन्नसे कितने जुदे होते हैं, अतः यह बात कहनेकी अभी कोई आवश्यकता नहीं ॥ ६८ ॥ इतना कहकर फिर देवने कहा, हे पार्थ ! जैसा आहार त्रिधा होता है, यज्ञ भी वैसा ही तीन प्रकारका रहता है, अतः उसका भी हम वर्णन करते हैं सावधानतासे सुनो ॥ ६९ ॥ परन्तु, उन तीनों यज्ञोंमें हे विख्यातकीर्ति पार्थ ! जो सात्त्विक नामका प्रथम यज्ञ है, उसके लक्षणोंका वर्णन सुनाता हूँ तुम ध्यान दो ॥ १७० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ ११ ॥

पतिव्रताके अन्तःकरणमें जैसे अपने एक प्रियपतिके अतिरिक्त अन्य पुरुषविषे कामवासनाका कभी भी प्रादुर्भाव उत्पन्न नहीं होता, ॥ ७१ ॥ किंवा गंगादि नदी जैसी एकवार समुद्रको मिलनेपर आगे बढना नहीं जानती, अथवा आत्मदर्शनकी प्राप्ति होनेपर वेद जैसे बोलना बन्द कर चुपचाप होजाते हैं, ॥ ७२ ॥ उसी प्रकार जो अपनी संपूर्ण मनोवृत्तिको अपने स्वयंके हितार्थ लगानेपर कर्मफलके लिये अहंभावको तिलमात्र भी शेष नहीं रखते ॥ ७३ ॥ वृक्षकी जडमें पहुंचा हुआ जस जैसे कभी भी पीछे नहीं लौटता है, किन्तु उस वृक्षमें ही मिलजाता है, ॥ ७४ ॥ वैसेही जो तनसे और मनसे यज्ञकर्ममें दृढभावना रखते हुए उसीमें निमग्न होते हैं, तथा किसी प्रकारकी कामवासना ( फलेच्छा ) मनमें नहीं रखते, ॥ ७५ ॥ वे याज्ञिक ( यजनकर्ता ) एक स्वधर्मके अतिरिक्त अन्य सब विषयोंविषे पूर्णतया विरक्त हो, फलेच्छाका मनःपूर्वक त्यागकर, जिस सर्वांगसुन्दर यज्ञका यथासांग यजन करते हैं, वह यज्ञ सर्वतोपरि उत्तम है ॥ ७६ ॥ और जैसे



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दर्पणसेही अपनी आंखें देखी जाती हैं, किंवा दीपकके प्रकाश द्वारा जैसे हथेलीपरका रत्न देखा जाता है, ॥ ७७ ॥ अथवा सूर्यके उदय होनेपर जैसे अपने जानेका मार्ग सहजही दृष्टिगत होजाता है, तद्वत् एकनिष्ठभावनापूर्वक वेदशास्त्रका निर्णय देखकर, ॥ ७८ ॥ कुण्ड, मण्डप, वेदी और अन्य सब यज्ञकर्म-साधन-सामग्री एकत्रित करके मानो सब व्यवस्था प्रत्यक्ष ब्रह्मदेवने ही की हो, ॥ ७९ ॥ जैसे कि शरीरके सब अवयवोंमें जहां जिसकी योग्यता हो, वहां वैसे ही अलंकार पहिने जांय, तद्वत् जिस यज्ञमें सब पदार्थ जहांके तहां योग्य रीतिस व्यवस्थापूर्वक रखे जांय, ॥ १८० ॥ तो उस यज्ञ विधानका वर्णन कैसे किया जा सकता है ? हम कहते हैं, सकल अंगोंमें यथायोग्य सर्वाभरणयुक्त हो, यजनके मिससे, मानो प्रत्यक्ष यज्ञविद्या ही वहां मूर्तिमंत अवतरित हुई होगी ऐसा ही प्रतीत होगा ॥ ८१ ॥ इसप्रकार संपूर्ण अंगोपांगसहित, तथा प्रतिष्ठा या किसी फलकी इच्छाके बिना जो याग परिपूर्ण किया जाता है, ॥ ८२ ॥ जैसे कि निर्झरादिका उत्तम जल परिश्रमपूर्वक लाकर उससे तुलसीक वृक्षका प्रतिपालन किया जाता है, परन्तु उसे तुलसीसे फल, फूल या छाया इनमेंसे एककी भी आशा नहीं की जाती, ॥ ८३ ॥ बहुत क्या कहें पार्थ ! इसप्रकार फलाशाके बिना जिस यज्ञका प्रबन्ध मनोभावसे किया जाता है, उसी यज्ञको सात्त्विक यज्ञ समझना चाहिये ॥ ८४ ॥

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥

अब, हे वीरश्रेष्ठ पार्थ ! जो याग उपरोक्त विधिसे तो किया जाता है, परन्तु जैसे कोई श्राद्धके दिन राजाको भोजनार्थ निमंत्रण देवे, ॥ ८५ ॥ उसमें हेतु यह कि यदि राजा अपने घर आजाय, तो अपनेको बहुतसे द्रव्यादिका लाभ होकर साथमें संसारभरमें कीर्ति बढेगी, फिर श्राद्धमें भी कुछ न्यूनता या बाधा न होगी, ॥ ८६ ॥ इस प्रकारका अभिप्राय मनमें ठानके जब यज्ञकर्ता निश्चित करता है कि, यज्ञ करनेपर स्वर्ग तो अपने लिये अवश्य प्राप्त होगा ही, इसके अतिरिक्त संसारभर दीक्षितपनेका सम्मान भी साथ ही साथ प्राप्त हो जायगा, ॥ ८७ ॥ हे पार्थ ! इसप्रकार केवल फलकी आशासे तथा कीर्तिके लाभार्थ ही जो यज्ञ किया जाता है; वह राजस-यज्ञ कहा जाता है ॥ ८८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

और हे पार्थ ! पशु-पक्षियोंके विवाहमें जैसे केवल कामवासनाके अतिरिक्त दूसरे कोई भी विवाहकरानेवाले जोशी की आवश्यकता नहीं रहती; उसीप्रकार तामस यज्ञमें केवल आग्रह ही एक मूलकारण रहता है ॥ ८९ ॥ हे पार्थ ! यदि वायुको चलनेमें कहीं मार्ग न मिल जाय, किंवा मृत्युको मुहूर्त देखनेकी आवश्यकता पड जाय, अथवा निषिद्ध पदार्थोंको देख भभकनेवाली अग्नि ज्वालायें जलानेसे डर जायँ, ॥ १९० ॥ अर्थात् ये न होनेवाली घटनायें भी कभी हो जायँ, परन्तु तामस पुरुषके व्यवहार विधिको प्रतिबन्ध हो, यह कभी सम्भवनीय नहीं होगा ! कारण वह हमेशः स्वैरवर्तनवाला ही रहता है ॥ ९१ ॥ उसे विधि-निषेधकी कोई पर्वा नहीं रहती, मन्त्र इत्यादिकी उसे रोक नहीं रहती अर्थात् मन्त्रोंकी कोई आवश्यकता ही नहीं भाती । मक्खी जैसी अन्नको देखते ही उसमें अपना मुख डालनेमें कभी पीछे नहीं हटती, तद्वत् किसी प्रकारका अन्न देखते ही उसका ग्रहण करना ही वह जानता है, विधि-निषेध उसे कभी रोक नहीं सकते ॥ ९२ ॥ ब्राह्मणोंको वैराग्यका बोध रहता है, परन्तु इसका तो ब्राह्मणोंसे वैर है, अतः केवल लोभान्वित हो दक्षिणाकी ही इच्छासे इसके यज्ञमें कौनसा ब्राह्मण प्रवेश कर सकता है ? अग्निज्वालायें भभक उठी हों और उनके सहायार्थ आँधी आवे तो, ॥ ९३ ॥ जैसे सर्वस्वका नाश होता है, तद्वत् वह श्रद्धाभक्तिका किंचित् भी विचार न करता हुआ या उस तरफ टेढी दृष्टिसे न देखता हुआ घमण्डी बनकर अपना सर्वस्व व्यर्थ उडा देता है, जैसा कि निपुत्र-मनुष्यका धन उसकी मृत्युके पीछे जो चाहे सो आकर मनमाना लूट लेता हो ॥ ९४ ॥ श्रीके निवासस्थान लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण कहते हैं, हे पार्थ ! इस प्रकारका जो दाम्भिक, असत्य और भ्रमोत्पादक यज्ञ है, उसे तामस-यज्ञ समझना चाहिये ॥ ९५ ॥ फिर श्रीकृष्ण कहने लगे देखो पार्थ ! गंगाका जल एक ही है, परन्तु भिन्न भिन्न प्रवाहोंसे बहता रहनेके कारण, कहीं तो मैला दिखाई देता है और कहीं बिलकुल शुद्ध प्रतीत होता है ॥ ९६ ॥ उसी प्रकार 'तप' भी तीन गुणोंके कारण त्रिधा हो गया है । उन तीन प्रकारोंमेंसे एक प्रकारका तप पापका कारण होता है, तो दूसरे प्रकारके तपसे उद्धार होता है ? ॥ ९७ ॥ अतः हे बुद्धिमान् पार्थ ! ये तपके तीन भेद कैसे उत्पन्न होते हैं, इस विषयको जाननेकी तुम्हें इच्छा उत्पन्न हुई होगी, इसलिये प्रथम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तुम्हें तप क्या है, उसका विवरण कर बता देना चाहते हैं, ॥ ९८ ॥ हे पार्थ ! 'तप' क्या वस्तु होती है, उसका वर्णन प्रथम तुम्हें समझा देते हैं और तदनंतर तीन गुणोंके कारण वह कैसा कैसा भिन्न होजाता है यह भी तुम्हें ठीक समझावेंगे ॥ ९९ ॥ अब, जिसे उत्तम तप कहा जाता है, वह भी तीनप्रकारका होता है—एक शारीरिक, दूसरा मानसिक और तीसरा शाब्द ॥ २०० ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

इन तीन तपोंमेंसे अब हम शारीर-तपका स्वरूप वर्णन करते हैं, तुम सावधानपूर्वक सुनो । श्रीशंकर अथवा श्रीहरि इन दोनोंमेंसे जिसे जो देवता अभीष्ट हो, ॥ १ ॥ उस देवताके मंदिरकी यात्राएँ करनेके लिये मानो उस ( भक्त ) ने रात-दिन ( आठों प्रहर ) अपने पैरोंको एक अविरत चलनेका ही काम सौंप रखा हो ॥ २ ॥ तथा देवके अंगनको शृंगारित करनेमें, गंध-पुष्पादि पूजोपचारोंकी सामग्री एकत्रित करनेमें और कोई कहे उस कार्यको उसीक्षण करनेमें उसके हाथ सदैव तैयार रहते हुए शोभा पाते हैं ॥ ३ ॥ देवतालिंग अथवा देवताकी मूर्ति दृष्टिगोचर होते ही वह ऐसा साष्टांग नमन करता है, मानो भूमिपर कोई लकडीही पडी हो, ॥ ४ ॥ और सदाचार तथा विधियुक्तगुणोंसे भूषित तथा विनयान्वित जो ब्राह्मणश्रेष्ठ हैं, उनकी मनोभावसे सेवा करना, ॥ ५ ॥ अथवा जो कोई प्रवाससे, किंवा किसी रोगादिकी पीडासे, या किसी संकटसे पीडित होरहे हों, उन्हें उस संकटसे मुक्त कर सुखी करते रहना, ॥ ६ ॥ संपूर्ण तीर्थोंमें पवित्र और श्रेष्ठ जो माता पिता उनकी सेवार्थ अपने शरीरकी भी निछावर करना, ॥ ७ ॥ और संसार जैसे अनुपम दारुण दुःखका भी जो अपनी भेंटके साथ ( दृष्टिगोचर होते ) ही नाश कर डालता है, इसप्रकारके ज्ञानदाता और सदय हृदय गुरुका भजन करना, ॥ ८ ॥ और हे वीरवर पार्थ ! स्वधर्मरूपी अँगीठीमें स्थूलदेहबुद्धिरूपी हलके सोनेको अभ्यासयोगरूपी पुटोंसे उसके हीनत्वको जलाकर भस्म करदेना ॥ ९ ॥ संपूर्ण भूतमात्रोंमें एक आत्मवस्तुही भर रही है, इस भावनासे उन्हें नमन करना, परोपकाररूपसे उनका भजन करना और विषयभोगोंमें-स्त्रीविषयमें दृढताके साथ इंद्रियोंका पूर्णतासे संयमन करना ॥२१०॥ जन्म धारण करते समय जो स्त्री-देहको स्पर्श करना वह तो अनिवार्य ही है, परन्तु उसके पश्चात् जन्मभरतक देहको शुद्ध रखना ॥ ११ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भूतमात्रमें तृण भी है, इस बुद्धिसे उसके प्राणको भी धक्का न लगाना, इतना ही नहीं पार्थ! बरन्, किसीको भी तोडना फोडना आदि दुःखदायी हो ऐसा काम भी न करना ॥ १२ ॥ इसप्रकार जब शरीरके व्यापार सहज शुद्ध और सरल होते रह जाँय, तब शारीरिक तप पूर्णताको पहुँचगया समझना चाहिये ॥ १३ ॥ हे पार्थ! इन सब व्यवहारोंमें शरीर ही प्रमुख साधन रहनेके कारण मैं इसे शारीरिक तप कहता हूँ ॥ १४ ॥ इसप्रकार इस शारीरिक तपका वर्णन मैंने कर दिया। अब निष्पाप जो वाङ्मय तप उसका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥ १५ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥

पारसमणि जैसे लोहेका टुकडा न निकालकर अथात् उसको न घटाता हुआ संपूर्णको ही सुवर्ण बना देता है, ॥ १६ ॥ उसीप्रकार जिस वाणीमें ऐसी सरलता और मधुरता हो कि, जो किसीके अन्तःकरणको न दुखाती हो, तथा श्रवण करनेवालोंको जो स्वाभाविक ही सुख उपजानेवाली हो, ॥१७॥ वास्तवमें जल तो वृक्षको दिया जाता है, परन्तु उसके चलते चलतेमें प्रसंगानुसार वृक्षके समीपस्थ तृण भी सहजहीमें बढता हुआ हराभरा होजाता है, उसीप्रकार जो वाणी ऐसी होवे कि, जो केवल एकके उद्देशसे बोली जा रही है, परन्तु उसके श्रवणसे सबका हित हो जावे ॥ १८ ॥ अमृतकी सुरसरिता (देवगंगा) का यदि लाभ प्राप्त हो, तो उससे प्राणोंको तो अमरत्वका लाभ प्राप्त होगा ही, परन्तु इसके अतिरिक्त उसके जलसे स्नान करनेपर वह गंगा जैसी ताप तथा पापका क्षालन करती हुई जिह्वाको भी माधुर्य-लाभ करा देती है, ॥ १९ ॥ तद्वत्, जिस भाषणसे अविचार नष्ट होकर अपना अनादि शाश्वत आत्मस्वरूप प्रकट होता है और जिसका श्रवण अमृतरसवत् माधुर्यभरा होनेसे उसके विष कभी घृणा उत्पन्न नहीं होती ॥२०॥ ऐसी वाणीका व्यवहार इस रीतिसे करना कि, यदि कोई प्रश्न पूछे तो उसीका उत्तर देना, अन्यथा वेदसंहिता या भगवन्नामका आवर्तन (पुनः पुनरुच्चारण) करते रहना ॥ २१ ॥ ऋग्वेदादि तीनों वेदोंकी अपने मुखमंदिरमें प्रतिष्ठा करके, उनके पठनसे अपनी वाणीको मानो वेदशाला ही बना दी गयी हो, ऐसा अनुभवना ॥ २२ ॥ अथवा श्रीशंकर वा विष्णुके अनेक नामोंसे किसी नामका निरन्तर वाणीपर वास रहना इसे वाचिक तप कहा जाता है ॥२३॥ इस प्रकार कहकर फिर लोकपालोंके स्वामी श्रीकृष्णने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कहा अब मैं मानसिक तपका वर्णन करता हूँ, तुम सावधानचित्त होकर श्रवण करो ॥ २४ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

भगवान् कहते हैं, तरंगरहित जैसा सरोवर, अथवा मेघोंसे विरहित जैसा आकाश, किंवा सर्पोंसे छूटा हुआ जैसा चन्दनवृक्ष, अथवा कलाओंकी विषमतासे वियुक्त जैसा चन्द्रमा किंवा चिन्तासे विरहित राजा, अथवा मन्थन-कार्य करनेवाले मंदराचलसे मुक्त हुआ जैसा क्षीरसागर, ॥ २५ ॥ २६ ॥ तद्वत् अनेक संकल्प-विकल्पोंके जालमें गुथा हुआ मन सबतरहसे मुक्त होकर जब केवल आत्मस्वरूपाकार हो, स्थिर होजाता है, ॥ २७ ॥ जैसे कि उष्णताके विना प्रकाश, किंवा जडताके बिना रस, अथवा पोलेपनके विना अवकाश—॥ २८ ॥ की तरह जब मन केवल अपने स्वस्वरूपसेही रहता है, तब स्वकल्याणको प्राप्त करता हुआ आनन्दरूप होजाता है, और अपने स्वभावका वह ऐसा त्याग करता है, जैसे स्वाभाविक शीत हिम अपने शरीरको ठण्ढ नहीं लगने देता, तद्वत् ठण्ढसे बधिर हुए उस मनके अवयव ठंढकी बाधासे कष्टी नहीं होते ॥ २९ ॥ एवं कलंकरहित चन्द्रमा जैसे निश्चल, नित्य तथा परिपूर्णरूपसे रहता है, तद्वत् मन जब शुद्ध और निस्संशय हो उल्लसित रहता है, ॥ २३० ॥ उस अवस्थामें वैराग्यसे होनेवाले कष्ट बन्द होजाते हैं, हृदयका धडधडाना ( घबराहट ) तथा काँपना भी बन्द होजाता है और उस स्थानमें केवल आत्मबोधकी पूर्णताही स्थिर होती हुई बची रहती है ॥ ३१ ॥ अतः शास्त्रोपदेश किंवा शास्त्रपरिशीलनार्थ जो मुखका व्यापार बोलना है उस वाणीके सूत्रका भी कभी उपयोग नहीं किया जाता, किंतु निरन्तर मौनहीका स्वीकार किया जाता है ॥ ३२ ॥ जैसे नमक अपनी पूर्वस्थिति अर्थात् जलका स्पर्श होतेही लवणत्वको छोड, जलरूप होजाता है, तद्वत् आत्मस्वरूपका लाभ होनेपर जब मनका मनत्व भी लुप्त होजाता है, ॥ ३३ ॥ तो फिर ऐसी स्थितिमें इंद्रियरूपी मार्गसे दौडकर विषयरूपी नगरको प्राप्त करनेवाले जो मनोभाव हैं वे प्रादुर्भूत हो कैसे उठ सकते हैं, कारण उनका मूल जो मन वह ही नष्टप्राय होगया ॥३४॥ अतः जैसे हाथकी हथेलीमें बाल नहीं ऊगते, तद्वत् इस प्रकारकी भावनाको प्राप्त हुए मनमें विषयोंके लिये स्थान नहीं रह सकता अर्थात् उस समय स्वाभाविक भावशुद्धि ही रहती है ॥ ३५ ॥ हे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पार्थ ! बहुत क्या कहें ? मन जब ऐसी अवस्थाको प्राप्त होता है तब वह अवस्थाही मानासिक तपके लिये पात्र समझनी चाहिये ॥ ३६ ॥ परन्तु अब यह विवरण यहां ही रहने दो । इस प्रकार मानस तप कैसा होता है इसका विवरण कर तुम्हें संपूर्ण प्रकारसे समझा दिया । इसप्रकार कहकर, देवने फिर कहा, हे पार्थ ! एवं प्रकारेण देह, वाणी और मनके कारण जो सामान्यतः तपके तीन प्रकार समझे जाते हैं, वे हमने अभीतकके वर्णनसे तुम्हें समझा दिये ॥३७॥३८॥ अब तीन गुणोंके संगके कारण इस सामान्य तपके जो तीन प्रकार होजाते हैं उनका भी वर्णन मैं करता हूँ, तुम बडी सावधानीके साथ चित्तैकाग्रतासे सुनते रहो ॥ ३९ ॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

हे प्राज्ञ पार्थ ! अभी जो हमने त्रिविध-तपका वर्णन तुम्हें सुनाया, इसी त्रिविध-तपका आचरण सर्वतः फलकी आशा छोड, केवल पूर्णश्रद्धायुक्त हो करते रहना चाहिये ॥ २४० ॥ और इस प्रकार जब शुद्ध सात्त्विकवृत्तिसे तथा आस्तिक्यबुद्धिसे चलकर पूर्ण तप किया जाता है, तभी इसको ज्ञाता लोग सात्त्विक तप कहते हैं ॥ ४१ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

और इसके विपरीत अर्थात् तपके निमित्तसे भेदभाव उत्पन्न कर ( द्वैतका मंडन कर ) केवल महत्त्वके शिखरपर चढ बैठनेकी इच्छासे, ॥४२॥ त्रिभुवनमें मेरे अतिरिक्त किसीको भी मान-सम्मान न प्राप्त होजाय, किसी सभा या भोजनके समय अग्रपूजाका लाभ मुझे ही प्राप्त होवे, ॥४३॥ संसारमें सबके स्तुतिका पात्र मैं ही होता रहूँ और सब संसार मेरी प्राप्त्यर्थ ही बारबार मेरे घरपर आवागमन करते रहे, ॥ ४४ ॥ संसारमें होनेवाले अनेक बहुमानोंको मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा योग्य अधिकारी ही न मिले, अर्थात् उन मान-संमानोंका भोक्ता मैं ही रहूं, तथा उत्तमोत्तम भोग भी मुझे ही प्राप्त होने चाहिये, ॥ ४५ ॥ इस हेतुसे, जैसे कोई बूढी वेश्या अपना वृद्धत्व छिपानेकी इच्छासे ऊपर ऊपर खूब सजधजके शृंगारान्वित हो, तारुण्यका मुलम्मा चढाती हुई लोगोंको फसाना चाहती है, तद्वत् यह पुरुष शरीर और वाणीद्वारा तपका मुलम्मा देता हुआ अपना महत्त्व बढाना चाहता है ॥ ४६ ॥ और इसप्रकार केवल धन-मानकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इच्छासे ही जो तपके हेतु कष्ट कियेजाते हैं, वह तप राजस कहा जाता है, ॥ ४७ ॥ जिस गौके स्तनमें एक कीडा उत्पन्न होकर उसका दूध पीता रहता है, ( जिस रोगको 'पडुरणी' कहते हैं, ) वह गौ ब्यानेपर भी जैसी दूध नहीं दे सकती, अथवा जिस खेतीकी खडी फसल पशुओंद्वारा खा डाली गयी हो, उसका नाज जैसे फिर प्राप्त नहीं होसकता, ॥ ४८ ॥ तद्वत् ही जो अपने तपका महत्त्व बढाकर अपनी प्रसिद्धिके लिये ही किया जाता है, उसका फल भी वैसाही निरर्थक होजाता है ॥ ४९ ॥ हे पार्थ ! और जब वह तप निष्फलसा प्रतीत होने लगता है, तब उसको करनेवाला तपस्वी उसे बीचमें ही छोडदेता है, अतएव उस तपमें स्थैर्य भी नहीं उत्पन्न होता ॥ २५० ॥ तुम्हें अनुभव होगा कि, आकाशभरमें व्याप्त होता रहता है, बडीबडी गर्जनायें करता है, इस प्रकारका अकालमें आया हुआ मेघ क्या क्षणभर भी कभी स्थिर रहसकता है ? ॥ ५१ ॥ उसीप्रकार जो राजस तप रहता है, वह निष्फल होता हुआ वन्ध्यत्वको ही प्राप्त होता है, और उसे करनेवालेका आचरण भी स्थिरत्वको न प्राप्त होनेके कारण वह अपने साध्यत्वध्येयको प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ५२ ॥ अब, वही तप यदि तामसी वृत्तिसे आचरण किया जाय, तो उस तपके कारण मनुष्य इहलोक और परलोकके साथ कीर्तिलाभसे भी वंचित होजायगा ॥ ५३ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

हे धनुर्धर पार्थ ! जब केवल जानबूझकर ही अन्तःकरणमें मूर्खताकी हवा भरकर, शरीरको शत्रुसरीखा मानते हैं, ॥ ५४ ॥ तथा उस शरीरके चारोंतरफ पञ्चाग्निकी ज्वालायें प्रज्वलित करते हैं, अथवा शरीरको ईंधन समझकर उसको जलानेके हेतु अग्निमें डालते हैं, ॥ ५५ ॥ मस्तकपर गूगुल रखकर जलाते हैं, पीठपर काँटे या तीक्ष्ण शस्त्रोंको चुभा रखते हैं, अथवा समंतात् अग्निको प्रज्वलित कर, उसमें शरीरको लकडीसरीखा जलाते हुए उसके अंगार बनाते हैं, ॥ ५६ ॥ अपने श्वासोच्छ्वास बन्द करते रहकर व्यर्थ ही उपवास करते हैं, अथवा उलटी तरहसे अर्थात् सिर नीचे और पाँव ऊपर बाँधकर नीचे रखी हुई अग्निमेंसे निकलनेवाले धूम्रको मुँहसे प्राशन करते रहते हैं, ॥ ५७ ॥ किंवा हिमसदृश ठण्ढे पानीमें कण्ठतक घुसकर खडे रहनेके कष्ट सहते हैं, अथवा नदीके तटपर या चट्टानोंपर ही बैठे रहते हैं और वहां बैठे बैठे अपने शरीरके जीतेजी रहनेपर भी स्वयंके मांसके टुकडे काटते हैं, ॥ ५८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


इसप्रकार अनेक प्रकारकी यातनायें अपने दुराग्रहपूर्वक इस शरीरको देते हुए केवल दूसरोंके नाशार्थ जो तप किया जाता है, ॥५९॥ वह, अपनी जडताको न जानता हुआ और अपनेही भारसे गिरताहुआ पत्थर, जैसे गडगडाता हुआ नीचे जाताहै तथा जाते समय टूटकर टुकडे टुकटे होता जाता है, और गिरते समय मार्गमें आई हुई वस्तुओंको भी जो अपने भारसे दबा डालता रहता है, उसीप्रकार मूढबुद्धिलोग इस पूर्वोक्त प्रकारके तपसे अपने शरीरको क्लेशित कर, सुखी प्राणियोंको भी उनके सुखस्थानसे भ्रष्ट करने या उन्हें जीतनेकी जो मनमें इच्छा करते हैं, ॥ २६० ॥ ६१ ॥ बहुत कहांतक कहें पार्थ ! इस प्रकार दुष्टवासना मनमें रखकर बुरीतरहसे शरीरको भयंकर क्लेश देनेवाला जो तप किया जाता है, उसे तामस तप कहा जाता है ॥ ६२ ॥ एवंच, सत्त्वादि गुणोंके संबंधसे जो तपके तीन प्रकार होते हैं उनका स्पष्टतया वर्णन कर, तुम्हें सुना दिया है ॥ ६३ ॥ अब तुम्हारा हमारा एकत्र संयोग होनेका प्रसंग प्राप्त भया है, अतः प्रसंगानुसार दानके भी त्रिविध लक्षणका वर्णन करते हैं ॥ ६४ ॥ वह दान भी संसारमें गुणोंके कारण तीन प्रकारका होता है। अब हम पहले पहल सात्त्विक-दानके लक्षणोंको सुनाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो ॥ ६५ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २० ॥

अपने धर्मानुसार आचरण करते रहनेपर जो जो कुछ धन मिले, उसे आदरके साथ दूसरोंको देना अर्थात् दान करना चाहिये ॥ ६६ ॥ उत्तम बीज प्राप्त हुआ हो परन्तु उसके लिये जैसे अच्छी जमीन और अनुकूल खाद न मिले, वैसाही प्रकार दानके संबंधमें होता हुआ वारंवार दिखाई देता है ॥ ६७ ॥ जिसकी कीमत होना कठिन, ऐसा बहुमोल ( अलभ्य ) हीरा भी हाथ आवे, तो उसको ठीक बिठानेके लिये कभी सोनेकी ही न्यूनता रहती है और कदाचित् रत्न और सुवर्णप्राप्तिका भी योग जमजाय तो उस अलंकारको पहननेके योग्य शरीर ही नहीं मिलता ॥ ६८ ॥ परन्तु जब अपने भाग्यका उदयोत्कर्ष होनेका समय प्राप्त होता है, तब उत्तम त्योहार, अपने प्रेमी स्वजन और धनसम्पत्ति इन तीनोंका जैसा एकत्रित संगम प्राप्त होजाता है, ॥ ६९ ॥ तद्वत्, दानकी सहायताके लिये जब सत्त्वगुणका आश्रय प्राप्त होता है, तब दानके योग्य स्थल, काल, पात्र और द्रव्य इन सबका योग आपही आप जुलता मिलता होजाता है ॥ २७० ॥ अतः योग्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दानके लिये सर्वप्रथम कुरुक्षेत्र वा काशी जैसे स्थलकी अथवा अन्य उत्तम पवित्र देशकी आवश्यकता रहती है, जो कि काशी आदिके सरीखा पवित्र हो, ॥ ७१ ॥ फिर उस स्थानमें सूर्य वा चन्द्रग्रहणके समान पर्वकाल अथवा दूसरा कोई भी पुण्य पर्वका समय देखना चाहिये ॥ ७२ ॥ इतोत्तर ऐसे देश और ऐसे समयमें दानके योग्य इस योग्यताके पुरुषको ढूँढना चाहिये, जो कि शुचिताकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति ही हो ॥ ७३ ॥ वह शुद्ध पुरुष सदाचार-सम्पन्न तो होना ही चाहिये, परन्तु वेदोंका वह वसतिस्थान अर्थात् जिसे वेदपुरुषकी ही योग्यता प्राप्त होरही है इसप्रकारका हो, फिर ऐसा ब्राह्मणश्रेष्ठ प्राप्त होनेपर, ॥ ७४ ॥ उस पुरुषको अपनी संपत्तिका अपना स्वत्व अर्थात् अपना अधिकार छोड, वह दातव्य द्रव्य उस ब्राह्मणश्रेष्ठको अर्पण करना चाहिये परन्तु वह अर्पणविधि इस तरह होना चाहिये कि, जिसप्रकार अपने प्रियवल्लभके सम्मुख कुलीनकान्ता मर्यादाके साथ जाती है, ॥ ७५ ॥ अथवा किसीकी अमानत ( रक्षित ) रखी हुई सम्पत्ति उसे वापिस देकर जैसा सज्जन पुरुष उससे उऋण होजाता हुआ आनंदित होता है, किंवा खिदमतगार जैसे राजाको बडी नम्रताके साथ तांबूल अर्पण करता है, ॥ ७६ ॥ उसी प्रकार निष्कामबुद्धिसे उस ब्राह्मण-श्रेष्ठको भूमि इत्यादिका दान करना चाहिये । तात्पर्य, दान देते समय किसी भी फलाकांक्षाका मनमें उद्भव न होने देना चाहिये ॥७७॥ इसके अतिरिक्त, दान देनेके लिये जिस मनुष्यको नियोजित किया गया हो, लियेहुए दानके प्रत्युपकारमें उससे किसीप्रकारका कोई भी बदला वह कभी न देसके अर्थात् वह किसी मार्गसे प्रत्युपकार न करसके ॥७८॥ आकाशको पुकारनेपर उससे जैसा प्रतिध्वनि या प्रत्युत्तर मिलनेकी आशा ही नहीं रहती, अथवा कहीं दूसरी ओर देखते रहनेपर जैसे दर्पणमें अपना प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता, ॥ ७९ ॥ किंवा जलमयी कीचडभूमिपर गेंद मारनेसे जैसे उछलकर वह फिर अपने हाथ नहीं आसकता, ॥२८०॥ अथवा छोडे हुए सांडको [ जो अपने कल्याणार्थही और्ध्वदैहिक-क्रियामें यथेच्छाचारी बैल छोडा जाता है ] दिया हुआ चारा, अथवा अत्यंत कृतघ्न मनुष्यपर किया हुआ उपकार अथवा उसे दिया हुआ बहुमान जैसा किसी प्रकार फलप्रद नहीं होता, ॥ ८१ ॥ तद्वत्, जिसे दान दिया गया हो, वह मनुष्य ऐसा होना चाहिये जो दाताके दिये हुए दानका किसीप्रकार प्रत्युपकार न कर सके, तथा 'मैं दाता और वह लेने-वाला' इसप्रकारकी भावना मनमें भी उत्पन्न न होनी चाहिये ॥ ८२ ॥ हे वीरश्रेष्ठ पार्थ ! इसप्रकार योग्य सामग्रीके साथ जब सबतरहसे पूर्णतया

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दानकी घटना तैयार होकर दान किया जाता है, तब उस सर्वश्रेष्ठदानको सात्त्विक दान समझा जाता है ॥ ८३ ॥ और वैसा ही देश तथा वैसाही काल प्राप्त हुआ हो, और पात्र सम्बंध ( ब्राह्मणश्रेष्ठ ) भी वैसा ही हो तथा दानीय द्रव्य भी शुद्ध और न्यायसे ही प्राप्त किया हो, ॥ ८४ ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥

परन्तु, गायको जो चारा दिया जाता है, वह उससे अपनेको दूध मिल-जाय इस भावनासे ही जैसे दिया जाता हो, अथवा आगे पकनेवाले अना-जसे अपना धान्यसंचयका भांडागार भरजाय इस हेतुसे जैसे खेतमें बीज बोया जाता है, ॥ ८५ ॥ किंवा किसी भी प्राप्तिकी ओर दृष्टि रखकर जैसे सम्बंधियोंको मंगलकार्योंमें निमन्त्रण देनेका व्यवहार किया जाता है, अथवा जैसे व्रतस्थ मनुष्यको इस हेतुसे स्थाली भेजी जाय कि, किसी समय किसी रूपसे उसका बदला अवश्य वापस करदे या उसे ही वह वापस कर दे ॥ ८६ ॥ किंवा व्याजको पहले ही गांठमें बाँधकर जैसे द्रव्यसे किसीकी सहा-यता करनेका बडप्पन दिखाया जाय, या पहलेही धन लेकर रोगीको औषधि दी जाय, ॥ ८७ ॥ तद्वत्, जो दान जिसे दिया जाय, उस दानसे लेनेवालेके उदरनिर्वाहका कार्य हो, परन्तु उस दानसे दाताका बारबार यश बखाना जाय, या उस दानके कारण अपने ( दाता ) को भी कुछ न कुछ फायदा ही होता रहे, ॥ ८८ ॥ किंवा यदि किसी समय रास्ता चलते चलते कोई ब्राह्मणश्रेष्ठसे भेंट हो जो कि दिये हुए दानका किसीतरह प्रत्युपकार न कर सकता हो, तो उसे एक कौडीका दान देकर, संपूर्ण गोत्रजोंके प्रायश्चित्तका उदक संकल्पके साथ उसके हाथपर छोडा जाय ! ॥ ८९ ॥ २९० ॥ उसी प्रकार नानाप्रकारके स्वर्गीय सुखोपभोगके फलोंका मनमें संकल्प कर, जो दान दिया जाता है, परन्तु वह भी कितना बडा कहो, तो लेनेवालेकी एक समयकी भूँख भी शान्त न हो जाय ऐसे महत्त्वभरा हो, ॥ ९१ ॥ परन्तु ऐसा होते भी वह अत्यल्पदान लेनेवाला ब्राह्मण दान लेकर जब चलने लगता है, तो यजमानका मन ऐसा घबडा जाता है, मानो आज अपने घरपर डाका डालकर अपना सर्वस्व ही लूटा जा रहा हो ! ॥ ९२ ॥ हे पार्थ ! अब ऐसे वर्णनोंको व्यर्थ कहांतक बढाऊँ ? परन्तु अब हम निश्चित कहते हैं कि, उस तरहकी मनोभावनासे जो दान दिया जाता है कि, जिससे कुछ भी प्रत्युप-काररूपी फल अवश्य मिले, वह दान संसारमें राजस कहा जाता है ॥ ९३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

अब, हे पार्थ ! यवनोंकी बस्ती, अरण्य, अपवित्र स्थान, छोटेसे डेरे या शहरके चौरास्तेपर, ॥ ९४ ॥ तथा निकम्मे ( अनिष्ट ) सांझके समय अथवा रात्रिमें चोरी करके लगे हुए द्रव्यका दान करना, ॥ ९५ ॥ और वह दान भी किस पात्रको दिया जाता है, तो कोई भाट, बाजीगर, या वेश्या अथवा जुगारी आदिकोंको ! जो कि स्वयं मूर्तिमंत मोह-भ्रमके पुतले होनेसे दान देनेवालोंको ही अपने मोहमें फँसानेवाले चेटकियों सरीखे धूर्त होते हैं ! ॥ ९६ ॥ उसपर भी उनकी रूप-लावण्यसे आंखें धुंध हो रही हों, नृत्य हो रहा हो, जादूसे आंखोंमें धूलि भरदी हो और भाटोंद्वारा जो स्तुति होती रही है, उस स्तुतिके गुंजारवसे कान भरदिये हों, ॥ ९७ ॥ फिर भी सुवासिक फूलोंकी तथा अन्यान्य सुगंधिद्रव्योंकी सुगंधसे मानो दान देनेवालेके शरीरमें कोई पिशाचसंचार हो, वह वेतालसा ही बन रहा हो ! ॥ ९८ ॥ इस प्रकारके मानस-स्थितिमें सर्व दुनियाको लूटकर लाई हुई संपत्तिके दानसे चाण्डालोंके अन्नसत्रका ही जो आरम्भ करना है, ॥ ९९ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारका जो दान दिया जाता है, उसे मैं तामस दान कहता हूँ । इसके अतिरिक्त और भी एक घटना जो कभी कभी दैवयोगसेही उत्पन्न होती है, उसे भी कहता हूँ तुम सुनो ॥ ३०० ॥ जैसे किसी लकडीको स्वभावतः ही कीटकके काटते रहनेपर उसमें सहजहीमें अक्षरका आकार बनजाता है [ घुणाक्षरन्याय प्रसिद्ध ही है ] अथवा किसी समय कारणवश जोरसे ताली बजाते बजाते उसीक्षण अकस्मात् जैसे कहींसे दो हाथोंके बीच कौआ आ मिल जाता हुआ गिरपडता है, तद्वत् उस तामस पुरुषको भी कभी ऐसा मौका कदाचित् प्राप्त हो, कि पवित्र स्थल और पर्वकालका भी लाभ होजाय, ॥ १ ॥ और वहां उसे श्रीमान् दाता समझकर, कोई दान मांगनेकी इच्छासे योग्य पुरुषका संयोग प्राप्त हो, तो वह तामस पुरुष अपनेको बड़ा समझता हुआ अभिमानसे फूलता है, ॥ २ ॥ परन्तु मनमें श्रद्धाका नामतक नहीं रखता, उस अतिथिको वह नमस्कार भी नहीं करता, फिर आदरसे अतिथिका अर्घ्य-पाद्यादिसे पूजन करना तो दूर ही समझो, वह स्वयं तो आदरातिथ्य करता ही नहीं, किन्तु दूसरे कोई उसका मान सम्मान करना चाहते हों तो उन्हें भी रोकनेकी चेष्टा करनेमें अग्रसर बनता है ॥ ३ ॥ उसे बैठनेके लिये आसन देना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


भी उसे ज्ञात नहीं होता अर्थात् जानबूझकर भी देना नहीं चाहता, फिर अभ्यागतको गंधाक्षतोंसे पूजा करना इत्यादि बातोंका विचार ही कहां रहा ? हे पार्थ ! इसप्रकार अशास्त्र तथा अपमानकारक वर्तन करनेमें उस तामस पुरुषको जरा भी खेद नहीं होता, कारण उसका स्वभाव ही वैसा बना रहता है ॥ ४ ॥ यदि कदाचित् उस याचकको कुछ देनेकी इच्छा करे भी तो जैसे ऋणी मनुष्यको तगादेवालेको कुछ भी दिये बिना चारा ही नहीं रहता, तद्वत् उस याचकको किसी तरह अत्यल्प द्रव्य दे, शीघ्र निकल जानेकी इच्छासे दान देते समय मुखसे भ्रष्टशब्दोच्चारणकी वर्षा करता रहता है ॥ ५ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकारका दान करते समय जो कुछ अल्प-स्वल्प दान देता भी है, तब वह तामसी दानकर्ता पुरुष अपमानकारक शब्दोंसे उस याचककी निर्भर्त्सना भी करता है या अपने दिये हुए दानका ही खूब बखान करता हुआ दानद्वारा भी उसकी अवहेलना करता है ॥ ६ ॥ परन्तु हे अर्जुन ! यह विषय यहां ही समाप्त हो। तात्पर्य, इस प्रकार जो द्रव्यदान किया जाता है, वह सर्वतः 'तामस दान' कहलाता है ॥ ७ ॥ एवंच, अपने अपने विशिष्ट लक्षणोंसे अलंकृत होनेवाले तीनों दानोंका यथार्थ और स्पष्ट वर्णन उनके नाम गुणोंके साथ तुम्हें कथन कर दिया ॥ ८ ॥ परन्तु हे प्राज्ञवर पार्थ ! मैं समझता हूं कि कदाचित् तुम मनमें ऐसी कल्पना करोगे ॥ ९ ॥ कि, संसारबन्धनसे छुडानेवाला केवल एक सात्त्विक कर्म ही है तो फिर दूसरे विरोधी और दुष्टकर्मोंके वर्णनकी आवश्यकता ही क्या है ? अगर मानसिक त्रासके साथ उनके वर्णनमें वृथा कालक्षेप भी क्यों किया जाय ? ॥ ३१० ॥ यह शंका तो ठीक है, परन्तु हे पार्थ ! गुप्तधन सञ्चयपर बैठे हुए पिशाचको वहांसे निकाल दिये बिना जैसे वह गढा हुआ धन हाथ नहीं लग सकता, अथवा धूम्रके सहे बिना जैसी दीपज्योति प्रज्वलित नहीं हो सकती, ॥ ११ ॥ तद्वत् शुद्ध-सत्त्वकी ओटमें रज-तमोगुणके जो प्रावरण लग रहे हैं, उनको फाड डालनेके कृत्यको बुरा कैसे माना जाय ॥ ? ॥ १२ ॥ हमने जो श्रद्धासे दानतक ( इस अध्यायके २ रे श्लोकसे २२ श्लोकतक ) वर्णन किया कि, सर्व कर्म समूह तीन गुणोंसे व्याप्त रहता है ॥ १३ ॥ उसमें हमारा अभिप्राय तीनों गुणोंका वर्णन करनेका था, यह बात मत समझो, किन्तु केवल सत्त्वका स्पष्ट स्वरूप समझनेके लिये ही दूसरे दोनोंका उल्लेख करना आवश्यकीय हो रहा था, इसीलिये साथमें उनका रज-तमका वर्णन किया है ॥ १४ ॥ कारण दोनोंके बीच ( सन्धिस्थान ) में जो तीसरी वस्तु मिली रहती है, वह तभी स्पष्ट दिखाई दी जाती है, जब उन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



दोनोंको वहांसे हटा दिया जाय । जैसे कि दिन और रात्रिका त्याग करनेपर ही सन्ध्याका स्पष्ट रूप देखनेकी प्रतीति आती है ॥ १५ ॥ उसी न्यायसे रज और तमके विनाश होजानेसे जो तीसरा बचा रहता है वा दिखाई देता है, वही सत्त्व है और वह अकेला रहनेपर आप ही आप स्पष्ट दिखाई देता है ॥ ॥ १६ ॥ अतः सत्त्वका ज्ञान तुम्हें हो जावे, इस हेतु हमने रज-तमका निरूपण किया । इस वास्ते उन रज-तमोंका त्यागकर तुम सत्त्वके सहायसे ही अपना कार्य करते रहो ॥ १७ ॥ अब तुम शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त होते हुए सम्पूर्ण यज्ञ इत्यादि कार्योंको करते रहना, जिससे तुम्हारा आत्मस्वरूप सहज हीमें तुम्हारे हाथ लगेगा ॥ १८ ॥ स्वयं सूर्य ही दिखानेके लिये तैयार हो जाय तो उसका प्रकाश कौनसी चीज नहीं दिखा सकता ? तद्वत्, यदि शुद्ध-सत्त्वसे ही कार्य किया जाय तो ऐसा कौनसा कर्म हो, जो कि सफलीभूत न होता होगा ? ॥ १९ ॥ कारण, सत्त्वगुणमें जो चाहो उस फलको देनेकी अलौकिक उत्तम शक्ति रहती है, यह बात तुम निश्चित समझ रखो । परन्तु, मोक्ष लाभ प्राप्त कर उसमें एकरूप हो जो मिल जाना है, ॥ ३२० ॥ यह बात एकदम एक निराली ही वस्तु है । उसकी जब सहायता प्राप्त होती है, तब मोक्षके प्रान्तमें भी एकसाथ आपही आप प्रवेश हो जाता है ॥ २१ ॥ जैसे सुवर्ण श्रेष्ठ भाव जो पंदरह उस भावका हो, तथापि उसपर जब राजमुद्राके अक्षरका सिक्का मारा जाता है तभी वह व्यवहारके कामका होता है, ॥ २२ ॥ दूसरे स्थलोंके जल यद्यपि स्वच्छ, ठण्ढे, सुवासयुक्त और सुखकर हों तथापि पवित्रता प्राप्त करनेमें जैसे तीर्थका सम्बन्ध ही आवश्यक होता है, ॥ २३ ॥ साधारण नदी चाहे जितनी बडी हो, तथापि गंगाके अंगीकार करनेपर ही जैसे उसका सागरमें प्रवेश हो सकता है, ॥ २४ ॥ उसी प्रकार हे किरीटी पार्थ ! सात्त्विक कर्म करनेवाले पुरुषको मोक्ष प्राप्तिके मार्गमें जाते समय कोई प्रतिबन्ध रहता नहीं, यह बात सही, तथापि उसकी प्राप्तिमें भी एक वस्तुकी अवश्य आवश्यकता रहती है, और यह प्रश्न भी भिन्न ही है, ॥ २५ ॥ यह वचन सुनते ही, अर्जुनके अन्तःकरणमें औत्सुक्य न समा सका, और वह उसी क्षण देवसे बोला—हे भगवन् ! आप कृपाकर उस वस्तुका वर्णन कर मुझे सुनाइये ॥ २६ ॥ तब कृपासागर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पार्थ ! सात्त्विक कर्मको जिस वस्तुकी सहायसे मोक्षरूपी दिव्य रत्न देखनेका लाभ प्राप्त हो जाता है, उसका स्पष्टीकरण करता हूं तुम सावधानताके साथ श्रवण करो ॥ २७ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

संपूर्ण विश्वका मूलकारण तथा विश्रान्तिस्थान जो अनादि परब्रह्म, उसका एकही नाम तीन प्रकारसे है ॥ २८ ॥ वास्तविक विचारसे देखनेपर, ब्रह्म-वस्तु नामरहित या जातिरहित है; परन्तु मायाजनित अविद्यारूपी रात्रिके अंधकारमें उस ब्रह्मकी कुछ भी कल्पना होनेके लिये ही वेदोंने नाम अर्थात् एकतरहसे उसकी पहचानका चिह्न बना रखा है ॥ २९ ॥ बालक जन्म धारण करता है, तो साथमें नाम नहीं ले आता, परन्तु उसे जो एक नाम दिया जाता है, उस नामसे पुकारनेपर प्रत्युत्तर देता हुआ वह उठता या सम्मुख आता है, ॥ ३३० ॥ तद्वत्, संसारदुःखसे कष्टी हुए जीव, जब अपने कष्ट निवारणका निवेदन करनेके लिये ईश्वरके पास जाते हैं, और उनके पुकारनेपर वह जिस नामसे उन्हें उत्तर देता है, उस सांकेतिक ( उच्चारे हुए ) नामसे ही हमारा अभिप्राय है ॥ ३१ ॥ सर्वश्रेष्ठाग्रणी वेदोंने कृपापूर्वक विचार कर, ऐसा एक मंत्र देखलिया, कि जिस मंत्रके प्राप्त होनेसे ब्रह्मतत्त्वकी अनिर्वाच्यता वाचाके प्रदेशमें आजाय अर्थात् वाणीसे वर्णा जाय तथा उसका जो अद्वैतस्वरूप है वह द्वैतरूप ( व्यक्तरूप ) से ही अनुभव किया जावे ॥ ३२ ॥ फिर उस वेदोपदिष्ट एकही मन्त्रके उच्चारण-पूर्वक पुकारतेही, वह ब्रह्म पीछे रहा हुआ भी सहज लीलासे संमुख खडा होजाता है ॥ ३३ ॥ परन्तु यह अनुभव अथवा मन्त्र उन्हींको प्राप्त होसकता है, जो कि वेदरूपी पहाडके शिखरपर उपनिषदर्थरूपी नगरमें ब्रह्माकी पंक्तिमें ही बैठ सकते हों ॥ ३४ ॥ इतना ही नहीं, बरन् प्रजापति-ब्रह्माको विश्वोत्पादन करनेकी शक्ति जिस नामके एकबार उच्चारण करनेसे प्राप्त हुई, ॥ ३५ ॥ हे वीरवर पार्थ ! वह ब्रह्मा भी सृष्टिके आरम्भकालमें एक साधारण पागल मनुष्यके सरीखा घबडा हुआ था, ॥ ३६ ॥ उस समय वह मुझ ईश्वरको नहीं जानता था, और सृष्टिकी रचना करनेका भी उसमें सामर्थ्य नहीं था, परन्तु जिस एक नामके कारण उसमें सामर्थ्य प्राप्त हुआ, ॥ ३७ ॥ जिस एक नामके अर्थका अन्तःकरणमें ध्यान करनेसे तथा जिन तीन अक्षरोंका जप करनेसे उस ब्रह्माको सृष्टि उत्पन्न करनेके अत्युच्च सामर्थ्यका लाभ प्राप्त होगया, ॥ ३८ ॥ तब उसने प्रथमतः ब्राह्मण उत्पन्न किये और उन्हें वेदोंका अनुसरण करनेका उपदेश दे, निर्वाहके लिये यज्ञोंका अनुष्ठान करनेका साधन नियत कर दिया ॥ ३९ ॥ इसके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अनंतर सृष्टिकार्य करते करते उसने जो कितने ही लोक निर्माण किये उनकी तो गिनती ही नहीं, उन सबके निर्वाहार्थ मानो तीनों भुवन इनाममें ही दे रखे हैं ॥ ३४० ॥ लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णजी कहते हैं, हे पार्थ ! इस-प्रकारका अद्भुत और लोकोत्तर कार्य करनेका सामर्थ्य ब्रह्माको जिस नाम-मन्त्रके द्वारा प्राप्त होगया, उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥४१॥ इतना कहकर भगवान् बोले–संपूर्ण मंत्रोंका अधिपति जो ओंकार, वह इस नामका पहला वर्ण ( अक्षर ) समझना, 'तत्' दूसरा और 'सत्' तीसरा ॥ ४२ ॥ इसप्रकार 'ॐतत्सत्' इन तीन अक्षरोंसे तीन प्रकारका बनाहुआ ब्रह्मका नाम है । इस उपनिषदके अर्थसार भरे सुंदर पुष्पका सुवास तुम्हें भी ग्रहण करना योग्य है ॥ ४३ ॥ इस नामके साथ तादात्म्य प्राप्त कर, जब सात्त्विक कर्मका आचरण किया जाता है, तब वह कैवल्यको ही अपने घरका दास बना रखता है ॥ ४४ ॥ दैवकी अनुकूलता रहनेपर, कदाचित् कपूरके अलंकारोंका भी लाभ होजाय, परन्तु हे पार्थ ! उन्हें पहने कैसे जाते हैं, क्या यह भी एक संकट नहीं उपस्थित होगा ? ॥ ४५ ॥ उसीप्रकार कदाचित् सत्कर्माचरण होता जाय, ब्रह्मके नामका जप भी किया जाय, तथापि उसके विनियोगका अर्थात् व्यवस्थाका या शास्त्रोक्तविधिका मर्म ( ज्ञान ) न विदित हो, ॥ ४६ ॥ तो जैसे कि असंख्य सन्त-महन्त विना बुलाये अपनी ही इच्छासे घरपर आजाँय और यदि उनका यथायोग्य आदर-सम्मान न किया जाय तो बने बनाये ( प्राप्त किये ) पुण्यका भी जैसे क्षय हो जाता है, ॥ ४७ ॥ अथवा सुंदर अलंकार पहननेकी अत्युत्कट इच्छासे कुछ पहले बने हुए अलंकार और कुछ केवल सुवर्णका एकही गोल बनाकर जैसे कण्ठमें लटका दिया जाय, ॥ ४८ ॥ तद्वत्, मुखसे ब्रह्मनामका जप हो तथा हाथोंसे भी सात्त्विक कर्मका आचरण हो रहा हो, तथापि यदि उसका विनियोग ज्ञात न हो तो, वह सब कर्म निष्फल ही होगा ॥ ४९ ॥ देखो पार्थ ! अन्न और भूँख ये दोनों भी पास हैं, तथापि यदि बालक भोजन करनेका कार्य न जानता हो, तो उसे उपवास ही करना पडेगा ॥ ३५० ॥ अथवा हे वीरवर पार्थ ! तैल, बत्ती तथा अग्नि ये तीनों भी साधन तैयार हैं परन्तु उनकी नियोजकता करनेका ( सुलगानेका ) ज्ञान न हो तो आखिर अन्धेरेमें ही रहना पडेगा ! ॥ ५१ ॥ तद्वत् ही, योग्य समयमें कर्म आचरण किया जा रहा है, उसके मंत्रका भी ठीक स्मरण है, तथापि यदि विनियो-गका ज्ञान न विदित हो तो वह सब निष्फल होजाता है ॥ ५२ ॥ अतः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इन तीन वर्णोंसे बना हुआ जो ब्रह्मका एकही नाम है, हे पार्थ ! उसका विनियोग कैसा किया जाता है, उसका वर्णन तुम्हें सुनाता हूँ ध्यानके साथ श्रवण करो ॥ ५३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

हे पार्थ ! इस नामके तीनों अक्षर कर्मके आरंभमें, मध्यमें तथा अन्तमें इस प्रकार तीनों स्थानोंमें भी युक्त करने चाहिये ॥ ५४ ॥ हे किरीटी ! आजतक जिन ब्रह्मवेत्ताओंने ब्रह्मस्वरूपका लाभ प्राप्त किया है, उन ज्ञाताओंने भी इसी युक्तिकी सहायताका स्वीकार किया है ॥ ५५ ॥ वे ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी पुरुष ब्रह्मानुभव प्राप्त होनेपर भी शास्त्रज्ञोंके या शास्त्रके कहे हुए यज्ञोंका त्याग नहीं करना चाहते ॥ ५६ ॥ परन्तु प्रथमारम्भमें ध्यानद्वारा ॐकारको हृदयमें देखते हैं और उसका ध्यानद्वारा दर्शन होनेपर वाणीसे उच्चारण करते हैं ॥ ५७ ॥ और इस प्रकार ॐकारके ध्यानसे तथा उसके उच्चारणके साथ ही कर्ममार्गोंका आरम्भ करते हैं ॥ ५८ ॥ कर्ममार्गमें ॐकारको ऐसा समझना चाहिये जैसा कि अंधेरेमें निरंतर प्रज्वलित रहा हुआ दीपक ही हो, अथवा किसी अरण्यमें जाते समय सामर्थ्यवान् मनुष्य ही साथमें लिया हो ॥ ५९ ॥ वे ब्रह्मवेत्ता लोग इष्टदेवतोंके उद्देशसे, नीतिसे तथा धर्मसे उपार्जित किये हुए बहुतसे द्रव्यका आहुतिरूपसे खर्च कर ब्राह्मणोंद्वारा अग्निका यजन करते हैं ॥ ३६० ॥ वे ज्ञाता लोग शास्त्रोक्तविधिसे दक्षतापूर्वक तीनों अग्नियोंमें अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्निमें त्रिकाल आहुति देकर यज्ञकर्मका आचरण करते रहते हैं ॥ ६१ ॥ किंबहुना, वे नानाप्रकारके यज्ञयागादिकोंका अंगीकार करते हुए इस मायाजनित अग्नि उपाधिका अर्थात् संसार मोहभ्रमका त्याग करते हैं ॥ ६२ ॥ अथवा न्याय-नीतिसे संपादित की हुई भूमि इत्यादि पवित्र और स्वसंपादित वस्तुओंका शुद्ध देश और पर्वकालमें सत्पात्र पुरुषोंको दान देते हैं, ॥ ६३ ॥ किंवा एक दिनान्तरके भोजनका व्रत कर, किंवा चान्द्रायणव्रत कर, या महीनोंके उपवाससे शरीरगत धातुओंको सुखाते हुए तपश्चरण करते हैं ॥ ६४ ॥ इस प्रकार यज्ञ, दान, तप इत्यादि जो कर्म बन्धनकारक कहे जाते हैं, उन्हींका आचरण कर, उनके सहायसे ही वे ब्रह्मवेत्ता लोग मोक्षपदको प्राप्त करलेते हैं ॥ ६५ ॥ जो नौकायें स्थलपर नहीं चल सकतीं वेही जल पर तैरकर पार लगा देती हैं, उसीप्रकार जो



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर्म बंधनकारक प्रतीत होते हैं, वे कर्म ही इस नामके द्वारा मुक्तिपदप्राप्तिके सहायक होते हैं ॥६६॥ परन्तु अब यह विस्तार यहां ही रहने दो । इसप्रकार ये यज्ञ दान आदि क्रियायें ॐकारकी सहायतासे प्रवृत्त होने लगती हैं, ॥६७॥ और जब वे अल्पस्वल्प फलवती होनेकी योग्यताको पहुँचती हैं, तब 'तत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है ॥ ६८ ॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥

जो परब्रह्मवस्तु इस मायाजनित विश्वके परेका है तथा जो एक और सर्व साक्षी है वह 'तत्' शब्दसे दर्शित हो जाता है ॥ ६९ ॥ ज्ञानी जन उसे सबका आदिकारण जानते हुए अन्तःकरणमें उसका ध्यान करते हैं और हे सुमति पार्थ ! वे सुज्ञ पुरुष फिर वाचाद्वारा भी उच्चारण करते हुए उसे प्रत्यक्ष करते हैं ॥ ३७० ॥ वे कहते हैं कि 'तत्' रूप जो ब्रह्म उसीको ये सब क्रियायें फलोंके सहित अर्पण हो जायँ, और हमारे भोगनेके लिये इनमेंसे कुछ भी शेष न रह जाय ॥ ७१ ॥ इस प्रकार 'तद्रूप' जो ब्रह्म उसीको संपूर्ण कर्म समर्पण करते हुए 'न मम' (यह मेरा नहीं) ऐसा कहकर उन कर्मफलोंसे अपनेको पृथक् कर लेते हैं ॥ ७२ ॥ अब जो कर्म ॐकारसे आरम्भ किया गया, तथा जो तत्कारसे समर्पित किया गया, वह कर्म इसप्रकार ब्रह्मरूप होजाता है, अर्थात् वह ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है, ॥ ७३ ॥ परन्तु, यद्यपि वह ब्रह्माकार होजाता है, तथापि उससे कुछ सफलता नहीं होती, कारण वह बाह्यकर्म है, अतः कर्तामें जो कर्तापनेके अभिमानका द्वैतभाव रहता है, वह द्वैतभाव इस बाह्य-कर्मके समर्पणसे ब्रह्मरूपत्वको नहीं प्राप्त होने देता ॥ ७४ ॥ नमक जलमें गलजाता है, सही परन्तु उसकी क्षारता तो बाकी रहती ही है, तद्वत् अपना कर्म हमने ब्रह्ममें अर्पण किया यह जो द्वैत भावना है वह कर्तामें शेष रहनेके कारण, ब्रह्माकार हुआ कर्म भी द्वैत ही जान पडता है ॥ ७५ ॥ और जबतक यह द्वैतभाव शेष रहता है, तबतक संसारभयसे छुटकारा होना असंभव ही है; यह बात तो देवने स्वयं वेदवाणीद्वारा अपने मुखसे ही कह रखी है ॥ ७६ ॥ अतएव कर्तृत्वाभिमानसे (अपनेसे) परे जो परब्रह्म है, वह आत्मत्वसे अनुभूत होजावे, इस बातकी पूर्ति होनेके लिये देवने तीसरा शब्द जो 'सत्' उसकी योजना करनेके विचारसे उसको पीछे रख छोडा है ॥ ७७ ॥ अतः, ॐकार और तत्कार इनके द्वारा जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कर्म ब्रह्माकार होजाते हैं, जिन्हें 'प्रशस्त' इत्यादि नामोंसे बखाना जाता है, ॥ ७८ ॥ उन प्रशस्त कर्मोंमें ही 'सत्' शब्दकी योजना की जाती है। उसका वर्णन सुननें योग्य होनेसे हे पार्थ! उसके सुननेमें तुम बडी सावधनता रखो, हम स्पष्टतया उसका निरूपण करना चाहते हैं॥ ७९ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥

इस 'सत्' शब्दसे असत् अर्थात् अज्ञानजन्य नामरूपात्मक विश्वके सिक्केको गला देनेसे निष्कलंक सत्तत्त्वरूपी सच्ची सत्ताका निर्दोष स्वरूप व्यक्त होजाता है॥ ३८० ॥ यह जो 'सत्' वस्तु है, वह किसी कालमें अथवा किसी भी देशमें अपने आत्मीय स्वरूपसे कभी पृथक् नहीं होती, किन्तु वह सदैव अपने आत्मस्वरूपमेंही विलास करती हुई अखंडित बनी रहती है॥ ८१ ॥ यह जो नामरूपात्मक विश्वाकारसे दिखाई देता है, वह 'सत्' नहीं इसप्रकारका ज्ञान तभी हो सकता है, जब इसकी अनित्यताका निश्चित ज्ञान होजावे। और इस प्रकारका निश्चित ज्ञान जब होता है; तभी ब्रह्मकी प्राप्ति होजाती है॥ ८२ ॥ फिर उस ब्रह्मप्राप्तिसे सर्वात्मक ब्रह्मस्वरूपाकार होचुके हुए जो प्रशस्तकर्म उनके साम्यसे एकरूप ही जब देखाजाता है, तब सब ब्रह्मरूप ही दीखता है॥ ८३ ॥ एवंच, ॐकार तथा तत्कारसे जो कर्म ब्रह्माकार होजाता है, उसको पक्व करता हुआ एकदम 'सद्' रूपताको वह प्राप्त होजावे, ॥ ८४ ॥ यही इस सच्छब्दका अन्तस्थ विनियोग रहता है। हे पार्थ! तुम्हें भी इसपर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णने ही कहदिया है, इसमें मेरे पल्लवका कुछ नहीं॥ ८५ ॥ कारण, यदि इसप्रकार मैंने ही कहा, ऐसा मैं कहूँ तो यह दोष प्रादुर्भूत होगा कि, श्रीकृष्णके विषे द्वैतभाव दिखाया, अतः यह प्रवचन मेरा नहीं, किन्तु भगवान् श्रीकृष्णका है, यही निश्चित समझना चाहिये॥ ८६ ॥ भगवान् कहते हैं, यह 'सत्' शब्द और भी एक प्रकारसे सात्त्विक कर्ममें उपकारक होता है, उसका भी वर्णन करताहूँ तुम श्रवण करो॥ ८७ ॥ सत्कर्म जिस तिसके अधिकारानुसार उत्तमप्रकारसे चल रहे हों, परन्तु यदि किसी कारणवश उनमें किसी अंगकी न्यूनता हो, ॥ ८८ ॥ तो जैसे किसी एक अवयवकी न्यूनता या कोई व्यंग होनेपर संपूर्ण शरीर ठीकरीतिसे नहीं चल सकता, किंवा जिसका एक चक्र निकल गया हो उस रथकी गति जैसी कुंठित हो जाती है, ॥ ८९ ॥ उसी प्रकार किसी एक गुणकी न्यूनता होनेपर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सत्कर्म भी असद्रूपताको प्राप्त होजाता है ॥ ३९० ॥ ऐसे अवसरमें ॐकार और तत्कारकी सहायतार्थ जब 'सत्' कार आजाता है, तब उसकी प्राप्तिसे ही युक्त हुआ वह कर्म पूर्णताको प्राप्त होजाता है अर्थात् यह सच्छब्द ही उसकी पूर्ति करनेमें समर्थ होजाता है ॥ ९१ ॥ और यह सच्छब्द असत्-पनेको दूर करता हुआ अपने सत्त्व-सामर्थ्यसे उस 'असत्' को उत्तम-प्रकारकी सद्भावस्थितिप्रत पहुँचा देता है ॥ ९२ ॥ दिव्य औषधि जैसी रोगग्रस्तको रोगसे मुक्त करती है या व्यंगांगवालेको निर्व्यंगशरीर बनाती है, वैसे ही यह 'सत्' शब्द न्यूनाङ्गकर्मकी पूर्तिमें सहायक होजाता है ॥९३॥ अथवा किसी समय प्रमाद ( भूल ) से कर्म अपनी मर्यादाका उल्लंघन करता हुआ यदि निषिद्धमार्गमें जा पड़े, ॥ ९४ ॥ कारण ये बातें संभवनीय ही होती हैं, कि चलनेवाला ही मार्ग भूलजाता है, परीक्षक ( पारखी ) ही भ्रममें पडता है । इसप्रकार व्यवहारमें प्रमादके कारण कौन कौनसी घटनायें नहीं हो सकतीं ? ॥ ९५ ॥ इसकारण, कर्म करते समय जब कभी अविचा-रसे इसप्रकार कर्मकी मर्यादाका उल्लंघन हो, वह कर्म दुष्कर्मके नामको प्राप्त होजानेके पंथमें पहुँचता है, ॥ ९६ ॥ तो, ऐसे समयमें हे प्राज्ञ पार्थ ! ॐकार तथा तत्कार इन दोनोंकी अपेक्षा इस 'तत्' शब्दका विनियोग कर-नेसे ही उस कर्मको निर्दोषत्व या साधुता प्राप्त होजाती है ॥ ९७ ॥ जैसे लोहा पारससे विसजाता हो या छोटे नालेको जैसे गंगाका समागम हो, अथवा मृतमनुष्यको जैसे अकस्मात् अमृतवृष्टिकी प्राप्तिका योग आजाय, ॥ ९८ ॥ तद्वत्, हे वीरश्रेष्ठ पार्थ ! सदोष कर्मको उसके दोषसे मुक्त करनेमें यह 'सत्' शब्दका प्रयोग ही उपकारक होजाता है । हे पार्थ ! इस नामका इतना बडा महत्त्व है ॥ ९९ ॥ अब इस स्पष्टीकरणके रहस्यको ठीक तरहसे समझकर, जब तुम इस नामका अन्तःकरणमें विचार करोगे, तब तुम्हें निश्चित प्रतीत होगा कि, यह केवल परब्रह्म ही है ॥ ४०० ॥ देखो पार्थ ! ये "ॐ तत् सत्" अक्षर मुमुक्षु-जनोंको वहां लेजानेमें समर्थ हो जाते हैं, जहांसे यह दृश्यमान नामरूपात्मक जगत् प्रकाशित होता रहता है ॥ १ ॥ वह स्थान तो अपरिच्छिन्न है, अखंड है, शुद्ध है, परब्रह्म ही है और उसीका अन्तर्गत सामर्थ्य दर्शक यह ॐ तत्सत् व्यञ्जक नाम है ॥ २ ॥ परन्तु जैसे आकाशके लिये आकाश ही आश्रय रहता है, तद्वत् इस नामका आश्रय भी वही नाम रहित परब्रह्म ही रहता है, जो उस नामसे अभेदवाला ही होता है ॥ ३ ॥ गगनमें उदित हुआ सूर्य ही जैसे अपने ( सूर्य ) को प्रकाशित करता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है, उसी प्रकार यह नाम अपने ब्रह्मस्वरूपको स्वयं ही प्रकट करता है ॥ ४ ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

अतः यह नाम कोई एक तीन अक्षरोंका सादा शब्द है ऐसा नहीं समझना, किन्तु यह प्रत्यक्ष ब्रह्म ही है, ऐसा समझकर जो जो कर्म किया जाय, ॥ ५ ॥ फिर वह चाहे यजन हो या दान अथवा गहन तप हो, और वे यथासांग पूर्ण होगये हों या कुछ न्यूनता होनेसे अपूर्ण रहगये हों, ॥ ६ ॥ परन्तु पारसकी कसौटीपर जैसे शुद्ध सुवर्ण और हीन सुवर्ण इस प्रकार भेद नहीं होता, तद्वत् वे सब कर्म ब्रह्मार्पण करनेपर ब्रह्मरूप ही होजाते हैं ॥ ७ ॥ एकवार समुद्रको मिलजानेपर जैसी नदियें पृथक् पृथक् नहीं की जा सकतीं, उसी प्रकार ब्रह्ममें समर्पित किये हुए कर्म ब्रह्मरूप होजानेसे फिर वे पूरे या अधूरे हैं, इस प्रकारका भेद शेष ही नहीं रहजाता ॥ ८ ॥ इस प्रकार हे ज्ञानी पार्थ ! ब्रह्म-नामके सामर्थ्यका सोपपत्तिक वर्णन तुम्हें निवेदन किया ॥ ९ ॥ और हे सुज्ञ अर्जुन ! इस प्रकार हम तुम्हें एक-एक अक्षरका भिन्न भिन्न विनियोग भी कैसा किया जाता है, यह बात भी उत्तम रीतिसे समझा दे चुके हैं ॥ ४१० ॥ हे राजश्रेष्ठ ! अब तुम इस ब्रह्म नामका महत्त्व कितना श्रेष्ठ है यह रहस्य पूर्ण रीतिसे समझ गये होंगे ॥ ११ ॥ अतः आजसे इसी नामकी श्रद्धाका तुम्हारे अन्तःकरणमें सदैव विस्तार होता रहे, यही ध्यानमें रखो । कारण, इस नामका चित्तमें उदय होनेपर, फिर जन्म-बंधका कारण ही शेष नहीं रह सकता ॥ १२ ॥ जिस कर्ममें इस नामका उत्तम रीतिसे विनियोग किया जायगा, वह कर्म उस विनियोगके कारण सांग वेदके अनुष्ठानके बराबरका ही होगा ॥ १३ ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

परन्तु, इसके विपरीत अर्थात् कहे हुए मार्गको छोंड, श्रद्धाका आश्रय न रखकर दुराग्रहकी प्रौढी बढाते हुए, ॥ १४ ॥ यदि करोडों अश्वमेध किये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जाँय, रत्नोंसे भरी हुई पृथ्वीका दान कर दिया जाय, सहस्रों वर्षतक एक अँगूठेपर खडे रहकर तपाचरण किया जाय, ॥ १५ ॥ तालाव, जलाशयादि चाहे समुद्रके वराबरीके भी बडे बनादिये जाँय, परन्तु बहुत क्या कहें ? ये सब कार्य वृथा ही होंगे ! ॥ १६ ॥ जैसे कि पत्थरपर होनेवाली वर्षा किंवा राखमें दी हुई आहुतियें, अथवा छायाको दिया गया हुआ आलिंगन, ॥१७॥ किंवा हे पार्थ ! आकाशको मारी हुई थप्पड ये बातें जैसी केवल वृथाही हैं, उसी प्रकार वह कर्म-समारंभ भी वृथा ही होजाता है ॥१८॥ और कोल्हूमें पत्थरके कंकर डालकरके कितना भी घुमाया जाय परन्तु उसमेंसे जैसे न तैल मिलता है या न खली भी मिलती है, उसी प्रकार ऐसे कर्मसमारम्भोंसे लाभ तो कुछ भी नहीं होता, किन्तु दरिद्रताही अंगमें आ भिडती है ॥ १९ ॥ पल्लव ( गांठ ) में खपरी बाँधकर अपने या पराये किसी भी देशमें जानेपर भी जैसे उसका कुछ भी दाम न मिलनेसे वह भूँखे मारनेका ही प्रसंग लाती है, ॥ ४२० ॥ वही प्रकार पूर्वोक्त इस तरहके कर्माचरणसे प्राप्त होता है । अर्थात् जहां ऐहिक भोग नहीं प्राप्त होते वहां पारलौकिक सुखोपभोगकी वार्ता-का नाम ही कैसे ? ॥ २१ ॥ अतः ब्रह्मनामाविषयक श्रद्धाको छोड, जो कुछ भी कर्म किया जाय, वह केवल इह-लोक वा परलोक दोनों जगहके संबंधके लिये केवल वृथा श्रम करनेवालाही कहावेगा ॥ २२ ॥ अस्तु एवं पापरूपी हाथीके संहारक सिंह, त्रितापरूपी अन्धकारको उडा देनेवाले सूर्य और सकल वीरोंमें श्रेष्ठ ऐसे, लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण वे इस प्रकार अर्जुनके प्रति निरूपण करते भये ॥ २३ ॥ तब उस समय जैसे चन्द्रमा चांदनीसे ढँक जाता है, तद्वत् वह अर्जुन अपार आत्मानंदमें निमग्न होगया ॥ २४ ॥ यह भी एक आश्चर्यकी बात है, कि संग्राम भी एक व्यापारही है, और जहां वह व्यापारी बाणोंके नोकोंके तौलनेके माप बनाता हुआ शरीरके माँस और लोहूसे उन्हें भर भरकर जीवनको ही तौलता रहता है ॥२५॥ फिर ऐसे भयं-कर प्रसंगमें स्वानन्दका साम्राज्य कैसे भोगा जा सकता है ? परन्तु पार्थको वह प्राप्त भया, अतः अर्जुनके अतिरिक्त इस प्रकारका भाग्योदय इस संसारमें अन्यत्र कहीं भी किसीके भाग्यमें देखा नहीं जा सकता ॥ २६ ॥ तब आनं-दसे प्रफुल्लित हुआ संजय धृतराष्ट्रसे बोला—हे कौरवराज ! यद्यपि शत्रु है, तथापि उस ( अर्जुन ) के सद्गुणोंको देखनेपर अन्तःकरण प्रेमादरसे उछ-लता है और हमें जो आज आनन्दातिशयका भांडार प्राप्त हो रहा है, उस सुखकी प्राप्तिमें वह ( अर्जुन ) सुखोपदेशक हमारा गुरु ही हो रहा है ॥२७॥ अजी ! अर्जुन यदि ऐसी बातें न निकालता या कोई प्रश्न भी न पूछता, तो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने अन्तःस्थ रहस्यको क्यों प्रकट कर देते ? और हमें भी परमार्थ दर्शनका लाभ कैसे प्राप्त होजाता ? ॥ २८ ॥ हम अज्ञानरूपी अन्धकारमें पडे हुए जन्मकी पीडा काटते रहे थे कि, इतनेमें उसने हमें आत्मज्ञानके प्रकाशरूपी मन्दिरमें ला बैठाया ॥ २९ ॥ ऐसा महान् उपकार आज तुम्हारे और हमारे ऊपर कृपा करके उसने ही किया है, अतः गुरुत्वकी भावनासे आज मुझे वह ( अर्जुन ) मेरे गुरु श्रीव्यासजीका सगा भाईसा ही प्रतीत हो रहा है ॥ ४३० ॥ इसप्रकार आनन्दके जोशमें आकर संजय बोल रहा था, परन्तु उसके मनमें यह बात आई कि, यदि इसप्रकार अर्जुनकी और स्तुति करता रहूँ तो वह राजाके अन्तःकरणको काँटा जैसी चुभ जायगी, अतः उसे यहां ही समाप्त कर देना चाहिये अर्थात् कुछ भी न बोलना ही योग्य है ॥ ३१ ॥ ऐसा शोच विचार कर, उसने वह बडप्पन करनेका बंद किया । पश्चात् अर्जुनने श्रीकृष्णसे जो दूसरी बातका प्रश्न किया था संजयने उसीका उपक्रम करना आरंभ किया ॥ ३२ ॥ श्रीनिवृत्तिनाथ–शिष्य ज्ञानदेवका कथन है कि, जैसा संजयने किया मैं भी वैसा ही करना चाहता हूँ, आपलोग अपना अवधान सँभालते हुए श्रवण करते रहना, यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४३३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकायाः
हिन्दीभाषानुवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

# श्री ज्ञानेश्वरी ।

## अष्टादशोऽध्यायः १८.

हे निर्मल देव ! हे निज भक्तोंके सकल मंगलोंके मंगलकारक ! हे जन्म-जरारूपी सजल मेघमंडलोंके नाश करनेवाले प्रभंजन ! आपका जयजयकार हो ॥ १ ॥ हे सर्वसामर्थ्य-सम्पन्न बलाढ्य देव ! हे सकल पापसमुदायके नाशक ! हे निगमागम ( वेदशास्त्र ) रूपी वृक्षके फल तथा उनके फलोंको देनेवाले देव ! आपका जयजयकार हो ॥ २ ॥ हे स्वयंपूर्ण देव ! हे विषय-विरक्त पुरुषोंके परम प्रेमी ! हे कृतांत ( काल ) के सामर्थ्यको कुतूहलसेही नाश करनेवाले और संपूर्ण कलाओंके पारगामी देव ! आपका जयजयकार हो ॥ ३ ॥ हे निश्चल देव ! हे भक्तोंके चंचलचित्तकी चंचलताके प्राशनसे तुंदिल-उदर ! हे विश्वको प्रकाशित करके उसीमें निरंतर क्रीडा करनेमें प्रेमाभिरुचिसम्पन्न देव ! आपका जयजयकार हो ॥ ४ ॥ हे निष्कल देव ! आप शान्त आनन्दको स्फुरण देनेवाले हो, आप संपूर्ण दोषों ( पापों ) के निरसन करनेवाले हो, हे विश्वके मूलकारण देव ! आपका जयजयकार हो ॥ ५ ॥ हे स्वयंप्रकाश देव ! आप इस जगद्रूपी मेघोंके लिये आश्रयदाता आकाश हो और यह जगत् उत्पन्न होकर जिसपर स्थिर रहता है, उसके आप आधार-स्तम्भ हो तथा उत्पन्न हुए इस विश्वके संहारक भी आपही हो, ऐसे आप देवका जयजयकार हो ॥ ६ ॥ हे परमपवित्र देव ! हे सर्वोपाधिरहित ! आप अज्ञानरूपी वगीचेका नाश करनेवाले हाथी हो, तथा शम-दमादि साधनों द्वारा मदनके मदको चूर्ण करनेवाले हो, आप दयाके सागर हो, हे देव ! आपका जयजयकार हो ॥ ७ ॥ हे देवैकदेव ! हे एकरूप ! आप कामरूपी भयंकर सर्पके गर्व हरण करनेवाले हो और भक्तोंके प्रेमरूपी मंदिरोंको प्रकाशित करनेवाले दीपक तथा तापहर्ता हो, आपका जयजयकार हो ॥ ८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


हे अद्वितीय देव ! आप केवल पूर्णशान्तिमय पुरुषपर ही अपना प्रेम करने-वाले हो, आप भक्ताधीन हो, तथा भजनीय अर्थात् भजन करने योग्य आपही हो, परन्तु मायाके लिये आपका स्वरूप अगम्य है, आपका जयजयकार हो ॥ ९ ॥ हे श्रीगुरुरूपी कल्पवृक्ष ! जिसकी कल्पना भी की नहीं जासकती इसप्रकारका अकल्पित फल देनेवाले आप ही हो, तथा आत्मज्ञानरूपी वृक्षके बीज उगनेपर, उसे अंकुर उत्पन्न होनेवाली भूमि आप हो, आपका मैं जयजयकार करता हूँ ॥१०॥ हे निर्विशेष ! अर्थात् जिसका विशिष्ट लक्षण वाचासे या मनसे भी जाना नहीं जाता, इस प्रकारके आपके अनेक भाषाभेदोंसे अलग-अलग स्तुति स्तोत्र कैसे और कहांतक करूं ? ॥ ११ ॥ आपका विशेष-रूप वर्णन करनेकी इच्छासे मैं जिन जिन विशेषणोंका प्रयोग करता हूँ, वे आपके यथार्थ स्वरूपका वर्णन करनेमें असमर्थ होते हैं, अतः अनेक प्रकारोंसे वर्णन करनेमें भी मैं मनमें लज्जित हो जाता हूँ ॥ १२ ॥ परन्तु, सागर भी अपनी मर्यादाका उल्लंघन करना नहीं जानता, जबतक कि पूर्ण चंद्रमा उसके सामने उदयोन्मुख नहीं होगया हो, ॥ १३ ॥ देखिये, सोमकान्त मणि जो अपने अंगसे पसीजता है, वह क्या उस जलसे चंद्रमाको अर्घ्यप्रदान करनेके लिये थोडे है ? किन्तु चंद्रमा ही उससे वह पसी-जनेका कार्य करा लेता है, ॥ १४ ॥ वसंत ऋतुका आगमन होते ही प्रायः संपूर्ण वृक्षोंमें अकस्मात् इतने अंकुर कैसे निकलते हैं इस बातको वे वृक्ष भी नहीं जानते, ॥ १५ ॥ सूर्य किरणका लाभ होते ही पद्मिनी जैसी निःसंकोच प्रफुल्लित हो जाती है, किंवा जलका संग होते ही जैसे नमकका देहभान नष्ट हो जाता है, ॥ १६ ॥ उसीप्रकार जब मुझे आप गुरु महाराजका स्मरण होता है तब मैं स्वयं अपनेको भूल जाता हूँ। फिर पेटभरनेपर अफ-रासे जैसे डकारें देता है ॥ १७ ॥ हे श्रीकृष्ण ! आपने भी मेरी स्थिति वैसी ही करदी है, मेरी अहंताको आपने देशान्तरोंमें भगाकर वाणीको आपकी स्तुतिकी धुन लगा दी है ॥ १८ ॥ ऐसा होनेपर भी स्मरण रखकर आपका वर्णन करूं तो आपके गुण तथा अगुणोंकी छान करनी पडेगी, ॥ १९ ॥ परंतु आप एकरसरूपी मूर्ति हैं आपके गुण तथा अगुणोंके विभाग किसतरह हो संभवित हो सकते हैं। मोतीको फोडकर खंड करना भला या अखण्ड रखना भला ? ॥२०॥ इसीतरह आपको माबापकी कल्पना कर स्तुति करना योग्य नहीं है, क्योंकि उस स्तुतिमें पुत्रादिरूपी उपाधिदोष प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ 'मैं आपका सेवक और आप मेरे स्वामी' ऐसा उपाधियुक्त दूषित वर्णन कैसे करूं ? ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यदि आपही सबकुछ सर्वव्यापी आत्मारूपी हैं, ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कहें तो, आपका अन्तर्यामित्व बाहर निकलासा दिखाई देगा ॥ २३ ॥ अतः हे भगवन् ! वस्तुतः जिस पदार्थका अवलम्बन कर आपकी स्तुति करें, ऐसी कोई वस्तु दीख नहीं पडती, आप अपने शरीरमें मौनके सिवाय कोई आभरण भी नहीं धारण करते ॥ २४ ॥ आपकी स्तुति याने मौन रहना, आपकी पूजा-अर्चा याने कुछ नहीं करना, आपके पास रहना याने विषयमें लीन होकर न रहना ॥ २५ ॥ जैसे कोई मोहके वश ( भ्रान्त ) हो उसका स्तुति करना ( बहोतसा बकवक करना ) उसतरह है, तथापि आप परमदयालु होनेसे माताके समान क्षमा करें ॥ २६ ॥ आप इस मन्दगति वाणीको गीतार्थरूपी मोतियोंकी अंगूठीसे सज्जित करिये जिससे सज्जनोंकी सभामें अधिकारिणी हो ॥ २७ ॥ इस विषयपर श्रीनिवृत्तिनाथने कहा कि यह बार बार कहनेकी जरूरत नहीं हैं, क्या पारसपर लोहेको बारबार घीसना ही पडता हैं ? ॥ २८ ॥ तब ज्ञानदेवजीने कहा; यह मेरेपर आपका प्रसाद हुआ, अब महाराज ग्रन्थकी ओर अवधान देवें ॥ २९ ॥ हे गुरो ! रत्नसे मढा हुआ गीतारूपी मंदिरका, अर्थरूपी चिन्तामणिका बनाया कलश है, जो सम्पूर्ण गीतातत्त्वका बोधक है ॥ ३० ॥ व्यवहारमें ऐसी रीति भी है, जो दूरसे मंदिरका कलश देख पडनेपर देवताके दर्शनतुल्य फल मानते हैं ॥ ३१ ॥ वही विषय इस अध्यायका है, इस एक अध्यायका उत्तम रीतिसे अवलोकन करनेपर सम्पूर्ण गीताशास्त्रका मर्म ज्ञात होता है ॥ ३२ ॥ इसी वास्ते मैं कहता हूँ कि इस अठारहवें अध्यायको बादरायण व्यासजीने गीतामन्दिरपर कलश चढाया है ॥ ३३ ॥ जैसे कलशके बाद फिर कोई बांधनेका काम बाकी नहीं रहता, उसी तरह यह बात गीताकी समाप्ति सूचक अध्यायसे मालूम होती है ॥ ३४ ॥ व्यासजी तो स्वभावतः एक बडे चतुर सूत्रकार थे, वेदरूपी रत्नोंके पहाडपर मध्यभागमें उपनिषदर्थरूपी पाषाणमयी पृथ्वी खोदकर सीधी की ॥ ३५ ॥ खोदनेमें जो धर्म, अर्थ तथा कामरूपी बहोतसी मिट्टी कंकड आदि निकले, उनका चारोतरफ महाभारतरूपी बडा चहारदीवार बनादिया ॥ ३६ ॥ बाद इसके बीचमें कृष्णार्जुन संवादरूपी कौशल्यसे आत्मज्ञानरूपी निर्मल और अच्छे पत्थरोंका समुदाय रचदिया ॥ ३७ ॥ बाद समाधानरूपी डोरियोंको तानकर सकल शास्त्रोंकी सहायतासे मुक्तिके स्वरूपको सिद्ध किया ॥ ३८ ॥ इसतरह मन्दिरको बनाते बनाते १५ अध्यायतक उसके १५ खन तैयार होगये ॥ ३९ ॥ इसके बाद उस मन्दिरका सोलहवाँ अध्याय मानों घण्टारूप है और सत्रहवाँ अध्याय कलश रखनेका स्थान है ॥ ४० ॥ बाद उसपर मानों अठारहवाँ अध्याय कलश चढा दिया है और उस कल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


शपर गीता नामकी पताका श्रीव्यासजीने लगा दी है ॥ ४१ ॥ अतः इस अध्यायसे मालूम होता है कि पहलेके अध्याय एकपर एक चढते हुए खण्डके आकारमें हैं, इसकी पूर्णता इसीसे होती है ॥ ४२ ॥ जैसे मन्दिरपर कलश तयार होजानेपर कोई बांधनेका काम नहीं बचता यह कलशसें सभीको विदित ही है, उसीतरह अठारहवाँ अध्याय आरंभसें अन्ततक सम्पूर्ण गीताशास्त्रको प्रसिद्ध करता है ॥ ४३ ॥ इसतरह श्रीव्यास-जीने इस गीतामन्दिरको पूर्णतया बांधकर अनेकरीतिसे प्राणियोंका पालन किया है ॥ ४४ ॥ कोई इस मन्दिरको पाठकरनेके निमित्तसे बाहरसे ही परिक्रमा करते हैं। कोई इसको श्रवण करनेकी इच्छासे इसकी छायाका सेवन करते हैं ॥ ४५ ॥ दूसरे कई एक एकाग्रवृत्तिरूपी पैसा सुपारी लेकर गीताके अर्थज्ञानरूपी गर्भागारमें सीधे प्रवेश करते हैं ॥ ४६ ॥ ये तीसरे प्रकारके जीव तत्काल आत्मज्ञानकी सहायतासे श्रीहरि भगवान्‌से मिल जाते हैं। तथापि इस मोक्षमन्दिरमें प्रवेश करनेकी योग्यता सब अधिकारियोंको बराबर ही है ॥ ४७ ॥ जैसे बडे श्रीमानोंके घरमें ऊपर नीचेकी पंक्तिमें बैठ-कर भोजन करनेवालोंको उसी पकान्नका समानभावसे परिवेषण किया जाता है, वैसेही गीताका पाठ करनेवाले, श्रवण करनेवाले और अर्थग्रहण करनेवाले इन सभीको मोक्षका ही लाभ होता है ॥ ४८ ॥ इसतरह यह गीता वैष्णव-भक्तोंका मन्दिर है, और अठारहवां अध्याय यह उसका दैदीप्यमान कलश है, इसतरह मैंने सब मर्म ध्यानमें लेकर कहा है ॥ ४९ ॥ अब सतरहवें अध्यायके अनन्तर अठारहवें अध्यायका प्रसंग कैसे प्राप्त हुआ, सम्बन्ध कैसा है ? इस विषयकी संगतिको मैं स्वबुद्धिके अनुसार स्पष्टकरके दिखाता हूँ ॥ ५० ॥ जैसे गंगा और यमुनाजी जलत्वरूपसे एक होनेपर भी प्रवाहके सम्बंधसे अलग ही दीखते हैं ॥ ५१ ॥ अर्धनारीनटेश्वरकी मूर्तिमें स्त्रीरूप, पुरुषरूपकी हानि न होकर दोनोंको संयुक्तकर, एक ही रूप बनाया दीखता है ॥ ५२ ॥ अथवा दरादिन चन्द्रकला चन्द्रबिम्बमें बढती हुई विस्तृत होती है, पर चन्द्रमा वैसा ही रहता है उस चन्द्रबिंबपर चन्द्रकलाके अलग २ तह नहीं देख पडते ॥ ५३ ॥ उसी तरह श्लोकमें चार चरण होनेसे अलग अलग श्लोक भासमान होते हैं, और अध्यायोंके अनुक्रमाङ्कके कारण अध्याय अलग २ दीखते हैं ॥ ५४ ॥ परन्तु ग्रन्थमें प्रतिपादित विषयोंका सिद्धान्त जो प्रगट किया है वह एकरूप ही है, भिन्न २ रूपसे नहीं है, जैसे रत्न, मणि अलग होते हैं, पर डोरी एक ही सबको धारण करती है ॥ ५५ ॥ अथवा जैसे अनेक मोतियोंको मिलानेसे एकही हार तैयार होता है, और उसकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शोभा देनेवाली दीप्तिमयी सुन्दरता एकही दीख पडती है ॥ ५६ ॥ फूलोंका हार बनानेके समय फूलोंकी संख्या अधिक मालूम होने पर भी उनके सुगन्धकी गणनाके समय एक अंगुलीके दबानेके बाद दूसरी अंगुली दबानेका मोका नहीं आता। उसीतरह अध्याय और श्लोकोंका प्रकार समझना ॥ ५७ ॥ गीताके श्लोक सातसौ, और अध्याय अठारह इसतरह संख्यामें भेद है, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णका तत्त्वनिरूपण एकही रूप है अलग नहीं ॥ ५८ ॥ मैंने भी उस मार्गका अनुसन्धान न छोडकर ग्रंथार्थ स्पष्ट किया है। इस वक्त भी उसी मार्गका अवलम्बन कर कथन करता हूँ, उसको सुनो ॥ ५९ ॥ सत्रहवें अध्यायके समाप्ति प्रसंगमें अंतिम श्लोकमें भगवान्ने कहा ॥ ६० ॥ कि 'ॐतत्सत्' इस ब्रह्मनामके विषयमें श्रद्धा न रखकर जो जो कर्म किये जाते हैं, वे सब दुष्ट असत् होते हैं ॥ ६१ ॥ श्रीकृष्ण भगवानका ऐसा वचन सुन अर्जुनके मनमें ऐसा भाव आया कि इस वचनसे कर्मनिष्ठ लोगोंको दोष दिया, ऐसा दीखता है ॥ ६२ ॥ वे कर्मकर्ता अज्ञानान्ध होनेके कारण प्रत्यक्ष ईश्वर स्वरूपको नहीं पहिचानते तो ब्रह्मनामकी श्रेष्ठताको कैसे समझ सकते हैं ॥ ६३ ॥ रज और तम इन दोनोंका जबतक नाश न हुआ तबतक श्रद्धा स्वल्प ही रहती है, तब वह ब्रह्मनाममें किसतरह संलग्न हो सकती है ? ॥ ६४ ॥ अतः जैसे शस्त्रको आलिङ्गन करना और रस्सीपर दौडना, सर्पिणीको खेलाना आदि ये सब जीवघातक होते हैं ॥ ६५ ॥ इसीतरह ये कर्म वहोत दुष्ट हैं, इनसे ही अनेक जन्ममरणके समान दुर्धर संकट प्राप्त होते हैं ॥ ६६ ॥ दैवयोगसे कर्म सांगोपांग पूर्ण होनेके बाद ज्ञानप्राप्तिकी योग्यता हो सकती है; नहीं तो उससे दुर्गति ही प्राप्त होती है ॥ ६७ ॥ जब कर्म यथाविधि पूर्ण होनेमें इतनी अडचनें हैं, तब कर्मठोंको मोक्षकी पालीका अवसर कब आसकता है ॥ ६८ ॥ अतः कर्म आचरणरूपी बन्धन छूट जाय, इसवास्ते सब कर्मोंका त्याग करना चाहिये और पूर्णभावसे संन्यासका अंगीकार करना अत्यन्त योग्य है ॥ ६९ ॥ जिससे कर्मकी बाधाओंकी भयकी वार्ता सुननेमें भी नहीं आती, जिनके द्वारा आत्मज्ञान सुखसे हो जाता है ॥ ७० ॥ जो ज्ञानके आवाहन करनेके मन्त्र हैं, जो ज्ञानरूपी धान्य पकनेके अच्छे जमीनके बांद हैं अथवा ज्ञानको खींचकर लानेवाले रस्सीके तंतु हैं ॥ ७१ ॥ ऐसे संन्यास और त्याग ये दो हैं, जिनका अवलम्ब करनेसे संसारसे मुक्त होता है, अतः संन्यास और त्याग इन दोनोंके स्वरूपको स्पष्टतया निरूपण करनेमें भगवानको प्रश्न करना यह बात अच्छी है ॥ ७२ ॥ ऐसा दिलमें सोचकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्जुनने त्याग और संन्यास इनकी व्यवस्थाका ज्ञान हो इसलिये प्रश्न किया ॥ ७३ ॥ इसके बाद श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति जो उत्तररूपमें वचन कहे हैं वे ही इस अठारहवें अध्यायमें हैं ॥ ७४ ॥ इसतरह परस्पर संगति दिखलानेके लिये जन्यजनकभाव सम्बन्धसे एक अध्यायसे दूसरे अध्यायकी उत्पत्ति हुई है। अब अर्जुनने क्या प्रश्न किया उसको सुनो ॥ ७५ ॥ भगवानके अंतिम वचन अर्जुनने ज्ञानसे ही सुने ॥ ७६ ॥ वस्तुतः देखाजाय तो अर्जुनको तत्त्वसिद्धान्तोंका निश्चित ज्ञान हुआ था, परन्तु भगवान्का भाषण बंद हुआ यह देख उसके मनको सहन नहीं हुआ ॥ ७७ ॥ बछडा गाय ( माता ) का दूध पीकर पूर्ण तृप्त हो जाता है, तथापि माता दूर न जाय, यही चाहता रहता है; सच्ची एकनिष्ठ ( अनन्य ) प्रेमकी रीति ऐसी ही होती है ॥ ७८ ॥ प्रेमी पुरुषको कारणके विना भी उसका प्रेम जो वस्तु देखी है उसको बार-बार देखें यह चाहता है, और प्रिय वस्तुका उपभोग करते प्रेम उसमें ही अत्यन्त व्यसनी हो जाता है ॥ ७९ ॥ प्रेमकी वास्तविक स्थिति ऐसी है, अर्जुन तो इसतरह प्रेमकी केवल मूर्ति ही रहे, अतः उसको भगवानके मौन भावसे बहुत कष्ट होने लगा ॥ ८० ॥ और अयनेमें जैसे अपना रूपही देखना है, उसीतरह अर्जुन श्रीकृष्ण-संवाद निमित्तसे जो वस्तु व्यवहारमें नहीं मिलती, उस अप्राप्य ( परब्रह्म ) वस्तुका ही अनुभव करता था ॥ ८१ ॥ अतः वह संभाषण रुकजानेसे अद्भुत सुखानुभव रुकेगा ही, जो अद्भुत सुखानन्द ले चुका है उसको यह कैसे सहन हो सकता है ॥ ८२ ॥ इसवास्ते अर्जुनने त्याग और संन्यास इन विषयोंके प्रश्नके बहाने श्रीकृष्ण भगवानसे पुनः गीताके सिद्धान्त विषयोंका स्पष्टीकरण करानेका प्रसंग लाया ॥८३॥ यह अठारहवाँ अध्याय नहीं, यह एकाध्यायी गीता ही है ! जब वत्स ही गायका दोहन करने लगे,तब माताको पन्हानेमें क्या देर लगेगी ? ॥८४॥ वैसे ही गीताकी समाप्तिका प्रसंग देखकर अर्जुनने फिर उलट घुमा दी अर्थात् भगवानसे कहवाई, और व्यवहारमें भी ऐसा है कि, मालिक सेवकके शब्दको सुनकर क्या उसतरह वर्ताव नहीं करता है ? ॥ ८५ ॥ परन्तु यह अब बस है अर्जुन प्रश्न करते हैं, हे प्रभो, विश्वेश ! मेरी एक विनती है आप सुनिये ॥ ८६ ॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

प्रभो ! संन्यास और त्याग इन दोनों शब्दोंमेंसे एक ही अर्थ निकलता है। जैसे 'संघात' और 'संघ' इन दो शब्दोंसे संघात (समुदाय) ही अर्थ आता है ॥८७॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उसीतरह त्याग और संन्यास इन दोनोंसे त्याग ही दिखाया जाता है। ऐसा ही हमारे समझमें आता है ॥ ८८ ॥ परन्तु इन दो शब्दोंमें यदि कोई अर्थकी भिन्नता हो तो, हे भगवन्! आप स्पष्ट कर कहिये, इसपर श्रीमुकुन्दने कहा कि इन दोनों शब्दोंके अर्थमें भिन्नता है ॥ ८९ ॥ तथापि हे अर्जुन! तेरे दिलमें 'त्याग' और 'संन्यास' ये शब्द एकार्थक ही मालूम होते हैं इस विषयमें हमको संशय नहीं दीखता है ॥ ९० ॥ इन दोनों शब्दोंसे त्यागरूप ही अर्थ निकलता है यह बिलकुल सच्चा है, पर इन दोनोंके अर्थमें भिन्नता उत्पन्न होनेका कारण इतना ही है कि जब कर्म सब तरहसे छोड दिया जाय तब उसको संन्यास कहते हैं, और केवल कर्मफलकी इच्छा न करना इसको त्याग कहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ अतः अब किस कर्मके फलका त्याग करना चाहिये और किस कर्मका सर्वथा त्याग करना चाहिये, इसका स्पष्टरूपसे विवरण करता हूँ अच्छी तरहसे ध्यान दो ॥ ९३ ॥ जैसे जङ्गल और पहाडोंमें अनगिन्त पेड अपने आप उत्पन्न होते हैं और बढ़ते हैं, उसतरह धान्यका पौंधा और बगीचोंके पेड अपने आप उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ९४ ॥ बोये विगर घास बहोत जगह उगते हैं, उसतरह खेतमें बगैर जमाये धान नहीं उगते हैं ॥ ९५ ॥ अथवा शरीर यद्यपि अपने आप उत्पन्न होता है तथापि उसके अलङ्कार श्रमसे ही तैयार होते हैं, नदी अपने आप ही होती है, पर कुओंके लिये खुदवानेका परिश्रम करना ही पड़ता है ॥ ९६ ॥ इसीतरह नित्य, नैमित्तिक कर्म, स्वाभाविकसे ही होते हैं परन्तु उनके फलकी आशा न ली हो तो वह कर्म कामिक नहीं होता है, इसवास्ते वे बंधन नहीं करते हैं ॥ ९७ ॥

श्रीभगवानुवाच।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

अश्वमेध इत्यादि जो बड़े बड़े याग किये जाते हैं उन कर्मोंका अनुष्ठान करना याने अनेक कामनाओंके समुदायोंको इकट्ठा करना है ॥ ९८ ॥ बावडी, कुएँ, बगीचे, भूमिदान, गांवदान देना और अनेक प्रकारके व्रतोंका अनुष्ठान करना इत्यादि जो सब सकाम किये गये, इष्टापूर्त कर्म, ये सब बंधक होकर कर्मकर्ताको अपने कर्मानुसार फलोंको अवश्य भुगाते हैं ॥ ९९ ॥ १०० ॥ हे अर्जुन! शरीररूपी गाँवमें आनेपर जैसे जन्म-मृत्युके संस्कार मेट नहीं सकते ॥ १०१ ॥ अथवा भालपट्टमें लिखा हुआ जैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


टाल नहीं सकते, अथवा मनुष्यके चमडीका जन्मसिद्ध कालापन या गोरापन जैसे धोकर नहीं निकाल सकते ॥ २ ॥ वैसे ही सकाम कर्मोंका फल भोगना ही पडता है ! जैसे ऋण दिये बिगर छुटता नहीं, उसी तरह ऐसे कर्मोंका फल भोगनेके लिये धरना देकर बैठता है भोगे बिगर छुटकारा ही नहीं ॥ ३ ॥ अथवा हे अर्जुन ! प्रत्यक्ष कामना न रखनेपर भी अकस्मात् कामिक कर्म हो गया तो वह कर्म घातक होता है, जैसे झूठे युद्धमें भी बाण लगजानेपर जखम होजाती है ॥४॥ अथवा बिना जाने भी मुखमें डाला हुआ गुड जैसे मीठा लगता है, अथवा आगिको राख समझकर हाथसे दबाया जाय तो हाथ अवश्य ही जलेगा ॥ १०५ ॥ वैसे ही काम्य कर्मोंमें बन्धकत्वरूप स्वाभाविक सामर्थ्य है, अतः जिसको मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उसको ऐसा कर्म कौतुकके लिये भी कदापि नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥ इतना ही नहीं, हे अर्जुन ! काम्य कर्मको विषके समान उलटीकर निकाल देवे ॥७॥ ऐसे ही त्यागको 'संन्यास' कहते हैं इसतरह सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णने कहा ! ॥ ८ ॥ अनन्तर यह कहा कि चलते मार्गमें अपने पासका धन त्याग देना, इससे लुटारू, चोर लोगोंसे आनेवाला भय सब दूर हो जाता है, इसीतरह काम्य कर्मको छोडना याने कामनाओंको समूल उखाड देना है ॥ ९ ॥ और चंद्र-सूर्य-ग्रहण पर्वमें जो कर्म किया जाता है, अथवा मातापिताके मृत्यु दिवसमें जो श्राद्धकर्म किया जाता है ॥ ११० ॥ अथवा अतिथि घरमें आनेपर आदर सत्कार आदि जो कर्म किये जाते हैं, वे नैमित्तिककर्म समझने चाहिये ॥ ११ ॥ वर्षाऋतुमें जैसे आकाश रंगबिरंग हो जाता है, अथवा वसन्त ऋतुमें पल्लव फूटनेसे वनकी शोभा बहोत ही बढती है, अथवा यौवनावस्थामें शरीरका विशेष सौन्दर्य प्रकट होता है ॥ १२ ॥ चन्द्रके किरणोंसे जैसे चन्द्रकान्त मणि पसीजती है, अथवा कमल सूर्योदय होते ही खिलते हैं, पूर्वोक्त इन सबोंमें जैसे जो प्राकृतिक गुण होता है कारणविशेषसे वही विस्तारको प्राप्त होता है और कोई दूसरा उत्पन्न नहीं होता ॥ १३ ॥ इसीतरह जो नित्यकर्म है वह किसी निमित्तके समय नियमरूपसे किया जाय तो वह श्रेष्ठ समझा जाता है, इस कारणसे उसे 'नैमित्तिक' ऐसा नाम प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ और जो कर्म प्रतिदिन सबेरे, मध्याह्न और सायंकाल करनेही पडते हैं परंतु जैसे दृष्टि आँखोंसे परिमित रूपमें रहती है, आँखोंसे अधिक स्थानमें नहीं रहती ॥११५॥ चलन न करनेपरभी चलनवलनकी शक्ति जैसे पैरमें स्वाभाविक रहती है, अथवा दीपकके स्वरूपमें जैसे तेज प्राकृतिक ही रहता है ॥ १६ ॥ अथवा बाहरका सुगन्धि द्रव्य न लगानेपर भी जैसे चन्द-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नमें स्वाभाविक ही सुगंध रहता है, उसीतरह जिस कर्मके शरीरमें प्राकृतिक अधिकारका स्वरूप है याने जो किये बिगर छुटकारा ही नहीं है, ॥ १७ ॥ हे अर्जुन ! उसको नित्यकर्म कहते हैं. इसतरह तुमको 'नित्य' और 'नैमित्तिक' इनका लक्षण स्पष्ट करके कहा ॥ १८ ॥ अब ये नित्य और नैमित्तिक कर्म अवश्य करने चाहियें । कईएक इसको निष्फलभी कहते हैं ॥१९॥ परन्तु जैसे भोजन करनेसे यह फल होता है कि आत्मा सन्तुष्ट होती है, और क्षुधा नष्ट होती है, उसीतरह नित्य नैमित्तिक कर्मोंसे सबतरहके फलोंकी प्राप्ति होती है ॥१२०॥ कनिष्ठ सोना अग्निमें डालनेसे जैसे उसमेंका मल नष्ट होकर, अपने सच्चे रूपको पहुँचता है और उसका गुण बढता है उसी प्रकार नित्य, नैमित्तिक कर्मका फल समझना चाहिये ॥२१॥ क्योंकि नित्यनैमित्तिक कर्मोंके आचरणसे पापोंका नाश होता है, बादमें उसका अधिकार बढकर शीघ्र ही सद्गतिका लाभ होता है ॥२२॥ नित्य नैमित्तिक कर्माचरणमें यद्यपि इतने भारी फलका लाभ होता है, तथापि जिसप्रकार मूलनक्षत्रपर पैदाहुए बालकका त्याग करना लिखा है, उसीतरह कर्मजफलोंका भी त्याग करना योग्य है ॥ २३ ॥ वसन्तऋतुके मौसममें आम्रवृक्षकी डालियाँ ज्यों ज्यों बढती हैं, त्यों त्यों आम्र पल्लवित होता है फल तैयार होनेतक, परंतु फल आनेके बाद वसन्त उनको हाथ न लगाकरके त्याग कर चलाजाता है ॥ २४ ॥ उसीतरह कर्मोंकी मर्यादाको न छोडकर नित्य नैमित्तिक कर्माके तरफ ख्याल देना चाहिये, परन्तु बाद उन कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलोंका त्याग वमन किये अन्नके समान करना चाहिये ॥ १२५ ॥ इस कर्म फलके त्यागको 'त्याग' ऐसा कहते हैं, इसप्रकार त्याग और संन्यास इन दोनोंका व्याख्यान तुम्हें हमने सुना दिया ॥ २६ ॥ ऐसा संन्यास जब कियाजाता है तब काम्य कर्म बंधक नहीं होता. निषिद्ध कर्म तो त्यागने लायक होनेसे स्वभावतः ही त्याज्य होता है ॥ २७ ॥ और जो नित्यनैमित्तिक कर्म रहे वे फलत्यागसे नष्ट होजाते हैं, जिसतरह मस्तकको झुकानेसे सारा शरीर अपने आप ही झुकता है ॥ २८ ॥ आखिरमें बीज बोनेके बाद उसका पूर्ण परिपाक होजानेके अनन्तर फसलमें जिसतरह धान्य ही हाथ आता है, उसीतरह सब कर्मोंका नाश होनेपर आत्मज्ञान अपना आप ही जीवका खोज करते उसके पास आजाता है ॥ २९ ॥ इस युक्तिसे जो त्याग और संन्यास इन दोनोंको आचरते हैं, वे आत्मज्ञान प्राप्तिकी योग्यताको पहुँचते हैं ॥ १३० ॥ जो इस युक्तिको अच्छीतरहसे न जानकर अनुमानके द्वारा कर्मत्याग करता है, उसके हाथसे थोडा भी त्याग नहीं होता और अधिक ही फँस जाता है ॥ ३१ ॥ यदि रोगकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चिकित्सा किये बिगर जिस औषधकी योजना की जाती है, उसको लेनेसे वह विषके समान हो जाता है; उलट दृष्टान्तः—क्षुधासे पीडित यदि अन्नका त्याग करे तो क्या उसकी मरनेकी पाली नहीं आयेगी ? ॥ ३२ ॥ अतः जो त्यागने लायक नहीं, उसका त्याग नहीं करना चाहिये और जो त्यागने योग्य है, उसका लोभ नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥ त्यागकी इस सूक्ष्म रीतिको ख्यालमें न लेकर जो त्याग किया जाय तो केवल बोझा ही होता है। अतः सच्चे विरक्त सर्वत्र निषिद्ध कर्मोंका नाश करनेमें ही तत्पर रहते हैं ॥ ३४ ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञ-दान-तपः-कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

कितने लोगोंका फललोभ छुटता नहीं, अतः वे सब कर्मोंको बंधक ऐसा कहते हैं, जैसे कोई एक आदमी स्वयं नंगा नाचता है, पर जगको लडाई करनेवाला कहता है ॥ १३५ ॥ अथवा हे अर्जुन ! जिस जिह्वालम्पट रोगीकी रुचि अपने अधीन नहीं रहती, वह जिसतरह अन्नको दूषण देता है, अथवा जैसे कुष्ठरोगी अपने दोषयुक्त शरीरपर न चिढकर बैठनेवाले मक्खियोंपर क्रोध करता है ॥ ३६ ॥ उसीतरह फलप्राप्तिके लोभसे फँसे हुए साधारण अधिकारी लोग, फलत्याग करनेको समर्थ न होनेके कारण सब कर्म दूषित हैं ऐसा निश्चय करते हैं और 'सब कर्मोंको त्यागना चाहिये' इसतरह फैसला करते हैं ॥ ३७ ॥ कोई दूसरे ऐसा कहते हैं कि यज्ञ यागादि कर्म जरूर करने चाहिये, क्योंकि इनके सिवाय चित्तको शुद्ध करनेवाला दूसरा साधन नहीं है ॥ ३८ ॥ मनको शुद्ध करनेका मार्ग शीघ्र ही हस्तगत करना चाहो तो कर्मरूपी शस्त्रको चलानेमें आलस्य नहीं करना चाहिये ॥ ३९ ॥ सुवर्णको निर्मल करना हो तो जैसे अग्निका ताप सहनेके लिये सिद्ध होना पडता है अथवा अयना साफ करनेके लिये जैसे बहोत राख आदि लगानी पडती है ॥ १४० ॥ अथवा कपडे साफ करनेकी इच्छा हो तो धोबीके घरका शुद्ध करनेका पात्र ( नाँद ) अपवित्र है ऐसा कहकर नहीं चलेगा ॥ ४१ ॥ उसीतरह कर्म कष्टके कारण होते हैं, इसवास्ते उनका तिरस्कार नहीं कर सकते, पकाये बिगर सुन्दर स्वादिष्ट अन्न मिलसकता है क्या ? ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन ! इसतरहसे अनेक वचनोंसे कई लोग कर्माचरण करनेको



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कहते हैं, तब इस मतभेदसे त्यागका विषय संशयित हुआ है ॥४३॥ अतः यह संशय दूर होकर त्यागके संबन्धमें निर्णय किया जाय, ऐसा स्पष्ट विवेचन हम करनेवाले हैं, तो उसतरह ध्यान देकर सुनो ॥ ४४ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! त्याग तीन प्रकारका होता है, अब मैं इन तीन तरहके त्यागोंके पृथक् पृथक् लक्षण कहते हैं ॥ १४५ ॥ त्यागके तीन प्रकार यद्यपि तुम्हें कहचुके, तथापि सबका सारांश ( तात्पर्य ) अभी कहा और जो कहनेका है उसे समझो ॥ ४६ ॥ अतः सर्वज्ञत्व मुझमें है, और मेरी बुद्धिमें जो निःसंदिग्ध निश्चित तत्त्व ग्रहण करने योग्य अतिस्थिरविषय मालूम पडता है, उसे पहले सुनो ॥ ४७ ॥ जिस मुमुक्षुको अपने जन्म-मृत्यु आदिका संबन्ध छुटकर मुक्ति प्राप्तिके विषयमें सावधान रहना हो, उसे हमने कहे त्यागके रहस्यको जानकर उसतरह आचरण रखना चाहिये, ऐसा करनेसे सब सिद्ध हो जायगा ॥ ४८ ॥

यज्ञ-दान-तपः-कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

प्रवासीको जैसे आगे पैर डालनेसे न रुकना चाहिये, उसतरह मनुष्यको यज्ञ, दान, तप इत्यादि आवश्यक कर्मोंका त्याग न करना चाहिये ॥ ४९ ॥ खोई हुई वस्तु जबतक मिलती नहीं, तबतक जैसे उस वस्तुका खोज करना ठीक है, उसे छोडना नहीं चाहिये । अथवा क्षुधा पूर्ण शान्त होनेतक भोजनकी थाली दूर न करनी चाहिये ॥ १५० ॥ अथवा तटको पहुँचनेके पहले नाव न छोडनी चाहिये, फल लगनेके पूर्व केलेको नहीं तोडना चाहिये, रक्खी हुई वस्तुके मिलनेके पहले दीपकको बुझाना नहीं चाहिये ॥ ५१ ॥ उसीतरह आत्मज्ञानके विषयमें जबतक बुद्धिका पूर्ण निश्चय नहीं हुआ, तबतक यज्ञ-दानादि आवश्यक कर्मोंके विषयमें उदासीन होना योग्य नहीं ॥ ५२ ॥ किन्तु अपने अपने अधिकारके अनुसार यज्ञ, दान, तप इत्यादि कर्मोंका अनुष्ठान बहोत चिन्तासे करे ॥ ५३ ॥ पथिक चलते समय बहुत शीघ्रतासे पैर उठावें, तो वह भी उसको जल्दी विश्रान्ति मिलनेका निमित्त होता है, उसीतरह कर्मोंका अत्यन्त आचरण निष्कर्मताका कारण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होता है ॥ ५४ ॥ जैसे जैसे दवा लेनेमें अधिक धाष्टर्य बढावे, वैसे वैसे रोग नष्ट होता जाता है ॥ १५५ ॥ उसीतरह जैसे जैसे यह कर्म शीघ्रतासे चिन्तापूर्वक किये जाते हैं; उस उस तरह रज और तम जडसहित नष्ट होते जाते हैं ॥५६॥ सोनेको एकपर एक ऐसे क्षार वस्तुओंसे अनेक पुट दिये जावें तो उसका मालिन्यादि दोष नष्ट होकर सोना निर्मल होता जाता है ॥ ५७ ॥ उसीतरह श्रद्धापूर्वक जो कर्म किये जायँ, वे रज, तमको नष्टकर शुद्ध सत्त्वके स्थानको दिखाते हैं ॥ ५८ ॥ इसी कारणसे हे धनंजय ! कर्म सत्त्वशुद्धि करनेवाले पवित्र तीर्थोंकी योग्यताको प्राप्त हुए हैं ॥ ५९ ॥ तीर्थसे बाह्य मल जाता है, और कर्म अन्दरके मलको धो डालता है, अतएव सत्कर्मादि कारणसे ही तीर्थोंमें पवित्रता रहती है ॥ १६० ॥ प्यासे हुए निर्जल प्रदेशमें घामकी लूकसे ही जैसे अमृतपान प्रसंग लावे, अथवा जैसे अन्धेकी आंखोंमें सूर्यका तेज प्राप्त होवे ॥६१॥ अथवा नदीमें डूबनेवालोंको बचानेके लिये जैसे नदी ही दौडकर आवे, अथवा मरनेवालेको जैसे मृत्यु ही जीवित रहनेको अधिक आयुष्य देवे ॥६२॥ तैसे हे अर्जुन ! कर्म ही मुमुक्षुओंको कर्मबंधसे छुडाता है. जैसे विधिपूर्वक रसायनके सेवनसे मरनेवालेको विष बचाता है ॥ ६३ ॥ उसीतरह हे अर्जुन ! इन कर्मोंकी ऐसी एक अद्भुत चतुराई है कि कर्मोंको बन्धकत्वका नाश करनेके लिये वेही मुख्य साधन होते हैं ॥ ६४ ॥ अब हे अर्जुन ! जिस युक्तिसे कर्म कर्मको नष्ट करता है, उसको मैं तुझे अच्छीतरहसे स्पष्ट करके दिखाता हूँ ॥ १६५ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

महायज्ञादि कर्म सांगोपांग विधिपूर्वक करते रहनेपर भी कर्तृत्वका अभिमान नहीं होना चाहिये कि, 'मैं कर्मकरनेवाला हूँ' ॥ ६६ ॥ जो दूसरेका पैसा लेकर तीर्थको जाता है उसे 'मैं तीर्थयात्रा करता हूँ' इसतरहके बडप्पनका समाधान जैसे नहीं होता ॥ ६७ ॥ जो किसी बडे ( राजा आदि ) की आज्ञाके जोरपर अकेला ही प्रत्यक्ष राजाको बलात्कारसे पकडता है, वह आज्ञाकारी नौकर 'मैं जीतनेवाला हूँ' ऐसा गर्व नहीं कर सकता ॥ ६८ ॥ अथवा जो दूसरेके सहारे तैरता है, उसे "मैं" तैरनेवाला हूँ ऐसा अहंकार नहीं रहता ॥ ६९ ॥ उसीतरह कर्मकरके कर्तृत्वका अभिमान अपनेमें न रखकर सब कर्मोंकी मोहरछापको आगे खसकाते जाना चाहिये ॥ १७० ॥ और हे अर्जुन ! किये कर्मोंका जो फल प्राप्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होगा उसतरफ इच्छाको जाने नहीं देना चाहिये ॥ ७१ ॥ आरम्भमें ही फलोंकी आशा छोडकर कर्म करने चाहिये, अन्यके बालकको दाई जैसे शुद्ध मनसे दूध पिलाती है ॥ ७२ ॥ पीपलके वृक्षको फलकी आशासे कोई जल नहीं देता, वैसेही फलके सम्बन्धमें आशा न रखकर कर्म करने चाहिये ॥ ७३ ॥ दूधकी आशा न रखकर चरवाहा जैसे गांवकी गौओंको इकट्ठी कर चरानेको ले जाता है, उसी न्यायसे कर्मज-फलके विषयमें अनुसन्धान रखना चाहिये ॥ ७४ ॥ इस युक्तिसे जब पुरुषके हाथसे कर्म होगा तब उसको निःसंशय आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होंगी ॥ १७५ ॥ अतः फलकी आशा और देहाभिमान छोडकर यथायोग्य विधिपूर्वक कर्मोंका आचरण करना चाहिये, यही मेरी सबोंके प्रति परमोत्कृष्ट आज्ञा है ॥ ७६ ॥ जिसको जीवके बन्धसे थकावट मालूम होती हो और जो मुक्तिके लिये छटपटाता हो, उसके लिये बारंबार यही कहना है कि मेरे इन वचनोंका अतिक्रमण न करे ॥ ७७ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

अन्धकारपर क्रुद्ध होकर आग्रहसे अपने ही नख अपनी आंखोंमें घुसाड देवे, उसीतरह जो बन्धक कर्मोंके क्रोधसे सब कर्मोंको छोडता है ॥ ७८ ॥ उसका वह कर्म छोडना मैं तामसत्याग कहता हूँ, मस्तकपीडाके क्रोधसे मस्तक काट डालनेके तरह यह होता है ॥ ७९ ॥ अजी ! मार्ग खराब हो तो उसको युक्तिसे पैरोंसे ही पार करना चाहिये, कि रास्तेके दोषसे पैरोंको ही काट डालना चाहिये ? ॥ १८० ॥ क्षुधासे अतिपीडित आदमीके सामने कुछ भी गरम अन्न रखा जाय परन्तु वह उसके मनको न रुचनेके कारण जब उस अन्नको लातसे मारे तो उसे उपासही पडेगा ॥ ८१ ॥ इसी न्यायसे कर्मके बन्धकत्वका कर्मसेही नाश करना चाहिये, यह युक्ति भ्रमसे मत्त हुए तामसी जीवको समझती नहीं ॥ ८२ ॥ कारण स्वाभाविक रीतिसे उसके भागको जो कर्म आता है उसको भी छोडता है, अतः हे अर्जुन ! ऐसे तामस त्यागको तुम कदापि स्पर्शतक मत करो, इस बातको ठीक समझना ॥ ८३ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

अथवा अपना अधिकार समझता है, अपना कर्तव्य भी दीखता है, ऐसी स्थिति रहनेपर भी कार्यकी कठिनाई होनेसे कार्यकर्ता डर जाता है ॥ ८४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कारण कर्मके आरम्भका मार्ग थोडे समयतक बहुत क्लिष्टसा मालूम होता है, बाहर जाते समय अन्नका पाथेय ( मार्गोपयोगिभोजन–सामग्री ) साथ ले जाते वख्त जैसा भारसा होता है ॥ १८५ ॥ अथवा जीभको नीम जैसे कडुआ और हर्रे जैसे कषैली लगती हैं, वैसे ही कर्मका आरम्भ बहोत कठिन जान पडता है ॥ ८६ ॥ अथवा गायके सींग जैसे दूसरेको कष्ट देनेके लिये होते हैं, अथवा सेवतीफूलको जैसे कांटे होते हैं, अथवा भोजन-सुखके पहिले जैसे रसोई बनानेकी तकलीफ रहती है ॥ ८७ ॥ उसीतरह वार-बार यही कहना है कि कर्तव्यकर्म आरम्भमें ही बहोत कठिन मालूम होता है, अतः कर्ताको कर्म करना कष्टकारक मालूम होता है ॥ ८८ ॥ अथवा यह अपना विहित कर्म है, ऐसा जानकर वह करने लगता है पर थोडा भी कष्ट हुआ कि तुरन्त ही घबडाकर आरब्ध कार्यको बीचमें ही छोड भागता है, जैसे अग्निसे थोडा भी जला हुआ आदमी भाग जाता है ॥ ८९ ॥ और कहता है कि बडे भाग्यसे यह अमोल मनुष्य देह वस्तु मुझे मिली हुई है, इस शरीरको कोई एक कर्मदरिद्री पापीके तरह कर्मादिकोंके द्वारा कष्ट देकर क्यों सुखावें ? ॥ १९० ॥ कर्म करो और बाद भोगकी राह देखो, यह किसने कहा है ? जो सुखोपभोग प्रत्यक्ष हाथमें आये हैं उनका ही उपभोग लेना यही ठीक है ॥ ९१ ॥ इसतरह शरीर क्लेशको डरकर जो कर्म त्यागता है, हे अर्जुन ! उस पुरुषसे किया गया त्याग राजसत्याग समझना चाहिये ॥ ९२ ॥ सच्चा देखो तो इसमें भी त्याग है ही परन्तु उसको त्यागसम्बन्धि-फल प्राप्त होता नहीं, जैसे उफना हुआ घी हवन-द्रव्य नहीं हो सकता ॥९३॥ अथवा जो जलमें डूबकर मरगये, उन्होंने जलसमाधि ली, ऐसा नहीं कहा जाता किन्तु उनको अपघातसे मृत्यु आयी ऐसा ही समझना चाहिये ॥ ९४ ॥ उसीतरह शरीरके लोभसे जो मनुष्य अपने विहित कर्मोंपर तिलाञ्जलि देता है, उसको सच्चे कर्मत्यागका फल मिल ही नहीं सकता ॥ १९५ ॥ तात्पर्य यही कहना है कि, हे अर्जुन ! प्रभातकाल जैसे नक्षत्रोंको लुप्त करता है, तैसे आत्मज्ञानका उदय जब अज्ञानके साथ सब कर्मोंका लोप करता है, तब सच्चा सच्चा कर्मत्याग होता है, ऐसे ही कर्मत्यागका मोक्षरूप फल होता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ हे अर्जुन ! जो अज्ञानसे कर्म छोडता है; उसको यह मोक्षफल नहीं मिलता, अतः राजसत्यागको सच्चा कर्मत्याग नहीं समझना चाहिये ॥ ९८ ॥ अब संसारमें कौनसे कर्मका त्याग करनेसे मोक्षफल घर आता है, वह भी तुझे हम प्रसंगसे कहते हैं, ख्याल देकर सुनो ॥ ९९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ ९ ॥

जो अपने अधिकारके स्वरूपके समान स्वाभाविक कर्म अपने विभागको आये हैं, उनको सत्त्विकपुरुष सांगोपाङ्ग शास्त्रोक्त विधिविधानसहित करता है ॥ २०० ॥ परन्तु "मैं कर्ता हूँ" इस अभिमानकी भावना उसके हृदयको छूतीतक नहीं और वैसेही वह फलकी जो आशा उसपरभी पानी छोडता है ॥ १ ॥ हे अर्जुन ! माताका अनादर करना और माताके विषयमें कामवासना हृदयमें लानी, ये दोनों बातें अधःपातके कारण होते हैं ॥ २ ॥ अतः इन दोनोंको त्यागना चाहिये, बाद माताकी दिलसे सेवा करनी चाहिये । क्या अपने गायका मुख अपवित्र रहता है, अतः उतने ही कारणके लिये गायका ही त्याग करना ठीक है ? ॥ ३ ॥ अपनेको अत्यन्त प्रिय फलोंकी छिलकें और गुठली ये खानेके योग्य नहीं होती हैं, अतः उतनेके लिये कोई सारा फल फेक देता है क्या ? ॥ ४ ॥ उसीतरह "मैं कर्ता हूँ" ऐसा अभिमान और कर्मफलकी आशा ये दोनों बन्धक होते हैं ॥ २०५ ॥ तब जैसे पिता अपनी कन्याके विषयमें कामवासना कदापि नहीं लाता वैसे ही उन दो बातोंको जडसे दिलमेंसे उखाड देनेपर योग्य और स्वाभाविक विहितकर्म कभी दुःखका कारण नहीं होता ॥ ६ ॥ इसप्रकारका त्याग मोक्षरूपी फलको उत्पन्न करनेवाला सबसे श्रेष्ठ वृक्षराज ही है, ऐसा समझना चाहिये । यही त्याग 'सात्त्विक' इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ अब बीज जलादेनेसे जैसे वृक्ष निर्वंश हो जाता है, उसीतरह फलाशा छोड देनेसे उसका कर्मबन्धन छुटा ही है ॥ ८ ॥ पारसका स्पर्श होते बराबर लोहेका अशुभ कालापन जैसे नष्ट होता है, उसीतरह जिसके रज और तम ये दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ ९ ॥ फिर अत्यंत शुद्ध हुए सत्त्व गुणसे जिसके आत्मज्ञानकी आँखें खुल गयी हैं; उस पुरुषकी बुद्ध्यादिकोंके आगे रहनेवाला यह बडा विश्वाभास, सायंकालमें मृगजलके तरह अपने आप नष्ट होता है; उस पुरुषको वह भ्रम आकाशके तरह कहीं भी दिखाई नहीं देता ॥ २१० ॥ ११ ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

अतः पूर्वजन्मकृत कर्मके अनुसार प्राप्त होनेवाले अच्छे-खराब कर्म आकाशमें जैसे मेघ लीन होते हैं, ॥ १२ ॥ वैसे ही उस ज्ञानी पुरुषके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सम्बन्धमें नष्ट होते हैं । हे अर्जुन ! इससे अतिरिक्त वर्तमान कर्म उस ( सात्त्विक ) पुरुषके नजरके सामने शुद्ध होते रहनेके कारण सुख दुःखोंके बखेडेमें फँस नहीं सकता ॥ १३ ॥ शुभकर्मको जानलेना और उसका बडे आनंदसे अनुष्ठान करना, अथवा यह कर्म परिणाममें दुःखदायी होगा, इसवास्ते इसकी घृणा माननी, ये बातें उसके तरफसे नहीं होतीं ॥ १४ ॥ जिसतरह स्वप्नमें अनुभूत सुखदुःखका हर्ष-खेद कोई भी जागृत दशामें मानता नहीं, उसीतरह मायासे उत्पन्न इस विश्वमोहमें होनेवाले कर्मोंके इष्ट-अनिष्ट परिणामके विषयमें ज्ञानवान् पुरुष उदासीन रहता है ॥ २१५ ॥ अतः हे अर्जुन ! जिस त्यागमें ' कर्म और कर्ता ' इस द्वैतभावका लेश भी नहीं रहता है, वह त्याग सात्त्विक जानना ॥ १६ ॥ हे पार्थ ! इसतरह कर्मोंका त्याग किया जाय; तभी वे सचमुच त्यागे जाते हैं, नहीं तो दूसरी कोई भी रीतिसे कर्म त्यागें जाँय तो वे अतिशय बन्धक हुए बिगर नहीं रहते ॥ १७ ॥

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

और हे सव्यसाची ! देहधारी होकर भी जो कर्मका अनादर करते हैं, उनको ग्रामीण याने अज्ञानी ही समझना चाहिये ॥ १८ ॥ घटको मट्टीकी घृणा कर चलेगा क्या ? जो वस्त्र सूतोंका तिरस्कार करेगा, वह स्वयं रहेगा भी कैसे ? ॥ १९ ॥ वैसे ही जिस वस्तुके शरीरमें ही अग्नि है वह उष्णतासे त्रस्त होगा क्या ? अथवा दीपक प्रकाशसे द्वेष करता है क्या ? ॥ २२० ॥ हींग अपनी उग्रगन्धसे व्याकुल होजाने पर भी उसको कभी सुगंध प्राप्त होगी क्या ? जल पतलापन छोडेगा तो वह रहेगा भी कहां ? ॥ २१ ॥ उसीतरह जबतक शरीरभ्रम टिका है, तबतक सर्वथा कर्मत्याग करनेके पागलपनमें कौन अर्थ है ? ॥ २२ ॥ हम ललाटमें गंधका तिलक लगाते हैं, अतः वह अपनेको लगाने पोंछने आता है, परन्तु ललाटको ही खुरचकर निकालना और फिर लगाना यह अपनेको करने आवेगा क्या ? ॥ २३ ॥ वैसे ही शास्त्रोक्त कर्म हम स्वयं करते हैं, अतः कदाचित् उनका त्याग कर सकते हैं, परन्तु शरीरके ही जो स्वाभाविक कर्म हैं वे कैसे छूट सकते हैं ? ॥ २४ ॥ क्योंकि श्वास, उच्छ्वास इत्यादि कर्म निद्रितावस्थामें भी चालू रहते हैं, जो कुछ भी काम करता न हो तो भी उसमें ये कर्म होते ही रहते हैं ॥ २२५ ॥ इस देहके मिषसे सभी कर्म पीछे लगे हैं; वे जीतेमें और मरनेपर भी नहीं छूटते ॥ २६ ॥ इस कर्मके पाशसे छुटनेवाले ऐसे एकही वर्गके पुरुष हैं; वे कौन ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जो कर्म करनेपर भी कर्मफलकी आशामें अटकते नहीं ॥ २७ ॥ कर्मफल ईश्वरार्पण किया जावे तो उस ईश्वरके प्रसादसे ज्ञान प्रकट होता है, ऐसा होनेपर जैसे रस्सीके वास्तविक ज्ञानसे सर्परूप भ्रान्ति नष्ट होती है ॥ २८ ॥ उसीतरह आत्मज्ञानसे अज्ञानके साथ कर्मका भी नाश होता है हे पार्थ ! इस प्रकारका जो त्याग वही सच्चा कर्मत्याग है ॥ २९ ॥ अतः ऐसा जो त्याग करते हैं उनको ही हम त्यागी समझते हैं । नहीं तो रोगीको मूर्छा आनेपर उसको जैसे अच्छीतरहसे निद्रा लगी है ऐसा कहना, उसी तरह एक कर्मसे थक जानेपर दूसरे कर्ममें फँसना, इसको चाहे विश्रान्ति कहिये; परन्तु यह दंडेके मारको छुडानेक लिये घूँसेकी मारको सहन करनेके बराबर है ॥ २३० ॥ ३१ ॥ पर यह विस्तार बस है, तुझे फिर एकदफे कहता हूँ कि इन तीनों लोकोंमें वही सच्चा त्यागी जानना चाहिये कि जिसने कर्मफलका त्याग कर कर्मको नष्टावस्थाको पहुँचाया है ॥ ३२ ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य नतु संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥

हे धनंजय ! सच्ची स्थिति ऐसी है कि कर्मके फल तीन तरह हैं और जो कर्मफलाशा छोडते नहीं, उनको ही वे फल भोगने पडते हैं ॥ ३३ ॥ कन्याको जन्म देकर, पिता 'यह मेरी नहीं है' ऐसा कहकर दूसरेको अर्पण करता है, उससे पिता कन्याकी जिम्मेवारीसे छूट जाता है और उस कन्याका स्वीकार करनेवाला दामाद ही जबाबदार होता है ॥ ३४ ॥ विषारी वनस्पतियोंको पकाकर उसका व्यापार करनेवाले दूसरोंको बेचते हैं और सुखसे लाभ लेकर जीते रहते हैं परन्तु मूल्य देकर उनको खरीदकर जो सेवन करते हैं वे मरते हैं ॥ २३५ ॥ उसी तरह कर्ता कर्म करे, पर वह यदि फलाशा नहीं करेगा, तब वह अकर्ता ही कहा जाता है, इन दोनों बातोंको कर्म बदल नहीं सकते ॥ ३६ ॥ रास्तेमें पके हुए पेडके फल जो चाहे वह ले सकता है, तद्वत् कर्मका फल जो लेना चाहता है उसको वह मिलता है ॥ ३७ ॥ पर कर्म करके भी जो उसका फल लेता नहीं, वह इस संसारचक्रमें फँसता नहीं, क्योंकि यह सब त्रिविध जगत् कर्मका ही फल है ॥ ३८ ॥ 'देव' 'मनुष्य', और 'स्थावर' इनका ही जग ( संसार ) यह नाम है; और यह तीनों कर्मफलके ही प्रकार हैं ॥ ३९ ॥ ये कर्मफल अनिष्ट, इष्ट और इष्टानिष्ट इसतरह तीन स्वरूपके रहते हैं ॥ २४० ॥ विषयाधीन बुद्धि होकर जब जीव अधर्म करते हैं और निषिद्ध कर्म करते हैं ॥ ४१ ॥ तब वे कीट, चींटी, मट्टी, ईंट

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इत्यादि नीच शरीरोंको प्राप्त करते हैं, यह कर्मका 'अनिष्ट' फल समझिये ॥ ४२ ॥ परन्तु स्वधर्मका आदर कर और अपना अधिकार आंखोंके सामने रखकर जब वेद-शास्त्रके नियमानुसार पुण्य कर्म करते हैं ॥ ४३ ॥ तब इन्द्रादि देवोंके उत्तम शरीरोंको प्राप्त करते हैं यह कर्मका इष्ट फल होता है ॥ ४४ ॥ अब मीठा और खट्टा इनका मिश्रण करनेसे एक तीसरा ही उच्च स्वादिष्ट रस उत्पन्न होता है ॥ २४५ ॥ अथवा योगसाधनसे रेचक ( याने उच्छ्वास ) कुंभक ( याने श्वासका रोकना ) करनेके उपयोगमें आता है, उसीतरह सत्य और असत्य इनका मिश्रण होनेसे सत्य और असत्य इन दोनोंसे भिन्न ऐसा कोई एक विचित्र उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥ उसीतरह शुभ और अशुभ फलोंका बराबर मिश्रण होकर जो कर्मफलकी बढती होती है, उसके योगसे मनुष्यदेह प्राप्त होता है । यह कर्मका 'इष्टानिष्ट' याने 'मिश्र' फल समझना चाहिये ॥ ४७ ॥ इसतरह तीन प्रकारके कर्मफल जगमें बढे हुए हैं और जो आशाके वश हैं उनको यह भोगे बिगर दूसरी गति ही नहीं है ॥ ४८ ॥ जीभको पानी छुटनेपर दुष्ट पदार्थोंका सेवन करना बहोत अच्छा लगता है, पर उसका परिणाम मरण ही होता है ॥ ४९ ॥ जंगल नहीं पहुँचे तबतक ही ठगकी मित्रता अच्छी लगती है, और वेश्याका अवयव-स्पर्श नहीं हुआ, तबतकही वह देखनेमें लावण्यवती मालूम होती है ॥ २५० ॥ वैसे ही कर्मका आचरण करते बडाईका जोश शरीरमें घुसता है, परन्तु अंतकालमें शरीरके नष्ट होनेपर उन कर्मोंके फल भोगने ही पडते हैं ॥ ५१ ॥ जैसे बली सावकार ऋणीके पास करारपर कर्जसे लीहुई रकम वसूल करनेके लिये आवे तो कुछ भी करके उसको टाल नहीं सकते, उसीतरह इस कर्मफलके भोग भी अवश्य भोगने पडते हैं ॥ ५२ ॥ जैसे भुट्टेमेंसे नीचे जमीनपर दाना गिरता है और वह बोया जानेसे बढकर भुट्टा हो जाता है, और फिर भुट्टेमेंसे नीचे दाना गिरता है और वह फिर बोनेसे बढकर भुट्टा होता है ॥ ५३ ॥ उसीतरह वह जीव एक फल भोगते हुए दूसरे अनेक कर्मफल उत्पन्न करते रहता है ! जैसे चलते समय प्रत्येक डग पीछे पडके आगे ही पडती रहती है ॥ ५४ ॥ अथवा नदीके पार उतार देनेवाली नाव किसी तटपर रहे, उसको फिर पलेपार जाना ही पडता है, उसीतरह इस कर्मफलके भोगोंका चक्र कहीं भी ठहरता नहीं ॥ २५५ ॥ बहुत प्रकारसे साध्य-साधनोंके निमित्तसे फल भोगका विस्तार चढता बढता ही रहता है; और इस प्रकार फलाशा न छोडनेवाले जीव संसारके जालमें अधिक ही फस जाते हैं ॥ ५६ ॥ नहीं तो चमेलीके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


फूलकी पंखुरी विकसित होती हैं, पर साथ सूखने भी लगती हैं, वैसे ही जो कर्मको निमित्त होते हैं परन्तु कर्तृत्वाभिमान अपनेमें नहीं लगा लेते हैं ॥५७॥ जैसे बोनेके लिये रखा हुआ धान्य पेटके लिये समाप्त कर दिया जाय तो खेती बंद पडजाती है, तद्वत् जिन्होंने कर्मफलका त्याग कर कर्मका कार्य रोका है ॥ ५८ ॥ वे सत्त्वशुद्धिके जोरपर गुरुकृपाके अमृत तुषारोंसे भरे हुए आत्मज्ञानसे परिपूर्ण होते हैं और उनका द्वैतभावरूपी दारिद्र्य नष्ट होजाता है ॥५९॥ और फिर जगद्भ्रमके निमित्तसे भासनेवाले तीन प्रकारके कर्मफल नष्ट होते हैं और इस अवस्थामें भोक्ता और भोग्य ये दोनों लुप्त होते हैं ॥२६०॥ हे वीरेश ! इस प्रकारका ज्ञानप्रधान संन्यास जिनको प्राप्त होता है, वेही फलभोगकी वासनासे सत्य छूट जाते हैं ॥ ६१ ॥ और ऐसे संन्याससे जब आत्मस्वरूपमें दृष्टि फैल जाती है, तब कर्म यह कोई एक अलग ही है, ऐसे भासेगा भी कैसे ? ॥ ६२ ॥ भीत ही गिर पडनेपर उस भीतपर निकाले हुए चित्रोंकी भी केवल मट्टीही हो जाती है, अथवा रात समाप्त होकर सूर्योदय होनेके बाद अँधेरेको कहीं भी स्थान शेष रहता है क्या ? ॥ ६३ ॥ मूल वस्तुका स्वरूप ही नष्ट होजाने पर उसकी छाया कहांसे पडेगी ? दर्पणही न होनेपर मुखका प्रतिबिंब गिरेगा भी कैसे ? ॥ ६४ ॥ निद्रा ही बिगड गई तो स्वप्न कैसे आसकता है, और स्वप्न ही जहां नहीं वहां सच्चा कि झूठा यह प्रश्न कैसे होगा ? ॥ २६५ ॥ वैसे ही इस ज्ञानप्रधान संन्याससे मूल अविद्याका ही जीवित खतम होनेपर उसके कार्यरूप कर्मफलका देना लेना कैसे होवे ? ॥ ६६ ॥ अतः संन्यासीपर कर्मकी मात्रा कभी भी लागू नहीं होती परन्तु जबतक अविद्या अपने देहमें है ॥ ६७ ॥ जबतक आत्मा कर्तृत्वके अभिमानसे शुभ और अशुभ कर्मके पीछे पाहरेदारी करता है, जबतक दृष्टि भेदभावपर बैठी है ॥ ६८ ॥ तबतक आत्मा और कर्म इनमें भेदभाव रहेगा ही, पूर्वदिक् और पश्चिमदिक् इनमें जैसे भिन्न भाव रहता है ॥ ६९ ॥ अथवा आकाश और मेघ, सूर्य और मृगजल अथवा पृथ्वीतल और वायु इनमें जैसी भिन्नता भासती है ॥ २७० ॥ अथवा नदीके पानीमें नदीके अन्दरके कंकड डूबे हुए रहते हैं, पर नदीमें और उनमें जैसे जमीन अस्मानका अन्तर रहता है ॥ ७१ ॥ अथवा सेवार जलको घेरकर रहती है, पर वह उससे भिन्न ही रहती है, अथवा दीपकके ऊपर गुल सदैव रहती है, तो भी जैसे उसको क्या दीपक कह सकते हैं ? ॥ ७२ ॥ चन्द्रमामें कलंक रहता है पर वह जैसे चन्द्रमाके साथ एकरूप नहीं हो सकता, अथवा दृष्टि ( कृष्णताराग्रवर्त्ति तेज ) और चक्षु इनमें जैसे अत्यन्त भेद है ॥ ७३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथवा मार्ग और पथिक, प्रवाह और प्रवाहमें बहता हुआ पुरुष, अथवा दर्पण और उसमें अपना प्रतिबिंब देखनेवाला मनुष्य, इनमें जितना बडा अन्तर है; ॥ ७४ ॥ हे पार्थ ! उतना ही अन्तर आत्मा और कर्म इनमें है; पर कब ? यह भेदभाव जाननेको अज्ञान अवकाश देगा तब ! ॥ २७५ ॥ वह सरोवरमेंके कमलकी लता अपने कमलोंको विकसित कर सूर्योदय कराती है और भ्रमरोंसे कमलके पुष्परसको लुटाती है ॥ ७६ ॥ उसीतरह आत्माके तरफसे होनेवाली क्रिया कुछ दूसरे कारणोंसे वारबार उत्पन्न होती है ये कारण पांच हैं उनका हम निरूपण करते हैं ॥ ७७ ॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

कदाचित् वे पांच कारण तुमभी जानते ही होंगे, क्योंकि शास्त्रोंने ऊर्ध्व भुजा कर ऊँचे स्वरसे जिनका वर्णन किया है ॥ ७८ ॥ वेदराजकी राजधानीमें, सांख्य वेदान्तके मन्दिरमें, तत्त्वविवेचनरूपी डंकेकी नादमें उनकी गर्जना चालू है ॥ ७९ ॥ जिस अर्थके लिये सब कर्म सिद्ध होनेको यही कारण मूल हेतु होते हैं, उस अर्थके लिये निर्विकार आत्माका उनके साथ सम्बन्ध नहीं करना चाहिये ॥ २८० ॥ इस रीतिसे इन पांच कारणोंका डंका बजा देनेके कारण वे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं, अतः वे तुम्हारे भी कानमें आये हुए अच्छे, ऐसा मेरे समझमें आता है ॥ ८१ ॥ और मैं ज्ञानचिन्तामणि प्रत्यक्ष तेरे हाथमें रहते, इस विषयका ज्ञान दूसरे किसीसे मिलाओ ऐसा भार देनेमें भी क्या फल है ? ॥ ८२ ॥ सामने ही दर्पण रखा है तब 'मैं कैसे दीखता हूँ ?' ऐसा दूसरोंको पूंछकर उनके आँखोंको इतना बडप्पन देनेका कारण भी क्या ? ॥ ८३ ॥ मेरा भक्त जिस हेतुसे जिसतरफ देखता है, उसतरफ मैं ही उस हेतुके स्वरूपको धारण करता हूँ; ऐसा मैं भक्तप्रेमी प्रभु आज केवल तेरे हाथका खिलौना हुआ हूँ ॥ ८४ ॥ इसप्रकार प्रीतिके वेगसे बोलते बोलते श्रीकृष्णदेवको अपना स्मरण ही नहीं रहा और इधर अर्जुन भी आनन्द-समुद्रमें मग्न हुआ ! ॥ २८५ ॥ चांदनीकी वृष्टि होती हो तो जैसे चन्द्रकान्तमणिरूप पहाड पसीज कर उसका सरोवर बनजावे ॥ ८६ ॥ उसीतरह सुख और आत्मप्रत्यय इन दोनों भावोंका पडदा नष्ट होकर अर्जुन केवल सुखकी मूर्तिरूप हुआ ॥ ८७ ॥ ऐसे प्रसंगमें श्रीकृष्णदेव सर्वसमर्थ ही होनेके कारण, उनको स्मृति आयी और सुखसागरमें डूबनेवाले अर्जुनको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ऊपर निकालनेके लिये भक्तवात्सल्यसे दौडे ॥ ८८ ॥ उसको सुखकी बाढ इतनी बडी आयी रही कि उसमें वह बडा ज्ञानवान् अपनी विस्तृत बुद्धिके साथ डूबनेको आये थे परंतु भगवान्ने वैसी बाढको भी रोक दिया ॥ ८९ ॥ और उन्होंने कहा कि "तात हे पार्थ ! तुम अपने आत्मस्वरूपका ख्याल रखो, भूलना नहीं, सावधान हो," यह सुनकर अर्जुनने एक दीर्घ श्वास छोडा और माथा नवाया ॥ २९० ॥ बाद उसने कहा, "हे भगवन् ! आप उदार दाता हैं और आपको यह मालूम भी है कि मैं आपके पास ही, पर पृथग्भावसे रहनेको बिलकुल ऊबकर आपसे अत्यन्त एकरूपता प्राप्त करनेको उत्सुक हुआ हूँ ॥ ९१ ॥ इस मेरी स्थितिका जब आप प्रेमसे कुतूहल करते हों, तब फिर हमको बारबार मेरी जीवदशाका स्मरण क्यों कर देते हैं ?" ॥ ९२ ॥ तब श्रीकृष्णने उत्तरमें कहा कि "अजी मूढ ! अर्जुन ! तुझे अभीतक यह प्रकरण अच्छी तरह समझा नहीं, अरे चंद्र और चांदनी इनकी कभी विभिन्नता रहती है क्या ? ॥ ९३ ॥ इसके अतिरिक्त तुझे और एक अत्यंत हृदयके अंदरकी बात कहता हूँ, वह यह कि एकरूपता तुझे दिखानेको हमें सचमुच ही डर लगती है और तुम कुपित होनेपर भी वह सहन करनेका मुझे जो सामर्थ्य आता है, उसका कारण मेरा तेरे विषयका प्रेम ही है ! ॥ ९४ ॥ और एक दूसरेका परस्पर प्रेमलक्षण जबतक टिका है, तबतक अपने बीचका व्यक्तिभेद जीता रहेगा ही ! अतः अब इन विषयोंकी चर्चा मत करो ॥ २९५ ॥ हे पाण्डुसुत ! आत्मासे सर्वकर्मसमुदाय भिन्न कैसे रहते हैं, यह हम तुझे कहते रहे" ॥ ९६ ॥ इतनेमें अर्जुनने कहा,—"हे देव ! मेरे मनमें आयी हुई प्रश्नकी प्रस्तावना आपने की, यह बहोत ही उत्तम हुआ ॥ ९७ ॥ क्योंकि सर्वकर्मका मूलबीज जो कारणपंचक, यह मुझे स्पष्टरूपसे कहनेका वचन आपने ही दिया नहीं क्या ? ॥ ९८ ॥ और आत्माका इस कर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा जो आपने कहा, वह भी मुझे समझाकर देनेका है" ॥ ९९ ॥ यह सुनकर विश्वेश श्रीकृष्णजीने बडे संतोषसे कहा—"अरे ऐसे प्रश्नके लिये बिलकुल धरना देकर बैठनेवाला ऐसा श्रोता कहाँ मिलता है ? ॥ ३०० ॥ अतः हे अर्जुन ! तुमको जो कुछ कबूल किये हैं वह अब कहते हैं, पर इस कारणसे तेरेपरका प्रेमका भार ही बढनेवाला है ॥ १ ॥ इतनेमें ही अर्जुनने कहा—"हे देव ! आप पिछली बात भूल गये क्या ? अहो इस प्रेमके लिये ही तो आप, मैं, तुमरूपी द्वैतभावकी रक्षा होती है !" ॥ २ ॥ इसपर श्रीकृष्ण बोले—"सत्यही ऐसे" अच्छा तो अब अत्यन्त पूर्णरीतिसे ध्यान देकर मैं दिये वचनको पूरा करता हूँ उसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



सुनो ॥ ३ ॥ हे धनुर्धर ! यह बिलकुल सत्य है कि सब कर्मोंकी घटना, आत्माको न मालूम होते हुए, परस्पर पांच कारणों करके होती है ॥ ४ ॥ और इन पांच कारणोंके समूहसे कर्म आकृतिको प्राप्त करता है, उनके हेतु भी प्रसिद्ध पांच हैं ॥ ३०५ ॥ इनसे अलग जो आत्मतत्त्व वह केवल तटस्थ याने उदासीन रहता है वह न कर्मोंका हेतु है, न निमित्तकारण है, न उपादान कारण है, और वह स्वयं कर्मसिद्धिके लिये यत्नकारी भी नहीं है ॥ ६ ॥ जिसतरह आकाशमें दिवस और रात होते रहते हैं, वैसे आत्मारूप अधिष्ठानमें शुभ अशुभ कर्म होते हैं ॥ ७ ॥ जल, तेज, धूम इनका वायुसे संमेलन होनेपर आकाशमें मेघ उत्पन्न होते हैं, परन्तु आकाश जैसे उससे अलग रहता है ॥ ८ ॥ अथवा लकडियोंकी नाव बनती है, और उसको पानीमें मल्लाह चलाता है, अथवा वायुसे भी चलती है परन्तु जल केवल साक्षीरूपसे तटस्थ रहता है ॥ ९ ॥ अथवा कोईएक उठाकर लिये हुए मिट्टीके पिण्डका वर्तन बनाता है और बाद दंडके योगसे वह गरगर घुमाया जाता है और उसके बराबर चक्र भी घूमते रहता है ॥ ३१० ॥ पर इसका सर्व कर्तृत्व कुम्हारके तरफ है, पृथ्वीका केवल आधारके बिना इसमें कुछ खर्च होता है क्या ? इसका विचार कर देखें ॥ ११ ॥ अब दूसरा दृष्टान्त देते हैं लोग अनेक प्रकारके उद्योग सूर्यके प्रकाशमें करते हैं, पर उनका सम्बन्ध सूर्यको लगता है क्या ? ॥ १२ ॥ उसीतरह पांच हेतुओंका योग मिल जानेसे इन पांच कारणोंसे कर्मरूपी लता लगाई जाती है, पर यह आत्मा अलग ही रहता है ॥ १३ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ १४ ॥

अब इन पांचों कारणोंका मैं अलग अलग स्पष्ट लक्षण कहता हूँ जैसे मोती परखकर लिये जाते हैं ॥ १४ ॥ उसीतरह कर्मकी पांच कारणोंको उन उन लक्षणों सहित सुनो, इन पांचोंमें देह यह प्रथम कारण है ॥ ३१५ ॥ इसको अधिष्ठानकारण कहते हैं, इस लिये कि इस देहमें ही भोक्ता अपने भोग्य विषयोंसहित रहता है ॥ १६ ॥ इंद्रियरूपी दश हाथोंसे दिनरात कष्ट करके जो सुखदुःख प्रकृतिके बलसे उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥ उन्हें भोगनेके लिये पुरुषको दूसरा स्थान ही न होनेसे इस देहको ' अधिष्ठान ' यह नाम प्राप्त हुआ है ॥१८॥ यह देह सब चौबीस तत्त्वोंके एकत्र रहनेका परिवार घर है, बंध और मोक्ष इनका फँसना न फँसनेका निकाल यहीं होता है ॥ १९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अधिक क्या कहें ? हे धनंजय ! जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंका यही आधार होनेसे इस देहको 'अधिष्ठान' कहते हैं ॥ ३२० ॥ और 'कर्ता' यह दूसरा कर्मका कारण है, इसको ही चैतन्यका प्रतिबिंब कहते हैं ॥ २१ ॥ आकाश ही जल बरसाता है, इस जलका भूमिपर गड्ढा हो जाता है और बाद उस गड्ढेके पानीमें जैसे वही आकाश प्रतिबिंबित होता है ॥ २२ ॥ अथवा पूर्ण निद्राके वशमें हुए राजाको जैसे अपनी विस्मृति हो जाती है और बाद वह स्वप्नमें गरीबीका अनुभव लेता है ॥ २३ ॥ उसी-तरह चैतन्यको अपने आत्मस्वरूपकी विस्मृति होकर उस चैतन्यमें देहका आभास उत्पन्न होता है और बाद चैतन्य देहाभिमानसे देहके रूपमें प्रकट होता है ॥ २४ ॥ और जिसको आत्मस्वरूपकी विस्मृतिके कारण 'जीव' यह नाम प्राप्त होता है और जिसकी सब कार्योंमें देहके साथ रहनेकी प्रतिज्ञा हुई रहती है ॥ ३२५ ॥ और जो प्रकृति-मायासे होनेवाले काम मैंने किये ऐसा भ्रमसे कहता है, उस जीवात्माको ही इस प्रकरणमें 'कर्ता' कहा है ॥ २६ ॥ फिर जैसे एकस्वरूप रहनेवाली दृष्टि पलकोंके बालोंके कारण चँवरकी तरह अलग अलग फटी हुईसी मालूम होती है ॥ २७ ॥ अथवा घरमें होनेवाला एक ही दीपकका प्रकाश अलग अलग झरोंकेमेंसे अनेकरूप मुएके तरह दीखता है ॥ २८ ॥ अथवा एक ही पुरुष जैसे शृंगारादि नवों रसोंका यथाक्रमसे उल्लसित हुआ शक्तिभेदसे अनुभव प्राप्त करनेवाला नौप्रकारका मालूम होता है ॥ २९ ॥ उसी तरह बुद्धिकी जाननेकी शक्ति यद्यपि एकस्वरूप है, तथापि वह कान, आँख इत्यादि बाह्य इन्द्रियोंके द्वारा अलग अलग रूपसे प्रकट होती है ॥ ३३० ॥ इसको ही 'पृथग्विधकरण' कहना चाहिये, हे नृपनन्दन ! यह कर्मका तीसरा कारण है ॥ ३१ ॥ और पूर्वमार्गसे अथवा पश्चिमदिशासे बहते हुए प्रवाहोंका संयोग होजानेसे एक ही जल जैसे अलग अलग नद नदियोंके रूपसे भासमान होता है ॥ ३२ ॥ वैसेही वायुमें जो पूर्ण एकस्वरूपसे क्रियाशक्ति है, वही जुदे जुदे स्थानोंमें प्राप्त होनेके कारण जुदी जुदी जान पडती है ॥ ३३ ॥ वह शक्ति वाणीके जगह आनेपर भाषण होता है हाथमें आयी कि देना लेना होता है; पांवमें आनेपर चलना होता है, वही गुदद्वारमें आते ही मल निकलता है ॥ ३४ ॥ ३३५ ॥ वही वायुशक्ति नाभिकी जडसे हृदयतक ॐकारको प्रकट करने लगी कि उसको 'प्राणवायु' कहते हैं ॥ ३६ ॥ अनन्तर यही शक्ति ऊपर ( कंठदेश ) के भागमें प्रवेश करने लगी कि उसको 'उदान-वायु' यह नाम मिलता है ॥ ३७ ॥ वही अधोद्वारसे बहने लगी कि उसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


'अपानवायु' कहते हैं, और सम्पूर्ण शरीरको व्याप्त कर रहनेसे वही शक्ति 'व्यानवायु'· इस नामको प्राप्त करती है ॥ ३८ ॥ खाये हुए अन्नरसको शरीरके अलग अलग सब भागोंमें यही शक्ति पहुँचा कर प्रत्येक संधियोंमें सदैव व्याप्त करके रहती है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार रहती हुई यह क्रियाशक्ति आखीरमें नाभिकमलमें स्थिर होती है, तब उसको 'समानवायु' कहते हैं ॥ ३४० ॥ और जमुहाई लेना, छींकना, डकारना इत्यादिरूपसे होनेवाली वायुक्रियाओंके नाग, कूर्म, कृकल इत्यादि नाम हैं ॥ ४१ ॥ इसतरह हे सुभट ! वायुकी क्रिया एकरूप रहनेपर भी व्यापारभेदसे उसको अलग अलग नाम मिलते हैं ॥ ४२ ॥ और यही भिन्न भिन्न वृत्तिसे भिन्न २ होनेवाली वायुशक्ति कर्मका चौथा कारण है ॥ ४३ ॥ और छः ऋतुओंमें उत्तम ऋतु शरद् , उस शरदृतुमेंका चन्द्रमा तो अधिक ही सुन्दर, उसमें भी पूर्णमासीके चन्द्रमाका आनन्द तो कहना ही क्या ? ॥ ४४ ॥ अथवा वसन्तऋतुमें बगीचेकी शोभा बहोत होती है, ऐसे बगीचेमें प्रियजनकी संगति हुई तो उसका विशेष ही आनन्द और ऐसे योगमें प्रासंगिक प्रेममय उपचारोंकी पूर्णता हुई तो उस सुखकी सीमा ही नहीं ॥ ३४५ ॥ अथवा हे पाण्डव ! पहिले ही कमल, उसमें उसका पूर्ण विकास, और उसमें भी सुगंधि पराग धूलियोंका बाहुल्य, ऐसा त्रिवेणीसंगम होनेपर बाद शोभाको कहां न्यूनता रहेगी ? ॥ ४६ ॥ पहिलेही वाणी मधुर, उसको कवित्वकी जोड, कवित्वको रसिकताकी संगति, रसिकत्वमें भी परमार्थतत्त्वकी लालसा, ऐसा जैसे अपूर्व योग सिद्ध होजाय ॥ ४७ ॥ उसीतरह सब अन्तर्वृत्तियोंके बीचमें बुद्धि ही अकेली श्रेष्ठ है, उसको इन्द्रियोंका बल होना आवश्यक है और इन्द्रियोंके आवेशको, उनके अधिदेवताओंके मण्डल विशेष शोभादायक होते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तात्पर्य, नेत्र वगैरे दश इन्द्रियोंको अपनी कृपासे बल देनेवाले सूर्यादिमण्डल होते हैं ॥ ३५० ॥ यह "देवतामण्डल" कर्मका पांचवां कारण समझना चाहिये, ऐसा श्रीकृष्ण भगवानने अर्जुनको कहा ॥ ५१ ॥ बाद श्रीकृष्ण फिर बोलने लगे, इसतरह तेरेको समझमें आवे ऐसे अखिल कर्मोंके मूलकारण स्पष्टरूपसे बतलाये, उनको तुमने सुना ॥ ५२ ॥ अब इन्हीं मूलकारणोंका विस्तार होता है; और कर्मका अमर्याद पसारा अस्तित्वमें आता है यह सब जिस हेतुसे होते हैं, वे पांच हेतु अब स्पष्ट करके बताता हूँ ॥ ५३ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अकस्मात् वसन्तऋतु आजाती है, तब वह नूतन पल्लवोंका हेतु होती है, पल्लवोंसे पुष्पगुच्छ विकसित होते और वे फलको धारण करते हैं ॥५४॥ अथवा वर्षाकाल आजानेसे मेघ उत्पन्न होते हैं, मेघ आनेसे वृष्टिका प्रसंग आता है और वृष्टिसे धान्यका सुकाल होता है ॥ ३५५ ॥ अथवा पूर्वदिशा अरुणको पैदा करती है, अरुण सूर्यके उदयका कारण होता है और सूर्यके उदयसे दिवस स्पष्ट प्रकाशित होता है ॥ ५६ ॥ वैसेही हे पाण्डव! मन कर्मके संकल्पका हेतु है, इस संकल्पसे वाणीरूपी दीपक प्रकाशित होता है ॥ ५७ ॥ और यह दीपक जब सब कर्मसमुदायके मार्ग प्रकाशित करता है, तभी कर्म करनेके उद्योगको चालू करता है ॥ ५८ ॥ इसी उद्योगमें शरीरादि समुदाय शरीरादिकोंको हेतु होता है, जैसे लोहेका काम लोहेसे ही होता हैं ॥ ५९ ॥ अथवा तंतुके तानेमें लंबी तंतुओंका बाना पूर्ण डाल देनेसे तंतुसमुदाय ही जैसे वस्त्र होता है ॥ ३६० ॥ तैसेही मन, वाचा, देह इनसे आचरित हुआ कर्म मन, वाणी और देह इनकाही हेतु होता है, रत्नोंकरके ही जैसे रत्नोंका अलंकार बनता है, उसीतरहका ही यह प्रकार है ॥ ६१ ॥ अब शरीरादिक यदि कारण हैं तो वेही हेतु भी कैसे हो सकते हैं ? ऐसा कोई इसपर आक्षेप करेगा तो वह उस आक्षेपका समाधान सुने ॥ ६२ ॥ अहो सूर्यके प्रकाशको हेतु और कारण जैसे अकेला सूर्य ही, अथवा ईखकी गंडेरी ईखके बढनेका हेतु और कारण दोनों होती हैं ॥ ६३ ॥ अथवा वाग्देवताकी स्तुति करना हो तो वाणीको ही जैसे उस काममें श्रम करना पडता है, अथवा वेदोंकी बडाई जैसे वेदसे ही बखानी जा सकती है॥६४॥ वैसे ही, कर्मको शरीरादिक कारण होते हैं, यह यद्यपि निःसंशय मालूम है, तथापि वेही हेतु भी होते हैं यह भी कुछ झूठ नहीं ॥ ६५ ॥ और शरीरादि कारणोंका शरीरादि हेतुओंसे मेल होते ही जिस कर्मसमुदायकी घटना होती है ॥ ६६ ॥ वह कर्मसमुदाय यदि शास्त्रोक्त मार्गसे चला तो वह सब कर्म न्याय्यकर्म होता है और वही न्याय्यका हेतु भी होता है ॥ ६७ ॥ जैसा वर्षाकालके जलका प्रवाह कदाचित् धानके खेतमें बहजाय तो वह वहीं सूख जाता है, पर उसका ही कितना उपयोग होता है ! ॥ ६८ ॥ अथवा कोईएक आदमी कोपके आवेशमें अविचारसे घरके बाहर पडे और अकस्मात् 'द्वारका' के मार्गपर चलने लगे तो त्रास प्राप्त होता है, पर उसका उस मार्गसे आगे चलता पैर निष्फल नहीं गिरता ॥ ६९ ॥ उसीतरह हेतु और कारण इनका मेल होकर जो कर्म उत्पन्न होता है, वह केवल अंधा रहता है, पर उसको यदि शास्त्रकी आँखें प्राप्त हों तो वह न्याय्यकर्म कहलाता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



है ॥ ३७० ॥ अथवा दूध परोसते समय जो वह पात्रमें न पडे तो वह बाहर गिरता है और यह बाहर गिरना मानो दूधका व्यय ही है, पर उसको कुछ योग्य व्यय कहते नहीं आवेगा ॥ ७१ ॥ तैसेही शास्त्रकी संमतिके विना जो कर्म किया गया वह यदि व्यर्थ न समझाजाय, तो लुटेरू लोगोंकरके अपना जो द्रव्य लूटा जाना, वह भी धर्मादाय खाते खर्चरूपमें क्यों न लिखा जाय ? ॥ ७२ ॥ हे पाण्डुसुत ! कोई भी मंत्र लिया तो भी वह बावन अक्षरोंसे बाहर नहीं और यह बावन अक्षर कभी भी उच्चारण करता नहीं, ऐसा एक भी मनुष्य प्राणी है क्या ? ॥ ७३ ॥ पर हे कोदण्डपाणे ! जबतक मंत्रका रहस्य समझा नहीं तबतक मंत्रोच्चारका फल बावन अक्षर उच्चारनेवाली वाणीको भी जैसे मिलता नहीं ॥ ७४ ॥ तैसे कारण और हेतु इनका मेल होनेसे अनियमितरूपसे जो कर्म उत्पन्न होते हैं, वे जबतक शास्त्रकी सहायता नहीं लेते ॥ ३७५ ॥ तबतक वे कर्म होते ही रहते हैं, पर यह कुछ सच्चा कर्म करना नहीं, ऐसा कर्म याने अन्यान्यकर्म और वह अन्यायको ही हेतु होता है ॥ ७६ ॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

तब हे कीर्तिमन अर्जुन ! पांच कारणोंसे उत्पन्न होनेवाले कर्मको पांच हेतु भी होते हैं और इस पंचमें आत्मा आयी है ॥ ७७ ॥ सूर्य जैसे कोई भी रूप न लेते, नेत्र और वस्तुओंके रूपको प्रकाशित करता है वैसी आत्मा स्वतः कर्म न होकर कर्मोंको प्रकट करती रहती है ॥ ७८ ॥ हे वीरेश ! स्वयं प्रतिबिंब और दर्पण ये दोनों न होकर जैसे अपना रूप देखनेहारा दोनोंको ही प्रकाशित करता है ॥ ७९ ॥ हे पांडुसुत ! अथवा सूर्य जैसे स्वयं दिन और रात इनका अनुभव न करते ही उनको उत्पन्न करता है, वैसेही आत्मा कर्मका कर्ता न होकर ही कर्म प्रगट करती है ॥ ३८० ॥ परन्तु देहाभिमानकी भूलसे जिसकी बुद्धि शरीरमें ही व्याप्त है, उसको आत्मज्ञानके सम्बन्धमें मानों मध्यरातका अन्धकार ही रहता है ! ॥ ८१ ॥ जिसने चैतन्यको, ईश्वरको, ब्रह्मको, देहके ही मर्यादामें बन्द करादिया है, उसको 'आत्मा कर्ता' यह सिद्धान्त अत्यन्त अटल मालूम होते रहता है ॥ ८२ ॥ परन्तु उसे आत्मा ही कर्म कर्ता है, ऐसा भी उसका दृढ निश्चय नहीं रहता है, पर 'कर्म करने-



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वाला मैं देह ही हूँ' ऐसा वह सचमुच मानते रहता है; ॥ ८३ ॥ क्योंकि 'मैं आत्मा हूँ, केवल मैं सब कर्मोंका साक्षीभूत तटस्थ हूँ', इसप्रकारकी भाषा तो अपने कानपर कभी आनेभी नहीं देता ॥ ८४ ॥ अतः वह मर्यादारहित आत्मतत्त्वका अल्प परिमाणावच्छिन्न देहसे ही मापनेका उद्योग करता है, इसमें क्या आश्चर्य है ? उल्लू प्रसिद्ध दिवसको ही अंधेरी रात नहीं बना देता क्या ? ॥ ३८५ ॥ जिसने आकाशस्थित सच्चा सूर्य कभी भी देखा नहीं, वह डबरेमेंका प्रतिबिंब ही सूर्य क्यों न माने ? ॥ ८६ ॥ डबरा रहे तो सूर्य रहे, डबरा नष्ट हुआ कि सूर्य भी नष्ट हुआ; और डबरेके हिलनेसे सूर्य भी कम्पायमान हुआ, ऐसे ही वह समझता है ॥८७॥ सोया हुआ जबतक जागृत हुआ नहीं, तबतक उसको स्वप्न सच्चा ही मालूम पडता है, सच्चे रस्सीका जबतक ज्ञान हुआ नहीं, तबतक सर्पाभास होना और उसका भय मालूम होना, इसमें आश्चर्यकी बात क्या है ? ॥८८॥ जबतक आंखोंमें पीलियारोग रहता है तबतक चन्द्रमा पीला दीखेगा ही, मृग मृगजलके भ्रममें पडजाय, इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥८९॥ उसीतरह जो शास्त्र और गुरु इनके नामकी हवातक अपने देहको लगने नहीं देता, जो केवल मूर्खतासे ही जीवन व्यतीत करता है, ॥ ३९० ॥ वह जैसे मेघकी गतिका आरोप स्यार चन्द्रपर करते हैं, उसीतरह आत्मापर देहरूपी जाल फैलाता है ॥ ९१ ॥ बाद यही सच्चा ख्याल होजानेसे हे अर्जुन ! वह कर्मकी मजबूत गांठसे देहरूपी कारागारमें बहुत जोरसे पकडकर कसके बांधा जाता है ॥ ९२ ॥ हे अर्जुन ! देखो, मैं नलिकापर बंधगया हूँ, ऐसी दृढ भावना होजानेसे बेचारा सुग्गा, पांव खुले रहनेपर भी फँसकर रहता नहीं क्या ? ॥ ९३ ॥ अतः जो निर्मल आत्मस्वरूपपर माया करके किये हुए कर्म लादता है, वह असंख्य कोटयवधि मापोंसे कर्मोंकी गिनती करते बैठता है ॥९४॥ अब वडवाग्नि समुद्रमें रहता है पर समुद्रका पानी उसको छूता नहीं, तैसे वह कर्ममें व्यापृत रहता है, पर उसको कर्मका स्पर्श होता नहीं ॥ ३९५ ॥ इसतरह अलिप्ततासे जो कर्म व्यापारमें वर्तता है, उसको पहचानना कैसे, वह तुझे अब कथन करते हैं ॥ ९६ ॥ क्योंकि, मुक्तोंके लक्षणोंका विचार करते करते अपनेको मुक्तता प्राप्त होती है, दीपकके प्रकाशसे देखते देखते जैसे अपनी गुम गई वस्तु दीख पड़ती है, ॥ ९७ ॥ अथवा दर्पण चूना लगाकर साफ करनेके बाद, अपना रूप जैसे अपनेको स्पष्ट देख पड़ता है, अथवा जलका सङ्ग होते ही नमक जैसे जलरूप हो जाता है ॥९८॥ यह भी रहने दो, प्रतिबिंब पीछे लौटकर फिर बिंबको देखनेके लिये आवे तो यह जैसे अपने आप प्रतिबिंबही बन जाता है, ॥ ९९ ॥ वैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही संत लोगोंके विचारोंको देखते रहते अपनेको अपना विस्मृत आत्मस्वरूप फिर मिल जाता है, अतः संतोंका ही सदैव वर्णन करना चाहिये और सुनना चाहिये ॥४००॥ रहने दो, जैसे चर्मचक्षुमें रहनेवाली दृष्टि आंखकी चमड़ीसे बँधी नहीं जाती, वैसे जो कर्ममें व्यापृत रहने पर भी कर्मके सुख दुःखके वैषम्यसे बद्ध नहीं होता ॥ १ ॥ ऐसा जो बन्धमुक्त हुआ है, उसका लक्षण अब हम उपपत्ति पूर्वक निःसंशय युक्तियुक्त घटाकर कहते हैं. ॥ २ ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७ ॥

हे सुज्ञ अर्जुन ! जो जीव अज्ञानकी निद्रामें स्वप्नकी चल-विचल स्थितिमें अपरिगणित कालतक सोया रहा, ॥ ३ ॥ वह 'तत्त्वमसि' इस महासिद्धान्त वाक्यके श्रवणसे और गुरुकृपाके प्रतापसे मस्तकपर हाथ रखनेसे अथवा ऐसा नहीं तो, शिरपर थपाड़ियानेसे ॥४॥ जलदी ही विश्वरूपी स्वप्नाभास सहित माया-रूपी निद्रा छोड़कर अकस्मात् अभेदभाव ( अद्वैत ) के आनन्दसे जागृत हो जाता है ॥ ४०५ ॥ फिर जैसे चन्द्रके किरण प्रकाशित होनेपर मृगजलकी स्पष्ट और अलग भासनेवाली बाढ़ लुप्त हो जाती है ॥६॥ अथवा बाल्यावस्था समाप्त हो जानेपर जैसे डर दिखानेको 'हौवा' आदिको स्थान नहीं मिलता, अथवा इंधन (लकड़ी) जल जानेपर वह जैसे फिर इंधन नहीं हो सकता ॥७॥ अथवा जागृत हो जानेपर जैसे स्वप्न दृष्टिके सामने नहीं ठहरता, वैसे ही इस जीवमें अहंता ममता बिलकुल नहीं रहती ॥ ८ ॥ फिर सूर्य, अंधेरेका लाभ हो इस बुद्धिसे कोई भी सुरंगमें घुसने पर भी उसके भागको जैसे अंधेरा कभी भी आता नहीं ॥ ९ ॥ वैसे ही जो आत्मस्वरूपसे वेष्टित हो जाता है, वह जिस जिस दृश्य पदार्थको देखता है, वह वह पदार्थ देखनेवालेका ही रूप ग्रहण करनेके कारण उसके साथ एकरूप हो जाता है ॥ ४१० ॥ अग्नि जिस वस्तुको लगती है, वह वस्तु जैसे स्वयं ही अग्निरूप हो जाती है, फिर यह दाह्य ( जलने योग्य ) वस्तु है और यह दाहक ( जलानेवाला ) है, यह भेद अपनेआप नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥ वैसे कर्मके आकारको आत्मासे भिन्न मानकर वह कर्म आकार लानेका, कर्तृत्वका आत्मापर आया हुआ मिथ्या आरोप हट जानेपर जो कुछ शेष रहता है ॥ १२ ॥ वही आत्म-स्थिति है, ऐसी आत्म-स्थितिका प्रभुत्व जिसको प्राप्त होता है, वह इस देहमें बद्ध होकर रहेगा क्या ? प्रलयकालका अमर्याद अपार जलका प्रवाह साधारण नदीके प्रवाहमें घुस जायगा क्या ? ॥ १३ ॥ हे पांडुसुत ! इस प्रकारकी पूर्णताको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पहुंची हुई अभिन्न भावसे स्फूर्तिको प्राप्त होनेवाली अहंता ( सर्वात्मभावना ) बिचारे देहसे परिच्छिन्न हो सकती है क्या ? सूर्यका बिंब कभी सूर्यको ही आच्छादित कर सकती है क्या ? ॥ १४ ॥ मन्थन करनेसे छांछमेंसे निकला हुआ माखन फिर छांछमें डाल दिया जावे, पर उसमें अलिप्तता गुण होनेसे वह कभी छांछमें मिलकर रह सकता है क्या ? ॥ ४१५ ॥ अथवा वीरेश अर्जुन ! काष्ठगत गुप्त अग्निको एक दफे काष्ठसे अलग करनेपर वह कभी काष्ठमें बन्द होकर रहता है क्या ? ॥ १६ ॥ अथवा रात्रिके पेटमेंसे जो तेजोराशि सूर्य बाहर निकलता है, वह रात ही रहता है, ऐसी बात कभी सुननेमें आती है क्या ? ॥ १७ ॥ वैसे ही वेद्य और वेदक याने जानने योग्य विषय और ज्ञाता यह भेद ही जिससे लीन हो गया है; उसमें मैं देह हूँ ऐसी हीन अहंता स्फूर्तिको कैसे प्राप्त हो सकती है ? ॥ १८ ॥ आकाश जिस जगहसे जिस दूसरे स्थानको जाय उस उस सभी स्थानमें वह समानही भरा रहता है, अतः वह सदैव अपने आप सर्वव्यापकतया व्याप्त रहता है ॥ १९ ॥ वैसे ही वह जो-कुछ करे, वह सब उसके ही आत्मरूप रहता है, तब किस कर्ममें वह कर्तृत्वके अभिमानसे वेष्टित होवे ? ॥ ४२० ॥ आकाशके जैसा दूसरा वसातिस्थान नहीं रहता, समुद्रको जैसे प्रवाह नहीं रहता, ध्रुव नक्षत्रको जैसे गति नहीं रहती, वैसे ही ऐसे जीवको कर्म भी नहीं रहता है ॥ २१ ॥ इस रीतिसे आत्मज्ञानसे जिसके अहंभावका लोप हुआ है उसको भी जबतक देह है, तब-तक कर्म चला ही रहता है ॥ २२ ॥ हवा चल चलकर बन्द होनेपर भी कम्पित हुए वृक्ष वेग होनेसे कुछ समय हलते ही रहते हैं, अथवा कपूर रखनेके पात्रमेंसे कपूर निकाल लेनेपर भी उस पात्रमें कुछ काल सुगन्ध आती ही रहती है ॥ २३ ॥ अथवा गान समारम्भ समाप्त होनेपर भी उसमें लीन हुए पुरुषका आनन्द थोड़ी देर रहता है, अथवा पृथ्वीपरसे पानी वह जानेपर भी थंडी बनी रहती है ॥ २४ ॥ सूर्यके अस्त हो जानेपर भी सन्ध्याके समय सूर्यकी ज्योतिप्रभा रहती ही है ॥ ४२५ ॥ अथवा जिसपर निशान धरा है उस लक्ष्यको बाणसे मारनेपर भी जैसी उसमें ताकत अवशिष्ट रहे उस प्रमाणसे आगे उडता है ॥ २६ ॥ अथवा चक्रेपर बर्तन तैयार हो जानेपर कुम्हार चक्रेपरसे निकाल ले जाता है परन्तु बर्तन बनाते समय मिली हुई पूर्वकी गतिसे वह चक्का कुछ समय बर्तन ले जानेपर भी घूमता ही रहता है ॥ २७ ॥ वैसे ही देहाभिमान जानेपर भी हे धनंजय ! देह जिस स्वभावसे उत्पन्न हुआ रहता है,वह स्वभाव उस देहसे अपने आप कर्म कराते ही रहता है ॥२८॥दिलमें कुछ विचार न करनेपर भी स्वप्न गिरता है, विना बोये जङ्गलके पेड़ उत्पन्न

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



होते हैं और बिना सुन्दर रचना करनेपर भी गंधर्वकी इमारत आकाशमें उठती हैं ॥ २९ ॥ उसी तरह आत्माके कोई एक व्यापार न करनेपर भी देहादि पांच कारणोंसे सब कर्म अपने आप उत्पन्न होते हैं ॥ ४३० ॥ पूर्व कर्मके संस्कारके अनुसार पांच हेतु और पांच कारण इनका मेल अनेक प्रकारके कर्मोंको कराते रहता है ॥ ३१ ॥ बाद उस कर्मसे सब जगत्का संहार होवे, अथवा उत्तम नूतन जगत्की उत्पत्ति हो ॥ ३२ ॥ परन्तु कुमुदिनी क्यों कुम्हला जाती है और कमल क्यों विकसित होता है, इन दोनों बातोंकी तरफ सूर्य कभी विचार नहीं करते ॥ ३३ ॥ अथवा आकाशसे बिजलीकी वृष्टि होकर पृथ्वीके टुकडे हो जावें, अथवा शांत मन्द पर्जन्यसे तृणोंकी उत्पत्ति होकर पृथ्वीतल हरा चारायुक्त हो ॥ ३४ ॥ परन्तु आकाश इन दोनों बातोंको जैसे नहीं जानता, वैसे ही जो देहमें ही देहातीत स्थितिमें रहता है ॥ ४३५ ॥ वह जैसे जागृत हुआ स्वप्नको देखता नहीं, वैसे देहादिकोंसे होनेवाली क्रियाओंसे सृष्टि हुई अथवा तोड़ दी यह नहीं देखता है ॥ ३६ ॥ यों तो केवल चर्मचक्षुसे देखनेके कारण जिनकी दृष्टि देहके बाहर जाती ही नहीं उनको ऊपरका पुरुष कर्ममें बँधा हुआ है ऐसा ही भासता है ॥३७॥ पशु-पक्षियोंको डरानेके लिये खेतमें खड़ा किया हुआ तृणोंका पुतला सचमुच ही खेतका रखवाला है, ऐसा स्यार नहीं मानता क्या ? ॥ ३८ ॥ पागल हुए मनुष्यने कपड़ा पहना है कि नङ्गा है, यह चाहें तो लोग देखकर निश्चय करें, पर उस पागलको उसका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, युद्धमें मरे हुए सैनिकोंके जखम दूसरे चाहें तो गिनें, उसको उनका गन्ध भी नहीं रहता है ॥ ३९ ॥ सती जाते समय महापतिव्रताको अपूर्व वस्त्र, अलङ्कारादिसे कितना दिव्य करना पड़ता है, इसका विचार सब जगत् करे, पर उस सतीको तो आगकी जलन, वह अपना नाजुक शरीर और उद्विग्न होनेवाले लोग इनमेंसे कुछ भी दीखता नहीं ॥४४०॥ वैसे ही जिसको स्वस्वरूपका साक्षात्कार हुआ, जिसका द्रष्टृत्व दृश्यवस्तुसे एकरूप होकर लीन हुआ, वह इन्द्रिय समुदायसे कौन व्यापार होता है, यह जानता भी नहीं ॥ ४१ ॥ जलके बडे भारी तरंगोंमें छोटे छोटे तरंग समा जाते हैं, यद्यपि तटपरके मनुष्य इन तरंगोंने उन तरंगोंको निगल लिया, ॥ ४२ ॥ ऐसा मान लेनेपर भी इस क्रियामें पानीको दूसरा कोई जैसे निगलता नहीं, वैसे ही जो पूर्णावस्थाको पहुँचा है, उसको मारनेको अपनेसे भिन्न ऐसी दूसरी वस्तु शेष नहीं रहती ॥ ४३ ॥ सुवर्णकी चण्डिकाने सुवर्णके महिषासुरका सुवर्णके शूलसे वध किया, ॥ ४४ ॥ यह व्यवहार मन्दिरमें रहनेवाले पूजारीको सत्य जान पडे, पर वस्तुतः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चण्डिका, शूल और महिषासुर ये सब सोना ही हैं ! ॥ ४४५ ॥ चित्रमें अग्नि और जल ये दोनों समक्ष दिखाये रहते हैं, पर यह सब दृष्टिकी ही भूल है, प्रत्यक्ष चित्रपटमें आगभी नहीं रहती और जलांशभी नहीं रहता है ॥ ४६ ॥ वैसेही मुक्त पुरुषका शरीर केवल प्राचीन संस्कारोंके अनुसन्धानसे हिलता चलता रहता है, यह रहस्य ख्यालमें न आनेसे अज्ञानी जन उसे ही कर्ता समझते हैं ॥ ४७ ॥ पर उस स्वाभाविक कर्मोंसे यद्यपि तीनों लोकोंका घात हुआ तो भी उसने यह घात किया, ऐसा कभीभी कहना नहीं ॥ ४८ ॥ अन्धकार पहले प्रकाशकी सहायतासे देखेंगे और बाद उसका नाश करेंगे, ऐसा कहना कितने चतुराईका है ? वैसेही ज्ञानी पुरुषको दूसरा भाव ही रहनेके कारण उसको मारनेको अपनेसे भिन्न ऐसी दूसरी वस्तु शेष ही नहीं रहती ॥ ४९ ॥ अतः उसकी बुद्धिको पाप-पुण्यका गन्ध भी नहीं रहता है, कोईएक नदी गंगाजीको मिलगयी तो भी जैसे गंगाजीको अशुद्धता नहीं होती, उस तरहका ही यह प्रकार है ॥ ४५० ॥ अग्निका अग्निसे झगडा हुआ तो कौन किसको जलायगा भला ? हे धनंजय ! शस्त्र जब अपना अपनेको ही घाव करे तो क्या होगा ? ॥ ५१ ॥ वैसे ही जो कर्मको अपनेसे पृथक् नहीं समझता, वह उस कर्मसे अपनी बुद्धिको किसका लेप लगायगा ? ॥ ५२ ॥ अतः कार्य कर्ता और क्रिया यह त्रिपुटी जिस पुरुषके सम्बन्धसे आत्मस्वरूप ही हुई, उसको शरीरादिकोंसे होनेवाले कर्मका बन्ध होता नहीं ॥ ५३ ॥ क्योंकि अपनेको कर्ता माननेवाला जो जीव वह दश इंद्रियोंके हथियारोंसे पांचप्रकारके हेतु ( महाभूत ) ओंको बडे चातुर्यसे बाहर निकाल कर रचना करते रहता है ॥ ५४ ॥ बाद न्याय और अन्याय इन दो प्रकारकी नेव तयार कर एक क्षणमें वह कर्मोंका मन्दिर खडा करता है ॥ ४५५ ॥ इस प्रचंड कार्यमें आत्मा कुछ भी सहायता नहीं करता है, पर तुम ऐसे कहोगे कि 'यह आत्मा कर्मकी पूर्व तयारीको तो सहायक होता है कि नहीं !' ॥ ५६ ॥ तो वैसा भी नहीं, हे अर्जुन ! जो आत्मा केवल साक्षीभूत और ज्ञानस्वरूप है, वह आप होकर कर्मप्रवृत्तिके संकल्पको उठनेको कहेगा क्या ? ॥ ५७ ॥ जिस कर्मप्रवृत्तिके विषयमें सब लोग लगे हैं, उस प्रवृत्तिके भी क्लेश आत्माके अंगको स्पर्श नहीं करते ॥५८॥ अतएव जो केवल सर्वस्वी आत्मस्वरूप बनगया, उसको कर्मके बन्दीखानेमें जानेका प्रसंग नहीं आता ॥ ५९ ॥ परन्तु अज्ञानरूपी पटपर विपरीत ज्ञानरूपी चित्र प्रतिबिंबित होता है उस चित्रके खींचनेहारी कार्य, कर्ता, क्रिया त्रिपुटी प्रसिद्ध है ॥ ४६० ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय यह त्रिपुटी जगतका बीज है और कर्मकी प्रवृत्ति इससे होती है इसमें संशय नहीं ॥ ६१ ॥ हे धनंजय ! अब इन तीनोंका अलग अलग स्पष्टीकरण करते हैं, सुनो ॥ ६२ ॥ जीवरूपी सूर्यमण्डलके पञ्चेन्द्रिय-रूप किरण वेगसे आकर विषयरूपी कमलकी कलीको विकसित करते हैं ॥ ६३ ॥ अथवा जीवरूपी राजाके इन्द्रियरूपी सज्ज हुए घोडे दौड लगा-कर विषयरूपी देशसम्बन्धि सुखदुःखको लूट लाते हैं ॥ ६४ ॥ पर दृष्टान्त बस हुए, इन इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले व्यापारसे जो ज्ञान सुखदुःखोंको साथ लेकर जीवसे मिलता है, वह सुषुप्ति अवस्थामें जिसमें लीन होता है ॥ ४६५ ॥ उस जीवको 'ज्ञाता' कहना चाहिये, हे पाण्डुसुत ! अबतक जिसका वर्णन किया, उसे इस प्रकरणमें 'ज्ञान' समझना चाहिये ॥ ६६ ॥ हे किरीटी ! अविद्याके उदरमें उत्पन्न होते ही जो ज्ञान अपना तीन जगह विभाग करता है ॥ ६७ ॥ जो ज्ञान अपनी दौडके आगे ज्ञेय याने ज्ञानविषयका गोला फेककर, पीछे तरफ ज्ञातृत्वके अभिमानको उठाता है, ॥ ६८ ॥ और इस-प्रकार ज्ञाता और ज्ञेय इनके बीचमें परस्पर सम्बंध होनेका मार्ग सिद्ध होजानेपर जिस ज्ञानकी सहायतासे इस मार्गकी रहदारी निरन्तर रहती है ॥ ६९ ॥ जिस ज्ञानकी दौड ज्ञेयकी सीमातक पहुँचती है और जो सब पदार्थोंको अलग अलग नाम देता है ॥ ४७० ॥ वह ज्ञान 'सामान्यज्ञान' है, इसमें यह सत्य है, अब ज्ञेयका भी लक्षण सुनो ॥ ७१ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, रस इसतरह ज्ञेयके प्रगट होनेके मार्ग हैं ॥ ७२ ॥ जैसे एक ही आम-रस, वर्ण और सुगन्ध इत्यादिकोंसे अलग अलग इन्द्रियोंके स्पर्श करनेसे जुदे जुदे मालूम होते हैं ॥ ७३ ॥ वैसे ज्ञेय यह एक ही रहता है, पर ज्ञान उस ज्ञेयका ग्रहण इन्द्रियोंके द्वारा होते रहनेके कारण वह ज्ञेय पांचप्रकारका होता है ॥ ७४ ॥ और जैसे आकस्मिक जलकी बाढ अन्तमें समुद्रमें पहुँचते ही समाप्त होजाती है, अथवा फल आते ही धान्यकी बाढ रुक जाती है, ॥ ४७५ ॥ वैसेही इन्द्रियोंके प्रवाहके साथ दौडनेवाले इस ज्ञानकी जहाँ सीमा होती है, हे किरीटी ! वही ज्ञेय याने ज्ञानका विषय है ॥७६॥ हे धनंजय ! इसप्रकार ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इस त्रिकूटको तुझे स्पष्टकरके कहा, इस त्रिकूटसे सब कर्मोंकी प्रवृत्ति होती है ॥ ७७ ॥ जो शब्दादिक विषय वे ऐसे पांच प्रकारके हैं, पर जो ज्ञेय, वह तो प्रिय या अप्रिय ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


एकतरहका ही रहता है ॥ ७८ ॥ हे धनञ्जय ! और ज्ञान ज्योंही थोडा भी ज्ञेय ज्ञाताको दिखाने लगता है त्योंही ज्ञाता विषय स्वीकारनेको अथवा तिरस्कार करनेको आरम्भ करता है ॥ ७९ ॥ और मत्स्यको देखते ही जैसे बगला, अथवा द्रव्यका खजाना देखते ही जैसा दरिद्री, अथवा स्त्रीको देखते ही जैसा कामी पुरुष हलचल करने लगता है ॥ ४८० ॥ अथवा जैसे उतारमें पानी, अथवा फूलोंके सुगन्धकी ओर भ्रमर, अथवा सन्ध्यासमयमें दूधकी धार निकालनेके समय जैसे छूटा हुआ बछडा गायके तरफ दौडता है ॥ ८१ ॥ अथवा स्वर्गसंबन्धि उर्वशी आदि अप्सराओंकी मोहक बातें सुनकर जैसे मनुष्य स्वर्गसुख प्राप्तिके लिये आकाशमें यज्ञ-यागरूपी सीढियां बांधने लगते हैं ॥ ८२ ॥ अथवा हे किरीटी ! आकाशमें बहुत ऊपर उडनेवाला कबूतर जैसे कबूतरीको देखते ही उसकी तरफ लोटपोट करते गिरता है ॥ ८३ ॥ अथवा मेघोंकी गर्जना कानमें आते ही जैसे मोर आकाशके सामने वर्तुलाकार घूमता है, वैसेही ज्ञेयको देखते ही ज्ञाता उसके तरफ दौडता है ॥ ८४ ॥ अतः हे पाण्डुसुत ! सब कर्मोंका आरम्भ ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता इस त्रिकूटसे ही है ॥ ३८५ ॥ अब वही ज्ञेय कदाचित् ज्ञाताको प्रिय लगे तो उसका उपभोग लेनेको एक क्षणका भी विलम्ब उसको सहन नहीं होता ॥ ८६ ॥ परन्तु यदि वह उसको अप्रिय मालूम हो तो उसके तिरस्कारको जो थोडा भी समय लगता है, वह भी युगके समान उसको लम्बा मालूम होता है ॥ ८७ ॥ सर्प या हार इनके घेरेमें जो आदमी अचानक आजाता है, उसके अन्तःकरणमें जैसे भय और आनन्द इनका तत्काल ही उत्थान होता है ॥ ८८ ॥ वैसी हा स्थिति, थोडासा प्रिय अथवा थोडासा अप्रिय ज्ञेय देखनेमें आते ही ज्ञाताकी होती है और फिर वह प्रियका स्वीकार और अप्रियका त्याग करनेके लिये छटपटाने लगता है ॥ ८९ ॥ शत्रुपक्षके तरफका अपने बराबरका मल्ल देखकर स्फूर्ति आनेसे जैसे कोईएक सब सेनाका सेनापति स्वयं रथमेंसे उतरकर उसक साथ दो हाथ ( मल्लयुद्ध ) करनेके लिये पैदल ही आगे बढता है ॥ ४९० ॥ वैसे अबतक जो ज्ञातृत्वसे केवल ज्ञाता ऐसा था, वह अब कामगिरीको आरम्भ कर कर्ताके रूपमें प्राप्त होता है, जैसे भोजनकरनेवाला अन्न पकानेको बैठे ॥ ९१ ॥ अथवा भ्रमर ही बगीचा बनावे, अथवा सोनेकी परीक्षा करनेवाला स्वयं ही कसौटीका पत्थर बन जावे, अथवा देवही मंदिरके बांधनेके काममें लग जावे ॥ ९२ ॥ उसीतरह हे पाण्डव ! ज्ञेयविषयका त्याग स्वीकारके लिये जब ज्ञाता इन्द्रियसमूहसे काम लेता है, तब ज्ञाता कर्ता होता है ॥ ९३ ॥ इस रीतिसे 'ज्ञाता'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



खुद 'कर्ता' हुआ कि वह 'ज्ञानको' 'साधन' बनाता है और उस कारणसे 'ज्ञेय' अपने आपही 'कार्य' होता है ॥ ९४ ॥ इसतरह हे सुमति ! ज्ञानकी कुशलतासे बदल जाता है रातमें जैसे आंखोंकी शोभा बदल जाती है ॥ ४९५ ॥ अथवा दैव विरुद्ध होजानसे जैसे श्रीमानोंके ऐश्वर्यविलासमें भी बदल हो जाता है, अथवा पूर्णमासके अनन्तर जैसे चन्द्रबिंबमें फरक मालूम होता है ॥ ९६ ॥ वैसे ही इन्द्रियोंको चालन मिलनेसे ज्ञाताके चारों-तरफ कर्तृत्वका पेंच बैठता है, ऐसी स्थितिमें उसके कौनसे लक्षण दीख पडते हैं, उनको सुनो ॥ ९७ ॥ बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार ये अन्त-रिन्द्रियाँ हैं ॥ ९८ ॥ और त्वचा, कान, नेत्र, जीभ और नाक ये पांच प्रकारकी बाह्य इन्द्रियाँ होती हैं ॥ ९९ ॥ इनमेंसे अन्तरिन्द्रियोंके साधनोंसे कर्ता कर्तव्यका अन्दाज बांधता है और बाद यदि वह कर्तव्य सुखका साधन होगा, ऐसा निश्चित होजाय ॥ ५०० ॥ तो वह नेत्र इत्यादि जो बाह्य दश इन्द्रियाँ हैं, उनको उस व्यापारमें लगाता है ॥ १ ॥ बाद उस कर्तव्यकी सिद्धि होनेतक वह उस इन्द्रियसमूहको काममें लगाता है ॥ २ ॥ अथवा यदि वह कर्तव्य दुःखका कारण होगा, ऐसा उसने अन्दाज किया तो वह उसका त्याग करनेके तरफ दशही इन्द्रियोंको तत्काल लगाता है ॥ ३ ॥ और बाद दुःखोंका सर्वथा नाम शेष रहनेतक उनको दिनरात काममें जोते रहता है, जैसे कोई राजा वसूल करनेके लिये अपने नौकरोंको रातदिन काममें लगाता है, इस रीतिसे जब इन्द्रियाँ चालसे चलती हैं, तब ज्ञाताको 'कर्ता' यह नाम देना चाहिये, तुम ध्यानमें लो ॥ ४ ॥ ५०५ ॥ और कर्ता अपने सब कामोंमें इन्द्रियोंको आयुधोंके समान योजित करता है, अतः हम-लोग इन्द्रियोंको करण याने साधन, आयुध कहते हैं ॥ ६ ॥ और इन करणोंका प्रयोग करके कर्ता जो क्रिया करता है उस क्रियासे व्याप्त जो है वह यहाँपर कर्म समझना चाहिये ॥ ७ ॥ सोनारकी बुद्धि जैसे आभरणको व्याप्त कर रहती है, अथवा चन्द्रकिरण जैसे चन्द्रिकाको व्याप्त करके रहते हैं, अथवा सुन्दरतासे जैसे वल्ली व्याप्त रहती है ॥ ८ ॥ अथवा द्युति जैसे प्रकाशको अथवा मधुरता ईखके रसको व्यापती है; अथवा अवकाश ( याने खाली स्थान ) जैसे आकाशसे व्याप्त रहता है ॥ ९ ॥ वैसे कर्ताकी क्रियाओंसे जो व्याप्त होता है, हे धनंजय ! वही कर्म कहा जाता है, दूसरा कुछ नहीं ॥ ५१० ॥ इसतरह हे विचक्षणशिरोमणि अर्जुन ! कर्ता, कर्म, करण इस त्रिपुटीका लक्षण तुझे कथन किया है ॥ ११ ॥ यहाँपर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह कर्म प्रवृत्तिका त्रिकूट और कर्ता, करण और कार्य, यह कर्मका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



त्रिकूट ॥ १२ ॥ अग्निमें धुआँ अथवा बीजमें वृक्ष, अथवा मनमें वासना ये जैसे स्वाभाविक मौजूद रहते हैं, सुवर्णकी खानिमें जैसे सोना मौजूद रहता है, उसमें का ही यह प्रकार है ॥ १३ ॥ १४ ॥ अतः हे पाण्डुसुत ! 'यह कार्य और मैं कर्ता' ऐसी भावना जहाँ रहती है वहाँ उन सम्पूर्ण क्रियाओंसे आत्मा एकदम दूर और अलिप्त रहती है ॥ ५१५ ॥ इसलिये हे सुमति ! मैं वार बार कहता हूँ कि आत्मा इस कर्मप्रवृत्तिसे बिलकुल अलग है, पर तुझे यह सब समझता ही है तब यह बस करो ॥ १६ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥

पर अब जिन ज्ञान, कर्म, कर्ता इन तीनोंको बताया, ये तीन तीन गुणोंसे तीन प्रकारके होते हैं ॥ १७ ॥ इसलिये हे धनंजय ! ज्ञान, कर्म और कर्ता इन तीनों पर भी भरोसा नहीं रखना चाहिये, क्योंकि तीनगुणों में से दो गुण बंधक होते हैं और अकेला सत्त्वगुण ही मोक्ष देनेको समर्थ रहता है ॥ १८ ॥ इस सत्त्वगुणकी तुझे पहिचान होगी, इस रीति से इन तीनगुणोंके लक्षण अलग अलग कहते हैं, यह गुणभेद सांख्यशास्त्रमें उत्तम-रीतिसे स्पष्ट किया है ॥ १९ ॥ जो सांख्यशास्त्र विचारका समुद्र है, जो आत्मज्ञानरूपी कुमुदिनीको विकसित करनेवाला चंद्रमा ही है, ज्ञानदृष्टि देनेवाले शास्त्रोंका राजा है ॥ ५२० ॥ अथवा जो दिनरातकी तरह एक जगह मिश्रित हुए प्रकृति पुरुषोंको स्पष्टरूपसे अलग अलग दिखानेवाला त्रिभुवनका सूर्यही है ॥ २१ ॥ जिस शास्त्रमें अमर्याद अज्ञान समुदायको चौबीस तत्त्वोंके मापसे मापकर, परमतत्त्व जो ब्रह्म उसमेंका सम्पूर्ण आनन्द भोगनेमें आता है ॥ २२ ॥ हे अर्जुन ! उस सांख्यशास्त्रने जिनका स्तोत्रपाठ किया है, वह गुणभेदका आख्यान कैसा है, वह सुनो ॥ २३ ॥ जिसवास्ते अपने स्वाभाविक सामर्थ्यसे इस गुणत्रयसे त्रैविध्य चिह्नसे सब दृश्य जगत् अंकित हुआ है ॥ २४ ॥ उसवास्ते इन सत्त्व, रज, तमोंकी इतनी बडाई है कि, ब्रह्मदेवसे लेकर कीट चींटी तक सब इन गुणोंसे तीन प्रकारके हुए हैं ॥ ५२५ ॥ पर यह सब विश्वसमुदाय जिससे भेदित होनेके कारण गुण-भेदके पकडमें आगया, वह ज्ञान तुझसे मैं पहले कहता हूँ ॥ २६ ॥ क्योंकि यदि नेत्र साफ रहे तो सभी वस्तु स्पष्ट दीखती हैं, वैसेही शुद्ध ज्ञान प्राप्त होने पर सभी वस्तुओंका शुद्धस्वरूप मालूम होता है ॥ २७ ॥ अतः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जिसे सात्त्विकज्ञान कहते हैं, उसे कहता हूँ. ख्याल देकर सुनो, ऐसा मुक्ति-गुणके आधार श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति कहा ॥ २८ ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! सात्त्विकज्ञान यही सचमुचमें शुद्धज्ञान है; इस ज्ञानका उदय होनेपर ज्ञाताके सहित ज्ञेय ( ब्रह्मैक्यमें ) विलीन होजाता है ॥ २९ ॥ जैसे अन्धकारको सूर्यदर्शन होता नहीं, अथवा समुद्रको नदीके स्वरूपका ज्ञान होता नहीं, अथवा आलिङ्गनको प्रवृत्त होने पर भी जैसे अपनी छाया हाथमें मिलती नहीं ॥ ५३० ॥ उसी तरह जिस ज्ञानको शंकरसे लेकर तृण तककी कोई भी नाम रूपात्मक व्यक्ति स्पर्श कर नहीं सकती ॥ ३१ ॥ लिखे हुए चित्रको हाथसे देखने लगने पर, अथवा नमकको पानीसे धोकर लेने लगने पर, अथवा जागृत होकर स्वप्नका अनुभव करने लगने पर, जैसे कुछ भी शेष नहीं रहता ॥ ३२ ॥ वैसे ही जिस ज्ञानसे ज्ञेय देखने लगने पर, ज्ञाता ( जाननेवाला ), ज्ञान ( जानना ), ज्ञेय ( जाननेयोग्य ) इन तीनोंमेंसे कुछ भी बाकी नहीं रहता ॥ ३३ ॥ जैसे सोनेको गलाकर कुछ उसमेंसे अपनेको चाहिये वे अलंकार नहीं निकलते, अथवा जलको छानकर कुछ उसके तरंग अलग करनेमें नहीं आते ॥ ३४ ॥ वैसे ही यह दृश्यस्थिति जिस ज्ञानके हाथमें नहीं आती, वही ज्ञान वस्तुतः सात्त्विक है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ५३५ ॥ बडे कुतूहलसे दर्पण देखने जायँ, तो सामने आपही खुद अपनेको दीखता है, उसी तरह ज्ञेयका स्थान हटाकर जो ज्ञान ज्ञाता ही बनजाता है ॥ ३६ ॥ जो ज्ञान मोक्षलक्ष्मीका मंदिर है, वही सात्त्विक ज्ञान, ऐसा फिर कहते हैं, पर यह विषय बस है. अब राजस-ज्ञानका लक्षण सुनो ॥ ३७ ॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

हे पार्थ ! सुनो, कि जो ज्ञान भेदके आश्रयसे प्रवृत्त होता है, वह राजस समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ वह भेदभावसे प्राणिमात्रमें व्याप्त होकर और ज्ञाताको भ्रममें डालकर जिस ज्ञानने विचित्रता उत्पन्न करदी है ॥ ३९ ॥ जैसे प्रत्यक्ष दीखनेवाली वस्तुओंपर विस्मरणरूपी पडदेको डालकर, निद्रा स्व-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


प्रका खाली कष्ट जीवसे अनुभव कराती है ॥ ५४० ॥ वैसे जो ज्ञान सच्चे आत्मज्ञानरूपी मंदिरके परकोटके बाहर मिथ्यामोहरूपी गड्ढेमें जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंका खेल जीवको दिखाता है ॥ ४१ ॥ अलंकारके रूपसे छिपाहुआ सोना जैसे छोटे बालकको समझता नहीं, वैसेहीं जिस ज्ञानको नाम और रूपके व्यवधानसे छिपाहुआ अद्वैततत्त्व दीखता नहींसा होता है ॥ ४२ ॥ मटके और घडोंके रूपसे दिखनेवाली पृथ्वी मूर्ख-लोगोंके पहिचानमें नहीं आती, अथवा दीपककी भावना रहनेसे वहाँ अग्निका ज्ञान होता नहीं ॥ ४३ ॥ अथवा वस्त्र यह नाम वस्तुको मिलनेपर उसमेंकी तंतुओंका ज्ञान मूर्खको होता नहीं ॥ ४४ ॥ वैसेही जिस ज्ञानसे भूतमात्र अलग अलग दिखाई देते हैं और एकत्वकी बुद्धि नष्ट होजाती है ॥ ५४५ ॥ और जैसे ईंधनोंसे अग्नि भिन्न मालूम पडती है, फूलोंसे गन्ध अलग मालूम होता है, जलाशय भिन्न २ होनेसे चन्द्रमा पूर्ण होनेपर भी अलग ही दिखाई पडता है ॥ ४६ ॥ वैसेही अनेकप्रकारके पदार्थोंका भेदकरके रूप और आकृतिके अनुसार उनके छोटे बडे वेषका जो ज्ञान करता है, वह ज्ञान राजस होवे है ॥ ४७ ॥ चंडालका घर हटानेकेलिये भी वह कैसे है, कहाँ है, यह सब जानना पड़ता है, वैसे ही तामस ज्ञान का भी लक्षण जानना चाहिये, वहभी तुझे अब कहता हूँ, अच्छी तरहसे समझकर ग्रहण करो ॥ ४८ ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

हे किरीटी ! जो ज्ञान शास्त्रविधिरूपी वस्त्र पहिनता नहीं और नग्न होनेसे जिसके तरफ सदाचारकी माता जो श्रुति वह पीठ फेर देती है ॥ ४९ ॥ और शास्त्रका बहिष्कार होनेसे जिस ज्ञानकी निन्दाका स्पर्श नहीं, इसवास्ते जिसको अन्योंने ( स्मृति इत्यादिकोंने ) भी म्लेच्छ धर्मके पहाडमें हकाल दिया है ॥५५०॥ जो ज्ञान इस रीतिसे तमोगुणरूपी पिशाचसे झपटा जानेके कारण पागल भ्रमिष्ठ होकर घूमते रहता है ॥ ५१ ॥ जो ज्ञान शरीरसंबंधमें कोई भी प्रतिबन्ध नहीं मानता, जो कोई भी पदार्थ निषिद्ध नहीं समझता, जैसे जनशून्य ग्राममें छोडा हुआ कुत्ता ॥ ५२ ॥ जो पदार्थ मुँहमें ही नहीं समाता अथवा जिस पदार्थके खानेसे मुँह जलता है उसको ही छोडता है, बाकी सब कुछ खाता है ॥ ५३ ॥ अथवा सोना चुराकर ले जाता हुआ चूहा जैसे वह चोखा है कि हीनकस है यह नहीं देखता, अथवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मांस खानेवाला मनुष्य काले या गोरे जानवरका मांस है ऐसा प्रपञ्च नहीं करता ॥ ५४ ॥ अथवा जङ्गलमेंकी आग जैसे यह कौन और वह कौन यह देखते नहीं बैठती, अथवा मक्खी शरीरपर बैठते समय यह मृत है कि जीता है ऐसा विचार नहीं करती ॥५५५॥ अथवा यह वमन किया हुआ अन्न है या परोसा हुआ, ताजा है कि सडा हुआ है यह विवेक जैसे कौवेको नहीं रहता ॥ ५६ ॥ वैसे निषिद्धको दूर करे, योग्यकी रक्षा करे, इस तरह विषयोंमें जो ज्ञान भेद नहीं करता ॥ ५७ ॥ जो जो आँखोंके सम्मने दीखेगा, वह वह उपभोगविषय कहकर लेना चाहिये और उसमेंसे स्त्री और द्रव्य ये शिश्न और पेटको बांटकर देना चाहिये, ऐसा जिस ज्ञानका क्रम रहता है ॥ ५८ ॥ जल देखा कि वह शुद्ध है कि अशुद्ध है यह देखनेकी बात ही नहीं, प्यास जाती है ना बस होगया, तब पानी पीओ ! ॥५९॥ यही प्रकार खानेका. यह भक्षणके योग्य है, यह भक्षणके योग्य नहीं, यह निन्द्य है और यह अनिन्द्य है इसको भी न सोचते, जो मुँहको मधुर लगे, वही पवित्र है ! यही एकतत्त्व है ॥५६०॥ और स्त्रीजाति कहा कि त्वगिन्द्रियसे पहिचाननेकी ! उससे शरीर सम्बन्ध करना, यही एक तत्त्व ! ॥६१॥ जिस ज्ञानसे मतलबको जो उपयोगी पडेगा, वही अपना आप्त और जिस ज्ञानसे देहसंबन्धका मतलब नहीं हो वह आप्त नहीं होता ॥ ६२ ॥ मृत्यु सब कुछ खाता है, अग्नि सब वस्तुको जलाती है, वैसे ही सब जगत् मेरे ही उपभोगके लिये है, ऐसा तामसज्ञानको मालूम होता है ॥ ६३ ॥ इस रीतिसे जिसने सब विश्व केवल उपभोगका विषय है, ऐसा माना, उसके भागको एकही फल आता है, वह कौनसा ? देहपिण्डका पोषण ! ॥ ६४ ॥ आकाशमेंसे वृष्टिके रूपसे गिरनेवाले पानीको जैसे समुद्र यही एक अन्तमें आश्रय होता है, वैसेही तामसज्ञानका कृत्य केवल एक पेटके लिये–पिंडपोषणकेलिय ही रहता है ॥ ५६५ ॥ इतना ही नहीं इसके अतिरिक्त स्वर्ग या नरक कुछ है और अपनेको स्वर्ग प्राप्तिका और नरक दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये, अथवा उसकी प्रवृत्ति या निवृत्ति इस ज्ञानका जिस तामसज्ञानमें अन्धेरा ही रहता है, ॥ ६६ ॥ शरीरका पिंड ही आत्मा और पत्थरकी मूर्तिको ही देव समझता है, इसके परे जिसकी बुद्धि ही प्रवृत्त नहीं होती ॥ ६७ ॥ जो ज्ञान कहता है कि, देहपात हुआ कि सब कर्मोंके सहित आत्मा ही नष्ट हो जाता है, फिर कर्म भोगनेको शेष कौन रहता है ? ॥ ६८ ॥ अथवा ' ईश्वर है' ऐसा विचार कर वही सब भुगाता है, ऐसा निश्चित होय तो ईश्वरको ही बेंचकर खानेसे होगया ! ॥६९॥ गांवके मंदिरके ईश्वर यदि सत्य ही नियमन करनेवाले हैं ऐसा माना जाय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तो देशके पहाड चुप क्यों रहते हैं ? ॥ ५७० ॥ ' देव है ही ' ऐसा क्षणभर मान लें तो यह केवल पत्थरही ठहरता है और आत्मा तो केवल देहपिंड ही है ॥ ७१ ॥ पाप, पुण्य इत्यादि जो दूसरी बातें कहते हैं, वे सब मिथ्या हैं, ऐसा समझकर जो ज्ञान विषयोंका उपभोग लेते रहकर, जंगलकी आगके तरह सब कुछ स्वाहा करना यही योग्य, ऐसा ठहराता है ॥ ७२ ॥ चर्मचक्षुको जो दीखता है, इन्द्रियां जिधर रुचि लगा दें वही अच्छा है ऐसी प्रतीति जिस ज्ञानको होती है ॥ ७३ ॥ थोडेमें कहनेका भाव यह है कि हे पार्थ ! यह विचारसरणि बढते बढते इस प्रकार होती है कि, जैसे धूमका धाराप्रवाह व्यर्थ ही आकाशमें उठता है ॥७४॥ अथवा जिस भेंड नामकवृक्षका गीलेपनमें और सूखेपनमें भी कुछ उपयोग होता नहीं; ऐसा कितना भी बढकर अन्तमें टूट जाता है ॥ ५७५ ॥ अथवा ईखके भुट्टे, नपुंसक पुरुष, निवडुंग ( सेहुंड ) का बन कितना ही बढनेपर भी जैसे निरुपयोगी ठहरता है ॥ ७६ ॥ अथवा छोटे बालकका ध्यान या चोरके घरका धन, बकरीके गलेका स्तन ये सब कितने अच्छे मालूम होनेपर भी जैसे व्यर्थ ही होते हैं ॥ ७७ ॥ वैसे जो ज्ञान व्यर्थ और निस्तेज, निरुपयोगी दीखता है, उसको मैं 'तामस-ज्ञान' कहता हूँ ॥ ७८ ॥ परन्तु उसको भी 'ज्ञान' ऐसा जो नाम देते हैं, उसका तात्पर्य ऐसा है कि जैसे जन्मान्धकी आँखें देखनेमें अच्छी दीखती हैं ॥ ७९ ॥ अथवा बहिरेके विषयमें कहना कि इसके कान अच्छे दीखते हैं, अथवा अपेय मद्यको 'पान' ऐसा नाम देते हैं, वैसे ही इस 'तामसज्ञान' को 'ज्ञान' ऐसा नाम झूठमूठका दिया है ॥ ५८० ॥ अस्तु, कितना वर्णन करें, यह जो तामसवृत्तिका जानना वह सच्चा ज्ञान ही नहीं, वह केवल खुले नेत्रोंका अन्धकार है ! ॥ ८१ ॥ हे श्रोतृशिरोमणि अर्जुन ! इसप्रकार तीन गुणोंसे होनेवाले ज्ञानके तीन प्रकार तुझे सर्वलक्षणों करके सहित बता चुके हैं ॥ ८२ ॥ अब हे धनुर्धर ! इसी तीन प्रकारके ज्ञानके प्रकाशसे कर्ताकी क्रियाएं भी गोचर होती हैं ॥ ८३ ॥ अतः जैसे बहते हुए प्रवाहको ही सामने आया हुआ पानी धरकर जाता है, वैसे कर्म भी त्रिविध ज्ञानके तीन विभागोंको पकडकर चलता है ॥ ८४ ॥ और एकही कर्म ज्ञानके तीन प्रकार होनेसे त्रिविध होता है, उसमेंसे सात्त्विक कर्मका लक्षण पहिले कहते हैं, उसे सुनो ॥ ५८५ ॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पतिव्रता अपने पतिको जैसे आप होकर आलिंगन देती है, वैसे अपने अधिकारके क्रमसे जो कर्तव्य स्वाभाविकतया करना ही पडता है ॥ ८६ ॥ सांवले शरीरके ऊपर चन्दनका लेप, अथवा तरुणीके नेत्रोंमें काजल, वैसेही जो कर्तव्य अपने अधिकारको सदैव भूषण ही होता है ॥ ८७ ॥ वह 'नित्यकर्म' अच्छा ही रहता है, उसकी नैमित्तिक कर्मसे सहकारिता होती है, अर्थात् सोनेमें सुगन्धकी प्राप्ति हो जाती ! ॥ ८८ ॥ जीव और शरीरको खर्च करके माता बालकको संभालती है, तथापि उसका मन उसके विषयमें कभी भी उकताता नहीं ॥ ८९ ॥ वैसेही जीव लगाकर कर्म करे, पर फलके तरफ ख्याल न देकर वह सब कर्म ब्रह्ममें ही समर्पण करे ॥ ५९० ॥ अपने पतिको, पुत्रको और प्रियजन आदिको परोसते रहते, सब अन्न समाप्त होगा कि, पीछे अपने लिये कुछ बचेगा, यह कल्पना भी परोसनेवालीके दिलको सहज ही छूती नहीं, उसी तरह सत्कर्म करते रहते मनोवृत्ति रक्खे, फिर यदि वह कर्म बिगड जाने पर भी खेदका आविर्भाव जीवको सताता नहीं, अथवा वह पार होजानेपर भी आनंदका जोश बढता नहीं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ हे धनंजय ! ऐसी ऐसी युक्तिसे जो कर्म किया जाता है, उसको उसके गुणपरसे 'सात्त्विक' यह नाम देना चाहिये ॥ ९३ ॥ अब राजस कर्मका लक्षण कहते हैं, अवधान कम मत होने दो ॥ ९४ ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

घरमें माता पिताके साथ कभी एक मधुरशब्द भी नहीं बोलता, पर बाहर सब जगत्को बडा आदर दिखाता है, ऐसा वर्तन जैसा कोई मूर्ख मनुष्य करता है ॥ ५९५ ॥ अथवा तुलसीके पेडपर जलका एक बिन्दु दूरसे भी नहीं डालता, पर द्राक्षाबेलके जडमें दूध डालता है ! ॥ ९६ ॥ उसी तरह नित्य नैमित्तिक कर्म करनेके लिये जो बैठनेकी जगहसे उठनेका भी मनमें नहीं लाता ॥ ९७ ॥ पर दूसरा कोई अपने मतलबका काम निकला कि, उसमें सब शरीर घटजानेपर भी कुछ बहुतसा नहीं, ऐसा समझता है ॥ ९८ ॥ अधिक फसल आवे ऐसा समझ कर बीज बोते रहते, 'बस हुई इस बोनेकी तकलीफ' ऐसा कोई कहता नहीं, वैसे ही बढनेका या डयोढा होनेका प्रसंग रहनेपर पैसा खर्चनेको नहीं थकना ! ॥ ९९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथवा पारस हाथमें आनेपर लोहेको खरीदनेमें सब संपत्ति बेंची जानेपर भी जैसे उन्नतिको ही प्राप्त होता है ॥ ६०० ॥ उसी तरह यह राजसकर्ता अगले फलको देखकर बडे कष्टके काम्यकर्म करता है और ऐसे कितने भी कर्म किये जाँय तो भी उनको थोडा ही समझता है ॥ १ ॥ वह फलकी इच्छा करनेवाला जितने काम्यकर्म हैं, उतने सब यथाविधि अच्छी तरहसे करता है ॥ २ ॥ और वह जो जो कर्म करता है, उसकी डौंडी पीटता है, और 'यह सब करनेवाला मैं' ऐसे अपने नामको बडप्पनके बायन बाँटतें फिरता है ॥ ३ ॥ वाद कर्तृत्वका अभिमान उसको ऐसा फुलाता है कि वह पिता वा गुरु इनकी कुछ भी शोभा नहीं रखता, कालज्वर आजानेपर वह जैसे किसी ओषधिको मानता नहीं, उसमें का ही वह प्रकार है ॥४॥ उसतरहके अभिमानसे फलाकांक्षी पुरुषसे जो जो कर्म बडे चाहसे किये जाते हैं ॥ ६०५ ॥ और वे भी अनेकप्रकारके कष्ट सहकर मानों वाजीगरलोगोंके तरह जीवनोपायके व्यवसाय हैं ॥ ६ ॥ धान्यके एक कणके लिये चूहेका पहाड खोदना, अथवा सेवालकेलिये मेंडकका समुद्र गंदला करना ॥७॥ अथवा केवल भीख मिलनेके लिये सपेरा सांप लेकर घरघर फिरता है पर क्या कहा जाय ? किसी लोगोंको यह कष्ट ही अच्छे लगते हैं ॥ ८ ॥ अस्तु, जैस धान्यके परमाणुके लाभके लिये दीमक पातालतक छेद जाते हैं, वैसे स्वर्गसुखके विषयमें जो कष्ट, परिश्रम करना ॥ ९ ॥ वह दुःखकारक कामिक कर्म याने 'राजसकर्म' जानने योग्य है । हे अर्जुन ! अब तामसका लक्षण सुनो ॥ ६१० ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २५ ॥

जो कर्म निंदाका काला या पापी गृह है और निषेधके जन्मकी सार्थकता जिससे होती है, वह कर्म 'तामस' होवे है ॥ ११ ॥ जलपर निकाले लकीरके तरह जो कर्म करनेपर पीछे कुछ भी शेष नहीं रहता ॥ १२ ॥ कांजी मथनेसे या राखी फूँकनेसे, अथवा रेताको तेलकी कोल्हूमें डालनेसे कुछ हाथ थोडे ही आता है ॥ १३ ॥ अथवा जैसे भूसेको फटकना, अथवा आकाशको छेदना, वायुको पकडनेके लिये फाँस डालना ॥ १४ ॥ इत्यादि निष्फल ठहर व्यर्थ जाते हैं, वैसेही जो कर्म करनेपर निरर्थक जाते हैं॥६१५॥ अथवा वह ऐसा व्यर्थ न जाय तो नरदेहके समान बहुमोल द्रव्यका खर्च होकर जो कर्म आचरनेसे जगत्के सुखका बिगाड होजाता है ॥१६॥ जैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कमलवनमें कँटीली जाल फेंककर कमल निकालनेका यत्न करनेपर अपनेको कष्ट होता है, और कमलोंका नाश होजाता है ॥ १७ ॥ अथवा जैसे पतंग दीपकके द्वेषसे उसको झपटकर अपना ही शरीर जला लेता है और दीपक बुझ जानेके कारण जगत्के लिये अन्धेरा करता है ॥ १८ ॥ वैसे ही सर्वस्वका व्यर्थ नाश होजाय, इतनाही नहीं, देहका भी आघात होजाय, पर जिस कर्मसे दूसरोंको अपाय ही होता है ॥ १९ ॥ मक्खी अपनेको खाद्य, पेय वस्तुके साथ मनुष्य करके निगलवाती है, पर उसको वमन करानेका कष्ट देती है, इस दुष्टताका स्मरण जिस आचरणके कारण होता है ॥ ६२० ॥ और ऐसा भी कर्म करनेका अपने शरीरमें सामर्थ्य है कि नहीं, इसका पूर्ण विचार न करते, करनेमें आता है ॥२१॥ अपनी शक्ति कितनी, उद्दिष्टकर्मका प्रपञ्च कितना और करनेपर क्या फल होगा ॥ २२ ॥ इत्यादि बातोंका विचार अविवेकसे मिटाकर कर्म अभिमानसे किया जाता है ॥ २३ ॥ जैसे अग्नि अपनाही घर जलाकर आस पास बाहर भडकती है, अथवा अपनी जलमर्यादा छोडकर समुद्र आगे बढता है ॥ २४ ॥ तब वह अग्नि अथवा वह समुद्र छोटा या बडा नहीं विचारते आगे पीछे नहीं देखते, मार्ग या अमार्ग एकत्र करके चलते हैं ॥ ६२५ ॥ उसी तरह करने योग्य और न करने योग्य, भले बुरे, इन सबका विचार न करते एक सरीखा रगडता है, अपने और दूसरोंके धर्मोंको कुछ भी महत्त्व न देकर जो कर्म आचरनेमें आता है वह 'तामस' कर्म है ऐसा निश्चितरूपसे समझना चाहिये ॥ २६ ॥ हे अर्जुन ! इसतरह गुण तीन होनेके कारण कर्मको त्रैविध्य कैसे आता है, इसका स्पष्टरूपसे विवरण मैंने किया है ॥ २७ ॥ अब यह कर्म करनेवाला और कर्तृत्वका अहंकार करनेवाला जो जीव वह भी त्रैविध्यको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ जैसे एक ही पुरुष अलग अलग ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमोंमें चार प्रकारका भासता है, वैसे ही कर्मका त्रैविध्य होनेके कारण कर्ताके शरीरमें भी त्रैविध्य आता है ॥ २९ ॥ अतः अब इन तीन प्रकारमेंसे पहिला जो 'सात्त्विककर्ता' उसका विवरण करते हैं, तुम दत्तचित्त होकर सुनो॥६३०॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥

फलकी इच्छा न रहनेके कारण मलयागिरिके चन्दनवृक्षकी शाखायें जैसे अखण्ड सीधे बढती रहती हैं ॥ ३१ ॥ अथवा जैसे फल धारण न करनेपर



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भी नागबेलका जन्म सार्थक होता है, जैसे जो नित्यनैमित्तिक कर्म करता है ॥ ३२ ॥ परन्तु इस फलके राहित्यसे उस कर्मको विफलता नहीं आती, क्योंकि हे पांडुसुत ! फलको कभी फल आते हैं क्या ? ॥ ३३ ॥ और बडे आदरसे उन कर्मोंको करता है पर 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा अभिमान जिसको छूता नहीं, वर्षाकालके मेघके समान ॥ ३४ ॥ तैसे ही परमात्मस्वरूपको समर्पण करने योग्य ऐसे अनेक कर्म करते रहते हैं ॥ ६३५ ॥ नियमित काल-पर कर्म करना, पवित्रस्थान देखना; शास्त्रवचनोंके आधारसे कर्मविधिविष-योंका निर्णय करना ॥ ३६ ॥ जो इन्द्रियाँ और मनोवृत्तियाँ इनकी एकता करना, चित्तको फलकी आकांक्षाकी ओर जाने नहीं देना, नियमरूपी सांकलसे बांध लेना ॥ ३७ ॥ और ये प्रतिबन्ध सहन करनेके लिये शरीरमें पूरा पूरा धैर्य लानेकी सदैव चिन्ता लेनी इन बातोंको जो करता है ॥ ३८ ॥ और आत्मस्वरूप प्राप्तिकी इच्छासे कर्म करते रहते, जो देह सुखके बखेडेमें पडता नहीं ॥ ३९ ॥ और जिसका आलस्य और निद्रा ये साफ हट जाते हैं, क्षुधासे जो पीडित होता नहीं, और शरीरकी स्वस्थता जिसको अच्छी नहीं लगती ॥ ६४० ॥ और ऐसी स्थितिमें भी जैसे मिश्रित सोनेको अग्निमें डाल देनेसे वह तौलमें कम होनेपर भी कसमें उत्तम होता है, वैसे ही जिसका कर्मके विषयमें अधिक ही उत्साह देखनेमें आता है ॥ ४१ ॥ यदि सचमुच दिलसे चाह हो तो जीवन भी व्यर्थ ही मालूम होता है, सच्ची पतिव्रता पति प्रेमसे सती जानेको सिद्ध हुई तो अग्निमें प्रवेश करते समय उसके शरीरपर भीतिका रोमांच भी खडा होता है क्या ? ॥ ४२ ॥ हे धनंजय ! आत्मस्वरूपके सरीखे प्रियकरका जो प्रेमी है, वह शरीरको कष्ट होनेसे कभी खेद करेगा ? ॥ ४३ ॥ इसी कारणसे जिसकी विषयेच्छा नष्ट होती है और ज्यों ज्यों देहाभिमान घटता जाता है, त्यों त्यों कर्मके आचरणमें दुगुना आनन्द मालूम होता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार जो कर्म करता है, और कोई समय आचरित होता हुआ कर्म किसी कारणसे आधेमें ही रुक जाने पर ॥ ६४५ ॥ शिखरसे नीचे गिरने-वाली गाडी जैसे कुछ शोक नहीं करती, वैसे जो कर्म बिगड जानेसे दुःखी नहीं होता ॥ ४६ ॥ अथवा आरब्ध हुआ कार्य भलीभांतिसे पूर्ण हुआ, इसवास्ते उसकी भी जयघोषणा करते जो बडाई नहीं दिखाता ॥ ४७ ॥ हे पांडुसुत ! जो ऐसे लक्षणों करके युक्त कर्म करता हुआ दिखाई पडता है, उसको सचमुच "सात्त्विक कर्ता" कहना चाहिये ॥ ४८ ॥ अब हे धनंजय !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



राजसकर्ताकी पहिचाननेकी रीति ऐसी है वह लौकिकवासनाओं करके लिप्त रहता है ॥ ४९ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

जैसे ग्रामके दुर्गन्धिके जगह कूडा, कचरा जमता है, अथवा श्मशानमें सब अमंगल वस्तु इकट्ठे होते हैं ॥ ६५० ॥ वैसा जो मनुष्य सब जगत्की वासनाओंके दोषोंकी पायधुनी ( धोये हुए पैरोंका मलसंचित जगह ) होता है ॥ ५१ ॥ अतः जिस कर्ममें फलप्राप्तिका मोका रहेगा, ऐसेही कर्मोंका अखाडा डालता है ॥ ५२ ॥ और उससे जो लाभ होगा उसमेंकी एक कौडी भी न छोडते उसके लिये अपने प्राणकी भी निछावर करनेको जो क्षण क्षणमें सिद्ध होता है ॥ ५३ ॥ और मछलीको पकडनेके लिये ध्यान लगाकर बैठे हुए बगलाके तरह, जो कृपण अपने धनके तरफ चिन्ता रखकर दूसरेके धनको हरण करनेके लिये दत्तचित्त होकर रहता है ॥ ५४ ॥ और जो पास जानेसे कांटेके अग्रभागोंसे पकडती है और शरीर घीसनेसे छेदती है, और इतना भी होकर जिसके फल खटाईसे जिह्वाको मानों चटका ही देते हैं ऐसी बेरके पेडोंकी झाडी होती है, इसतरह ॥ ६५५ ॥ जो दूसरोंको दुःख देता है और अपना स्वार्थ साधनेके लिये दूसरेके दिलकी पर्वाह नहीं करता ॥ ५६ ॥ वैसे ही अपना निज काम करते रहते दूसरेको कभी भी अवकाश नहीं देता, और अपनेको अच्छा नहीं लगता ऐसी कोई भी भावनामें कभी भी दिल नहीं अटकाता ॥ ५७ ॥ और धतूरेके फलमें जैसे अन्दर नशा और बाहर कांटेकी छाल होती है, वैसे जो अन्दर बाहर शुद्धताके नामसे दुबला रहता है ॥ ५८ ॥ और हे धनंजय ! किये हुए कर्मका फल हस्तगत हो जानेपर जो आनन्दसे फूलकर सब संसारको अपमानितसा करता है ॥ ५९ ॥ अथवा आरब्ध कर्म बिगडकर निष्फल हुआ तो शोकसे व्याप्त होकर संसारको धिक्कारने लगता है ॥ ६६० ॥ जो इस रीतिसे कर्मके विषयमें व्यवहार करता है वह 'राजसकर्ता' है, ऐसी मजबूत पहिचाननेकी ग्रन्थि बांध लेनी चाहिये ॥ ६१ ॥ अब इसके अनन्तर जो निन्दित कर्मोंका मुख्य घर है, वही 'तामस कर्ता' है, उसका वर्णन करते हैं ॥ ६२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

मेरे स्पर्शसे अन्य वस्तु कैसे जलते हैं इसका ज्ञान जैसे अग्निको नहीं रहता है ॥ ६३ ॥ अथवा मेरे तीक्ष्ण होनेके कारण इतरोंका मरण कैसे होता है, यह जैसे शस्त्र नहीं समझता, अथवा कालकूट विषको जैसे अपने घातक कृत्यका ज्ञान होता नहीं ॥६४॥ उसीतरह हे धनंजय ! जो अपने सामने आनेवाले जीवोंका घात करते, अपना दुष्कर्म चालू ही रहता है ॥ ६६५ ॥ और वह कर्म करते रहते, बहुत जोरोंसे आयी हुई आन्धीकी वायु, जैसे अपने हाथसे क्या होरहा है इसका जो ध्यान संभालती नहीं ॥ ६६ ॥ और हे धनंजय ! जिसका कर्तव्य और हेतु इनमें मेल न होनेके कारण जिसके समक्ष पागल आदमीकाभी कुछ ठिकाना नहीं रहता ॥ ६७ ॥ बैलके पेटको लगीहुई किलनीके तरह इन्द्रियोंकरके बढे हुए विषयभोगों पर जो अपना निर्वाह करता है ॥ ६८ ॥ जब चाहे तब हँसनेवाले या रोनेवाले अज्ञानी बालककी तरह जिसका रहन स्वच्छन्दरूपसे रहता है ॥ ६९ ॥ प्रकृतिके अधीन होनेके कारण कृत्य क्या, अकृत्य क्या इसका भान जिसको नहीं रहता है, तथापि कचरेसे फूलनेवाली घूरेकी तरह जो झूठे समाधानसे तुष्ट होकर फूलता है ॥ ६७० ॥ अतः जो अहम्मन्यतासे ईश्वरके सामने भी नम्र नहीं होता, और स्तब्धतासे पर्वतको भी कुछ नहीं समझता ॥ ७१ ॥ और जिसका मन कालेपनसे भरा है, आचरण अव्यवस्थित है, और दृष्टि मानों बजारकी वेश्याओंसे रिहन ली है ॥ ७२ ॥ अधिक क्या कहना जिसका सब शरीर ही कपटका बना रहता है और जिसका जीवित रहना याने जुआ-डीके खेलनेका अड्डाही है ॥ ७३ ॥ और उसका दर्शन दर्शन ही नहीं, तो वह स्वार्थी भिल्लोंका ग्राम ही समझना चाहिये, अतः जिसके रास्तेको भी कोई जावे नहीं ॥ ७४ ॥ और दूसरेका सत्कर्म जिसकें दिलको कंटकके तरह लगता है, जैसे नमक दूधको पीनेके लिये अयोग्य करता है ॥ ६७५ ॥ अथवा थंडासा पदार्थ अग्निके अंदर डालते ही भडककर अग्निही होता है ॥७६॥ अथवा उत्तम उत्तम अन्न शरीरमें प्रविष्ट हुआ कि वह अन्न हे किरीटी ! जैसे मलरूप ही होता है ॥ ७७ ॥ उसी तरह दूसरेका सत्कृत्य जिसके हाथमें आने पर वह विरुद्धरूप होकर ही बाहर गिरता है ॥ ७८ ॥ जो गुणोंको दोषोंका स्वरूप देता है और साँपके तरह अमृतका विष बनाता है ॥ ७९ ॥ और ऐहिकजीवनको सफल करके परलोक ही साधन करनेवाला ऐसा कोई

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बहुत योग्यकर्म उपस्थित होनेपर ॥ ६८० ॥ निद्रा जिसके पास निश्चित रखी ही रहती है, पर पुष्ट व्यवहार करतेवख्त जीव मानों अस्पृश्यका स्पर्श होगा ऐसा समझकर दूर भागता है ॥ ८१ ॥ जैसे द्राक्षारस अथवा आम्ररस खानेके मौसममें कौओंका मुख सड जाता है, अथवा दिनके प्रकाशमें जैसें उल्लूकी आँखें फूट जाती हैं ॥ ८२ ॥ वैसे ही कल्याण संपादनका मोका आया कि जिसको आलस वश करता है और निषिद्ध कुकर्म करनेका समय आया कि वही आलस बिलकुल जिसकी आज्ञा पूर्णतया मानता है ! ॥ ८३ ॥ जैसे समुद्रके पेटमें नित्य वडवानल जलता ही रहता है, वैसे ही जिस जीवके पास खेद यह नित्य ही बंधाहुआ रहता है ॥ ८४ ॥ कण्डियोंकी आगमें जैसे धूँआ ही रहता है, अथवा गुदद्वारसे निकली अपान वायुमें अवश्य दुर्गन्ध रहता है, वैसे ही जो जन्मभर विषादसे युक्त रहता है ॥ ६८५ ॥ और हे वीर ! कल्पान्तके बादकी भी फलप्राप्तिकी इच्छासे युक्त हो, कामिक व्यापार जो शुरू करता है ॥ ८६ ॥ जो इस संसारसे भी परेकी चिंता दिलमें रखता है, पर प्रत्यक्ष ( कोई कल्याणकारक बात ) करनेके विषयमें देखा जाय तो जिसके हाथमें तृणभी नहीं आता ! ॥ ८७ ॥ इस प्रकारका इस लोकमें जो केवल पापका मूर्तिमान समुदायरूपी पुरुष दिखाई दे तो वह 'तामस कर्ता' है ऐसा निश्चयरूपसे जानना ॥८८॥ हे अर्जुन ! इस प्रकार मैंने तुझे कर्म, कर्ता और ज्ञान इन तीनोंका तीन तीन प्रकारके लक्षण कथन किये ॥ ८९ ॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ २९ ॥

अब अविद्यारूपी गांवमें मोहरूपी वस्त्र पहनकर और संशयरूपी आभूषण शरीरपर चढाकर ॥ ६९० ॥ आत्मनिश्चयकी शोभा अंग-उपांगसहित जिस दर्पणमें देखता है वह दर्पण याने 'बुद्धि' और इस बुद्धिका भी प्रवाह तीन तरह रहता है ॥ ९१ ॥ इस जगतमें ऐसा क्या है कि जो सत्त्वादि त्रिगुणोंसे त्रिधा नहीं हुआ है ? ॥ ९२ ॥ जिसके अन्दर अग्नि नहीं ऐसी लकडी इस सृष्टिमें कहीं भी है क्या ? वैसेही जो त्रिविध हुआ नहीं, वह इस दृश्य सृष्टिमें रहेगा भी कहाँसे ? ॥९३॥ अतः इन तीन गुणों करके बुद्धि त्रिविध हुई है, और धृतिका भी वही मार्ग है ॥ ९४ ॥ यही बुद्धि-धृतिका त्रैविध्य उनके भिन्न भिन्न लक्षणों करके सहित अब कहनेमें आयगा ॥ ६९५ ॥ परन्तु हे धनञ्जय ! बुद्धि और धृति इन दोनोंमेंसे प्रथम बुद्धिके तीन प्रका-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इका स्पष्टीकरण करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे सुभट ! उत्तम, मध्यम, अथवा निकृष्ट ऐसे कोई भी संसारमें आनेवाले जीवको तीन रास्ते खुले हैं ॥ ९७ ॥ ये तीन रास्ते याने नित्यनैमित्तिक विहित कर्म, काम्यकर्म, और निषिद्धकर्म ये तीनों रास्ते संसारभयसे जीवोंको कष्ट देनेवाले होते हैं ॥ ९८ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३० ॥

अतः अपने अधिकारानुसार और केवल स्वाभाविक क्रमसे आया हुआ जो नित्यकर्म, वही एक इस सब कर्ममें सचमुच उत्तम है ॥ ९९ ॥ वही नित्यकर्म केवल आत्मप्राप्तिरूप फलके तरफ दृष्टि रखकर प्यासा हुआ जैसा जल सेवन करता है वैसा आचरण करना चाहिये ॥ ७०० ॥ ऐसा करनेसे वह कर्म, जन्म भयका संकट दूर करके मोक्षप्राप्तिको सुलभ बनाता है ॥ १ ॥ ऐसा जो करता है उसका संसार भय छूट जाता है और कर्मकरके वह मुमुक्षुके रास्तोंको संपादन करता है ॥२॥ और ऐसे कर्माचरणमें ही मोक्ष रखा हुआ है, ऐसा दृढ विश्वास जो बुद्धि धारण करती है ॥ ३ ॥ अतः जो बुद्धि कहती है कि निवृत्तिके आधारपर प्रवृत्तिका उत्थान करके इस नित्यकर्ममें डुबकी क्यों न लगानी चाहिये ? ॥ ४ ॥ प्यासेहुए को पानीसे जीवन प्राप्त होता है, अथवा बाढमें गिरनेसे तैरना पडता है, अथवा अंधेरे कूपमें गिरे हुए पुरुषको सूर्यके किरणोंसे मार्ग मिलता है ॥ ७०५ ॥ पथ्य और औषध इनका लाभ हुआ तो रोगसे अतिपीडित भी रोगी जीता है, अथवा मछलीको जलका अवलम्ब मिलनेपर ॥ ६ ॥ उसके जीवको भय नहीं रहता, वैसे ही इस नित्यकर्मके करनेसे अवश्य मोक्षका लाभ होता है ॥ ७ ॥ ऐसा, करने योग्य क्या इस सम्बन्धमें जो बुद्धि निर्दोष रहती है और अकरणीय ( करनेको अयोग्य) क्या उसको भी जो बुद्धि बिलकुल ठीक जानती है ॥८॥ जो काम्यादिक संसारभय उत्पन्न करनेवाले कर्म हैं, जिनपर निषिद्धताके छींटे डटे हुए हैं ॥ ९ ॥ उस निषिद्ध अकरणीय और जन्म-मरणके भयसे भरे हुए कर्मसे जो बुद्धि प्रवृत्तिको पीछेके पीछे ही भगादेती है ॥७१०॥ अग्निमें प्रवेश करना नहीं होता, अथाहजलमें कूदना नहीं होता, पूरा तपा हुआ लोहेका कीला हाथमें पकडते नहीं बनता ॥११॥ अथवा फूत्कार करनेवाले काले सांपको देखनेपर उसको हाथ लगाना नहीं होता, सेरकी जालमें पैर डालते नहीं बनता ॥१२॥ वैसे ही अकरणीय कर्म देखकर जिस बुद्धिको निःसंशय बडा भय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मालूम होता है ॥ १३ ॥ विष डालकर पकाया गया अन्न परोसनेपर जैसे मृत्यु रख्खा ही है, वैसेही निषिद्ध कर्म करनेपर बन्धन हुआ ही ऐसा समझना चाहिये, इस तरह जो बुद्धि जानती है ॥ १४ ॥ बाद बन्धनके भयसे भरे हुए उस निषिद्ध कर्मके संबन्धमें जो बुद्धि कर्मनिवृत्तिका प्रयोग करती है ॥ ७१५ ॥ इस रीतिसे सत्य और झूठेकी जैसे परीक्षा करनी योग्य है, वैसे कर्तव्याकर्तव्य विचारके मापोंसे जो बुद्धि प्रवृत्ति निवृत्तिकी अच्छी तरहसे परीक्षा करती है ॥ १६ ॥ वैसे ही कृत्य और अकृत्य इनका निर्णय भी जिस बुद्धिको उत्तम रीतिसे समझता है, हे अर्जुन ! वही बुद्धि सात्त्विक है, यह तुम ध्यानमें लो ॥ १७ ॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

जैसे बगलोंके गांवमें दूध और पानीका मिश्रण ही लिया जाता है, अथवा रात और दिन इनका भेद अंधेको नहीं रहता ॥ १८ ॥ अथवा जिसको फूलोंमें का मकरन्द ( पुष्परस ) निकालने आता है, वही लकडी को छेद करनेमें प्रवृत्त होता है, पर उसका भ्रमरत्व नष्ट नहीं होता ॥ १९ ॥ उसीतरह जो धर्मरूप योग्यकर्म और अधर्मरूप निषिद्धकर्म, इनका विचार न करते जो बुद्धि व्यवहार करती है ॥ ७२० ॥ अजी अर्जुन ! परीक्षा किये बिना जो मोती लेता है उसको चोखा माल कदाचित् ही मिलता है, चोखामाल न मिलना यह उसके भागमें आता है ॥ २१ ॥ वैसे दैवयोगसे निषिद्ध कर्म प्राप्त न हुआ तोही वह बचती है । नहा तो सामान्यतः बुद्धि कार्याकार्य कर्मके विषयमें समानभावसे ही आचरण करती है ॥ २२ ॥ वह बुद्धि राजसी है योग्यायोग्यका विचार न करते इकट्ठा ही जैसे सर्वजनसमूहको निमंत्रण दिया जाय वैसे ही बुद्धि शुद्धाशुद्ध न देखते, सब कर्मोंका स्वीकार करती है ॥ २३ ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

और राजा जिस मार्गसे जाता है वह चोरोंका जंगलका रास्ता है याने चोरोंके लिये राजमार्ग उपयोगी नहीं रहता. अथवा लोगोंका जो दिन वह राक्षसोंकी रात है ॥ २४ ॥ अथवा भाग्यहीन पुरुषको जैसे गडाहुआ द्रव्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



कोयलेका ढेर मालूम होता है, अथवा सच्चा आत्मस्वरूप जीवको जैसे नहीं-सा ही भासता है ॥ ७२५ ॥ वैसे सब धर्मकार्य जिस बुद्धिको पातकरूप दीखते हैं सच्चेको जो बुद्धि झूठा समझती है ॥ २६ ॥ जो बुद्धि सब अर्थोंको अनर्थका रूप देती है और योग्य व्यवस्थित गुणोंको दोष ही मानती है॥२७॥ बहुत क्या, जिन जिन विषयोंको वेदोंने योग्य ठहराया है, उन उन सब विषयोंको जो बुद्धि विपरीत ( निषिद्ध अकार्य ) समझती ह ॥ २८ ॥ ऐसी बुद्धिको पाण्डुसुत ! किसीको भी पूछनेके फेरमें न पडकर निःशङ्कतासे तामसी कहनी चाहिये। ऐसी यह अन्धेरी रातके समान रहनेवाली बुद्धि धर्मकार्यके योग्य कैसे कही जायगी ? ॥ २९ ॥ अजा आत्मबोधरूपी कुमुदको विकसित करनेवाले चन्द्र, हे अर्जुन ! इसप्रकार बुद्धिके तीन भेदोंको मैंने तुझे स्पष्टकरके कहा है ॥ ७३० ॥ अब इसही बुद्धिके अनुसंधानसे जब कर्मोंका निश्चय किया जाता है, तब जिस धृतिका सब कार्योंमें उपक्रम होता है, वह धृति तीन प्रकारकी है ॥३१॥ उस धृतिके भी तीन भेदोंके लक्षणों सहित वर्णन करते हैं, तो ध्यान देकर सुनो ॥ ३२ ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३ ॥

सूर्यका उदय होते ही चोर और अन्धकार नष्ट हो जाते हैं, अथवा राजाकी आज्ञासे जैसे अयोग्य व्यवहार बन्द होते हैं ॥ ३३ ॥ अथवा वायुकी गति बहुत जोरसे शुरू हुई कि मेघ नष्ट होते हैं और उनकी गर्जना भी लुप्त होती है समुद्र चुप होजावे, अथवा चन्द्रका उदय होते ही जैसे कमल बन्द होजावें ॥ ३४ ॥ ७३५ ॥ बहुत क्या, एकदफ हाथीके पैर उठानेपर प्रत्यक्ष सिंह यदि गर्जते हुए सामने आजांय तोभी उठाया हुआ पैर मदोन्मत्त हाथी जैसे नीचे नहीं रखता ॥ ३६ ॥ वैसे ही अन्तःकरणमें धृतिका उदय हुआ कि मन इत्यादिकोंके व्यापार बन्द होजाते हैं ॥ ३७ ॥ हे किरीटी ! इंद्रियाँ और विषय इनका सम्बन्ध अपनेआप छूटकर दश भी इन्द्रियाँ अपने मन-रूपी माताके पेटमें घुसती हैं ॥ ३८ ॥ ऊर्ध्ववायु और अधोवायु इन दोनोंका मार्ग रोककर नवों वायुओंकी एकत्र गठडी बांधकर प्राणवायु मध्यमा ( सुषुम्ना ) नाडी में कूद पडता है ॥ ३९ ॥ संकल्प विकल्प रूपी आच्छा-दनको उठाकर और इसरीतिसे मनको उघारकर बुद्धि पीछे तरफ चुपचाप बैठती है ॥ ७४० ॥ इसतरह जिस श्रेष्ठ धैर्यके आगे मन, प्राण, और इंद्रियाँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इनको अपने अपने व्यापार छोडने पडते हैं ॥ ४१ ॥ और फिर निर्लिप्त हुई स्थितिमें उन सबोंको योगकी युक्तिसे ध्यानके मठमें ( हृदयकोशमें ) बन्दकर देता है ॥ ४२ ॥ और फिर उनको सम्राट् जो परमात्मा उसके अधीन करने तक जो धैर्य कोई भी रिशवत लिये बिना सौंपने तक वहीं पकडे रहता है ॥ ४३ ॥ वह धैर्य, वह धृति सात्त्विक है, ऐसा समझो, इसतरह श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा ॥ ४४ ॥

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

बाद वे आगे कहते भये कि जो जीव शरीर धारण करके स्वर्ग और संसार इन दो घरोंमें धर्म, अर्थ और काम इनको यथायोग्य प्राप्त कर वैभवमें रहता है ॥ ७४५ ॥ वह जीव जिस धैर्यके जोरपर संकल्प विकल्परूपी समुद्रमें धर्मार्थकामरूपी जहाजोंके द्वारा कर्मोंका व्यापार करता है ॥४६॥ जिस धैर्यके बलसे व्यापारमें लगा हुआ जो मूलधन उससे चौगुनाफल लेनेमें बहुत यत्न करते सहन करता है ॥ ४७ ॥ हे पार्थ ! वह धैर्य वह धृति राजस होवे है। अब जो तीसरी तामस धृति है, उसके लक्षण सुनो ॥ ४८ ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥

कालेपनसे जैसे कोयला बना हुआ है, वैसे ही सब नीचगुणोंसे जिसका स्वरूप बना हुआ है ॥४९॥ऐसा प्राकृत और निकृष्ट तमको ' गुण ' यह नाम देनेका है तो राक्षस भी क्या पुण्यजन नहीं कहलाता ? ॥७५०॥ पर ग्रहोंमें जो केवल जलता हुआ अंगार उसको जैसा मंगल कहते हैं, वैसे ही तमको'गुण'यह भपकेदार नाम देनेमें आता है ॥ ५१ ॥ हे सुभट ! जिसमें सब दोषोंका निवास है, उस तमकी कमाई करके जिस पुरुषकी मूर्ति बनी है ॥ ५२ ॥ वह आलसको अपने काँखमें दबाये रहता है, और पापका पोषण करनेसे जैसे दुःख छोडकर नहीं जाते, वैसे उस आलसीको निद्रा कभी भी छोडती नहीं ॥ ५३ ॥ पत्थरकी शिलाको जैसे कठिनाई कभी भी नहीं छोडती, वैसे ही देह और धनके प्रेमसे भय उसको कभी भी छोडता नहीं ॥ ५४ ॥ और कृतघ्नके पास पाप जैसे बंधा हुआ रहता है, वैसे पदार्थमात्रकी रुचि होनेसे शोक उसके यहाँ सदैव बसता है ॥ ७५५ ॥ वह असंतोषको दिनरात अपने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पास रखता है, अतः विषाद उससे मित्रता करता है ॥ ५६ ॥ लहसुनको दुर्गन्धि अथवा अपथ्य करनेवालेको रोग जैसे छोडकर जाते नहीं ॥ ५७ ॥ और वह अपने तारुण्य, द्रव्य और काम इनका अभिमान और मोह बढाते रहनेके कारण मद उसको अपने रहनेका घर कर लेता है ॥ ५८ ॥ उष्णता अग्निको छोडती नहीं, उच्च जातिका साँप द्वेष नहीं छोडता, अथवा जगत्का वैरी जो भय वह जैसे कभी नष्ट नहीं होता ॥ ५९ ॥ अथवा कोई वख्त काल जैसे शरीरको छोडता नहीं, वैसे ही तामस जीवके अन्दर मद अटल बना रहता है ॥ ७६० ॥ इसी तरह निद्रा इत्यादि ये पांच दोष जिस धैर्यसे तामसजीवमें डेरा देकर रहते हैं ॥ ६१ ॥ वह धैर्य और धृति तामस करके समझनी चाहिये, ऐसा जगदीश्वर श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा ॥ ६२ ॥ एवं त्रिविध बुद्धिसे पहिले जो कर्मका निश्चय किया जाता है, वह इस धृतिसे सिद्ध होता है ॥ ६३ ॥ सूर्यसे मार्ग दीखता है और उस मार्गमें पैरसे चलते हैं, पर चलना होता है वह चलनेवालेके धैर्यसे ॥ ६४ ॥ वैसे ही बुद्धि कर्म दिखाती है, इंद्रियादि साधन सामग्री कर्म करती है, परन्तु वह कर्म होनेको धैर्यकी आवश्यकता रहती है ॥७६५॥ वह तीन प्रकारकी धृति मैंने तुझे वर्णन की। इस धृतिसे त्रिविध कर्मकी उत्पत्ति हुई ॥६६॥ बाद जो 'सुख' नामका फल उस कर्ममें लगता है, वह भी तीन प्रकारका रहता है, क्योंकि फल कर्मके अनुसार होते हैं ॥ ६७ ॥ अतः सुखरूपी फल तीन गुणोंके कारण कैसे भिन्न २ होते हैं, यह तुझे अब शुद्ध शब्दोंसे स्पष्ट रूपसे कहते हैं ॥ ६८ ॥ पर शब्दकी शुद्धता भी किस प्रकारकी वर्णी जाय ? क्योंकि यदि शब्दद्वारा यह समझाने जाँय तो शब्दको कर्णरूपी हाथका मल लगता ही है ! ॥ ६९ ॥ इसलिये जिसका फटकार देनेसे सुनते कान बधिर होजाते हैं, अन्तरंगके जीवभावसे इसको सुनो ॥ ७७० ॥ ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने त्रिविध सुखके विषयोंका वर्णन सुरू किया, उसी विषयका मैं अब निरूपण करता हूँ ॥ ७१ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—त्रिविध सुखका लक्षण कहता हूँ ऐसा मैंने जो वचन दिया है, वह अब पूरा करता हूँ, अजी प्राज्ञ, अर्जुन ! उसको सुनो ॥ ७२ ॥ हे किरीटी ! आत्माकी भेंट हो जानेपर जीवको जो सुख होता है, वह सुख अब तेरे दृष्टि सामने दिखाता हूँ ॥ ७३ ॥ पर उत्तम ओषधि होने-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पर भी वह जैसे मात्राके प्रमाणसे लेना पडता है, अथवा रसायनक्रियासे जैसे राँगेकी चाँदी होती है ॥ ७४ ॥ अथवा नमकका पानी होनेके लिये जैसे दो चार दफे उसपर पानी छिडकना पडता है ॥ ७७५ ॥ वैसे ही जैसे थोडा थोडा सुख अनुभवको प्राप्त होय, वैसा वैसा अभ्यास आगे चालू रखनेसे जहाँ जीवपनका दुःख नष्ट होता है ॥ ७६ ॥ वह इस प्रकरणका आत्मसुख समझना चाहिये, वह भी त्रिगुणों करके सिद्ध हुआ है. अब उसके एक एक रूपका वर्णन करते हैं. सुनो ॥ ७७ ॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

अब साँपोंसे वेष्टित होनेसे जैसे चन्दनवृक्षकी जड भयानक होती है, अथवा पिशाचका पहरा होनेके कारण गडे हुए द्रव्यके पात्रका मुँह जैसें भयंकर होता है ॥ ७८ ॥ स्वर्गसुख बहुत अच्छा है सच, पर उसको प्राप्त करनेके लिये जस यज्ञ–यागादि कर्म विधान सहित करने पडते हैं, अथवा त्रास होनेसे बाल्यावस्था पीडाकारक होती है ॥ ७९ ॥ बहुत क्या, दीपक जलानेका काम पूरा होनेके पहिले, जैसा प्रथम धूआँ सहन करना पडता है, अथवा ओषधि जैसे जीभ पर रखते ही कडुवी लगती है ॥ ७८० ॥ वैसे ही हे पाण्डव ! जिस सुखके प्रवेशद्वारमें ही यम दम आदिकोंका संकट सहना पडता है ॥८१॥ और सब दृश्य वस्तुविषयोंकी प्रीति ग्रसनेवाली विरक्ति ऐसी उत्पन्न होती है कि, वह स्वर्ग और संसाररूपी प्रतिबन्धकको जडसे उखाडकर फेंक देती है ॥ ८२ ॥ तीक्ष्ण विवेकका श्रवण और कठिन व्रतोंका आचरण करनेसे बुद्धि इत्यादिकोंके लत्ते (चिथडे) उडजाते हैं ॥८३॥ प्राण अपान वायुका समुदाय सुषुम्नारूपी मुखसे गील लिया जाता है और यह सब प्रयास केवल आरम्भमें ही होते हैं ! ॥८४॥ चक्रवाक पक्षी (चकवा) इनके दम्पतीका वियोग करनेसे अथवा पन्हाई हुई गायके बछडेको उसके पाससे खींच लेनेसे जो दुःख होता है, अथवा भिखारीको परोसे हुए अन्नके पात्रपरसे उठा देनेसे, ॥ ७८५ ॥ अथवा माताके एकलौते बालकका मृत्युसे हरण हो जानेपर, अथवा मछलीको पानीसे बाहर निकालनेपर ॥ ८६ ॥ जो दुःख होता है, वैराग्ययुक्त हे वीर ! वैसाही दुःख इन्द्रियोंको विषयोंका घर छोडते समय होता है, पर वह भी पूर्ण वैराग्यसे सहन करना पडता है ॥ ८७ ॥ ऐसा जिस सुखके आरम्भमें ही महासंकटका सामना करना पडता है, परन्तु अन्तमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


पास रखता है, अतः विषाद उससे मित्रता करता है ॥ ५६ ॥ लहसुनको दुर्गन्धि अथवा अपथ्य करनेवालेको रोग जैसे छोडकर जाते नहीं ॥ ५७ ॥ और वह अपने तारुण्य, द्रव्य और काम इनका अभिमान और मोह बढाते रहनेके कारण मद उसको अपने रहनेका घर कर लेता है ॥ ५८ ॥ उष्णता अग्निको छोडती नहीं, उच्च जातिका साँप द्वेष नहीं छोडता, अथवा जगत्का वैरी जो भय वह जैसे कभी नष्ट नहीं होता ॥ ५९ ॥ अथवा कोई वख्त काल जैसे शरीरको छोडता नहीं, वैसे ही तामस जीवके अन्दर मद अटल बना रहता है ॥ ७६० ॥ इसी तरह निद्रा इत्यादि ये पांच दोष जिस धैर्यसे तामसजीवमें डेरा देकर रहते हैं ॥ ६१ ॥ वह धैर्य और धृति तामस करके समझनी चाहिये, ऐसा जगदीश्वर श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा ॥ ६२ ॥ एवं त्रिविध बुद्धिसे पहिले जो कर्मका निश्चय किया जाता है, वह इस धृतिसे सिद्ध होता है ॥ ६३ ॥ सूर्यसे मार्ग दीखता है और उस मार्गमें पैरसे चलते हैं, पर चलना होता है वह चलनेवालेके धैर्यसे ॥ ६४ ॥ वैसे ही बुद्धि कर्म दिखाती है, इंद्रियादि साधन सामग्री कर्म करती है, परन्तु वह कर्म होनेको धैर्यकी आवश्यकता रहती है ॥७६५॥ वह तीन प्रकारकी धृति मैंने तुझे वर्णन की। इस धृतिसे त्रिविध कर्मकी उत्पत्ति हुई ॥६६॥ बाद जो 'सुख' नामका फल उस कर्ममें लगता है, वह भी तीन प्रकारका रहता है, क्योंकि फल कर्मके अनुसार होते हैं ॥ ६७ ॥ अतः सुखरूपी फल तीन गुणोंके कारण कैसे भिन्न २ होते हैं, यह तुझे अब शुद्ध शब्दोंसे स्पष्ट रूपसे कहते हैं ॥ ६८ ॥ पर शब्दकी शुद्धता भी किस प्रकारकी वर्णी जाय ? क्योंकि यदि शब्दद्वारा यह समझाने जाँय तो शब्दको कर्णरूपी हाथका मल लगता ही है ! ॥ ६९ ॥ इसलिये जिसका फटकार देनेसे सुनते कान बधिर होजाते हैं, अन्तरंगके जीवभावसे इसको सुनो ॥ ७७० ॥ ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने त्रिविध सुखके विषयोंका वर्णन सुरू किया, उसी विषयका मैं अब निरूपण करता हूँ ॥ ७१ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—त्रिविध सुखका लक्षण कहता हूँ ऐसा मैंने जो वचन दिया है, वह अब पूरा करता हूँ, अजी प्राज्ञ, अर्जुन ! उसको सुनो ॥ ७२ ॥ हे किरीटी ! आत्माकी भेंट हो जानेपर जीवको जो सुख होता है, वह सुख अब तेरे दृष्टि सामने दिखाता हूँ ॥ ७३ ॥ पर उत्तम ओषधि होने-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पर भी वह जैसे मात्राके प्रमाणसे लेना पडता है, अथवा रसायनक्रियासे जैसे राँगेकी चाँदी होती है ॥ ७४ ॥ अथवा नमकका पानी होनेके लिये जैसे दो चार दफे उसपर पानी छिडकना पडता है ॥ ७७५ ॥ बैसे ही जैसे थोडा थोडा सुख अनुभवको प्राप्त होय, वैसा वैसा अभ्यास आगे चालू रखनेसे जहाँ जीवपनका दुःख नष्ट होता है ॥ ७६ ॥ वह इस प्रकरणका आत्मसुख समझना चाहिये, वह भी त्रिगुणों करके सिद्ध हुआ है. अब उसके एक एक रूपका वर्णन करते हैं. सुनो ॥ ७७ ॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

अब साँपोंसे वेष्टित होनेसे जैसे चन्दनवृक्षकी जड भयानक होती है, अथवा पिशाचका पहरा होनेके कारण गडे हुए द्रव्यके पात्रका मुँह जैसें भयंकर होता है ॥ ७८ ॥ स्वर्गसुख बहुत अच्छा है सच, पर उसको प्राप्त करनेके लिये जस यज्ञ–यागादि कर्म विधान सहित करने पडते हैं, अथवा त्रास होनेसे बाल्यावस्था पीडाकारक होती है ॥ ७९ ॥ बहुत क्या, दीपक जलानेका काम पूरा होनेके पहिले, जैसा प्रथम धूआँ सहन करना पडता है, अथवा ओषधि जैसे जीभ पर रखते ही कडुवी लगती है ॥ ७८० ॥ वैसे ही हे पाण्डव ! जिस सुखके प्रवेशद्वारमें ही यम दम आदिकोंका संकट सहना पडता है ॥८१॥ और सब दृश्य वस्तुविषयोंकी प्रीति ग्रसनेवाली विरक्ति ऐसी उत्पन्न होती है कि, वह स्वर्ग और संसाररूपी प्रतिबन्धकको जडसे उखाडकर फेंक देती है ॥ ८२ ॥ तीक्ष्ण विवेकका श्रवण और कठिन व्रतोंका आचरण करनेसे बुद्धि इत्यादिकोंके लत्ते (चिथडे) उडजाते हैं ॥८३॥ प्राण अपान वायुका समुदाय सुषुम्नारूपी मुखसे गील लिया जाता है और यह सब प्रयास केवल आरम्भमें ही होते हैं ! ॥८४॥ चक्रवाक पक्षी (चकवा) इनके दम्पतीका वियोग करनेसे अथवा पन्हाई हुई गायके बछडेको उसके पाससे खींच लेनेसे जो दुःख होता है, अथवा भिखारीको परोसे हुए अन्नके पात्रपरसे उठा देनेसे, ॥ ७८५ ॥ अथवा माताके एकलौते बालकका मृत्युसे हरण हो जानेपर, अथवा मछलीको पानीसे बाहर निकालनेपर ॥ ८६ ॥ जो दुःख होता है, वैराग्ययुक्त हे वीर ! वैसाही दुःख इन्द्रियोंको विषयोंका घर छोडते समय होता है, पर वह भी पूर्ण वैराग्यसे सहन करना पडता है ॥ ८७ ॥ ऐसा जिस सुखके आरम्भमें ही महासंकटका सामना करना पडता है, परन्तु अन्तमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जैसे मन्थन करनेसे क्षीर समुद्रमेंसे अमृतका लाभ हुआ, वैसे ही मोक्षामृतका लाभ होता है ॥ ८८ ॥ पहलेही उत्पन्न होनेवाले इस वैराग्यरूपी हलाहल (विष) को यदि धैर्यरूपी शंकरसे पान किया जाय तो जिस सुखमें ज्ञानामृत लाभका आनन्द भोगनेको मिलता है ॥ ८९ ॥ हरी द्राक्षाओंका खट्टापन जीभको ऐसा चटकाता है कि उसके आगे जलता अंगार कुछ नहीं, पर वही द्राक्षा पक जानेपर उनमें कितना माधुर्य आता है भला ? ॥ ७९० ॥ वैसे ही यह वैराग्यादिक आत्मज्ञानके प्रकाशसे पूर्ण परिपाकावस्थाको प्राप्त हो जानेपर उसी वैराग्यादिकोंके साथ सभी मायासे उत्पन्न नाम-रूपात्मक द्वैत नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥ उस समय जैसे गंगा समुद्रको मिल जाय, वैसे बुद्धि आत्मासे समरस होकर अद्वैतानन्दकी खानि अपने आप खोलती है ॥ ९२ ॥ इस प्रकार जिस सुखका मूल वैराग्य है; पर जिसका परिणाम (अन्य) आत्मानुभवके आनन्दमें होता है, वह सुख 'सात्त्विक' कहा जाता है ॥९३॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

हे धनंजय ! विषय और इन्द्रिय इनका संबन्ध होते ही जो सुख दुतरफा पूर्ण होकर बहने लगता है ॥ ९४ ॥ जैसे कोई अधिकारी गाँवमें आते ही लोग उत्सव समारम्भ करते हैं। अथवा ऋण निकालकर जैसे विवाहोत्सव बडे मजेमें करते हैं ॥ ७९५ ॥ अथवा रोगीमनुष्यको जैसे सक्कर और केला त्याज्य रहते भी मधुर लगते हैं। अथवा जैसे बचनागकी आरम्भकी मिठास अच्छी लगती है ॥ ९६ ॥ साहूकार और चोरकी दोस्ती, जैसे बजारकी वेश्याका वर्तन,अथवा बहुरूपियाका विचित्र विनोद ये सब आरंभमें अच्छे होते हैं, पर परिणाममें घातक ठहरते हैं ॥ ९७ ॥ वैसे ही विषय और इन्द्रियाँ इनके सम्बन्धके द्वारा जो सुख जीवको पुष्ट करता है, हंसको जैसे कहीं चट्टान बहते हुए पानीका आभास होकर उसमें नक्षत्रके प्रतिबिम्बको रत्न समझ कर लेनेके लिये कूदने पर वह फँस जाता है, उसके हाथमें कुछ नहीं आता ॥ ९८ ॥ इसी तरह उस जीवकी सुखकी सम्पत्ति घट जाती है, प्राणका भी नाश होता है, और पास रहनेवाली पुण्यरूपी द्रव्यकी ग्रन्थि भी छूट जाती है ॥ ९९ ॥ फिर पूर्वमें जो कुछ सुख भोगा हुआ होगा, वह स्वप्नके तरह नष्ट होता है और सर्वस्वनाशकी राशिमें लोटते रहना पडता है ॥ ८०० ॥ इस तरह जिस सुखका परिणाम इस लोकमें आपत्तिमें होता है और परलोकमें जो विषके समान होकर उलटा लौटता है ॥ १ ॥ क्योंकि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इन्द्रियोंको प्यार कर धर्मरूपी बगीचेको जलाकर जहाँ विषयोंका उत्सवसुख भोगनेमें आता है ॥२॥ जहाँ पापोंको जोर चढता है, और वे पाप जीवको नरकमें ले जाते हैं;एवंच जिस सुखसे परलोकमें ऐसा अपाय होता है ॥ ३ ॥ विषको 'मद्गुर' (मधुर) यह नाम यदि रहनेपर भी, वह जैसे अन्तमें 'प्राणघात' करके सत्य विष ठहरता है, वैसे जो सुख आरम्भमें मीठा लगता है, पर अन्तमें कटु ही ठहरता है ॥ ४ ॥ हे पार्थ ! ऐसा जो सुख वह रजोगुणका बना हुआ है, ऐसा समझो; और उसका अपनेको स्पर्श भी कभी मत होने दो ॥ ८०५ ॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

और अपेय वस्तुके पीनेसे, निषिद्ध अन्न खानेसे, अथवा स्वेच्छाचरण करनेवाली स्त्रीकी संगतिसे जो सुख प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ अथवा जो सुख दूसरेको मारकर मिलता ह, अथवा दूसरेके धनका अपहरण करके, अथवा भाटोंके मुखसे कीर्तिका श्रवण करनेपर जो सुख मालूम होता है ॥ ७ ॥ जो सुख आलस्यसे पुष्ट होता है, निद्रितावस्थामें जो दिखाई देता है और जिसके आरम्भमें और अन्तमें जीवको सच्चे मार्गके विषयमें भ्रम उत्पन्न होकर अनुपयोगी मार्गमें जाना पडता है ॥ ८ ॥ अजी हे पार्थ ! वह सुख सर्वथा तामसी समझना चाहिये, पर मैं इसका विस्तार नहीं करता हूँ, क्योंकि यह कथा केवल निन्द्य है ॥ ९ ॥ इस तरह कर्म अनेक होनेके कारण कर्मजफल सुख भी त्रिविध हुए हैं; उसका स्पष्टीकरण शास्त्रोक्त रीतिसे करके तुझे कहा है ॥ ८१० ॥ अब कर्ता, कर्म और कर्मफल इस त्रिपुटीके बिना इस विश्वके छोटे बडे वस्तुसमुदायमें दूसरा कुछ भी नहीं ॥ ११ ॥ और हे किरीटी ! जैसे वस्त्र तन्तुओंसे बुना हुआ है, वैसे ही यह त्रिपुटी तीनों गुणोंसे बुनी हुई है ॥ १२ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

अतः इस मायाके पेंचमें रहकर भी जो वस्तु सत्त्वादि गुणोंसे बद्ध नहीं होती. ऐसी कोई वस्तु मृत्युलोकमें या स्वर्गलोकमें नहीं है ॥ १३ ॥ ऊनके बिना कम्बल कैसे हो सकता है; मट्टीके बिना ढेला कैसे हो सकता है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अथवा पानीके बिना तरङ्ग कभी उत्पन्न होते हैं क्या ? ॥ १४ ॥ वैसे ही गुणोंका अंश नहीं रहते भी यह सृष्टिरचना हो सकेगी, ऐसा प्राणि-समुदायका स्वरूप ही नहीं है ॥ ८१५ ॥ अतः यह सब विश्व इन तीन गुणोंसे ही बना हुआ है, ऐसा सत्य समझो ॥ १६ ॥ इन गुणोंसे ही देवोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश ऐसे तीन वर्ग हुए, इनसे ही स्वर्ग, मृत्यु, नरक इस तरह तीन लोक निर्मित हुए, और इनसे ही चारों वर्णोंके कर्म अलग अलग किये गये हैं ॥ १७ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

ये चार वर्ण कौनसे हैं ? ऐसा यदि पूछोगे तो कहता हूँ. सुनो, इनमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ दूसरे जो क्षत्रिय और वैश्य वे भी ब्राह्मणोंके समान समझने चाहिये, क्योंकि उनको भी वैदिक क्रियाओंका अधिकार है ॥ १९ ॥ हे धनंजय ! चौथा शूद्रवर्ण है, इसको वेदका अधिकार नहीं, अतः इस जातिका जीवन तीन वर्णोंपर अवलम्बित है ॥ ८२० ॥ पर इस शूद्रकी जीवनवृत्तिका ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके साथ नितान्त संनिकृष्ट संबन्ध आनेके कारण शूद्रका भी वर्णविभागमें समावेश होकर वह चौथा वर्ण हुआ ॥ २१ ॥ जैसे डोरेमें गुथे हुए फूलोंके साथ डोरेको भी श्रीमान् लोग अपने शरीरमें धारण करते हैं, वैसेही शूद्रका त्रैवर्णिक द्विजोंके साथ सदैव व्यवहार सम्बन्ध होनेके कारण श्रुतिको शूद्रका भी वर्णसंस्थामें समावेश करना अवश्य हुआ ॥ २२ ॥ हे पार्थ ! चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाका यह स्वरूप है अब इन चार वर्णोंके विहित कमाका स्पष्टीकरण करते हैं ॥ २३ ॥ इस कर्मके गुणोंसे ये चारों वर्ण जन्ममरणरूपी कैंची ( आपत्ति ) से छूटकर ईश्वरस्वरूपको प्राप्त कर सकते हैं ॥ २४ ॥ ये कर्म आत्मप्रकृतिके तीन गुणोंने चारों वर्णोंको चार प्रकारसे विभक्त करके दिये हैं ॥ ८२५ ॥ पिताने इकट्ठा किया हुआ धन जैसे पुत्रोंको, अथवा सूर्यने स्पष्ट किये हुए मार्ग जैसे अलग अलग दिशाओंको जानेवाले पथिकोंको, अथवा स्वामी अपने काम जैसे नौकरोंको बांट देवे ॥ २६ ॥ वैसे ही प्रकृतिके गुणोंने कर्मोंका बटवारा करके चारों वर्णोंमें उनका विभाग करदिया है ॥ २७ ॥ उनमेंसे सत्त्वगुणने अपने आधे आधे भागसे ब्राह्मण और क्षत्रिय इनको योग्य बनाया ॥ २८ ॥ और सत्त्व-मिश्रित रजसे वैश्य हुए, रजोमिश्रित तमसे शूद्र हुए ॥ २९ ॥ हे प्रबुद्ध,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



अर्जुन ! इस तरह एकस्वरूप रहनेवाले प्राणिसंघमें इन गुणोंने चतुर्वर्णात्मक भेद उत्पन्न किया, यह ध्यानमें लो ॥ ८३० ॥ अनन्तर अन्धेरेमें रखी हुई अपनी वस्तुको जैसे दीपक दिखाता है, वैसा शास्त्र अपने गुणोंके अनुकूल भिन्न होनेवाले कर्मोंको दिखाता रहता है ॥३१॥ अजी ! सौभाग्यनिधि, अर्जुन ! तुमको अब भिन्न भिन्न वर्णोंके स्वाभाविक योग्य कर्म कौनसे हैं ? उनको कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ३२ ॥

शमो दमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

सब इन्द्रियोंके व्यवहार अपन हाथमें रखकर, एकान्तमें धर्मपत्नी पतिसे मिलती है, उसी तरह बुद्धि आत्मासे जा मिलती है ॥ ३३ ॥ ऐसी जो बुद्धिकी शान्तस्थिति, उसको 'शम' कहना चाहिये और इस शमसे जिस कर्मका आरंभ होता है. ॥ ३४ ॥ और शास्त्राज्ञारूपी दंडेसे बाह्येन्द्रियोंको पीटकर उनको अधर्मकी ओर कभी भी न जाने देनेवाला ऐसा 'दम' नामका दूसरा गुण जिस कर्ममें शमका सहायक होता है और जिससे स्वधर्मका पालन होनेसे सर्वव्यवहार यथोचित किये जाते हैं. ॥ ८३५ ॥ ३६ ॥ प्रसूता स्त्रीकी छठी रातमें उसकी खोलीके अंदरका दीपक बुझ न जाय इसवास्ते जैसी चिन्ता लेते हैं, वैसे ही जिस कारणसे चित्तमें ईश्वरकी एकनिष्ठतासे सदैव स्मृति जागृत रहती है ॥ ३७ ॥ वह तप नामका तीसरा गुण जिस कर्ममें दिखाई देता है। वैसे ही जिस कर्ममें दोनों तरहकी पापरहित शुचिता रहती है ॥ ३८ ॥ याने मन शुद्धभावसे भरा है और शरीर शुद्ध क्रियाओंके करनेसे अलंकृत है, इसतरह सब जीवितक्रम अन्दर बाहर उत्तम हुआ रहता है, ॥ ३९ ॥ ऐसा जो गुण हे पार्थ ! उसका ही 'शौच' यह नाम है और जिसकर्ममें यह चौथा गुण है। और सबको सहन करनेवाली पृथ्वीकी तरह सब कुछ सहन करनेका जो गुण हे पाण्डव ! वही 'क्षमा' यह गानके स्वरोंमेंसे पंचम स्वरके समान मधुर गुण जिस कर्ममें पांचवां होता है. ॥ ८४० ॥ ४१ ॥ और प्रवाह टेढा होनेपर भी नदी जैसे सीधी वहती रहती है, अथवा ईख टेढा या झुक गया हो तो भी जैसे मधुरता सर्वत्र समान ही रहती है ॥ ४२ ॥ वैस हा जीवोंकी वृत्तियां विषम रहनेपर भी भली भांतिसे सीधेपनसे रहना इस गुणको 'आर्जव' कहते हैं, यह छठवां गुण जिस कर्ममें रहता है. ॥ ४३ ॥ और माली परिश्रमसे वृक्षोंकी जड़ोंमें पानी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


डालकर बिना थके व्यवसाय करते रहता है, पर इस सब परिश्रमकी सार्थकता फलके लाभसे होनेवाली है, यह जैसे वह जानते रहता है ॥ ४४ ॥ वैसे ही शास्त्रानुसार कर्म करके एक ईश्वर प्राप्ति ही करलेनेकी है, इस बातको निश्चयसे जानना इसीको इस प्रकरणमें 'ज्ञान' कहते हैं ॥ ४५ ॥ यह ज्ञान जिस कर्मका सातवाँ गुण है. और विज्ञानका स्वरूप ऐसा है कि ॥ ४६ ॥ सत्त्वकी शुद्धि होकर शास्त्र ज्ञानसे अथवा ज्ञानके सामर्थ्यसे ईश्वर तत्त्वके साथ निश्चयात्मक बुद्धिसे समरस होजाना ॥ ४७ ॥ उसको ' विज्ञान ' ऐसा कहते हैं, यह आठवाँ सुन्दरगुण जिस कर्ममें है. और ' आस्तिक्य ' इस नौवे गुण के ये लक्षण हैं कि ॥ ४८ ॥ राजाकी मुहर जिसपर है, वह कौनसा भी पदार्थ हो, जैसे उसको प्रजाजन प्रचलित ' नाणा ' कह कर संतोषसे सकारते हैं, वैसे ही शास्त्रसे योग्य करके निश्चित हुए प्रत्येक मार्गको आदरसे मान्य करना, इसको ही मैं आस्तिक्य कहता हूँ. यह नौवा गुण जिस कर्ममें रहता है, वही कर्म उत्तम और सच्चा होवे है ॥ ४९ ॥ ८५० ॥ इसप्रकार शमादि नौ गुण होनेके कारण जो कर्म स्वभावतः निर्दुष्ट रहता है, वह ब्राह्मणोंका स्वाभाविक कर्म समझना चाहिये ॥ ५१ ॥ जिसको इन नवरत्नोंका हार मिला, वह नवों गुणोंका रत्नाकर ही होता है. अपने शरीरपरका ( कोई ) भी अलंकार न निकालकर जैसा सूर्य प्रकाश करता है ॥ ५२ ॥ अथवा चम्पा जैसे अपने अंगके चम्पाकी कलियोंसे ही सुशोभित होता है; अथवा चन्द्र जैसे अपनी ही चन्द्रिकासे प्रकाशित होता है, अथवा चन्दन जैसे अपने ही सुगंधसे सुगन्धित रहता है ॥ ५३ ॥ वैसे ही इन नौ गुणोंसे जडाहुआ अलंकार ब्राह्मणका निर्मल भूषण है और यह भूषण छोडकर योंही रहनेका कृत्य ब्राह्मणका शरीर कभी भी करता नहीं ॥५४॥ अब हे धनञ्जय ! क्षत्रियोंका योग्य कर्म कौनसा है, वह कहता हूँ. सावधानीसे सुनो ॥ ८५५ ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

तेजका प्रकाश करते रहते जैसा सूर्य किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करता, अथवा सिंहको कोई मददगार नहीं लगता ॥ ५६ ॥ वैसे ही अपने सामर्थ्यसे किसीकी सहायता बिना पराक्रमकी बाजी लगाकर दिखाना, यह जो 'शौर्य' वह जिस कर्मवृत्तिका पहिला सर्वश्रेष्ठ गुण है ॥ ५७ ॥ और सूर्यके प्रतापसे कोट्यवधि नक्षत्र लुप्त होजाते हैं, पर चन्द्रके सहित सब

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



नक्षत्र एकत्रित होनेपर भी उनसे सूर्यका लोप नहीं होसकता ॥ ५८ ॥ वैसे ही अपने बलिष्ठ गुणोंसे जगतको आश्चर्ययुक्त करदेने पर आप स्वयं कोई भी बातसे क्षुब्ध न होना ॥ ५९ ॥ ऐसा जो अलौकिक सामर्थ्य, वही 'तेज' होवे है और यह दूसरा तेजोगुण जिस वृत्तिमें दीखता है. वैसे ही 'धैर्य' यह तीसरा गुण जिसमें है ॥८६०॥ आकाश भी आ गिरनेपर भी जिस गुणके कारण बुद्धिके मनरूपी नेत्र मिचते नहीं, वह धैर्यगुण जिस वृत्तिमें दीखता है. ॥६१॥ और पानी जितना चाहे उतना अमर्याद हो,पर जैसे कमल उसके ऊपर ही होता है, अथवा ऊंचाईमें बडी ऊँचाई लेने पर भी आकाश जैसे उसके ऊपर ही रहता है ॥ ६२ ॥ वैसे ही कोई भी प्रसंग आपडनेपर भी हे पार्थ ! इष्टफल देनेवाले कार्यमें बुद्धिमत्तासे न भूलकर प्रवेश करना ॥ ६३ ॥ इसको 'दक्षत्व' कहते हैं, और यह चौथा गुण जिस वृत्तिमें रहता है। और घोर युद्ध करना यह जिस वृत्तिका पाँचवाँ गुण है॥६४॥सूर्यविकासी फूलोंके पेड सदैव सूर्यके सामने ही रहते हैं, वैसे ही शत्रुके सामने छाती ठोकके खडा रहना ॥ ८६५ ॥ पतिशय्याको पीठ दिखानेका प्रयत्नके साथ टालनेवाली गर्भवती स्त्रीके तरह, रणभूमिमें शत्रुका सामना होनेपर पीठ न दिखाना ॥ ६६ ॥ यह उस क्षात्रवृत्तिमेंका पांचवां और सबसे श्रेष्ठ गुण है, जैसे चारों पुरुषार्थोंसे बढकर भक्ति है वैसा ही यह गुण पछिके चार गुणोंसे वरिष्ठ है. ॥ ६७ ॥ और फूल, फल आनेपर वृक्ष जैसे उनको नीचे छोड देता है, अथवा कमलोंके सरोवरमें सुगन्ध जैसे चारों तरफ फैला रहता है ॥ ६८ ॥ अथवा चन्द्रकी चांदनीको जितना चाहे उतने मापसे ले सकता है, वैसे ही लेनेवालेकी इच्छाके अनुसार दान देना ॥ ६९ ॥ इसको ही 'दान' कहते हैं, और इस छठे गुणरत्नसे जो वृत्ति अलंकृत रहती है। वैसे ही वेदकी आज्ञाका पालन करना ॥ ८७० ॥ अपने अवयवोंका पोषण करके उसके द्वारा ही अपनी इच्छाके अनुकूल योग्य कार्य जैसे कर सकते हैं, वैसे प्रजाजनोंका पालन करके उनके सन्तोषसे जगत्का उपभोग लेना ॥ ७१ ॥ इसको ही ईश्वरभाव कहते हैं; जो सब सामर्थ्योंका स्थानरूप ऐसा गुणोंका राजा जिस वृत्तिका सातवा गुण है ॥७२॥ ऐसे इन शौर्य इत्यादि सात गुणोंसे सात ऋषियोंसे भूषित हुए आकाशके तरह जो पावित्र की जाती है, वह स्वाभाविक क्षात्रवृत्ति होवे है, यही क्षात्र नामक क्षत्रियोंका स्वाभाविक कर्म है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ अथवा ऐसा क्षत्रिय वह पुरुष नहीं है, वह सत्त्वरूप सुवर्णका मेरुपर्वत ही है, अतः सात गुणरूपी स्वर्गका



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



आधार स्थान है ! ॥ ७५ ॥ अथवा इन सात गुणोंसे वेष्टित हुई यह क्रिया-वृत्ति नहीं, तो यह सात समुद्रोंसे वेष्टित पृथ्वी ही समझनी चाहिये और यह वीर उसका उपभोग लेते रहता है ॥ ७६ ॥ अथवा इन सात गुणोंके प्रवाहसे यह क्रियारूपी गंगा इस क्षत्रियरूपी महासमुद्रके शरीरपर मानों विहार करती रहती है ! ॥ ७७ ॥ पर यह सब विस्तार रहने दो. सारांश यह है कि, इन शौर्यादि गुणोंसे अंकित हुआ कर्म क्षत्रिय जातिका स्वाभाविक कर्म है ॥ ७८ ॥ अब हे महामति ! वैश्य जातिका जो उचित कर्म है, उसको स्पष्ट-रूपसे कहता हूँ. तुम सुनो ॥ ७९ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

भूमि, बीज और हल इन मूल वस्तुओंके आधारपर अपार लाभ लेना ॥ ८८० ॥ तात्पर्य, खेतीपर निर्वाह करना, गौओंका संरक्षण करनेका यत्न करना, अथवा सस्ते भावसे खरीदी हुई वस्तुको महँगे भावसे बेचना ॥ ८१ ॥ हे पाण्डव ! ये सब बातें वैश्यकी वृत्तिके हैं. यह कर्मसमुदाय वैश्य जातिका स्वाभाविक कर्म है, ऐसा समझो ॥ ८२ ॥ और वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण इन तीन द्विजवर्णोंकी सेवा करना यह शूद्रका कर्म है ॥ ८३ ॥ और सचमुच ही इन द्विजोंकी सेवाके बाहर शूद्रोंको कदम भी डालना योग्य नहीं. इसतरह चारों वर्णोंके विहित कर्तव्य कर्म मैंने कथन किये ॥ ८४ ॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

अब हे विचक्षण ! श्रवणादि पृथक् पृथक् इन्द्रियोंके जैसे शब्दादिगुण अलग अलग विषय हैं. अथवा मेघसे होनेवाली वर्षाके पानीको जैसे नदी योग्य और नदीको जैसे समुद्र योग्य, तैसे इन चार वर्णोंके उचित जुदे जुद कर्म हैं ॥ ॥ ८८५ ॥ ८६ ॥ अतः वर्ण और आश्रम इनके धर्मके अनुसार जो जो कर्म प्राप्त होता है, वह वह गोरे मनुष्यके गोरेपनके तरह शोभा देनेवाला होता है ॥ ८७ ॥ इस कारणसे हे वीरोत्तम ! उस स्वभाव-विहित कर्मका शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार आचरण करनेके लिये बुद्धि स्थिर रखनी चाहिये ॥ ८८ ॥ जैसे मूलका अपनेही स्वामित्वका रत्न रत्नकी परीक्षा करनेवालेसे परीक्षा करके लिया जाता है, वैसे ही अपना भी कर्म शास्त्रके द्वारा निश्चित करके लेना चाहिये ॥ ८९ ॥ अपने पास दृष्टि जहांकी तहां रहती है, पर दीपकके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



बिना उसका उपभोग नहीं लिया जा सकता, अथवा मार्ग ही न मिला तो पैर रहनेपर भी उसका क्या उपयोग ? ॥ ८९० ॥ अतः जातिधर्मके अनुसार जो अपना योग्य अधिकार हो उसको स्वयं शास्त्र देखकर निश्चित करना चाहिये ॥ ९१ ॥ फिर हे पाण्डव ! घरमें ही अन्धेरेमें रखा हुआ धन यदि दीपकने स्पष्ट करके दिखाया तो उसके लेनेमें प्रतिबन्ध कौनसा ? ॥९२॥ वैसे ही जो स्वभावतः अपने भागोंमें आया है, और उस अवस्थामें शास्त्रने भी जिसको यथार्थरूपमें प्रतीति विषय किया है, वह अपना विहित कर्म जो करता है ॥ ९३ ॥ पर आलस्यको छोडकर और फलेच्छाको दूरकर जो तनमनसे उसी कर्माचरणमें तत्पर हो जाता है ॥ ९४ ॥ प्रवाहमें मिला हुआ पानी जैसे दूसरी ओर किधर भी न घूमकर प्रवाहके साथ ही जाता है, वैसे जो उस कर्मानुष्ठानके साथ ही व्यवस्थितरूपसे जाता है॥८९५॥हे अर्जुन ! इस प्रकार जो विहितकर्मको आचरता है, वह इस तटपर आकर पहुँचता है ॥ ९६ ॥ जिस अर्थके लिये करनेको अयोग्य और निषिद्ध कर्मोंसे उसका सम्बन्ध ही नहीं रहता, उसी अर्थके लिये संसारका अपाय उसको कभी भी सताता नहीं ॥ ९७ ॥ और खाली कुतूहलसे भी वह काम्य कर्मोंकी ओर झुँक करके भी न देखनेके कारण, चंदनकी भी बेडीमें वह अपने पैर नहीं अटकाता (क्योंकि चंदनकी होनेसे भी क्या हुआ ? बेडी तो बेडी ही ! ) ॥ ९८ ॥ अन्य नित्य-कर्म वह फलेच्छा छोडकर ईश्वरार्पण करते रहनेसे वह मोक्षकी सीमाको प्राप्त कर सकता है ॥ ९९ ॥ इस प्रकार संसार सम्बन्धी अले बुरे बखेडोंसे छूट-नेके कारण वैराग्य मार्गसे वह मुक्तिकी देहलीपर खडा रहता है ॥ ९०० ॥ जिसमें सर्व भाग्यकी परिपूर्णता है, जिसमें मोक्षका लाभ निश्चित है, अथवा कर्म मार्गके परिश्रमोंका जिसमें अन्त हो जाता है ॥ १ ॥ जो मोक्षफलका रखा हुआ रेहन है, जो पुण्यरूपी वृक्षका फल है, उस वैराग्यपर किसी एक भ्रमरकी तरह पुरुष पैर रखता है ॥ २ ॥ ध्यानमें लो कि, आत्मज्ञानरूपी सूर्योदय होगा, इस बातको कहनेवाला साधक अरुणोदय जो यह वैराग्य-भाव, उसका लाभ साधकको होता है ॥ ३ ॥ जादे क्या कहें ? अथवा आत्म-ज्ञानरूपी गुप्त गडा हुआ धन हाथमें प्राप्त करके देनेवाला यह वैराग्यरूपी अलौकिक अञ्जन वह मनसे अपनी आंखोंमें लगाता है ॥ ४ ॥ इस तरह हे पाण्डुसुत ! इस विहित कर्मके आचरणसे साधक पुरुषको मोक्षप्राप्तिकी योग्यता आती है ॥ ९०५ ॥ हे पाण्डव ! इस विहित कर्मका ही जीवको सच्चा सहारा है, और ये आचरण ही मेरे परमात्मस्वरूपकी सर्वोत्कृष्ट सेवा है ॥ ६ ॥ पति-व्रता जैसे अपने पतिके संग सब उपभोगोंकरके सहित विहार करती है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उसकी सब तपश्चर्या जैसे पतिके लिये ही रहती है ॥ ७ ॥ अथवा बालकको माताके बिना दूसरा जीनेका उपाय कौनसा रहता है ? अतः उसने माताकी ही सेवा करनी चाहिये, यही जैसे उसका मुख्य कर्त्तव्य है ॥ ८ ॥ अथवा केवल जलकी बुद्धिसे मछलीने भी गंगाजीमें निवास किया तो भी जैसे उसके मार्गसे समुद्रको पहुँचकर सब तीर्थोंके वासका फल उसको अपने आप प्राप्त हो जाता है ॥ ९ ॥ जैसे विहित कर्मका आचरण किये बिना अपनेको दूसरा उपाय ही नहीं, इस बुद्धिसे विहितकर्म किया जानेपर अपना भार परमेश्वर-पर गिरता है ॥ ९१० ॥ जिसका जो योग्य कर्त्तव्य है वह ईश्वरको ही इष्ट रहता है; अतः वह कर्म किया जानेपर, ईश्वर अपने आप ही निःसंशय प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ जो अपने अन्तःकरणरूपी कसौटीकी परीक्षासे प्रिय हुई वह दासी होनेपर भी मालकिन हो जाती है, जो अपने मस्तककी परवा न करते प्रभुकी सेवा करता है, उसको जैसे प्रभु मस्तकपर लेता है, तात्पर्य उसका बहुमान करता है ॥ १२ ॥ वैसे ही स्वामीके मनोरथ पूर्ण करनेवाली न भूलनेवाली जो सेवा, उसको ही सचमुचमें उत्कृष्ट सेवा कहते हैं.हे पाण्डव ! दूसरी कोई भी सेवा लेनेपर भी वह केवल बाजारका सौदाही है ! ॥ १३ ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ ४६ ॥

अतः यह केवल विहित कर्मका आचरण नहीं, तथापि उस परमात्माके मनोगतकी पालना है, जिससे यह प्राणिमात्र उत्पन्न हुए हैं ॥ १४ ॥ जो अविद्यारूपी चिंधियां लपेटकर यह जीवनरूपी गुडिया ( लडकियोंका खिलौना ) बनाता है और त्रिगुणके तीन लडोंकी अहङ्काररूपी डोरीसे खींचकर उसको नचाता है ॥ ९१५ ॥ जिससे यह सब विश्व, प्रकाशसे दीपककी ज्योतिके तरह, अंदर बाहर व्याप्त है ॥ १६ ॥ उस सर्वात्मक ईश्वरको विहितकर्माचरणरूपी फूलोंकी पूजा करें तो उसको अमर्याद संतोष होता है ॥ १७ ॥ अतः इस तरहकी पूजासे वह परमात्मा प्रसन्न हो जानेपर उस विहित कर्माचरण करनेवाले भक्तको वह वैराग्यलाभका प्रसाद देता है ॥ १८ ॥ फिर उस वैराग्यावस्थामें केवल ईश्वरका ही ध्यान मनमें लगजानेके कारण, यह सब विश्व जीवको उबकाईके तरह घृणित मालूम होने लगता है ॥ १९ ॥ पतिसे वियुक्त हुई स्त्रीको जैसे पतिकी चिन्ताके कारण जीवित रहना व्यर्थसा ही मालूम होता है, वैसेही उस भक्तको सब सुखके विषय दुःखरूप ही मालूम होते हैं ॥ ९२० ॥ ईश्वरका प्रत्यक्ष ज्ञान होनेके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पहिले ही केवल उसके ध्यानसे तन्मयता आवे, ऐसी योग्यता इस अप्रत्यक्ष ज्ञानकी है ॥ २१ ॥ अतः मोक्षप्राप्तिके लिये जो व्रतादिक कष्टसे करता हो, वह स्वधर्मका आचरण श्रद्धापूर्वक उत्तम रीतिसे करे ॥ २२ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

अपना यह स्वधर्म यदि आचरण करनेको कठिन होनेपर भी उसका परिणाममें कौनसा फल प्राप्त होनेवाला है, यह ध्यानमें लेना चाहिये ॥ २३ ॥ हे धनंजय ! अपना स्वास्थ्य सुधरनेके लिये कटुनींब यही एक ओषधि हो तो उसके कडुवेपनसे उकतानेसे कैसे चलेगा ? ॥ २४ ॥ पकनेके पहले केलेकी वृक्षकी ओर फल दीखता नहीं, इससे निराश होकर उसका त्याग कर देवे तो फिर इस कार्यसे कौनसा मीठा फल हाथमें आवेगा भला ? ॥ ९२५ ॥ वैसेही स्वधर्माचरण बहुत कठिन है ऐसा कहकर स्वधर्म यदि अप्रिय समझकर दूर करदिया जाय तो अपनेको मोक्षसुख प्राप्तिसे दूरही रहना पडेगा ! ॥ २६ ॥ अपनी माता यद्यपि कुब्जा हो तथापि उसके जिस प्रेमसे हमलोग जीते रहते हैं, वह प्रेम थोडाही कुब्जा ( टेढा ) रहता है ! ॥ २७ ॥ परस्त्रियां यद्यपि रंभासे लावण्यवती होनेपर भी ( मातृ प्रेमका अभाव होनेसे ) उनसे बालकको क्या लाभ ? ॥ २८ ॥ अरे अर्जुन ! जलकी अपेक्षा घीमें बहुतसे गुण हैं, अतः मछली क्या घीमें रहसती है ? ॥ २९ ॥ सब जगत्के लिये जो विष है, वही विषमें बढनेवाले कीडोंके लिये अमृत है, और संसारको मीठा लगनेवाला गुड, वह उन विषकीडोंको प्राणघातक होता है ! ॥ ९३० ॥ अतः जिसका जो विहितकर्म है और जो करनेपर संसारका बखेडा छूट जाता है, वह यदि करनेको कठिन होनेपर भी उसको वही करना चाहिये ॥ ३१ ॥ दूसरेके आचार अच्छे लगते हैं इससे उनको करनेके लिये लग जाना याने पैरसे चलनेकी क्रिया मस्तकसे कीजाय, इसतरह अनिष्ट है ॥ ३२ ॥ इसके लिये अपने जातिस्वभावके अनुसार जो कर्म अपने बांटको आया हो, वह जो करता है, उसने कर्मका बन्धकत्व नष्ट किया, ऐसा समझना चाहिये ॥ ३३ ॥ और हे पाण्डव ! स्वधर्मकी रक्षा करनी चाहिये और पर धर्मका त्याग करना चाहिये ऐसा नियम करना अवश्य नहीं क्या ? ॥ ३४ ॥ जबतक आत्मदर्शन हुआ नहीं, तबतक कर्मका आचरण क्या बन्द रह सकता है ? और कोई भी कर्म करना कहा कि परिश्रम कष्ट ये पहिले रखे ही हैं ॥ ९३५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

फिर यदि कोई भी कर्माचरणमें श्रम कष्ट होते ही हैं, तो वे स्वधर्माचरणमें रहजानेसे वह स्वधर्मका दोष क्यों कहना ? ॥ ३६ ॥ अजी ! सीधी रास्तेसे चलने पर भी पैरोंको कष्ट होता है और जङ्गली रास्तेसे जानेपर भी कष्ट होता है ॥ ३७ ॥ हे धनंजय ! यद्यपि पत्थरोंको बांधकर ले जावे, अथवा अन्नका पाथेय लेजावे, तथापि दोनोंका बोझा ही होता है, पर जो बोझा लेनेसे अपना प्रवास सम्बन्धि परिश्रम दूर होनेका साधन होवे, वही बोझा साथ लेना चाहिये, यह योग्य है ॥ ३८ ॥ नहीं तो धान्य और भूस इन दोनोंको कूटनेमें परिश्रम समान ही हैं, कुत्तेका मांस पकाना और यज्ञके लिये हविष्य अन्न पकाना, इन दोनोंमें भी पकनेकी क्रिया एक ही है॥३९॥ हे विचक्षण ! जलका मंथन करना, दहीका मन्थन करना, ये दोनों क्रिया एक ही हैं वैसे ही कोल्हूमें बालू या तिल डाले जाँय, दोनों समान ही पेली जाती हैं ॥ ९४० ॥ हे धनंजय ! वैश्वदेवके लिये अग्निको फूंकना, अथवा घरको आग लगानेके लिये फूंकना इन दोनोंमें धूआँका त्रास समान ही होता है ॥ ४१ ॥ पर धर्मपत्नीका प्रतिपालन करना और किसी दुराचारिणी वेश्याको संभालना, इन दोनोंके विषयमें यदि खर्च बराबर ही लगता है, तो वेश्याको पास रखकर दुर्लौकिक अपकीर्तिको क्यों लगालेना चाहिये ? ॥ ४२ ॥ फिर शत्रुको पीठ देकर पीठपर लगे हुए घावोंसे यदि मृत्यु नहीं टलती, तो शत्रुको सामना देकर घाव लियाजाय तो उससे क्या और कोई दूसरा नुकसान होनेवाला है ? ॥ ४३ ॥ कुलस्त्रीने दूसरेके घरका अवलम्ब करनेपर वहाँ भी यदि उसको डण्डेका मार सहना ही पडता है तो घरमें पति मारताहै, इसलिये पतिको छोडकर बाहर गिरनेका फल उसने क्या प्राप्त किया ? ॥ ४४ ॥ वैसे ही यदि अपना परमप्रिय कार्य भी कष्ट किये बिना सिद्धिको प्राप्त होता नहीं तो फिर विहित कर्म ही कठिन है, ऐसा क्योंकर कहा जाता है ? ॥ ९४५ ॥ हे पांडुसुत ! जिस अमृतसे अपना जीना अक्षय होता है, उसका थोडा अंश प्राप्त करनेके लिये सर्वस्व खर्च होजाय तो कुछ हानि नहीं ॥ ४६ ॥ जो विष पिया हो तो आत्महत्या होकर आप व्यर्थ मरजाता है, उस विषको आप स्वयं दाम देकर खरीदकर क्यों पीवे ? ॥ ४७ ॥ वैसे ही इन्द्रियोंको सताकर और आयुष्यके दिनोंको खर्चकर जो हमलोग पापोंका संग्रह करते हैं, उसमें दुःखके बिना दूसरा क्या है ? ॥ ४८ ॥ अतः स्वधर्मका आचरण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



करना चाहिये, वह सब परिश्रम दूरकरके सब पुरुषार्थोंमें श्रेष्ठ पुरुषार्थ जो मोक्ष उसका लाभ कराता है ॥ ४९ ॥ अतः हे किरीटी ! जैसे संकट समयमें सिद्धमंत्रको भूलना नहीं चाहिये, वैसे ही स्वधर्माचरणको कभी भी छोडना नहीं चाहिये ॥ ९५० ॥ समुद्रमें जैसी नाव, अथवा महारोग हुआ हो तो जैसे दिव्य ओषधिको नहीं छोडना चाहिये, उस ही बुद्धिसे अपने कर्मका इस लोकमें कभी भी त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ५१ ॥ क्योंकि हे कपिध्वज ! इस स्वधर्माचरणरूपी उपासनासे सन्तुष्ट हुआ ईश्वर रजोगुण और तमोगुण इनको उस भक्तके शरीरसे बाहर निकाल कर ॥५२॥ उसको सत्त्वगुणके रास्तेको लगाता है और आत्मप्राप्तिके साधनकी उत्कंठासे संसार और स्वर्गसुख उसको हलाहलविषके समान मालूम होंगी ऐसा वैराग्य उसके अन्तःकरणमें उत्पन्न करता है ॥ ५३ ॥ अधिक क्या कहें ? जिस वैराग्यके स्पष्ट लक्षण पीछे वैराग्य नाम देकर संसिद्धिका वर्णन किया हुआ है, उस वैराग्यका ही स्थान, उस पुरुषको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ अब इस स्थानको प्राप्त होजानेपर वह पुरुष सब जगह किसतरह वर्तता है और ऐसे वर्तनेसे उसको क्या लाभ होता है, वह कहता हूँ ॥ ९५५ ॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

जैसे जालीमें हवा नहीं बान्धी जासकती, वैसे ही संसारमें देहादिरूपी जो जाल फैला हुआ है उसमें वह फसता नहीं ॥ ५६ ॥ फलकी परिपाकावस्थाका पूर्ण समय होनेको आया कि, जैसे फल डंठलको पकड कर नहीं रह सकता और डंठलभी फलको पकड नहीं सकता, वैसे ही इस परिपूर्णावस्थामें उस पुरुषका संसारसंबन्धी स्नेह बिलकुल निर्बल होजाता है॥५७॥ जैसे यह विषका पात्र मेरा है. मैं ही इसका सेवन करूंगा, ऐसा कोई कहता नहीं, वैसेही पुत्र, वित्त, स्त्री ये सब उसको फटकार जानेको तैयार हुए हों तो वह ' ये सब मेरे हैं ' इसका आग्रह नहीं करता ॥ ५८ ॥ तात्पर्य, सब विषयमात्रकी घृणा लेकर बुद्धि उनसे पीछेके ही पैर लौट जाती है और हृदयके एकान्तस्थानमें प्रवेश करती है ॥ ५९ ॥ फिर ऐसे पुरुषका मन यदि बाहर व्यवहार करने लगे तो उसकी वैराग्ययुक्त बुद्धि, एकनिष्ठ एखादी दासीके तरह अत्यन्त डरकर चलती हुई, उसकी आज्ञाका कभी भी भंग नहीं करती ॥ ९६० ॥ इसके बिना वह एकताकी मुट्ठीमें मनको लेकर उसको आत्माके अनुसंधानमें लगाता है ॥ ६१ ॥ उस समय धूल ( राख )

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

 Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS 

से दबी हुई आगके तरह दृष्ट ( ऐहिक ) और ( अदृष्ट ) पारलौकिक विषयोंकी वासनाका नाश अपने आप ही होजाता है ॥ ६२ ॥ इसतरह मनका नियमन करनेसे वासना अपने आप ही नष्ट होती है. सारांश, वह पुरुष इन लक्षणोंकी अवस्थाको प्राप्त होता है ॥६३॥ हे पाण्डव ! उसका संपूर्ण अन्यथा ज्ञान नष्ट होकर वह सत्यज्ञानका आश्रय लेता है ॥ ६४ ॥ बाद जमा किया हुआ पानी जैसे खरचते खरचते समाप्त हो जाता है, वैसे ही उसका प्राचीन कर्म देहके भोगसे नष्ट होता है, और नया कर्म करनेको उसका मन कोई भी मदद नहीं करता ॥ ९६५ ॥ हे वीरेश, अर्जुन ! इस अवस्थाको ' कर्मसाम्यदशा ' कहते हैं, फिर इस अवस्थामें उस पुरुषको सद्गुरुका दर्शन सहजमें ही होजाता है ॥ ६६ ॥ रात्रिके चार प्रहर समाप्त होजानेपर अन्धकारका शत्रु जो सूर्य उसका दर्शन जैसे अपने आप होता है ॥ ६७ ॥ अथवा केलेके वृक्षमें फल आजानेपर वह जैसे केलेकी बाढको रोक देता है, वही प्रकार मुमुक्षुको इस स्थितिमें श्रीगुरुका दर्शन प्राप्त होकर होता है ॥ ६८ ॥ फिर हे वीरोत्तम ! पूर्णिमाके साथ चंद्रमाकी भेंट होते ही जैसे चन्द्रकी न्यूनता जाकर वह परिपूर्ण होता है, उसीतरह सद्-गुरुकी कृपासे वह पुरुष भी सर्व सम्पन्न होजाता है ॥ ६९ ॥ बाद जो कुछ अज्ञानका अंश शेष रहा हो, वह गुरुकृपासे नष्ट होता है. फिर जैसे सूर्यो-दयके बाद अन्धकार रात्रिके साथ नष्ट होजावे ॥ ९७० ॥ वैसे ही अज्ञानके गर्भमें रहनेवाली ' कर्म, कर्ता और कार्यरूपी' यह त्रिपुटी,वह मानो गर्भिणी-अवस्थामें ही मारी जाती है ॥ ७१ ॥ ऐसा होतेही इस अज्ञानके नाशके साथ ही सब कर्मसमुदायका नाश होता है. इसतरह यह संन्यास बिलकुल जडतक जाकर पहुँचता है ॥ ७२ ॥ इस मूलरूप अज्ञानके नाशसे, इस नामरूपा-त्मक मायाकृतिका स्थान ही पोंछ डालनेसे वह पुरुष स्वयं ही ज्ञेयस्वरूप होता है ॥ ७३ ॥ जागृत हो जानेपर स्वप्नरूपी दहमें डूबनेवाले अपनेको बाहर निकालनेके लिये बहुत भारी प्रयत्न करना पडता है क्या ?॥ ७४ ॥ वैसेही हमको समझता नहीं, अब मैं ज्ञान सम्पादन करूँगा, इस प्रकारका उसका दुःस्वप्न समाप्त होकर वह ' ज्ञाता ' और ' ज्ञेय ' इस भावनासे छूट-कर केवल ज्ञानस्वरूप हुआ रहता है ॥ ९७५ ॥ हे वीरेश ! दर्पणमें दीखने-वाले प्रतिबिंबके सहित दर्पणको दूर करनेसे प्रतिबिंब देखनेवाला खाली ही रहजाता है ॥ ७६ ॥ वैसे ही जो अज्ञान नष्ट होता है, उसके साथ ज्ञान भी लुप्त होजाता है, बादमें केवल क्रियारहित चैतन्य इतना ही बाकी रहता है ॥ ७७ ॥ हे धनंजय ! इस चैतन्यके विषयमें स्वभावतः कोई भी क्रियाका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


सम्भव न होनेसे इसको 'नैष्कर्म्य' ऐसा कहते हैं ॥ ७८ ॥ जो अपना मूलस्वरूप है, वह अपनेको प्राप्त होकर अज्ञानसे उत्पन्न अपना पृथग्भाव नष्टसा होजाता है. हवा बंद होजानेपर तरंग जैसे पानीमें विलीन होकर समुद्र होता है ॥ ७९ ॥ वैसेही यह जो 'न होना' याने 'पृथग्भाव नष्टसा होजाना' उत्पन्न होता है, वही नैष्कर्म्यकी सिद्धि जाननी चाहिये, सब सिद्धियोंमें यही सिद्धि अति श्रेष्ठ है ॥ ९८० ॥ मन्दिरके कार्यमें जैसा कलश श्रेष्ठ है, अथवा नदीका जैसे समुद्रमें प्रवेश, अथवा सोनेकी शुद्धि-क्रियाके संबन्धमें जैसे सोलहवाँ कस ॥ ८१ ॥ वैसेही अपना अज्ञान और ज्ञान ये दोनों नष्ट होकर इस अवस्थाको पहुँचना ऐसा है ॥ ८२ ॥ यह अवस्था प्राप्त होजानेके बाद कुछ भी सिद्धकरनेका शेष रहता नहीं, अतः इसको 'परमसिद्धि' यह नाम दिया है ॥ ८३ ॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥

अब यही आत्मसिद्धि जिस भाग्यवानको श्रीगुरुकी कृपासे प्राप्त होती है ॥ ८४ ॥ सूर्य उदयको प्राप्त होते ही जैसे अन्धकार प्रकाशरूप होता है अथवा दीपकके स्पर्शसे कपूर दीपकस्वरूप होता है ॥ ९८५ ॥ अथवा जलका स्पर्श होते ही जैसे नमकका कंकड जलरूप होजाता है ॥८६॥ अथवा सोया हुआ जागृत हो जानेपर निद्रा और स्वप्न इन दोनोंका नाश होकर वह जैसे होशमें आ जाता है ॥ ८७ ॥ वैसे गुरुवाक्य सुनते ही जिस किसीको दैवयोगसे द्वैत बुद्धिका नाश होकर ऐक्यरूप आत्मप्रतीतिमें विश्रान्ति प्राप्त होती है ॥ ८८ ॥ उस पुरुषको बाद कुछ कर्तव्य रह जाता है, इस प्रकार किसीको भी कहनेको आवेगा क्या ? आकाशको कभी होना, जाना, नष्ट होना इत्यादि हो सकते हैं क्या ? ॥ ८९ ॥ अतः ऐसे पुरुषको कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रहता, यह निःसंदिग्ध है; पर यह बात तत्काल जिस किसी पुरुषके सम्बन्धमें नहीं हो जाती ॥ ९९० ॥ हे किरीटी ! अपने कान और गुरुके वाक्य इनकी भेंट होते ही जो कोई वस्तुस्वरूप ( आत्मस्वरूप ) सहज ही नहीं साध सकता ॥ ९१ ॥ क्योंकि सामान्यतः विहित कर्माचरणरूपी अग्निसे काम्य और निषिद्ध कर्मोंके ईंधन सुलगाकर यदि रजोगुण और तमोगुण इन दोनोंकी राख हो जानेपर भी ॥ ९२ ॥ पुत्र, धन, स्वर्गलोक इन तीनों विषयोंका लोभ यदि कोई एक दासके तरह अपने पूर्ण कहनेमें आया हुआ, ॥ ९३ ॥ स्वच्छ-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



न्दरूपसे दौडनेवाली इन्द्रियां विषयरूपी मलसे दूषित हुईं,वे यदि निग्रहके तीर्थमें धोकर शुद्ध की हुईं॥९४॥ और स्वधर्माचरणका फल ईश्वरको समर्पणकर यदि अटल वैराग्य शरीरमें निश्चित हुए ॥ ९९५ ॥ इस तरह आत्मसाक्षात्कारके समय ज्ञानके उत्कर्षको जरूर ऐसी सब सामग्री यदि एकत्र संगृहीत हुई ॥ ९६ ॥ और ऐसे ही समयमें यदि सद्गुरुकी भेंट हुई और उन्होंने भी कुछ भी संकोच न करते स्पष्टरूपसे आत्मबोध कहा ॥ ९७ ॥ तो भी ओषधि लेते ही विकृति जाकर प्रकृति कभी तुरंत ही रास्तेपर आती है क्या ? अथवा दिवस होते ही कभी मध्याह्न होता है क्या ? ॥ ९८ ॥ अच्छा खेत हो और भींगी हुई भूमिमें यदि उत्तम बीज बोये जांय तो अटूट फसलका लाभ होता है, पर वह कब, योग्यकाल आनेपर ही, तब ॥ ९९ ॥ रास्ता बिल्कुल सरल, सुगम और निर्मल है, अच्छे सज्जनोंकी संगत मिली हुई है, तब आप सहजही इष्टस्थलको पहुँचता है, पर वैसा होनेको ऊपरकी दो बातोंके बिना और काल यह लगता ही है ॥ १००० ॥ वैसे ही वैराग्य शरीरमें निश्चित हुआ, उसी अवस्थामें सगुद्रुकी भी भेंट हुई और अंतःकरणमें आत्मानात्मविचारका अंकुर भी फूटा ॥ १ ॥ और इस विवेकसे ब्रह्म यह एक ही सत्य वस्तु है बाकीका सब मायोत्पादित मोहजाल है, ऐसा अनुभव यदि निश्चित हुआ ॥ २ ॥ तो भी वह जो परब्रह्म सर्वव्यापी और सबसे श्रेष्ठ है, जिसमें मोक्षका कार्य सम्पूर्ण होता है॥३॥ जो ज्ञाता, ज्ञेय,ज्ञान इस त्रिपुटीको निगल लेता है, इतना ही नहीं और अन्तमें जो ज्ञानका भी व्यवहार बन्द करता है ॥ ४ ॥ जिसमें ऐक्यका एकत्व भी नहीं रहता, जिसमें आनन्दका अणुरेणु भी लीन हो जाता है और अन्तमें कुछ भी न रहते हुए जो एक वस्तु शेष रहती है ॥ १००५ ॥ उस ब्रह्मतत्त्वमें समरस होकर ब्रह्मस्वरूप ही हो जाना, यह स्थिति उस पुरुषको कालक्रमसे ही प्राप्त होती है ॥ ६ ॥ बुभुक्षित मनुष्यको षड्रस अन्न परोसनेपर भी प्रत्येक ग्रास ( कौर ) पर कौर लेनेपर ही जैसे उसकी तृप्ति होती है ॥ ७ ॥ वैसे ही वैराग्यके आधारसे विवेकरूपी दीपक प्रकाशित होते ही आत्मस्वरूपरूपी गडा हुआ धन हाथ लग जाता है ॥ ८ ॥ तथापि आत्मस्वरूपका ऐश्वर्य प्रत्यक्ष भोगें,इतनी योग्यताकी प्राप्तिसे जो भूषित हुआ है ॥ ९ ॥ वह उस ब्रह्मप्राप्तिकी योग्यताको जिस किसी क्रमसे चढता है, उसका लक्षण तुझको कहता हूँ. सुनो ॥१०१०॥

**बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।**
**शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१ ॥**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



गुरुने दिखाये रास्तेसे विवेकरूपी तीर्थपर पहुँच कर, वह बुद्धिका मल साफ धोडालता है ॥ ११ ॥ बाद राहुके मुखमेंसे छूटी हुई कान्ति जैसे चन्द्रको आलिंगन देती है वैसे ही निर्मल हुई उस पुरुषकी बुद्धि आत्मस्वरूपको मिलती है ॥ १२ ॥ जैसे श्वशुरकुल और मातृकुल ये दोनों कुलोंका अभिमान छोडकर पतिव्रता स्त्री केवल अपने पतिका ही अनुसरण करती है वैसे ही उसकी बुद्धि सुखदुःखादि द्वैतको छोडकर केवल आत्मस्वरूपके चिंतनमें निमग्न होजाती है ॥ १३ ॥ और ज्ञानरूपी वस्तुकी रुचि लगाकर जिन इंद्रियोंने शब्दादि पांच विषयोंका माहात्म्य बढाया है ॥ १४ ॥ वे पांचों विषय सूर्यके किरण हटजानेसे जैसा मृगजल लुप्त होता है, वैसे ही इन्द्रियोंका निरोध करनेसे विलयको प्राप्त होते हैं ॥ १०१५ ॥ जैसे न जानकर अधमका अन्न खाया जाय तो उसको वमन कर निकाल देना चाहिये, वैसेही विषय और विषयोंकी वासना इनको वह पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा वमन कराता है ॥ १६ ॥ बाद इन इन्द्रियोंको अन्तर्मुखवृत्तिरूपी गंगाजीके पवित्र तटपर लाकर और उनको उचित प्रायश्चित्त देकर वह निर्मल करता है ॥ १७ ॥ फिर सात्त्विक धैर्यसे वह उन इंद्रियोंको शुद्ध करता है, और योगसाधनसे उनका मनके साथ एकीकरण करता है ॥ १८ ॥ वैसेही प्राचीन कर्मके अनुसार जो कुछ इष्ट अनिष्टभोग इस जन्ममें उसको भोगने पडते हैं, उसमें कुछ खराब दीखपडनेपर भी उसके सम्बन्धमें वह खेद अथवा द्वेष नहीं करता ॥ १९ ॥ अथवा उसमें कुछ अच्छा देखपडे तो भी वह आनन्दके मारे उसका लोभ नहीं करता ॥ १०२० ॥ इसतरह हे किरीटी ! वह पुरुष अच्छे खराब बातोंके विषयमें प्रीति और वैर छोडकर पर्वत-कन्दराओंमें जाकर बसता है ॥ २१ ॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

वह लोगोंसे गिचपिच हुए स्थानको छोडकर केवल अपने शरीरके अवयवोंको साथी बनाकर वनस्थलमें रहता है ॥ २२ ॥ उसके शम, दम इत्यादि खेल हैं, मौन यही उसका बोलना है, और गुरुवाक्यके चिन्तनमें लगनेके कारण उसको समयका भी ध्यान नहीं रहता ॥ २३ ॥ और देह पुष्ट होकर बलवान् होवे और भूक शान्त होवे, अथवा जीभके मनोरथ पूर्ण होवे ॥ २४ ॥ इन तीनोंमेंसे कोई भी बात भोजन करते समय उसके मनमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


नहीं आती. परिमित नियमित आहारसे उसको जो संतोष होता है, उसका माप करनेको ही नहीं आता ॥ १०२५ ॥ अन्न न खानेसे जठराग्नि प्राणोंको आहार बनालेगा, अतः प्राणरक्षाके लिये जितना अन्न अपेक्षित है उतनेही अन्नका सेवन करता है ॥ २६ ॥ और परपुरुष स्त्रीको देखकर कामुक होनेपर भी कुलाङ्गना स्त्री उसकी ओर देखतीतक नहीं, वैसे ही वह निद्रा और आलस्य इनको आसनका मान देता नहीं ॥ २७ ॥ दण्डवत् याने साष्टांगनमस्कार करते समय ही अवयव पृथ्वीको लगते हैं, पर प्रसंगसे दूसरे समय भूमिपर लोट पोटनेका अविचार उसके हाथसे कभी भी होता नहीं ॥ २८ ॥ देहका व्यवहार चले इतने कामके लिये ही वह हाथ पैरोंको चलाता है, अधिक क्या कहाजाय, वह अपना अन्दर बाहरका शरीर अपनी ही सत्तामें रखता है ॥ २९ ॥ और हे वीर ! वह अपनी अन्तःकरणकी वृत्तिको मनकी देहलीको भी देखने नहीं देता, ऐसी अवस्थामें वहाँ वाणीके व्यापारके लिये अवकाश भी कहाँसे मिलसकता है ? ॥१०३०॥ इसप्रकार देह, वाणी, मनरूपी बाह्यप्रदेशोंको जीतकर ध्यानरूपी आकाशको अपने अधीन करता है ॥ ३१ ॥ सद्गुरुके वाक्यसे जागृत हुआ आत्मज्ञानविषयका अपना निश्चय सदैव दर्पणके तरह सामने धरकर उसको देखते रहता है ॥ ३२ ॥ वह स्वयं ध्याता रहता है पर स्वान्तःकरणवृत्तिमें उसका ध्यान ध्येयसे एकरूप होजाता है । हे पाण्डुसुत ! यह उसके ध्यानकी रीति है ॥ ३३ ॥ बाद ध्यान, ध्येय और ध्याता यह त्रिपुटी एक होनेतक उसका यह ध्यान चलता है ॥ ३४ ॥ अतः ऐसा मुमुक्षु जीव आत्मज्ञानमें दक्ष होता है, पर यह सब उसको योगाभ्यासके पक्षको अग्रेसर करनेसे सिद्ध होता है ॥ १०३५ ॥ हे धनंजय ! गुदद्वार और मूत्रद्वार इन दोनोंके बीचमें पैरकी एडीसे दबाकर वह मूलबन्ध करता है ॥ ३६ ॥ और अधोभाग संकुचित कर गुदस्थानका मूलबन्ध, नाभिचक्रका वोढियाणबन्ध और कण्ठस्थानका जालंधरबंध इन बन्धोंको साधकर भिन्न भिन्न वायुओंको एकरूप कर देता है ॥ ३७ ॥ बाद कुण्डलिनीको जागृतकर मध्यमाका याने सुषुम्नाका मार्ग खुला और विस्तृत कर आधारचक्रसे अग्निचक्रतक सब चक्रोंका भेद करके ॥ ३८ ॥ और उसके बाद आखीरके सातवें चक्रमेंका याने ब्रह्मरध्रमेंका सहस्रदलकमलमेंसे मेघके समान अमृतकी वृष्टि होने लगनेपर उस अमृतका प्रवाह गुदस्थानके मूलबन्धतक लाकर छोडता है ॥ ३९ ॥ और बाद ब्रह्मरंध्ररूपी पुण्यगिरिपर नर्तन करनेवाला चैतन्यरूपी भैरवके भिक्षापात्रमें मन और प्राणवायुरूपी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



खिचडी भरपूर परोसता है ॥ १०४० ॥ और इस रीतिसे योगकी बडी भारी सेना आगेकी ओर रखकर, वह पीछेकी बाजूसे अपने ध्यानका विषय मजबूत और स्थिर करता है ॥ ४१ ॥ और ध्यान, योग ये दोनों आत्मतत्त्वके ज्ञानमें निर्विघ्नतासे नियमपूर्वक बने रहें, इसलिये वह पहिले ही वैराग्यके समान मित्रके साथ मैत्रीकरके रखता है, और ऊपरका सब स्थान आक्रमित होजानेपर यह मित्र उसको सहायता देनेके लिये सदैव साथ ही रहता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ दृष्टिकी जबतक मर्यादा है, तबतक दृष्टिको दीपकका वियोग न हुआ तो फिर वस्तुदर्शन होनेको देर कहाँसे होगी ? ॥ ४४ ॥ उसीके तरह जीवको मुमुक्षुता प्राप्त होनेके बाद अन्तःकरणवृत्ति ब्रह्मतत्त्वमें लीन हो जाती है और इस अवस्थातक यदि उसका वैराग्य स्थिर रहा तो बाद इस बह्वैक्यका भंग होगा कहाँसे ? ॥ १०४५ ॥ अतः जिस भाग्यवान्को वैराग्ययुक्त योगाभ्यास प्राप्त होता है, वह आत्मप्राप्तिके योग्य माना जाता है ॥ ४६ ॥ ऐसा वैराग्यका भेद करनेके लिये अयोग्य कवच शरीरपर डालकर वह राजयोगरूपी घोडेपर चढ़ता है ॥ ४७ ॥ और रास्तेमें जो कुछ छोटी बडी वस्तु बीचमें दृष्टिगोचर होजांय तो उसके तुकडे करनेके लिये ध्यानकी तलवार विचाररूपी मुट्ठीमें मजबूतीसे पकडता है ॥ ४८ ॥ इसतरह तैयारीसे अन्धेरेमें सूर्यके समान वह संसाररूपी संग्राममें चाल करके जाता है और अन्तमें मोक्षविजयलक्ष्मी उसके गलेमें माला डालती है ॥ ४९ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

वहां रास्ता रोकनेके लिये आये हुए दोषरूपी शत्रुओंको पीटता है, उनके बीचमेंसे पहिला देहाहंकार है ॥ १०५० ॥ जो मृत्यु होनेपर छोडता नहीं और जन्म होनेपर भी सुखसे जीते नहीं रहने देता, और हड्डियोंके ढांचेमें जीवको अटकाकर दुःख देता रहता है ॥ ५१ ॥ हे वीर ! उस देहाहंकारका देहरूपी दुर्ग ( किला ) यही मुख्य आधार है और उसीको वह मार डालता है । दूसरा वैरी 'बल' इसका भी वह प्राण लेता है ॥ ५२ ॥ यह शत्रु जो विषयोंके नाम लेते ही चौगुना बलवान होता है और जिसके कारण सब जगत्को खानेके लिये मरण दौडकर आता है ॥ ५३ ॥ यह विषयरूपी विषकी बाढ समझनी चाहिये. सब दोषोंपर इसका ही साम्राज्य रहता है, पर ध्यानरूपी तलवारका वार उसको कैसे सहन हो सकता है ॥ ५४ ॥ वैसे ही जो जो विषय प्रिय लगकर सुखकारक ऐसे भासते हैं, उन्हींका आच्छादन लेकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जो शरीरपर धाड डालता है॥५५॥जो सन्मार्ग भुलाता है और प्रवासी जीवोंको अधर्मके जंगलमें डालकर उनको नरकरूपी सेरोंके मुखमें डाल देता है ॥ ५६ ॥ वह विश्वास दिखाकर मारनेवाला शत्रु 'दर्प' इसका भी नाश करता है, वैसे ही जिसका बडे बडे तपस्वी जनोंको भी भय लगता है ॥ ५७॥ क्रोधके ऐसा महादोष यह जिससे उत्पन्न होता है, जिसकी ज्यों ज्यों पूर्ति की जाय त्यों त्यों जो अधिक सूखतासा ही मालूम होता है॥५८॥उस काम नामके शत्रुका भी वह नाश करता है, क्योंकि उसका नाश करनेपर 'क्रोध' नामके शत्रुका भी नाश अपने आप ही होता है ॥ ५९ ॥ जैसे जडका तोडना यही शाखाओंके तोडनेके तरह है, वैसे ही कामका नाश करनेसे क्रोधका भी नाश हो जाता है ॥ १०६० ॥ अतः जहां कामरूपी शत्रु ठिकाने लग जानेपर वहां क्रोधका भी आना जाना बन्द होता ही होता है ॥ ६१ ॥ और जैसे कोई सत्ताधारी पुरुष अपना बोझा दूसरेके मस्तकपर जबरदस्ती लादने चूकता नहीं, वैसे जिस परिग्रहका स्वीकार किये जानेपर उसका जुल्म बढता ही जाता है ॥ ६२ ॥ जो मस्तकपर बैठता है, शरीरमें कई अवगुण लगा देता है, और जीवको 'ममत्व' का दण्ड धराता है ॥ ६३ ॥ जो परिग्रह शिष्य, शास्त्र इत्यादिकोंका आडम्बरकर और मठ योगमुद्रा इत्यादिकोंके व्याजसे निःसंग ( संन्यासी ) लोग भी जिसके फन्देमें आजाते हैं ॥ ६४ ॥ घरमें कुटुम्बका जो त्याग करता है, पर जो बनमें वन सम्बन्धी विषयोंमें ममत्व-रूपसे दिखाई देता है, जो नंगे शरीरको भी लगा है ॥ १०६५ ॥ ऐसा जो अजेय 'परिग्रह' नामका शत्रु उसका ठिकाना हटाकर, वह संसारपर विजय प्राप्त कियेका आनन्द भोगते रहता है ॥ ६६ ॥ इस कारण अमानित्व इत्यादि जो ज्ञानगुणोंके समूह हैं; वे मानों कैवल्य प्रान्तके राजाके तरह इसके सामने प्राप्त होते हैं ॥ ६७ ॥ और फिर उत्तम ज्ञानका स्वामित्व उसको अर्पण कर वे आप स्वयं उसके परिवार होकर रहते हैं ॥ ६८ ॥ फिर प्रवृत्तिके राजरास्तेसे यह सवारी जाते रहते जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति ये स्त्रियां डग डगपर उसके ऊपरसे सुखरूपी नमक निछावर करती हैं ॥ ६९ ॥ उसके सामने ब्रह्मज्ञान-रूप बेंतसे विवेक सब मायिक फैलावकी भीड दूर हटाते जाता है और योगावस्था उसको पंचारती लेकर निछावर करती है ॥ १०७० ॥ इस प्रसंगमें ऋद्धि और सिद्धिके भी समुदाय आते हैं, और उन्होंने किये हुए पुष्प-वृष्टियोंसे वह मानों नहाता है ॥ ७१ ॥ इस प्रकार ब्रह्मैक्यका स्वराज्य समीप आकर उपस्थित होनेपर तीनों लोक उसको आनन्दसे सजे हुए दीखते हैं ॥ ७२ ॥ बाद हे धनंजय ! उस समय उस पुरुषको 'यह मेरा शत्रु' अथवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


'यह मेरा मित्र' ऐसा कहनेको कुछ भी नहीं रहता ॥ ७३ ॥ इतना ही नहीं तो कुछ कारणसे एखादेको 'मेरा' ऐसा कहनेपर वह उसके आगे दूसरेका नहीं ठहरता, क्योंकि वह ऐसा केवल एकस्वरूप भया हुआ रहता है ॥ ७४॥ हे पांडुसुत ! इस तरह वह केवल अपनी सत्तासे सब जगत्को वशकर ममत्वका इस तरह त्याग करता है कि वह कभी उसके पास नहीं आता ॥ १०७५ ॥ इस रीतिसे उस पुरुषने शत्रुओंको जीतकर और मायिक प्रपंचका तिरस्कार करनेके बाद उसका योगरूपी घोडा स्थिर होता है । ॥ ७६ ॥ बाद वैराग्यका जो मजबूत कवच पहना था; उसको भी थोडी देरके लिये ढीला करता है ॥ ७७ ॥ और ध्यानरूपी खड्गको भी वह तोड डालता है, आत्मासे व्यतिरिक्त ऐसा दूसरा कुछ सामने न रहनेके कारण वह वृत्तिका भी हाथ पीछे खींच लेता है ॥ ७८ ॥ जैसे कोई रसायन ओषधि अपना काम बराबर पूरा करती है, पर रोगीने उसका सेवन करनेके कारण स्वयं नहीं रहती, वैसा ही प्रकार यहां भी घटता है ॥ ७९ ॥ ठहरनेकी जगह दीख पडनेपर जैसा दौडता हुआ पैर एकदम रुक जाता है वैसे ही ब्रह्मका सामीप्य होनेसे उसका अभ्यासका वेग भी बन्द होता है ॥ १०८० ॥ महासमुद्रसे मिला हुआ नदीका वेग जैसे बन्द हो जाता है, अथवा कामिनी स्त्री पतिके पास जानेसे जैसे शान्त होती है ॥ ८१ ॥ अथवा केलेके वृक्षकी बढती फलका समय आते ही रुक जाती है, अथवा रास्ता जैसे गांवमें आनेपर समाप्त हो जाता है ॥ ८२ ॥ वैसे ही आत्मसाक्षात्कार प्रत्यक्ष अनुभवको आनेपर यह पुरुष भी साधनरूपी शस्त्रोंको धीरे धीरे नीचे रखता है ॥ ८३ ॥ अतः हे धनंजय ! वह ब्रह्मसे एकरूप हो जानेपर उसके साथ साधनोपाय नहीं रहते ॥ ८४ ॥ बाद वैराग्य संस्कारकी पूर्ति करनेवाला आडम्बर, अथवा ज्ञानाभ्यासकी वृद्धावस्था, अथवा योगफलकी परिपाकावस्था ॥ १०८५ ॥ ऐसी वह शान्ति अजी सुभग, अर्जुन ! उस पुरुषके शरीरमें पूर्णतया व्याप्त हो जाती है और ऐसा हो जानेके बाद वह पुरुष प्रत्यक्ष ब्रह्म होनेके योग्य होता है ॥ ८६ ॥ पौर्णमासीकी चन्द्रकलासे चतुर्दशीकी चन्द्रकला जितनी कम रहती है अथवा सोनेकी सोलहवें कसकी अपेक्षा पंधरहवा कस जितना हीन रहता है ॥ ८७ ॥ अथवा समुद्रमें नदीका जितना पानी प्रविष्ट होता है उतना ही जैसे नदीके चंचलरूपको दिखाता है पर निश्चल जो रहता है वह समुद्र है ॥८८॥ वैसा ही सम्बन्ध 'ब्रह्म' और 'ब्रह्मस्वरूप होनेवाला सिद्ध' इनमें रहता है, और इस शांति गुणसे वह अल्प कालमें ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ब्रह्म हो जाता है ॥ ८९ ॥ परन्तु ऐसा प्रत्यक्ष 'ब्रह्म' न होते जो ब्रह्मत्वका अनुभव पुरुषको आता है, उसी अनुभवको 'ब्रह्मस्वरूप होनेकी योग्यता' ऐसा कहते हैं ॥ १०९० ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ९४ ॥

बाद हे पांडुसुत ! यह ब्रह्मस्वरूप होनेकी योग्यता प्राप्त होनेके कारण वह पुरुष ब्रह्मज्ञानसे आनेवाली जो चित्तकी प्रसन्नता उसके आसनपर बैठता है ॥ ९१ ॥ जिस उष्णतासे अन्नकी पाकसिद्धि होती है, वह उष्णता जब उस पके हुए अन्नमेंसे जाती है, तभी ही वह अन्न भोजनके योग्य होता है ॥ ९२ ॥ अथवा बरसातमेंकी बढतीको नदी शरद्ऋतुमें छोडकर शांत होती है, अथवा गायन ही समाप्त हो जानेपर उसके उपाङ्ग तबला, इत्यादि अपने आप बन्द होते हैं ॥ ९३ ॥ वैसे ही आत्मबोधका लाभ हो, इसलिये जो बहुतश्रमसे उद्योग किये जाते हैं, वे सब आत्मज्ञान हो जानेपर शान्त हो जाते हैं ॥ ९४ ॥ इस शान्त, प्रसन्न, अवस्थाका 'आत्मबोधप्रशस्ति' यह नाम है. यह प्रसन्नावस्था उस पुरुषको अब प्राप्त होती है ॥ १०९५ ॥ उस समय ब्रह्मैक्यभाव भरा हुआ होनेसे, अपनी एखादी वस्तु गुम गई ऐसा कहकर शोक करना, अथवा कुछ वस्तुका लाभ होवे, इसलिये उद्योग करना, यह उस पुरुषके सम्बन्धमें कुछ भी सम्भवता नहीं ॥ ९६ ॥ सूर्यका उदय होते ही जैसे सब नक्षत्र अपनी प्रभा खोकर बैठ रहते हैं ॥ ९७ ॥ वैसे ही हे पार्थ ! आत्मानुभवका सञ्चार होते बराबर वह पुरुष जिस दिशाको देखता है, उधर उधर यह भेदभावरूप भूत सृष्टि तुटने लगती है ॥ ९८ ॥ पाटीपर लिखे हुए अक्षर जैसे हाथ फेरकर पोंछने आते हैं, वैसे ही उसकी दृष्टिसे सब भेद भेदान्तर नष्ट होते हैं ॥ ९९ ॥ वैसे ही जो प्रतिकूल और मिथ्या ज्ञान, जागृति और स्वप्न इन दो अवस्थाओंमें उत्पन्न होते हैं; वे दोनों अव्यक्तमें याने मूल अज्ञानमें लुप्त होते हैं ॥ ११०० ॥ बाद यह मूल अज्ञान भी ब्रह्मबोधकी वृद्धिके कारण यथाक्रम घटते घटते अन्तमें पूर्णज्ञानमें लीन हो जाता है ॥ १ ॥ भोजन चलते रहते जैसे प्रत्येक कौरके बराबर क्षुधा कम होती जाती है और पूरी तृप्ति होते ही सर्वथा नष्ट होती है ॥ २ ॥ अथवा चलते समय जैसी जैसी चाल बढावे, वैसे वैसे मार्ग घटकर थोडा शेष रहता है और अन्तमें अपने स्थानपर आकर पहुँचनेके बाद बिल्कुल समाप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ अथवा ज्यों ज्यों जागृति होती जावे, त्यों त्यों निद्रा कम होती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



जाती हैं, अन्तमें पूर्ण जागृति हो जानेपर निद्रा एकदम नष्ट होती है ॥ ४ ॥ अथवा पौर्णमासीकी चन्द्रकी कलायें पूर्ण हो जानेपर उसके बिंबकी बाढ रुक जाती है और शुक्लपक्ष भी वहां ही तत्काल समाप्त हो जाता है ॥११०५॥ वैसे ही वह जानने योग्य सब विषयोंको निगलकर जब जाननेवाला ही ज्ञेयके साथ मेरे स्वरूपमें समरस हो जाता है तभी सम्पूर्ण अज्ञानका नाश होता है ॥ ६ ॥ बाद कल्पान्तके समय यह नदी, यह समुद्र, इत्यादि सब आकृतियोंकी मर्यादा नष्ट होजानेपर जैसे ब्रह्मलोकपर्यन्त जलमय होजाता है ॥ ७ ॥ अथवा घट या मठ इत्यादि आकृति नष्ट हो जानेपर जैसे भेदरहित आकाशही सब जगह रहता है; अथवा लकडी जलजानेपर जैसे एक अग्नि ही शेष रहती है ॥ ८ ॥ अथवा सुनारके साँचेमें अलंकारोंकी आकृति एकदफे गल जानेपर जैसे सुवर्णके नाम रूप इत्यादि भेदभाव नहीं रहते ॥ ९ ॥ अथवा यह भी रहने दो, जैसे जागृत होजानेपर स्वप्न नष्टसा होकर अपने आप ही शेष रहते हैं ॥ १११० ॥ वैसेही वह मेरे विना दूसरा कुछ भी पहिचानती नहीं, स्वयं अपनेको भी पहिचानती नहीं, इस तरहसे वह चौथी भक्तिको प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ दूसरे आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी ये जिन मार्गोंसे मेरी भक्ति करते हैं, वे तीन मार्ग अलग हैं, अतः इस ज्ञानभक्तिको मैं चौथी भक्ति कहता हूँ ॥ १२ ॥ अन्यथा, वस्तुतः यह भक्ति तीसरी नहीं कि चौथी नहीं, पहिली नहीं कि अंतिम नहीं. यह भक्ति सत्य ही मेरी स्वाभाविक स्थिति होवे है ॥ १३ ॥ मेरे अज्ञानको प्रकाशित कर और मेरा अन्यथा स्वरूप दिखलाकर सबके विषयमें सब लोगोंको भजनमें लगाकर जो कुछ समझ पाडदेती है ॥ १४ ॥ जो जहाँ बैठना चाहता है, वह वहाँ ही श्रद्धासे रहता है, यह सब जिस अखंड प्रकाशसे प्राप्त होता है ॥१११५॥ स्वप्नका देख पडना अथवा न देखपडना, यह जैसे अपने अस्तित्वपर निर्भर है, वैसेही जिस प्रकाशसे विश्वका अस्तित्व या अभाव भासमान होता है ॥ १६ ॥ हे कपिध्वज ! ऐसा जो मेरा स्वाभाविक प्रकाश, उसको ही 'भक्ति' यह नाम देनेमें आता है ॥ १७ ॥ अतः जो 'आर्त' पीडित होवे, उसमें यही भक्ति 'आर्ति' पीडा होकर उसका जो कुछ अपेक्षित रहता है, तद्रूप मैं ही बनजाता हूँ ॥ १८ ॥ हे वीरेश ! जिज्ञासु ( ज्ञानेच्छु ) पुरुषोंमें यही भक्ति जिज्ञासा याने ज्ञानलालसा होकर मैं जिज्ञासाका विषय कहकर दिखाया जाता हूँ ॥ १९ ॥ 'अर्थी' भक्तमें यही भक्ति 'अर्थना' अर्थेच्छा होती है और हे अर्जुन ! वही मुझको ही अर्थरूप करके 'अर्थ' यह नाम देती है



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ११२० ॥ इसतरह अज्ञानका आश्रय करके जो यह मेरी भक्ति बर्तती रहती है, वह द्रष्टाको याने देखनेवाले मुझको दृश्य याने देखनेका विषय करके दिखाती है ॥ २१ ॥ इस दशामें मुख ही मुखको दीखता रहता है, इसमें संशय नहीं, पर उसमें यह जो द्वितीयत्व उत्पन्न होता है, उसका कारण दर्पण रहता है ॥ २२ ॥ दृष्टिको एक चन्द्र दिखाई पडना यह बिलकुल सत्य है, परन्तु एक चन्द्रमाके दो चन्द्रमा दीख पडते हैं यह 'तिमिर' नामक नेत्र रोगके कारण ॥ २३ ॥ वैसेही सब जगह इस भक्तिसे सर्व भक्त मेरा ही ग्रहण करते हैं, पर मेरेमें वे जो न रहनेवाली दृश्यत्वकी कल्पना करते हैं, वह कल्पना करनी अज्ञानकी है ॥ २४ ॥ वह अज्ञान दूर होनेके बाद, जैसे बिंबमें प्रतिबिंब मिलजाता है, वैसे द्रष्टाका द्रष्टृत्व मद्रूप हो जाता है ॥ ११२५ ॥ जब हीनकस सुवर्णका और उत्तम सोनेका मिश्रण हुआ रहता है, तब भी सोनेका सुवर्णत्व निर्बाध ही रहता है, पर हीन जलजानेपर केवल उत्तम सोना ही जैसे पीछे रहजाता है ॥ २६ ॥ अजी अर्जुन ! पौर्णमासीके पहिले क्या चन्द्रमा सब अवयवोंसे युक्त नहीं रहता है ? रहता ही है; परन्तु पौर्णमासीके दिन उसमें पूर्णता आती है ॥ २७ ॥ वैसे ही ज्ञानमार्गसे भी मैं ही दिखाई देता हूँ पर अज्ञानके कारण दृश्य रूपसे मैं भिन्न दिखाई देता हूँ पर वस्तुतः मुझको ही मेरी प्राप्ति होजानेके कारण द्रष्टाका द्रष्टृत्व विलीन होजाता है ॥ २८ ॥ अतः हे पार्थ ! यह मेरा चौथा भक्तियोग दृश्यमार्गके बाहरका है, ऐसा हमने कहा ॥ २९ ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥

इस ज्ञानभक्तिसे जो भक्त मेरे साथ सहजही समरस होजाता है वह भक्त केवल मैं ही हूँ, यह तुमको सुननेमें आया ही है ॥ ११३० ॥ क्योंकि हे कपिध्वज ! सातवें अध्यायमें " ज्ञानी पुरुष यह मेरी आत्मा ही है " यह बिलकुल हाथ उठाकर तुमको कहचुके हैं ॥ ३१ ॥ हे धनञ्जय ! यही भक्ति मैंने कल्पके आरम्भमें श्रीभागवतके मिससे ब्रह्मदेवको सिखायी ॥ ३२ ॥ ज्ञानीजन इसको " स्वसंवित्ति " आत्मज्ञान कहते हैं, शैव इसको ' शक्ति ' यह नाम देते हैं, और हमलोग इसको ' अपनी परमभक्ति ' कहते हैं ॥ ३३ ॥ मेरे साथ एकरूप होते समय कर्मयोगियोंको इसका फल प्राप्त होता है, और बाद सब विश्व उनको मुझसे ही भरा हुआ दीखता है ॥ ३४ ॥ ऐसी स्थितिमें विवेकसहित वैराग्य, मोक्षसहित बन्ध और निवृत्तिसहित वृत्ति, ये सब नहींके तरह होजाते

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हैं ॥ ११३५ सब ही इस बाजू आनेके कारण उस बाजू ऐसा कुछ बाकी नहीं रहता। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु इन चारों भूतोंको निगलकर अकेला आकाश ही शेष रहता है ॥ ३६ ॥ वैसे ही साध्य और साधन इनसे बाहरका जो निर्मल, शुद्धतत्त्व वह मैं होकर केवल एकरूपसे आत्मानन्दका अनुभव लेता हूँ॥३७॥गंगा समुद्रमें घुसकर जैसे समुद्रसे मिश्रित होकर प्रकाशती है, वैसे ही इस आत्मानन्दके उपभोगका प्रकार है, यह ध्यानमें लो ॥ ३८ ॥ हे अर्जुन ! दो दर्पण साफ करके एक दूसरेकी ओर घुमाकर सामने रखनेपर उनके रूपोंका जैसे प्रत्येकमें उत्तमरीतिसे ऐक्य होजाता है, उसीतरह द्रष्टा मुझमें समरस होकर आत्मानन्दका भोग ले सकता है ॥ ३९ ॥ अस्तु यह रहने दो. दर्पण दूर करनेके बाद मुखका दीखना बन्द होजानेपर जैसे द्रष्टा अकेला अपनेमें ही सुखानुभव लेता है॥११४०॥अथवा जागृत होजानेपर स्वप्नका नाश होता है और बाद जागृत अवस्थामें अपनी एकताको देखकर जैसे कोई पुरुष दूसरे किसीकी संगति बिना उस अकेलेपनका उपभोग लेता है,उसमेंकाही आत्मानन्द भोगनेका प्रकार है॥४१॥अब वस्तुके साथ एकरूप होजानेपर उस वस्तुका उपभोग होही नहीं सकता, ऐसा जो कहते हैं उनको हम पूँछते हैं कि, शब्दसे ही शब्दका उच्चार कैसे होसकता है ?॥४२॥ उन लोगोंके गाँवमें सूर्यको क्या दीपक लगाकर देखना पडता है ? अथवा आकाशको धारण करनेके लिये क्या मंडप करना पडता है ? ॥ ४३ ॥ अजी अर्जुन ! अपनेमें राजत्व प्राप्त हुए बिना कोई राजपदका उपभोग ले सकता है क्या ? अथवा अन्धकार सूर्यको कभी आलिङ्गन देता है क्या ? ॥ ४४ ॥ और जो आकाश ही नहीं उसको आकाशकी पहिचान कहांसे होगी? घुँघचियोंका गहना रत्नोंके अलङ्कारोंके तरह शोभित हो सकता है क्या ? ॥११४५॥ वैसे ही जो 'मैं' नहीं हो सकता, उसकी दृष्टिमें 'मैं' उसका अस्तित्व ही कहां है ? फिर वह उसका भोग ले सकेगा कि नहीं इस विषयमें कुछ भी बोलनेका मौका नहीं है ॥ ४६ ॥ अतः हमलोग कहते हैं कि वह कर्मयोगी 'मैं' (तद्रूप) होकर ही 'मैं को' (अपनेको) उपभोगते रहता है,जिसतरह तरुण पुरुष तारुण्यको उपभोगते रहता है ॥ ४७ ॥ जैसे तरङ्ग सर्वांगसे जलका चुम्बन करती हैं, अथवा प्रभा सूर्यके बिंबमें सब जगह चमकती रहती है अथवा आकाशमें अवकाश जैसे सर्वत्र व्याप्त है ॥ ४८ ॥ वैसे ही वह कर्मयोगी मेरा स्वरूप देखकर कोई भी क्रिया न करते ही मेरा भोग लेते रहता है, अलंकार जैसे सहज ही सोनेका भोग लेता है ॥ ४९ ॥ अथवा चन्दनका सुगन्ध जैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चन्दनमें ही रहता है अथवा चन्द्रिका जैसे कुछ भी क्रिया न करते चन्द्र-बिम्बमें प्रकाशित रहती है ॥ ११५० ॥ वैसेही अद्वैतमें यदि क्रियाको मोका नहीं, तथापि भक्तिको स्थान रहता ही है. यह प्रत्यक्ष अनुभवसे ही समझमें आता है, केवल शब्दसे नहीं कहा जासकता ॥ ५१ ॥ बाद वह पुरुष जब प्राचीन संस्कारसे कुछ भी बोलता है, तब वही बोलना मेरी भक्ति होती है, और उसको मैं तत्काल ही उत्तर देता हूँ, और बोलनेवाला भी मैं ही रहता हूँ ॥ ५२ ॥ बोलनेवालेकी जब अकेले अपनेहीसे भेंट होती है, तब बोलना ही सम्भवता नहीं, अतः ऐसी स्थितिमेंका मेरा स्तवन केवल मौनभावका ही रहता है ॥ ५३ ॥ अतः वह भक्त बोलनेको सुरू करनेपर मैं ही वह बोलते रहनेके कारण मौन फलित होता है, और उस मौनसे ही वह सचमुच मेरी स्तुति करता है ॥ ५४ ॥ वैसे ही हे किरीटी ! अपनी बुद्धि अथवा दृष्टि इनसे कुछ देखने जाता है, वह देखना दृश्य वस्तुको बगल हटाकर, उसको उसका ही स्वरूप दिखाता है ॥ ११५५ ॥ दर्पणके पहलेही जैसे उसमें देखनेवालेको अपना ही मुख उसको दीखता है, वैसेही इस भक्तका देखना, उसको स्वयंका दर्शन कराता है ॥ ५६ ॥ इसतरह जब दृश्यका लोप होकर द्रष्टृरूपसे ही द्रष्टाको अनुभूत होता है, तब द्रष्टाके बिना दूसरा कुछ भी शेष न रहनेके कारण उसका द्रष्टृत्व भी लुप्त होजाता है ॥५७॥ स्वप्नमें दीखेहुए प्रियको कोई स्त्री आलिंगन देनेको आगे खसकनेपर, वह एकदम जागृत हो जाती है और बादमें दो हम लोग नहीं ऐसा जानकर अपनेमें ही शान्त होती है ॥ ५८ ॥ अथवा दो लकडियोंके घर्षणसे बीचमें ही अग्नि भडकती है और तत्काल 'दो लकडियाँ' यह व्यवहार नष्ट होकर एकरूप अग्नि ही प्रतीतिविषय होती है ॥ ५९ ॥ अथवा सूर्य पानीमें गिरे हुए अपने प्रतिबिंबको धरने जाय तो वह प्रतिबिंब नष्ट होकर ऊपरका रहनेवाला बिम्बत्व भी नष्ट होता है ॥११६०॥ तैसे मत्स्वरूप होकर जब वह दृश्यको पकडने जाता है; तब सच्चे द्रष्टृत्वके सहित दृश्यका भी नाश होजाता है ॥ ६१ ॥ सूर्यके प्रकाशित होनेपर जैसे प्रकाशित करनेको अन्धकार रहता नहीं, वैसे ही एकदफे द्रष्टाको मेरा स्वरूप प्राप्त होजानेपर दृश्यके जगह दृश्यत्वही नहीं बचता ॥ ६२ ॥ बाद ऐसी अवस्थामें दृश्य दीखता भी है और न भी दीखता है, ऐसी जो स्थिति वही सत्य दर्शन है ॥ ६३ ॥ हे किरीटी ! वह दर्शन जिस चाहे उस वस्तुके भेंटके साथ उसको होता है, और फिर द्रष्टा और दृश्य इनको अतिक्रमणकर रहनेवाली जो यह दृष्टि उस दृष्टिका वह उपभोग लेता है ॥ ६४ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



और आकाश आकाशके ही भारसे जैसे डगमगाता नहीं वैसे ही आत्मस्वरूपमें प्रविष्ट होनेके कारण उसकी भी स्थिति कभी डगमगाती नहीं ॥ ११६५ ॥ कल्पान्त कालमें सब जगह पानी ही पानी होजानेके कारण वह जमा हुआ बराबर रहता है और उसका प्रवाह नहीं रहता, वैसेही वह एक मुझ आत्मासे ही भरा हुआ रहता है ॥ ६६ ॥ पाँव अपनेको ही कैसे नांध सकता है ? आग अपनेको ही कैसे जला सकती है ? पानी अपने ही स्नानके लिये कैसे उपयोगी होसकता है ? ॥ ६७ ॥ अतः वह सर्वथा मद्रूप होजानेके कारण, उसका आना जाना इत्यादि सब व्यापार बंद हो जाते हैं, और यह व्यापार बंदी ही मानो मुझ अद्वयकी यात्रा करनी है ॥६८॥ पानीपर तरंगके कितना भी दौडने पर उसने भूमि भागके मार्गको उल्लंघन किया ऐसा कुछ प्रतीत होता नहीं॥६९॥ वहां जो स्थान छोडे और जो स्थान जोडे, जो गति देय, और उसको जो लेय, वह सब कुछ जल ही रहता है ॥ ११७० ॥ हे पांडुसुत ! जलकी किसनी भी भारी बाढ आजाय तो भी उसका जलत्व निर्बाधित रहनेके कारण तरंगकी जलसे एकता कभी भी नष्ट नहीं होती ॥७१॥ वैसे ही अहंभावसे यह कितना भी बहता हुआ चले, तो भी वह मेरे अन्दरही समा सकनेके कारण इस आवागमनसे वह मेरा ही यात्री ठहरता है ॥ ७२ ॥ और शरीरके स्वाभाविक धर्मके कारण यदि वह कुछ कर्म करने लग जाय तो उस कर्मके निमित्तसे भी मैं ही उसको भेंटता हूँ ॥ ७३ ॥ इस स्थितिमें हे पांडुसुत ! कर्म और कर्ता यह कहना भी लुप्त होजाता है, मुझको आत्मस्वरूपसे देखकर वह आप स्वयं ही मैं हो जाता है ॥ ७४ ॥ दर्पण दर्पणको देखे तो जैसे देखना नहीं कहा जासकता अथवा सोनेको सोनेसेही ढांकना यह आच्छादन नहीं कहलाता ॥ ११७५ ॥ अथवा दीपकसे दीपकको ही प्रकाश दिखलाना यह कर्म जैसे घट नहीं सकता, वैसे ही मैं जो कर्म वही मैं करूँ, ऐसी स्थिति होय तो मेरा कर्म करना, करना थोडे ही कहा जासकता है ॥ ७६ ॥ कर्म किये जाते रहनेपर भी जब 'वह करना चाहिये' यह कहना लुप्त होजाता है तब उसका कर्म करना, न करनेके बराबरही होता है ॥ ७७ ॥ सब कर्मसमुदाय मद्रूप होनेके कारण 'कुछ नहीं करना' यही फलित होता है, और इसको मेरी सच्ची भक्ति कहते हैं ॥ ७८ ॥ अतः हे कपिध्वज कर्म करनेके मार्गसे भी कर्म न करना ही आता है, और इसी महापूजासे मेरी पूजा करता है ॥ ७९ ॥ एवं वह जो बोलता है, वही मेरा स्तोत्र है, वह जो देखता है वही मेरा दर्शन है, और वह जो चलता है वही मेरा अद्वयका गमन होता है ॥ ११८० ॥ वह जो करेगा वह सब मेरी ही पूजा है, वह जो मनमें लायगा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


वही मेरा जप है, और हे कपिध्वज ! उसका सोते रहना यही मेरी समाधि है ॥ ८१ ॥ जैसे कंकण सोनेके साथ सदैव अनन्य भावसे रहता है, उसी-तरह वह भक्तियोगसे निरन्तर मेरे साथ अद्वैतरूपसे रहता है ॥ ८२ ॥ जलमें तरंग, कपूरमें सुगन्ध, रत्नमें तेज जैसे अनन्य है याने अन्यरूपसे नहीं हैं ॥ ८३ ॥ अथवा तन्तुके साथ पट, अथवा मिट्टीके साथ घट एकरूप रहता हैं, वैसे ही वह भक्त मेरे साथ एकरूपसे रहता है ॥ ८४ ॥ इस मेरी अनन्य भक्तिसे वह इस सब दृश्य पदार्थ मात्रमें आत्मभावसे मुझ द्रष्टाको देखता है ॥८५॥ जागृति स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंके द्वारा उपाधि याने क्षेत्र. उपाधिविशिष्ट याने क्षेत्रज्ञ इनके कारण, भाव और अभावरूपसे जो यह दृश्य दीखता है ॥ ८६ ॥ वह यह सब मैं ही द्रष्टा हूँ, हे सुभट ! ऐसे ज्ञानके बीच आत्मानुभवके आनन्दसे नाचने लगता है ॥ ८७ ॥ रस्सी देखनेमें आनेके बाद, उसपर होनेवाला सर्पाभास भी रस्सी ही है, ऐसा जैसे निश्चय होता है ॥ ८८ ॥ सोनेसे अलग ऐसा गुञ्जभर भी अलंकार नहीं, यह जैसे वह अलंकार घटजानेपर प्रतीति विषय होता है ॥ ८९ ॥ तरंग एक जलके बिना दूसरा कुछ नहीं, यह जानकर जैसे कोई तरंगकी आकृतिको लेता नहीं ॥ ११९० ॥ अथवा जाग जानेपर स्वप्नके विकारोंका हिसाब निकालनेवाला जैसे अपने बिना दूसरा कुछ भी देख नहीं सकते ॥ ९१ ॥ जो सत्तारूपसे अथवा अभावरूपसे ज्ञेय भासता है,वह सब मैं जानता ही हूँ,यह अनुभव आकर वह उसका भोग लेते रहता है ॥ ९२ ॥ वह जानता है कि मैं अज, अक्षर, अपूर्व और अपार आनन्द हूँ ॥९३॥ मैं अचल और अच्युत, अनंत और अद्वय, आद्य, अव्यक्त और व्यक्त भी हूँ ॥ ९४ ॥ ऐश्य ( सत्ता ) को झुकानेवाला हूँ, ईश्वर ( सत्ताको चलानेवाला ) हूँ, अनादि और अविनाशी, निर्भय, आधार और आधेय वस्तु भी मैं ही हूँ ॥ ११९५ ॥ मैं स्वामी और सर्वसिद्ध स्वयंभू तथा सदैव सर्वस्वरूप, सर्वान्तर्यामी और सर्वातीत हूँ ॥ ९६ ॥ मैं नया और पुराना, शून्य और सम्पूर्ण हूँ. जो कुछ बडा और छोटा होवे, वह मैं ही हूँ ॥ ९७ ॥ मैं क्रियाहीन और अद्वितीय हूँ, संगरहित तथा शोकरहित हूँ, व्याप्य और व्यापक पुरुषोत्तम मैं ही हूँ ॥ ९८ ॥ शब्दहीन और कानरहित, रूपहीन हूँ, गोत्ररहित हूँ, सर्वत्र समान और स्वतंत्र हूँ, मैं परब्रह्म हूँ ॥ ९९ ॥ इसतरह मेरे आत्मत्वकी एकताको जानकर वह मुझको अद्वैत भक्तिके द्वारा यथार्थरूपसे जानता है, और इस आत्मबोधको जानना ऐसा ज्ञान भी मैं ही हूँ, यह सब वह जानता है ॥१२००॥ जागृत होनेके बाद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



स्वप्नका आभास नष्टसा होकर, जैसे इस पुरुषका एकाकित्व मात्र शेष रहता है, और वह जैसे उसका उसीको ही मालूम होता है ॥ १ ॥ अथवा सूर्यका उदय होनेपर वही प्रकाश करनेवाला होता है, और प्रकाशित होनेवाला तथा प्रकाशक ये दोनों अभिन्न हैं, इस अभेदका भी द्योतक जैसे वही है ॥ २ ॥ वैसे ही ज्ञानविषयवस्तुओंका विलय होजानेपर केवल ज्ञाता ही बाकी रहता है, और ऐसा जो जानता है वही निजको जानता है ॥ ३ ॥ हे धनंजय ! उस अपने अद्वैतत्वका जाननेवाली जो ज्ञानशक्ति, वह शक्ति भी सर्वकार्य-समर्थ मैं ही हूँ, यह भी उसके समझमें आता है ॥ ४ ॥ वाद द्वैत और अद्वैत इन दोनोंसे बाहर रहनेवाला ' एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ' इस अनुभवसे आत्मा मैं ही हूँ, इसतरह निःसंदिग्ध जानकर, उस जाननेका जब साक्षात् अनुभव होता है ॥ १२०५ ॥ तब जागृत हुए अपने एकताका जो भान होता है, वह नष्ट होजानेपर उसका स्वरूप कैसे होना चाहिये यह जैसे कहनेको नहीं आता ॥ ६ ॥ अथवा नेत्रोंसे देखते ही सुवर्णके सुवर्णत्वके साथही जैसे विना गलाये अलंकारकी आकृति तथा अलंकारत्वका नाश होकर सोनेका निश्चय होता है ॥ ७ ॥ अथवा नमक जलस्वरूप होता है; पर उस नमकका क्षारपना उस जलमें रहता है, अब वह क्षारत्व भी नष्ट होजानेपर जैसे नमकका अस्तित्व सर्वथा चला जाता है ॥ ८ ॥ वैसे ही ' मैं वह हूँ ' यह जो भान वह भी स्वानंदा-नुभवके शांतिरसमें मिश्रित होजानेके कारण वह मुझमें प्रवेश करता है ॥९॥ बाद 'वह ' यह कहना भी बन्द होजाता है अतः वहां ' मुझको' भी जगह नहीं रहता । इसतरह मैं वह यह भावना नष्ट होकर वह उस मेरे स्वरूपमें मिल जाता है ॥ १२१० ॥ जब कपूर जलने लगता है, तब उसको अग्नि यह नाम दिया जाता है, और बाद कपूर लुप्त हुआ और अग्नि भी लुप्त हुई ऐसा हो जानेपर जैसे केवल आकाशतत्त्व शेष रहता है ॥ ११ ॥ अथवा एकमेंसे एकका घटानेपर बाकी जैसे शून्य निकलता है, वैसेही " है " और 'नहीं' ' भाव' और ' अभाव' इसका शेष निकलता है वही मैं हूँ ॥ १२ ॥ इस अवस्थामें ' ब्रह्म' ' आत्मा' 'ईश्वर' इन शब्दोंसे भी उस स्वानन्दका स्वारस्य नहीं रहता, और ' न' कुछ नहीं ऐसा बोलनेको भी वहां अवकाश नहीं रहता ॥ १३ ॥ 'न' यह बोलना भी न बोलते, वह मुँहभर वर्णन करे, ज्ञान और अज्ञान इनको न जानकर भी वह यथास्थित जाने ! ॥ १४ ॥ वहां बोधही बोधकी समझ करे, आनन्द ही आनन्दका आलिंगन करे, सुख ही सुखका उपभोग लेवे ! ॥ १२१५ ॥ उस अवस्थामें लाभको लाभ होता है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


प्रभाको प्रभा आलिंगन करती है, और विस्मय आश्चर्यमें डूब जाता है ॥१६॥ वहां शमको शांति मिलती है, विश्रामको विश्रांति मिलती है, अनुभवको अनुभवका ध्यान लगता है ॥ १७ ॥ अधिक क्या कहें, ऐसा निर्दुष्ट मैंपनका फल कर्मयोगकी सुन्दर बेल पोसनेके कारण उस पुरुषको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ हे किरीटी ! इस कर्मयोगरूपी सम्राट्के मुकुटके ऊपर चैतन्यरूप रत्न मैं होता हूँ, और उसका बदला वह मुकुटमणि होता है ॥ १९ ॥ अथवा इस कर्मयोगरूपी मन्दिरका मोक्ष कलश होवे है, और इस कलशके ऊपरका आकाशका विस्तार वह कर्मयोगी होता है ॥ १२२० ॥ अथवा संसारके जंगलमें कर्मयोग यही एक उत्तम सडक है, और वह सडक सीधी मेरे ऐक्यरूप गांवको आकर पहुँचती है ॥ २१ ॥ अथवा ज्ञानभक्तिरूपी जलके साथ कर्मयोगरूप प्रवाहके मार्गसे वह 'मैं' नामके आत्मानन्दरूपी समुद्रको बडे बेगसे आकर पहुँचता है ॥ २२ ॥ हे अर्जुन ! इस कर्मयोगकी महिमा इतनी बडी है, इसवास्ते ही हम तुम्हें बारबार कहते हैं ॥२३॥ योग्य स्थान, काल, अथवा पदार्थ इनको साधकर मेरा लाभ करलेना चाहिये, शांतिरहित पुरुषको 'मैं' नहीं, तो 'मैं' यह वस्तु अनायास ही सबमें सर्वस्वी रहती है ॥ २४ ॥ अतः मेरी प्राप्तिके लिये जांचका सहन नहीं करना पडता. मैं इस कर्मयोगके साधनसे सचमुच ही हाथमें आता हूँ ॥ १२२५ ॥ एक शिष्य और एक गुरु, ऐसा व्यवहार सब जगह प्रसिद्ध भया है, पर वह व्यवहार केवल मेरी प्राप्तिके मार्ग जाननेतक ही है, ॥ २६ ॥ हे किरीटी ! पृथ्वीके पेटमें संपत्ति, लकडीके अन्दर अग्नि और गायकी कांचमें दूध ये सिद्ध ही रहते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु जो इनको प्राप्त करनेके उपायोंकी योजना करता है, उसको ही वे प्राप्त होते हैं. वैसे ही मैं वस्तुतः स्वतःसिद्ध ही रहता हूँ पर उपायोंसे साध्य होता हूँ ॥ २८ ॥ इतनी देर फलका विवेचन होजाने पर अब श्रीकृष्णदेव उपायकी प्रस्तावना क्यों करते हैं, ऐसा कोई प्रश्न करे, तो इस प्रस्तावनामें ऐसा विचार सूचित किया है ॥ २९ ॥ कि प्रत्यक्ष मोक्षोपायोंके संबंधमें सब रीतियोंसे विचार करना चाहिये, यह इस गीतार्थका मर्म जाननेका एक मुख्य मार्ग है, अन्य शास्त्रोंमें कहे हुए उपाय प्रमाणसिद्ध ही रहते हैं ऐसा नहीं ॥ १२३० ॥ वायु बहुत जोर करे तो मेघको उडा देता है, परन्तु उसको कुछ सूर्यका निर्माण नहीं करने आता, हाथको सेवार बाजू करने आता है, पर वह कुछ जलको नहीं उत्पन्न करता ॥ ३१ ॥ वैसे ही आत्मदर्शनके बीच जो अविद्यारूपी मल रहता है, उसको शास्त्र दूर करता है, बाकी मैं स्वयंप्रकाश और निर्मल सदैव रहता हूँ ॥ ३२ ॥ अतः सब शास्त्र ये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



केवल अविद्याका मल धोनेके पात्र हैं. इसके बाहर उनको आत्मबोध करनेका स्वतंत्र अधिकार नहीं है ॥ ३३ ॥ उन अध्यात्म शास्त्रोंको जब सच्चापन सिद्ध करनेका मोका आता है, तब वे जिस जगह जाते हैं, वह ठिकान याने यह गीता होवे है ॥ ३४ ॥ सूर्यसे पूर्व दिशादिको भूषित करनेपर सभी दिशा प्रकाशित होती हैं; वैस ही शास्त्रोंको योग्यमार्गसे चलानेवाली इस गीताके कारण ही सब शास्त्र सनाथ हुए हैं ॥ १२३५ ॥ अब यह रहने दो, पीछे सर्वशास्त्रज्ञ श्रीकृष्णभगवान्ने आत्मप्राप्ति करलेनेके उपाय बहुत कहे हैं ॥ ३६ ॥ पर यह विषय एकबार ही सुननेसे अर्जुनको तुरन्त कदाचित् ही समझा होगा, प्रायशः अच्छी तरहसे समझा नहीं ही होगा, इसतरह अत्यन्त करुणासे श्रीहरिने मनमें लाया ॥ ३७ ॥ और अब एकदफे कहा हुआ ही सिद्धान्त शिष्यके हृदयमें स्थिर करनेके हेतुसे फिर संक्षेपसे कहते हैं ॥ ३८ ॥ और ऐसा करते गीता समाप्तिका प्रसंग पास आकर पहुँचनेके कारण उसकी आरम्भसे अन्ततक एकार्थता दिखायी है ॥ ३९ ॥ ऐसा दिखानेका कारण यह है कि, ग्रंथका आदि और अन्त इनके बीचमें अनेक प्रकारके प्रश्न उपस्थित होनेके कारण नाना सिद्धान्त स्पष्ट किये गये हैं ॥१२४०॥ तब वे सब सिद्धान्त इस शास्त्रके मुख्य और सारभूत सिद्धांत हैं, ऐसा कोई एक पाछेके और आगेके संदर्भकी ओर उत्तम रीतिसे ख्याल न देकर कहेगा ॥ ४१ ॥ अतः उन सिद्धान्तोंकी कक्षाओंको महासिद्धांतके सांचेमें ठोंककर कसके, गीताके आरंभकी समाप्तिके साथ एकवाक्यता की है ॥ ४२ ॥ इस ग्रंथमें अविद्याका नाश यह प्रस्तुत विषय है; उसका मोक्ष संपादन फल है, और इन दोनोंका भी साधन ज्ञान है ॥ ४३ ॥ और यह इतना ही विषय इस विस्तृत ग्रन्थमें अनेक प्रकारोंसे विस्ताररूपसे स्पष्ट किया है, यही विवेचन अब दो शब्दोंसे कहनेका है ॥ ४४ ॥ अतः फल हाथमें आनेपर भी, वह फल प्राप्त होनेके उपायोंका विवेचन फिर करनेको श्रीकृष्णदेव प्रवृत्त हुए हैं ॥ १२४५ ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥

अनंतर श्रीकृष्णने कहा हे सुभट, अर्जुन ! वह कर्मयोगी अपनी स्थिर भक्तिसे 'मैं' होकर वह मुझमें स्थिररूपसे रहता है ॥ ४६ ॥ वह स्वकर्माचरणरूपी निर्मल फूलोंसे मेरी पूजा करता है, और इस पूजासे मिलनेवाले प्रसादसे उसको ज्ञाननिष्ठाका लाभ होता है ॥ ४७ ॥ यह ज्ञाननिष्ठा हाथमें आयी कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


मेरी भक्तिका उल्लास बढता है, और उस भक्तिसे प्राप्त होनेवाली समानावस्थाकी शांतिसे वह सुखी होता है ॥ ४८ ॥ और जगत्को प्रकाशित करनेवाला जो मैं; उस मुझको, याने अपने ही आत्माको सब जगह व्याप्त जानकर जो अनुसरण करता है ॥४९॥ नमक अपना पृथग्भाव छोडकर जैसे जलका आश्रय करता है, अथवा भ्रमण करनेको छोडकर जैसे वायु आकाशमें निश्चल होकर रहता है ॥ १२५० ॥ वैसे ही जो बुद्धिसे, वाणीसे और शरीरसे मेरा ही आश्रय लेता है उसके हाथसे यदि कोई एक समय कदाचित् अन्यथा ही कर्म होजाय ॥ ५१ ॥ तो भी गंगाजीसे संबंध होनेपर जैसे रास्तेमेंका दुर्गन्ध जलका प्रवाह और महानदी प्रवाह, ये दोनों एक ही ठहरते हैं, वैसे ही मेरा ज्ञान होजानेके बाद शुभ और अशुभ ये दोनों एकरूप ही होते हैं ॥ ५२ ॥ चन्दन और खाली लकडी यह भेद, जबतक उनको अग्निने घेरा नहीं, तबतक ही रहता है ॥ ५३ ॥ अथवा यह हीनकस सोना, सोलहकस सोना इस प्रकारका होनेवाला भेद, जबतक कसौटीके स्पर्शसे वे एकरूप हुए नहीं, तबतक ही करनेमें आता है ॥ ५४ ॥ वैसे जबतक मेरा सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला प्रकाश प्राप्त हुआ नहीं तबतक ही शुभ और अशुभ ये भेद भासते रहते हैं ॥१२५५॥ अजी अर्जुन ! जबतक अपना सूर्यके प्रदेशमें प्रवेश हुआ नहीं तबतक ही रात और दिन यह द्वैत भासता है ॥ ५६ ॥ अतः हे किरीटी ! मेरी भेंट होते ही उसके सब कर्म लुप्त होकर सायुज्य-मुक्तिके आसनपर बैठता है॥५७॥ देश, काल, स्वभाव इनसे जिस पदका कभी भी व्यय होता नहीं, उस मेरे अविनाशिपदको वह प्राप्त करता है ॥ ५८ ॥ हे पाण्डुसुत ! बहुत क्या कहें, जहां मरा याने प्रत्यक्ष आत्माका प्रसाद हस्तगत होजाता है, वहां कोई भी लाभकी न्यूनता रहेगी क्या ? ॥ ५९ ॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

इस लिये हे धनञ्जय ! तुमको अपने सब कर्मोंका मुझमें संन्यास करना चाहिये, अर्थात् सब कर्म मुझको अर्पण करो ॥१२६०॥ पर हे वीर ! यह नित्यकर्मका संन्यास नहीं समझना भला, तुम अपनी मनोवृत्तिको सदैव आत्मविचारमें लगाओ ॥ ६१ ॥ इसके बाद उसी विवेकके सामर्थ्यसे तुमलोगोंको अपना आत्मतत्त्व, कर्मसे लिप्त न रहनेवाले ऐसे मेरे स्वरूपमें निर्मलरूपसे देख पडेगा ॥ ६२ ॥ और कर्मकी जन्मभूमि जो प्रकृति वह भी आत्मासे बहुत दूर है, यह भी ख्यालमें आवेगा ॥ ६३ ॥ बाद हे धनञ्जय ! जैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



पदार्थसे उसकी छाया अलग नहीं रह सकती, उसी तरह वह प्रकृति भी आत्मतत्त्वसे अलग बचेगी नहीं ॥ ६४ ॥ इस प्रकार प्रकृतिका नाश होनेपर समूल कर्मसंन्यास अपने आप ही हो जायगा ॥ १२६५ ॥ फिर कर्मसमुदाय लुप्त होजानेपर केवल 'मैं' यह आत्मतत्त्व ही शेष रहेगा, और बुद्धि किसी पतिव्रताकी तरह उसमें पूर्णनिष्ठासे विलास करेगी ॥ ६६ ॥ इस रीतिसे बुद्धि अनन्य भक्तिसे मुझमें लग्न होजानेपर चित्त भी सब चञ्चलता छोडकर मुझको ही भजता है ॥ ६७ ॥ तब सब चञ्चलताका त्यागकर चित्त मुझमें निश्चलतासे संलग्न होय, ऐसा साधन तुम हमेशा करो ॥ ६८ ॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ ५८ ॥

बाद इसतरह अभिन्न भक्तिसे जब मैं चित्तमें सम्पूर्णतासे सन जाऊँगा, तब मेरा भरपूर प्रसाद हुआ ऐसा तुम समझो ॥ ६९ ॥ ऐसी स्थिति प्राप्त होजानेपर जन्म-मरणके कारण जो अनेक प्रकारके दुःखोंके स्थान भोगने पडते हैं, वे दुःखकारक रहनेपर भी तुमको सुखकारक मालूम होंगे ॥१२७०॥ सूर्यकी सहायतासे यदि नेत्र योग्य हो तो, उसको अन्धेरा क्या चीज है ? ॥ ७१ ॥ वैसे ही मेरे प्रसादसे जिसका जीवांश नष्ट होगया है, उसको इस संसारकी हवा कौनसी पीडा करेगी ? ॥ ७२ ॥ अतः हे धनञ्जय ! तुम मेरे प्रसादसे इस संसार दुर्गतिसे पार होजाओगे ॥७३ ॥ पर यदि अहंकारसे यह मेरा सब बोलना, अपने कानके और मनकी हदको छूने न दोगे ॥ ७४ ॥ तो तुम नित्यमुक्त व्ययरहित ऐसा रहनेपर भी वह निष्फल होजायगा, और देह-सम्बन्धके घाव तुझको सहन करनें पडेंगे ॥ १२७५ ॥ इस देहसम्बन्धके प्रान्तमें पदपदपर आत्मघात सहन करते कभी भी एक क्षणका भी अवकाश मिलता नहीं ॥ ७६ ॥ मेरा बोलना यदि तुम मनमें न लोगे तो, इतने घोर संकटसे तुम न मरते ही, मरेके तरह होजाओगे ॥ ७७ ॥

यदाहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

जैसे पथ्यका द्वेषकरनेवाला ज्वरको बढाता है, तथा दीपकका विरोध करनेवाला अन्धेरेको बढाता है, वैसे ही विवेकका विरोधी अहंकारको तुम पोसते हो ॥ ७८ ॥ और इस अभिमानसे अपने देहको 'अर्जुन' दूसरेके शरीरको 'स्वजन' और इस युद्धको 'दूषित पापाचरण'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


ऐसे तुमने नाम रखे हैं, और 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' ॥ ७९ ॥ १२८० ॥ ऐसा इस लोकमें यदि बडे गर्वसे निश्चित किये हो तोभी तेरा जन्मजात स्वभाव वह निश्चय, व्यर्थ कर देगा ॥ ८१ ॥ और मैं अर्जुन, यह मेरे आप्त इनका वध करना यह महापाप है,इस भावनामें माया बिना कुछ सच्चा तथ्य है क्या ? ॥ ८२ ॥ योद्धा हो तो पहिले तुम युद्धको मानो बाद युद्ध करनेके लिये हाथमें शस्त्र धारण करो, आपके लिये 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' इस तरह त्यागकी प्रतिज्ञा करनी, यह सभी विचित्र है ! ॥ ८३ ॥ अतः 'मैं युद्ध करूँगा नहीं' ऐसा जो तुम कहते हो वह सब व्यर्थ है. लोक व्यवहारकी लौकिक दृष्टिसे भी तेरे इस भाषणमें कुछ तात्पर्य नहीं दीखता ॥ ८४ ॥ अतः युद्ध न करनेका जो तुम अपने दिलमें निश्चय करते हो, उसको तेरा स्वभाव ही तुमसे विपरीत करावेगा ॥ १२८५ ॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ ६० ॥

जलका प्रवाह पूर्वकी ओर रहते, पश्चिमदिशाकी तरफ तैरते जानेका आग्रह किया जाय तो तैरनेवालेका केवल हठ मात्र है, क्योंकि उसको पानी अपनी ओर ही खींचता है ॥ ८६ ॥ अथवा धानका कण कहे कि, मैं धान-रूपसे न उगता हूँ न बढ़ता हूँ, तो उसको अपने स्वभावका उल्लंघन करनेको आवेगा क्या ? ॥ ८७ ॥ वैसेही हे प्रबुद्ध, अर्जुन ! तेरा स्वभाव क्षात्रधर्मके संस्कारसे बना हुआ है, अतः तुम यदि 'मैं युद्धको उठूंगा नहीं' ऐसा कहते हो तोभी, वह प्रकृति तुमको उठावेगी, इसमें संशय नहीं ॥ ८८ ॥ हे पाण्डु-सुत ! शूरता, तेज (उग्रता), दक्षता इत्यादि गुण तेरे स्वभावसे ही तुमको दिये हुए हैं ॥८९॥ तथापि तिस गुण समुदायको जो शोभित करेगा ऐसे कार्यके किये विना वह प्रकृति तुमको चुपचाप बैठने नहीं देगी ॥१२९०॥ अतः हे कोदण्ड-पाणी ! इन गुणोंसे तुम जकडे होनेके कारण, तुम क्षात्रकर्मके रास्तेको लगोगे, इसमें तिलमात्रभी संदेह नहीं ॥ ९१ ॥ अथवा यह अपना जन्मजातिका मर्म ध्यानमें न लेते, केवल अविचारसे 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' ऐसा अटलव्रत लेकर बैठोगे ॥ ९२ ॥ तो हाथ पांव बांधकर जिसको रथमें डाल दिया है, वह चला नहीं तो भी जैसे दूरहीदूर मध्यमें ही भ्रमण करता है ॥ ९३ ॥ वैसे तुम अपनी ओरसे यदि 'मैं कुछ भी करूँगा नहीं' ऐसी दिलसे मजबूत गांठ बांधते हो तो भी तुम कुछ भी करोगे ही, ऐसा मुझे पूर्ण भरोसा है ॥ ९४ ॥ विराटदेशका राजपुत्र उत्तर, रणमेंसे भाग कर जाते रहते, तेरे क्षात्र-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



धर्मने तुमको युद्ध करनेको लगाया ही कि नहीं ? वही क्षात्रधर्म आज तुमको युद्ध करनेको लगायेगा ॥ १२९५ ॥ बडेबडे वीरोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना तुम उस उत्तरके गोग्रहण प्रसंगमें अकेलेने समर भूमिमें लौटादी यह जो क्षत्रियस्वभावका प्रताप, वही स्वभाव, अजी, कोदण्डपाणी, अर्जुन ! तुमको अब युद्ध करनेको लगावेगा ॥ ९६ ॥ रोगीको रोग अच्छा लगता है क्या ? दरिद्रको दारिद्र्य सुन्दर लगता है क्या ? नहीं, परन्तु जिस प्रबल दैवसे उनको वे भोगने ही पडते हैं ॥ ९७ ॥ वही दैव ईश्वर सत्तासे अपना कार्य किये बिना रहेगा नहीं, और वह ईश्वरसत्ता भी तेरे हृदयमें रहती है ही ॥ ९८ ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें हृदयरूपी महाकाशमें चिद्वृत्तिरूपी हजारों किरणोंसे जो ईश्वररूपी सूर्य उदयको प्राप्त होता है ॥ ९९ ॥ वह अवस्थात्रय-रूपी तीन लोकको प्रकाशित करके मायाके भूलतापसे भुलाकर यात्रिक जीवोंको जगाता है ॥ १३०० ॥ दृश्य वस्तुरूप जलके सरोवरमें विषयरूपी कमलोंपर अपना तेज फैलाकर वह ईश्वरसूर्य पांच ज्ञानेंद्रिय और मन यही छः पांव जिनको हैं ऐसे जीवरूपी भ्रमरोंका भ्रमण कराते रहता है ॥ १ ॥ पर यह रूपक बस हुआ. वह हृदयस्थ ईश्वर अभिमानका आच्छादन लेकर सदैव विलास करते रहता है ॥ २ ॥ अपनी ही मायाके परदेके आड होकर वह सब सूत्र चलाते रहता है, और बाहर जगत्की रंगभूमिपर चौरासी लक्ष चित्र विचित्र, छाया चित्र वह नचाता है ॥ ३ ॥ वह ब्रह्मदेवसे लेकर क्षुद्रकीटकतक सब भूतमात्रोंको उनकी उनकी योग्यताके अनुसार देहाकृतिसे सजाकर घुमाता है ॥ ४ ॥ और जो देहाकृति जिसके आगे वह अनुरूपतासे रखता है, वह जीव 'यह देह ही मैं हूँ' ऐसी भावनासे उस देहपर आरूढ होता है ॥ १३०५ ॥ सूत जैसे दूसरे सूतसे लपेटा जाता है, अथवा तृण तृणसे बांधा गया हो, अथवा छोटा बालक जलमें गिरा हुआ अपना प्रतिबिंब देखकर जैसे भ्रममें पडे ॥ ६ ॥ वैसे ही देहाकार रूपसे अपनी ही दूसरी छाया देखकर जीव उसमें आत्मबुद्धि आविष्कृत करता है ॥ ७ ॥ इसतरह प्राणिमात्रोंको देहरूपी यन्त्रपर बैठाकर, वह हृदयस्थ ईश्वर प्राचीन कर्मोंके सूत्र चलाते रहता है ॥ ८ ॥ उसमें जो प्राचीन कर्मसूत्र जिन प्राणियोंसे स्वतन्त्ररीतिसे साध लिया हो, वे प्राणी उस सूत्रसे मिलनेवाली गतिको लेने लगते हैं ॥ ९ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


बहुत क्या कहें, हे धनुर्धर ! जैसे वायु घासकी काडियोंको आकाशमें घुमाता है, वैसे ईश्वर इस भूतमात्रको स्वर्ग और संसारमें घुमाते रहता है ॥ १३१० ॥ जैसे चुम्बकके संगसे लोहा चक्कर खाता है, वैसे ईश्वरकी सत्तासे भूतमात्र चलन-वलन आदि करते रहते हैं ॥ ११ ॥ हे धनंजय ! चंद्रका सामीप्य, इस एक ही कारणसे जैसे समुद्रादिक अपनी अपनी चेष्टा करते हैं ॥ १२ ॥ याने समुद्रको भरती आती है, सोमकान्त मणि पसीजता है, कुमुद और चकोर इनका मालिन्य जाकर आनन्द होता है ॥ १३ ॥ वैसे एक ही ईश्वर मूलप्रकृतिके वश सब प्राणिमात्रोंको अलग अलग रीतिसे नचाते रहता है और वही ईश्वर तेरेभी हृदयमें है ॥ १४ ॥ हे पांडुसुत ! अर्जुनत्व शरीरमें न लगा लेकर स्वयं 'मैं हूँ' इसप्रकारका जो स्फुरण प्राप्त होता है, वह 'मैंपना' याने वह 'अहंकार' यह उस ईश्वरका तात्त्विक स्वरूप है ॥ १३१५ ॥ अतः वह ईश्वर प्रकृतिकी सत्ता चलावेगा, यह निःसंदिग्ध है, और तेरे मनमें यदि न हो तो भी वह प्रकृति तुमको युद्धके लिये प्रवृत्त करेगी, इसमें तिलभात्र भी संशय नहीं ॥ १६ ॥ अतः ईश्वर यह सबका स्वामी है और वह प्रकृतिका नियमन करता है और वह प्रकृति अपनी इच्छाके अनुसार इन्द्रियोंसे काम करवाती है ॥ १७ ॥ तुमको सोचना चाहिये कि युद्ध करना न करना ये दोनों प्रकृतिको सौंपकर, प्रकृति भी जिस हृदयस्थ ईश्वरके अधीन है ॥ १८ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

उसको अहङ्कार, वाणी, मन और शरीरसे शरण जाओ, जैसे गंगाजल महासमुद्रमें प्रविष्ट होता है, वैसे ही उस ईश्वरमें तुम प्रविष्ट होजाओ ॥ १९ ॥ बाद उस ईश्वरके कृपाप्रसादसे तेरी पूर्ण शांतिरूपी तरुणीसे समागम होकर तुम आत्मानन्दसे निज रूपमें रममाण होवोगे ॥ १३२० ॥ और उत्पत्ति जहाँसे उत्पन्न होती है, विश्रान्ति जहाँ विश्रामको प्राप्त होती है, अनुभूतिको भी जहाँ अनुभवका लाभ होता है ॥ २१ ॥ हे पार्थ ! उस निजात्मपदरूपीय आसनका तुम अक्षय्य राजा होवोगे ऐसा लक्ष्मीकान्त श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा ॥ २२ ॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



यह जो 'गीता' नामसे प्रसिद्ध है, वह सब श्रुतियोंका मथन करके निकाला हुआ सारभूत है. जिससे आत्मा नामका रत्न हाथमें आता है ॥ २३ ॥ वेदान्तमें जिसको 'ज्ञान' यह प्रौढ़ नाम देकर वर्णित होनेके कारण जिसकी कीर्ति जगत्में फैली हुई है ॥ २४ ॥ जिसके प्रकाशसे बुद्धि इत्यादि शक्तियोंको दर्शनत्व आता है, और जिसके द्वारा मैं सर्वद्रष्टा भी देख पडता हूँ ॥ १३२५ ॥ वह यह आत्मज्ञान होवे है अव्यक्त ऐसा जो मैं उस मेरा भी अत्यन्त गुप्तधन है, परन्तु तुझसे मैं कैसे छिपाकर रख सकता हूँ ॥ २६ ॥ अतः हे पाण्डव ! हमने दयाप्रेमसे भरे हुए होनेके कारण यह गुप्त धन तुमको देदिया ॥ २७ ॥ प्रेममें भूली हुई माता जैसे अपने बालकके पास शुद्ध मनसे बोलती है वैसे ही,यह हमारी प्रीति भी हमको वैसे ही करनेको लगावेगी नहीं क्या ? ॥ २८ ॥ इस प्रस्तुत प्रसंगमें जैसे आकाश गलाया जाय अथवा अमृतकी छाल निकाली जाय, अथवा दिव्यको दिव्य करना ॥ २९॥ अथवा जिसके अंगप्रकाशसे पातालतलमें परमाणु भी प्रकाशित होता है, उस सूर्यके भी नेत्रोंमें जैसे दिव्य अञ्जन लगाया जावे ॥ १३३० ॥ वैसे ही हे धनञ्जय ! मैं सर्वज्ञने सब ओरसे विचारकर निश्चयपूर्वक जो सच है, वही तुमको कहा है ॥ ३१ ॥ अब इसके ऊपर भलीभांतिसे विचारकर तुमको जो योग्य दीखपडे उसको करो ॥ ३२ ॥ यह श्रीकृष्णदेवका भाषण सुनकर अर्जुन चुपचाप रहगया, तब श्रीकृष्णने कहा तुम बहुत पक्के हो ॥ ३३ ॥ भूखा मनुष्य यदि परोसनेवालेको थोडा संकोच कर 'बस करिये अब, बिलकुल तृप्ति होगई' ऐसा कहे तो उसको ही भूखकी तकलीफ सहनी पडती है, और झूठा बोलनेका दोष भी उसी पर आता है ॥ ३४ ॥ वैसे ही सर्वज्ञ श्रीगुरुकी भेंट होजानेपर लज्जाधीन होकर उसको आत्मनिश्चयका प्रश्न न करना याने स्वतः अपनेको फसानेका ही उद्योग है, और इस भूलके कारण आत्मवंचनाका पाप भी उसके मथ्थे आता है ॥ १३३५ ॥ ३६ ॥ पर तेरे चुपचाप रहनेके कारण तेरा हृद्गत ऐसा होना चाहिये, इसतरह मुझे मालूम होता है कि फिर एकदफे मैं इस ज्ञानका सार कहकर बताऊँ ॥ ३७ ॥ तब अर्जुनने उत्तर दिया " हे सर्वान्तर्यामी भगवन् ! मेरा अन्तरंग आपने ठीक जाना है, ऐसा कहें तो आपके बराबर तुलना करनेके लिये दूसरा ज्ञाता योग्य भी है क्या ? ॥ ३८ ॥ और जो सब वस्तु हैं वे ज्ञेय हैं, आप अकेले ही स्वभावतः ज्ञाता हैं. तब सूर्यको 'सूर्य' कहकर विशेष वर्णन करनेमें क्या प्रयोजन है ? " ॥ ३९ ॥ इसपर श्रीकृष्ण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


भगवान्ने कहा—मेरा जो यह स्तुतिपरक तुमने वर्णन किया है, इसको ही क्यों तुम थोडा समझते हो ? ॥ १३४० ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४ ॥

अब भलीभांतिसे सावधान होकर मेरा निर्दोष वाक्य एकवार सुनो॥४१॥ यह बोलने योग्य है इसवास्ते मेरा बोलना, और सुनने योग्य है इसवास्ते तेरा सुनना, इसमेंका यह भाग नहीं है. तो यह भाषण याने केवल तेरे भाग्यका ही उदयकाल प्राप्त हुआ है ॥ ४२ ॥ हे धनञ्जय ! कछवीकी खाली नजरसे उसके बच्चोंको पोषण करनेवाला दूध मिलता है, अथवा चातकके घर प्रत्यक्ष आकाश ही पानी भर लाता है ॥ ४३ ॥ इसतरह जहाँपर जो व्यवहार हो नहीं सकता, वहींपर उस व्यवहारका फल भोगनेको मिलता है, सारांश, दैव ही यदि अनुकूल हुआ तो कौनसा लाभ कहाँ नहीं प्राप्त होता ? ॥ ४४ ॥ सामान्यतः देखाजाय तो यह रहस्यज्ञान ऐसा है कि, द्वैतका फेरा दूरकर, वह अद्वैतके याने एकताके ही घरमें भोगको प्राप्त होता है ॥ १३४५ ॥ हे प्रियोत्तम, अर्जुन ! जिसमें औपचारिक (खाली दिखाऊ) अथवा ऊपर ऊपरका कुछ भी नहीं, उस प्रेमका जो विषय होता है, वह दूसरा नहीं, आत्मा ही होता है, यह भी जानना चाहिये ॥ ४६ ॥ हे धनंजय ! जिस दर्पणमें अपनेको देखनेको रहता है, वह आप ही स्वच्छ करता है, पर यह कुछ उस दर्पणके लिये नहीं करता, तब वह स्वतः अपने लिये ही करता है ॥ ४७ ॥ उसीप्रकार हे पार्थ ! तुमको निमित्त करके मैं यह अपने लिये ही बोलता हूँ, क्योंकि मुझ तुझमें कोई भी प्रकारका " मैं तुमपना " है क्या ? ॥ ४८ ॥ अतः निज गुप्त मैं तुझ जीवसे प्यारेको अपने जीवको ही कहता हूँ. कारण एकनिष्ठ, अनन्यभावसे भक्ति करनेवाले भक्तोंका मुझको बहुत ही व्यसन है ॥ ४९ ॥ हे पाण्डुसुत ! जलको अपना सर्वस्व अर्पण करते समय नमक अपनेको भूल जाता है, सबसे जलरूप होते समय वह थोडा भी लज्जित नहीं होता ॥ १३५० ॥ वैसेही तुम मेरे पास कोई प्रकारका विषय गुप्त नहीं रखते तो मैं भी तुझसे कुछ गुप्त कैसे रख सकता हूँ ? ॥ ५१ ॥ अतः जिस रहस्यके आगे जगके सब गूढ बातें स्पष्ट प्रकट होती हैं, वह मैं अपना अत्यन्त गूढवचन कहता हूँ, वह सुनो ॥ ५२ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हे वीर अर्जुन ! तुम मुझ सर्व व्यापकको अपने अन्तर्बाह्य व्यवहारोंका विषय करो ॥ ५३ ॥ जैसे आकाशके सब अंगोंमें वायु मिली रहती है, वैसे ही तुम सब कर्मोंमें मुझसे ही मिले रहो ॥ ५४ ॥ अधिक क्या कहें, तुम अपना मन मेरे अकेलेका ही एक घर बनाओ, और मेरे ही श्रवणसे अपने कान भर लो ॥ १३५५ ॥ आत्मज्ञानसे निर्मल हुए सत्पुरुष मेरे ही छोटे प्रमाणकी प्रतिमा है, तब जैसे कामुकी स्त्री अपने पतिकी ओर इच्छासे देखती है, वैसे ही तेरी दृष्टि इन संतोंको चाहसे देखे ॥ ५६ ॥ मैं सब वस्तुओंका वसतिस्थान हूँ अतः मेरे निर्मल नामोंकी रुचि अपनी जीभको लगाकर जीती रख ॥५७॥ अपने हाथोंका करना अथवा पैरोंका चलना, यह सब मेरे लिये ही होगा, ऐसा करो ॥ ५८ ॥ हे पांडव ! अपने अथवा दूसरे लोगोंपर तुम जो उपकार करोगे, उसी यज्ञसे तुम मेरे यथार्थ याजक होवोगे ॥ ५९ ॥ पर यह एक एक बात अब तुमको कबतक सिखाऊँ, अजी अर्जुन ! अपनेमें सेवक भाव लेकर अन्य सबोंको तुम मद्रूप मानकर सेवाके योग्य समझो॥१३६०॥ ऐसा करने पर प्राणिमात्रोंका द्वेष नष्ट होकर, सब जगह मैं ही हूँ इस ज्ञानभावनासे तुमको नम्रता धरते आवेगी और उस कारणसे मेरा पूर्ण और पक्का आश्रय तुमको प्राप्त होगा ॥ ६१ ॥ बाद इस भरे हुए जगत्में तीसरेकी बात ही न रहनेके कारण तेरा मेरा सच्चा सच्चा एकान्त लब्ध होजायगा ॥६२ ॥ बाद कोई भी अवस्था प्राप्त होनेपर भी मैं तेरा और तू मेरा इसतरह दो ही परस्परोंके सहवासका उपभोग लेनेके लिये शेष रहनेके कारण अपना सुख अपने आपही बढेगा ॥ ६३ ॥ और हे अर्जुन ! जिस स्थितिमें तृतीयत्वका प्रतिबन्ध नष्टसा होता है, उसही स्थितिमें तुम अंतमें मद्रूप होकर ही मुझमें मिल जाओगे ॥६४॥ जलका नाश होनेपर जलमेंका प्रतिबिंब बिंबसे एक होनेको कुछ प्रतिबंध है क्या ? ॥१३६५॥ वायु आकाशसे, अथवा तरंग समुद्रसे एक होने लगनेपर उसको प्रतिबन्धक कौन होगा ? ॥६६॥ अतः तुम और हम अलग दीखते हैं, वह इस देहधर्मके कारण, यह देह ही जब नष्ट होजायगा तब तुम मैं ही होऊँगा, यह खास बात है ॥६७॥ इस मेरे वचनके विषयमें तुम अपने मनमें शंकाको मत आने दो, भला समझे, इस संबन्धमें कुछ अनुमान करोगे तो तुमको तुम्हारी ही शपथ है ॥ ६८ ॥ तेरीही शपथ डालना याने आत्मस्वरूपका ही शपथ समझना चाहिये, पर इसमें आश्चर्य नहीं, क्योंकि प्रीतिका मुख्य लक्षण यह है कि वह लज्जाका स्मरण ही कभी होने नहीं देता ॥ ६९ ॥ नहीं तो जो ज्ञानका विषय और जो प्रपंचसे लिप्त नहीं है, जिसके

 CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


कारण इस विश्वका भास सत्य भासता है, जिसकी आज्ञाका प्रताप कालको भी जीत लेता है ॥ १३७० ॥ वह मैं देव जब यदि सत्यसंकल्प हूँ और यदि जगतके कल्याणार्थ सदैव जागृत हूँ, तो फिर मैं शपथ डालनेका भलता ही प्रयत्न क्यों करूँ ? ॥ ७१ ॥ पर अर्जुन ! तेरे प्रेमसे मैं इतना पागल हुआ हूँ कि देवत्वके अलंकार उस अवस्थामें फेक दिये हैं उसकारण मैं अपूर्ण हुआ हूँ, और तुम मद्रूप होनेके कारण सब रीतिसे संपूर्ण हुए हो ॥७२॥ हे धनंजय ! अपना काम साधनेके लिये राजा अपनी ही शपथ लेवे, उसमेंका ही यह प्रकार है ॥ ७३ ॥ यह सुनते ही अर्जुन कहनेलगा, " हे भगवन् ! ऐसा विपरीत ही मत बोलिये; क्योंकि हमारे सब काम केवल आपके ही अकेलेके नामस्मरणसे चले हैं ॥७४॥ इसपर भी आप हमलोगोंको उपदेश करनेको प्रवृत्त होते हैं और शपथपूर्वक वचन देते हैं, तब तुम्हारी इस विनोदयुक्त लीलाको मर्यादा भी है क्या ? ॥ १३७५ ॥ सूर्यके प्रकाशका एक थोडा ही अंश कमलसमुदायको विकसित करता है, पर उसी निमित्तसे वह साराका सारा प्रकट होता है ॥ ७६ ॥ पृथ्वीका दाह शान्त होकर सब समुद्र भी भर जायगा इतनी जल-वृष्टि मेघ करता है, फिर उसको चातककी प्यास हटाना यह केवल निमित्त नहीं क्या ? ॥७७॥ तब हे कृपानिधे ! दाताओंमें श्रेष्ठ, भगवन् ! तुम्हारी इस उदारताको मैं केवल निमित्तमात्र ऐसा कहना प्राप्त नहीं हुआ क्या ?" ॥७८॥ इतनेमें कृष्णदेवने कहा-यह बसहुआ, इस विषयका यह प्रसंग ही नहीं है अस्तु, मैंने अब तुमको जो साधन कहा है, उससे तुम मेरे स्वरूपको निःसंदिग्ध पावोगे ॥ ७९ ॥ हे धनंजय ! सैंधव समुद्रमें जिस क्षणमें गिरता है, उसीक्षण वह गलजाता है, न गलते ही रहनेका उसका कोई कारण है क्या ? ॥१३८०॥ उसीतरह सब जगह रहनेवाली मेरे स्वरूपकी भक्ति स्थिर होजाने पर सब विषयमें ही आत्मबुद्धि होकर और देहाहंकार सब लुप्त होकर तुम मैंही होजा-ओगे ॥ ८१ ॥ इसतरह कर्मसे सीधे बढते बढते उपायोंकी मर्यादा मेरी प्राप्तितक आटिकती है, यह तुमको मैंने दिखाया है ॥ ८२ ॥ हे पाण्डुसुत ! प्रथम सब कर्म मुझको अर्पण करनेपर मेरी भावनासे चित्त शान्त, प्रसन्न होता है ॥ ८३ ॥ बाद इस प्रसन्नतासे मेरा ज्ञान प्राप्त होता है और उस ज्ञानसे मेरे स्वरूपके साथ एकरूप होना बनजाता है ॥ ८४ ॥ ऐसा होजानेपर हे पार्थ ! उस स्थितिमें साध्य अथवा साधन बिलकुल बचता नहीं, अधिक क्या, तुझको फिर कुछ भी करनेको बाकी नहीं रहता ॥ १३८५ ॥ तुमने अपने सब कर्म मेरे वास्ते सदैव अर्पण किये, अतः तुमको आज मेरी प्रसन्नता प्राप्त हुई है ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ ८६ ॥ इसलिये इस प्रसादबलसे युद्धका प्रतिबंध नष्ट होजायगा मैं एकदफे तुमको भुले हैं, अतः अब तुमको कदापि व्यामोहमें नहीं गिरने दूँगा ॥८७॥ जिसके योगसे इस सब प्रपंचके साथ अज्ञान नष्ट होता है और मैं अकेला ही सब जगह दीखता हूँ, उस ज्ञानकी उपपत्ति आदिसे स्पष्ट किया हुआ रूप याने गीता है ॥ ८८ ॥ मैंने तुमको आत्मज्ञानका उपदेश अनेक रीतिसे किया है और धर्माधर्मकी भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाला जो अज्ञान है उसको इस ज्ञानसे हटा दो ॥ ८९ ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥

जैसे आशा दुःखको पैदा करती है, अथवा निन्दा पापोंको उत्पन्न करती है, अथवा दुर्भाग्य जैसे दीनताका कारण होता है ॥ १३९० ॥ वैसे स्वर्ग और नरककी सूचना देनेवाले अज्ञानसे धर्मादिक उत्पन्न होते हैं तो भी उन सब अज्ञानजात कल्पनाओंको इस ज्ञानसे सब साफ हटा दो ॥ ९१ ॥ हाथमें प्रत्यक्ष रज्जु लेनेपर जैसे उस रज्जुपरका सर्पाभास दूर हो जाता है, अथवा निद्रा समाप्त हो जानेपर जैसे स्वप्नमेंका सब व्यवहार नष्ट हो जाता है ॥ ९२ ॥ अथवा पीलिया रोग नष्ट हो जानेपर चन्द्रका पीला देख पड़ना भी नष्ट हो जाता है, रोग अच्छा हो जानेपर मुँहका कडुआपन भी नष्ट हो जाता है ॥ ९३ ॥ अथवा दिनके पीठ फेरते ही मृगजल भी लुप्त हो जाता है ॥ अथवा काष्ठके त्याग करनेसे जैसे उसके बराबर अग्निका भी त्याग होता है ॥ ९४ ॥ वैसे ही जो मूल अज्ञान धर्माधर्मकी उन्मत्तता उत्पन्न करता है वह अज्ञान त्यागनेपर उसके बराबर इस धर्माधर्मका घमण्ड भी चला जाता है ॥१३९५॥ बाद अज्ञान नष्ट हो जानेपर स्वभावतः मैं अकेला ही शेष रहता हूँ । निद्रासहित स्वप्न नष्ट हो जानेपर जैसे मनुष्य अपना ही रह जाता है ॥ ९६ ॥ वैसे ही अज्ञान जानेपर मुझ एकके बिना अलग ऐसा कुछ भी दूसरा बाकी नहीं रहता और उस केवल मेरे स्वरूपमें जीव बिलकुल एकाकार हो जाता है ॥ ९७ ॥ अपना स्वयंका भी भेदभाव न रखते मुझसे एकता प्राप्त करनी इसको ही 'मेरी शरण आना' ऐसा कहते हैं ॥ ९८ ॥ जैसे घटका नाश हो जानेपर घटाकाश आकाशमें प्रविष्ट हो जाता है, वैसे ही इस शरणागतिसे हमारे साथ एकता सिद्ध होती है ॥ ९९ ॥ सुवर्णका भूषण सुवर्णसे, अथवा तरंग जैसे पानीसे मिल जाते हैं, वैसे हे धनञ्जय !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



तुम मुझको शरण आकर मुझसे मिल जा ॥ १४०० ॥ हे किरीटी ! ऐसा न होते समुद्रको वड़वानल शरण आया और वह उस समुद्रको ही जलाकर बैठा, इसतरहकी कल्पना एकदम छोड़ दो ॥ १ ॥ मुझको शरण आवे और फिर जीवत्वसे शेष रहे, यह अत्यन्त हास्यास्पद है । ऐसा भाषण करनेके लिये बुद्धिको लज्जा भी कैसे नहीं आवेगी ? ॥ २ ॥ हे धनञ्जय ! साधारण राजाके साथ दासीका सम्बन्ध हो जानेपर वह भी राजैश्वर्यको प्राप्त होती है ॥३॥ फिर मैं जगत्का ईश्वर मिलता हूँ और जीवग्रन्थि टूटती नहीं, इस दुष्ट शब्दकी ओर तुम अपना कान बिलकुल घूमने मत दो ॥ ४ ॥ अतः मद्रूप होकर मेरी सेवा करना अनायास ही हो जाता है, तब ऐसी सेवा तुम करो, कारण इसके द्वारा ज्ञान हस्तगत हो जाता है ॥ १४०५ ॥ इसके बाद जैसे मट्ठेसे निकाला हुआ मक्खन कुछ भी करनेपर भी वह फिर मट्ठेमें मिल नहीं सकता ॥ ६ ॥ वैसे ही तुम भी अद्वैत भावनासे मुझको शरण आनेपर कुछ भी हुआ तो भी इस धर्माधर्मका कोलाहल तुझको स्पर्श नहीं कर सकता ॥ ७ ॥ लोहा खडेका खडा ही मट्टी हो जाता है, पर वही एक एक दफे पारसके स्पर्शसे सोना बनते ही उसको मल ( जङ्ग ) कभी चढता नहीं ॥ ८ ॥ अथवा लकडीको घिसकर उसके अन्दरकी अग्नि प्रकट करनेपर जैसे उस लकडीमें वन्द नहीं रहता ॥ ९ ॥ हे अर्जुन ! सूर्यको कभी अँधेरा दीखता है क्या ? अथवा जागृत अवस्थामें कभी स्वप्नका भ्रम अनुभवको आता है क्या ? ॥ १४१० ॥ वैसे ही मुझसे एकदफे ऐक्य होजानेपर मेरे स्वरूपके बिना दूसरा कुछ बचनेको कारण भी है क्या ? ॥ ११ ॥ अतः मेरे बिना दूसरेकी तुम अपने दिलमें कल्पना ही मत लाओ तेरा सब पापपुण्य मैं ही होऊँगा दूसरा क्या ? ॥१२॥ अब सब बन्धोंका लक्षण ( चिह्न ) ऐसा जो पाप वह भिन्नभावसे बाकी रहे वह भी मेरे ज्ञानसे लयको जायगा ॥ १३ ॥ हे विचक्षण ! जलमें गिरा हुआ नमक सर्वथा जलही होता है, वैसेही मुझको अनन्यभावसे शरण आये हुए तुम मद्रूप ही होवोगे ॥ १४ ॥ हे धनंजय ! इतना हुआ कि तुम अपने आप मुक्त होजावोगे. मुझको अच्छी तरहसे जानलो, तब मैं अपने प्रकाशसे तुझको मुक्त कर दूंगा ॥ १४१५ ॥ इस कारणसे तुझको अब इसतरह चिंता-व्याप्त होनेका कुछ भी कारण नहीं, हे सुमति, अर्जुन ! इस ज्ञानसे युक्त होकर तुम मुझ अकेलेको शरण आओ ॥ १६ ॥ ऐसा सर्व विश्वरूप सर्व-द्रष्टा और सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको कहते हुए ॥ १७ ॥ बाद उन्होंने अपना कंकणयुक्त सांवला दहिना भुजा पसारकर उस शरण आये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



हुए भक्तराज अर्जुनको आलिंगन दिया ॥ १८ ॥ जिसके स्वरूपको प्राप्त न करके ही बुद्धिको बगलमें मारकर शब्द पीछे लौटता है ॥ १९ ॥ ऐसा जो कुछ शब्दको और बुद्धिको भी संभालते नहीं आता, वही स्वरूप अर्जुनको देनेके लिये श्रीकृष्णने यह कंठालिंगन करनेका केवल बहाना किया ॥१४२०॥ हृदयको हृदय लगते ही श्रीकृष्णके हृदयमेंका रहस्य अर्जुनके हृदयमें प्रविष्ट हुआ और द्वैतका नाश न करते श्रीकृष्णने अर्जुनको अपने समान किया ॥ २१ ॥ एक दीपकसे जैसे दूसरा लगाना, वैसे ही वह दृढ आलिंगन हुआ और द्वैत न मिटाकर अर्जुनको श्रीकृष्णने निजस्वरूप किया ॥ २२ ॥ बाद उस अर्जुनको जो महासुखकी बाढ आई, उसमें इतने बडे श्रीकृष्णभगवान् थे पर वे भी डूबगये ॥२३॥ समुद्र जब समुद्रसे मिलने जाय तो मेल होते ही जब दुगना होता है और पूर्ण जगह मिलानेके लिये उसकी उछाल ऊपर आकाशमें भी आती है ॥ २४ ॥ वैसे ही इन दोनोंका संमेलन होते बराबर दोनोंको परस्पर संभाला नहीं जाता, यह कैसे हुआ, यह कौन जाने ? बहुत क्या कहे, यह सब विश्व नारायण ( भगवान् श्रीकृष्ण ) मय हो जाता है ॥ १४२५ ॥ इसप्रकार वेदका मूलसूत्र होनेवाला गीताशास्त्र सब अधिकारोंसे सर्वस्वी पवित्र ऐसे इसको श्रीकृष्णने प्रगट किया ॥ २६ ॥ अब गीता यह वेदोंकी मूलरूप कैसी, इसतरहकी शंका तुमलोगोंको आवेगी, इसलिये उसकी स्पष्टरूपसे उपपत्ति दिखाता हूँ ॥ २७ ॥ जिसके श्वास उच्छ्वासोंके साथ वेदोंका जन्म हुआ, वह सत्यप्रतिज्ञ भगवान् विष्णुही स्वयं अपने ही मुखसे प्रतिज्ञासे कहते हैं ॥ २८ ॥ अतः वेदोंकी मूलभूत गीता है यह वचन बिलकुल योग्य है, दूसरी रीतिसे भी इसकी उपपत्ति करने आती है ॥२९॥ किसी वस्तुका नाश न होते उसका सब विस्तार जिसमें अपनेमें लीन रखता है, वह उस वस्तुका बीज कहा जाता है ॥ १४३० ॥ और जैसे बीजमें वृक्ष रहता है वैसे ही गीतामें भी कांडत्रयात्मक कर्म उपासना ज्ञानरूपी समस्त वेद अन्तः प्रविष्ट हैं ॥ ३१ ॥ अतः गीता यह वेदोंका बीज है ऐसा मुझको मालूम होता है और वह स्पष्ट दीखता भी है ॥ ३२ ॥ हीरा माणिक इत्यादि रत्नोंके अलंकारोंसे जैसे सम्पूर्ण शरीर सुशोभित किया जाता है वैसे ही वे वेदोंके त्रिकांडात्मक भाग इस गीतामें स्थिर रूपसे शोभित हैं ॥ ३३ ॥ वे वेदोंके कर्मादिक तीनों काण्ड गीताके कौन कौन स्थानमें हैं, वह अब स्पष्ट करके दिखाता हूँ, तुम सुनो ॥ ३४ ॥ प्रथम अध्यायमें केवल शास्त्रविचारकी प्रस्तावना है, दूसरे अध्यायमें सांख्यशास्त्रसम्बन्धि सिद्धान्त प्रकट किये हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



॥ १४३५ ॥ मोक्ष प्राप्तिके लिये ज्ञानके बिना दूसरे किसीकी भी अपेक्षा यह सांख्यशास्त्र करता नहीं, इतना दूसरे अध्यायमें कहा है ॥ ३६ ॥ बाद अज्ञानसे जकडे हुए लोगोंको मोक्षप्राप्तिका उपाय कौनसा है इस विषयका आरंभ तीसरे अध्यायमें किया है ॥ ३७ ॥ वह ऐसा है कि शरीराभिमानके बन्धमें घुसानेवाले जो काम्य और निषिद्धकर्म हैं उनको हटाकर अपने योग्य नित्य--नैमित्तिककर्म प्रमादरहित होकर आचरने चाहिये ॥ ३८ ॥ इसतरह निर्मलवृत्तिसे कर्म करना चाहिये, ऐसा निश्चय श्रीकृष्ण भगवान्ने तीसरे अध्यायमें निकाला है. यह कर्मकांड समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ और यही नित्यादिक कर्मोंका आचरण अज्ञानका बंध तोडनेवाला कैसे होता है ? ॥१४४०॥ ऐसा प्रश्न दिलमें बार बार चालू हो जानेपर बद्ध पुरुष मुमुक्षुकी सीढीपर आकर पहुँचा कि वह सब कर्म ब्रह्मार्पण बुद्धिसे करे, ऐसा श्रीकृष्णदेवने कहा ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णदेवका कहना ऐसा है कि देह, वाचा, मन इनसे जो विहितकर्म जैसे आचरित होगा, वह वैसेही ईश्वरके लिये अर्पण करे ॥ ४२ ॥ कर्मयोगके द्वारा होनेवाली ईश्वर भक्तिके व्याख्यानका जो यह मीठा खाद्य चौथे अध्यायके अन्तभागमें बढा है ॥ ४३ ॥ 'वही ईश्वरको कर्माचरणसे भजे' यह तत्त्व, विश्वरूप दर्शनके ग्यारहवें अध्यायकी समाप्तितक एकरंग कहा है ॥ ४४ ॥ तब चौथे अध्यायसे ग्यारहवें अध्यायतक जो आठ अध्याय हैं वेही देवताकांड हैं सब प्रतिबन्ध दूरकरके गीताशास्त्रने इन विषयोंका ऊहापोह किया है ॥ १४४५ ॥ और इस ईश्वरभक्तिके कारण ईशप्रसादसे श्रीगुरुसंप्रदायके अनुरूप जो सत्य और प्रेमसे भरा ज्ञान लब्ध होता है ॥ ४६ ॥ वह अद्वेष्टा इत्यादि और आमानित्व इत्यादि गुणोंसे बढाना चाहिये, ऐसा बारहवां अध्याय कहता है, इसरतह हम समझते हैं ॥ ४७ ॥ उस बारहवें अध्यायसे पंधरहवें अध्यायतक ज्ञानका परिपक्वफल यही निरूपण करनेका विषय है ॥ ४८ ॥ अतः 'ऊर्ध्वमूलमधः' इन चार अध्यायोंमें ज्ञानकाण्डका ही विवेचन है ॥४९॥ इसलिये यहांपर काण्डत्रयका निरूपण करनेवाली श्रुति ही गीतापद्यरूपी रत्नका दागिना पहिनकर सुन्दर बनी हुई है ॥ १४५० ॥ यह रहने दो, काण्डत्रयात्मक श्रुति जिस एक मुक्तिफलका निरूपण जोरसे करती है और जो अवश्य ही प्राप्त कर लेना चाहिये ऐसा कहती है ॥ ५१ ॥ उस फलके साधनज्ञानसे दिनरात द्वेष करनेवाले जो अज्ञानोंके समुदाय उनका प्रतिपादन सोलहवें अध्यायमें है ॥ ५२ ॥ शास्त्रकी सहायता लेकर यह रिपुगण जीतना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



चाहिये, यह सन्देश सत्रहवें अध्यायमें है ॥ ५३ ॥ इस रीतिसे प्रथम अध्यायसे सत्रहवें अध्यायकी समाप्तितक अपने निःश्वाससे उत्पन्न हुए वेदके रहस्यका विवेचन श्रीकृष्ण भगवान्‌ने किया है ॥५४॥ और इन सब सत्रह अध्यायोंमें प्रतिपादित अर्थोंका जिसमें विचार किया है वह यह अठारहवां कलशाध्याय है ॥ १४५५ ॥ इस तरह सर्व अध्यायोंकी संख्या देखते भगवद्गीता यह ग्रन्थ अपने ज्ञान दानकी अलौकिक उदारताका केवल मूर्तिमान् वेद ही है ॥ ५६ ॥ वेद अपनेमें अत्यन्त ज्ञानसम्पत्तिसे पूर्ण भरा हुआ है परंतु उसके समान दूसरा कंजूस कहाँ भी मिलेगा नहीं, क्योंकि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंसे ही गुप्त बातें करता है ॥ ५७ ॥ दूसरे जो स्त्री ? शूद्रादिक प्राणी हैं उनको अपने ज्ञानमंदिरमें थोडाभी स्थान न देते वेद चुपचाप बैठा हुआ है ॥ ५८ ॥ अतः मुझको ऐसा मालूम होता है कि इस प्राचीन कालके दोषोंका निवारण करनेके लिये वेद ही इस गीताशास्त्ररूपसे वेष बदलकर सबको साध्य हुआ है ॥ ५९ ॥ इतना ही नहीं, अर्थरूपसे मनमें घुसकर, सुननेसे कानमें रहकर, अथवा जपके बहानेसे मुखमें रहकर, वेद इस गीतास्वरूपसे जिसको चाहे उसको प्राप्त होता है ॥१४६०॥ इस गीताका पाठ करना जो जानता है उसके लिये वह अपने साथ गीता लिखकर केवल पुस्तक जो सदैव पास रखता है ॥ ६१ ॥ इसप्रकारके मिससे इस संसारके चौरास्तेपर मुक्तिसुखका अन्नसत्र खोल दिया है ॥६२॥ जिस तरह आकाशमें रहनेको, अथवा पृथ्वीपर बैठनेको, अथवा सूर्यप्रकाशमें व्यवहार करनेके लिये, अथवा आकाश यही एक प्रतिबन्धरहित सबके लिये खुला हुआ अवकाश है ॥ ६३ ॥ उसी तरह यह गीता कोई भी पास आनेपर उसको उत्तम, अधम न कहते, पंक्तिभेदके बिना सबको समान ही कैवल्यसुखका दान देकर जगत्‌को शांत करती है ॥ ६४ ॥ तब पिछली निंदाको डरकर वेद गीताके पेटमें घुसगया और उसकरके अब उसकी कीर्ति शुद्ध और दैदीप्यमान हुई है ॥ १४६५ ॥ अतः सबको जिसका सेवन अनुकूल होगा, ऐसा वेदका स्वरूप होजाना, यही श्रीमद्भगवद्गीता, जिसको श्रीकृष्णभगवान्‌ने अर्जुनसे कही ॥ ६६ ॥ पर जैसे बछडेके निमित्तसे गायका पन्हाना, घरभरके सबको दूध पिलाता है, वैसे ही उस गीतासे पांडवको निमित्त करके सब जगत्‌का उद्धार किया है ॥६७॥ प्यासे हुए चातककी करुणा करके मेघ पानी लेकर दौडते आता है, पर उससे सब स्थावर-जंगमकी शान्ति होती है ॥६८॥ अथवा जिसको दूसरा आधार नहीं ऐसे कमलके लिये सूर्य प्रतिदिवस उदयको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


प्राप्त होता है, पर उससे सम्पूर्ण जगत्के नेत्रोंको अनायास प्रकाश मिलजाता है. इससे सब प्राणी सुखी होते हैं ॥ ६९ ॥ वैसे अर्जुनके बहानेसे भगवान् श्रीकृष्णने गीताका प्रकाशन किया, पर उसने ही सब जगत्का संसारके समान प्रचंड बोझा हटादिया है ॥ १४७० ॥ ये लक्ष्मीपति भगवान् नहीं हैं, तो मुखरूप आकाशमें उत्पन्न होकर शास्त्ररहस्यरूपी रत्नोंकी प्रभासे त्रिलोकको प्रकाश करनेवाला यह सूर्य ही कहना चाहिये ॥ ७१ ॥ जिस कुलमें पैदाहुआ अर्जुन इस ज्ञानको अधिकारी हुआ और उसने सब जगत्केलिये गीताशास्त्ररूपी बडा स्थान बना दिया, वह कुल धन्य और सचमुच पवित्र है ॥ ७२ ॥ यह रहने दो, इसके बाद सद्गुरु श्रीकृष्णने निजस्वरूपमें मिलगये हुए अर्जुनको द्वैतके भानपर लाया ॥ ७३ ॥ वे कहते भये-हेपाण्डव ! यह शास्त्र तुमको पटगया क्यों ? तब अर्जुन बोला हाँ, भगवन् ! आपकी कृपासे ऐसा परिज्ञान सहज प्राप्त हुआ ॥७४॥ उसपर भगवान् फिर कहते भये, हेधनंजय ! गुप्त गडाहुआ धन हाथमें आनेको भाग्यका अलौकिक बल लगता है, पर भाग्यसे मिलीहुई संपत्तिका योग्य उपभोग लेनेका बडा भाग्य कोई एक विरलेको प्राप्त होता है ॥१४७५॥ क्षीरसागरके समान न जमे हुए दूधका भारी बर्तन मन्थन करते सुर असुरको कितने कष्ट हुए होंगे ? ॥ ७६ ॥ वे सब श्रम अन्तमें सफल हुए, कारण प्रत्यक्ष अमृत बाहर निकला हुआ आँखोंसे देखा, पर आखिरमें उसका जतन करनेमें उनसे भूल हुई ॥ ७७ ॥ बाद अमरत्व प्राप्त हो इसलिये जो संपादन किया वह मृत्युको ही कारण हुआ संपत्ति कैसी भोगनी चाहिये, यह न मालूम होते जोड देनेसे इसतरह अनर्थ होता है ॥ ७८ ॥ नहुष राजा स्वर्गाधिपति हुआ, पर आचरणमें भूल गया, अतः वह सर्पयोनिको प्राप्त हुआ यह तुमको मालूम नहीं क्या ? ॥ ७९ ॥ हेधनंजय ! तेरे संग्रहमें बहुत पुण्य था, अतः यह सर्वश्रेष्ठ शास्त्र प्राप्त करनेके लिये तुम पात्र हुए हो ॥१४८०॥ तोभी इस शास्त्रका सम्प्रदाय चलाकर इस शास्त्रार्थका भलीभांतिसे निष्ठापूर्वक पालन करो ॥ ८१ ॥ नहीं करोगे तो हे अर्जुन ! सम्प्रदायको न संभालते अनुष्ठानके लिये लगोगे कि उस अनुष्ठानकी गति अमृतमंथनके समान होगी ॥ ८२ ॥ हे किरीटी ! गाय अच्छी पुष्ट देखनेमें सुंदर शान्त ऐसी मिलनेपर भी सायंकालको यदि उसकी दुहनेकी युक्ति अपनेको मालूम होतो उसका दूध पीनेको मिलेगा ॥ ८३ ॥ वैसे ही श्रीगुरु प्रसन्न हुए, शिष्य भी विद्यापरिपूर्ण हुआ, पर वह विद्या-सम्प्रदाय उत्तमरीतिसे रक्षित होनेपर ही फलको देनेवाली होती है ॥ ८४ ॥ अतः इस शास्त्रका उचित सम्प्रदाय है, वह बडे आदरसे सुनो ॥ १४८५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
नचाशुश्रूषवे वाच्यं नच मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

हे पार्थ ! तुमने जो यह गीताशास्त्र बडी श्रद्धासे मिलाया है, वह तपोहीन पुरुषको बिलकुल मत कहो ॥ ८६ ॥ अथवा उत्तम तप किया है, पर उसके अन्तरंगमें यदि गुरुभक्ति ठीक न हो तो शूद्रको जैसे वेद त्यागते हैं, वैसे तुम उसको त्यागो ॥८७॥ अथवा कौआ वृद्ध होनेपर भी उसको जैसे यज्ञाहुतिका शेष भाग नहीं देना चाहिये ॥ ८८ ॥ वैसे ही गुरु भक्तिहीन तपोवृद्धको भी यह गीता नहीं देनी चाहिये ॥ ८९ ॥ अथवा तप किया है, गुरुदेवोंमें भक्ति भी है, पर ज्ञान श्रवण करनेकी रुचि नहीं ॥१४९०॥ मोती कितना भी पानीदार रहनेपर भी यदि उसको छिद्र न रहे तो क्या उसमें डोरी पोही जा सकती है ? ॥ ९१ ॥ सागर गम्भीर है यह कौन नहीं कहता, पर उसमें जो वृष्टि होती है वह व्यर्थ ही नहीं जाती क्या ? ॥ ९२ ॥ जिसको क्षुधा नहीं है, उसको उत्तम पक्वान्न आग्रहसे परोस कर व्यर्थ ही खो देना, इसकी अपेक्षा उदारतासे बुभुक्षितोंको क्यों नहीं देना चाहिये ? ॥ ९३ ॥ अतः कोई कितनी भी योग्यताका होनेपर भी यदि उसको सुननेकी इच्छा न होय तो उसको कुतूहलसे भी यह शास्त्र देनेका मनमें नहीं लाना, भला ॥ ९४ ॥ नेत्र यह रूप सौन्दर्यका परीक्षक है, उसको सुगन्धका मर्म कैसे मालूम होगा ? जहाँ जो करना चाहिये वहाँ वैसा ही करना योग्य है ॥ १४९५ ॥ हे सुभद्रापति ! अतः तपस्वी और भक्तिमान् पुरुष आदरके योग्य है परन्तु वे यदि शास्त्रके सुननेमें आदर नहीं दिखावेंगे तो उनका त्याग करना उचित है ॥९६॥ अब तप है भक्ति है, सुननेकी भी रुचि है, ऐसी यदि सब सामग्री दिखाई दे ॥९७॥ तो भी गीता शास्त्रका निर्माता और सब लोगोंका शास्ता जो मैं, उस मुझमें जो सामान्य शब्दोंसे बोलेगा, उसको ॥९८॥ और मेरे भक्त और मैं इनके विषयमें जो कितने निंदासे बोलते हैं, उनकोभी तुम गीताशास्त्र श्रवणके लिये योग्य नहीं मानना ॥ ९९ ॥ उनकी अन्य गुणसामग्री ऐसी समझना जैसे रात्रिके समय दीपज्योतिके विना कोई चिरागदान रखा हो ॥ १५०० ॥ शरीर गोरा और अवस्था तरुण होकर आभूषणोंसे सजा हुआ होना चाहिये, पर उसमें जैसे प्राण न होवे ॥ १ ॥ उत्तम चोखा सोनेसे बंधाहुआ घर रहे, पर उसके दरवाजेपर नागिनीने रोका हो ॥ २ ॥ उत्तम अन्न पकाकर तैयार होवे, पर उसमें जैसे कालकूट विष मिलाया जाय, अथवा मित्रतामें जैसे कपट छिपा रहे ॥३॥ वैसे ही हेप्रबुद्ध ! जो मेरे भक्तोंकी अथवा मेरी निंदा करता है, उसके तप,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भक्ति,बुद्धि ये ऐसे ही दुष्ट रहते हैं,यह ध्यानमें लेवो ॥ ४ ॥ अतः हे धनंजय ! ऐसा भक्त बुद्धिमान् और तपस्वी होनेपर भी उसको इस शास्त्रका स्पर्श मत करने दो ॥ १५०५ ॥ हेअर्जुन ! अधिक क्या कहें ? निंदक यदि प्रत्यक्ष ब्रह्मदेवके समान बुद्धिमान् होवे तोभी उसको यह गीता खाली कौतुकसे भी मत देवो ॥ ६ ॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥

अतः हेधनुर्धर ! जो तपरूपी नींवपर गुरुभक्तिरूप पूर्ण मंदिर बना है और जिसके ज्ञान श्रवणकी इच्छाका आगेका दरवाजा सदैव खुला रहता है और निंदाके अभावरूपी रत्नोंसे जिसका सुंदरकलश बना है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ऐसे निर्दुष्ट भक्तरूपी मंदिरमें इस गीतारत्नरूपी ईश्वरकी प्रतिष्ठा करो और ऐसा करनेपर तुम प्रत्यक्ष मेरी ही योग्यताको चढोगे ॥ ९ ॥ क्योंकि 'अ,''ऊ' और 'म' इन तीन मात्राओंके पेटमें 'ॐ' इस एकाक्षररूपसे प्रणव गर्भवासमें अटका पडा था ॥ १५१० ॥ वह वेदोंका मूलबीज प्रणव गीतारूपी टहनियोंसे विस्तारको प्राप्त हुआ है, अथवा गीताके श्लोक उसके गायत्रीरूप फूल फल हैं ॥११॥ तब जिसको बालकके विना अन्यत्र अच्छा नहीं लगता ऐसी माताको, उसके विना जिसको अन्य गति नहीं ऐसे बालकसे मिला देना, उसी तरह इस महामंत्रसे भरेहुए गीताका जो मेरे भक्तोंके साथ आदरसे मिला देगा, वह शरीरके गिरनेके बाद मुझसे एकरूप होजाता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

नच तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता नच मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥

और जबतक देहाकृतिका अलंकार धारण कर वह जुदा रहता है, तबतक वही मुझको जीवसे भी अधिक प्रिय होता है ॥ १४ ॥ ज्ञानी, कर्मठ और तपस्वी इनमें वह अकेला मुझको जैसा प्यारा होता है ॥ १५१५ ॥ हे पाण्डव ! उतना प्रिय इस भूतलपर दूसरा कोई भी दीखता नहीं जो भक्तजनोंके समुदायमें गीता कहता है ॥ १६ ॥ ऐश्वर्य सम्पन्न ऐसे मेरे विषयमें प्रेमभक्ति दिलमें रखकर जो शांततासे सत्पुरुषोंकी सभामें गीताका पाठ चलाता है ॥ १७ ॥ श्रोताओंको वृक्षोंके नवीन पल्लवोंके समान जो रोमांचित करता है, मंदवायुसे उनको कंपाता है, फूलोंके वहते हुए जलके तरह आनन्दाश्रु बह-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



वाता है ॥ १८ ॥ कोकिलकी मधुर वाणीके समान गद्गद शब्द कहवाता है, इसप्रकार जो वसंतके समान मेरे भक्तमण्डलरूपी बगीचेमें प्रवेश करता है ॥ १९ ॥ अथवा चंद्र आकाशमें उदयको प्राप्त होजानेपर जैसे चकोरोंका जन्म सफल होता है, अथवा मयूरोंकी गर्जनाको हुंकार देते जैसे वर्षाकालका नूतनजलपूर्ण मेघ आकर पहुँचता है ॥ १५२० ॥ वैसे ही जो साधुजनोंकी सभामें केवल मेरे स्वरूपपर दृष्टि देकर ये गीतापद्यरूपी रत्नोंकी अटूट वर्षा करता है ॥ २१ ॥ ऐसे उस पुरुषके इतना मुझको सचमुच ही कुछ प्रिय नहीं है, न पहिले था और न आगे होगा ॥ २२ ॥ हेअर्जुन ! जो इस गीतार्थकी पहुनई संतजनोंको देता है, उसको अभीतक मैं अपने हृदयमें रखते आया हूँ ॥ २३ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

मुक्तिधर्मको उत्पन्न करनेवाली जो यह कथा तेरे मेरे संवादमें विस्तारको प्राप्त हुई है ॥ २४ ॥ उस सकलार्थका ज्ञान करके देनेवाली अपने संवादका जो एक अक्षरका भी फरक न करते पाठ करेगा ॥ १५२५ ॥ उसने मानों ज्ञानाग्नि प्रज्वलित कर उसमें अज्ञानकी आहुति देनेके कारण वह शुद्धमति होकर मेरे रूपको प्राप्त होगा ॥ २६ ॥ हे विचक्षण ! ज्ञानीजन गीतार्थको खोजकर जो कुछ प्राप्त करते हैं, अजी अर्जुन ! वही केवल गीतापाठ करनेवालेको भी प्राप्त होजाता है ॥ २७ ॥ गीतार्थ जाननेवालेको जो फल प्राप्त होता है, गीतापाठकको भी उसके समान ही फल मिलता है. गीता,माता, ज्ञानी और बालक इन दोनोंमें थोडा भी भेद नहीं करती ॥ २८ ॥

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥

और किसी भी मार्गसे निन्दा न करते, शुद्ध बुद्धिसे जो गीता श्रवण करनेमें पूर्णश्रद्धा रखता है ॥ २९ ॥ जिसके कानोंमें गीताके अक्षर प्रविष्ट नहीं हुए कि उसके पाप उसको छोडकर शीघ्र ही भागजाते हैं ॥ ३० ॥ वनमें दावानल लगते ही जैसे उस वनमें रहनेवाले प्राणी दस दिशाओंको भागते हैं ।३१॥ अथवा पूर्व पर्वतके शिखरपर सूर्यका उदय हुआ कि अंधेरा आकाशलीन हो जाता है ॥ ३२ ॥ वैसे ही कानके महाद्वारमें गीताकी गर्जना हुई कि सृष्टिकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उत्पत्तितकके पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ३३ ॥ इस रीतिसे यह जन्मरूपी बेल निर्दुष्ट होकर पुण्यरूपी सुन्दर फूलोंसे विकसित होती है और अन्तमें उसको अद्भुत बडा भारी फल मिलता है ॥ ३४ ॥ क्योंकि कानके द्वारा गीताके जितने अक्षर अन्तःप्रविष्ट होगये, मानों उतने अश्वमेध करनेके पुण्य उसको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १५३५ ॥ अतः गीता श्रवणसे पाप नष्ट होजाता है और धर्मकी उन्नति होती है, उससे अंतमें इन्द्रकी सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥ मेरे समीप आकर पहुँचनेके लिये पहिला मुकाम स्वर्गमें करता है, और वहाँ पर जितने चाहे उतने स्वर्गभोग भोगनेपर वह अंतमें मुझको ही आकर मिलता है ॥ ३७ ॥ हे धनंजय ! गीता सुननेवालेको और पाठ करनेवालेको ऐसे बहुत आनन्द देनेवाले फल प्राप्त होते हैं, अब इसका विस्तार कितना करें ? ॥ ३८ ॥ तब यह इतना ही बस है, पर जिस कामके लिये इतना शास्त्रप्रपंच मैंने किया, उस कार्यके विषयमें तुझको अब पूछते हैं ॥ ३९ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ ७२ ॥

हे पाण्डव ! अब कहो भला ? यह सब शास्त्रसिद्धान्त तुमने एकाग्र मनसे सुन लिया है ना ? ॥ १५४० ॥ हमसे यह सिद्धान्त जैसे तुम्हारे कानमें उपदिष्ट हुआ, वैसेही उसने यह तेरे दिलमें उत्तम रीतिसे अन्दर भर दिया है ना ? ॥ ४१ ॥ अथवा बीचमें ही कहीं फेंक दिया, अथवा उपेक्षाबुद्धिसे छोड़ दिया ॥ ४२ ॥ जैसा हमने उपदेश दिया, वैसे ही यदि तुम्हारे हृदयमें जमा हुआ हो तो मैं अब पूछूंगा उसका ठीक उत्तर दो ॥ ४३ ॥ मैं अब पूछता हूँ कि आत्माके विषयमें अज्ञान रहनेके कारण उत्पन्न हुए जिस मोहने तुमको भुलाया था, वह मोह अब गया कि नहीं ? ॥ ४४ ॥ पर इतना अधिक क्या पूछना है ? तुम अब उतना ही कहो कि तुमको कुछ कर्माकर्म दीखता है कि नहीं ? ॥ १५४५ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्‌ने यह प्रश्न पूछकर अर्जुनकी ऐसी स्थिति की, कि वह स्वानंदके अद्वैतरससे पूछे बिना फिर द्वैतभावपर खींचकर लाया गया ॥ ४६ ॥ अर्जुन पूर्ण ब्रह्मरूप हुआ था, पर आगेका कार्य साधनेके लिये श्रीकृष्णने उसको भेदभावकी मर्यादा लांघने नहीं दी ॥ ४७ ॥ अपना ही करना उस सर्वज्ञ श्रीकृष्णको क्या मालूम नहीं था ? पर अर्जुन द्वैतके भानपर फिर लौटे, इसलिये ही उन्होंने यह प्रश्न किया ॥ ४८ ॥ तब यह प्रश्न पूछकर श्रीकृष्णदेवने न रहा हुआ अर्जुनत्वका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भान पीछे लाकर 'मैं पूर्ण हुआ' ऐसा जो अनुभव अर्जुनको आया था, वह उसके मुखसे कहलाया ॥ ४९ ॥ बाद क्षीर समुद्रसे निकलनेवाला और आकाशमें प्रभापुंज दैदीप्यमान पूर्णचन्द्र जैसे अलग न करते ही सहज ही स्पष्टरूपसे दिव्य पृथक् दीखता है ॥ १५५० ॥ वैसा एकतरफ 'मैं ब्रह्म' इस बातकी भूल पडरही है तो दूसरी तरफ सब जगत् ही ब्रह्म दीखता है, एक ओर जगत छूटता है तो दूसरी ओर ब्रह्मत्वका भी लोप होता है ॥ ५१ ॥ इसतरह ब्रह्मत्वका उलटा सीधा मण्डन, लोप करते अर्जुन बडे कष्टसे फिर एक दफे शरीराभिमानकी सीमा पर 'मैं अर्जुन हूँ' इस भानसे खडा हुआ ॥ ५२ ॥ फिर कांपनेवाले हाथसे अपने केस साफ करके और पसीनेके बिन्दु पोंछता हुआ ॥ ५३ ॥ प्राणोंकी क्षुब्धतासे डोलते हुए अंगकों सँभालकर स्तब्ध रहता हुआ शरीरका हलचल बडे निग्रहसे रोक कर॥५४॥ दोनों आंखोंसे अश्रुओंके प्रवाहसे आनन्दामृत की बाढको रोकता हुआ ॥ १५५५ ॥ वह वैसेही पीछेके पीछे दबाता हुआ, अनेक प्रकारकी उत्कंठाओंसे जो एकदम कण्ठ भर आया था, वह वैसेही हृदयमें पाछे दबाकर ॥ ५६ ॥ बद्धहुई वाणी और प्राणोंको संभालता हुआ, अनियमित श्वासोंको ठिकानेपर लाकर ॥ ५७ ॥

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

अर्जुन बोला—हे श्रीकृष्णदेव ! अभी मोह अच्छा लगता है क्या ऐसा क्यों पूछते हैं ? वह कभी ही परिवार लेकर मुझको छोडकर चला गया है॥५८॥ सूर्य ही पास आकर पूँछे कि 'नेत्रोंको अन्धकार दीखता है क्या ?' यह कहीं कोई भी स्थानमें संभवनीय है क्या ? ॥ ५९ ॥ वैसे ही आप भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंके आंखोंको प्रत्यक्ष दीख पडते हैं यह क्या थोडा है ॥१५६० ॥ इसके विना जो कि कुछ भी करने पर प्राप्त न होनेवाला, वह भी आप मातासे भी अधिक प्रेमकर विस्तारपूर्वक कहते हैं ॥६१॥ अब मोह गया कि नहीं ऐसा जो कुछ पूछते हैं,इसीसे हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मैं कृतकृत्य हुआ हूँ ॥ ६२ ॥ 'मैं अर्जुन हूँ' इस भ्रमसे जकड गया था पर अब आपकी कृपासे आपका स्वरूप मालूम होनेके कारण मैं अब मुक्त हुआ हूँ. अब प्रश्न और उत्तर ये दोनों बातें नहीं रहीं ॥ ६३ ॥ तुम्हारे प्रसादसे जो आत्मज्ञान मुझको मिला है, वह मोहकी जडको भी वचने नहीं देता ॥६४॥ अब 'करना कि न करना' यह प्रश्न जिस द्वैतभावसे उत्पन्न होता है वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


आपके बिना कहीं कुछ भी मुझको दीखता नहीं ॥ १५६५ ॥ इस प्रकरणमें मुझको अब बिलकुल संदेह नहीं जहाँ कर्म थोडा भी शेष नहीं रहता, ऐसी स्थितिको मैं पहुँचा हूँ ॥६६॥ आपके निर्मित मुझको आज 'मैं' इस आत्म-स्वरूपकी प्राप्ति होनेके कारण मेरे कर्मका नाश होगया. अब मुझको आपकी आज्ञाके बिना दूसरा कुल भी शेष नहीं रहा ॥६७॥ क्योंकि जो दृष्टिगोचर होनेपर दृश्य विश्व नष्ट होजाता है, जो द्वैत होकर द्वैतको नष्ट करदेता है, जो एक होकर सब जगह सदैव बसता है ॥ ६८ ॥ जिसका संबंध होते ही सब बन्ध टूट जाते हैं जिसकी आशासे दूसरी आशायें नष्ट होती हैं जिसकी भेंट होनेसे सब जगह आत्मस्वरूपकी भेंट होती है ॥ ६९ ॥ वह मेरी आराध्य गुरु देवता आप हैं, जो एकताकी सहकारिणी है, जिसके कारण अद्वैत ज्ञानके पार जाना पडता है ॥१५७०॥ और आप स्वयं ही ब्रह्मरूप होकर कर्तव्याकर्तव्यका बखेडा तोडकर जिसकी एकनिष्ठ अमर्याद सेवा करते रहे ॥ ७१ ॥ समुद्रको भेंटनेके लिये गंगानदी गयी और भेंट होते समुद्रही हो गयी, वैसे ही जो भक्तको निजपदका लाभ करा देता है, वे आप मेरे निरु-पाधिक सेवायोग्य सद्गुरु हैं, अतः यह ब्रह्मस्वरूप साक्षात्कारका उपकार मेरे ऊपर हुआ है, ऐसेही आप समझिये ॥७२॥७३॥ मुझ और आपके बीचमें जो भेदभावका प्रतिबन्ध था उसको हटाकर आज आपकी सेवाका मधुर सुख प्राप्त किया है ॥ ७४ ॥ अतः हे देवाधिदेवराज, श्रीकृष्ण ! आपने कोई भी आज्ञा मुझको की, तो भी मैं उसको पाले विना नहीं रहूँगा ॥ १५७५ ॥ यह अर्जुनका भाषण सुनकर कृष्णदेव आनन्दमें भूलकर नाचने लगे, और दिलमें कहने लगे कि सब फलोंका श्रेष्ठफल मुझको आज अर्जुनरूपसे लब्ध हुआ है ॥ ७६ ॥ जिसकी न्यून कलायें पूर्ण होगई हैं ऐसा अपना पुत्र जो पूर्णचन्द्र उसको देखकर सदैवकी अपनी तरङ्गोंकी मर्यादाको लांघता नहीं क्या ? ॥ ७७ ॥ इस प्रकार संभाषणकी विवाह भूमिपर कृष्ण और अर्जुन इन दोनोंके अन्तःकरणकी लग्न ग्रन्थि पडी हुई देखकर सञ्जय पूर्ण आन्दसे भर गया ॥ ७८ ॥ उस बडी आनन्द भावनासे सञ्जयने धृतराष्ट्रको कहा— हे राजन् ! कितना यह बादरायण ( व्यास ) जीका प्रसाद है कि उन्होंने अपने दोनोंका इस युद्ध कालमें पूर्णरूपसे संरक्षण किया है ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! आपको तो संसारसंबन्धि सीधे साधे व्यवहार करनेको चर्मचक्षु भी नहीं रहे, पर इस स्थितिमें भी ज्ञानदृष्टिसे व्यवहार करनेकी शक्ति व्यासजीके प्रसादसे आपको आज प्राप्त हुई है ॥ १५८० ॥ और केवल घोडोंकी परीक्षा करनेके लिये जिस मुझको रथमें बैठनेवाले वीरलोगोंमें प्रवेश मिला था उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


मुझको ये ज्ञानकी बातें समझ जांय, यह भी व्यासजीका कृपा प्रसाद है ॥ ८१ ॥ ऐसी अवस्थामें युद्ध इतना घनघोर भयानक चला था, कि दोनों पक्षमेंसे किसीका भी पराजय हुआ तो भी अपना इस युद्धमें प्राणनाश होगा ही, ऐसा प्रत्येकको मालूम होता रहा ॥८२॥ जहांपर ऐसा घोर भयंकर प्रसंग आगिरा था, उसमें भी ब्रह्मानन्दका उपभोग लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह व्यास महर्षिजीका प्रसाद कितना अद्भुत कार्यकारी है ऐसा कहना चाहिये ॥८३॥ ऐसा सञ्जयने कहा,पर जैसे चन्द्र किरणोंसे पत्थर नहीं पसीजता है, वैसे उस धृतराष्ट्रका अन्तर्याम इन शब्दोंसे थोडा भी नहीं पसीजा ॥८४॥ ऐसी उसकी स्थिति देखकर सञ्जयने उस विषयकी बात छोड दी, तो भी वह आनन्द सुखसे बेहोश होकर फिर बोलने लगा ॥ १५८५ ॥ केवल हर्षके आवेगसे भूल जानेके कारण संजय बोलने लगा, नहीं तो वह आगे बोले इसप्रकारकी उत्कंठाके लक्षण धृतराष्ट्रके ठिकाने बिलकुल नहीं दीखते रहे ॥ ८६ ॥

संजय उवाच–इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

संजय बोला-हे कुरुराज ! तुम्हारे भतीजे अर्जुनने जो कुछ श्रीकृष्णको कहा, वह उनको बहुत ही मधुर लगा ॥ ८७ ॥ पूर्वसमुद्र, पश्चिमसमुद्र ये नाम ही खाली भिन्न हैं, नहीं तो उन दोनों समुद्रोंका पानी एक ही है ॥ ८८ ॥ उसी-तरह ये श्रीकृष्ण और यह पार्थ, ऐसा भेद केवल शरीरकी भिन्नतासे ही दीखता है, पर उनके संवादमें यह भेद अणुमात्र भी शेष नहीं रहता ॥८९॥ जब दर्पणसे भी स्वच्छ ऐसी दो वस्तु सन्मुख करदीजाँय तो जैसे एक दूसरेमें अपना ही स्वरूप परस्पर देखेंगी ॥१५९०॥ वैसेही अर्जुन अपनेको श्रीकृष्णके साथ कृष्णमूर्तिमें देखनेलगा और श्रीकृष्णको भी अर्जुनके साथ अपना स्वरूप अर्जुनमूर्तिमें दीखने लगा ॥ ९१ ॥ देवदेव जिस अपने स्वरूपमें अप-नेको और भक्तको देखनेलगे, वहींपर भक्तको भी देव दीखने लगे ॥ ९२ ॥ और अब तीसरा कुछ भी न बचनेके कारण उन्होंने क्या किया ? तो तब दोनो जने केवल एकरूप होकर रहे ॥९३॥ अब ऐसा यदि द्वैतभाव ही नष्ट हुआ तो प्रश्नोत्तरका प्रसंग संभवेगा भी कैसा ? भेद ही यदि नहीं तो संभाषणका सुख कहाँका ? ॥ ९४ ॥ इसप्रकार द्वैतभाव रखकर संभाषण करते रहते भी जिसमें द्वैतभाव नष्टसा होजाता है, वह उन दोनोंका संभाषण मैंने सुना ॥ १५९५ ॥ दो दर्पण अपने सामने रखनेपर कौन किसको देखता है ऐसी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


कल्पना करते आवेगी क्या भला ? ॥ ९६ ॥ अथवा जलते दीपकके आगे जलता हुआ दीपक रखाजाय, तो कौन किसके पास प्रकाशकी याचना करता है ऐसा समझना चाहिये ? ॥९७॥ अथवा सूर्यके सामने दूसरा सूर्य उदयको प्राप्त होनेपर उनमेंसे प्रकाशदेनेवाला कौन और प्रकाशित होनेवाला कौन इसका निर्णय कैसा भला करे ? ॥ ९८ ॥ इसका निश्चय करनेको जावे तो निश्चयको ही स्तब्ध होना पडता है, इसप्रकार उस संभाषणसे वे कृष्ण और अर्जुन बिलकुल एक सरीखे होगये ॥ ९९ ॥ अजी ! दो जलके प्रवाह एक जगह आकर मिलें और उनके बीच यदि नमक मिले तो वह प्रवाहोंको हटासकेगा, कि एक क्षणमें उन दोनोंके बराबर वह भी एकरूप ही हो जायगा भला ? ॥ १६०० ॥ वैसे ही उस संवादमें एक रूप हुए उन कृष्णार्जुनको दिलमें लानेपर मेरी भी स्थिति वैसी ही हो रही है ॥ १ ॥ इतना थोडासा संजय बोलता या न बोलता है, त्योंही सात्त्विक भावने उस संजयकी स्मृति नष्ट कर दी ॥ २ ॥ उसके रोमांच ज्यों-ज्यों फडकने लगे, त्यों-त्यों शरीर संकुचित होने लगा, उसकी स्तंभित अवस्थासे उत्पन्न हुए पसीनेकी अपेक्षा कंप बहुत जोरसे होने लगा ॥ ३ ॥ अद्वैतानन्दका अनुभव आनेके कारण उसकी आँखें भर आयीं, वह प्रेमाश्रु नहीं है, मानो क्या बहते जलका द्रव ही शुरू होगया ॥ ४ ॥ फिर मानों क्या पेटमें न समानेके कारण और गलेमें घबडा जानेके कारण उसके शब्दार्थ श्वासोच्छ्वासकी दौडमें अटक जाते थे ॥१६०५॥ अधिक क्या कहें, आठों सात्त्विक भावोंसे उसकी घिग्घी बंध गयी, संजय इस कृष्णार्जुन संवादका चौराहा बन गया ॥ ६ ॥ पर इस सुखका स्वभाव ही ऐसा है, कि वह अपने आप ही शान्त होता है, अतः संजय शीघ्रही शान्त हुआ और फिर वह देहस्मृतिपर आया ॥ ७ ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥

तब आनन्दोंका आवेग शान्त हो जानेपर उसने कहा—जो ज्ञान उपनिषदोंको भी मालूम नहीं, वह आज हमने व्यासजीकी कृपासे सुन लिया ॥८॥ उसे सुनते ही ब्रह्मत्व मेरे शरीरमें अन्तः प्रविष्ट होगया और 'मैं—तुम' इस द्वैतकी सृष्टि लुप्त होगयी ॥ ९ ॥ ये सब योगमार्ग जिसमें आकर कुंठित होते हैं, उस श्रीकृष्णका वचन व्यासजीकी कृपासे मुझको आज अनायास

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ही मिला दिया ॥ १६१० ॥ अर्जुनको निमित्तकर अपनी तरफ हठात् दूसरा भेष अलग लेकर आत्मविचार प्रकरणमें जो देवने भाषण किया ॥ ११ ॥ उस भाषणको उत्तम अधिकारी होनेकी योग्यता मुझ सरीखेके अंगमें आयी, तब श्रीगुरु व्यासजीके सामर्थ्यका मैं कहाँतक वर्णन करूँ ॥ १२ ॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

बाद फिर राजासे बोलता हुआ संजय विस्मित होकर और रत्नपर जैसे उसी रत्नकी कान्ति फैलती है, वैसे उस आश्चर्यसे ही वह बिलकुल व्याप्त होगया ॥ १३ ॥ चंद्रोदय होजानेपर जैसे हिमाचलके ऊपरके सरोवर स्फटिक शिलाके समान दीखते हैं, पर सूर्य उदित होते ही वे फिर द्रवरूप होजाते हैं ॥ १४ ॥ वैसेही वह संजय अपनी स्मृति होते ही उसको कृष्णार्जुनका संवाद स्मृत हुआ कि वह फिर विस्मित होकर देह भान भूल जावे, ऐसा बराबर चालू रहा ॥ १६१५ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

बाद वह खडा होकर धृतराष्ट्रको कहने लगा कि श्रीहरि भगवानके प्रत्यक्ष विश्वरूपको देखकर तुम ऐसे चुप क्यों बैठते हो ? ॥ १६ ॥ जो नहीं देखते ही दीखता है, नास्तित्वसे ही जो अस्तित्वमें है और जो भूलते ही स्मृति-विषय होता है, वह अब कैसे टाला जावे ॥ १७ ॥ केवल दूरसे देखकर आश्चर्य करनेको यहाँ अवकाश नहीं है, क्योंकि इस संभाषणमें वही ज्ञान गंगाकी अत्यंत बाढ ऐसा है कि वह मुझको भी अपने साथ बहाकर लेजाता है ॥ १८ ॥ ऐसा इस श्रीकृष्णार्जुन संवादरूपी संगम तीर्थमें स्नान करके वह संजय अहंताको तिलाञ्जलि देताहुआ ॥ १९ ॥ ऐसी अवस्थामें वह न रुकनेवाले आनंदमें असाधारणरूपसे सांसभरता और गद्गद कंठसे बारबार "श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण" ऐसा कहनेलगा ॥ १६२० ॥ परंतु इन अवस्थाओंकी उत्तम समझ कुरुराज धृतराष्ट्रको बिलकुल न होनेके कारण वह ज्योंही इस सम्बन्धमें कुछभी भ्रमविशिष्ट कल्पना मनमें लाता है ॥२१॥ त्योंही अनुभवको आये हुए सुखके लाभ को अपनेमें अपना ही स्थिरकर संजयने सात्त्विक अहङ्कारको त्याग कर



CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शान्तता स्वीकृत की ॥ २२ ॥ बाद उस प्रसंगको योग्य ऐसा कुछ पूछनेका दूर रखकर उस धृतराष्ट्रने उसको कहा—'संजय ! यह क्या तुम्हारी रीति है ॥ २३ ॥ रे संजय ! उस व्यासजीने तुमको यहाँ मेरे पास किस हेतुसे बैठाया और न जाने क्या तुम अप्रासंगिक कुछ बोल रहे हो ? ॥ २४॥ जंगली आदमीको राजगृहमें लेजानेपर उसको भूले हुएके तरह मालूम होकर दस दिशा शून्य मालूम होनेलगे. अथवा दिन उदित हुआ कि वह राक्षसोंकी रात्र ही होती है ॥१६२५॥ जो जिसका रस लेना समझता नहीं, वह उसको रुचि रहित अथवा खराब मालूम होता है, तब धृतराष्ट्रको संजयका करना कुछ दूसरा ही समझलेना, यह अत्यन्त स्वाभाविक होता है ॥ २६ ॥ बाद धृतराष्ट्रने पूछा कि संजय ! अब ऐसा कहो कि यह जो युद्ध उपस्थित हुआ है, उसमें अंतमें किसका विजय होगा ? ॥ २७ ॥ बल्कि हमलोगोंका ऐसा मनसे कहना है कि दुर्योधनका अधिक पराक्रम दीखता है ॥ २८ ॥ और पांडव सैन्यसे तुलना करनेपर दुर्योधनकी सेना देडपट है, तब वह अंतमें जरूर जय पायेगा. ऐसा ही नहीं क्यों ? ॥ २९ ॥ हमलोगोंको तो ऐसा मालूम होता है, हे संजय ! इस विषयमें तेरा क्या भविष्य है, वह कुछ समझता नहीं, पर वह कैसा भी होवे तोभी एकदफे कहोही ॥ १६३० ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

इस प्रश्नपर संजयने उत्तर दिया, हेराजन् ! दोनों पक्षमें कौन विजयी होगा, वह कुछ मुझको समझता नहीं पर जहाँ आयुष्य है, वहाँ जीवित रहना सत्य ही है ॥ ३१ ॥ जहाँ चन्द्र वहाँ चन्द्रिका, जहाँ शंभु वहाँ अम्बिका, जहाँ सन्तपुरुष वहाँ विचार ये रहेंगे ही ॥ ३२ ॥ राजा जहाँ वहाँ उसका सैन्य, जहाँ सुजनता वहीं मित्रता, जहाँ अग्नि वहाँ उसकी दाहक शक्ति ये रहेंगे ही ॥ ३३ ॥ जहाँ दया तहाँ धर्म, जहां धर्म वहां सुखलाभ, जहां सुख वहां पुरुषोत्तम रहते ही हैं ॥ ३४ ॥ वसंत जहां वहां वन, और वन जहां वहां फूल रहेंगे ही, और जहां पुष्प हैं उसपर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



भ्रमर आवेंगे ही ॥ १६३५ ॥ जहां गुरु वहां ज्ञान, जहाँ ज्ञान वहाँ आत्मदर्शन, और जहां आत्मदर्शन वहां समाधान, ये सब क्रमसें आते हैं ॥ ३६ ॥ भाग्य जहां वहां सुखविलास, सुख जहां वहां उल्लास, सूर्य जहां वहां प्रकाश, ये रहते ही हैं ॥ ३७ ॥ वैसे ही जिनके कारण सब पुरुषार्थोंको सामर्थ्य अथवा शोभा आती है, वे श्रीकृष्ण भगवान जिधर रहेंगे, उधर ही लक्ष्मी रहेगी ॥ ३८ ॥ और अपने पतिके संग वह जगन्माता लक्ष्मी जिसके पास प्राप्त हुई उसकी अणिमादि आठ सिद्धियां दासी नहीं होंगी क्या ? ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण ये स्वयं ही विजयस्वरूप होनेके कारण वे जिस पक्षमें खडे होंगे, उसी ओर जय भी होगा ॥ १६४० ॥ विजयनामसे अर्जुन तो प्रसिद्ध ही हैं और श्रीकृष्णनाथ ये तो स्वयं ही विजयस्वरूप हैं, तब लक्ष्मीसहित विजय वहीं रहेगा, इसमें बिलकुल संशय नहीं ॥ ४१ ॥ जिनको इतने बलवान् माता-पिताओंका आश्रय है, उनके देशके साधे वृक्ष भी कल्पवृक्षोंको निश्चयसे क्यों नहीं जीतेंगे ? ॥ ४२ ॥ वहांके पाषाण भी चिंतामणि क्यों न होवें, वहांकी मिट्टीमें भी सोनेके गुण क्यों न आवें ? ॥ ४३ ॥ उनके गांवकी नदियां अमृतरससे बहने लगीं तो उसमें आश्चर्य किस बातका ? हेराजन् ! आप ही अपने दिलसे विचार कर देखो भला ॥ ४४ ॥ उनके अव्यवस्थित शब्दोंको भी सुखसे वेद कहा जा सकता है और वे पुरुष स्वयं ही देहधारी सच्चिदानंद क्यों नहीं होंगे ? ॥ १६४५ ॥ श्रीकृष्ण और लक्ष्मी ये जिनके माता पिता हैं, उनके अधीन स्वर्ग और मोक्ष ये दोनो रहते हैं ॥ ४६ ॥ अतः जिसतरफ लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण हैं वहां सबप्रकारकी सिद्धियां आपही रखी हैं, इतना ही मैं जानता हूँ इससे अधिक मुझको कुछ नहीं समझ पडता ॥ ४७ ॥ और समुद्रसे उत्पन्न हुआ मेघ जैसे उस समुद्रसे भी अधिक अच्छा उपयोगमें आता है, वैसाही प्रकार अर्जुन और कृष्ण इनका है ॥ ४८ ॥ लोहेको सोनेकी दीक्षा देनेवाला गुरु पारस है पर जगत्का सब व्यवहार सोना ही चलाता है ॥ ४९ ॥ अब इसपर कोई कहेंगे कि इस विचार सरणिमें गुरुत्वको न्यूनता आती है तो वैसा मनमें भी नहीं लाना चाहिये, अग्नि जैसे अपना ही प्रकाश दीपकके द्वारा प्रकट करता है ॥ १६५० ॥ वैसे ही भगवान् देवकी ही शक्तिसे अर्जुनको अधिक दीखनेलगा पर उतने ही अधिक प्रमाणसे उस वर्णनमें देवका स्तुतिगौरव रहता है ॥ ५१ ॥ और पुत्र सब सद्गुणोंमें अपनेसे अधिक बढ़े, ऐसी बापकी इच्छा रहती है और वही शार्ङ्गपाणि श्रीकृष्णमें सफल हुई ॥ ५२ ॥ अधिक क्या कहें, हेराजन् धृतराष्ट्र !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



श्रीकृष्णकी कृपासे अर्जुन जिस पक्षका सहायकारी हुआ है ॥ ५३ ॥ उसको ही विजय प्राप्त होगा, इस विषयमें तुमको संदेह क्यों मालूम होता है, उस पक्षमें यदि विजय नहीं आवेगा तो विजय ही निष्फल ठहरेगा ! ॥ ५४ ॥ अतः जहां लक्ष्मी वहीं श्रीमान् श्रीकृष्णदेव और जहां पाण्डुपुत्र अर्जुन वहां सब विजय, वहीं सब उत्कर्ष रहेगा ॥१६५५॥ यदि व्यासजीकी सत्यतापर आपका विश्वास होगा तो यह मेरा वचन अटल है, ऐसा समझिये ॥ ५६ ॥ जहां वे श्रीवल्लभ नारायण, जहां वह भक्तश्रेष्ठ अर्जुन, वहीं सुख और मंगलका लाभ रखा है ॥ ५७ ॥ यह भाषण यदि अन्यथा हो तो मैं व्यासका शिष्य ही नहीं, ऐसे जोरसे प्रतिज्ञाका घोष करके संजयने दोनो भुजा ऊपर उठा ॥ ५८ ॥ इसतरह सब भारतका तात्पर्य एक श्लोकमें लाकर उसे संजयने धृतराष्ट्रके हाथमें दिया ॥ ५९ ॥ जैसा अग्निका विस्तार अमर्याद है, पर वह सूर्यास्तसे हुई हानिको पूरा करनेके लिये जैसे कपासकी बत्तीके अग्रभागपर रखकर उपयोगमें लाया जाता है इससे सूर्यकी अनुपस्थितिसे हुई त्रुटि दूर होती है ॥ १६६० ॥ वैसे ही जिसका अन्त ही नहीं, ऐसा शब्दब्रह्म प्रथम सवालक्ष भारत हुआ, बाद भारतका सब सार जिसमें है ऐसी गीता सातसौ श्लोकोंकी हुई ॥६१॥ और इन सातसौ श्लोकोंमें यह अखीरका, व्यास शिष्य संजयके पूर्ण उद्गारका श्लोक याने सब गीताका एकत्रित किया अर्थ ॥ ६२ ॥ यह एक ही श्लोक जो हृदयमें धरकर रहेगा उसने सब अज्ञान पूर्ण रीतिसे जीत लिया ऐसा होगा ॥ ६३ ॥ ऐसे ये सातसौ श्लोक मानों इस गीताके चलते हुए पद ही हैं. अथवा इनको पैर न कहकर यह गीतारूपी आकाशका परम अमृत समझना चाहिये ॥ ६४ ॥ अथवा ये श्लोक गीतारूपी आत्मराज सभाके स्तम्भ ही हैं, ऐसा मुझको भासता है ॥ १६६५ ॥ अथवा सप्तशतीसे ( सातसौ श्लोकोंसे भगवतीके पक्षमें सप्तशती नामक ग्रन्थसे ) वर्णित हुई यह गीता याने भगवती देवी समझनी चाहिये, यह मोहरूपी महिषको मुक्ति देकर याने नष्ट करके आनन्दित हुई है ॥ ६६ ॥ अतः जो मनसे, शरीरसे और वाणीसे इसका भक्त होगा, वह स्वानन्द साम्राज्यका चक्रवर्ती राजा होगा ॥ ६७ ॥ अथवा अविद्यारूपी अन्धेरेपर रोष धरके जो सूर्यके ऊपरभी प्रतिज्ञासे मात करते हैं, ऐसे ये विलक्षण प्रभावशाली श्लोक गीताके व्याजसे श्रीकृष्ण प्रभुने प्रकट किये हैं ॥ ६८ ॥ अथवा संसारमें थके हुए प्रवासियोंको विश्राम स्थान देनेके लिये यह गीता श्लोका-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



क्षररूपी द्राक्षावेलका मण्डप हुई है ॥ ६९ ॥ अथवा यह गीता याने उस सातसौ श्लोकरूपी कमलोंसे धन्य हुए संतरूपी भौरोंसे गजबजी हुई श्रीकृष्णमुखरूपी पुष्करिणी ही कहनी चाहिये ॥ १६७० ॥ अथवा ये सात सौ श्लोक दूसरे कोई न होकर गीताकी महिमा गानेवाले उद्दंड बंदिजन ही मालूम होते हैं ॥ ७१ ॥ अथवा ये सात सौ श्लोकोंका चारोतरफ आवार ( वाडी ) बनाकर इस गीतारूपी सुन्दर नगरीमें वेदसमुदाय ही मानों वास करनेको आया है ॥ ७२ ॥ अथवा अपना पति जो परमात्मा उसको प्रेमसे आलिंगन देनेके लिये गीताप्रियाने फैलाये हुए जो भुज वेही ये श्लोक मानने चाहिये ॥ ७३ ॥ अथवा ये श्लोक गीतारूप कमलपरके भ्रमर हैं, अथवा गीतारूप समुद्रके तरंग हैं, अथवा गीतारूपी रथके ये घोडे हैं ॥ ७४ ॥ अथवा अर्जुनरूपी सिंहस्थ आनेके कारण इस गीतारूपी गंगाजीमें इस श्लोकरूपसे सब तीर्थोंका मेला ही मानों इकट्ठा हुआ है ॥ १६७५ ॥ अथवा यह श्लोकोंकी पंक्ति नहीं, तो विरक्त चित्तको भी भुलानेवाली चिन्तामणियोंकी अथवा कल्पवृक्षोंकी यह पंक्ति ही लगाई है ऐसा भासता है ॥ ७६ ॥ ऐसे इस सातसौ श्लोकोंके प्रत्येक श्लोक दूसरे प्रत्येक श्लोकसे बढकर हैं, फिर उनका अलग अलग बयान करना भी कैसे ? ॥ ७७ ॥ कामधेनुके सम्बन्धमें जैसे यह दूध देनेवाली है और यह दूध नहीं देनेवाली है, इसप्रकार भेदकी भाषा नहीं बोली जाती ॥ ७८ ॥ अथवा दीपकको आगे पीछे, सूर्यको छोटा बडा, अथवा अमृत समुद्रको गहरा या उथला ऐसे विशेषण किस आधारपर लगाये जासकते हैं॥७९॥ वैसे ही गीताके ये श्लोक पहिले और ये समाप्तिके ऐसा नहीं कहना चाहिये पारिजातके फूल कहीं नये प्राचीन कहे जा सकते हैं क्या ? ॥ १६८० ॥ और गीताके प्रत्येक श्लोकमें कुछ योग्यताके विषयमें न्यूनाधिकत्व नहीं, इसका और समर्थन क्यों करूँ ? कारण यह पढते रहते वाच्य और वाचक यह भी भेद बचता नहीं ॥ ८१ ॥ इस गीताशास्त्रमें श्रीकृष्ण ये अकेले ही वाच्य और वाचक भी हैं. यह सर्वसाधारण लोगोंको भी मालूम है ॥ ८२ ॥ इस गीतामें जो अर्थ जानकर लब्ध होता है, वही केवल गीतापाठसे भी लब्ध होता है, इतनी धडाधडीसे यह गीता शास्त्र वाच्य वाचककी एकता सिद्ध करता है ॥८३ ॥ तब मुझको समर्थन करनेको विषय ही शेष नहीं रहता, यह गीता याने प्रभुकी सुन्दर वाङ्मयमूर्ति ही जाननी चाहिये ॥ ८४ ॥ कोई भी शास्त्र वाच्य उद्दिष्ट अर्थ वाचकको कह देता है और बाद स्वयं मिट जाता है, पर गीताका ऐसा प्रकार नहीं है. यह गीता सर्वस्वी अव्यय और अविनाशी, यह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



परब्रह्म ही है ॥ १६८५ ॥ विश्वपर करुणा करके भगवान्ने अर्जुनको निमित्त करके यह परमआत्मानन्द सबको कैसे सुलभकरके रखा है, देखो ॥ ८६ ॥ चकोरको सुखी करनेके बहाने चन्द्र जैसा त्रिभुवनका दाह शान्त करता है ॥ ८७ ॥ अथवा गौतम ऋषिको निमित्त करके जैसे कलिकालसे उत्पन्न होनेवाला जगत्का दाह शान्त करनेके लिये गंगाजीका प्रवाह शंकरजीने पृथ्वीपर छोडा ॥ ८८ ॥ वैसे ही अर्जुनको बछडा बनाकर श्रीकृष्णरूपी गौने यह गीतारूपी दूध सब जगत्को पूरा पडेगा ऐसा दिया है ॥ ८९ ॥ इसमें यदि जीवभावसे स्नान करोगे तो तद्रूप ही होजाओगे, इतना ही नहीं तो केवल पठनके उद्देश्यसे यदि इसको जिह्वा लगाओगे ॥ १६९० ॥ तो भी जैसे पारसका एकबार भी स्पर्श होजानेपर लोहेका अपने आप सोना होजाता है ॥ ९१ ॥ तैसे पाठक विभाग करके श्लोकका एक भी चरण तुमलोगोंने ज्यों ओष्ठको लगाया नहीं, त्योंही शरीरपर ब्रह्मैकताकी पुष्टता चढेगी ॥ ९२ ॥ अथवा पाठकी कटोरीको मुँह न लगाते ही वह टेढाकर घुमाकर बैठोगे तो, यदि गीताका अक्षर खाली कानमें पडे तो भी वही फल प्राप्त होगा ॥ ९३ ॥ जैसे अत्यन्त द्रव्यवान् उदार पुरुष किसीको भी नकार देता नहीं, वैसे ही यह गीता भी श्रवण,पठन,अथवा अर्थग्रहण इनमेंसे किसीएकका भी आश्रय करनेपर मोक्षके इस बाजूका ऐसा कुछ भी देती नहीं, फल वैषम्य छोड़कर सबके लिये एक मोक्ष ही देती है ॥ ९४ ॥ अतः जानकार लोगोंकी संगतिसे एक गीताकी ही सेवा करनी, इतर शास्त्रोंको लेकर क्या होनेवाला है ? ॥ ॥ १६९५ ॥ कृष्ण और अर्जुन इन दोनोंने एकान्तमें यह जो खुले दिलसे सम्भाषण किया, वह श्रीमद्व्यासजीने किसीको भी हथेलीमें ग्रहण करने योग्य इस रीतिसे सरल कर दिया है ॥ ९६ ॥ माता जब बालकको प्रेमसे भोजन कराने बैठती है तब उसके लिये ऐसे कौर बनाती है कि वह सहज हीमें खा सके ॥ ९७ ॥ वायु अपार होनेपर भी जैसे चतुर मनुष्य पंखा तैयार कर अपनेको जितना सहा जायगा उतना ही वायु लेता है ॥ ९८ ॥ वैसे ही जो शब्दोंसे साध्य नहीं होता, वही अनुष्टुप्छन्दमें ग्रथितकर स्त्री शूद्रादिकोंकी बुद्धिको भी ग्रहण करते बनेगा इतना सरल व्यासजीने किया है ॥ ९९ ॥ अहो स्वाती नक्षत्रके जलसे यदि मोतियां न पैदा हुई तो वे सुन्दर स्त्रियोंके अंगोंको कैसे सुशोभित कर सकती हैं ? ॥ १७०० ॥ वाद्यमें यदि नाद उत्पन्न नहीं हुआ तो कानको कहांसे सुननेमें आवे ? फूल ही यदि न उत्पन्न होवें तो उनका सुगन्ध कैसे लेना ? ॥ १ ॥ पक्वान्नोंमें यदि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मीठापन न हो तो जिह्वाको कहांसे मिले ? दर्पणके विना आंखको आंख क्यों दीखे ? ॥ २ ॥ द्रष्टाको यदि साकार श्रीगुरुमूर्ति नहीं दीख पड़े तो वह किसकी सेवा करेगा ? ॥ ३ ॥ वैसे ही उस अपरिगणित ब्रह्मवस्तुकी यदि इन श्लोकोंकी सातसौ संख्या परिगणित न होती तो उसकी प्राप्ति संसारमें किसको करने आती ? ॥ ४ ॥ मेघ समुद्रका जल भर लाते हैं, पर जगत्को समुद्र जैसाका तैसा ही दीखता है, क्योंकि जिसका माप ही नहीं, उसका कम जादा होना किसको मालूम होगा ॥ १७०५ ॥ वाणीको जो साध्य नहीं, ऐसी वस्तु यदि इस श्लोकमें समाविष्ट न होती, तो कर्ण और मुखको अनुभव कैसे करने आता ? ॥ ६ ॥ अतः व्यासजीने इस श्रीकृष्णकी उक्तिको ग्रन्थके आकारमें दिया. यह संसारपर बहुत भारी उपकार उन्होंने करके रखा है ॥ ७ ॥ और व्यास महर्षिके शब्दपर कटाक्ष रखकर वही व्यास कृत ग्रन्थ मैंने मराठी भाषामें तुम्हारे कानपर डाला है ॥ ८ ॥ जिस विषयमें व्यासादि महर्षियोंका ज्ञान शंकित होकर व्यवहार करता है,उसी विषयमें मैं अल्प-बुद्धि मनुष्य वाचालताका काम करता हूँ ॥९॥ परन्तु यह श्रीगीतेश्वर भोला है उसने व्यासवचनोंकी पुष्पमाला यदि धारण की है, तो भी मेरे साधे दूर्वा-दलोंको भी न नहीं कहता ॥ १७१० ॥ क्षीरसमुद्रके तटपर हाथियोंके समुदाय प्यास दूर करनेके लिये आते हैं, इसलिये क्या वहां मच्छरके लिये बन्दी रहती है ? ॥ ११ ॥ जिसको नवीन पंख फूटे हैं, ऐसा पक्षी थक जानेके कारण भलीभांतिसे न उडता हो तोभी आकाशमें खाली ही स्थिर रहता है, उसी आकाशमें गगनको पार करनेवाला गरुड भी जोरोंसे उडते रहता है ॥ १२ ॥ राजहंसका सुंदर चलना भूतलपर बहुतही उत्तम गिना गया है, अतः दूसरा कोई अपनी रीतिसे चले भी नहीं क्या ? ॥ १३ ॥ घट अपने परिमाणके अनुसार बहुत पानी अपने अन्दर रख लेता है, अतः चुल्लूसे एक चुल्लूभर पानी लेने नहीं आता क्या ? ॥ १४ ॥ मशाल बहुत मोटी रहती है, अतः उसका प्रकाश भी बहुत रहता है, पर छोटी बत्ती भी अपने अनुरूप प्रकाश देती ही रहती है ॥ १७१५ ॥ समुद्रमें समुद्रके विस्तारके बराबर आकाश प्रतिबिंबित रहता है, पर छोटे डबरेमें भी उस परिमाणके अनुरूप आकाशका प्रतिबिंब पडता ही है ॥ १६ ॥ वैसे ही इन ग्रन्थोंके विषयमें व्यासके समान मतिमान् ऋषि व्यवहार करते हैं, अतः हमलोग उसमें चुपचाप बैठे रहें, यह बात सयुक्तिक नहीं है ॥ १७ ॥ जिस समुद्रमें मंदर पर्वतके समान जलचर संचार करते हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



उस समुद्रमें छोटी मछलियां तैरनेके योग्य नहीं हैं क्या ? ॥ १८ ॥ अरुण सूर्यके ही रथपर उसके पास रहता है, अतः सूर्यको देखता है इससे जमीनपर चलनेवाली चूंटी उसकी ओर नहीं देख सकती क्या ? ॥ १९ ॥ अतः हमारे सरीखे सरल आदमी देश भाषामें गीता रचे यह कहना खास अयोग्य नहीं है ॥ १७२० ॥ और बाप आगे चल रहा है उसके पैरपर पैर रखते यदि पुत्र पीछेसे गया तो जहाँ बाप पहुँचता है, वहाँ ही वह भी पहुँचेगा नहीं क्या ? ॥ २१ ॥ वैसे ही व्यासजीके पीछे पीछे और गीता भाष्यकार ( शंकराचार्य ) जीसे मार्ग पूछते यदि मैं चल रहा हूँ तो अयोग्य रहनेपर भी मैं योग्य स्थानमें ही पहुँचूंगा; नहीं तो अन्य जगह जाऊँगा भी कहां और कैसे ? ॥ २२ ॥ पृथ्वीके समान ही जिनका शान्तिगुण किसी भी स्थावर अथवा जंगमको ऊबता नहीं, जिनका अमृत उधार लेकर चंद्रमा जगत्को शान्त करते रहता है ॥ २३ ॥ जिसके अंगका असल तेज प्राप्त कर सूर्य अंधेरेको दूर करता है ॥ २४॥ जिनसे समुद्रको पानी, पानीको मधुरता, माधुर्यको सौंदर्य, वायुको बल, आकाशको फैलाव प्राप्त हुआ है, ज्ञान जिससे उज्ज्वल चक्रवर्तीके समान श्रेष्ठ हुआ है ॥ १७२५ ॥ २६ ॥ जिनसे वेदोंको बोलनेका सामर्थ्य, सुखको उत्साह प्राप्त हुआ है, अधिक क्या, सब विश्वने जिनके कारण रूपको धारण किया है ॥ २७ ॥ जो सबपर उपकार करते हैं, वे समर्थ सद्गुरु श्रीनिवृत्तिनाथ मेरे अन्तर्यामेंमें प्रवेश कर व्यापार करते हैं ॥ २८ ॥ अब मैंने मराठी शब्दोंसे गीताका यथोचित विवरण किया तो उसमें आश्चर्यका क्या कारण है ? ॥ २९ ॥ श्रीगुरु द्रोणाचार्य इनके नामसे पहाडपर मिट्टी की मूर्ति बनाकर जिसने उसकी सेवा की, उस एकलव्य नामके पर्वतवासीने भी धनुर्विद्यासंबन्धि चातुर्यसे तीनों लोकको हलाकर छोड दिया ॥ १७३० ॥ चन्दनके सहवासमें रहनेवाले पेड चन्दनके तरह सुगन्धवाले होजाते हैं, वसिष्ठका आश्रय लेकर उनकी छाटी सूर्यके साथ झगडनेको समर्थ हुई ॥ ३१ ॥ तब मैं तो सचेतन मनुष्य हूँ और मेरे श्रीसद्गुरु इतने समर्थ हैं कि केवल अपनी कृपादृष्टिसे ही वे शिष्यको आत्मपदपर ले जाकर बैठाते हैं ॥ ३२ ॥ एक तो पहिले ही दृष्टि अच्छी हो और उसमें सूर्यकी सहायता मिले, बाद नहीं दीखेगी ऐसी कोई वस्तु है क्या ? ॥ ३३ ॥ अतः मेरे केवल श्वासोच्छ्वास ही नूतन ग्रन्थ होने योग्य हैं. यह ज्ञानदेव कहते हैं कि 'गुरुकृपासे क्या नहीं हो सकता' ॥ ३४ ॥ इस वास्ते मैंने मराठी भाषा योजित कर गीताका अर्थ इन सब लोगोंको समझ पडेगा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



ऐसा कहा है ॥ १७३५ ॥ यह मराठी बोल यदि कोई बडी कुशलतासे गायेगा, तो गानेकी मोहिनीको कहीं भी न्यूनता नहीं दीखेगी ॥ ३६ ॥ अतः कोई गीता गाने लगे तो वह उसके गानेको अलङ्कार ही होगी, भला, कोई इन शब्दोंको सरल रीतिसे पढे तो भी गीता उसमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं रहने देती ॥ ३७ ॥ शरीरपर न डाला हुआ खुला दागिना भी सुन्दर दीखता है तब वह अंगपर चढाया तो वह योग्य नहीं क्या ? ॥ ३८ ॥ अथवा मोतियोंकी यह बात है कि वे सोनेमें बैठाई जानेपर सोनेको शोभा देती हैं, पर ऐसा योग नहीं आया तो खाली मोतियोंकी लडी कुछ कम सुन्दर दीखती हैं ऐसा नहीं ॥ ३९ ॥ अथवा वसन्तके मौसममें विकसित होनेवाली मोगरेकी कलियां गुंथी हुई हों, अथवा अलग हों, उनकी सुगन्धिको कुछ उससे न्यूनता नहीं आती ॥ १७४० ॥ वैसे ही जिसमें गानेका गुण स्वाभाविक विलसता है और गाने विना भी जिसका रंग बहार देता है, ऐसा यह मैंने ओंवी ( मराठी वृत्त विशेष ) बद्ध प्रेममय ग्रन्थ बनाया है ॥ ४१ ॥ उन ओवियोंकी रचनामें छोटे बालकसे सबको अनायास ही समझमें आजायेगा, ऐसे ब्रह्मरससे सुगंधित हुए अक्षर मैंने गुथे हैं ॥ ४२ ॥ अब सुगन्धके लिये चन्दनके वृक्षपर जैसे फूलोंकी राह नहीं देखनी पडती ॥ ४३ ॥ वैसे ही यह ओवियोंका प्रबन्ध कानपर गिरते ही सुननेवालेको समाधि देता है ॥ ४४ ॥ इसके पाठ करनेके व्याजसे जो पाण्डित्य प्रकट होता है कि पास अमृत यदि बहते आजावे तो उस ओर भी ध्यान जावेगा नहीं ॥ १७४५ ॥ ऐसी सिद्धतासे इनमेंका कवित्व इतनी शान्ति उत्पन्न करता है कि जिसके श्रवणने मनन और निदिध्यासको जीत लिया है ॥ ४६ ॥ इसके श्रवणसे आत्मानन्दके अनुभवका उत्तम भाग किसको भी लब्ध होगा और उससे सब इन्द्रियोंको पुष्टि आवेगी ॥ ४७ ॥ चकोर अपनी शक्तिसे चन्द्रका उपभोग लेकर ( याने साक्षात् चन्द्रामृत पीकर ) सुखी होते हैं, पर उस चन्द्रकी चांदनी अन्य किसीको लब्ध नहीं होती क्या ? ॥ ४८ ॥ वैसेही इस अध्यात्म अधिकारी जनोंको ही अंतरंग गूढ ज्ञान होता है, पर केवल वाक्चातुर्यसे भी इतर लोग भी सुखी होते हैं ॥ ४९ ॥ ऐसा यह सब सचमुच निवृत्तिनाथका बडप्पन है, यह कोई ग्रन्थ नहीं है तो यह उस गुरु नाथकी कृपाका ही वैभव है ॥ १७५० ॥ क्षीरसागरके आसपास अति प्राचीन कालमें जो रहस्य श्रीशङ्करने गौरीजीके कानमें कहा ॥ ५१ ॥ वह रहस्य क्षीरसमुद्रके तरंगोंमें मछलीके पेटमें रहनेवाले मत्स्येंद्रनाथको लब्ध हुआ ॥ ५२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



मत्स्येन्द्रनाथको सप्तशृंगपर्वतपर अंगहीन हुए चौरंगीनाथ मिले, मत्स्येन्द्रनाथके दर्शनसे उनके तुटे हुए अवयव पहिलेके तरह पूर्ण और पुष्ट हुए ॥ ५३ ॥ बाद अटल समाधिको यथायोग्य भोगनेका मनमें लाकर मत्स्येन्द्रनाथने उस रहस्यकी मुद्रा गोरक्षनाथके लिये दी ॥ ५४ ॥ और योगरूप कमलिनीका सरोवर और विषयोंके विनाशक ऐसे जो गोरखनाथ उनको मत्स्येन्द्रनाथने सब अधिकार देकर अपने पीठपर अधिष्ठित किया ॥ १७५५ ॥ बाद उस गोरखनाथने वह श्रीशंकरसे परंपरासे आया हुआ अद्वैतानन्दका सुख श्रीगैनीनाथको समूल उपदिष्ट किया ॥ ५६ ॥ उस गैनीनाथने प्राणिमात्रको कलिकालग्रस्त देखकर श्रीनिवृत्तिनाथके लिये आज्ञा की, आदिगुरु शंकरसे शिष्य परम्पराको रहस्य ज्ञान करनेका जो यह सम्प्रदाय हमारेतक आया है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ वह सम्प्रदाय तुम स्वीकार कर इस कलिसे ग्रस्त होनेवाले सब जीवोंकी रक्षाके लिये वेगसे दौड़ते जाओ ॥ ५९ ॥ निवृत्तिनाथ पहलेके ही अत्यन्त कृपालु, उसमें ऐसा गुरुजीका आज्ञावचन हुआ उस कारण जगत्को शान्त करनेके लिये वे निवृत्तिनाथजी बरसातके मेघके समान एकदम व्यग्र होकर आगे बढते भये ॥ १७६० ॥ बाद आर्तोंके विषयमें दया आकर गीतार्थ बनानेके मिससे जो शान्तरसकी वर्षा उन्होंने की, वही यह ग्रन्थ है ॥ ६१ ॥ उस समय मैं चातकके समान बड़ी इच्छासे उनके सामने खड़ा हुआ और इस कारणसे तो आज कीर्तिको कमाते भये ॥ ६२ ॥ इस प्रकार गुरुपरम्परासे प्राप्त हुआ जो आत्मसमाधि द्रव्य वह इस ग्रन्थके द्वारा उपदिष्ट कर गुरु महाराजने मुझको दिया है ॥ ६३ ॥ ऐसा न रहता तो जो पढता नहीं बांचता नहीं, कि गुरु स्वामीकी सेवा भी अच्छी तरह जानता नहीं, उस मुझको ऐसा ग्रन्थ बनानेकी योग्यता कहांसे आवे ? ॥ ६४ ॥ परन्तु सचमुच गुरु महाराजने मुझको निमित्त कर यह प्रबन्ध रचकर जगत्का रक्षण किया है, यह आप ध्यानमें लाइये ॥ ॥ १७६५ ॥ अब इस रीतिसे केवल नाममात्रके लिये मुझको पुरोहितकी तरह आगे करनेके कारण, यदि मेरे बोलनेमें थोड़ा बहुत रहा होगा तो श्रोताजन माताके समान अति प्रेमयुक्त होकर वह सब पेटमें रखें ॥ ६६ ॥ शब्द कैसे योजित करना, सिद्धान्त कैसे बांधना, अलंकार किसको कहना,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


इसका मुझे ज्ञान नहीं ॥ ६७ ॥ पर सूत्रकी गतिके आधारपर कठपुतली सूत्रधारके तंत्रसे हालचाल करती है, वैसे ही मुझको आगे कर वास्तविक मेरे सद्गुरु ही यह बोल बोलते हैं ॥ ६८ ॥ अतः इस ग्रन्थके गुणदोषोंके विषयमें क्षमा करिये, ऐसा मैं विशेष आग्रहसे नहीं कहता हूँ, कारण यह कि गुरु स्वामीने मेरी केवल आदिसे अन्ततक ग्रन्थ कहनेकी योजना की है ॥ ६९ ॥ और जो हीनगुणी भी आप सन्तोंकी सभामें खड़ा हुआ, वह यदि पूर्ण गुणवाला न हुआ तो प्रेमसहित आपके ऊपर ही कोप करेगा ॥ १७७० ॥ पारसका स्पर्श होनेपर भी यदि लोहेकी हीनत्वकी स्थिति दूर न हुई तो वह किसका दोष ? ॥ ७१ ॥ नालेका इतना ही काम है कि गंगाजीको आकर मिले और वह यदि गंगारूप नहीं हुआ तो उसका उसके तरफ क्या कहना ? ॥ ७२ ॥ अतः यदि मैं बड़े भाग्यसे आप सन्तोंके चरणोंके पास आकर टिका हूँ तो अब इस जगत्में क्या न्यून है ? ॥ ७३ ॥ हे श्रीगुरुजी ! आपने मुझको इन सन्त सज्जनोंका लाभ करा दिया, उससे मेरे सब मनोरथ परिपूर्ण हुए हैं ॥ ७४ ॥ हे सन्तजनो ! आपके समान नैहर मुझको मिल जानेके कारण मेरा ग्रन्थ बनानेका हठ बड़े सुखसे अच्छी तरह सफल हुआ ॥ १७७५ ॥ अजी सोनेका सम्पूर्ण पृथ्वीतल ढाला जा सकता है ! चिन्तामणियोंके मेरुपर्वतके समान बडे पहाड़ रचे जा सकेंगे ॥ ७६ ॥ सातों समुद्रोंको अमृतरससे परिपूर्ण भर देना सहज होगा, क्षुद्र ताराओंका चन्द्र करना भी कठिन नहीं ॥ ७७ ॥ कल्पवृक्षोंकी बगीचा लगाना कुछ कठिन नहीं है, पर गीतार्थके रहस्यका खुलासा करना यह नहीं हो सकता ॥ ७८ ॥ पर मैं एक केवल गूंगा मनुष्य भी गीताका अर्थ सब लोगोंकी दृष्टिको प्रत्यक्ष दीखेगा, इतना स्पष्ट कर सका हूं ॥ ७९ ॥ इतने बडे ग्रन्थ समुद्रके पार उतरकर मैं जो कीर्तिकी पताका लेकर नाचता हूँ ॥ १७८० ॥ यह विस्तृत प्राकार और कलशसे मेरु पर्वतके समान प्रचण्ड भासनेवाला गीतार्थरूपी मन्दिर रचकर उसमें श्री-गुरुमूर्तिकी प्रतिष्ठा कर उसकी पूजा करते हैं ॥ ८१ ॥ गीताके समान कपट रहित निर्मल शुद्धान्तःकरणवाली माताको भूलकर जो बालक बनवन घूमता रहा, उसकी भी जो उस मातासे भेंट हुई, यह सब कुछ आपकी कृपाका ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



गुण है ॥ ८२ ॥ मैं ज्ञानदेव आप सज्जनोंको कहता हूँ कि महाराज आपके आचार व्यवहारका विचार करके ही बोले हैं यह कुछ इस ज्ञानदेवका खासका गडबड भाषण नहीं है ॥ ८३ ॥ अब और क्या कहूँ ? यह ग्रन्थ समाप्तिका उत्सव मुझको आपकी कृपासे अनुभवनेको मिला, इससे मेरा जन्म सफल हुआ है ॥ ८४ ॥ मैंने जिन जिन आशाओंका आपसे भरोसा किया था उन सब आशाओंको आपके सर्वथा पूर्ण करदेनेके कारण मैं अत्यंत सुखी हुआ हूँ ॥ १७८५ ॥ हे स्वामिन् ! मेरे सरीखे अल्पबलीके लिये आपने यह जो ग्रन्थकी अद्भुत सृष्टि निर्माण की है, उसको देखकर हमलोग दूसरी सृष्टि उत्पन्न करनेवाले विश्वामित्रको भी आज तुच्छरूपसे देखते हैं ॥ ८६ ॥ क्योंकि त्रिशंकुका अभिमान धरके केवल ब्रह्माजीको न्यूनता लानेके लिये नाशवाली सृष्टि उत्पन्न की थी, पर वह ऐसी न होनेसे पुरुषार्थवाली नहीं ठहरी ॥ ८७ ॥ श्रीशंभुने उपमन्युपर प्रसन्न होकर क्षीरसागर उत्पन्न किया, पर वह भी यहाँ उपमाके लिये योग्य नहीं ठहरता, क्योंकि उसके पेटमें काल-कूट विष था, ( और समुद्रमंथनके समय वह बाहर भी गिरा ) ॥ ८८ ॥ अंधकाररूपी राक्षसोंसे ग्रस्त होनेवाले चर-अचरकी रक्षा करनेके लिये सूर्य दौडकर आया और उसने अंधकारका नाश किया, यह बात सच है, पर ऐसा करते समय उसने जगत्को अपने तीक्ष्ण उष्णत्वकी चमक दिखाई दी ॥ ८९ ॥ संतप्त हुए विश्वको शांत करनेके लिये चंद्र भी अपनी चांदनी भरपूर खर्चता है, पर उस कलङ्कयुक्त चंद्रको इस ग्रंथराजकी बराबरी कैसे आस-केगी ? ॥ १७९० ॥ अतः आप संतोंने मुझको जो ग्रन्थरूपसे उपकार किया है वह तीनोंलोकमें उपमा रहित है, ऐसा फिर मैं कहता हूँ ॥ ९१ ॥ अधिक क्या कहूँ, मैं कहता हूँ कि यह ग्रन्थरूपी धर्मकीर्तन जो सुखरूपसे पूर्ण हुआ है, वह सब आपकी ही कृति है और इस प्रकरणमें केवल सेवकत्व ही मुझमें शेष रहता है ॥ ९२ ॥ अब सब विश्वका आत्मा जो परमेश्वर वह इस वाङ्मय यागसे संतुष्ट होकर मुझको इतना ही प्रसाद दान देवें ॥ ९३ ॥ कि दुष्टोंकी वक्रदृष्टि सीधी हो और उनके अन्तःकरणमें सत्कृत्यकी ओर प्रेम बढे और सब प्राणिमात्रोंमें परस्पर जीवकी मित्रता उत्पन्न हो ॥ ९४ ॥ पापका अंधकार नष्ट हो और आत्मज्ञानके प्रकाशसे सब विश्व उज्ज्वल हो फिर जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS


जो प्राणी जिस जिसको चाहे, वह वह उसको प्राप्त हो ॥ १७१५ ॥ और सब मंगलोंकी वृष्टि करनेवाले जो संत सज्जनोंके समुदाय उनकी भेंट इस भूतलपर सब प्राणियोंको सदा हो ॥ ९६ ॥ ये संत सज्जन चलते कल्पवृक्षके अंकुर होते हैं, अथवा ये चैतन्यरूपी चिंतामणिके ग्राम अथवा अमृतका बोलता समुद्र समझना चाहिये ॥ ९७ ॥ कलङ्क रहित ऐसे जो चन्द्र अथवा तापहीन ऐसे जो सूर्य तद्रूप वे सब साधुजन सबजनोंके सदाकालके सम्बन्धी हैं ॥ ९८ ॥ तात्पर्य, तीनोंलोक अद्वैत सुखसे परिपूर्ण होकर आदि पुरुषके भजनको अखण्डरूपसे लगें ॥ ९९ ॥ और विशेष करके इस लोकमें ग्रन्थोंके ऊपर ही जिनका उपजीवन है, उनको इस लोक और परलोकके सुखोंका लाभ हो ॥ १८०० ॥ यह सुनते ही श्रीविश्वेश्वर गुरुने कहा,--'यह प्रसाद तुमको दिया है' इस वरदानसे ज्ञानदेव बहुत सुखी हुए ॥ १ ॥ इस तरह कलियुगमें और महाराष्ट्र देशमें श्रीगोदावरीके दक्षिण तटपर जिस जगह जगत्के जीवनसूत्र मोहिनीराज इनका निवास है, ऐसा अतिपवित्र अत्यन्त प्राचीन पंचकोश ( नेवासे नामका ) क्षेत्र है ॥ २ ॥ ३ ॥ उस क्षेत्रमें सोमवंशके शिरोमणि और सकल कलाओंके भण्डार, ऐसा राजा श्रीरामचन्द्र नीतिसे राज्य करता है ॥ ४ ॥ ऐसे उस स्थलमें श्रीशङ्करपरंपराके श्रीनिवृत्तिनाथके शिष्य ज्ञानदेवने गीताको मराठी भाषाके आभूषण चढाये ॥ १८०५ ॥ इस प्रकार महाभारतके भीष्मपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुन इनका जो उत्तम संवाद हुआ ॥ ६ ॥ जो उपनिषद्गाथाओंका सार है और सब शास्त्रोंका नैहर है, हंस जैसे सरोवरका आश्रय करते हैं, वैसे ही परमहंस योगी जिसका आश्रय लेते हैं ॥ ७ ॥ उस गीतानामक संवादका यह अठारहवां अध्याय पूर्ण कलश है, ऐसा मैं निवृत्तिनाथ शिष्य ज्ञानदेव कहता हूँ ॥ ८ ॥ अब उत्तरोत्तर इस ग्रन्थकी पवित्र सम्पत्तिसे सब प्राणिमात्रोंको सम्पूर्ण सुखलाभ हो ॥ ९ ॥ शके बारा सौ बारा ( १२१२ ) इस वर्षमें ज्ञानेश्वरने गीता टीका की, और सच्चिदानन्द बाबाने इसको बडे आदरसे लिखा ॥ १० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्रीज्ञानदेवकृतभावार्थदीपिकाटीकाया
भाषानुवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



शालिवाहन शके १५०६ तारण नाम संवत्सरमें जनार्दन शिष्य एकनाथने अत्यादरसे गीतामूलप्रति शुद्ध की ॥ १ ॥ यह पहिलेका ही बहुत शुद्ध है, परन्तु दूसरे अनुचित भी पाठान्तर घुस जानेके कारण शुद्ध ग्रन्थ भी असम्बद्ध हुआ था, उसका संशोधन कर ज्ञानेश्वरी शुद्ध की गयी ॥ २ ॥ जिनकी गीता टीका पढनेसे अति भावुक ग्रन्थार्थि लोगोंको ज्ञानलाभ होता है, उस निष्कलंक ज्ञानेश्वर महाराजको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ बहुत काल बीतनेपर पर्वके शुभकाल भाद्रपदमासकी कपिला षष्ठीमें गोदातटपर पैठण नगरमें यह लेखन कार्य सम्पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥ उस ज्ञानेश्वरीके पाठमें जो कोई अपनी मराठी ओवी घुसावेगा, उसने अमृतकी थालीमें नरोटी ( नारियलपात्र ) रखी, ऐसा समझना चाहिये ॥ ५ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

# विज्ञापन। ( वेदान्त ग्रन्थाः। )

| नाम. | की. रु. आ. |
|---|---|
| अद्वैत ( ब्रह्म ) सुधा—मुमुक्षुजनोंको अत्युपयोगी ब्रह्मनिरूपणका अपूर्व ग्रन्थ. ... ... ... ... ... | ०—१२ |
| अद्वैतरत्नाकर—श्रीअमरदासकृत, संस्कृतटीका और भाषाटीकासहित अद्वैतवेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ। वैशेषिक, सांख्य और स्वामी दयानन्दादि द्वारा दिये दूषणोंका यथार्थ खण्डन और अद्वैतका अत्युत्तम मण्डन, अवश्य द्रष्टव्य. ... ... | ०—६ |
| अध्यात्मप्रदीपिका—मूल श्रीअष्टावक्रमुनिविरचित, अत्युत्तम ज्ञानमय वेदान्तोपदेश. ... ... ... ... ... | ०—६ |
| अपरोक्षानुभूति—श्रीशङ्कराचार्यकृत और स्वामी श्रीविद्यारण्यमुनिकृत दीपिका नामक संस्कृत टीका तथा श्रीयुत पं० रामस्वरूपजी कृत भाषाटीकासहित । इसमें संक्षेपसे वेदान्तप्रक्रियाका सरल रीतिसे वर्णन है. ... ... ... ... | ०—१२ |
| अवधूतगीता—मूल श्रीदत्तात्रेयप्रणीत रेशमी गुटका ... ... | ०—७ |
| अवधूतगीता—काशी निवासी स्वामी परमानन्दजीकृत भाषाटीका सहित ... ... ... ... ... | १—८ |
| अष्टावक्रगीता—श्रीअष्टावक्रमुनिप्रणीत भाषाटीकासहित ब्रह्मविद्या जाननेका अति सरल सुगमोपाय ... ... ... | १—० |
| अष्टश्लोकी—पराशरभट्टाचार्यप्रणीत। पं० सुदर्शनाचार्यशास्त्रीकृत रहस्यत्रय व्याख्या तथा भाषाटीकासहित. ... ... | ०—१ |
| आत्मबोध—भाषाटीकासहित। वेदान्तमें प्रवेश करनेवालोंको परमोपयोगी ... ... ... ... ... | ०—५ |
| आत्मबोध, तत्त्वबोध, वेदस्तुति—भाषा. ... ... ... | ०—४ |
| गणेशगीता—स्व० विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकासहित ( गणेशपुराणान्तर्गत ) ... ... ... | ०—८ |
| गोविन्दाष्टक—आनन्दगिरिकृत संस्कृत टीका तथा पं० कन्हैयालालशर्मकृत भाषाटीकासहित.... ... ... ... | ०—२॥ |
| तत्त्वबोध—भाषाटीकासहित। यह वेदान्तकी प्रथम श्रेणीका सर्वोत्तम ग्रन्थ है. ... ... ... ... ... | ०—३ |

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS



# विज्ञापन ।

| नाम. | की. रु. आ. |
|---|---|
| अग्रदासजीकी कुण्डलिया–( वेदान्तोपदेश ) ... ... | ०–३ |
| अध्यात्मविनोद–गङ्गाधरवर्मा संगृहीत-इसमें योगाभ्यास, मेस्मेरिजम और वेदान्तादि विषय हैं. ... ... ... | ०–६ |
| अध्यात्मप्रकाश–श्रीशुकदेवजीप्रणीत–कबित्त, दोहे, सोरठे, छन्द, चौपाई, इत्यादिमें वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ ... ... | ०–३ |
| अनुभवप्रकाश–योगेश्वर श्री १०८ बनानाथजीकृत, मारवाड़ी भाषा । इसमें गुरुकी महिमा, योगीकी प्रशंसा, सन्तोंका प्रभाव, मनको चेतावनी, वेदान्तके पद, तत्त्वमस्यादि वाक्योंका सार–आसावरी, सोरठ, वसन्त, गूजरी आदि अनेक रागोंमें वर्णित है. ... ... ... | १–० |
| अभिलाखसागर–स्वामी अभिलाखदास उदासीकृत । इसमें–वन्दन-विचार, ग्रन्थविचार, मार्गविचार, भजनविचार, जडब्रह्म-विचार, चैतन्यब्रह्मविचार, निराकारब्रह्मविचार, मिथ्याब्रह्म-विचार, अहंब्रह्मविचार, ब्रह्मविचार, वर्तमान ब्रह्मविचारादि विषय अच्छी रीतिसे वर्णित हैं. ... | २–० |
| अमृतधारा–भगवानदास निरंजनीकृत । इसमें वेदान्तकी प्रक्रिया छन्दोंमें लिखी गयी है. ... ... ... ... | ०–१२ |
| अर्जुनगीता–श्रीकृष्णजी और अर्जुनका संवाद. ... ... | ०–४ |
| आत्मपुराण–भाषामें दशोपनिषद्का भाषार्थ श्रीमत्परमहंस परि-व्राजकाचार्य चिद्घनानन्दस्वामिकृत. ... ... ... | १६–० |
| आत्मरामायणभाषा–सातोंकाण्डरामायणका वेदान्तपक्षमें वर्णन | ०–८ |
| आनन्दामृतवर्षिणी–आनन्दगिरि स्वामिकृत । गीताके कठिन शब्दोंका प्रतिपादन, अर्थात् यह वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ है. | ०–१४ |
| एकादशस्कन्ध–चतुरदासजीकृत भागवतके एकादशस्कन्धकी वेदा-न्तरसमय कथा सरल भाषामें सुगम रीतिसे वर्णित है. ... | १–० |

## पुस्तकें मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्–प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्–प्रेस,
कल्याण–बम्बई.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

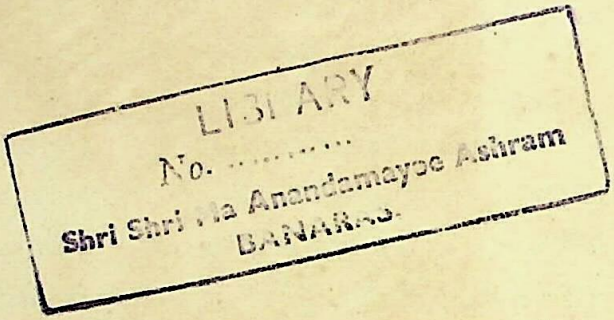


CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानेकी परमोपयोगी,

स्वच्छ, शुद्ध और सस्ती पुस्तकें।

यह विषय आज ७०।८० वर्षसे भारतवर्षमें प्रसिद्ध है कि, इस यन्त्रालयकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं। इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे—वैदिक, वेदांत, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, साम्प्रदायिक, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दी भाषाकी प्रत्येक अवसरपर विक्रीके लिये तैयार रहती हैं। शुद्धता, स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्दकी बँधाई देशभरमें विख्यात है। इतनी उत्तमता होनेपर भी दाम बहुत ही सस्ते रखे गये हैं अतः संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मँगानेमें त्रुटि न करनी चाहिये. ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है —)॥ का टिकट भेजकर बड़ा 'सूचीपत्र' मँगा देखें।

पुस्तक मिलनेका पता—

[illegible] श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" [illegible]-प्रेस,
बम्बई

गं[illegible] विष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi